

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

बृहद्धर्मपुराणम्

हिन्दी अनुवाद सहित

भाषाभाष्यकार

एस. एन. खण्डेलवाल

चौखम्बा संस्कृत सीरीज

१५५

****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

बृहद्धर्मपुराणम्

हिन्दी अनुवाद सहित

भाषाभाष्यकार

एस. एन. खण्डेलवाल



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०७१, सन् २०१४

ISBN : 978-81-7080-434-5

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice@sify.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

निवेदन

महर्षि वेदव्यास प्रणीत उपपुराण बृहद्धर्मपुराण को उपपुराणों में अन्यतम माना गया है। अठारह पुराणों के साथ ही अठारह उपपुराणों का भी प्रणयन महर्षि वेदव्यास ने किया था, यह कहा जाता है। पुराणों की विषयवस्तु जितनी अध्यात्मपरक, साधनापरक तथा तत्वपूर्ण है, उसी की झलक उपपुराणों में भी मिलती है। उपपुराण भी पुराणों की ही भावना से ओतप्रोत हैं। कुछ अंश में तो यह प्रतीत होता है कि उपपुराणों का उत्कर्ष पुराणों के ही समान है। बृहद्धर्मपुराण में पुराणों के आधार भूत सभी तत्वों तथा उपक्रमों का समावेश सम्यक् तथा संक्षिप्त रूप से किया गया है। इसकी विचित्रता यह है कि इस पुराण के समापन के साथ-साथ उसी समापन स्थल पर इसमें राजा वेण द्वारा प्रवर्त्तित किये गये जातिसंकर प्रसंग को भी जोड़ दिया गया है, जो अन्य पुराणों में नहीं मिलता। इस प्रसंग के अनुसार यह विदित होता है कि संकर जातियों की उत्पत्ति के मूल कारण राजा वेण थे। उन्होंने ही जातिगत संकर प्रथा का प्रारम्भ कराया था। तदनन्तर यह प्रसंग मिलता है कि राजा वेण के उत्तराधिकारी ने अपनी उदात्त वृत्ति का परिचय देते हुये, उस संकर जाति के लिये उपयुक्त सामाजिक व्यवस्था का विधान किया था तथा उनके जीविकार्थ कर्त्तव्य कर्म की भी व्यवस्था किया था। यह एक अलौकिक प्रसंग इस उपपुराण में प्राप्त होता है।

मुझे अनुवाद काल में इस पुराण की दो प्रति प्राप्त हो सकी थी। प्रथम थी बंगवासी प्रेस से मुद्रित प्राचीन बंगाक्षर प्रति, द्वितीय थी महामहोपाध्याय हरप्रसादशास्त्री द्वारा सम्पादित देवनागरी अक्षरों की प्रति। बंगवासी प्रेस की प्राचीन प्रति में कतिपय अध्याय अधिक थे, जो हरप्रसादशास्त्री द्वारा सम्पादित प्रति में प्राप्त नहीं थे, जैसे कृष्णलीला प्रसंग तथा संकर जाति प्रसंग। इसलिये मैंने अपने अनुवाद में उन अध्यायों को भी मूल के साथ संयोजित कर दिया। वे मुझे क्षेपकरूप अध्याय नहीं लगे। इसका कारण यह है कि हरप्रसादशास्त्री द्वारा सम्पादित प्रति में उपपुराण का समापन अचानक हो गया लगता है। कथावाचक का कथा कहकर प्रस्थान, श्रोतागण का स्वस्थान गमन आदि अंश उसमें न होने के कारण लगा कि इस प्रति में कहीं कुछ छूट गया है। मुझे बंगवासी प्रेस वाली प्रति में यह पुराण आद्यन्त प्रतीत हुई। उसे देखने से ज्ञात हुआ कि इसका अचानक समापन न होकर विधिवत् समापन हुआ है।

आजकल पाश्चात्य धारा का विशेष प्रभाव होने के कारण यह प्रथा हो गई है कि पुराण की विषयवस्तु, उसके संदेश तथा उसकी अन्तरात्मा के स्थान पर उसकी ऐतिहासिकता, उसके सम्बन्ध में किस पाश्चात्य विद्वान् ने क्या कहा, उसका काल, उसकी भाषा आदि-आदि अनेक जटिलतायें खड़ी करके पुराणों के उपोद्घात के रूप में विशेष पाण्डित्य प्रदर्शन की परम्परा चल गयी है, जिससे किसी पुराण प्रेमी को कुछ लेना देना नहीं रहता। पुराणों का पाठक इस प्रवृत्ति का होता है कि उसे आम का रसास्वादन करना है, आम्रकुंज में कितने आम्रवृक्ष हैं, इसकी गणना से उसे क्या प्रयोजन? साथ ही वह किस काल में लिखी गयी इत्यादि-इत्यादि विवेचना को जानने से पाठक का क्या पारलौकिक लाभ होगा? इन सबसे तो उसकी वृत्ति और भी बहिर्मुख होगी तथा मन में पुराण की प्रामाणिकता के प्रति संदेह बीज का अंकुरण होने लगेगा। प्राचीन टीकाकार इस तत्व को जानते थे तथा वे इन सब ग्राम्य चर्चा से पाठकों का मन उद्वेलित न करके पूर्णतः पुराण की अन्तरात्मा की गहन गंभीरता में पाठक का प्रवेश कराते थे। अतः मैं इन सब प्रसंगों को परमतत्व लाभार्थ पुराण में व्यर्थ समझ कर पुराण में वर्णित विषयों के प्रति ही एकनिष्ठ रहते हुये तथा उसके सारतत्व को ही ग्रहण करते-करते अनुवाद कार्य में प्रवृत्त रह गया। "संत हंस गुण गहहिंपय" नीरक्षीर विवेकी हंस को तो उसका सारमात्र ही चाहिये। अतः "वारिविकार" रूप वितण्डा को विद्वानों के श्रमार्थ छोड़ता हूं।

इस पुराण के प्रथम हिन्दी संस्करण के लिये चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी के अधिष्ठाता श्रीमान व्रजमोहनदास जी गुप्त का प्रयास स्तुत्य है। अहर्निश प्राच्यविद्या के उन्नयन का इस संस्थान का प्रयास सर्वदा सराहनीय है।

चैत्र नवरात्र, सन् २०१४ ई.

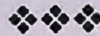
भवदीय

एस. एन. खण्डेलवाल

विषयानुक्रमणिका

अध्याय | पृष्ठांक

पूर्वखण्ड

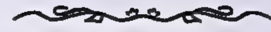


पूर्वखण्डः

बृहद्धर्मपुराणम्

पूर्वखण्डः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



प्रथमोऽध्यायः

मंगलाचरण, सूत तथा ऋषिगण संवाद

**ॐ भूर्भुवस्वरिति तत्सवितुर्व्वरेण्यं भर्गो निसर्गविमलं परमस्य विष्णोः।
देवस्य धीमहि धियोऽधिगतं वयं वो यत्नात्र ईहितमतोंस्तु प्रचोदयादोँ॥१॥**

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततोजयमुदीरयेत्।।

नारायण, नर, नरोत्तम, देवी, सरस्वती तथा वेदव्यास को प्रणाम करके इस जयग्रन्थ का पाठ करता हूं।[1]

ॐ जगत् स्रष्टा परमदेव विष्णु की स्वभाव निर्मल वरेण्य ज्योति का मैं ध्यान करता हूं। यह ज्योतिपुंज हमारी चेष्टा तथा बुद्धि को अपने उपासनारूपी कार्य में नियुक्त करे।।ॐ।।१।।

**पवित्रे नैमिषक्षेत्रे विमले साधुसेविते। सुगन्धिमन्दशीतेन वायुना सुमनोहरे॥२॥
नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पसमाकुले। मयूरैः कोकिलैर्हंसैर्भ्रमरैरुपकूजिते॥३॥
तथान्यैः पक्षिभिश्चैव गोमृगादिभिरेव च। शान्तस्वभावै र्व्याघ्राद्यैरावृते नैमिषे वने॥४॥
दीर्घसत्रमुपासीनानृषीन् सावसरांस्ततः। यदृच्छया समायातः सूतो बदरिकाश्रमात्॥५॥
तं दृष्ट्वा सूतमायातं मुनयः शौनकादयः। स्वागतासनपाद्याद्यैर्मुदिताः समपूजयन्।
तमूचुश्च महात्मानं सूतं पौराणिकोत्तमम्॥६॥**

निर्मल, पावन, साधुजन सेवित नैमिष क्षेत्र में सुगन्धित मृदुमन्द समीरण प्रवहमान थी। विविध तरुलता, नाना पुष्पराजि से नैमिषारण्य आच्छन्न तथा शोभित था। मयूर, कोकिल, हंस तथा अन्य पक्षीवृन्द एवं अलिकुल का कुंजन-गुंजन चतुर्दिक् परिव्याप्त था। गौ, मृग प्रभृति तथा शान्तभावापन्न व्याघ्र आदि पशुगण उस वन में परिव्याप्त

---

१. भविष्यपुराण का मत है कि सभी पुराण के लिये 'जय' कहा जा सकता है। यह पुराण का उपलक्षण है।

थे। दीर्घकाल से यज्ञ कार्य में प्रवृत्त ऋषिगण के यहां बदरिकाश्रम से सूत जी अवसर मिलने पर आये। दीर्घयज्ञपरायण शौनकादि ऋषिवृन्द ने सूतजी को आया देखकर उनका स्वागत उनकी कुशलता ज्ञापन, पाद्य, आसन प्रदानादि से किया। तब उनके आगमन से मुदितमना ऋषिगण सूत से कहने लगे।।२-६।।

ऋषय ऊचुः

कस्मादागमनं सूत तवेदं रोमहर्षणे। प्रफुल्लवदनाम्भोजो दृश्यसेऽस्माभिरेव च।।७।।
मन्ये व्याससमीपात्त्वं समागच्छसि सम्प्रति। वद तर्हिं कथाः पुण्या व्यासेनोक्ता महामते।।८।।
कः श्रोता तत्र किं वासौ प्रोक्तवान् शक्त्रिपुत्रजः। तत्त्वमाचक्ष्वानुपूर्व्या श्रुतवानसि चेत्तथा।।९।।

ऋषिगण कहते हैं—हे रोमहर्षण सूत! आपका आगमन कहां से हो रहा है? हम देखते हैं कि आपका मुखकमल प्रफुल्लित है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि सम्प्रति आप भगवान् वेदव्यास के यहां से आये हैं। हे महामति! यदि यह बात है, तब आप कृपया व्यासोक्त पावन पुराण कथा कहें। उन पराशरनन्दन ने बदरिकाश्रम में कौन सी कथा कही है? वहां श्रोता कौन था? यदि आपने सुना है तब आप उनका क्रम से वर्णन करें।।७-९।।

सूत उवाच

नमो वः सत्यमेवाहं प्राप्तो बदरिकाश्रमात्। भवतां निकटं तत्र कथाः पुण्याः श्रुता अपि।।१०।।
व्यासो जाबालिना पृष्टः कथा धर्मार्थसंहिताः। प्रत्यवोचच्छृण्वताञ्च मुनीनां मम च द्विजाः।।११।।
प्रावर्त्तयत् तथा पुण्यं पुराणं धर्मसंज्ञितम्। सर्व्वे धर्माः श्रुतास्तत्र सेतिहासा उदाहृताः।।१२।।
चतुराश्रमधर्माश्च सामान्येन विशेषतः। धर्मप्रशंसा सत्यादेर्भेदा धर्माङ्गरूपिणः।।१३।।
गुरूणां कथनश्चैव पितुर्मातुस्तथा स्तवः। तीर्थानि देशाः क्षेत्राणि देवपूजाः पृथग्विधाः।।१४।।
तिथीनामपि माहात्म्यं यच्च कालविशेषजम्। पुराणोपपुराणादिकीर्त्तनं पुण्यकीर्त्तनम्।।१५।।
गवाञ्च ब्राह्मणानाञ्च माहात्म्यं बहुशः श्रुतम्। शुकजैमिनिसंवादः सृष्ट्यादिप्रक्रियाविधिः।।१६।।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां कथाः पुण्याः महोदयाः। ज्योतिषां वर्णनञ्चैव कथितं तन्मया श्रुतम्।
गङ्गायाः सत्प्रसङ्गश्च श्रुतः प्रथमतः परम्।।१७।।
सर्व्वेषां खलु धर्माणां कारणं पावनं परम्। रामायणञ्च संक्षेपात् कथितं तन्मया श्रुतम्।।१८।।
मयि श्रोतरि हे विप्रास्तत्र तेन कृपालुना। न्यस्तं पुराणममलं वक्तायमिति सर्व्वतः।।१९।।

ऋषिगण कहते हैं—आप सबको प्रणाम! मैं बदरिकाश्रम से आया हूं। यह बात सत्य है। वहां मैंने पवित्र पुण्यकथा सुनी है। हे द्विजगण! व्यासदेव ने जाबालि के पूछे जानेपर धर्मार्थपूर्ण कथा कही थी। श्रोताओं में मुनिगण के साथ मैं भी था। उन्होंने पवित्र धर्मपुराण की कथा प्रारम्भ किया था। उसमें इतिहास के साथ समस्त धर्मकथा कही गयी हैं। मैंने उन सबका श्रवण किया।

उस कथा में सामान्य तथा विशेषतः चतुराश्रमधर्म प्रतिपादित हुआ। धर्मप्रशंसा, सत्यादि भेद से (युगभेद), नाना धर्माङ्ग कथन, गुरु निर्देश, माता-पिता का स्तव, तीर्थ, देश तथा क्षेत्र सम्बन्धित कथा, नाना विधि की देवपूजा

प्रणाली, तिथिमहिमा, मासादि समय भेद से तिथि का विशेष वर्णन, धर्मजनक पुराण तथा उपपुराणादि का नाम कथन, गौ-ब्राह्मण माहात्म्य, शुक-जैमिनी संवाद, सृष्टिप्रक्रियादि, अभ्युदयकारक रूप ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर की पवित्रकथा, ज्योतिवर्णना कही गयी। मैंने यह सब सुना है। गया का पवित्र प्रसंग सर्वाग्र में सुना था। गंगा का पवित्र प्रसंग भी पहली बार सुना। सभी धर्मों का कारणरूप पवित्र रामायण कथानक भी गुरुदेव ने संक्षेप में कहा, वह भी मैंने सुना। हे विप्रगण! गुरुदेव ने मुझे कृपापूर्वक यह पुराण अर्पित करके कहा—"यह सूत ही सर्वत्र इस पुराण का वक्ता हो।"१०-१९।।

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर। यदाह भगवान् व्यासो जाबालिं प्रति तत्र वै॥२०॥
वयं शुश्रूषवस्तत्र सत्रे परमके स्थिताः। केन ह्यवसरः कालो यापनीयो वृथा नहि।
भवेन्न इति सञ्चिन्त्य स्थितानां त्वमिहागतः॥२१॥
तद्ब्रूहि सूत हे तात पुराणं धर्मनामकम्। पुराणज्ञोऽसि धीरोऽसि वक्तासि मतिमानसि॥२२॥

ऋषिगण कहते हैं—हे सूत! सूत! हे महाभाग! हे वक्ताप्रवर! हमें वह कथा सुनायें जिसे व्यासदेव ने जाबालि से कहा था। हम श्रवणाभिलाषी हैं। हम इस महायज्ञ में व्यापृत होकर विचार कर रहे थे कि हमारे पास अनेक अवसर रहता है, हम कैसे कालयापन करें जिससे समय व्यर्थ नष्ट न हो! ऐसी स्थिति में यहां आपका आगमन हो गया।

हे तात! सूत! आप उस धर्मपुराण की कथा कहें। आप पुराणज्ञ, धीर, वक्ता तथा बुद्धिमान हैं।।२०-२२।।

सूत उवाच

नमस्तस्मै मुनीशाय तपोनिष्ठाय धीमते। वीतरागाय कवये व्यासायामिततेजसे॥२३॥
तं नमामि महेशानं मुनिं धर्मविदां वरम्। श्यामं जटाकलापेन शोभमानं शुभाननम्॥२४॥
मुनीन् सूर्य्यप्रभान् धर्मं पाठयन्तं सुवर्च्चसम्। नानापुराणकर्त्तारं वेदव्यासं महाप्रभम्॥२५॥
तं नमस्कृत्य धर्मज्ञं ब्राह्मणाश्च सुशीलिनः। शृणुध्वं मुनयः सर्व्वे धर्मान् वक्ष्ये सनातनान्॥२६॥
जाबालिर्नाम विप्रर्षिः काश्यपेयो महामुनिः। शिष्योपशिष्यमुनिभिः प्राप्तो बदरिकाश्रमम्॥२७॥
तत्र दृष्ट्वा महात्मानं व्यासं नत्वा पुनः पुनः। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा सर्व्वैश्च मम शृण्वतः॥२८॥
पप्रच्छ विनयी तेन व्यासेनापि सभाजितः॥२९॥

सूत जी कहते हैं—तपोनिष्ठ, वीतरागी, अमिततेजा, धीमान्, कवि, मुनिप्रवर गुरुदेव वेदव्यास को प्रणाम, जिन्होंने गुरुगण को धर्मशास्त्र शिक्षण प्रदान किया है, जो नाना पुराणकर्त्ता, सूर्यतुल्य- तेजस्वी हैं, उन षड़ैश्वर्ययुक्त, धर्मज्ञों में श्रेष्ठ, जटाकलापमण्डित, प्रसन्नमुख कृष्ण द्वैपायन व्यास को प्रणाम करता हूं। उन धर्मज्ञ ऋषि (जाबाल को) तथा सुशील ब्राह्मणगण को प्रणाम करके सनातनधर्म का वर्णन करता हूं। आप सभी मुनिगण उसे सुनें। कश्यप वंश के ब्रह्मर्षि महामुनि जाबालि अपने शिष्य-उपशिष्य के साथ बदरिकाश्रम आये। उन्होंने वहां व्यासदेव का दर्शन करके उनको पुनः-पुनः प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने सविनीत भाव से विनयपूर्वक कृताञ्जलिवद्ध होकर उन व्यासदेव से पूछा।।२३-२९।।

जाबालिरुवाच

महर्षे के कलौ धर्माः किमाचाराश्च कीदृशाः।
वर्णानामाश्रमाणाञ्च किं कृत्वा मुच्यते भयात्॥३०॥
वक्ता ज्ञाता भवानेव कर्त्ता चासि प्रवर्त्तकः। पृच्छामि त्वां महावाहो वद मे शृण्वतः प्रभो॥३१॥

जाबालि कहते हैं—हे महर्षि! कलिकाल हेतु वर्णाश्रम धर्म क्या है, कलि हेतु आचार का रूप क्या है? किस कर्म द्वारा मानव भयरहित होगा? आप ही वक्ता, ज्ञाता, कर्त्ता तथा प्रवर्त्तयिता हैं। हे महाबाहो! हे प्रभो! मैं सुनूंगा! आप कहने की कृपा करें।।३०-३१।।

व्यास उवाच

धर्मे मतिर्भवतुः वः सततोत्थितानां सह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः।
अर्थाः स्त्रियश्च निपुणेरपि सेव्यमाना नैवाप्तभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम्॥३२॥
धर्मः सनातनः सर्व्वैः सेवनीयः सदा मुने। धर्म एव परो बन्धुः पिता माता पितामहः॥३३॥
धर्मो गुरुः सत्य एको धर्म एव परा गतिः। धर्म आत्मा क्रिया धर्मस्तीर्थानि धर्म एव हि॥३४॥
धर्मो धनं सर्व्वदेवो धर्म एव न संशयः। धर्मः सम्पद् विपद् धर्मराहित्यं व्यर्थजीवनम्॥३५॥
सदसत्कर्मणां द्रष्टा धर्म एव सनातनः। धर्मे मतिः परो लाभस्तस्य ह्यपचयोऽन्यथा॥३६॥
सा चातुरी चातुरी या धर्मरक्षाकरी भवेत्। सहस्त्रोपद्रवैर्युक्तो यो न धर्मं जहाति हि।
स धीर उच्यते सद्भि धर्महात्वात्महा मतः॥३७॥

व्यासदेव कहते हैं—आपको सतत् उद्योग द्वारा धर्मबुद्धि प्राप्त हो। जो परलोकगत होने वाले मनुष्य हैं, (अर्थात् परलोकगत उनको होना ही ध्रुवसत्य है) उनके लिये धर्म ही एकमात्र बन्धु है। कामिनी-कंचन के प्रति अत्यधिक निपुणता रखने पर भी वे स्थायी नहीं हैं। (उनके साथ पर विश्वास नहीं किया जा सकता। वे सभी क्षणभंगुर हैं)। हे मुनिवरगण! सनातन धर्म सबके लिये सेवनीय है। वहीं परमबन्धु है, वही पिता, माता तथा पितामह है। धर्म ही गुरु है, वही एकमात्र सत्य तथा धर्म ही परमगति है। धर्म ही आत्मा, धर्म ही क्रिया, धर्म ही तीर्थ, धर्म ही धन, धर्म ही देवता, सम्पत्ति है। धर्महीनता ही विपत्ति है। जिसे धर्म प्राप्त नहीं है, उसका जीवन ही व्यर्थ है। सनातन धर्म ही सदसत् कर्म को देखने वाला है। धर्मवृत्ति ही परमलाभ है। धर्मवृत्ति का अभाव ही अपचय है, महाहानि है। वही चातुरी वरणीय है, जिस चातुरी से धर्म रक्षा हो। हजारों विपरीत परिस्थिति (उपद्रव) में भी जो धर्मत्यागी नहीं है, उसे ही सत् लोग धीर कहते हैं। धर्मत्यागी तो अपनी आत्मा का हनन करने वाला है।।३२-३७।।

धर्मार्थे क्रियते भार्य्या धर्मार्थे क्रियते सुतः। धर्मार्थे क्रियते गेहं धर्मार्थे क्रियते धनम्।
धर्मार्थे क्रियते देहो धर्मार्थे सुस्थिरा मही॥३८॥
धर्मार्थे वर्षतीन्द्रोऽपि धर्मार्थे तपते रविः। धर्मार्थे वहते वायु धर्मार्थेऽग्निर्ज्ज्वलत्यसौ॥३९॥
धर्मार्थानि पुराणानि धार्मिकः पूज्यतेऽमरैः॥४०॥
अधार्मिकमुखं दृष्ट्वा पश्येत् सूर्य्यं सदा नरः॥४१॥

धार्मिको यच तत्तीर्थं स देशो निरुपद्रवः। नाधर्मे रमतां बुद्धिर्यतो धर्मस्ततो जयः॥४२॥
धर्मश्चतुष्पात् सम्पूर्णो वृषरूपधरश्चरन्। पाति लोकानिमान् मूर्त्तस्तस्मै धर्माय वै नमः॥४३॥

धर्म के ही लिये भार्या ग्रहण करें। पुत्र भी धर्मार्थ उत्पन्न करे। धर्म हेतु ही देह धारण करे। धर्म के प्रभाव से ही मनुष्य पृथिवी पर है। इन्द्र का त्रैलोक्य आधिपत्य, रवि द्वारा तापप्रदान, वायु का बहना, अग्नि का जलना, सभी धर्मफल है तथा धर्मार्थ हैं। देवगण भी धार्मिक का सत्कार करते हैं। यदि मनुष्य अधार्मिक का मुंह देखे, तब उसको सूर्यदर्शन द्वारा पापप्रक्षालन करना चाहिये। जहां धार्मिक स्थित है, वहीं तीर्थ है। वही देश उपद्रव रहित है। अधर्म में बुद्धि को न ले जाये। जहां धर्म है, वहीं जय है। सम्पूर्ण धर्म चतुष्पाद है। वह वृष रूप से लोकों में विचरता तथा विश्वरक्षण करता है। उस धर्म को प्रणाम।।३८-४३।।

सत्यं दया तथा शान्तिरहिंसा चेति कीर्त्तिताः। धर्मस्यावयवास्तात चत्वारः पूर्णतां गताः॥४४॥
सर्व्वप्रभेदैः सम्पूर्णा एते सत्ययुगे मताः। एतेषां ह्रसते पादस्त्रेतायां द्वापरे पुनः॥४५॥
द्वौ पादौ पाद एकश्च कलौ सोऽन्ते विनङ्क्ष्यति। तस्माद्धर्मे मतिः कार्य्या सुरासुरनरादिभिः॥४६॥
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। यथा स्वल्पमधर्मं हि जनयेत्तु महाभयम्॥४७॥

हे तात्! सत्य, दया, शान्ति, अहिंसा—ये धर्म के चतुष्पद हैं। सत्ययुग में नाना प्रकार से चारों पैर पूर्ण थे। त्रेता में एक पाद का ह्रास हो गया। द्वापर में पुनः धर्म के दो पाद का ह्रास हो गया। कलिकाल में मात्र एक पाद बच गया। कलि के शेष भाग में वह भी नहीं बचेगा। यदि धर्माचरण अल्पपरिमाण में भी किया जाये, वह भी वह अनुष्ठाता की महाभय से रक्षा कर देता है। इसके विपरीत स्वल्पमात्र अधर्म का आचरण महाभय का उत्पादन करता है। अतः देवता-दानव-मानवादि सभी धर्म-बुद्धि युक्त रहें।।४४-४७।।

एतत्पुरा ब्रह्मलोके ब्रह्मा लोकपितामहः। पृष्टः सनत्कुमाराय प्रोक्तवान् हितकृन्नृणाम्॥४८॥
तेनाहमुपदिष्टोऽस्मि तवावोचं विशेषतः। श्रोतुमिच्छसि जाबाले किमन्यद्धार्मिकोत्तम॥४९॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे व्यासजाबालिसंवादे प्रथमोऽध्यायः।।



पूर्वकाल में लोकहितैषी लोक पितामह से पूछे जाने पर उन्होंने ब्रह्मलोक में सनत्कुमार को यही उपदेश दिया था। मुझे यह उपदेश सनत्कुमार से प्राप्त हुआ है। उसीका आपसे वर्णन किया। हे धार्मिकोत्तम जाबाल! आप और क्या सुनना चाहते हैं?।।४८-४९।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।



द्वितीयोऽध्यायः

बृहद्धर्मपुराण कथारम्भ, धर्म महिमा

सूत उवाच

एवं श्रुत्वा स जाबालिः प्राह व्यासं मुनीश्वरम्। सत्यादेर्वद मे भेदान् धर्मावयवरूपिणः॥१॥

सूतजी कहते हैं—जाबालि ने यह वाक्य सुनकर मुनीश्वर वेदव्यास से विनयपूर्वक कहा—धर्म के अंग-सत्य, दया प्रभृति भेदों का वर्णन करें।।१।।

व्यास उवाच

अमिथ्यावचनं सत्यं स्वीकारप्रतिपालनम्। प्रियवाक्यं गुरोः सेवा दृढ़ञ्चैव व्रतं कृतम्॥२॥
आस्तिक्यं साधुसङ्गश्च पितुर्मातुः प्रियङ्करः। शुचित्वं त्रिविधञ्चैव ह्रीरसञ्चय एव च॥३॥
एवं द्वादशधा सत्यं दयां मे वदतः शृणु। परोपकारो दानञ्च सर्व्वदा स्मितभाषणम्॥४॥
विनयो न्यूनताभावस्वीकारः समतामतिः। षड्विधेयं दया प्रोक्ता शृणु शान्तिमथ मुने॥५॥
अनसूयाल्पसन्तोष इन्द्रियाणाञ्च संयमः। असङ्गमो मौनमेवं देवपूजाविधौ मतिः॥६॥
अकुतश्चिद्भयत्वञ्च गाम्भीर्य्यं स्थिरचित्तता। अरुक्षभावः सर्व्वत्र निस्पृहत्वं दृढ़ा मतिः॥७॥
विवर्ज्जनं ह्यकार्य्याणां समः पूजापमानयोः। श्लाघा परगुणेऽस्तेयं ब्रह्मचर्य्यं धृतिः क्षमा॥८॥
आतिथ्यञ्च जपो होमस्तीर्थसेवार्य्यसेवनम्। अमत्सरो बन्धमोक्षज्ञानं सन्न्यासभावना॥९॥
सहिष्णुता सुदुःखेषु अकार्पण्यममूर्खता। एवमादिगुणा विप्र शान्तित्वेन प्रकीर्त्तिताः॥१०॥

वेदव्यासजी कहते हैं—मिथ्या बातें न बोलना, जो स्वीकार किया गया (संकल्प लिया गया) उसका पालन, प्रिय बोलना, गुरुसेवा, व्रत में दृढ़ता, आस्तिकता, साधुसंग, माता-पिता से प्रेम, बाह्यशौच, आभ्यन्तर शौच[1], लज्जा तथा अकार्यण्य—ये द्वादश सत्य कहे गये हैं। अब दया का वर्णन किया जाता है। सुनें। परोपकार, देने की वृत्ति, सदा तनिक हास्य (प्रसन्नता) के साथ वाक्य प्रयोग, विनय, नम्रता तथा समदर्शिता—ये ६ दया के भेद हैं। हे मुनिवर! अब शान्ति का वर्णन सुनें। असूया का अभाव, अल में संतोष, इन्द्रिय संयम, निःसङ्गता, मौन, देवपूजन, नित्यकर्म प्रवृत्ति, अकुतोमयता, गंभीरता, स्थिर चित्तता, रुक्षता न होना, सर्वत्र निःस्पृहता, दृढ़ चित्तता, अकार्य न करना, मान-अपमान में समत्व ज्ञान, पराये गुण से न जलना, ब्रह्मचर्य, धैर्य, क्षमा, आतिथ्य, जप, होम, तीर्थसेवन, पूज्यपूजन, मात्सर्यहीनता, बन्ध-मोक्षतत्व का ज्ञान, सन्यासभाव, दुःख सहने की शक्ति, दीनता का अभाव तथा अमूर्खता। हे विप्र! इन गुणों का नाम है शान्ति।।२-१०।।

अहिंसात्वासनजयः परपीड़ाविवर्ज्जनम्। श्रद्धाचातिथिसेवा च शान्तरूपप्रदर्शनम्॥११॥
आत्मीयता च सर्व्वत्र आत्मबुद्धिः परात्मसु। इति नानाविधाः प्रोक्ता अहिंसेति महामुने॥१२॥

---

१. मूल में 'त्रिविध शौच' लिखा है। उसका तात्पर्य है कायिक-वाचिक-मानसिक शौच। ये भी एक प्रकार के शौच हैं।

अहिंसा, इन्द्रियजय, परपीड़ा से विमुखता, श्रद्धा, अतिथि सेवा, शान्तभाव दिखलाना, सर्वत्र आत्मीयता, अपर में भी आत्मबुद्धि, ये अहिंसा के नाना प्रकार हैं।।११-१२।।

जाबालिरुवाच

गुरून् वद महाभाग वेदव्यास जगद्गुरो। गुरूणां तारतम्यञ्च कस्मात् किं फलमुच्यते॥१३॥

जाबालि कहते हैं—हे जगद्गुरो! महाभाग, व्यासदेव! गुरुगण, उनका तारतम्य तथा कैसे गुरु का क्या फल है, वह कहें।।१३।।

व्यास उवाच

माता पिता गुरुः श्रेयान् ज्येष्ठभ्राता पितामहः। श्वशुरो मातुलश्चैव तथा मातामहः स्मृतः॥१४॥
पितु र्ज्येष्ठः कनिष्ठश्च भ्राता ज्येष्ठा निजस्वसा।
पितुःस्वसा जनन्याश्च स्वसा गुरुजनाः स्मृताः॥१५॥
पत्न्यः पितामहादीनां तथैव गुरवः स्मृताः। एतेषु हि पिता श्रेयान् गुरुरेव महागुरुः॥१६॥
पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व्वदेवताः॥१७॥
पिता यस्य क्वचिद्रुष्टो न तस्य कस्यचिद्गतिः। जपो दानं तपो होमः स्नानं तीर्थक्रियाविधिः।
वृथैव तस्य सर्व्वाणि कर्म्माण्यन्यानि कानिचित्॥१८॥
करोति सर्व्वदेवेशं पितरं चानुतप्य यः। अनुतापः पितुस्तीव्रं विषं दहति यं सुतम्।
जपादि विफलं तत्र दग्धक्षित्युप्तवीजवत्॥१९॥

व्यासदेव कहते हैं—माता-पिता-आचार्य-गुरु-बड़ा भाई-पितामह-भूस्वामी-मामा-नाना-पिता के बड़े भाई-पिता के छोटे भाई, अपनी बड़ी बहन-पितृस्वसा-मातृस्वसा को गुरुजन कहा गया है। इनमें महागुरु पिता ही सर्वोत्तम गुरु है। पिता ही धर्म-स्वर्ग-परमतप है। पिता की प्रसन्नता से सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं। जिसके पिता उस पर रुष्ट हैं, उसकी गति कहीं नहीं है। जप-दान-तप-होम-स्नान-तीर्थ सेवा भी उसके लिए विफल है। सभी देवताओं में श्रेष्ठरूप पिता की उपासना बिना किये कोई भी कार्य किया जाना, वह पिता के अनुताप के कारण ऐसा तीव्र विष हो जाता है, जो पुत्र को ही दग्धीभूत कर देता है। उसके जपादि भी उसी प्रकार से विफल हैं, जिस प्रकार दग्ध खेत में बीज बोना।।१४-१९।।

पित्रर्थे पुण्यकर्म्माणि कुर्य्यात् सर्व्वाणि सत्सुतः। तेनाननुमतोऽप्येवं कुर्व्वन्नेवावसीदति॥२०॥
यत्नात्तु पितरं यस्तु कियत्पुण्यञ्च कारयेत्। स तत्पुण्यफलं कोटिगुणमाप्नोत्यसंशयम्॥२१॥
शृणु वक्ष्ये पितुः स्तोत्रं विष्णवे ब्रह्मणोदितम्। नाभिपद्मोद्भवो येन तुष्टाव पितरं स तम्॥२२॥

सत् पुत्र का कर्त्तव्य है कि वह पिता के लिये पुण्य करे। पिता की आज्ञा लेकर धर्मकार्य करने से व्यक्ति अवसन्न नहीं होता, जो व्यक्ति यत्नपूर्वक पिता से सत्कार्य सम्पन्न कराता है। वह पुण्य कोटिगुणित होकर निश्चित रूप से फलित हो जाता है। विष्णु की नाभि से उत्पन्न ब्रह्मा ने पिता विष्णु का जो स्तव किया था उसे सुनिये।।२०-२२।।

ब्रह्मोवाच

ॐ नमः पित्रे जन्मदात्रे सर्व्वदेवमयाय च। सुखदाय प्रसन्नाय सुप्रीताय महात्मने॥२३॥

सर्व्वयज्ञस्वरूपाय स्वर्गाय परमेष्ठिने। सर्व्वतीर्थावलोकाय करुणासागराय च॥२४॥
नमः सदाशुतोषाय शिवरूपाय ते नमः। सदापराधक्षमिणे सुखाय सुखदाय च॥२५॥
दुर्लभं मानुषमिदं येन लब्धं मया वपुः। सम्भावनीयं धर्म्मार्थे तस्मै पित्रे नमोनमः॥२६॥
तीर्थस्नान-तपोहोम-जपादि यस्य दर्शनम्। महागुरोश्च गुरवे तस्मै पित्रे नमोनमः॥२७॥
यस्य प्रणामस्तवनात् कोटिशः पितृतर्पणम्। अश्वमेधशतैस्तुल्यं तस्मै पित्रे नमोनमः॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—जो सर्वज्ञरूप हैं—जो स्वर्ग, परमेष्ठि, सर्वतीर्थदर्शन के फलरूप प्रभु हैं, जो समस्त सुख प्रदाता हैं, उन सर्वदेवमय, जन्मदाता करुणासिन्धु महात्मा पिता को प्रणाम। जो प्रसन्न होने पर सभी अपराधों को क्षमा करते हैं, जो तत्काल सुख प्रदाता हैं, जो सुख तथा शिवरूपी हैं, उन पिता को प्रणाम! मैंने जिनकी कृपा से धर्मकार्योपयोगी देह लाभ किया, उन पिता को प्रणाम! जिनके दर्शन से तीर्थस्नान, तप, होम तथा जपादि फल मिलता है, महागुरु के गुरु उन पिता को बारम्बार प्रणाम! जिनको प्रणाम करने तथा जिनकी स्तुति करने से कोटि-कोटि लोक के पितृगण तृप्त हो जाते हैं तथा जो सैंकड़ों अश्वमेध के समान हैं, ऐसे पिता को बारम्बार प्रणाम।।२३-२८।।

इदं स्तोत्रं पितुः पुण्यं यः पठेत् प्रयतो नरः। प्रत्यहं प्रातरुत्थाय पितृश्राद्धदिनेऽपि च॥२९॥

स्वजन्मदिवसे साक्षात् पितुरग्रे स्थितोऽपि वा।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित् सर्व्वज्ञतादिवाञ्छितम्॥३०॥
नानापकर्म कृत्वापि यः स्तौति पितरं सुतः।
स ध्रुवं प्रविधायैव प्रायश्चित्तं सुखी भवेत्।
पितुः प्रीतिकरो नित्यं सर्वकर्म्माण्यथार्हति॥३१॥३२॥

जो मानव पवित्र होकर इस पुण्य पितृस्तोत्र को नित्य प्रातः उठकर पढ़ता है तथा पितृश्राद्ध के दिन, अपने जन्म के दिन अथवा पिता के सामने खड़ा होकर पढ़ता है, सर्वज्ञत्वादिं वांछित कोई भी इच्छित विषय उसके लिये दुर्लभ नहीं है। जो पुत्र नाना अकार्य करके भी इस प्रकार इस पितृस्तव का पाठ करता है, वह उसी प्रकार सुखी होता है, मानो उसने प्रायश्चित सम्पन्न कर लिया। जो पुत्र पिता के प्रिय का सम्पादन करता है, वही सर्वकर्म का अधिकारी है।।२९-३२।।

व्यास उवाच

पितुरप्यधिका माता गर्भधारणपोषणात्। अतो हि त्रिषु लोकेषु नास्ति मातृसमो गुरुः॥३३॥

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति विष्णुसमः प्रभुः।
नास्ति शम्भुसमः पूज्यो नास्ति मातृसमो गुरुः॥३४॥

नास्ति चैकादशीतुल्यं व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम्। तपो नानशनात् तुल्यं नास्ति मातृसमो गुरुः॥३५॥

नास्ति भार्य्यासमं मित्रं नास्ति पुत्रसमः प्रियः।
नास्ति भग्नीसमा मान्या नास्ति मातृसमो गुरुः॥३६॥

न जामातृसमं पात्रं न दानं कन्यया समम्। न भ्रातृसदृशो बन्धुर्नच मातृसमो गुरुः॥३७॥

देशो गङ्गान्तिकः श्रेष्ठो दलेषु तुलसीदलम्। वर्णेषु ब्राह्मणः श्रेष्ठो गुरुर्माता गुरुष्वपि॥३८॥

व्यासदेव कहते हैं—गर्भधारण-पोषण माता करती हैं। वे पिता की अपेक्षा श्रेष्ठ गुरु हैं। अतः तीनों लोक में माता के समान कोई गुरु नहीं है। गंगा के समान तीर्थ नहीं है, विष्णु के समान प्रभु नहीं है, पिता के समान पूज्य कोई नहीं है तथा माता के समान गुरु कोई नहीं है। एकादशी के समान त्रिलोकप्रसिद्ध कोई व्रत नहीं है। उपवास ऐसी कोई तपस्या नहीं है। माता के समान गुरु नहीं है। भार्या ऐसा मित्र कोई नहीं है। पुत्र ऐसा कोई प्रिय नहीं है। बड़ी बहन ऐसा मान्य कोई नहीं है। तथा माता के समान कोई गुरु नहीं है। जामाता के समान कोई दानपात्र नहीं है। कन्यादान के समान कोई दान नहीं है। भ्राता के समान कोई बन्धु नहीं है। देशों में गंगा के पास का देश श्रेष्ठ है। पत्तों में तुलसीपत्र, वर्ण में ब्राह्मण तथा गुरुगण में माता श्रेष्ठ हैं।।३३-३८।।

पुरुषः पुत्ररूपेण भार्य्यामाश्रित्य जायते। पूर्वभावाश्रया माता तेन सैव गुरुः परः॥३९॥

मातरं पितरञ्चोभौ दृष्ट्वा पुत्रस्तु धर्मवित्। प्रणम्य मातरं पश्चात् प्रणमेत् पितरं गुरुम्॥४०॥

माता धरित्री जननी दयार्द्रहृदया शिवा। देवी भूरवनिः श्रेष्ठा निर्दोषा सर्वदुःखहा॥४१॥

आराधनीया परमा दया शान्तिः क्षमा धृतिः।
स्वाहा स्वधा च गौरी च पद्मा च विजया जया॥४२॥

दुःखहन्त्रीति नामानि मातुरेवैकविंशतिम्। शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्त्यः सर्वदुःखाद् विमुच्यते॥४३॥

व्यक्ति भार्या का आश्रय लेकर स्वयं पुत्ररूपेण उत्पन्न होता है। माता ही पुरुष के पूर्वभावों की आश्रयभूता होने के कारण सर्वोत्तम गुरु है। जब पुत्र माता-पिता को साथ देखें, तब पहले माता को प्रणाम करके तब पिता को प्रणाम करें। माता ही धरती, जननी, दयार्द्रहृदया, शिवा, देवी, त्रिभुवन में श्रेष्ठरूपा, निर्दोष, सर्वदुःखनाशिनी, परमाराध्या, दया, शान्ति, क्षमा, धृति, स्वाहा, स्वधा, गौरी, पद्मा, विजया तथा दुःखहन्त्री हैं। ये उनके २१ नाम हैं। इन २१ नाम को सुनने से मनुष्य सर्व दुःख से मुक्त हो जाता है।।३९-४३।।

दुःखैर्महद्भिर्दूनोऽपि दृष्ट्वा मातरमीश्वरीम्। यमानन्दं लभेन्मर्त्त्यः स किं वाचोपपद्यते॥४४॥

इति ते कथितं विप्र मातृस्तोत्रं महागुणम्। पराशरमुखात् पूर्वमश्रौषं मातृसंस्तुतम्॥४५॥

सेवित्वा पितरौ कश्चिद् व्याधः परमधर्मवित्। लेभे सर्वज्ञतां या तु साध्यते न तपस्विभिः॥४६॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन भक्तिः कार्य्या तु मातरि।
पितर्य्यपीति चोक्तं वै पित्रा शक्तिसुतेन मे॥४७॥

।इति बृहद्धर्मपुराणे पितृमातृभक्तिः द्वितीयोऽध्यायः।।



मनुष्य महादुःखकातर होकर भी ईश्वरी जननी को देखकर जो आनन्दलाभ करता है, क्या उसे वाणी से कह सकना संभव है? हे विप्र! मैंने आप लोगों से यह महाफलप्रद मातृस्तोत्र कहा है। यह मातृस्तोत्र मैंने अपने पिता पराशर से सुना था। किसी धर्मवेत्ता व्याध ने माता-पिता की सेवा द्वारा सर्वज्ञत्व लाभ किया था। अतएव माता-पिता के प्रति सर्वयत्नपूर्वक भक्ति करना कर्त्तव्य है। यह मेरे पिता पराशर ने कहा था।।४४-४७।।

द्वितीय अध्याय समाप्त



तृतीयोऽध्यायः

पितृ-मातृ भक्ति वर्णन

जाबालिरुवाच

कोऽसौ व्याधो धर्मवेत्ता पित्रोः संसेवकः परः। का वा सर्वज्ञता तस्य विश्रुतेति मुनीश्वर॥१॥
वद मे शृण्वतो ब्रह्मन् श्रोतुं कौतूहलं मम। गोपनीयं भवति चेत् तथापि वद मे प्रभो॥२॥
प्रपन्नाय च भक्ताय शुश्रूषाभिरताय च। अनापृष्टश्च गोप्यश्च ब्रूयुः सानुग्रहाः प्रभो॥३॥

जाबालि कहते हैं—हे प्रभो! मुनीश्वर! वह उत्तम धर्मवेत्ता मातृपितृभक्त धर्मव्याध कौन था? उसकी सर्वज्ञता कैसे प्रसिद्ध हो गई? हे ब्रह्मन्! मैं यह सुनना चाहता हूं। कृपया कहें। मुझे यह श्रवण करने का कुतूहल हो रहा है। यदि यह गोपनीय हो, तथापि मुझे अवश्य बतायें। हे प्रभो! शरणागत, भक्त, सुश्रूषा में लगे शिष्य से गुरुगण अतिजिज्ञासित प्रयोज्य विषय अथवा गोपनीय बातें भी कृपापूर्वक कह देते हैं।।१-३।।

व्यास उवाच

अत्र तूदाहराम्येनमितिहासं पुरातनम्। पिता पराशरोऽयं मे प्रोक्तवान् पुण्यकीर्त्तनम्॥४॥

व्यास कहते हैं—मैं एक पुरातन आख्यान इस सम्बन्ध में कहता हूं। यह पावन इतिहास मेरे पिता पराशर ने मुझसे कहा था।।४।।

पराशर उवाच

तपो-देव इति ख्यातो द्विजः कश्चिद् गृही कृती। कृतवोधः सुतस्तस्य ब्राह्मणस्य सुतेजसः॥५॥
स ब्राह्मणसुतस्तत्र तपस्यासक्तमानसः। तप एव ब्राह्मणनां धनमित्येव निश्चयी॥६॥
नाभिनन्द्यैव पितरौ गन्तुमैच्छद् दृढाशयः। तं गन्तुमनसं दृष्ट्वा पुत्रं विप्रस्तदावदत्॥७॥

पराशर कहते हैं—तपोदेव नामक एक कर्मी ब्राह्मण थे। उन तेजवान् ब्राह्मण का पुत्र था कृतबोध। कृतबोध का चित्त तपस्या हेतु अभिनिविष्ट था। कृतबोध का निर्णय था कि तपः ही ब्राह्मण का धन है। माता-पिता की अनुमति लिये बिना स्थिरसंकल्प कृतबोध ने तपस्यार्थ जाने का मन बनाया। तब ब्राह्मण तपोदेव तपस्यार्थ गमनोद्यत पुत्र को जाने के लिये दृढ़निश्चय जानकर कहने लगे।।५-७।।

तपोदेव उवाच

किं तात यासि तपसे मयि वृद्धे गृहे स्थिते। त्वं तु स्वल्पवयाः प्रौढ़ा भार्य्यापि तव वेश्मनि॥८॥
पुत्रान् जनय गार्हस्थ्यं कुरु पूजय देवताः। पितृन् यजातिथीन् सेव कृतविद्याश्च शीलय॥९॥
इत्थं ममाज्ञया विप्र गृहधर्मान् महागुणान्। निरूपितांश्च मुनिभिश्चरितांश्च महात्मभिः॥१०॥
चरित्वा प्राप्नुहि परं शतयज्ञफलं गृहे। पश्चात् सर्वं सुते न्यस्य तपोऽहमिव धास्यसि॥११॥
ममापि पूर्वपितरश्चक्रुरेवं हि सद्विदः। मा यापय वृथा कालं पित्राज्ञातिक्रमादिभिः॥१२॥

तपोदेव कहते हैं—मैं वृद्ध हूं तथा घर पर स्थित हूं। ऐसी स्थिति में तुम तपस्यार्थ बाहर क्यों जा रहे हो? तुम्हारी अपेक्षा अल्प वय वाली तुम्हारी पत्नी घर में है। तुम पुत्र उत्पन्न करके गृहस्थधर्म का पालन करो। देवपूजा करो। अतिथि सत्कार करो तथा अभ्यस्त विद्याओं का अनुशीलन करो। देवपूजा, पिता की सेवा तथा अतिथिगण का सत्कार करो। हे वत्स! मुनिगण द्वारा अनुमोदित तथा महात्मागण द्वारा आराधित अमित फलदायक गृहस्थधर्म का मेरे आदेश से उत्तम प्रकार से पालन करते हुए गृह में रहना ही तुमको सैकड़ों यज्ञ का फल प्रदान करेगा। तदनन्तर सत्पुत्र उत्पन्न होने पर जब वह बड़ा हो जाये तब उस पर समस्त गृहभार छोड़कर तपस्या हेतु जाना चाहिये। मेरे उत्तम ज्ञानी पूर्वपुरुषों ने यही किया था। पितृ आज्ञा की अवहेलना करके वृथा समय व्यतीत न करो।।८-१२।।

पराशर उवाच

एवमुक्तोऽपि बहुशः कृतवोधो महात्मना। अनादृत्य पितुर्वाक्यं जगाम तपसे मुनिः॥१३॥
ततः स देवपीठेषु हविष्यान्नरतोऽतपत्। न स्थैर्य्यमाप्तवांस्तत्र भृशं भीतो विभीषया॥१४॥
ततो जगाम यत्नेन गङ्गातटमनुत्तमम्। यत्र कोटिगुणं पुण्यं पापञ्च विततं भवेत्॥१५॥

पराशर कहते हैं—महात्मा तपोदेव द्वारा कई बार कहने पर भी मुनि कृतबोध पितृवाक्य की अवहेलना करके तपस्यार्थ चले गये। वहां कृतबोध हविष्यान्न भक्षण करते एक देवपीठ के निकट तपःश्चरण करने लगे। तथापि उनको तपस्या में स्थिरता नहीं मिली। अपितु वहां उनको अत्यन्त विभीषिका का अनुभव होने लगा। तब कृतबोध यत्नतः परम उत्तम गंगातट पर आये। वहां उनका विचार था कि यहां (शास्त्रवचनानुसार) जो भी पाप किंवा पुण्य कर्म किया जायेगा, उसका कोटिगुणित परिणाम प्राप्त होगा।।१३-१५।।

तत्र स्नानञ्च पूजाञ्च जपदानादिकं चरन्। दृढ़ीकृत्य मनस्तस्थौ नाभिनन्दति कोऽपि तम्॥१६॥
तत्राप्युद्वेजितो लोकैर्गङ्गानुचररूपिभिः। सामुद्रं प्रययौ तीरं यत्र नास्ति नृणां गतिः॥१७॥
तत्र तिष्ठंस्तपस्तेपे निश्चलाङ्गस्त्वभोजनः। ययुर्द्वादशवर्षाणि पुत्र तस्य तपस्यतः॥१८॥
सर्वे वनचराः पक्षिमृगा विश्वासमागताः। ततः काले तु कुत्रापि देहार्द्धं तस्य चावृणोत्॥१९॥

वे वहां स्नान-पूजा-जप-दानादि कर्म से मन को दृढ़ करके स्थित हो गये, तथापि आश्चर्य! किसी ने भी उनका अभिनन्दन नहीं किया। प्रत्युत गंगा के अनुचर रूप लोगों ने उनको वहां व्यतिव्यस्त कर दिया। तब कृतबोध ने मनुष्यों की गति-विधि से रहित समुद्र तीर पर जाना निश्चित किया। वे वहां पहुंच कर अचल रूप से अनाहारी रहकर तपःश्चरणरत हो गये। हे पुत्र द्वैपायन! कृतबोध को तप करते-करते १२ वर्ष व्यतीत हो गये। वहां के सभी जलचर प्राणी तथा पशु-पक्षीगण उनका विश्वास करने लगे। (क्योंकि किसी के प्रति वे हिंसक नहीं थे)। कालान्तर में कृतबोध के चारों ओर उनकी देह पर दीमकों ने अपनी बांबी बना लिया। इससे उनकी आधी देह ढक गयी।।१६-१९।।

वल्मीकपिण्डो विपुलस्तत्र गर्त्तेषु मूषिकाः। सर्पाद्याः विदधुर्वासं ययुस्ते जातपुत्रकाः॥२०॥
वर्षासु जलवर्षेण वल्मीको गलितो गतः। ततश्च पक्षिणस्तस्य शीर्ष्णि कैशैः समाकुले।
नीड़ं चक्रुस्तेऽपि जाता जनितैर्बहुशावकैः॥२१॥
तदृष्ट्वा स मुनिसुतः स्वं मेने सिद्धतापसम्। स तपोमत्सरो भूतः प्रचचार वने वने॥२२॥
कदाचिज्जलधेस्तोये स्नातुं गच्छत एव हि। तस्य गात्रे वकः खेन गच्छन् विष्ठामथासृजत्॥२३॥

तं तथाकारिणं विप्रः पक्षिणं क्रोधचक्षुषा। तथैव भस्मसाच्चक्रे वभूव वृद्धमत्सरः॥२४॥

उस वाल्मीकिस्तूप (बांबी) में जो गर्त्त थे उनमें मूषक, सर्प आदि निवास करने लगे। वे अंडे-बच्चे देने लगे। तदनन्तर वर्षा की प्रबल धारा में उनके देह की मिट्टी की बांबी गलकर गिर पड़ी। उधर पक्षियों ने कृतबोध के शिरस्थ जटाकलाप में घोसला बनाया। वहां उन्होंने अनेक बच्चे भी उत्पन्न किये थे। यह सब देखकर मुनि स्वयं को सिद्ध तपस्वी मानने लगे। तब वे तप के घमण्ड में भरकर नाना वनों में विचरण करने लगे। एक बार वे समुद्रजल में स्नानार्थ जा रहे थे। तभी एक उड़ते हुए बगुले ने उनके ऊपर बीट कर दिया, तब कृतबोध ने ऐसे कार्य करने वाले बगुले को क्रोध दृष्टि से देखकर भस्म कर दिया। इससे उनका गर्व और भी बढ़ गया।।२०-२४।।

स्नात्वा सारस्वते तोये वासं गन्तुं मनोदधे। मध्याह्नकाले विप्रस्य कस्यचित्तु गृहं ययौ॥२५॥

अतिथिर्भवितुं तस्य गृहस्थस्याङ्गने स्थितः। ददर्श ब्राह्मणं गेहे सेवमानं पितुः पदे।

खोरौ निधाय निद्रालोर्नैव किञ्चित् स चाब्रवीत्॥२६॥

एवं वृत्ते मुहूर्त्तार्द्धेऽतिथिर्ब्राह्मणमुक्तवान्। प्रेक्षमाणश्च सक्रोधचक्षुषा भस्मकारिणा॥२७॥

अतिथिरुवाच

अहो ब्राह्मणदायाद चारित्रं किमिदं तव। अभ्यागतं ते तिष्ठन्तं प्राङ्गने मां न पश्यसि।

धर्मः किं ते गृहे नास्ति अतिथिर्येन सेव्यते॥२८॥

अतिथिर्यस्य भवनान्निराशो याति सर्वथा। सर्वपुण्यपरित्यक्तो भजेत् पापानि स क्षणात्॥२९॥

तत्पश्चात् उन्होंने सरस्वती के जल में स्नान करके गृहगमन का निश्चय किया। मार्ग में कृतबोध मध्यान्ह काल में एक ब्राह्मण के गृह में अतिथि रूप से पहुंचे। वहां देखा एक ब्राह्मण अपनी गोद में अपने निद्रित पिता के पैरों को रखकर पादसेवा कर रहा है। उसने कृतबोध को अतिथि रूप में आया देखकर भी कुछ नहीं कहा। इस प्रकार आधा मुहूर्त्त व्यतीत हो जाने पर अतिथि कृतबोध ने उस ब्राह्मण के प्रति अपनी बगुला को भस्म कर देने वाली दृष्टिमुद्रा से देखते हुए क्रोध से कहा—"हे ब्राह्मणपुत्र! यह तुम्हारा कैसा व्यवहार है? देखते नहीं, मैं अतिथि तुम्हारे प्रांगण में खड़ा हूं। क्या तुम्हारे गृह की यह परम्परा नहीं है कि अतिथि सेवा हो? जिसके गृह से अतिथि निराश लौट जाता है। वह गृहवासी तत्क्षण सर्वपुण्यविहीन होकर नाना पापों का भागी हो जाता है।।२५-२९।।

अतिथिर्धर्मरूपो हि गृहस्थानां गृहे गृहे। जिज्ञासमानो गार्हस्थ्यधर्मांस्तु निरपेक्षकः॥३०॥

चरते नन्विदं नैव श्रुतं ते गृहिपुत्रक। गृहं दृष्ट्वा गृहस्थानामागच्छत्यतिथिः खलु।

तत्र चेन्नार्चितस्तर्हि वनं तत् श्वपचालयः॥३१॥

यथायोग्यं तु सेवेत वाचा मधुरया ततः। नोचेत् पचेत नरके क्लृप्ते ब्राह्मणवालक॥३२॥

चाण्डालं ब्राह्मणं वापि यो नार्चयति चातिथिम्। आत्मसम्भावनो मूर्खः प्रत्युपकारचिन्तकः।

न मुखं तस्य पश्यन्ति नरके पतिता अपि॥३३॥

त्वं तु मे वचनेनापि नातिथ्यं विहितं कियत्। यामि त्वामभिशप्यैव पश्य मे ब्राह्मणं वलम्॥३४॥

धर्मदेव ही घर-घर में यह जानने के लिये अतिथिरूपेण गृहस्थों के गृहों में निरपेक्षभाव से विचरण करते हैं

कि कौन गृहस्थधर्म का किस प्रकार से पालन कर रहा है। हे गृहस्थ पुत्र! क्या तुमने यह नहीं सुना? अतिथि गृहस्थ का गृह देखकर ही आता है। जहां अतिथि की सेवा नहीं की जाती, वह गृह कदापि गृह नहीं है। वह तो चाण्डाल जाति का अरण्य निवास है। हे ब्राह्मण बालक! अतिथि को यथायोग्य सेवा से तुष्ट करना तथा मधुर वाक्य से उसे प्रसन्न करना कर्त्तव्य होना चाहिये, अन्यथा व्यक्ति नरकगामी होता है। जो प्रत्युपकार लिप्सु, आत्माभिमानी मूर्ख अतिथि का सम्यक् सत्कार नहीं करता, भले ही वह चाण्डाल हो अथवा ब्राह्मण ही क्यों न हो, नरक में पड़े व्यक्ति भी ऐसे व्यक्ति का मुख नहीं देखना उचित मानते। तथापि तुमने तो वाणी द्वारा भी तनिक अतिथ्य नहीं किया। अतः मैं तुमको शाप देकर जाता हूं। मेरे ब्रह्मबल को देखो।।३०-३४।।

ब्राह्मण उवाच

अतिथे किं मयि भवान् क्षिपति क्रोधदर्शनम्। अतिथिर्द्धर्मरूपो वै यस्त्वं चरसि भूतले॥३५॥
अतिथित्वं गृहित्वञ्च सम्बन्धोऽयमपेक्षितः। अन्यथा वनवृक्षस्य किं नाभूदतिथिर्भवान्॥३६॥
अहं पित्रा पराधीनः पित्राज्ञानुचरः सदा। यत् करोमि धनोपायं तत् सर्वं पितुरेव मे॥३७॥
भार्य्या पुत्रश्च भृत्यश्च न स्वतन्त्राः कदाचन। सदा स्वात्म्यर्थकर्माणो यस्यैते तस्य तद्धनम्॥३८॥

ब्राह्मण कहता है—हे अतिथि! आप मेरी ओर क्रुद्ध दृष्टि से क्यों देख रहे हैं? आप अतिथि हैं। अतः भूतल पर धर्मरूपेण विचरण कर रहे हैं। अतिथित्व तथा गृहित्व (गृहस्थ) का आपस में एक दूसरे से सम्बन्ध है। यह सापेक्ष सम्बन्ध है। अन्यथा आप स्वर्ण के बने अथवा धनवर्षा करने वालें अतिथि क्यों न हो? (अर्थात् अतिथि तथा गृहस्थ ये दोनों सम्बन्ध एक दूसरे पर आधारित हैं अतः आप चाहे जैसे अतिथि क्यों न हों? मेरे लिये पिता सर्वोपरि हैं।) मैं पिता के अधीन हूं। मैं सदा पितृआज्ञा का पालनकर्त्ता हूं। मैं जो धनोपार्जन करता हूं, वह समस्त मेरे पिता का है। भार्या, पुत्र तथा भृत्य कभी भी स्वतंत्र नहीं है। इनका सभी कार्य स्वामी के फल हेतु ही है। अतः भार्या, पुत्र, भृत्य जिसके हैं, उनका उपार्जित धन भी क्रमशः पति-पिता तथा स्वामी का ही है।।३५-३८।।

मत्पितुर्ह्यतिथिस्त्वं वै निद्राणश्च पिता मम। नाहं गृही नातिथिस्त्वं निद्राणश्च पिता गृही॥३९॥
एतस्य निद्राभङ्गो हि न मे धर्मः सतां मतः। अपिचेह गृहस्थस्य पुत्रो भार्य्या च वेश्मनि॥४०॥
गृहानुपस्थिते चास्मिन् किं नु धर्मं न रक्षति।
सुशीलो यद्-गृहे पुत्रः स्त्री च शीलान्विता यदि॥४१॥
तदा तस्य गृहं पूर्णं धर्मेण सुखदेन हि। भार्य्यायां तनये वापि न्यस्य धर्मगृहं पुमान्॥४२॥
विज्वरश्चरति ह्येवं प्राहुर्धर्मनिरूपकाः। सत्यमेवं किन्तु भवान्नातिथिः किल केवलम्॥४३॥
विहगं भस्मसात् कृत्वा मात्सर्य्येण चरस्यपि। तस्मान्नाहं वकः पक्षी पित्रोः सेवावृतो ह्यहम्॥४४॥
त्वमपि ब्राह्मणो भुङ्क्षे दत्से वत्से स्वमेव हि। किमप्राप्य परस्मात्तु क्रुध्य शान्तिं समाचर॥४५॥
गृहेषु गृहिणां स्वान्नवस्त्रादि नेतुमाव्रजन्। स्वयमेवातिथिस्तचादातान्यस्वापहृद गृही॥४६॥
तस्माद् गृहिण एवेह दण्डयोग्यत्वमिष्यते। अतिथिः केन दूयेत तस्माच्छान्तिं समाचर॥४७॥

इस नियम से आप मेरे अतिथि नहीं हैं (क्योंकि मैं स्वतंत्र नहीं हूं), आप मेरे पिता के अतिथि हैं। अथच

पिता निद्रित हैं। न तो मैं गृहस्थ हूं, न आप मेरे अतिथि ही हैं। मेरे पिता अवश्य गृहस्थ (गृहस्वामी) हैं, तथापि निद्रागत हैं। पिता की निद्रा को भंग करना मेरे लिये सज्जनाचरित धर्म नहीं है। यदि गृहस्वामी गृह में नहीं है तब गृहस्वामी के गृह में भार्या-पुत्र जो भी हो, वे क्या धर्मरक्षण नहीं करते? जिसके गृह में सुशीला पुत्र तथा सुशीला पत्नी है, उसका गृह सुखप्रदधर्म से पूर्ण है। व्यक्ति अपनी पत्नी तथा पुत्री पर गृहधर्म रक्षण का भार देकर निश्चिन्त रूप से विचरण करे। यही धर्मशास्त्र प्रवक्तागण का कथन है। यह सब वाक्य सत्य हैं। तथापि आप वास्तव में अतिथि नहीं हैं। आप एक निरीह पक्षी को दग्ध करके केवल अहंकार में विचरण कर रहे हैं। मैं वह बकपक्षी नहीं हूं। मैं माता-पिता का सेवक हूं। आप ब्राह्मण हैं। भोजन, दान परिधान आपको भी आवश्यक है। दूसरे से भोजनादि न पाकर क्रोध क्यों करते हैं? आप शान्त हो जायें। आप अतिथि हैं। आप गृहस्थों के यहां अपने अन्न-वस्त्र ग्रहण करने के लिये जाते हैं। गृही दान न देने से परस्वापहारी कहलाता है। ऐसा गृही दण्ड योग्य है। अतिथि को कौन पीड़ित कर सकता है? अतः शान्ति धारण करें।।३९-४७।।

अतिथिरुवाच

कुतस्तवेदृशं ज्ञानं जानीषे यत् परोक्षकम्। भस्मीकृतो मया क्रौञ्चो मात्सर्य्यञ्चाश्रितं ततः।।४८।।
क्लेशयित्वा मया देहं यन्न ज्ञानमुपार्ज्जितम्। तत्त्वमेतेन वयसा कुतः समुदपादयः।।४९।।
यस्तु क्रौञ्चो मया भस्मीकृतः कः स यदुच्यताम्।
केन त्वत्सदृशं ज्ञानं प्राप्नुयां तन्निदिश्यताम्।
त्वं मे गुरुरभूः स्वल्पवया अपि मतिप्रदः।।५०।।

अतिथि कृतबोध कहते हैं—आपने यह ज्ञान कहां से प्राप्त किया? मैंने बगुले को दग्ध किया तथा उससे मुझे अहंकार हो गया, इस परोक्ष बात को आपने कैसे ज्ञात कर लिया? मैं देह को कष्ट देकर जो ज्ञान उपार्जित नहीं कर सका, आपने इसी अल्पायु में उसे अर्जित कर लिया। मैंने जो बगुले को भस्म किया। यह कौन कह सकता है? मैं किस प्रकार से आपकी तरह ज्ञानोपार्जन कर सकूं। यह उपदेश प्रदान करें। आप मुझसे अल्प आयु वाले हैं, तथापि आपको ज्ञानप्रदाता गुरु मानता हूं।।४८-५०।।

पराशर उवाच

एवमुक्तः सोऽतिथिना त्यक्तमत्सरचेतसा। तव विस्मययुक्तेन द्विजस्तं द्विजमब्रवीत्।।५१।।

पराशर कहते हैं—उन अतिथि के विस्मयाभिभूत तथा दर्परहित होकर यह कहने पर तब वे ब्राह्मण उनसे कहते हैं।।५१।।

ब्राह्मण उवाच

याहि वाराणसीं विप्र तत्र कश्चिद् वसत्युत। व्याधः साधुर्धर्मशीलस्तुलाधार इति श्रुतः।।५२।।
स ते निःसंशयं सर्वं कथयिष्यति धार्मिकः। दृष्ट्वैव चरितं तस्य तव ज्ञानं भविष्यति।।५३।।
पुरा जाबालिनाम्ने स ददौ ज्ञानं द्विजातये। तन्निदर्शनजं धर्मं कियदेतत् चराम्यहम्।।५४।।
इह क्षणं चोपविश पिता मे प्रतिबुध्यतु। एतेन पूजितस्तत्र यास्यसि ज्ञानवृद्धये।।५५।।

ब्राह्मण कहते हैं—हे विप्र! आप वाराणसी जायें। वहां तुलाधार नाम वाला धार्मिक साधु व्याध निवास करता है। वह धार्मिक आपसे सभी आख्यान निःसंदिग्ध रूप से कहेगा। उसके आचरण को ही देखकर आपको ज्ञान हो जायेगा। उस व्याध ने पूर्वकाल में जाबालि नामधारी ब्राह्मण को उपदेश दिया था। मैं जाबालि के निदर्शन में ही किंचित् धर्माचरण करता हूं। यहां आप कुछ समय प्रतीक्षा करें। मेरे पिता तब तक जाग जायेंगे, इनके द्वारा अर्चित होकर तब आप ज्ञान प्राप्ति हेतु गमन करें।।५२-५५।।

पराशर उवाच

इत्युक्तः सोऽतिथिर्व्यास परमं विस्मयं गतः।
तूष्णीं स्थितः किञ्चिदपि नोवाच साध्वसाधु वा॥५६॥

तत्क्षणादेव गन्तुं स मतिं चक्रे त्वरान्वितः। एतस्मिन्नेव काले तु गृहस्थः प्रतिबुद्धवान्॥५७॥
दृष्ट्वातिथिमुवाचेदं शृण्वतस्तस्य तस्य च। किं मया चरितं भद्रं विप्रोऽयमतिथिर्मम॥५८॥
निद्रया मरणेनैत्र समापन्ने मयि ह्ययम्। कति कालं समायातस्तिष्ठन्नेवाङ्गने मम॥५९॥
पुत्रश्च धर्मभीरुर्मे मन्निद्रापायभीतितः। स्वोरौ निधापितौ पादौ मदीयौ नाप्यपाकरोत्॥६०॥
तस्मान्ममापराधोऽयमतिथिर्येन वञ्चितः। स एवमनुतप्यैव स्वयं स्वेनैव तं तदा॥६१॥
अपूजयद् यथाशक्ति सोऽतिथिस्तेन पूजितः। उषित्वा रजनीं ताञ्च प्रातरुत्थाय वै ततः॥
प्रणम्य तं द्विजसुतं ब्राह्मणं गृहिणं तथा। वाराणसीं ययौ शीघ्रं यत्र व्याधस्तुलाधरः॥६२॥६३॥
ददर्श तत्र विपणौ विक्रीणानं मृगामिषम्। स्त्रिया सह तुलाधारं ज्वलन्तं धर्मतेजसा॥६४॥
तिष्ठन्तं मन्मुखे तच्च तुलाधारः समीक्ष्य तम्। प्रोवाच ब्राह्मणं सायमतिथिं समुपागतम्॥६५॥

पराशर कहते हैं—हे व्यास! ब्राह्मण का यह वचन सुनकर विस्मयापन्न अतिथि मौन हो गये। उन्होंने अच्छा-बुरा कुछ नहीं कहा। वे अत्यन्त जल्दबाजी में तुरंत जाने हेतु उद्यत हो गये। तभी गृहस्थ ब्राह्मण ने जागकर अतिथि को देखा तथा पुत्र एवं अतिथि के सामने कहने लगे—"मैंने आज अच्छा काम नहीं किया। ये मेरे अतिथि आये हैं, तथापि मैं मृत्युतुल्य निद्रा में अचेतन-सा पड़ा था। पता नहीं ये कब से आकर मेरे आंगन में खड़े हैं! मेरा पुत्र तो धर्मभीरू है। मेरी निद्रा भंग न हो, इस भय से उसने अपनी गोद से मेरे पैरों को नहीं हटाया। इस कारण मैं अपराधी हूं।" उन ब्राह्मण ने इस प्रकार स्वयं ही अपने आप अनुताप करके यथाशक्ति अतिथि का सेवा सत्कार किया। ब्राह्मण द्वारा सत्कार पाकर अतिथि कृतबोध ने रात्रि पर्यन्त वहीं रुककर प्रातः ब्राह्मण पुत्र तथा उसके पिता गृहस्थ ब्राह्मण को प्रणाम करके शीघ्रता से तुलाधार व्याध से मिलने हेतु वाराणसी प्रस्थान किया। वहां जाकर ब्राह्मण ने देखा कि वाराणसी में तुलाधार पत्नी के साथ बाजार में मृगमांस बेच रहे हैं, तथापि वे धर्मतेज से जाज्वल्यमान हैं। व्याध तुलाधार ने उन ब्राह्मण को सामने स्थित देखकर निश्चित किया कि ये अतिथि हैं और तब उनसे कहा।।५५-६५।।

व्याध उवाच

स्वागतं ते द्विजसुत प्रोषितोऽसि द्विजातिना। मत्सन्निधान मात्सर्य्यं तेन निःसारितं तव।
यत्त्वयोपार्ज्जित पक्षिनीड़ीकृतशिरेण वै॥६६॥

छेत्स्यामि तव सन्देहं ब्रह्मन् यस्ते हृदि स्थितः।
गृहान् मम समागच्छ त्वं मायमतिथिः किल॥६७-६८॥

व्याध कहता है—हे ब्राह्मणपुत्र! आपकी यात्रा सुखपूर्ण तो रही? एक ब्राह्मण पुत्र ने आपको मेरे पास भेजा है तथा आपके मस्तक पर पक्षी ने जो बीट कर दिया था, आपने उसे दग्ध किया, यही तप का दम्भ आपको हो गया था, जिसे उस ब्राह्मणपुत्र ने दूर कर दिया। हे ब्राह्मण! आपके मन में जो संदेह है, मैं उसका निराकरण करूंगा। आप मेरे गृह में आयें। आप मेरे सायंकालीन अतिथि होंगे।।६६-६८।।

पराशर उवाच

इत्युक्तः स द्विजस्तेन व्याधेन चरितात्मना। परमं विस्मयं प्राप्तो न वक्तुमशकद् यतः॥६९॥
सह तेन गतस्तस्य भवनं साधुधर्मिणः। ददर्श भवनं चारु नानाशोभाविराजितम्॥७०॥
तत्र व्याधस्तुलाधारः प्रणम्य पितरौ गृहे। भार्य्यया सहधर्मिण्या पश्यतश्च द्विजन्मनः॥७१॥
तस्थौ तयोस्तु पुरतः पित्रोर्व्याधः सुभक्तिमान्। तथाभूतं स्थितं तञ्च व्याधं धर्मवतां वरम्॥७२॥
पिता प्रोवाच मुदितः सेव्यतामतिथिः सुत। इत्याज्ञप्तः पितृभ्यां स यथाविधि यथाधनम्।
ब्राह्मणं पूजयामास यथायोग्यं यथामति॥७३॥
विश्रान्ते सुखमासीने ब्राह्मणे व्याध एव सः। संपूजयित्वा पितरौ यथाकालक्रियोचितम्॥७४॥
स्वभोजनादिद्रव्यार्थं नियोज्य च प्रियां सतीम्। अतिथेर्निकटं गत्वा जिज्ञासोरुषितोऽभवत्॥७५॥
तं दृष्ट्वा मुदितो विप्रः पप्रच्छ चिरमीप्सितम्। विस्मयाविष्टहृदयो व्यास ब्राह्मणपुत्रकः॥७६॥

पराशर कहते हैं—जब व्याध ने ब्राह्मण से यह सब चरित्र कहा तब ब्राह्मण कृतबोध विस्मित हो गये। वे कुछ भी उत्तर न दे सके। वे उस साधु कर्मसम्पन्न व्याध के साथ उसके गृह आये। ब्राह्मण ने देखा उसका गृह सुन्दर है तथा नाना प्रकार से शोभान्वित है। माातृपितृभक्त तुलाधार ने घर जाकर ब्राह्मण के सामने ही पत्नी के साथ माता-पिता को प्रणाम किया तथा उनके समक्ष खड़ा हो गया। उसके माता-पिता ने उस धार्मिकप्रवर पुत्र तुलाधार को सामने स्थित देखकर आनन्दित हो कहा—"अतिथि सेवा करो।" माता-पिता की आज्ञा पाकर अपने सामर्थ्य तथा बुद्धि के अनुसार तुलाधार ने कृतबोध की सेवा किया। तदनन्तर तुलाधार ने समय पर माता-पिता की सेवा करके उनको भोजनादि द्रव्य देने तथा उनके आवश्यक सेवाकर्म के निर्वहनार्थ पत्नी को नियुक्त किया। तत्पश्चात् तुलाधार जिज्ञासु अतिथि ब्राह्मण कृतबोध के निकट जाकर बैठा। हे व्यास! जब ब्राह्मण पुत्र कृतबोध ने तुलाधार को देखा, तब उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर अनेक समय से अभिलषित तत्त्व को उससे पूछा—।।६९-७६।।

ब्राह्मण उवाच

कुतस्तवेदृशं ज्ञानं गुरोस्तु समुपार्ज्जितम्। केन मे तादृशं ज्ञानं सम्पद्येत वदस्व तत्॥७७॥
मया भस्मीकृतः क्रौञ्चः स वा क इति मे वद। तपसा देहशोषेण यज्ज्ञानं नार्ज्जितं मया।
तत् त्वं यादृच्छिको लब्धः कथमामिषविक्रयिन्॥७८॥

ब्राह्मण कहते हैं—हे व्याध! तुमने किस गुरु से ऐसा ज्ञान अर्जित किया है? ऐसा ज्ञान मुझे कैसे प्राप्त हो,

यह कहो। मैंने जो एक बगुले को भस्म किया, उसे तुमने कैसे जाना? मैं तो शरीरशोषक क्रिया से भी यह ज्ञानार्जन नहीं कर सका। हे मांसविक्रेता! तुम तो हमेशा लौकिक व्यवहार में लगे रहते हो, तब तुमने यह ज्ञान लाभ किस प्रकार से किया?।।७७-७८।।

व्याध उवाच

शृणुस्व द्विजदायाद वृत्तान्तं मम यत्नतः। पुराहं बालकं कश्चिद् वने ब्राह्मणमुत्तमम्।।७९।।
तेजोराशिं दुर्निरीक्ष्यं ज्वलन्तमिव पावकम्। दृष्ट्वा क्रीड़ाः परित्यज्य तमेवान्वगमं मुदा।।८०।।
तत्रैकदाहं विपिने पक्षिणं धृतवानपि। मया गृहीतः स पक्षी जालबद्धो जरन्नपि।।८१।।
रुराव व्याकुलस्तत्र पक्षिणस्तस्य चात्मजः। पूर्वपोषमनुस्मृत्य पित्रे वारि ददौ कियत्।।८२।।
सम्भ्रमात् तत्र जाले च पपात च ममार च। स पक्षितनयः पक्षिवपुर्हित्वा च तत्क्षणात्।।८३।।
धृत्वा दिव्यं वपुः सर्वैः स्तूयमानं ययौ दिवम्। तद्दृष्ट्वाश्चर्य्यमतुलं विस्मयाविष्टमानसम्।।८४।।
मामुवाच स वै विप्रः पृष्टश्च ज्ञानिनां वरः। व्याधपुत्र शकुन्तोऽसौ त्वया बद्धस्य पक्षिणः।।८५।।

व्याध कहता है—हे ब्राह्मणनन्दन! मेरे वृत्तान्त को यत्नतः सुनें। हे मुनिवर! पूर्वकाल में बाल्यावस्था में ज्वलन्त अग्नि के समान दुर्निरीक्ष्य तेज-राशि-सम्पन्न उत्तम ब्राह्मण का अवलोकन करके क्रीड़ा त्याग कर उनका सहर्ष अनुगमन किया। जाते-जाते वन में एक पक्षी भी पकड़ा। मेरे द्वारा पकड़ा गया जाल में बंधा वह पक्षी व्याकुलतापूर्वक शब्द करने लगा। तब पूर्व में उस पक्षी द्वारा पोषित उसके एक पुत्र ने अपनी चोंच में लाकर उसे जल प्रदान किया। तथापि भय एवं भयजनित चंचलता के कारण वह पक्षी जाल में ही मरकर गिर गया। तब उस पक्षी पुत्र ने भी तत्क्षण अपनी पक्षीदेह त्याग दिया तथा दिव्यदेहधारी होकर वह सर्वसत्कृत स्वर्ग चला गया। मैंने इस अतुलनीय व्यापार को देखकर विस्मित चित्त से उन ज्ञानीप्रवर ब्राह्मण को यह वृत्तान्त बतलाकर कारण तथा इसका रहस्य पूछा। उन ज्ञानीप्रवर विप्र ने तब मुझसे कहा—"जिस पक्षी को तुमने बंदी बनाया था"।।७९-८५।।

औरसस्तनयः पूर्वं स्मृत्वा पित्रे ददौ जलम्। अविचिन्त्यैव मरणं पितरं तमपूजयत्।।८६।।
एतेन कर्मणा तस्य गतिरेषाभ्युपद्यते। वाल त्वमपि पितरौ सेवस्व देशितो मया।।८७।।

दिव्यं ज्ञानं वपुश्चापि भविष्यति तव ध्रुवम्।
इत्येवमुक्तस्तेनाहं गुरुणा ब्राह्मणेन हि।।
प्रतिज्ञाय सदा पूजां पित्रोरेतां चराम्यहम्।
नाहं जाने तपोदान-व्रतयज्ञादिकञ्च यत्।।८८।।८९।।

पित्रोश्चरणयोः सेवामेवैकां जान एव हि। यन्मे ज्ञानं समुत्पन्नं पित्रोः सेवाफलञ्च तत्।।९०।।

"वह मृतपक्षी इसका औरस पुत्र था। उसने पहले की बात को याद करके तथा अपने मरण भय को छोड़कर पिता को जलदान किया। उसे तृप्त किया। उसी कर्मफल से इसे उत्कृष्ट गति प्राप्त हो सकी। हे बालक! तुम भी मेरे उपदेश का पालन करके माता-पिता की सेवा करो। तुमको भी दिव्य ज्ञान तथा दिव्यदेह मिलेगी।" उन गुरुस्वरूप ब्राह्मण ने मुझसे यह बात जब कहा—तब से मैं प्रण लेकर माता-पिता की सेवा कर रहा हूं। मैं तप, दान, व्रत, यज्ञादि कुछ नहीं जानता। केवल माता-पिता की चरणसेवा से ही मुझे ज्ञानोत्पत्ति हो सकी है। वह सब पितृसेवा का फल है।।८६-९०।।

प्रातरुत्थाय तं विप्रं पितृसेवोपदेशकम्।
प्रणम्य पितृसेवाञ्च करोमि तदनन्तरम्।
क्रीत्वा मांसानि विक्रीय वैश्यवृत्तिर्गृहं चरे।
भार्य्यापि लब्धा सुभगा मदेकपतिदेवता॥९१॥९२॥
तया सह चरे धर्मं पितृसेवां तथातिथे। त्वं तु पित्राननुमतो देहकर्षणमुग्रकम्॥९३॥

"मैं प्रातःकाल उठकर उन पितृभक्ति के उपदेष्टा ब्राह्मण को मन ही मन प्रणाम करके तब पितृसेवा में लग जाता हूं। मैं वैश्यवृत्ति के अनुरूप मांस क्रय-विक्रय करके जीवन निर्वाह करता हूं। मैंने अपने प्रति भक्ति रखने वाली पतिभक्ता सुभगा भार्या पाया है। उसी के साथ पितृसेवा तथा अतिथिसेवारूपी धर्माचरण करता हूं"।।९१-९३।।

अन्यत्रालब्धशरणः सिन्धुतीरेऽचरस्तपः। यत्र वै मूषिकाद्याद्या वरं विश्वासमागताः॥९४॥
त्वामदृष्ट्वा तव पिता बह्वनुतप्तवांस्तथा। तेन ते विहितं चोग्रं तपोऽस्थिरमभून्ननु॥९५॥
श्वेतं तद्वकरूपेण तपस्ते खमुपाश्रितम्।
तव पित्रनुतापाग्नेर्भस्म दृष्टं त्वया क्षणात्।
निःसृते तपसि ह्युग्रे साहङ्कारोऽभवद् भवान्।
अतएवाधुना विप्र मद्वावाक्यमवधाय हि॥९६॥९७॥
गृहान् गत्वा प्रयत्नेन पितरौ यत्र सर्वथा। यो देवते परित्यज्य वृथाऽधाद् देहकर्षणम्।
एवं तवोदितं सर्वं लप्स्यसि ह्यभिवाञ्छितम्॥९८॥

"आपने पिता से आज्ञा प्राप्त किये बिना सब किया। अतः स्थिति प्राप्त नहीं हो सकी। आपने देहषोषक उग्र तप समुद्रतट पर किया था। पक्षी-मूषिकादि प्राणी भी आपके शरीरशोषक तपःश्चरण से विस्मित थे। इधर आपके पिता आपको न पाकर अत्यन्त अनुतापग्रस्त थे। पिता के उग्र अनुताप के कारण आपकी तपस्या स्थायी नहीं हो सकी। आपकी तपस्या ही आकाश में श्वेत बगुले के रूप में स्थित थी। लेकिन पिता के अनुताप के कारण आपने अपने ही तपस्यारूपी बगुले को क्षणमध्य में भस्म कर दिया। तपस्या आगे बढ़ने से आप अहंकारी हो गये। अतएव हे विप्र! अब मेरा वाक्य सुनें। गृह जाकर यत्नतः सर्वतोभावेन माता-पिता की सेवा करें। आप प्रत्यक्ष देवता का त्याग करके व्यर्थ शरीर को सुखा रहे हैं। अब देवतास्वरूप माता-पिता की सेवा करके वांछित फल प्राप्त करें"।।९४-९८।।

दुरदृष्टवशान्मर्त्त्यः पुःसोरेत उपाश्रितः।
वसते मातुरुदरे मासान् दश दिनानि च।
दुःखालये वसंस्तत्र भुङ्क्ते मासचतुष्टये॥९९॥१००॥
तदा तु पूर्वजनुषां दुःखानि स्मरति द्विज। कथञ्चित् संस्तभ्य मनो वदत्येवं हरिं स्मरन्॥१०१॥
नमो भगवते तुभ्यं नारायण जगत्पते। लोकपित्रे लोकधात्रे लोककर्त्रे हरे नमः॥१०२॥
प्रदात्रे सुखदुःखानां तत्तत् कर्मानुरूपतः। त्वत्तो हि जायते जन्तुर्धृत एव त्वया पुनः॥१०३॥
कुकर्मफलजं दुःखं भुङ्क्ते त्वत्सेवया सुखम्। अतोऽस्मान्निःसृतो गर्भात्त्वमेव पितरौ विभो।

सेविष्यामि यतो नैव जन्ममृत्युव्यथां भजे॥१०४॥
एवं वदन् हरिमिव साक्षात् पश्यन् द्विजोत्तम।
सूतिकावायुनाकृष्टो गर्भान्निःसरते स वै।
कोटिवृश्चिकदष्टस्य पीड़ामाप्नोत्यसौ तदा॥
इत्थं तु मृत्युकालेऽपि व्यथामाप्नोति देहभृत्॥१०५॥१०६॥

"मैंने इस प्रकार आपसे जो कहना था कह दिया, इसका पालन करने से आपको निश्चितरूपेण इष्टसिद्धि प्राप्त होगी। मनुष्य भवितव्यता रूपी अदृष्ट के कारण पुरुष के वीर्य द्वारा मातृगर्भ में स्थापित किया जाकर माता के उदर में १०मास १०दिन निवास करता है। वह दुःखमंदिर रूप गर्भवास द्वारा कितने ही दुःखों को भोगता है। गर्भावस्था के अंतिम चार मास में गर्भस्थशिशु पूर्वजन्म के सभी दुःख-सुख को स्मरण करता है। तब किसी प्रकार से मन स्थिर करने के उपरान्त वह विष्णु को याद करता कहता है—हे जगत्पति! लोकपिता! लोकपालक, लोक सृष्टि करने वाले! भगवान् हरि! नारायण! आपको प्रणाम!आप ही कर्मानुरूप सुख तथा दुःख प्रदाता हैं। प्राणिगण को आपने ही रचा है। आपही उनके पालनकर्त्ता हैं। कुकर्म से जीव दुःख पाता है। आपकी सेवा से वह सुख पाता है। हे विभो! गर्भ से निकलकर मैं आपके स्वरूप पिता-माता की सेवा करूंगा, जिससे पुनः जन्म-मृत्यु व्यथाभोग न हो।" गर्भस्थ मानव यह कहते-कहते मानो, विष्णु का साक्षात् दर्शन करके वह यथाकाल गर्भ से बहिर्गत होता है। उस समय जन्म लेते समय उसे करोड़ों बिच्छू के डंक मारने जैसी पीड़ा होती है। मृत्युकाल में भी यही क्लेश मिलता है"।।९९-१०६।।

ततो जातश्च संवृद्धो मात्रा च परिपोषितः।
पित्रोः संसेवया देवाः पितरस्तस्य तोषिताः॥
ततः सद्गुरुमाप्नोति सद्दैवतनिदर्शनम्।
एवं जन्तुः सुखं भुक्त्वा परत्र चाश्नुते सुखम्॥१०७॥१०८॥

"इस प्रकार उसका जन्म होता है तथा वह माता के परिपोषण से वर्द्धित होकर माता-पिता की सेवा द्वारा देवता तथा देवीगण को संतुष्ट करता है। तदनन्तर उसे सद्गुरु प्राप्ति होती है। सद्गुरु की प्राप्ति का मूल है देवतानिदर्शन। इस प्रकार से प्राणीगण सुखभोग करके (सत्कर्म द्वारा) परलोक में भी सुख प्राप्त करते हैं"।।१०७-१०८।।

पराशर उवाच

इत्युक्तः स द्विजसुतः प्रसन्नात्मा तुलाधृता। पितरौ केन तुष्येतामिति प्रातर्गृहं ययौ॥१०९॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे तुलाधारोपाख्यानं तृतीयोऽध्यायः।।

—***—

पराशर कहते हैं—तुलाधार द्वारा-प्रसन्नचित्त से ब्राह्मण को यह बतलाये जाने पर कि माता-पिता की सेवा कैसे की जाये तथा वे कैसे प्रसन्न होंगे, इसी भावना के साथ उस ब्राह्मण कृतबोध ने प्रातःकाल अपने गृह हेतु वहां से प्रस्थान किया।।१०९।।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।



चतुर्थोऽध्यायः

तुलाधार व्याध का उपाख्यान

व्यास उवाच

इतोऽपि कथितः श्रेयान् मन्त्रज्ञानप्रदो गुरुः। न ते स्वे पतिपुत्राद्या ये न मृत्योर्विमोचकाः॥१॥
दुर्ल्लभं मानुषं जन्म प्राप्य यो गुरुदीपतः। न दृष्टवान् परं ब्रह्म भुक्तं तेन विषं स्वयम्॥२॥
अज्ञानतमसाकीर्णं चेतो जन्तोः स्वयं गुरुः। ज्ञानाञ्जनेन सम्माज्र्ज्य करोति ब्रह्मनिर्म्मलम्॥३॥
चिरन्तनतमोजुष्टं जन्तोरन्तरमेव हि। कोह्यन्यः श्रीगुरोः पादान्निर्म्मलं कुरुतेऽर्च्चिषः॥४॥
यमं लोक नियन्तारं लोके निर्द्दोषदुर्ल्लभे। मोचयेद् गुरुरेवैकस्तस्माद् यत्नाद् गुरुं भजेत्॥५॥

व्यासदेव कहते हैं—मंत्रप्रदाता तथा ज्ञानप्रदाता गुरु तो माता-पिता से भी श्रेष्ठ है। जो मानव जन्म पाने के पश्चात् मृत्यु विमोचन में असमर्थ हो पत्नी-पुत्रादि में आसक्त होकर गुरुरूपी दीप की सहायता से परब्रह्म प्रभु का दर्शन नहीं करता, मानो वह अपने ही हाथों से विष भोजन कर रहा है। प्राणीगण के तिमिर से आच्छन्न चित्त नेत्र को अपने ज्ञानांजनरूपी शलाका से सम्मार्जित करके निर्मल ब्रह्मज्ञान को देखने योग्य, उपयोगी बनाने वाला गुरु ही है। श्री गुरु की चरणद्युति के बिना चिरन्तन काल से, तमस् से आच्छन्न जीव के हृदय को कौन निर्मल कर सकेगा? यमराज लोकनियन्ता हैं। उनके हाथ से बचाने वाले एकमात्र गुरु ही हैं। अतः यत्न के साथ गुरु की भक्ति करे।।१-५।।

शान्तं सुशीलं धर्मज्ञं शास्त्रज्ञं चारुदर्शनम्। दयालुं पुत्रिणं दान्तं गृहस्थं गुरुमाश्रयेत्॥६॥
वयोज्येष्ठमपितरमभ्रातरमवैरिणम्। अमातामहमज्ञानशाठ्यशून्य तथा यतिम्॥७॥
अन्तर्व्वहिस्तुल्यचेष्टं सदा सस्मितभाषणम्। गृहेऽनासक्तवत्सन्तं स्वयंयोग्यो गुरुं भजेत्॥८॥
गुरुपुत्रेषु पौत्रेषु गुरुभ्रातृषु यो भिदाम्। कुर्य्यात् स उच्यते मूढ़ो गुरुहा धर्म्मलोपकृत्॥९॥

शान्त, सुशील, धर्मज्ञ, शास्त्रवेत्ता, प्रियदर्शन, दयालु, पुत्रवान् गृहस्थ को गुरुरूपेण वरण करे। पिता, भ्राता; मातामह तथा शत्रु को गुरु न बनायें। अपने से आयु में ज्येष्ठ, अज्ञानशून्य, शठतारहित, अन्तर-बाहर एक समान, सतत् सस्मित भाषी, सरलबुद्धियुक्त, अनासक्त होकर गृहस्थाश्रम में अवस्थित व्यक्ति को जो स्वयं योग्य हो गुरु बनायें। जो व्यक्ति गुरुपुत्र, गुरुपौत्र तथा गुरुभ्राता में भेदबुद्धि युक्त है, वह मूढ़ गुरुघाती तथा धर्म का लोप करने वाला कहा गया है।।६-९।।

तस्माद् गुरोर्व्वंशजातं वयोऽल्पमपि पण्डितम्।
गुरुं कुर्य्यात्तु दीक्षायामविचार्य्य गुरोः कुलम्॥१०॥

नानामूर्त्तिर्यथा देवो नानामूर्त्तिस्तथा गुरुः। पुत्रपौत्रादिरूपेण जाबाले नात्र संश्रयः॥११॥
देवानाञ्च गुरूणाञ्च भेदो वाण्यादिना कृतः। पातयेन्नरके तीव्रे गुरुभेदकरं नरम्॥१२॥
ऊर्द्धस्तिष्ठेत् गुरोरग्रे लब्धानुज्ञो वसेत् पृथक्। निवीतवासा विनयी भीतस्तिष्ठेद् गुरोः पुरः।
गुरौ तिष्ठति तिष्ठेत उषितेऽन्वाज्ञया वसेत्॥१३॥

शयिते चरणौ सेवेदभ्यायाते च धारयेत्। चापल्यं प्रमदागाथां त्वंकारञ्च विवर्ज्जयेत्॥१४॥

इसी कारण गुरुवंशोत्पन्न व्यक्ति यदि आयु में कम हो तथा उसमें पाण्डित्य हो, तब उसे ही दीक्षा विषय में गुरु मानें। इसी कारण गुरु के कुल में विशेष विचार नहीं करना चाहिये। हे जाबालि! जैसे ईश्वर की अनेक मूर्त्ति (रूप) हैं, उसी प्रकार गुरु भी पुत्र-पौत्रादि भेद से नाना मूर्त्तियुक्त हैं। इसमें तनिक संदेह नहीं है। जो व्यक्ति वाणी द्वारा देवता किंवा गुरु, गुरुपुत्रादि में पारस्परिक भेद करता है, उसका तीव्र नरकगामी होना निश्चित है। गुरु के सामने खड़ा रहे। गुरु जब अनुमति प्रदान करें तब अलग आसन पर बैठे। गले में कपड़ा लपेटकर–तब सभा में विनयपूर्वक गुरु के समक्ष रहना चाहिये। जब गुरु खड़े हों, तब शिष्य खड़ा रहे। गुरु के बैठने पर उनकी आज्ञा लेकर तब शिष्य को बैठना चाहिये। जब गुरु लेटे रहें, तब शिष्य उनकी चरण सेवा करे। जब गुरु कहीं से आगमन करें तब शिष्य को चाहिये कि उनका चरण प्रक्षालन करे। उनके समक्ष चपलता, स्त्रीघटित (स्त्री सम्बन्धित) कथावार्ता तथा अहंकार न करे। उनसे 'तुम' कहकर बातें न करे।।१०-१४।।

नापृष्टो वचनं किञ्चिद् ब्रूयान्नापि निषेधयेत्। पादोदकं पिवेन्मूर्द्ध्ना धारयेत् पूजयेदपि॥१५॥

जब तक गुरु स्वयं न पूछे कोई बात न कहे। गुरु को बात करते कदापि टोकना नहीं चाहिये। गुरु के चरणामृत का पान करे। मस्तक पर गरुपादोदक धारण करे तथा उनके चरणद्वय का पूजन करे।।१५।।

अन्यत्र न मनो दद्याद् भोजयेन्मिष्टमाहृतम्। अवशिष्टञ्च भुञ्जीत शिष्य एवम्विधो मतः॥१६॥

गुरौ साक्षात् स्थिते मर्त्त्यः पृथक् पूजां न चाचरेत्।
शान्तत्वादिगुणैर्युक्तः पित्रोर्भक्तियुतः सुधीः॥१७॥

शिवपूजारतः साधुः शिष्य आत्मा गुरोर्म्मतः। चतुर्णामेव वर्णानां स्त्रीणाञ्च ब्राह्मणो गुरुः॥१८॥

ब्राह्मणो ज्ञानवृद्धो हि कनिष्ठोऽपि गुरुर्भवेत्। स्त्रियस्तु गुरुसम्बन्धाद् गुरुरप्युच्यते द्विज॥१९॥

गुरुस्तन्त्रश्च मन्त्रश्च गोपनीयाः प्रयत्नतः।
प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यादित्याह भगवाञ्छिवः॥२०॥

शिष्य तब अन्यत्र मन न लगाये। अपने द्वारा लाये मिष्ठान का भोजन गुरु को कराये। बाकी बचे का भोजन स्वयं करे। शिष्य को एवंविध होना चाहिये। जब गुरु उपस्थित हैं, तब शिष्य अलग अन्य पूजा न करे। शान्तिं आदि गुणयुक्त, पितृभक्त, शिवपूजातत्पर, सुखी साधु मनोवृत्ति वाला शिष्य गुरु को आत्मतुल्य प्रतीत होता है। चतुर्वर्ण तथा स्त्री जाति का गुरु ब्राह्मण है। ब्राह्मण ज्ञान वृद्ध कहा गया है। अतः आयु में शिष्य से छोटा होने पर भी ज्ञानवृद्ध ब्राह्मण गुरु हो सकता है। हे द्विज! स्त्री भी गुरुपत्नी होने के कारण गुरु है। गुरु, तन्त्र तथा मन्त्र को प्रयत्नतः गुप्त रखे। इनको बतलाने से सिद्धिहानि होती है। भगवान् शिव का यह वचन है।।१६-२०।।

शौक्रं तथा च सावित्रं दैक्षञ्च जन्म सम्मतम्। जन्मत्रयं ब्राह्मणानां स्त्रीशूद्राणां द्विजन्मता॥२१॥

गुरुं तन्त्रं देवताञ्च भेदयन्नरकं व्रजेत्। गङ्गादुर्गाहरीशानां भेदकृन्नारकी यथा॥२२॥

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां यदि स्यात् पतितो न च। भार्य्याया देवपूजायामनुकूलो भवेत्पतिः॥२३॥

स्वामिप्रेमकरी भार्य्या सर्व्वदा सुखमश्नुते। भार्य्या स्यात्पतिसेवायां सदा दक्षा ह्यकल्मषा॥२४॥

मातापित्रोः पुत्रइव यथोक्तं पूर्व्वतस्तव। अलोलुपा भवेन्नारी लज्जाशीला च सर्व्वतः॥२५॥

निर्लज्जा शयने पत्युः सस्मिता स्यात् सदैव हि। अन्तरं दुःखदूनञ्च दर्शयेत् स्निग्धमुत्तमम्॥२६॥

ब्राह्मण के तीन जन्म होते हैं—गुरु से रक्त सम्बन्ध (शौक्र सम्बन्ध), सावित्र सम्बन्ध (उपनयन सम्बन्ध), तथा दैक्ष (दीक्षाग्रहण) सम्बन्ध रूप।

स्त्री-शूद्र का सावित्र जन्म (उपनयन) सम्बन्ध नहीं होता। उनका दो ही जन्म है। गुरु, मन्त्र तथा देवता में भेदबुद्धि करने वाला नरक जाता है। जैसे—दुर्गा-गंगा, विष्णु-शिव में भेदबुद्धि करने वाला नरकगामी होता है। यदि पति पतित नहीं है, तब वही स्त्री का गुरु है। भार्या देवपूजा सदैव पति के अनुकूल ही करे। पति से प्रेम रखने वाली स्त्री सदा सुख भोग करती है। पुत्र-माता-पिता की सेवा जैसे की जाती है, तदनुरूप पति की सेवा पत्नी को करनी चाहिये। भार्या को पति सेवा हेतु निर्मल तथा दक्ष होना आवश्यक है। रमणी लोलुप न हो तथा सर्वकाल में लज्जायुक्त रहे। केवल पति के साथ सहवास काल में निर्ल्लजता होनी चाहिये। सर्वदा मुस्कान युक्त रहे। रमणी का अन्तःकरण भले ही दुःखार्त हो, उसे गुप्त रखकर सदा स्नेह तथा आनन्द की ही अभिव्यक्ति करनी चाहिये।।२१-२६।।

पुत्राणां पालनं कुर्य्यात् पुत्रबुद्धिः परात्मजे।
स्वामिनः सुखदुःखेषु तथा स्यात् स्वयमेव हि॥२७॥

प्रोषिते च सुखं जह्यादेवं नार्य्याः शुभं भवेत्। गृहे द्रव्याणि रक्षेत सावधाना च सर्व्वतः॥२८॥
अन्नादेः संविभागञ्च कुर्य्यात् सुचतुरा सती। एवम्बिधा तु या नारी सा सर्व्वैः पूज्यते द्विज॥२९॥
तथा च धियते पृथ्वी लोकानां देवता च सा। गृहेषु तनया भूषा भूषा संसत्सु पण्डितः॥३०॥
सुबुद्धिः पुंसु भूषा स्यात् स्त्रीषु भूषा सलज्जता। अपण्डितो मृतो विप्रो मृतो यज्ञो ह्यदक्षिणः॥३१॥
मृता सभा सुधीहीना मृता नारी गतत्रपा। नदी च जलहीनेव कृष्णहीना मतिर्यथा॥३२॥

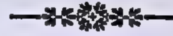
रमणी पुत्रपालन करे तथा पराये पुत्रों को भी पुत्रवत् समझें। नारी सदा पति के सुख से सुखी हो तथा पति के दुःख से दुःखी रहे। जब स्वामी परदेश गये हों तब पत्नी देवकार्यपरायण रहे तथा उसको सभी सुखों से रहित रहना चाहिये। सुचरित्र सती नारी घर की सामग्रियों की रक्षा करे। सर्वत्र सावधानी रखे तथा अन्नादि का संविभाग करे। जो नारी ऐसी है, हे द्विज! उसकी पूजा सभी करते हैं। उसी रमणी से पृथिवी की रक्षा होती है। वही लोकदेवता हैं। गृह का भूषण है। पुत्र तो सभा का भूषण है। पण्डित पुरुषों का भूषण है। सद्बुद्धि रमणी का भूषण है लज्जा। जिस ब्राह्मण में पाण्डित्य का अभाव है, वह तो मृतों में गिना जायेगा। दक्षिणा न देने से यज्ञ मृत है। पण्डित न हों, तब सभा मृत है। जिस नारी में लज्जा नहीं है, वह नारी मृत है। जलहीन नदी मृत है तथा कृष्णरहित मति भी मृतवत् है।।२७-३२।।

राजहीना यथा भूमिः पतिहीना तथावला।
यौवनं विविधा भूषा चारुकेशादिधारणम्।
देहशोभा च नारीणां विधवानां न शोभते॥३३॥३४॥

इत्येवमुक्तं ननु काश्यपेय यदेव पृष्टं भवता ममैव।
सत्कीर्त्तनीयं परमं पवित्रं श्राव्यं गुरूणां चरितं नराणाम्॥३५॥

पित्रोः सुतानां पतिषु स्त्रियाञ्च गुरौ च शिष्यस्य सुभक्तिदञ्च।
अतःपरं किं कथनीयमत्र प्रब्रूहि तच्छ्रोतुमनास्त्वमत्र॥३६॥

॥इति बृहद्धर्मपुराणे गुरूणां निर्णयः॥



जैसे राजारहित पृथिवी मृत है, वैसे पतिहीन अबला भी मृत ही है। यौवन, नाना वेषभूषा, उत्तम केशसज्जा, शरीर शोभासम्पादन, विधवा नारी हेतु उचित नहीं है। हे कश्यपनन्दन! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया, उसका समाधान मैंने कर दिया। इस उत्तम गुरु चरित्र को मनुष्य सम्यक्तः कहें तथा सुनें। इससे पुत्रों में मातृभक्ति, पति के प्रति स्त्री की भक्ति तथा गुरु के प्रति शिष्य की भक्ति वर्द्धित होती है। अब क्या सुनना चाहते हो, मुझे क्या कहना है, उसे कहो॥३३-३६॥

॥चतुर्थ अध्याय समाप्त॥



पञ्चमोऽध्यायः

गुण निर्णय

जाबालिरुवाच

तीर्थानि वद मे ब्रह्मन् वेदव्यास जगद्गुरो। दिवि भुव्यन्तरीक्षे च यानि सन्ति विशेषतः॥१॥
तेषां फलं स्वरूपञ्च नाम कार्य्यविधिश्च यः। तत्सर्वं मे विशिष्यैव शुश्रूषोर्वक्तुमर्हसि॥२॥

जाबालि कहते हैं—हे जगद्गुरो! ब्रह्मन्! वेदव्यास! स्वर्ग, भूतल तथा आकाशस्थ जो तीर्थ हैं उनका वर्णन विशेषतया कहिये। उन तीर्थों का स्वरूप, नाम तथा वहां जो कर्म किया जाता है—उसकी विधि तथा उन तीर्थों का फल हम सुनने की इच्छा रखते हैं वह सब हमें बतलाने की कृपा करें॥१-२॥

व्यास उवाच

तीर्थानि सन्त्यसङ्ख्यानि दिवि भूमौ नभस्यपि।
तेषां प्राधान्यतः प्राह तीर्थानां वायुरेव हि॥
तिस्त्रः कोष्योऽर्द्धकोटी च तत्र वच्मि कियन्ति च॥३॥
कानिचिद्वाक्यरूपाणि जलरूपाणि कानिचित्। कानिचिद्देशरूपाणि देहकालात्मकानि च॥४॥
कानि चेन्द्रियरूपाणि तरुरूपाणि कानिचित्॥५॥
देवतानामधिष्ठानस्थानं तीर्थमिहोच्यते॥६॥
फलस्वरूपतत्त्वेन शृणु तीर्थानि वक्ष्यते। यान्याह देवी रुद्राणी सख्यौ स्वे विजयां जयाम्॥७॥

वेदव्यास कहते हैं—स्वर्ग-भूतल तथा आकाश में असंख्य तीर्थ विद्यमान हैं। वायुदेव ने उनमें से प्रधान तीर्थों का वर्णन किया था। वायु द्वारा कहे तीर्थों की संख्या साढ़े तीन करोड़ है। लेकिन वास्तव में जितने तीर्थ हैं, उनके सामने तो यह संख्या भी नगण्य है। कतिपय तीर्थ वाक्यरूपी, कतिपय देहरूपी तथा कालरूपी, कतिपय तीर्थ इन्द्रियरूपी तथा कतिपय तीर्थ वृक्षरूपी भी हैं। जहां देवता स्थित हैं, यहां उनको ही तीर्थ कहा जा रहा है। रुद्राणी देवी ने अपनी सखी जया, विजया से जो कहा था, उन तीर्थों का वर्णन सुनो। उनके फल तथा स्वरूप को भी सुनो।।३-७।।

जाबालिरुवाच

कुत्र देवी तु रुद्राणी त्रैलोक्यजननी शिवा। सखीं जयाञ्च विजयां तीर्थानि केन वाब्रवीत्।।८।।
एतन्मे पृच्छतो ब्रह्मन् रुद्राणीमुखपङ्कजात्। निर्गतं तीर्थमाहात्म्यपीयूषं पावनं परम्।।९।।
कस्तुभ्यं कथयामास तदुपाख्यानमद्भुतम्। त्वत्तः श्रुत्वा कृतार्थोऽहं भवेयं जगतां गुरो।।१०।।

जाबालि कहते हैं—जगदम्बा शिवा-रुद्राणीदेवी ने कहा किसलिये जया, विजया से तीर्थ का वर्णन किया था तथा रुद्राणी देवी के मुखकमल से निर्गत परम पावन अमृत समान तीर्थ महिमा को आपसे किसने कहा था? वह उपाख्यान पृथिवी पर कैसे आया। यह जिज्ञासा है। हे जगद्गुरु! यह सब वृत्तान्त आपसे सुनकर मैं कृतार्थ हो जाऊंगा।।८-१०।।

व्यास उवाच

कदाचित् पार्व्वती देवी कैलासशिखरे स्थिता।
साकं जयाविजयाभ्यां सखीभ्यां रहसि द्विज।।११।।
सुखासीनाञ्च तां दृष्ट्वा देवीं ते विजयाजये। कृताञ्जलिपुटे भूत्वा प्रोचतुः पूर्व्ववाञ्छितम्।।१२।।

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विज! एक बार भगवती पार्वती अपनी सखीगण जया, विजया के साथ निर्जन कैलास शिखर पर आसीन थीं। जया-विजया ने देवी को वहां सुखासीन अवलोकन करके कृतांजलि होकर अनेक समय से मनस्थ विषयों की जिज्ञासा किया।।११-१२।।

सख्यावूचतुः

गिरिजे भगवत्यम्ब दुर्गे गिरिशभाविनि। आवयोर्व्वाञ्छितं किञ्चित् सम्पूरय शुभानने।।१३।।
सर्व्वदेवसमाराध्ये प्रसीद जगदम्बिके। चिरं नौ वाञ्छितं तीर्थान्यवगाहय दर्शय।।१४।।

जया-विजया कहती है—हे गिरीश कन्या पार्वती! हे भगवति मातादुर्गे! हे प्रसन्नवदने! हमारे अभीष्ट की किंचित् पूर्ति करें। हे सर्वदेवगण से आराधित जगदम्बे! प्रसन्न हो जायें। हमें चिरवांछित तीर्थदर्शन तथा तीर्थों में अवगाहन करायें।।१३-१४।।

व्यास उवाच

एवमुक्ता तु सा देवी सखीभ्यं सुस्मितानना। उवाच वचनं दुर्गा लोकदुर्गतितारिणी।।१५।।

सखियों का यह वाक्य सुनकर संसार का दुर्गति से उद्धार करने वाली दुर्गा ने सखियों से कहा।।१५।।

देव्युवाच

ममेष्टमिदमागच्छ विजये जयया सह। सर्व्वतीर्थानि वां सख्यौ दर्शये स्नापयेऽधुना॥१६॥
इत्युक्त्वा सह ताभ्यां सा मुदिताभ्यां शिवा सती। हिमालयमगाद् यत्र गङ्गा वहति वेगिता॥१७॥
तत्र तां वेगिनीं गङ्गां दृष्ट्वा वगाह्य पार्व्वती। प्रतिगन्तुं मनश्चक्रे सह ताभ्यां स्वमालयम्।
तां दृष्ट्वां प्रतिगच्छन्तीमाहतुस्ते द्विजालिके॥१८॥

देवी कहती हैं—हे विजये! यह मुझे इष्ट है। जया को साथ लेकर चलो। हे सखीद्वय! तुम सबको अभी मैं सर्वतीर्थ दर्शन तथा उन सबमें स्नान कराती हूं। सती देवी शिवा ने यह कहकर उन आनन्दिता सखीद्वय के साथ हिमालय के उस स्थान पर गईं। जहां वेगवती गंगा प्रवाहिता थी। पार्वती ने वहां सखीद्वय के साथ वेगवती गंगा का दर्शन किया तथा वहीं स्नान किया। तदनन्तर वे वहां से अपने गृह वापस आने लगीं। पार्वती को घर वापस आते देखकर सखियां कहने लगीं।।१६-१८।।

सख्यावूचतुः

क्व गच्छसि महेशानि असम्पूर्य्य मनो हि नौ। कृतेच्छयोः सर्व्वतीर्थे तीर्थमेकन्तु लब्धयोः॥१९॥

सखीगण कहती हैं—हे महाशानी! हम तो सभी तीर्थों में जाना चाहती, अथच एक भी तीर्थ गमन नहीं हो सका। अतः हमारा मनोरथ पूर्ण किये बिना आप कहां जा रही हैं?।।१९।।

देव्युवाच

मख्यौ किमिति न स्नातं तीर्थेषु सकलेषु च। किं न जानामि गङ्गेयं सर्वतीर्थप्रसूरिति॥२०॥
न केवलन्तु तीर्थानां प्रसूरेषा सदा शिवा। सर्वेषामपि लोकानां धर्म्माणामपि देवता॥२१॥
पवित्राणि विधायैव भुवनानि चतुर्द्दश। त्रैलोक्ये भाति देवीयं दीप्यमाना विभुः किल॥२२॥
एतयाधिष्ठितं सर्वमूर्द्ध्वमाकाशमेव च। भूतलञ्च तलस्थानं गिरीणां शिखराणि च।
गुणैस्तुल्यानि पुण्यानि तानि नैवात्र संशयः॥२३॥
मुक्तिस्थानं सुखस्थानं वासस्थानं तदेव तु। अशोकमभयञ्चैव यत्र गङ्गा प्रतिष्ठिता॥२४॥
स्वर्गश्चैष सुखञ्चेदं मोक्ष एष च पञ्चधा। सम्पदेषा यशश्चैतद् यद्गङ्गादर्शनादिकम्॥२५॥

देवी कहती हैं—सखीगण! सभी तीर्थों में स्नान नहीं हुआ? यह क्या बात है? यह गंगा ही सर्वतीर्थ जननी हैं। ये सदाशिवा केवल सर्वतीर्थ जननी ही नहीं हैं, प्रत्युत यह देवता गंगा सर्वलोक तथा सर्व धर्म को उत्पन्न करने वाली हैं। ये प्रभाव सम्पन्ना जननी क्रीड़ा से १४भुवनों को पवित्र करके तीनों लोक में दीप्तिमान है। तीर्थ, उर्ध्वदेश, भूतल, पाताल तथा पर्वत शिखरावलि प्रभृति समस्त स्थानों में देवीगंगा अधिष्ठिता रहती हैं। गंगा से अधिष्ठित सभी स्थान समान गुण वाले तथा पवित्र हैं। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। जहां गंगा प्रवाहित होती है, वहीं मुक्ति स्थान है। वहीं सुखस्थान तथा वासस्थान है। वहां पर शोक तथा भय नहीं रहता। गंगा का दर्शन ही स्वर्ग, सुख पांच प्रकार की मुक्ति, सम्पत्ति तथा यश है।।२०-२५।।

न ब्रह्माणमनाश्रित्य सृष्टिः कापि प्रवर्त्तते। नैतां गङ्गामनाश्रित्य तीर्थं किञ्चिद्विराजते॥२६॥

स्त्रीराजसुतगोघ्नञ्च गुर्व्वात्महनमेव च। मातेव पाति गङ्गैषा यमदण्डान्महाभयात्॥२७॥
दानयज्ञजपस्नानतपांसि मुक्तिदानि च। कृतानि येन तेनैषा गङ्गा देवी समाश्रिता॥२८॥
इयं सुरनदी पुण्या गङ्गा त्रिपथगा नदी। यदा न स्मर्य्यते सख्यौ तदैव विपदः पराः॥२९॥
भक्तिर्यस्य तु नास्त्यस्यां सर्व्वे धर्म्मास्त्यजन्ति तम्।
सदा ह्यप्रियवाक्यस्य लोका इव सखीद्वय॥३०॥
अहमेषा शिवो विष्णुस्तत्त्वेनैषां भिदा न हि। किं वर्णितेन बहुना हे सख्यो विजये जये।
युवाभ्यां सर्व्वतीर्थानि स्नातानि कलितानि च॥३१॥

जैसे ब्रह्मा के बिना सृष्टि नहीं हो सकती, उसी प्रकार से गंगा का आश्रय लिये बिना कोई भी तीर्थ विराजित नहीं रह सकता। स्त्रीघाती, राजघाती, पुत्रघाती, गोहत्यारा, गुरुहत्यारा तथा आत्महत्या करने वाला व्यक्ति भी गंगा की कृपा से महाभयानक यमदण्ड से उसी प्रकार बचता है, जैसे माता शिशु को बचाती है। जो व्यक्ति गंगा का आश्रय लेता है, उसने तो समस्त स्नान, दान, जप, यज्ञ तथा मुक्तिदायिनी तपस्या सभी सम्पन्न कर लिया। हे सखियों! यह पुण्या सुरधुनी त्रिपथगा नदी का स्मरण न करना ही परम विपत्ति है। हे सखियों! जिसकी गंगा के प्रति भक्ति नहीं है, सभी धर्म उसका परित्याग कर देते हैं, जैसे अप्रियभाषी का सभी त्याग कर देते हैं। मेरे, गंगा, शिव तथा विष्णु के बीच कोई पार्थक्य नहीं है। हे सखी विजया-जया! अधिक कहने का क्या लाभ? तुमने आज समस्त तीर्थ स्नान, सकल तीर्थाटन सम्पन्न कर लिया।।२६-३१।।

सख्यावूचतुः

प्रतीतिः केन मेऽत्रस्याद्यत्त्वयास्यास्तु वर्णितम्। अचक्षुर्गोचरीभूतं न प्रतीयन्ति पण्डिताः॥३२॥

जया-विजया कहती हैं—आपने जिन सब विषय का वर्णन किया है, उसका प्रत्यक्ष हमें किस प्रकार से हो सकेगा? पण्डितगण अप्रत्यक्ष विषय का विश्वास नहीं करते।।३२।।

देव्युवाच

स्तुहि गङ्गामिमां सख्यौ साक्षान्मे भक्तिभाविते। सर्वतीर्थोद्भवां देवीं गङ्गां चद् द्रक्ष्यथाचिरात्॥३३॥
ममैव वचनादत्र युवयोर्मुखतो ध्रुवम्। निर्गमिष्यति यद्वाक्य भवेद् गङ्गास्तवो हि सः॥३४॥

देवी कहती हैं—हे सखियों! तुम मेरे सामने भक्तिभाव के साथ गंगास्तव करो। शीघ्र ही तुम दोनों सर्वतीर्थोद्भवा गंगा का दर्शन प्राप्त कर सकोगी। यह मेरा कथन है कि इस समय तुम दोनों के मुख से जो भी वाक्य निर्गत होगा, वही गंगास्तव होगा।।३३-३४।।

व्यास उवाच

इत्युक्ते ते तया सख्या विजया च जया तदा। त्रैलोक्यपावनीं देवीं स्तोतुं योग्ये बभूवतुः॥३५॥

व्यासदेव कहते हैं—देवी पार्वती के द्वारा यह कहे जाने पर सखी जया तथा विजया, दोनों ही त्रैलोक्यपावनी गंगा का स्तवगान करने योग्य हो गयीं।।३५।।

सख्यावूचतुः

नमः प्रसीदाम्ब महेशि मातर्गङ्गे त्रिलोकाखिलदुःखहन्त्रि।
विष्णोः पदं तत् परमन्तु लब्ध्वा त्रैलोक्यमाप्लावसि साधितार्थम्॥३६॥
त्वां स्तौमि पश्यामि परावरेशे नमामि कायावयवैरपि त्वाम्।
अज्ञानमोहान्धतमोनिरस्तचित्तां तु मां बोधय यादृशी त्वम्॥३७॥
त्वं ब्रह्मणा विष्णुना पूरुषेण शिवेन वै देववरेण भूयः।
सिद्धैः परज्ञैरपि धीरवर्गैः स्तुता किमावां मनुवो भवादृशीम्॥३८॥
धन्याऽवनीयं खलु भूतधात्री लोकैः सर्व्वैः पूजितेयं बभूव।
त्वं वै यस्यामवगाह्या नवोघैर्विभासि पुण्याधिकपुण्यवत्याम्॥३९॥
जानन्ति के त्वां ननु मूढ़बुद्ध्यो नराः स्त्रियो वा वन जन्तवो वा।
पीतामृता दृष्टसहस्त्रसूर्य्या जानन्त्यनन्तामृतसारभूताम्॥४०॥

जया-विजया कहती है—हे जननी महेशी! हम आपको प्रणाम करती हैं। हे त्रैलोक्य निखिल दुखहंत्री, मातर्गङ्गे! प्रसन्न होईये! आप विष्णु का परमपद लाभ करके त्रैलोक्य के हितार्थ ही तीनों लोक को प्रभावित करती हैं। हे कार्यकरणेश्वरी! हम आपके दर्शन प्राप्त करती हैं, आपका स्तव करती हैं तथा अपनी देह एवं अंगों द्वारा आपको प्रणाम करती हैं। आप हमारा अज्ञानान्धकार समाप्त करें तथा अपने स्वरूप का हमें ज्ञान करायें। ब्रह्मा-विष्णु-पुरुष-देवदेवशिव, सिद्धगण तथा तत्वज्ञ धीमानगण आपकी स्तुति पुनः-पुनः करते रहते हैं। आप ऐसी ही हैं। हम आपका स्तव कैसे करें। यह भूतों को धारण करने वाली पृथिवी धन्या तथा अधिक पुण्यात्मा हैं। ये सभी लोकों में पूज्या हो गयीं। इसका कारण यह है कि इसी पृथिवी पर आप सबको पावन करने वाली स्वयं को मानव समूह के स्नान योग्य बनाकर विराजित हैं। हे देवी! मूढ़बुद्धि मानव, स्त्रीगण, जन्तुगण आपको नहीं जान सकते। जो अमृत पायी अमर हैं, वे आपको प्रणाम करते हैं। आप अनन्त अमृत की साररूपा हैं।।३६-४०।।

प्राणांस्त्यजन्तं त्वयि वा वसन्तं गायन्तमानन्दमयीञ्च वा त्वाम्।
कः श्रद्धधीताहितदेहबन्धं विनात्मघातान्नरकाय योग्यान्॥४१॥
यः सर्व्वलोकामरयज्ञदेवः स्वयं शिवः श्रीमति चोत्तमाङ्गे।
सर्व्वोत्तमां त्वां प्रदधाति गङ्गां सार्थं शिवत्वं ह्यधिमन्यमानः॥४२॥
सर्व्वस्य सर्व्वत्र तु नाधिकारः कस्यापि कुत्रापि च को हि आस्ते।
त्वं खण्डितब्रह्मकटाहकोटिः सर्व्वत्र चाखण्डगतिः किलास्मे॥४३॥

जो व्यक्ति वास्तव में नरकगामी है, ऐसा व्यक्ति भी आपमें प्राणत्याग करके अथवा आपके तट पर निवास करके अथवा हे आनन्दमयी! आपका नाम गायन करके आपकी कृपा से भवबंधन से रहित हो जाता है। उसके प्रति अनुग्रह आपके अतिरिक्त और कौन करेगा? हे गंगे! जो सर्वलोक, सर्वदेवता तथा सर्वयज्ञ के अधिदेवता हैं, वह स्वयं शिव हैं। उन्होंने अपना शिवत्व सार्थक बनाने के लिये अपने उत्तमाङ्ग में सर्वोत्तम आपको ही धारण किया है। (अर्थात्

अपने शीश पर आपको धारण किया है)। सबका सर्वत्र अधिकार नही रहता। किसी का कहीं पर ही सम्बन्ध रहता है। लेकिन आप तो ब्रह्मकटाह भेद करके उत्थित हैं। आपकी गति सर्वत्र अव्याहत है।।४१-४३।।

ध्याये शिवे त्वां शशिशुल्कवर्णाम् चतुर्भुजां पद्मवराभयामृतैः।
युक्ताञ्च शुक्ले मकरे वसन्तीं। त्रिलोचनां देवनुतामलंकृताम्॥४४॥
नमः शिवायै शान्तयै गङ्गायै ते नमोनमः। नमो मकरवासिन्यै कौटिचन्द्ररुचे नमः॥४५॥
चतुर्भुजायै पद्मेन वरेणाप्यभयेन च। पीयूषपूर्णकनकघटेन च विराजिनाम्।
सर्व्वालङ्कारभूषाढ्यां त्रिनेत्रां दैवतैर्नुताम् स्मितास्यां गौरवसनां स्थिरनूपुरशिञ्जिनीम्।
ब्रह्मविष्णुशिवाराध्यां दधानायै तनुं नमः॥४६॥
नमः कल्मषहन्त्र्यै च लोकमात्रे नमोनमः। सर्व्वतीर्थभवायै च सुलभायै नमोनमः॥४७॥

हे शिवे! आप चन्द्र के समान शुक्ल वर्ण वाली हैं। आप पद्म, अमृत, वराभय धारिणी, चतुर्भुजा हैं। आप श्वेत मकर पर बैठी हैं। आप सभी देवों द्वारा स्तुता हैं। आप त्रिनेत्रा हैं। इस प्रकार से आपका ध्यान करती हूं—हे शिवे! आप चन्द्र के समान श्वेतवर्णा, चतुर्भुजा, श्वेतमकर पर आसीन, सभी देवगण द्वारा स्तुता, त्रिनयना हैं। हम आपका सदा इसी प्रकार से ध्यान करते हैं। हे शिवे, शान्ते! आपको प्रणाम! हे गङ्गे! आपको पुनः पुनः प्रणाम्! हे मकरवासिनी! आपको प्रणाम! हे कोटिचन्द्र के समान प्रभावाली! आपको पुनः पुनः प्रणाम! आप चतुर्भुजा वर तथा अभय मुद्राधारिणी, पद्महस्ता हैं। आप अमृतपूर्ण, स्वर्णघट से शोभिता हैं। आप सभी अलंकारों से विभूषिता हैं, आप त्रिनेत्रा, देवताओं के समान तथा श्वेतवसन धारिणी हैं। आप स्थिरनुपूर के क्वणन वाली, ब्रह्मा-विष्णु-शिव से आराध्या, देवसंगत देहधारिणी हैं। आप गंगा को प्रणाम! पापहारिणी, लोकमाता, सर्वतीर्थ जननी, सुलभा गंगादेवी को प्रणाम्।।४४-४७।।

व्यास उवाच

एवं तयोः स्तुवन्त्योस्तु विजयाजयोर्द्विजः। प्रादुरासीत् तदा गङ्गा दीपयन्ती जगत्रयम्॥४८॥
तां तथा प्रादुरासीनां मकरासनसंस्थिताम्। विलोक्य मुमुदाते ते विस्मिते विजयाजये॥४९॥
नाशक्नुताञ्च वचनं वक्तुं कियदपि द्विज। रोमाञ्चिताङ्गौ तिष्ठन्त्यौ वास्परुद्धदृशौ भृशम्॥५०॥
सर्व्वेषामपि देवानां मुनीनाञ्च तदागमः। बभूव हृष्टमनसां सिद्धगन्धर्व्वरक्षसाम्।
यक्षाणां किन्नराणाञ्च तथैवाप्सरसां मुने। महर्षिरपि वाल्मीकिरहञ्च तत्र चागतौ॥५१॥५२॥
सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा ब्रह्माच्युतशिवादयः। सर्व्वा देव्यश्च देवानां पुष्पचन्दनपाणयः।
नानालङ्कारभूषाढ्यां गङ्गां चक्रुः सुशोभिताम्॥५३॥
अथ तस्याश्च अङ्गेभ्यो जाबाले तीर्थराजयः। समुत्पन्ना हि तत्रैव ददृशाते तदैव ते॥५४॥
मूर्त्तिमन्ति च तीर्थानि नानारूपाणि तानि वै। देहदेशाम्बुवाक्यादिरूपाणि विश्रुतानि च॥५५॥

व्यासदेव कहते हैं—हे द्विज! जया-विजया के इस प्रकार से स्तव करने पर उनके सामने तीनों लोकों को प्रकाशित करती गंगादेवी आविर्भूत हो गयीं। जया-विजया मकर पर आरुढ़ देवी गंगा को प्रत्यक्ष देखकर अत्यन्त हर्षित

तथा विस्मयाभिभूता हो गयीं। हे द्विज! तब वे कुछ बोल ही नहीं पा रहीं थीं। उनका देह रोमांचित था। नयनद्वय वाष्प से निरुद्ध थे। वे उसी प्रकार गंगा के समक्ष खड़ी ही रह गयीं। तब समस्त देवता, राक्षस, गंधर्व, यक्ष, किन्नर, अप्सरा भी प्रसन्न चित्त से वहां आये। मैं तथा महर्षि वाल्मीकि भी वहां पहुंच गये। ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि देवता तथा देवियां अपनी कराञ्जलि में पुष्प-चंदन लेकर उसे अर्पित करके सर्वालंकार भूषिता गंगा को सुशोभित कर रहे थे। हे जाबाल! तदनन्तर उन गंगा के अंगों से तीर्थों का आविर्भाव होने लगा। यह सब जया-विजया ने प्रत्यक्ष देखा। वाक्यादि स्वरूप विख्यात तीर्थ समूह मूर्त्तरूप लेकर गंगा के देह से निर्गत हुये।।४८-५५।।

मुखतो जज्ञिरे तस्या ब्रह्मतीर्थानि सर्वशः। पादेभ्यो देशतीर्थानि जलतीर्थानि वक्षसः॥५६॥
कर्णयोर्जज्ञिरे तस्या आकाशतीर्थसञ्चयाः। ललाटाज्जज्ञिरे चैव दिव्यतीर्थानि भास्वरात्॥५७॥
अङ्गतीर्थानि अङ्गेभ्यो जातान्यस्यास्तथा तथा। तानीह सर्व्वतीर्थानि नानावर्णानि तत्र वै।
सर्व्वावयवपूर्णानि भूषणैरुज्ज्वलानि च॥५८॥
शृण्वतां मुनिदेवानां विजयाजययोस्तथा। तुष्टुवुर्हृष्टचेतांसि सर्वेषां पश्यतामपि॥५९॥

इन तीर्थों का नाना रूप था। समस्त ब्रह्मतीर्थ गंगा के मुख से, देशतीर्थ चरणों से, समस्त जलतीर्थ उनके वक्षस्थल से तथा आकाशतीर्थ उन देवी के कर्णद्वय से उत्पन्न हो गये। दिव्य तीर्थ श्रेणी भास्कर ललाट से, अंङ्गतीर्थ समूह उनके अंगों से निर्गत हुए। सर्वावयव पूर्ण भूषणराजि से उज्ज्वल वे तीर्थ नाना मुनिगण तथा देवगण एवं जया-विजया तथा अन्य सबके सामने गंगा की स्तुति करने लगे।।५६-५९।।

तीर्थान्यूचुः

ॐ नमो विमलवदनायै भूर्भुवःस्वःपरमहःकलायै केवलपरमानन्दसन्दोहरूपायै लोकत्रयामीववलाकातिमिरापसारकपरमज्योतिरूपायै असदपलापतिक्तरसदूषितरसना-दोषापसारणपरमामृतरसरसायनामृतरूपायै। मूर्त्तिमत्यै कोटिकोटिचन्द्रधवलायै मकरासनायै ते॥ गङ्गे देवि स्वर्धुनि विष्णुपादोद्भवे द्रवमयनारायणतैजसशीरद्रवशरीरे परमात्मन् प्रसीद प्रसीद ते नमोनमः॥

नमस्ते देवदेवेशि गङ्गे त्रिपथगामिनि। त्रिलोचने श्वेतरूपे ब्रह्मविष्णुशिवार्च्चिते॥६०॥
वेगखण्डितब्रह्माण्डकटाहे दोषखण्डिनि। रत्नकोटिकिरीटेन मण्डितामलमस्तके॥६१॥
देवेदेव्यादिकैरीटस्पृष्टपादाम्बुजद्वये। कामदे कामरूपासि तीर्थानाञ्च प्रसूरसि॥६२॥
श्यामे श्यामलसच्चारुकुञ्चितामलकुन्तले। शिवप्रिये शिवाराध्ये शिवशीर्षकृतालये॥६३॥
शिवे शिवप्रदे शैवं कुर्व्वाणा निखिलं जगत्। अच्युतेऽच्युतभूषाढ्ये अच्युताङ्घ्रिसमुद्भवे॥६४॥
अच्युतात्मकदाब्जे धरागमनपावने। अच्युतप्रेमधाराढ्या ब्रह्माणी ब्रह्मरूपिणी॥६५॥
ब्रह्मानन्दमयी ब्रह्मप्रसूर्ब्रह्मरसामृता। ब्रह्मत्वदायिनी ब्रह्मनदी सुरधुनी सुरा॥६६॥

तीर्थगण कहते हैं—हे विमल मुखवाली! आप भूर्लोक, भुवर्लोक,स्वर्लोक तथा महर्लोक की सारभूता हैं। आप परमानंद समूहरूपा, पृथिवी-पाताल तथा स्वर्ग का अंधकार हरने वाली महाज्योतिः हैं। आप असत्प्रलापरूप तिक्तरस

से दूषित रसना वालों की (शुद्ध करने हेतु) एकमात्र शरण्य हैं। आपका परमामृतरूपी जो जल प्रवाह है, वह परम रसायनरूप है। वह आपका ही रूप है। आप देवीमूर्त्तिमती कोटि-कोटि चन्द्र के समान शुक्लवर्ण वाली तथा मकर पर आसीन हैं। आपको प्रणाम! हे गंगे! हे स्वर्णदि! हे विष्णुपदोद्भवा! हे नारायण के द्रव्यमय तैजस देह में मिलित! देवमयशरीरवाली! परमात्मारूपा! प्रसन्न हो जाइये। प्रसन्न हो जाइये! आपको पुनः-पुनः प्रणाम्! हे त्रिपथगा! देवदेवेशी, गङ्गे, त्रिलोचने, शुक्लवर्णे, ब्रह्मा-विष्णु-महेश पूजिते! आपको प्रणाम! हे दोषहारिणी! आप अपनी तीव्रगामी गति द्वारा ब्रह्माण्डकटाह भेदिनी हैं। आपका निर्मल मस्तक रत्नमुकुट मण्डित है। आपके चरणकमलद्वय सुरासुराकिरीट माला द्वारा विलुण्ठित हैं (अर्थात् सभी सुर-असुर अपने मस्तक आपके चरणों पर स्पर्श कराते हैं), हे अभीष्टदायिनी! आप कामरूपा (इच्छानुरूप रूपधारिणी) तथा तीर्थों को उत्पन्न करने वाली हैं। हे श्यामा[1]! हे सुशोभित-आकुञ्चित-विमल कृष्णकुण्डले, हे शिवप्रिये, शिवाराध्ये, शिवशिर पर बिहार करने वाली! आप समस्त विश्व को मंगलमय करती रहती हैं। हे अव्यये, अच्युत के चरणकमलों से उद्भूत, हे अच्युत पूजित पादकमले! आपके आगमन से पृथिवी पवित्र हो गयी। आप अच्युत प्रेमधारा शालिनी ब्रह्मरूपा ब्रह्माणी हैं। आप ब्रह्मानन्दमयी, ब्रह्मप्रसविनी तथा ब्रह्मासामृता हैं। आप ब्रह्मत्वप्रदा, ब्रह्मनदी, सुरधुनि तथा सुधारूपा हैं।।६०-६६।।

भेदशून्याऽभेदकारीभेदकप्राणहारिणी। अभेदबुद्धिरूपासि अभेदबुद्धिमत्प्रिये॥६७॥
सत्यप्रपञ्चरहिते अनिन्द्येदोषवर्ज्जिते। कमले विमले शुद्धे तत्त्वब्रह्मपरात्मिके॥६८॥

आप भेदरहिता, भेद करने वाली तथा भेदकगण[2] के प्राणों का हरण करने वाली हैं। आप अभेदबुद्धिरूप लोगों को कृपा से देखने वाली, अभेदबुद्धि स्वरूपा हैं। हे सत्ये! हे संसारवर्जिते, अनिन्द्ये, निर्दोषे, कमले, विमले, शुद्धे आप परब्रह्मरूपा हैं।।६७-६८।।

वेगाधारे वेगगमे स्थिरवायुप्रभेदिनि। सूर्य्यमण्डलसंभिन्ने मन्दाकिनि महेश्वरि॥६९॥
सुरार्च्चिते महामल्ले कोकामुखि रणप्रिये। वलिमांसप्रिये कालि मत्स्यासवसुखग्रहे॥७०॥
जवारक्ताक्षि लोलाक्षि रक्तवस्त्रपिधायिनि। निःशङ्कसेव्ये निःसेव्ये निष्किञ्चनजनप्रिये॥७१॥
दिगम्बरप्रिये दिव्ये वीररूपे मनोहरे। आकाशनिलये देवि सदा पर्व्वतवासिनि॥७२॥
धरालये च पातालनिलये खेचरे चरे। सदा खड्गकरे भीमे महाभैरवसाधिते॥७३॥
भयहारे भयाधारे भवपत्रि भवानले। भावज्ञे भावरसिके गिरिजे गिरिशृङ्गगे॥७४॥
शृङ्गाटकगते कान्ते शृङ्गाररसशोभने। कामरूपे कामभवे कामनाभवमन्मथे॥७५॥

हे वेगाधारे! वेगगामिनी! आपने स्थिरवायुचक्र भेदन किया है। हे सूर्यमण्डल भेदकारिणी, महेश्वरी, मन्दाकिनी, सुरपूजिते, महानन्दे, रणप्रिये, कोकामुखी, बलिमांस प्रिये, कालीरूपा! मत्स्य, मद्य से आपको सुख प्राप्त होता है। हे जवा के समान वर्ण के नेत्रों वाली, रक्त वस्त्रधारिणी, चंचल नयने! आपकी सेवा कर सकना तो साधुगण द्वारा ही संभव है। हे निःसङ्गे! आप ही अकिंचनों की सहारा हैं। हे दिगम्बरप्रिये! हे दिव्ये, हे वीररूपिणी, मनोहरे आकाशनिलये, सदापर्वत पर निवास करने वाली, देवी! पृथिवी-पातालादि सभी स्थान आपके निवास हैं। आप

---

१. श्यामा उसे कहते हैं जो शीतऋतु में उष्णदेह, ग्रीष्मऋतु में शीतल देह तथा मुख में पद्मगन्ध वाली हो।

२. भेदक अर्थात् जो विष्णु-शिव-दुर्गा तथा स्वात्मा एवं गुरु में भेद दर्शन करते हैं।

आकाशचारिणी हैं। हे भीमे!आप सदा उद्यत खड्गधारिणी हैं। महाभैरवगण आपकी साधना करते हैं। हे भवमोचनी! भवरक्षिणी, भवभाविनी, भव शिर विहारिणी, भवज्ञे, भावरसिके, हे गिरिजे, गिरिशिखरचारिणी, शृङ्गाटकगते, शृङ्गारस शोभने! कान्तिमति, आप कामरूपा हैं। आप कामभवा, निष्काम साधकों द्वारा पूजिता हैं।।६९-७५।।

दुर्गमे दुर्गतिहरे दुःखहन्त्रि सुखालये। हंसकारण्डवक्रौञ्चमण्डिकूलद्वये शुभे॥७६॥
देवानीसेविततटे स्मृतिपापविनाशिनि। ब्रह्महत्यादिपापेषु नाममात्रहमहाशने॥७७॥
सुखदे मोक्षदे मातः सर्व्वेषां जगतामपि। चाण्डालगृहिसन्न्यासि-योगिसेव्या च योगिनी॥७८॥
विषयाख्यविषज्वालाहरे विषहरे हरे। हारे दशहरे गङ्गे कलिपापहरे परे॥७९॥
हुङ्काररूपे प्रणवस्वरूपे ह्रींस्वरूपिणि। अम्बिके भगवत्यम्ब भीष्मसूस्ते नमोनमः॥८०॥

हे दुर्गमे, दुर्गतिहारिणी, दुःखहंत्री, सुखालये, शुभे! आपके दोनों ओर के तटों पर हंस, कारण्डव तथा क्रौञ्चपक्षीगण शोभित होते हैं। आपके तटद्वय देववृन्द से शोभित एवं सेवित हैं। आप स्मरण मात्र से पापों का विनाश कर देती हैं। आपका नामोच्चारण करते ही वह नाम ब्रह्महत्या आदि महापातकों को भी निगल लेता है। हे माता! आप समस्त जगत् को मोक्ष देने वाली तथा सुखप्रदातृ हैं। हे योगिनी! गृही, सन्यासी, योगी तथा चाण्डालादि भी आपकी सेवा के अधिकारी हैं। हे पापनाशिनी, शिवशंकर गृहिणी, विषयविष की ज्वाला का हरण करने वाली, हरिभूषिते, दशहरे परमदेवी! आप अपनी तरंगों से कलिकलुष का हरण कर लेती हैं। हे माता! आप ही हुंकाररूपिणी, प्रणव तथा ह्रींकार भी हैं। हे माता, भगवती, भीष्ममाता, पुनः-पुनः आपको प्रणाम!।।७६-८०।।

इष्टसिद्धिकरे स्फेँ स्फौँ ह्रौँ ह्राँ स्वाहास्वरूपिणी।
विमलमुखि चन्द्रमुखि कोलाहले सर्वे प्रसीद॥८१॥
राजलक्ष्मीश्च भूपानां गृहिणां गृहिणी शुभा। योगिनां योग एव त्वं मतिः सन्न्यासिनामपि॥८२॥
कवीनां विश्वतोदृष्टिर्बुद्धिस्त्वं राजसेविनाम्।
लज्जाऽसि च कुलस्त्रीणां वालानां मधुरा च गीः॥८३॥
भवती समरे स्पर्द्धा साधूनाञ्च क्षमा खलु। सरस्वतीं च वाल्मीके व्यासे वाचालता तथा॥८४॥
श्रुतिः स्मृतिश्च संज्ञा च कवितालहरी तथा। गतिस्त्वमेव भूतानां मत्स्यानामुदकं यथा॥८५॥
जाड्यहन्त्री मन्त्ररूपा कालरूपा कपालिनी। कुमारी तरुणी वृद्धा रसज्ञा रससुन्दरी॥८६॥
स्वर्गे मन्दाकिनी त्वं हि देवदेवीनिषेविता। क्षितावलकनन्दा त्वं कृतार्थान् कुरुषे नरान्॥८७॥
पाताले नागलोकाद्यैर्भोगवत्यसि सेविता। पूर्व्वस्यां दिशि सीता त्वं भद्राख्या चोत्तरत्र वै॥८८॥
पश्चिमस्यां हि वंक्षुस्त्वमलकनन्दा च दक्षिणे। ब्राह्मी त्वं वैष्णवी शैवी कुमारी युवती तथा॥८९॥
कपालमालिनी च त्वं विकटाक्षा सरस्वती। श्मशानवासिनी च त्वं चिताङ्गारास्थिसञ्चया॥९०॥
सरस्वती जाह्नवी च गङ्गा भागीरथी शुभे। हंसी पद्ममुखी पद्मसहस्त्रदलवासिनी॥९१॥

वयं तु मातः परममङ्गलायनवासावगाहदर्शनस्मरणेन विश्वानि तीर्थानि किलेतरथा जातानि च भगवति भवतीमेवाश्रयमाश्रितानि तीर्थत्वेन प्रपञ्चरूपाणि भवत्या एव सर्वरूपायाः

ये पुनस्त्वयि भक्तास्तान् वयं पुनीमहे तद्विभूतिविशेषदिदृक्षया तत्र तत्र भ्रमतः। त्वय्यभक्तांस्तु दूरतस्त्यजामहे। त्वं पुनस्तत्तन्मयत्वाद्देवानां तीर्थानां धर्म्माणां माता सर्वसाक्षिणी प्रणम्यसे शतशः। प्रादुर्भावप्रलयौ नस्त्वत्त इति परमम्, किंब्रूमस्तव महिमा नास्ति यतो ब्रह्महत्यास्त्रीहत्या-गुरुहत्यादिमहापातकातिपातकानामेकाधिकरणञ्च; जनस्तज्जलकणसम्बन्धादिनैव पूतो भवतीति। तद्दर्शनादेव परमब्रह्मपदप्राप्तिः फलमिति च यो महिमपरमाह स तत्तत्पापभागिति यथार्थवादः॥

हे इष्टसिद्धिरूपे, "स्फें, स्फौं, ह्रौं, ह्रां स्वाहा" स्वरूपा, विमलमुखी, चन्द्रमुखी, कोलाहले, खर्वे, प्रसन्न हो जायें। आप राजलक्ष्मी हैं। आप ही गृहगण की शुभा लक्ष्मी हैं। आप ही योगिनी हैं। आप ही योग हैं। आप ही सन्यासियों की बुद्धि, कविगण की सर्वतोमुखी दृष्टि हैं। राजसेवकों की बुद्धि, कुलस्त्रियों की लज्जा तथा बालकों की मधुर वाणी हैं। आप रणभूमि में स्पर्द्धा, साधुओं की क्षमा, कवि वाल्मीकि के हृदय की सरस्वती तथा वेदव्यास की वाग्मिता हैं। आप ही अंगों के साथ श्रुति-स्मृति हैं। आप ही कवितारूपी लक्ष्मी हैं। जैसे जल ही मछलियों का जीवन है, वैसे ही आप समस्त प्राणियों की आधारभूता हैं। आप ही जन्मजन्मान्तरीण जाड्यनाशिनी, मंत्ररूपा, कालरूपा, कपालिनी, कुमारी, तरुणी, वृद्धा, रसज्ञा एवं रससुन्दरी, स्वर्ग में देव-देवी द्वारा सेविता मंदाकिनी हैं। पृथिवी पर आप अलकनन्दारूपा हो मनुष्यों को कृतकृत्य करती हैं। आप ही पाताल में नागगण निषेविता भोगवती हैं। आप पूर्व दिशा में सीता, उत्तर में भद्रा, पश्चिम में वंक्षु, तथा दक्षिण में अलकनन्दा हैं। आप ब्राह्मी, वैष्णवी, शैवी, कुमारी, युवती, कपालमालिनी, विकटाक्षी, सरस्वती, श्मशानवासिनी हैं। चिता के अंगार तथा हड्डियां आपके आभूषण हैं। आप ही सरस्वती, जाह्नवी, गंगा, भागीरथी, हंसी, पद्ममुखी, सहस्रदल कमल निवासिनी हैं। हे माता! हम समस्त तीर्थ रूप परममंगलप्रद आपके तीर पर निवास करती हैं। आपका दर्शन तथा स्मरण अनेक तीर्थ रूप है। आप समस्त तीर्थाश्रय हैं। हम आप की शरण लेती हैं। आप सर्वरूपा हैं। तीर्थत्व प्रदान करना आपकी ही लीला है। जो आपके भक्त हैं, आपकी विभूति विशेष के दर्शनाभिलाषी तथा तीर्थ पर्यटन परायण हैं, उनको हम पवित्र करें। जो आपके भक्त नहीं हैं, उनका हम दूर से त्याग करें। आप सर्वपदार्थमय हैं। आप देवताओं, तीर्थों, लोकों तथा समस्त धर्मों की माता तथा सब की साक्षीरूपा हैं। आप तो सैंकड़ों प्रणाम की अधिकारिणी हैं। हमारी उत्पत्ति तथा लय आपसे ही है। अतः हम आपके तत्त्व को क्या जाने? आपकी महिमा की इयन्ता नहीं है। ब्रह्महत्या-गुरुहत्या प्रभृति महापातक, अतिपातक से लिप्त व्यक्ति भी आपके जलस्पर्श से पावन हो जाता है। आपके दर्शनमात्र से ब्रह्मपद प्राप्ति होती है। जो आप की महिमा से विपरीत बोलता है। वह यथार्थतः पापभागी होगा।।८१-९१।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तानि तीर्थानि निलिल्युस्तत्र सर्वशः।
रुद्राण्या सह गङ्गा सा एकरूपा बभूव ह॥९२॥
जया च विजया तत्र व्याकुले न विलोक्य ताम्। बभूवतुः प्रपश्यन्त्योस्तयोस्तत्र तु पार्वती॥९३॥
अन्तर्हितान्यरूपा सा रुद्राणी समराजत॥९४॥

देवतात्रऋषिमुख्याद्याः सर्वे चान्तर्हिता गताः।
ताभ्यां सहैव सा देवी विस्मिताभ्यां जगाम ह॥९५॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे तीर्थप्रादुर्भावः।।



व्यासदेव कहते हैं—यह स्तव करके वे तीर्थगण वहीं गंगा में लीन हो गये। गंगा भी रुद्राणी पार्वती से एकरूप हो गयीं। तब जया-विजया पार्वती को न देखकर व्याकुल हो गयीं। यह देखकर पार्वती ने गंगा के समक्ष गंगा से सम्मिलित अपने रूप को अन्तर्हित कर दिया तथा स्वयं रुद्राणी रूपेण विराजित हो गयीं। तब देवता एवं ऋषि सभी अन्तर्हित हो गये। विस्मयाभिभूत जया-विजया के साथ देवी रुद्राणी भी वहां से स्वस्थान वापस आ गईं।।९२-९५।।

।पञ्चम अध्याय समाप्त।।



षष्ठोऽध्यायः

तीर्थ उत्पत्ति, गंगामहिमा, गंगास्तव

सख्यावूचतुः

स्नातानि सर्व्वतीर्थानि दृष्टानि च विशेषतः। ज्ञाता च गङ्गा तत्त्वेन त्वत्प्रसादान्महेश्वरि॥१॥
श्रुतश्च परमः पुण्यो देव्यास्तीर्थकृतस्तवः। ये पठन्ति च शृण्वन्ति नास्ति तेषां पराभवः॥२॥
सर्व्वतीर्थावगाहस्य हयमेधस्य च क्रतोः। गयाश्राद्धशतस्यापि फलमेष प्रसूयते॥
अत्र नास्त्येव सन्देहस्त्वत्प्रसादान्महेश्वरि॥३॥
अस्मन्मुखान्निर्गतो यः स्तवस्त्वत्परमाज्ञया। स चाप्येवंविधस्त्वास्तां लोकमातर्नमामहे॥४॥
तीर्थानां वद नामानि यानि दृष्टानि सर्व्वथा॥५॥

सखियां कहती हैं—हे महेश्वरी! आपकी कृपा से हमने सर्वतीर्थ स्नान तथा उनका दर्शन प्राप्त किया। साथ ही विशेषतः गंगातत्व का ज्ञान भी हो गया। आपके आदेश से हमारे मुख से जो स्तोत्र निर्गत हुआ है, वह उसी रूप से लोकों में प्रचारित हो। हे माता! हम आपको प्रणाम करती हैं। हमने जो-जो तीर्थ देखा है, उन सबके नामों को सर्वताभावेन कहिये। जो इसे पढ़ेगा, श्रवण करेगा उसे पराभव की प्राप्ति नहीं होगी। उसे सर्वतीर्थ स्नान का तथा अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होगा। वह व्यक्ति १०० गया श्राद्धफल प्राप्त करेगा। आपकी कृपा से इसमें कोई संदेह नहीं है। आप लोकमाता को प्रणाम। कृपया तीर्थों के नामों को कहिये।।१-५।।

देव्युवाच

प्रोक्तं वः प्रथमं तीर्थं गङ्गाख्यं पावनं परम्। अस्यामन्यानि तीर्थानि कथयामि यथातथम्॥६॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। यस्मात् गङ्गा प्रभवति तीर्थं तत् प्रथमं मतम्॥७॥
ततो ध्रुवादिलाकेषु गङ्गासम्भेदकं स्थलम्। नवसङ्ख्यकमाख्यातं तीर्थं पवनपद्धतौ॥८॥
यत्र गङ्गा प्रभवति महावेगा महावला। सिद्धदेवर्षिप्रमुखास्तत्र स्नान्ति गतागतैः॥९॥
ततः सुमेरुशिरसि धारापात इतीरितम्। तीर्थं यत्रोद्ध्वलोकांस्तु भित्त्वा गङ्गा पपात ह॥१०॥
तत्रैव हि चतुर्द्धाऽभूद्गङ्गा गन्तुं दिशः समाः। अस्यैव चतुरन्तेभ्यो येभ्यो गङ्गावरोहति।
तानि चत्वारि तीर्थानि तेषां नामानि वर्णये॥११॥
सीतालकं नाम पूर्व्वं दक्षिणाञ्चालकालकम्। पश्चिमं वङ्क्षुभद्रञ्च भद्रोत्तरमथोत्तरम्॥१२॥

देवी कहती हैं—परमपावन गंगातीर्थ का वर्णन मैंने पहले ही तुम लोगों से कर दिया। अब गंगा तीर्थ के अन्तर्गत अन्य तीर्थों के सम्बन्ध में भी यथायथ रूप से कहती हूं। जहां से गंगा का उद्भव हुआ है, ज्ञानीगण द्वारा सदा दृष्टिगोचर हो रहे उस परमपद को पहला तीर्थ कहा गया। वही विष्णु का परमपद है। तदनन्तर वायुपथ में ध्रुव आदि ९ लोक जो गंगा प्रवाह से पवित्र हैं वे ९ तीर्थ कहे गये हैं। गंगा आकाश में आविर्भूता होकर पहले यहीं पर महावेगवती तथा महाबलवती हो गयीं। वहां सिद्ध, देवता, ऋषि जा-जाकर स्नान करते हैं। गंगा जहां पर ऊर्ध्वलोक से नीचे गिरती हैं, वह सुमेरुशिखर धारापात कहलाता है। वे वहां से चतुर्दिक् जाने हेतु चतुर्द्धा हो जाती हैं। इस सुमेरु पर्वत से ही गंगा चारों ओर उतरती हैं। वह चारों तीर्थस्थल हैं। उन चारों के नाम कहती हूं। पूर्वतीर्थ सीतालक, दक्षिणतीर्थ नन्दक, पश्चिम वंक्षुभद्र तथा उत्तर का नाम भद्रोत्तर है।।६-१२।।

मेरोरधोऽधः शैलानामष्टानां यत्र यत्र च। संयुक्ता च वियुक्ता च तानि तीर्थानि षोड़श॥१३॥
परपातं पूर्व्वपातं पूर्व्वस्यां गन्धमादने। शाङ्करी विलसन्ती च तीर्थे पश्चिमपर्व्वते॥१४॥
पुण्यप्रभा प्रकाशाक्षी गोमती गोमती तथा। मणिकर्णा मणिश्रोता एतान्युत्तरतोऽपि च॥१५॥
मणिदर्शो महावेगः अवन्ती महावेगिनी। शिवेश्वरी शम्भुमुखी दक्षिणाद्रिष्विमान्युत॥१६॥
पश्चिमोत्तरपूर्व्वेषां गिरीणां मध्यदेशतः। शङ्खपाताख्यकं तीर्थमेव पूर्व्वादिपूर्व्वकम्॥१७॥
हिमालयनितम्बे तु यच शम्भुः शिवोऽविशत्। शिवश्रोतोऽभिधानं तु तीर्थमुक्तं महाफलम्॥१८॥
गङ्गाद्वाराणि चत्वारि तीर्थानि क्षितिमण्डले। केतुमाले कुरौ चैव भद्राश्वे भारते तथा॥१९॥
ब्रह्मद्वारं शिवद्वारं तेजोद्वारं ततः परम्। हरिद्वारं ततस्तत्र सप्तश्रोतं प्रकीर्त्तितम्॥२०॥
सप्तर्षीणां प्रीतयेऽभूत् स्वर्णदी यत्र सप्तधा॥२१॥

सुमेरु से निम्नवर्त्ती अष्टपर्वत (आठ संख्य) पर गंगा पतित होती हैं। उन सब पर्वत से वे १६पर्वतों पर गिरती हैं। इन १६ संख्यक पर्वत के गंगा में गिरने तथा वहां से अलग होने का स्थान पूर्व दिशा में गंधमादन पर परपात एवं पूर्वपात नामक दो तीर्थ हैं। पश्चिम पर्वत पर शांकरी तथा विलसन्ती तीर्थ है। पुण्यप्रभा, प्रकाशाक्षी, गोतमी, गौतमी, मणिकर्णा तथा मणिस्रोत ये सब उत्तरस्थ तीर्थ हैं। मणिदर्शा, महावेगा, अन्तरी, ब्रह्मयोगिनी, शिवेश्वरी, शम्भुमुखा, दक्षिण पर्वत के तीर्थ हैं। पश्चिम-पूर्व तथा उत्तरदेशस्थ पर्वतों के मध्य में पूर्व शंखपात, उत्तर शंखपात तथा पश्चिम शंखपात नामक तीर्थत्रय हैं। हिमालय के नीचे (घाटी में) गंगा का शिवशीर्ष प्रवेश स्थल है। शिवस्रोत नामक महाफलप्रद प्रसिद्ध तीर्थ यहां है। भूमण्डल में गंगाद्वार तीर्थ चार हैं। उनका स्थान है केतुमालवर्ष, कुरुवर्ष, भद्राश्ववर्ष

तथा भारतवर्ष। इन तीर्थ चतुष्टय के नाम हैं ब्रह्मद्वार, शिवद्वार, तेजोद्वार, हरिद्वार। हरिद्वार में गंगा की ७ धारा हैं। सुरधुनि गंगा यहीं से सप्तर्षिगण की प्रसन्नता हेतु सप्तधारा हो गयीं थीं।।१३-२१।।

केतुमाले शिवानद्या सङ्गता यत्र सा नदी। गोकलं नाम तीर्थं तद्विच्छेदात् परगोकलम्॥२२॥
सानुमत्या भानुमत्या गङ्गासङ्गात् कुरौ तथा। पुण्यमालं नाम तीर्थं विच्छेदात् सोममालकम्॥२३॥
भद्राश्वे वैष्णवी नाम माकरीन्नाम चापराम्। सङ्गता विगता गङ्गा तीर्थे साकलदेवले॥२४॥
गङ्गासागरसङ्गं तु श्रोतस्तु पश्चिमे वने। उत्तरे त्रिशतश्रोतः पूर्व्वे सप्तकलेवरम्॥२५॥
भारते कानिचित् सख्यौ तीर्थानि शृणुतं मम॥२६॥
जह्वाख्यं तु ततस्तीर्थं यत्र नाम्ना तु जाह्नवी। ततः प्रयागो नाम स्यात्तत्राक्षयवटोऽपि च॥२७॥
तीर्थेद्वि समगाद् यत्र यमुना च सरस्वती। यत्र मुण्डितमुण्डस्तु म्रियतां यत्र कुत्रचित्॥२८॥
प्रसङ्गतो गतो यत्र नरो लुप्तशिरा भवेत्। ततो वासन्तकं क्षेत्रं वासन्ती यत्र पूज्यते॥२९॥
ततो वाराणसी नाम पूरी शम्भोः सतां गतेः। मरणं दुर्ल्लभं यत्र यत्र गङ्गोत्तरस्त्रवा॥३०॥

गंगा केतुमालवर्षस्थ शिवा नदी से मिलती है। यह संगम गोकल तीर्थ है। जहां वह शिवानदी से अलग होती है, वह है परगोकल तीर्थ। कुरुवर्ष में गंगा का संगम गोमती तथा मान्दुमती नदी से होता है। यह संगमस्थल है पुण्यमाल तीर्थ, विच्छेदस्थल का नाम है सोममाल। भद्राश्ववर्ष में गंगा का संगम वैष्णवी तथा माकरी नदी से होता है। यहीं से वे विच्छिन्ना होकर अलग चलती हैं। इन दोनों नदियों का गंगा से संगमस्थल सकल तीर्थ कहलाता है। विच्छेद स्थानद्वय को देवलतीर्थ कहा गया है। गंगासागरसंगम, पश्चिममारण्यस्रोत, उत्तर त्रिशतस्रोत तथा पूर्व में सप्तस्रोत को भी तीर्थ कहा गया है। हे सखियों! भारत में कितने तीर्थ हैं, यह मुझसे श्रवण करो। जहां से गंगा जान्हवी कहलायी है, वह है जह्नुतीर्थ। तत्पश्चात् प्रयाग है। प्रयाग में अक्षयवटतीर्थ हैं। वहां तीर्थद्वय अर्थात् यमुना नदी तथा सरस्वती का गंगा से संगम हुआ है। यहां मस्तक मुण्डन कराने के पश्चात् मनुष्य कहीं भी मृत क्यों न हो, अर्थात् यदि म्लेच्छ मनुष्य भी प्रयाग में मुण्डन करा लेता है, तब वह मरणकाल में मुक्ति लाभ करता है। इसमें संदेह न करें। तदनन्तर वसन्त क्षेत्र है। इसमें वासन्ती देवी पूजित होती हैं। तदनन्तर सज्जन सम्मता शिवपुरी वाराणसी है। यहां गंगा उत्तरवाहिनी हो जाती हैं। यहां मरण दुर्लभ है। अर्थात् भाग्य से ही यहां मरण अवसर प्राप्त होता है।।२२-३०।।

जले स्थले मुक्तिदात्री स्वर्धुनी मणिकर्णिका। यस्मिन् भगवतः शम्भोः लिङ्गानि सुबहून्युत॥३१॥
भवन्ति तानि तीर्थानि नामभेदात् पृथक्-पृथक्।
विशेषोऽस्यास्ति विज्ञेयः पुराणे मत्स्यभाषिते॥३२॥
ततोऽपि कथितं तीर्थं पद्मावत्याः समागमः।
त्रिवेणी नाम तीर्थञ्च (पृथक् भूते च यत्र वै॥३३॥
सरस्वती च यमुना च प्रयागफलदायकम्। गङ्गासागरसङ्गश्च तीर्थं परमकं मतम्॥३४॥
यत्र धारासहस्त्रेण गङ्गासागरगा भवेत्। सहस्त्रन्ताश्च धाराश्च तीर्थानि कथितानि च॥३५॥
यात्राकाशे स्थले) तोये मोक्षो नृणां सदा भवेत्।

कामेन वा मृतः कामं तं तमाप्नोत्यनन्तरम्।
नारी वाथ नरो वाऽपि यत्र गङ्गाऽपि दुर्ल्लभा॥३६॥
एवं यत्र च यत्रैव गङ्गातीरे द्वये शुभे। शिवालया ब्रह्मविष्णु-ब्राह्मणानां तथालयाः।
तेऽपि तीर्थविशेषेण देवीपीठाश्च ये पुनः॥३७॥
एवं वां कथिता सख्यौ गङ्गायां तीर्थसञ्चयाः। ब्रह्मतीर्थानि चैतानि गङ्गामस्तकजानि वै॥३८॥
क्षितावन्यानि तीर्थानि निबोध विजये जये॥३९॥

।इति बृहद्धर्म्मपुराणे तीर्थप्रादुर्भावे षष्ठोऽध्यायः।।



सुरधुनि गंगा के पास मणिकर्णिका है। यहां का जल-स्थल मुक्तिप्रद है। यहां भगवान् के अनेक लिंग है। ये सभी लिंग स्थल नामभेद के कारण पृथक्-पृथक् तीर्थ हैं। सरस्वती तथा गंगा जहां (मिलकर) से पृथक् होती हैं, वहीं (संगमरूप) त्रिवेणी तीर्थ है। प्रयाग के समान ही फल त्रिवेणी में मिलता है। गंगासागर तीर्थ भी परम तीर्थरूप है। यहां गंगा सहस्रधारावती होकर सागर गमन करती है। ये हजार धारायें अलग-अलग १०००तीर्थरूप हैं। यहां आकाश में, स्थल में किंवा जल में मरण होने पर मानव मुक्त हो जाता है। यहां स्त्री अथवा पुरुष चाहे जिस कामना से मृत हो, अगले जन्म में वह कामना सिद्ध हो जाती है। विमल गंगा तीरद्वय में (दोनों तट पर) जहां-जहां शिवालाय, ब्रह्मा का मंदिर, किंवा विष्णु मंदिर अथवा ब्राह्मणों के आवास हैं, सभी तीर्थ हैं। हे सखियों! गंगा के तीर्थों की कथा तुम लोगों से कह दिया। ये सभी ब्रह्मतीर्थ हैं। ब्रह्मतीर्थों की उत्पत्ति गंगा के मस्तक से हुई है। हे जया-विजया! पृथिवी पर अन्य तीर्थों का वर्णन सुनों।।३१-३९।।



सप्तमोऽध्यायः

तुलसी प्रादुर्भाव

देव्युवाच

निवसन्ति द्विजा यत्र तीर्थं तत् क्षितिमण्डलम्। येषां हि चरणौ तीर्थं सर्व्वतीर्थसमाश्रयौ॥१॥
तीर्थं पद्मवनं प्रोक्तं तुलसीकाननं तथा। तुलसीमूलमारभ्य यावद्धस्तास्तु षोड़श।
दशदिक्षु महत्तीर्थं तदेव सुरवन्दितम्॥२॥
यत्र च श्रीफलतरुः सोऽपि देशः सुतीर्थकं। तुलसीवत् समाख्यातं वृक्षमानगुणं तथा॥३॥

देवी कहतीं हैं—जहां ब्राह्मण निवास करते हैं, वह समस्त भूभाग तीर्थ हैं। ब्राह्मणों का चरणयुगल सर्वतीर्थाश्रय परमतीर्थ है। पद्मवन भी तीर्थ है। तुलसी वन तीर्थ है। तुलसी की जड़ से दसो दिशाओं तक १६हंथ का स्थान देववन्दित महातीर्थ है। जहां बिल्ववृक्ष है, वह भी सुतीर्थ है। आंवला के वृक्ष का भी प्रभाव इस संदर्भ में तुलसी जैसा ही है।।१-३।।

सख्यावूचतुः

मातर्दुर्गे महेशानि तुलसीविल्ववृक्षयोः। जन्ममाहात्म्यतत्त्वानि कथयस्व कृपामयि॥४॥

सखियां कहती हैं—हे कृपामयी, महेशानी, माता, दुर्गा! तुलसीवृक्ष तथा बिल्ववृक्ष का जन्म, उसकी महिमा तथा उसके स्वरूपतत्व को कहिये।।४।।

देव्युवाच

पुरा कैलासशिरसि ब्राह्मणः कश्चिदास ह। धर्म्मदेव इति ख्यातः साधुर्विष्णुपरायणः॥५॥
वृन्दा नाम तस्य पत्नी ब्राह्मणी धर्म्मचारिणी। सदा पत्यनुगा साध्वी पतिप्रेष्ठा सुखान्विता॥६॥
पत्याज्ञया सदा देवकार्य्याणि कुरुते सती। स्वयञ्च देवपूजायां पतिपूजाविधावपि॥७॥
नियुक्ता सततं सख्यौ तिष्ठत्येव सुखान्विता। तपस्विनी सविनया स्मितवक्त्रा सदा सती।
सल्लक्षणैः समैर्युक्ता सम्मान्या सर्व्वदा जनैः॥८॥

देवी कहतीं हैं—हे सखीगण! पूर्वकाल में कैलास शिखर पर विष्णुभक्त धर्मदेव नामक प्रसिद्ध ब्राह्मण निवास करता था। उसकी पत्नी धर्मचारिणी वृंदा नामक ब्राह्मणी थी। वह साध्वी सतत् स्वामी की अनुगामिनी तथा पति में निष्ठिता तथा सुखान्विता थी। वह पतिदेव की आज्ञा का पालन करने वाली तथा देवकार्य में तत्पर सती थी। हे सखियों! वह सती वृंदा स्वामी के आदेश से देव सेवारत रहती। वह ही स्वामी के पूजन, देव पूजा कर्म में स्वयं लगी रहती थी। यह सती सर्वदा मुस्कानयुक्त, तपः एवं विनय सम्पन्न एवं उत्तम लक्षणान्विता रहती थी। सभी लोग उसका सम्मान करते रहते थे।।५-८।।

धर्म्मदेवस्तु सततं कृष्णभक्तिपरायणः। गायन् सदा शिवं कृष्णं पर्य्यटत्यृषिमण्डले॥९॥
दर्शनीयश्च धर्म्मात्मा धर्म्मज्ञश्च स्मिताननः। पारगो गानविद्यायां सुस्वरः साधुसम्मतः॥१०॥
सदा सुस्वरगानेन विष्णुभक्त्या च शीलतः। रमयन् सर्व्वलोकानां चित्तं भ्रमति पावनः॥११॥
एकदा स द्विजः सख्यौ गायन् ब्राह्मणसंसदि। अतीयाय गृहे कालं भोजनस्य द्विजोत्तमः॥१२॥
वृन्दा तु तद्गृहे भार्य्या संपूज्यातिथिमागतम्। पतिं प्रणम्य देवांश्च पूजयित्वा जलं पपौ॥१३॥

सतत् कृष्णभक्ति तत्पर धर्मदेव सदाशिव एवं कृष्ण नाम का गायन करते ऋषि मण्डली में पर्यटन करते रहते थे। वे दर्शनीय आकृति वाले, धर्मात्मा तथा धर्मज्ञ थे। उनकी मुखमुद्रा सदा प्रसन्न रहती थी। वे सुस्वरयुक्त, गायन विद्या में पारंगत तथा साधुगण से सम्मानित व्यक्ति थे। वे परमपावन धर्मदेव देवगण के गीत, विष्णुभक्ति तथा अपने स्वभाव द्वारा सभी का मनोरंजन करते रहते थे। इसी प्रकार वे घूमते रहते थे। हे सखियों! एक बार वे द्विजोत्तम ब्राह्मण सभा में गायन में इतने विभोर हो गये कि गृह आकर भोजन काल भी बीत गया। इधर उनकी पत्नी वृन्दा ने गृह में आये अतिथि की पूजा भोजनादि सम्पन्न पति तथा देवगण को मानस प्रणाम करके जल पी लिया।।९-१३।।

पश्चादागत्य तद्भर्त्ता धर्म्मदेवः स्वकालयम्।
विलोक्य पत्नीं वारीणि पीत्वा गेहे स्थितां तदा।
हठाद्दैववलाद् साध्वीं शशाप राक्षसीमिति॥१४॥

सा शप्ता स्वामिना सद्यो राक्षसं भावमागता। विचचार सदा लोके कैलासशिखरे शुभे॥१५॥

तदनन्तर पति धर्मदेव ने गृह आकर देखा कि उनकी पत्नी ने जल पी लिया है तथा गृह में स्थित है। तब उन्होंने हठात् अपनी साध्वी स्त्री को राक्षसी होने का अभिशाप प्रदान किया। वृन्दा भी पति के शाप से तत्काल राक्षसी होकर उत्तम कैलास शिखर पर विचरने लगी।।१४-१५।।

आगत्य क्ष्मातलं लोकान् भक्षयामास सा क्षुधा।
सदा क्षुधापीड़िता च सरोषा सततञ्च सा॥१६॥

वनेवने व्याघ्र-सिंह-गज-खङ्गिशशादिकान्। खादयामास सा वृन्दा मृगाश्वमहिषान् बहून्॥१७॥

पूर्व्वानुभूतधर्म्मेण त्यक्त्वा गोविप्रवैष्णवान्।
सर्व्वान् जन्तून् मुदा भुक्त्वा महीं चक्रेऽस्थिमालिनीम्॥१८॥

ततः सस्मार कैलासशिखरं गन्तुमिच्छती। उपोषिता त्रिरात्रञ्च क्षुधाशीला बुभुक्षिता॥१९॥

आगत्य गिरिमूर्द्धानं चिन्तयामास खादितुम्।
सर्व्वेऽत्र जन्तवः शैवा ब्राह्मणास्तु स्वभावतः॥२०॥

को मे दन्तप्रहारस्य पात्रं भवतु सम्प्रति। वृक्षा अपि न मे भक्ष्याः शिवलोकेऽत्र तन्मयाः॥२१॥

एवं चिन्ताकुलां वृन्दां राक्षसीति च विश्रुताम्। दृष्ट्वा सर्व्वे मिथो विप्रा जगदुः शिवपर्वते॥२२॥

इयं वृन्दा गुणैर्युक्ता सदा दोषेण वर्ज्जिता। जगाम राक्षसं भावं न च दैवात् परं वलम्॥२३॥

स्त्रीणां लोलुपता नाम प्रधानं दोष उच्यते। निर्द्दोषायां सोऽप्यमुष्यां न च दैवात् परं वलम्॥२४॥

अतएव वलं नैव यद्वाहुवलमुच्यते। भाग्यं विभर्त्ति क्षीणोऽपि न च देवात् परं वलम्॥२५॥

धनं बलं मतं कैश्चित् कैश्चित् सामर्थ्यमुच्यते। वलं बुद्धिर्मतं कैश्चित् न च दैवात् परं वलम्॥२६॥

वह पृथिवी पर उतर कर अनेक लोगों का भोजन क्षुधाकातर होकर करने लगी। वह हमेशा ही क्षुधा से त्रस्त रहती थी और क्षुधा से कातर हो क्रोधपूर्ण चित्त से वनों में व्याघ्र, सिंह, हाथी, गैंडा, खरगोश, मृग, अश्व, महिष आदि अनेक प्राणीगण का भोजन करने लगी। वह पूर्वकालीन धर्म संस्कार के कारण ब्राह्मण वैष्णव-शैव तथा गोजाति का भक्षण नहीं करती थी। वह आनन्दपूर्वक अन्य प्राणियों का भोजन करती तथा वहां की धरती उसके खाये प्राणीगण की अस्थियों से भर गयी। एक बार उसे कैलास शिखर का स्मरण हो आया तथा वह वहां जाने की अभिलाषिणी हो गयी। स्वभावतः क्षुधार्त रहने वाली वृन्दा तीन दिन से भूखी थी। वह भोजन की चिन्ता में गिरि शिखर पर पहुंची। वहां सर्वत्र ही प्राणीगण शैव तथा ब्राह्मण होने के कारण उसके लिये अभक्ष्य थे। तब वह सोचने लगी कि—अब मैं किस पर अपने दांतों का आघात करके पकड़ूं?

यहां के वृक्ष भी शिवामय तथा मेरे लिये भक्ष्य नहीं है।' राक्षसी वृन्दा के नाम से प्रसिद्ध चिन्ताकुला वृन्दा को कैलास पर देखकर ब्राह्मणगण वार्त्ता करने लगे कि "इस गुणी दोषरहिता वृन्दा को राक्षसत्व प्राप्त हुआ है। इसलिये दैव ही परमबल है। स्त्री जाति का प्रधान दोष है लोलुपता। इस दोषरहित वृन्दा को भी लोलुपता दोष लग गया। अतः दैव की अपेक्षा महाबली और कौन है? इसलिये बाहुबल कदापि बल नहीं है। बाहुबल न भी हो तब भी व्यक्ति भाग्यधर

देखा गया है। अतः दैव ही परमबल है। कोई धन को बल कहते हैं, कोई सामर्थ्य को तो कोई बुद्धि को बल मानते हैं। लेकिन सारतत्त्व तो यह है कि दैव से बड़ा कोई भी बल नहीं है।।१६-२६।।

तपोवलं मतं कैश्चित् ब्राह्मणत्वञ्च कैश्चन। ऐश्वर्य्यञ्च वलं कैश्चित् न च दैवात् परं वलम्॥२८॥
वलवान् बुद्धिमांश्चापि जनः परवशः सदा। आत्मानं मन्यते श्रेष्ठं न च दैवात् परं वलम्॥२९॥
कर्त्तव्ये नियमाचारे यत्नवान् सततं भवेत्। जानीयात् सततं धीरो न च देवात् परं वलम्॥३०॥
यत्ने कृतेऽपि सुदृढ़े यदि कार्य्यं न सिध्यति। तदा नानुभवेद् दुःखं न च दैवात् परं वलम्॥३१॥

कोई तप को, कोई ब्राह्मणत्व को, कोई ऐश्वर्य को बल मानते हैं, तथापि दैव से महान् कोई भी बल नहीं है। लोग धनी तथा बुद्धिमान होने के कारण अपने को श्रेष्ठ मानने लगते हैं, तथापि वे सदा परवश ही है। तभी दैव सबसे बड़ा बल है। धीर व्यक्ति नियम-आचार तथा कर्मपालनार्थ सतत् यत्नवान होकर भी सदा याद रखें कि दैव से बड़ा कोई बल नहीं है। यदि महान् प्रयत्न से भी कार्य सिद्धि न होती हो तब दुःखबोध न करे, क्योंकि दैव ही महानतम बल है।।२७-३१।।

दैवं पुरुषकारेण यो निवर्त्तयितुमिच्छति। न स जानाति मूर्खत्वात् न च दैवात् परं वलम्॥३२॥
दैवेन लभ्यते स्वर्गो दैवेन मोक्ष इष्यते। त्रैलोक्यं दैववशगं न च दैवात् परं वलम्॥३३॥
दैवं तु प्राक्तनं कर्म किम्वेश्वरविचेष्टितम्। उभयं तुल्यमेवोक्तं तस्मात् दैवं परं मतम्॥३४॥
इयं तु पूर्वधर्मेण युक्तैव मोक्षमाप्स्यति। श्रुत्वा कृष्णस्य नामानि लब्ध्वा नाममयीं तनुम्॥३५॥

जो पुरुषार्थ की सहायता से दैव को रोकना चाहता है, उस मूर्ख को यह ज्ञात नहीं है कि दैव से बड़ा कोई बल नहीं है। दैवबल से ही स्वर्ग तथा मोक्ष मिलता है। त्रैलोक्य भी दैव के वशीभूत है। अतः दैव से बड़ा कोई बल नहीं है। प्राक्तन कर्म तथा ईश्वर की इच्छा ही दैव है। अतः ये दोनों तुल्य हैं। इसलिये दैव ही परमबल है। पूर्वकाल में धर्मयुता यह वृन्दा कृष्णनाम श्रवण तथा कृष्ण नामान्वित देह प्राप्त करके मोक्षलाभ करेगी।।३२-३५।।

इत्युक्त्वा ते जगुः कृष्णं सर्वपापहरै रवैः। शुश्राव सततं वृन्दा ब्राह्मणी शापराक्षसी॥३६॥
यत्र यत्र व्रजन्ती सा क्षुधया पीड़ितापि च। तत्र तत्र हरेर्नामावलीं शुश्राव सर्वदा॥३७॥
सा तु श्रुत्वा हरेर्नाम सप्ताहं समुपोष्य च। जहावसून् गिरौ तत्र कैलासे शिवधर्म्मिणि॥३८॥
अथ सम्वत्सरेऽतीते महादेवी मया सह। विचरन् वनशोभां वै द्रष्टुं सख्यौ कुतूहलात्॥३९॥
ददर्श मालती-मल्ली-यूथिकातगराह्वयान्।
कुन्द-मन्दार-सेफाली-कुटजान् कनकाह्वयान्॥४०॥
चम्पकं केशरञ्चैव शिरीषं नवमल्लिकाः। मुचुकुन्दञ्च वन्धूकं पुष्पवृक्षान् पृथक्-पृथक्॥४१॥

यह कहकर वे ब्राह्मण उच्चस्वर से सर्वपापघ्न श्रीहरि का नाम कीर्त्तन करने लगे। पापराक्षसीरूपा ब्राह्मणी वृन्दा उसे सतत् सुनने लगी। वह क्षुधा से पीड़ित जहां-जहां जाती, वहीं-वहीं सतत् उसे हरि नाम की ध्वनि श्रुतिगोचर होती रहती। इस प्रकार वृन्दा ने सतत् हरिनाम सुना तथा एक सप्ताह उसे भोजन नहीं मिला। इससे उसने शिव धर्म भूषित कैलास पर प्राणत्याग कर दिया। हे सखीगण! एक वर्ष बीत जाने पर महादेव वन शोभा दर्शन करते-करते मेरे साथ (पार्वती के साथ) विचरण कर रहे थे। वहां उन्होंने मालती, मल्लिका, यूथिका, टगर, कुन्द, मंदार,

शेफालिका, कुटज, धतूरा, चंपक, बकुल, शिरीष, नवमालिका, मुचकुन्द तथा बंधूक पुष्प वृक्षों का उन्होंने पृथक्तः दर्शन किया।।३६-४१।।

ततः कदम्बपनमच्यूताम्राम्रातकादिकान्। अश्वत्थवटनिम्बादिं तथा शिंशपचन्दनान्॥४२॥

लाङ्गली-ताल-हिन्ताल-गुवाकान् वेत्रकीचकान्।
खर्ज्जूरान् वेतसान् नीपान् नलान् शालपियालकान्॥४३॥

नमेरुकोविदारादीन् ददर्श विपिने शिवः। एवं चचार विपिने फुल्लपङ्कजसारसे॥४४॥
कूजत्कोकिलकेकालीभ्रमरादिकपक्षिषु। गणैः सार्द्धं प्रगायद्भिर्नृत्यद्भिर्वाद्यकारिभिः॥४५॥
करवाद्यं वक्त्रवाद्यं कुर्व्वद्भिश्च मुदान्वितैः। हूङ्कारघोषं विविधं प्रोत्फालगमनं तथा॥४६॥
कुर्व्वद्भिः सह मुदितो विचचार वृषध्वजः। तत्र पुष्करिणीतीरे प्रफुल्लकमलाकरे॥४७॥
ददर्श नारीं ज्वलन्तीं मृतां वृन्दां हि राक्षसीं। मामुवाच महेशानो दृष्ट्वा तद्राक्षसीवपुः॥४८॥
दृश्यतां गिरिजे वृन्दा राक्षसी ब्राह्मणी पुरा। विष्णुभक्तस्य विप्रस्य भार्य्या परमवैष्णवी॥४९॥
दैवेन राक्षसी भूत्वा मृतापि शोभते परा। संवत्सरमृतायाश्च नास्या नष्टमभूद् वपुः॥५०॥
श्रीविष्णुभक्तिमाहात्म्यं तन्नामश्रवणस्य च। अस्या अङ्गेषु किं नाम दृश्यते देववन्दिते॥५१॥

तदनन्तर कदम्ब, पनस, आम्र, आमड़ा, पीपल, वट, नीम, शिंशपा, चंदन, लांगली, ताल, हिन्ताल, गुवाक, बेत, बांस, खजूर, वेतस, अन्य जाति का कदम्ब, शाल, पियाल, नमेरु तथा कोविदार वृक्षों को शंकर ने वन में देखा। शिव इस प्रकार वन में विचरण करने लगे। स्थलपत्र तथा पद्म वहां खिले थे और भौंरे, कोकिल, मयूर प्रभृति पक्षी वहां कूजन कर रहे थे। शिव के गण प्रथमादि वहां हर्षित होकर नृत्य-गीत-वाद्य-करवाद्य (ताली) बजा रहे थे। विविध घोर हुंकार का शब्द भी हो रहा था। वृषध्वज इन सभी प्रथमों के साथ सानन्दित होकर विचरने लगे। उस वन में शिव ने खिले कमलों से शोभित पुस्कारिणी के तीर पर एक मृत रमणी का शव देखा। वह रमणी तब भी तेज से उद्भासित थी। महेश्वर ने यह देखकर मुझसे कहा—"देखो पार्वती! यह वृन्दा राक्षसी है। यह पहले विष्णुभक्त ब्राह्मण की भार्या तथा परम वैष्णवी थी। दैववशात् राक्षसी होकर मरी है। एक वर्ष इसे मृत हुये हो गया, तथापि इसी पहले की कान्ति यथावत है तथा देह नष्ट नहीं हो सकी। यह कृष्णभक्ति तथा उनके नाम श्रवण की महिमा है। हे देववन्दिते! इस वृन्दा के देह पर कौन-सा नाम अंकित है देखो!"।।४२-५१।।

एवं श्रुत्वा तु वाक्यं तन्महेशस्य सखीद्वय।
दृष्ट्वा वृन्दां मृतां दीप्त्या ज्वलन्तीं विस्मिताभवम्॥५२॥

प्रत्यवोचञ्च देवेशं देवदेव प्रभो हर। दृश्यन्ते विष्णुनामानि अस्या अवयवेषु नु॥५३॥
द्वादशाक्षरमन्त्रश्च दृश्यतेऽस्या वपुष्युत। अपठंश्च तदा मन्त्रं गणाः शम्भोर्मुदान्विताः॥५४॥
तैजसन्तत् शरीरञ्च पस्पृशुः शिवकिङ्कराः। तेषां संस्पर्शमात्रेण खण्डखण्डीकृतं बभौ॥५५॥
प्रतिखण्डेषु तं मन्त्रं ददृशुर्द्वादशाक्षरम्। ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति महाफलम्॥५६॥
मन्त्रस्य प्रतिवर्णस्य गर्भे नामसहस्रकम्। एवं तस्याः शरीरं तद्ददृशुः खण्डकोटिशः॥५७॥

ततो मत्पुरतः साक्षात् शङ्करो लोकशङ्करः। उवाच सगणान् प्रीतो हर्षितांश्च स्वभावतः॥५८॥

हे सखियों! महेश्वर का यह कथन सुनकर मैं वृन्दा के शरीर की उज्जवलता का अवलोकन करके मैं विस्मित हो गयी। तब उसके देह को भगवती ने सम्यक् रूप से देखा। देखकर भगवती ने भगवान् शिव से कहा—"हे प्रभो! देवदेव! इस राक्षसी वृन्दा के सभी अंगों पर विष्णु नाम लक्षित हो रहा है! इसके सम्पूर्ण देह पर द्वादशाक्षर विष्णुमंत्र अंकित है।" तब शिवगणों ने इस मंत्र का हर्षित होकर पाठ किया। तदनंतर उन्होंने उस तैजस शरीर का स्पर्श किया। शिवगणों द्वारा स्पर्श होते ही वृन्दा का देह टुकड़े-टुकड़े होकर दीप्तियुक्त हो गया। प्रत्येक खण्ड पर उस महाफलप्रद प्रणवयुक्त मंत्र "ॐ० नमो भगवते वासुदेवाय" को सभी ने देखा। सबने यह भी देखा कि इसके प्रत्येक वर्ण के गर्भ में विष्णु का सहस्रनाम भी है। वृन्दा के नानाखण्डों में विभक्त देह को इसी प्रकार से देखा गया। तदनन्तर विश्व मंगलदाता शंकर हम सबसे प्रसन्नचित्त होकर तथा किंकरो से भी प्रीतिपूर्वक कहने लगे।।५२-५८।।

महादेव उवाच

इयं वृन्दा राक्षसी तु धर्मदेवस्य सुन्दरी। वैष्णवी याभिशप्तापि ब्रह्महिंसां न चाकरोत्॥५९॥
न वृथा भवितुं योग्या विष्णुप्रीतिकरी त्वियम्। विष्णप्रीतिं करोत्वेषा तरुर्भूत्वा महीतले॥६०॥
शरीरमज्ज्यतामस्याः श्रीविष्णुप्रीतये गणाः।
अस्याः पत्रेण वृन्दायाः पूजितः स्यात् स्वयं हरिः॥६१॥
नान्येनेति सुविज्ञेयं मणिमुक्तादिनापि च। नामास्यास्तुलसीत्यस्तु पवित्रायाः सुपावनम्॥६२॥
तकारो मरणं प्रोक्तं तद्योगः स्यादुकारतः। मृता लसति चेत्येवं तुलसीत्येव गीयते॥६३॥
स्थितः प्रतिदलेष्वस्या मन्त्रो द्वादशवर्णकः। अधिष्ठात्री देवतास्यामावां देवीमहेश्वरौ।
नारायण उपास्योऽस्याः प्रियेयं वैष्णवी मता॥६४॥

महादेव कहते हैं—यह वृन्दा राक्षसी धर्मदेव की पत्नी वैष्णवी है। अभिशप्ता होने पर भी इसने ब्राह्मण हिंसा नहीं किया। इसकी देह का वृथा नष्ट होना उचित नहीं है। यह विष्णु से भक्ति करने वाली है। अतः वृन्दा वृक्षरूपा होकर विष्णु की प्रसन्नता का वर्द्धन करे। हे प्रथमगण! विष्णु की प्रसन्नता हेतु इसकी देह को बो दो। हरि की पूजा वृक्षरूपा वृंदा की पत्तियों से जितनी उत्कृष्ट होगी, वैसी पूजा मणि-मुक्तादि अन्य वस्तु से नहीं हो सकती। इसका नाम होगा, तुलसी, जो पवित्रपावन रूपा होगी।

'त' का अर्थ है मरण। इसमें लगा है उकार अर्थात् योग। जो मरणयोग्य अर्थात् मृत है। तब है 'लकार' तथा अन्त में है 'सी'। अर्थात् ल + सी = लसी अर्थ है कान्ति। अर्थात् जो 'तु' मृत होकर भी लसी कान्तिपूर्ण है, वह है तुलसी। तुलसी के प्रत्येक पत्ते में द्वादश अक्षर विष्णुमंत्र स्थित है। तुलसी के अधिष्ठात् देवता है, गिरिजा एवं शंकर। इसके उपास्य हैं नारायण। यह है वैष्णवी प्रिया।।५९-६४।।

अत्रान्तरे धर्मदेवः प्रियां स्मृत्वा समागतः। क्षीणो मलीमसः शोकाद् वृन्दा वृन्देति वै रुदन्॥६५॥
क्वासि वृन्दे प्रिये कान्ते मयापकरुणात्मना।
राक्षसीत्यभिशप्तासि निर्दोषा मामिहास्तु धिक्॥६६॥
शिवेन सान्त्वितो विप्रः स्थिरोभूत्वा प्रणम्य तम्। पुनर्जगर्ह चात्मानं धिङ्माहं येन मोहितः।
शिवं साक्षात् महादेवं नाभिवन्दितवानहम्॥६७॥

इधर धर्मदेव पत्नी का स्मरण कर-करके शोक से क्षीण तथा मलिन होते जा रहे थे। तब वे वृन्दा-वृन्दा पुकारते तथा रुदन करते वहां आये। वे कह रहे थे-"प्रिये-कान्ते-वृन्दे! तुम कहां हो? तुम निर्दोष हो। मैं निष्ठुर हूं। मैंने तुमको राक्षसी होने का शाप दिया। मुझे धिक्कार है।" शिव ने उसको सान्त्वना प्रदान किया। तब ब्राह्मण धर्म शिव को प्रणाम करके पुनः अपनी निन्दा कहने लगे—"मुझे धिक्कार हैं जो मैंने साक्षात् महादेव शिव को प्रणाम नहीं किया"।।६५-६७।।

देव्युवाच

ज्ञात्वा वृत्तान्तमस्याः स वृन्दायाः परितोषदम्।
शिवं शान्तं महेशानं प्रोचे विप्रः स धार्मिकः॥६८॥
यदि नारायणार्थेऽयं बभूव तुलसीतरुः। तरुमूलमहञ्च स्यां प्रियायाः प्रियकाम्यया॥६९॥
एवमेवेत्याह शम्भुर्धर्म्मदेवस्तथाभवत्। शिवाज्ञया शिवगणाः पृथ्वीमागत्य हर्षिताः।
रोपयामास तद्देहं कालिन्दीतट उत्तमे॥७०॥
यत्र गोवर्द्धनो नाम गिरी राजति राजितः। अर्द्धचन्द्राकृतिस्तत्र देशो यमुनया कृतः॥७१॥
नाम्ना वृन्दावनो रम्यः कृष्णप्रीतिस्थलं परम्।
त्रैलोक्यगोपनीयोऽसौ देशो वृन्दावनाख्यकः॥७२॥
योगिनां शिरसां वेष्टं सहस्रदलपङ्कजम्। रोपयित्वा ययुः शैवाः कैलासं श्वेतपर्व्वतम्॥७३॥

।।इति बृहद्धर्म्मपुराणे तुलसीप्रादुर्भावे सप्तमोऽध्यायः।।



देवी कहती हैं—अब वह धार्मिक ब्राह्मण संतोषप्रद वृन्दा वृत्तान्त से अवगत हो गया। उसने महेश्वर से कहा—"यदि मेरी प्रिया वृन्दा नारायण हेतु तुलसी वृक्ष है, तब मैं भी प्रिया की प्रीतिकामनार्थ उस वृक्ष की मूल हो जाऊं।" तब शिव ने तथास्तु कहा। शिवगणों ने शिव के आदेश से पृथिवी पर आकर कालिन्दी के उत्तम तट पर वृन्दा देह को रोपित किया, जहां अर्द्धचंद्राकृति पर्वतराज गोवर्द्धन स्थित हैं। उस यमुना से घिरे प्रदेश को वृन्दावन कहा गया। यह त्रैलोक्य में गुप्त है। यह कृष्णप्रीति सम्पादक स्थल है। मस्तकस्थ सहस्र योगीगण का तीर्थ है। शैवोपासकगण शिवगण ने वृन्दावन में वृन्दा का देहरोपण किया तथा श्वेतपर्वत कैलाश चले गये।।।६८-७३।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।



अष्टमोऽध्यायः

तुलसी महिमा

देव्युवाच

अथ सख्यौ कार्त्तिके वै मासि दामोदरप्रिये।
अमावास्यातिथौ पृथ्व्यां प्रातः प्रादुर्बभूव सा।
तुलसी प्रीतये विष्णोः शिवायाश्च शिवस्य च॥१॥
प्रादुर्भूते तरौ तस्मिन् देवो नारायणः प्रभुः। आजगाम महेशेन ददर्श तुलसीं भुवि॥२॥
महामेघप्रभां श्यामां स्कन्धपल्लवशोभिताम्।
दलैरसङ्ख्यैः सम्पूर्णां महामन्त्रमयीं स्थिराम्
ज्वलन्तीं स्वेन महसा गन्धामोदितदिङ्मुखाम्॥३॥४॥
तां विष्णुः स्वयमालोक्य हर्षितः सशिवोऽभवत्। ततो मूर्त्तिमती देवी बभूव तुलसी शुभा॥५॥

देवी कहती हैं—हे सखियों! विष्णु-शिव तथा दुर्गा को प्रसन्न करने वाली तुलसी विष्णु को प्रिय है। ये कार्तिकी अमावस्या को प्रातःकाल भूतल पर प्रादुर्भूत हुयी थीं। तुलसीवृक्ष के आविर्भूत होने पर प्रभु नारायण देव तथा शिव ने पृथिवी पर आगमन करके इनका दर्शन किया। उन्होंने देखा कि तुलसी महामेघ के समान कृष्ण वर्णा, तना तथा पत्तों से शोभिता, असंख्य पत्रयुता, द्वादशाक्षर महामंत्रमयी तथा स्थिरा हैं। उन्होंने यह भी देखा कि वह तेज से जाज्वल्यमान हैं। उनके सौरभ से सभी दिशायें आमोदित हैं। शिव तथा विष्णु उसका दर्शन करके आनन्दमग्न हो गये। तदनन्तर कल्याणी तुलसी देवी मूर्त्तिमती होकर प्रत्यक्ष हो गयीं।।१-५।।

श्यामाङ्गी चारुवदना द्विभुजा स्मितभाषिणी। शङ्खपद्मकरा श्वेतवसना युवती सती॥६॥
नानालङ्कारभूषाढ्या सिन्दूरारुणभालिका। मधुपैर्गन्धसंमुग्धैरालीढ़वदनाम्बुजा।
दृष्ट्वा नारायणं देवं तुष्टावानन्दनन्दिता॥७॥

उनकी मूर्त्ति श्याम अंगों वाली, चारुमुखी, द्विभुजा थी। बोलते समय उनकी तनिक हास्ययुक्त मुखमुद्रा रहती थी। हाथों में पद्म तथा शंख था। उन्होंने श्वेत वस्त्र पहन रखा था। वे नाना अलंकार से सज्जिता थीं। वे युवती तथा सती थीं। उनका ललाट सिन्दूर से आरक्त वर्ण था। उनकी सुगन्ध से सुगन्धमुग्ध मधुकरों ने उनके मुखरूपी कमल को व्याप्त कर दिया था। तुलसीदेवी नारायण का दर्शन पाकर उनका स्तवगान करने लगीं।।५-७।।

तुलस्युवाच

ॐ नमो भगवते तुभ्यं नारायण जगत्पते। केवलानुभवानन्दस्वरूप परमेश्वर॥८॥
कंसारये महेशाय केशवाय नमोऽस्तु ते। हरये नरसिंहाय श्रीकान्ताय नमोनमः॥९॥
नमो भक्त्यैकलभ्याय तर्कदूराय ते नमः। नमो वेदान्तवेद्याय विद्यावेद्याय ते नमः॥१०॥
नमस्ते श्रुतिगम्याय श्रुतिस्तुत्याय ते नमः। नमो नीलघनश्यामतनवे धृतमूर्त्तये॥११॥

बहुरूपोरुरूपाय नीरूपाय नमोनमः। पूजकाय च पूज्याय पत्रपुष्पफलैः प्रभो॥१२॥
अभवाय भवच्छेत्रे सुखदुःखप्रदाय च। तवैवाहं सुखकरा त्वञ्च मे प्रभुरीश्वर।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं हरे नमः॥१३॥

तुलसी कहती हैं—आप नारायण देव को प्रणाम! आप जगत्पति केवल चिदानन्दरूप परमेश्वर हैं। आपको प्रणाम! हे कंस का वध करने वाले, महेश्वर केशव! आपको प्रणाम! हे हरि, श्रीकान्त, नरसिंह आपको प्रणाम! आप केवल भक्ति से प्राप्त होते हैं। आप तर्क से परे हैं। आपको प्रणाम! हे वेदान्तवेद्य! आप ब्रह्मज्ञान से प्राप्त होते हैं। आपको प्रणाम! हे श्रुतिगम्य, श्रुतिस्तुत्य! आपको प्रणाम! हे गृहीत देह, नीलनीरद श्याम कलेवर! आपको प्रणाम! हे बहुरूप, उर्ध्वरूप, निरूप! आपको बारम्बार प्रणाम! हे प्रभो! आप पूजक हैं तथापि पत्र-पुष्प-जल से पूज्य हैं। हे सुख-दुःखदाता! आप अनादि तथा संसार छेदक हैं। मैं आपसे भक्ति करती हूं। आप मेरे प्रभु ईश्वर हैं। आपको प्रणाम, आपको प्रणाम, आपको प्रणाम, हरि को प्रणाम।।८-१३।।

इति स्तुत्वा दण्डवत् सा कृत्वा तञ्च प्रदक्षिणम्। पुनस्तुष्टाव तुष्टात्मा वचोभिरमलैः सखि॥१४॥
ॐकाराय नमस्तेऽस्तु शङ्कराय नमोनमः। शिवाय हरये दक्षबलिक्रतुहराय ते॥१५॥
एकत्रिपुरहन्त्रे ते कैटभान्धकघातिने। श्रीगौरीपतये कृष्ण महादेव नमोऽस्तु ते॥१६॥

इस प्रकार से स्तुति करके तुलसी ने नारायण की प्रदक्षिणा तथा दण्डवत् प्रणाम किया। हे सखी! तदनन्तर वे संतुष्ट होकर निर्मल वाक्यों से पुनः स्तुति करने लगीं। उन्होंने अभेद भावना रूपी ज्ञान से (हरि-हर में बिना भेद दर्शन किये) स्तुति किया—हे प्रणव स्वरूप शंकर! आपको पुनः-पुनः प्रणाम। हे शिव, हे हरे! हे दक्षयज्ञ नाशक! हे बलि को छलने वाले, सौमपुर का नाश करने वाले, त्रिपुरारि, कैटभ अन्धकसूदन! आप महादेव को प्रणाम! गौरीपति, कृष्ण को प्रणाम!।।१४-१६।।

इत्यादि स्तुवतीं देवीं तुलसीं शिवसन्निधौ। जगाद वरदो देवो देवकीनन्दनो हरिः॥१७॥

हरिरुवाच

तुलसि श्रीमति श्रेष्ठे वृन्दे वृन्दावने प्रिये। स्थिरीभव मम प्रीत्यै यावदाचन्द्रतारकम्॥१८॥
सदाभिनन्द्या वन्द्या च सुरासुरनरोरगैः। तव पत्रमृते पूजा नाद्यारभ्य भवेन्मम॥१९॥

इस प्रकार से स्तव करने पर तुलसीदेवी से देवकी पुत्र हरि ने शिव के ही समीप कहा—'हे श्रीमती तुलसी! वृन्दावन प्रिये वृन्दे! जब तक चन्द-तारक की स्थिति रहेगी, तब तक मेरी प्रसन्नता हेतु तुम पृथिवी पर रहोगी। सुर-असुर-नर-नागादि सर्वदा तुम्हारा अभिनन्दन करेंगे। तुम्हारी वन्दना होगी। आज से तुम्हारे बिना (तुम्हारी पत्ती बिना) मेरी पूजा सम्पन्न नहीं होगी।।१७-१९।।

एकतः सर्व्वनैवेद्यनानापुष्पविभूषणम्। एकतः पचमेकं ते द्वादशाक्षरमन्त्रवत्॥२०॥
त्वां यः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणमेत् दण्डवत् तरुम्। ससप्तद्वीपा पृथिवी कृता तेन प्रदक्षिणा॥२१॥
श्राद्धे च तर्पणे चैव दाने नैवेद्यदापने। त्वत्पत्रेण विना न स्यात् तत्तत्कर्म्मफलोत्तरम्।
पूजिते मयि पत्रैस्ते तुष्टाः स्युः सर्व्वदेवताः॥२२॥
कार्त्तिके मासि ते पत्रमेकं यच्छति यो जनः। स गोसहस्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः॥२३॥

माघे मासि च ते पत्रमालां यच्छति यो जनः। तस्मै अहं प्रयच्छामि वाजिमेधक्रतोः फलम्॥२४॥
वैशाखे मासि ते पत्रैर्यो मे शय्यां प्रयच्छति। तस्मै अहं प्रयच्छामि स्वमेव किमितोऽधिकम्॥२५॥

एक ओर भले ही नाना-पुष्प, अलंकार, सब प्रकार के नैवेद्य हो तथा दूसरे ओर द्वादशाक्षर मंत्र युक्त तुलसी पत्र हो। (तब भी केवल तुलसी पत्र का महत्व अधिक है) जो व्यक्ति तुम्हारी प्रदक्षिणा करके गुरुवत् भावना से तुमको प्रणाम करेगा, उसे सप्तद्वीपा पृथिवी प्रदक्षिणा का फल प्राप्त होगा। श्राद्ध-तर्पण-दान-नैवेद्यप्रदान-प्रभृति कोई भी कार्य तुलसी पत्र के बिना फलप्रद नहीं होगा। तुम्हारे पत्र से मेरी पूजा करने पर सभी देवगण प्रसन्न हो जायेंगे। जो व्यक्ति कार्त्तिक मास में तुम्हारा एक भी पत्र मुझे प्रदान करेगा, उसे सहस्र गोदान फल की प्राप्ति होगी। जो व्यक्ति माघ मास में तुम्हारा पत्र मुझे अर्पण करेगा उसे मैं अश्वमेध फल प्रदान करूंगा। जो व्यक्ति वैशाख मास में तुम्हारे पत्र से मेरी शय्या रचना करेगा मैं तो उसको आत्मदान कर दूंगा। इसके अपेक्षा और अधिक क्या है?।।२०-२५।।

वैशाखे मासि ते पत्रजलेन योऽभिषिञ्चति। तस्मै अहं प्रयच्छामि सदामृतनिधिस्थितिम्॥२६॥
आषाढ़े मासि यो मह्यं त्वत्पत्ररसवासितम्। जलं ददाति तस्मै च ददाम्यपुनरुद्भवम्॥२७॥
त्वत्पत्रं यत्र तत्रापि पतेत् यत्र महीतले। तदहं शिरसा ग्राह्यं करिष्यामि शिवाज्ञया॥२८॥
त्वत्पत्रजलसिक्तान्नं यो भुङ्क्ते मानवः क्वचित्। तदेवामृतमित्युक्तं भुक्तं भाग्यवता शुभे॥२९॥

जो व्यक्ति तुम्हारे पत्र तथा शुद्ध जल से वैशाख मास में मुझे अभिषिक्त करेगा उसे मैं सतत् क्षीरोद में निवास प्रदान करूंगा। जो आषाढ़ मास में तुम्हारे पत्र रस से सुवासित जल मुझे प्रदान करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। तुम्हारा पत्र पृथिवी पर जहां गिरता है, उसे मैं शिव के आदेश से शिर पर धारण करता हूं। हे शुभे! जो मानव तुम्हारे पत्र के रस से सिक्त (आर्द्र) अन्न भोजन करेगा उस भाग्यवान का वह खाया अन्न ही अमृत कहलायेगा।।२६-२९।।

त्वत्पत्ररसभोजी यो गङ्गाजलसमन्वितम्। सोऽहमित्येव विज्ञेयं सत्यं सत्यं शपे शपे॥३०॥
स्पृष्ट्वा यस्तुलसीपत्रं मिथ्या वदति शोभने। न तस्य नरकादुग्रादुद्धारः कल्पकोटिषु॥३१॥
त्वत्काष्ठमालां त्वत्काष्ठघृष्टपङ्कञ्च योऽदधत्। अहं तस्यानुगः शुद्धे भवामि सुतवत्पितुः॥३२॥

गंगाजल तथा तुम्हारे पत्ते के रस से बने अन्न का भोजन करने वाले व्यक्ति के साथ मेरा कोई भेद नहीं रहता। यह मैं पुनः-पुनः शपथ लेकर कहता हूं। हे शोभने! जो व्यक्ति तुलसीपत्र छूकर झूठ बोलता है, उसका उद्धार अनेक करोड़ कल्प पर्यन्त उग्र नरक से नहीं होता। हे शुभे! जो तुम्हारी लकड़ी की माला तथा तुम्हारी लकड़ी को घिसकर उसका अनुलेपन लगाता है, उसी प्रकार मैं उसका अनुवर्त्ती हो जाता हूं, जैसे पुत्र पिता का अनुवर्त्ती होता है।।३०-३२।।

इत्युक्त्वा सम्मतः शम्भोः सेन्द्रैर्देवगणैः सह। सोऽभिषिच्य क्षितौ देवीं तुलसीं पापनाशिनीम्।
अन्तर्द्धाय ययौ देवो देवैः शम्भुगणैस्तथा॥३३॥
एवं वा कथितं सख्यौ तुलस्या जन्म कर्म्म च। एतामुद्दिश्य तीर्थानि त्रीण्युक्तानि च खादिषु॥३४॥
एतां सम्पूजयेन्मर्त्यः सादरेण हरेर्मताम्। दर्शने प्रणतौ स्पर्शे स्थानसम्माज्र्जने तथा।
पूजने चयने सख्यौ क्रमान् मन्त्रानुदीरयेत्॥३५॥
देवि विष्णुप्रिये मातस्तुलसि प्रियदर्शने। हरिदर्शनदीपार्च्चिः प्रसीद द्विजवल्लभे॥३६॥

यह कहकर देवोत्तम नारायण ने शिव की सम्मति से पृथिवी पर पापनाशक तुलसी को अभिषिक्त किया। तदनन्तर विष्णु-शिव तथा शिव के अनुचरगण वहां से अन्तर्ध्यान हो गये। हे सखियों! तुलसी का जन्म तथा कर्म तुम लोगों से कहा। इस तुलसी के लिये आकाश, स्वर्ग तथा मृत्युलोक में तीन तीर्थ की बात कही गयी। एक तुलसी ही तीनों स्थान में तीर्थ रूपा है। इन विष्णु सम्मानिता तुलसी का मानव सादर पूजन करें। हे सखियों! इसके दर्शन, प्रणाम, स्पर्श, स्थान सम्मार्जन, पूजन चयन आदि सभी कार्य में यह मंत्र पढ़े। 'हे देवी! विष्णुप्रिये! प्रियदर्शने, माता, तुलसी! आप विष्णु का दर्शन प्रदान कराने में दीपशिखा हैं। हे द्विजवल्लभे! प्रसन्न हो'।।३३-३६।।

नर एतेन मन्त्रेण प्रफुल्लाक्षः प्रगे शुभाम्। प्रपश्येन्न यमं पश्येत् प्रणमेत्तदनन्तरम्।।३७।।
विष्णुप्रीतिकरे मातर्नमस्ते तुलसीश्वरि। पवित्रीकुरु मेऽङ्गानि विष्वक्ङ्कहर्षकारिणि।।३८।।
मन्त्रेणानेन तुलसीं वन्देताष्टाङ्गलोठनः। नरः प्रदक्षिणीकृत्य न छायां लङ्घयेदपि।।३९।।
वैकुण्ठेश्वरपादाब्जवासिनि प्रियदर्शने। स्पृशामि त्वां महापापसञ्चयान्मे प्रणाशय।।४०।।
मन्त्रेणानेन तुलसीं स्पृशेन्मर्त्यो विमुक्तिभाक्।
स्थानसम्मार्ज्जने मन्त्रं कथयामि निबोध तम्।।४१।।

मनुष्य प्रातःकाल यह मंत्र पाठ करे—हे शुभे! प्रफुल्ल नयने! आपका दर्शन करके मुझे यमदर्शन न हो। तदनन्तर तुलसी वृक्ष का दर्शन करके प्रणाम करे। प्रणाम मंत्र है—'हे विष्णुप्रीतिकरे, ईश्वरी, माता तुलसी! आपको प्रणाम! हे विष्णु अंक हर्षकारिणी! मेरे सभी अंगों को पवित्र करें।' यह मंत्र पाठ करके मानव उनकी प्रदक्षिणा करके अष्टांग प्रणाम निवेदन करें। तुलसी वृक्ष की छाया का कभी भी लंघन नहीं करें। अब स्पर्श मंत्र से तुलसी का स्पर्श करें। स्पर्श मंत्र है 'हे वैकुण्ठनाथ के चरण कमल में निवास करने वाली! प्रियदर्शने! तुलसी! आपका स्पर्श करता हूं। मेरी महापापराशि को नष्ट करो।' इस मंत्र से तुलसी का स्पर्श करने वाला मुक्त हो जाता है। अब स्थान सम्मार्जन मंत्र सुनो।।३७-४१।।

मातस्तुलसि कल्याणि स्थलं ते सुमनोहरम्। क्रीडन्त्यागत्य विबुधा मार्ज्जये तत्प्रसीद मे।।४२।।
मन्त्रेणानेन तुलसीस्थानं हस्तचतुष्टयम्। सम्मार्ज्जयेच्चतुर्दिक्षु सगोमयजलैर्मुदा।।४३।।
ॐ तुलस्यै नम इति मन्त्रेण शक्तिसम्भवाम्। षड़क्षरेण सम्पूज्य जपेदष्टोत्तरं शतम्।।४४।।
मातस्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये। केशवार्थे चिनोमि त्वां प्रसीद शुभदर्शने।।४५।।
मन्त्रेणानेन तुलसीपत्राणि प्रचयेत् कृती। एतैः पर्य्युषितैश्चापि पूजा कार्य्या हरेः सखि।।४६।।

'हे कल्याणी, माता तुलसी, आपके मनोहर अवस्थान क्षेत्र में देवता क्रीड़ारत होते हैं। मैं उस स्थान को स्वच्छ करता हूं। आप प्रसन्न हो!' यह मंत्र पाठ करके तुलसी के नीचे १२ हाथ स्थान को गोबरयुक्त जल से हर्षपूर्वक चतुर्दिक् स्वच्छ करें। तदनन्तर 'ॐ तुलस्यैनमः' षड़क्षर मंत्र से तुलसी का पूजन करके १०० बार उस मंत्र का जप करें। 'हे मातः, कल्याणी, तुलसी! हे गोविन्दचरण प्रिये! मैं नारायण हेतु आपके पत्ते चुनता हूं। हे शुभदर्शने! प्रसन्न हो जाये। 'हे सखी! जो साधक इस मंत्र को पढ़ते हुए तुलसीपत्र चयन करता है, वह तुलसीपत्र बासी हो जाने पर भी विष्णु पूजन योग्य रहेगा।।४२-४६।।

नाशुचिः संस्पृशेदेतां नोपानच्चरणोऽपि च। पश्चिमास्यो न चिनुयात् पक्षान्तद्वादशीष्वपि।।४७।।

स्पृशेन्नैव च संक्रान्त्यां न रात्रौ सायमेव च। निशिद्धेष्वपि कालेषु विष्ण्वर्थे स्वल्पमर्चयेत्॥४८॥
यन्नातिकम्पते शाखा न भङ्गं याति वा तथा। चिनुयात् तुलसीपत्राण्येवं विष्णुप्रियो भवेत्॥४९॥
तुलसीमूलसम्भूतां मृदं मूर्द्धर्ना विभर्त्ति यः। दधाति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशाय केवलम्॥५०॥
गङ्गा मृदा चन्दनेन तन्मूलस्थ मृदाऽपि वा। युक्तं पत्रं स्वशीर्षे यो नयेत तीर्थमेव सः॥५१॥
तुलसीकाननं यत्र तत्र नास्ति यमक्रिया। तत्र चेन्म्रियते जन्तुर्न जन्तुत्वं पुनर्भजेत्॥५२॥

अपवित्र रहते तुलसी पत्र का स्पर्श न करें। पादुका पहने तुलसी छूना वर्जित है। पश्चिम मुखीन होकर तुलसीपत्र चुनना निषिद्ध है। अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, रात्रि तथा सायंकाल में तुलसी वृक्ष स्पर्श न करें। तथापि विष्णु पूजार्थ निषिद्ध काल में भी तुलसी चयन कर सकते हैं। ऐसे तुलसी पत्र चयन करे जिससे शाखा टूटे नहीं तथा अधिक हिले नहीं। ऐसा करने वाला विष्णु प्रिय होता है। जो व्यक्ति तुलसी की जड़ की मृत्तिका मस्तक पर लगाता है, वह तो तमहारी सूर्य ही है। गंगा मृत्तिका, चंदन तथा तुलसीमूल की मृत्तिका को एक में मिलाकर तुलसी पत्र पर लगाये तथा मस्तक पर रखें। इससे तीर्थत्व आता है। जहां तुलसी कानन है, वहां यम का व्यापार नहीं होता। वहां जो प्राणी मृत होता है, उसे पुनः जन्म नहीं लेना होगा।।४७-५२।।

तुलसीं स्थापयेन्मर्त्य उच्चस्थाने परिष्कृते। अक्षयस्वर्गवासो हि तेन लभ्यो न संशयः॥५३॥
श्राद्धं दानं तपो होमः सन्ध्योपासनपूजने। पुराणपठनं चापि तुलसीसन्निधौ चरेत्॥५४॥
चरितमिदमपूर्व्वं वामवोचं नु सख्यौ श्रुतिमुखकरमिष्टं कालदोषघ्नमेकम्।
शिवहरिसुखदञ्च प्रीतिदं मानसानां श्रवणपठनमस्यानन्तपुण्यप्रदं स्यात्॥५५॥

।इति बृहद्धर्म्मपुराणे तीर्थसम्भवे तुलसीमाहात्म्यष्टमोऽध्यायः।।८।।



मानव परिष्कृत ऊंचे स्थान पर तुलसी स्थापना करे। इससे अक्षय स्वर्ग प्राप्ति होती है। इसमें संशय नहीं है। श्राद्ध, दान, तप, होम, सन्ध्योपासना, पूजा तथा पुराण पाठ तुलसी के समीप होना चाहिये। हे सखियों! यह कथा सुखकर, कालदोष नाशक है। यह अपूर्व चरित तुम लोगों से मैंने कहा। यह हरिहर हेतु प्रसन्नताप्रद तथा मानस को प्रीति देने वाला है। इस उपाख्यान को सुनने तथा पाठ करने से अनन्त पुण्य प्राप्त होता है।।५३-५५।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।



नवमोऽध्यायः

कृष्ण-शंकर समागम

देव्युवाच

अथातः शृणुतं सख्यौ माहात्म्यं श्रीफलस्य च।
यत् श्रुत्वा सद्य एव स्याज्जनः शिवजनः स्मृतः॥१॥
ब्रह्माण्डोपरि विख्यातो ब्रह्मलोकः सनातनः। यत्र सर्व्वे चतुर्बाहुवदना वेदवादिनः॥२॥
शिवलोकस्ततश्चोर्द्ध्वं यत्र सर्व्वे शिवात्मकाः। वैकुण्ठाख्यं परं धाम तत ऊर्द्ध्वं हरेर्म्मतम्॥३॥
यत्र सर्व्वे घनश्यामाः पीतकौषेयवाससः। चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदापद्मधराः सखि॥४॥
उज्ज्वलत्कुण्डलद्योतकपोलाश्चारुनूपुराः। दुर्गालोकस्ततश्चोर्द्ध्वं यत्र सर्व्वाः स्त्रियः शुभाः॥५॥
यः पृथिव्यां कामरूप इति देशोत्तमः सखि। तत ऊर्द्ध्वञ्च गोलोको लसेत्तेजोमयः परः॥६॥

देवी कहती हैं—हे सखियों! अब श्री फल की महिमा सुनो। उसे सुनने से मानव शिव के अनुचरों में सम्मिलित हो जाता है। ब्रह्माण्ड के उर्ध्वभाग में सनातन ब्रह्मलोक की स्थिति है। वहां के वासी सर्वदा वेदगान करते रहते हैं। वहां सभी के ४ हाथ तथा ४ मुख हैं। ब्रह्मलोक के उर्ध्व में शिवलोक है वहां के सभी लोग शिवरूप हैं। उसके उर्ध्वभाग में भगवान् हरि का प्रीतिप्रद वैकुण्ठधाम शोभित हैं, वहां सभी हरि की तरह नवघनश्याम तथा पीतकौषेय धारी है। सभी ४ भुजा वाले तथा शंख-चक्र-पद्म-गदा धारण करते हैं। उनके कानों में कर्णकुण्डल तथा चरणद्वय में नूपूर शोभित है। उक्त वैकुण्ठ के उर्ध्व में दुर्गालोक है। वहां की सभी नारियां रूप लावण्यवती तथा शुभदा हैं। हे सखियों! वह स्थान पृथिवी में कामरूप नाम से प्रख्यात है। उसके ऊपर परम तेजोमय गोलोक स्थित है।।१-६।।

यः पृथिव्यां समाख्यातो नाम्ना वृन्दावनाभिधः। एतेषु यो मया प्रोक्तो वैकुण्ठाख्यो मनोरमाः।
नारायणस्य देवस्य परमं धाम विश्रुतम्। तत्रैकदा हरिर्निद्रासमये ददृशे शिवम्॥७॥८॥
कोटिचन्द्रप्रतीकाशं त्रिलोचनविराजितम्। त्रिशूलडमरुधरं स्वर्णाभरणभूषितम्॥९॥
पृथिवीजलतेजोभिर्व्वाय्वाकाशयजत्तरैः। सोमेन रविणा चापि स्तूयमानं सुरेस्तथा॥१०॥
सिद्धिभिश्चाणिमाद्याभिः परितः सर्वतो दिशम्। एवम्भूतं महादेवं नृत्यन्तं मुदितं परम्॥११॥
आनन्देनातिगाढ़ेन मग्नएव हरिः स्वयम्। उत्तस्थौ सहसा तल्पे पर्य्यङ्के श्रीविराजिते॥१२॥
अहो किमिति लक्ष्म्योक्तः प्रबुद्धः स्तब्धवद् बभौ॥१३॥

यह पृथिवी पर वृन्दावन कहलाता है। इन सब लोकों में से मैंने श्री भगवान् नारायण के परमप्रिय धाम वैकुण्ठ का उल्लेख किया था, वहां एक बार भगवान् हरि स्वप्न में कोटि चन्द्रमा के समान प्रभायुक्त, त्रिशूल डमरुधारी भुजंगों के आभरण से भूषित, अणिमादि सिद्धियों से सेवित तथा चन्द्र-सूर्य प्रभृति सुरगण द्वारा स्तुत्य त्रिलोचन शंकर को सानन्द नृत्यरत देखकर स्वयं भी परमानन्द मग्न हो गये तथा वे तत्काल उस पर्यंक (पलंग) से नींद में ही उठ खड़े

हुए, जिस पर भगवती कमला विराजित थीं। तब देवी कमला ने कहा 'यह क्या'? यह सुनते ही प्रभु जागरित होकर स्तब्ध हो गये। तब देवी कहने लगीं।।७-१३।।

श्रीरुवाच

किमिदं ते प्रभो दृष्टं स्वप्ने वद अनार्द्दन। प्रेयसीं प्रति मां नाथ स्वप्नवृत्तं वदस्व मे॥१४॥

देव्युवाच

इति पृष्टो महालक्ष्मया देवदेवो जनार्द्दनः। वक्तुं न शक्त आनन्देनान्दोलितमनस्तनुः॥१५॥
गङ्गदाक्षरया वाचा तामुवाच ह केशवः॥१६॥

भगवानुवाच

दृष्टः स्वप्ने महालक्ष्मि मया देवो महेश्वरः। आनन्दमयदेहोऽतिसुन्दरोद्भुतदर्शनः॥१७॥
उत्तिष्ठ गच्छ कैलासं मया मह समुद्रजे। महादेवं महात्मानं द्रक्ष्याम्यद्य त्रिलोचनम्॥१८॥
मन्ये हन्त स्मृतस्तेन भाग्येन केनचित् सता॥१९॥

श्री देवी कहती हैं—हे प्रभो जनार्दन! आपने स्वप्न में कौन सी प्रियमूर्त्ति देखा था, वह बतायें। तब भगवान् केशव आनन्द से आप्लुत थे। अतः तत्काल कुछ क्षण के उपरान्त उन्होंने गद्‌गद् कण्ठ से कहा—'हे महालक्ष्मी! मैंने स्वप्न में अद्भुतदर्शन आनन्दमय देव महेश्वर को देखा था। हे कमले! अब महात्मा त्रिलोचन का दर्शन करूंगा। अब उठकर मेरे साथ चलो। हम कैलास चलें। लगता है कि हमारे शुभ अदृष्ट के कारण उन्होंने मेरा स्मरण किया है।।१४-१९।।

देव्युवाच

इत्युक्त्वा विस्मिता लक्ष्मीस्तथा चक्रे त्वरान्विता। नारायणोऽपि कैलासगमनाय मनो दधे॥२०॥
अथ मध्यपथे देवश्चन्द्रमौलिर्महेश्वरः। गच्छन् वैकुण्ठभवनं दृष्टो नारायणेन सः॥२१॥
उभयोर्दर्शनं तत्र मिथः सन्दर्शनार्थिनोः। अत्युत्कण्ठावतोर्विष्णुशिवयोर्विस्मयप्रदम्॥२२॥
न वाचा प्रतिपद्यन्तत् य आनन्दो महात्मनोः। उत्पन्नस्तत्र समये मम लक्ष्मयाश्च सन्निधौ॥२३॥
तावुभौ सुमहोत्साहावुभौ प्रणतितत्परौ। मिथः कृतालिङ्गनौ च रोमाञ्चितसुविग्रहौ॥२४॥
आनन्दाश्रुप्लुतौ द्वौ च द्वावेव गद्‌गदोक्तिकौ। कस्मादागमनं कुत्रेत्युक्तिकौ तौ हरीश्वरौ॥२५॥
तत्राह विष्णुं गिरिशः क्षणं संस्तभ्य केशवः। मया त्वं स्वप्ने दृष्टोऽसि श्यामसुन्दर विग्रहः॥२६॥
श्रीजुष्टवामपार्श्वश्च शङ्खचक्रगदाधरः। अत्यद्भुतमहाशोभो यथा दृष्टोऽसि दृश्यते॥२७॥
त्वं पुनः केशवानन्तनारायणजनार्द्दन। कुतो गच्छसि सोत्कण्ठो मद्‌भाग्योपस्थितः पथि॥२८॥

देवी कहती हैं—इस प्रकार नारायण का वचन सुनकर लक्ष्मी विस्मयान्विता हो गयीं। वे नारायण के साथ कैलास गमनार्थ उद्यता हो गयी। तदनन्तर वैकुण्ठनाथ में जाते हुए मार्ग में देखा कि स्वयं चन्द्रशेखर वैकुण्ठ की ओर चले आ रहे हैं। तब परस्पर एक दूसरे के दर्शनार्थ उत्सुक विष्णु तथा शंकर ने एक दूसरे को देखा तथा उनको

विस्मयान्वित वचनातीत आनन्द हुआ। तत्पश्चात् दोनों अतिशय उत्साह के साथ कमला के समक्ष रोमांचित शरीर के साथ आनन्दाश्रु विसर्जन करने लगे और दोनों ने परस्पर प्रणाम करके एक दूसरे का आलिंगन किया। उस समय महेश्वर से विष्णु ने कहा—'किसके लिये कहा जा रहे थे?' तब महेश्वर ने क्षणकाल निस्तब्ध रहकर केशव से कहा—'मैंने आज स्वप्नावस्था में लक्ष्मी को तथा आपके शंख-चक्र गदाधर-श्यामसुन्दर कलेवर का अवलोकन किया। इसलिये मैं आया तथा अभी आपका दर्शन किया। हे अनन्त! हे केशव, नारायण, जनार्दन! आप उत्कण्ठा में भरे कहां जा रहे हैं? मैं अपने शुभ अदृष्ट के कारण मार्ग में ही आपका दर्शन पा गया'।।२०-२८।।

हरिरुवाच

दृष्टः स्वप्ने मयाऽपि त्वं शिव शङ्कर सर्व्वदा।
स्वप्ने यथेक्षितोऽसि त्वं तथा दृष्टोऽधुनाऽपि च॥२९॥
नमोऽष्टमूर्त्तये तुभ्यमेकादशभवाय च। पिणाकपाणये देवीपतये ते नमोनमः॥३०॥
आगच्छ मत्पुरं नाथ वैकुण्ठं गिरिश प्रभो। तत्र त्वां पूजयिष्यामि योगिनां परमीश्वरम्।
त्वमेव द्रष्टुमिच्छोर्मे मिलितोऽसि पथि प्रभो॥३१॥

श्री हरि कहते हैं—हे शिवशंकर! सर्वद! आज आपने जैसा स्वप्न देखा था। वैसा ही मैंने भी देखा। हे अष्टमूर्त्तिधारी! आपको प्रणाम! हे पार्वतीश, पिनाकपाणी! आपको पुनः-पुनः प्रणाम! हे नाथ! हे प्रभो, गिरिश! आप मेरे वैकुण्ठधाम में आयें। मैं वहां पर आप की आराधना करूंगा जो कि योगीगण के आराध्य हैं। हे प्रभो! मैं आपके ही दर्शनार्थ जा रहा था, कि आपका दर्शन मार्ग में ही पा गया।।२९-३१।।

शिव उवाच

आत्मस्वरूप हे देव ममेदं मतमीप्सितम्। व्यक्तीकृतं मदात्मत्वात्तस्मान्मत्पुर माव्रज॥३२॥

शिव कहते हैं—हे आतमस्वरूप, देव! आपने तो मेरा ही अभिप्राय कह दिया! अतः आप मेरे भवन चलें।।३२।।

देव्युवाच

एवन्तौ निदगन्तौ हि सखीद्वय परस्परम्। केन कस्य पुरं गम्यमिति प्रेम्नाऽपि संशयः॥३३॥
उभौ संशयितौ तत्र समायातञ्च नारदम्। पप्रच्छतुः पूजयित्वा मध्यस्थत्वेन तौ तदा॥३४॥
नारदोऽपि भ्रमच्चित्तो न शक्तस्तत्र निश्चये। प्रोवाच किं नु देवेशौ पृच्छथोऽत्र श्रियं शिवाम्।
इमे देव्यौ युक्तिदक्षे कर्त्तव्यं वक्ष्यतोऽत्र वां॥३५॥

देवी कहती हैं—हे सखीगण! वे दोनों परस्परतः एक दूसरे को इसी प्रकार कहने लगे। कौन किसके गृह जायेंगे, यह निश्चित नहीं हो सका। तभी वहां पर सहसा नारद ऋषि का आगमन हो गया। दोनों ने ही नारद से आदर के साथ इस विषय को कहकर उनका मत जानना चाहा। तथापि नारद कुछ भी मत स्थिर नहीं कर सके। उन्होंने कहा कि 'हे देवेशद्वय! आप भगवती पार्वती तथा कमला से इस सम्बन्ध में उनका मत पूछें। वे दोनों ही युक्ति बताने में निपुण हैं। अतएव आप लोगों को क्या करना उचित है, वे ही कहेंगी।।३३-३५।।

देवदेवावूचतुः

वदस्व गिरिजे लक्ष्मि कः कस्य पुरमेतु नौ॥३६॥
इत्युक्ताहं ततस्ताभ्यां कृष्णेशाभ्यां सखीद्वय।
वर्त्ममध्यं तयोः प्रेम चान्यूनानधिकं तदा।
लक्षित्वा स्वामनन्याञ्च निर्नेत्रीं समुपस्थिताम्।
तयोरिव मनो मेऽपि सन्देहि समजायत॥३८॥

ततस्तदा स्थिरीभूय समवोचमिदं सखि। तौ देवदेवौ परमप्रीतिमन्तौ परस्परं॥३९॥
युवयोर्यादृशी प्रीतिर्दृश्यते ह्यनुपाधिका। मन्ये तया प्रमाणेन न भिन्नवसती युवां॥४०॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव। मन्ये तया प्रमाणेन आत्मिकोऽन्यस्तनुर्मिथः॥४१॥
या प्रीतिर्दर्शिता देवौ युवाभ्यां नाथ केशव। मन्ये तया प्रमाणेव भार्य्ये आवां पृथङ् न वां॥४२॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव। मन्ये तया प्रमाणेन द्वेष एकस्य स द्वयोः॥४३॥

तब हरि तथा हर ने कहा—'हे गिरिजे! हे लक्ष्मी! आप बताये कि किसके भवन में जाना चाहिये।' यह सुनकर कमला ने कहा "हे देवद्वय! इस विषय में जो कुछ कर्तव्य है, वह शंकरी गिरिजा ही कहेंगी"। तब हरिहर ने गिरिजा से कहा—"हे गिरिजे! तुम ही कहो, कौन किसके घर जाये?" हे सखियों! जब उन दोनों देवताओं ने मुझसे ऐसा कहा तब मैंने उस संदेह प्रश्न के प्रति अपने को ही एकमात्र निर्णय करने वाली देखा, तथा मार्ग में उन लोगों के बीच प्रेम देखा, तब कौन किसके यहां जाये, इसके निर्णय में उन लोगों की तरह मेरा भी अन्तःकरण संदेहपूर्ण हो गया। हे सखी! तब अन्त में मैंने स्थिरचित्त होकर उन देवद्वय से कहा—"मैंने जिस प्रकार का अकृत्रिम प्रेम आप दोनों के बीच देखा है, उससे बोध होता है, आप दोनों एक ही स्थान पर ही रहिये। हे नाथ! हे केशव! आप दोनों के बीच के प्रेम को देखकर यही लगता है कि आपकी आत्मा अभिन्न है। विभिन्न नहीं है। केवल मात्र आपका शरीर ही पृथक् प्रतीत होता है। हे केशव! हे नाथ! आप लोगों का जो पारस्परिक सौहार्द है, उससे यह ज्ञात हो गया कि आप लोगों की भार्या में भी पृथक्त्व नहीं है।[1] हे नाथ! हे केशव! आप लोगों का जो पारस्परिक प्रेम है, उसकी विवेचना से यह ज्ञात हुआ है कि आपमें से एक के प्रति द्वेष करना अथवा दोनों से विद्वेष करना समान है[2]।।३६-४३।।

यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव। मन्ये तया प्रमाणेन एका पूजा हयोर्मता॥४४॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव। मन्ये तया प्रमाणेन अपूजैकस्य च द्वयोः॥४५॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव। मन्ये तया प्रमाणेन भेदकृद्वां चिरं पतेत्॥४६॥
किं भ्रामयसि मध्यस्थचित्तं भेदप्रदर्शनात्। योगिनो यं प्रपश्यन्ति नाम्ना श्रीकष्णशङ्करौ॥४७॥
अतएव वदाम्येवं गच्छतं स्वं स्वमालयं। वैकुण्ठोऽपि च कैलासः कैलासस्तत्पृथङ्न च॥४८॥

---

१. तात्पर्य यह है कि जैसे विष्णु तथा शिव में अभेद है, उसी प्रकार से लक्ष्मी तथा गिरिजा में भी अभेद ही है।

२. जब विष्णु तथा शिव में अभेद है, तब विष्णु से किया वैर स्वयमेव शिव से किया वैर है। एक से वैर करने पर दूसरे से भी वैर हो गया, यह माना जायेगा।

आत्मानं शिवमालोक्य वैकुण्ठं याहि केशव। विष्णुमालोक्य वैकुण्ठं कैलासञ्च मया शिव॥४९॥

हे नाथ (शिव), हे केशव! आप दोनों में जो पारस्परिक प्रेम मैंने देखा है, उस प्रमाणबल से यह स्थापित हो जाता है कि आपमें से एक की पूजा करने से दोनों की पूजा स्वतः हो जाती है। हे नाथ (शिव), हे केशव! आप दोनों ने जिस पारस्परिक प्रीति का प्रदर्शन किया है, तब भी जो आप दोनों के बीच भेद देखता है, वह अनन्त काल तक सन्तापाग्नि में जलता रहेगा। अतः हे नाथ, हे केशव! आप क्यों भेद प्रदर्शन करके मध्यस्थ के अन्तःकरण को सन्तापाग्नि में जला रहे हैं।

हे सखीगण! मेरी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने (विष्णु) भी शंकर से यही कहा। योगीगण उनका, उन एक ही तत्व का, श्रीकृष्ण तथा शंकर रूप से अनुभव करते हैं। अतएव अब आप लोग अपने-अपने स्थान पर गमन करें। वैकुण्ठ ही कैलास है। कैलास ही वैकुण्ठ है। दोनों कदापि पृथक् नहीं है। हे केशव! आप स्वयं में शिव का अनुभव करके वैकुण्ठ जायें। इसी प्रकार विष्णु तथा वैकुण्ठ का अनुभव कैलास में करके शिव कैलास गमन करें।।४४-४९।।

देव्युवाच

इत्युक्त्वा मद्वचः श्रुत्वा हसिन्वा हरिशङ्करौ। हर्षालिङ्गितसर्व्वाङ्गौ मामैव प्रशशंसतुः॥५०॥
आलिङ्गनप्रणामादिं कृत्वा सख्यौ शिवाच्युतौ। गतौ कैलासवैकुण्ठौ नारदश्च स्थलान्तरं॥५१॥

।इति बृहद्धर्म्मपुराणे श्रीफलप्रादुर्भावे कृष्णशङ्कररसमागमो नवमोऽध्यायः।।९।।



देवी कहती हैं—इस प्रकार का मेरा वचन सुनकर हरि तथा शंकर दोनों ही हंसने लगे। उन्होंने हर्ष पूर्वक परस्परतः आलिंगन तथा प्रणाम किया तथा शंकर ने कैलास की ओर तथा श्रीकृष्ण विष्णु ने वैकुण्ठ की ओर गमन किया। मुनिप्रवर नारद भी स्वस्थान चले गये।।५०-५१।।

।नवम अध्याय समाप्त।।



दशमोऽध्यायः

लक्ष्मीकृत शिवस्तव, श्रीफल प्रादुर्भाव

देव्युवाच

कैलासमागते शम्भौ वैकुण्ठे गरुड़ध्वजं। सुखासीनं प्रिया लक्ष्मीः पप्रच्छ मुदितानना॥१॥
प्रभो देव जगन्नाथ प्रसन्नात्मन् श्रियःपते। कति प्रियतमाः सन्ति भगवन् भवतोऽनघ॥२॥
माता गुरूणामधिका पुत्र एवात्मनो वरः। सुहृदाञ्च प्रियाणाञ्च वरा भार्य्या जनार्द्दन॥३॥

मन्येऽत एवमात्मानमनन्यां ते प्रियां श्रियं। मत्तोऽपि ह्यधिकः प्रेष्ठो दृष्टः श्रीकण्ठ ईश ते॥४॥
अतोऽपि ह्यधिकः प्रेष्ठस्तेनाज्ञातोऽस्ति कोऽपि ते।
तन्मे वद प्रभो देव भार्य्याहं यदि ते मता॥५॥

देवी कहती हैं—भगवान् शंकर जब कैलास गिरि आ गये तथा वैकुण्ठ में भगवान् नारायण आकर सुखासीन हो गये, तब उन भगवान् नारायण से देवी लक्ष्मी ने प्रफुल्ल मन से प्रश्न किया—"हे प्रभो! जगन्नाथ! श्रीपते! आपको कौन-कौन व्यक्ति प्रिय लगते हैं, कृपया कहिये। जैसे पृथिवी पर सभी गुरुजनों में माता श्रेष्ठ है, जैसे व्यक्ति को पुत्र अपने से भी अधिक प्रिय लगता है, जैसे समस्त बन्धुगण में पत्नी ही सर्वप्रधान प्रतीत होती है, तदनुरूप आपके समस्त प्रियजन में मैं स्वयं को आपका सर्वाधिक प्रिय मानती हूं। तथापि हे नाथ! मैंने आज यह साक्षात् उपलब्ध किया कि मेरी अपेक्षा आपको महेश्वर अधिक प्रिय हैं। हे नाथ! यदि आपको उनसे भी अधिक कोई प्रिय है, तब वह कहिये। तभी मैं समझूंगी कि मैं ही आपकी प्रिय भार्या हूं।।१-५।।

भगवानुवाच

न मे प्रियतमाः सन्ति शिव एकः प्रियो मम। अहेतुकः प्रियोऽसौ मे स्वकायः प्राणिनामिव॥६॥
पुत्रार्था यौवनार्था च गृहार्था स्त्रीः प्रिया नृणां। पुत्रः प्रियश्च पिण्डार्थः कीर्त्त्यर्थश्च समुद्रजे॥७॥
धनं प्रियं सुखार्थञ्च विपत्त्राणार्थमेव च। प्रियं शरीरं धर्म्मार्थे ते च धर्म्मात्मनां तथा॥८॥
सर्व्वे प्रयोजनेनैव प्रिया लोकेषु पद्मिनि। केवलप्रीतये प्रेष्ठः प्रिये न कोऽपि दृश्यते॥९॥
स्त्रीणां यथा पतिः प्रेष्ठः स्त्री पुंसां न तथा प्रिया।
अहेतुकः प्रियः स्वामी स्त्री सहेतुः प्रिया मता॥१०॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे सौम्या! शंकर के अतिरिक्त विश्वमण्डल में अन्य कोई भी मुझे प्रिय नहीं है। जैसे प्रत्येक प्राणी को उसका अपना देह प्रिय लगता है, उसी तरह मेरे लिये शंकर परम प्रिय हैं। जगत् में पुत्र हेतु, यौवनजनित सुखभोग हेतु तथा गृहस्थी के लिये मनुष्य को पत्नी प्रिय लगती है। हे कमला! पिण्ड प्रदानार्थ तथा कीर्त्ति पाने हेतु पुत्र प्रिय है।

विपत्ति से उद्धारार्थ एवं सुख के लिये धन प्रिय है। धर्मपालनार्थ धार्मिक व्यक्ति को शरीर प्रिय होता है। हे प्रिये! जगत् में बिना कारण कोई किसी को प्रिय नहीं प्रतीत होता। सभी किसी कारण से ही किसी को प्रिय मान लेते हैं। जैसे स्त्री के लिये पति सर्वप्रधान प्रियवस्तु है, पुरुषों को पत्नी उस मात्रा में प्रिय नहीं है। पति (स्वामी) को किसी मतलब, प्रयोजनार्थ पत्नी प्रिय लगती है। पत्नी के लिये पति वास्तव में स्वभावतः प्रिय है। पति का पत्नी के प्रति प्रेम किसी हेतु को, कारण को लेकर होता है। लेकिन पत्नी का पति के प्रति जो प्रेम है, वह किसी हेतु को लेकर नहीं है, प्रत्युतः वह स्वाभाविक है।।६-१०।।

अतोऽनुगच्छते पत्नी वह्नौ दीप्ते मृतं पतिं। पुमान् पत्न्यां मृतायान्तु पुत्रायोद्वहतेतरां॥११॥
प्रीतिस्त्वहेतुकी पुंसां पुरुषेष्वेव युज्यते। न स्त्रीषु भिन्नधर्म्मास्ता मैत्री साम्यमपेक्षते॥१२॥
पुरा स्वयम्भुवावावां पृथिव्यां समुपस्थितौ। तत्राहं प्रियकाम्यायै चरन् कान्ते दिशो दश।
मनसा निश्चयं चक्रे शृणु तत् कमलालये॥१३॥

यथाहं प्रियकाम्यायै चरामि विदिशो दश।
तथा चरन् यो दृष्टः स्यात् स स्यान्मेऽहेतुकः प्रियः॥१४॥
एवं मनसि निश्चित्य चरन् दृष्टोऽहमीश्वरं। मम तस्य च दृष्ट्वैव दृष्टस्य नियतं यथा।
बभूव महती प्रीतिर्विद्येव प्राक्तनोद्भवा॥१५॥
स एवाहं महादेवः स एवाहं जनार्द्दनः। उभयोरन्तरं नास्ति घटस्थजलयोरिव॥१६॥
शिवादन्यप्रियो मेऽस्ति भक्तो यः शिवपूजकः।
शिवस्यापूजको लक्ष्मि न कदापि प्रियो मम॥१७॥

इसका उदाहरण यह है कि पति की मृत्यु पर उसकी पत्नी ज्वलंत अग्नि में दग्ध होकर पति का अनुगमन करती है, तथापि पत्नी की मृत्यु पर उसका पति ऐसा न करके पुत्रोत्पत्ति हेतु अन्य स्त्री से पाणिग्रहण कर लेता है। पुरुष का पुरुष से ही अकृत्रिम प्रेम संभव है। क्योंकि मित्रता को समता चाहिये। इसीलिये पति-पत्नी में समता न होने के कारण रमणी के साथ पुरुष का अकृत्रिम प्रेम सम्भव नहीं होता। प्राचीनकाल में मैं तथा त्रिलोचन शिव एक बार पृथिवी लोक गये। हे प्रिये! वहां मैंने प्रिय की प्राप्ति हेतु दशोदिशाओं में खोज करके मन ही मन यह तय किया कि मैं दशोदिशाओं की तरह विदिक् में भी भ्रमण करके जिसे देखूंगा, वही मेरा अकृत्रिम प्रिय होगा। मैं इस निश्चय के साथ भ्रमणरत था, तभी मेरा साक्षात् शंकर के साथ हो गया। एक दूसरे के प्रति हम दोनों की आंखें मिलते ही पूर्व जन्मार्जिता विद्या की ही तरह हममें पारस्परिक महती प्रीति का उदय हो गया। जैसे दो घट में रखे जल में कोई भेद नहीं होता, तदनुरूप महेश्वर तथा मुझमें कोई भेद नहीं है। जो व्यक्ति भक्ति के साथ महेश्वर की आराधना करता है, वह भी मेरा प्रिय हो जाता है। हे कमलवासिनी! जो व्यक्ति शिवार्चना से विमुख है, वह मुझे कदापि प्रिय नहीं है।।११-१७।।

देव्युवाच

इत्युक्ता कमला देवी विष्णुना प्रभविष्णुना। अमन्यताप्रियां विष्णोः शिवपूजापराङ्मुखीं।
धिङ्मां धिङ्मामिदं वाक्यं प्रवदन्तीं मुहुर्मुहुः॥१८॥
तां दृष्ट्वा कमलां कृष्णो माभैरित्याह हर्षितः। मया प्रवर्त्तिता नासि शिवपूजाविधौ सति॥१९॥
अद्यारभ्य महेशस्य पूजां कुरु यथाविधि। अबाधेन प्रतिदिनं शिववन्मे प्रिया भवेः॥२०॥

देवी कहती हैं—हे सखियों! तब कमला ने विष्णु का यह वाक्य सुनकर विवेचना किया कि जब कि मैं शिवपूजा से विमुख हूं, तब कभी भी विष्णु-केशव की प्रियपात्री नहीं हो सकूंगी। अतः मुझे धिक्कार है, धिक्कार है! देवी पुनः-पुनः यही कहती जा रही थीं कि भगवान् विष्णु ने प्रसन्न होकर कहना प्रारम्भ किया कि दुखी न हो। मैंने तुमसे यह सब जो कहा, उसका तात्पर्य था तुमको शिवपूजार्थ प्रवृत्त करना। तुम आज से नित्य प्रति यथाविधि महेश्वर की अर्चना करके उनके समान मेरी प्रीतिभाजन हो जाओ।।१८-२०।।

देव्युवाच

इत्युक्त्वा सा प्रतिज्ञाय ग्राहितां नारदेन च। शिवपूजां समारेभे कर्त्तुं पत्याज्ञया सखि॥
दिने दिने शिवे भक्तिर्ववृधे पूजया श्रियः॥२१॥

एवं यातेषु कालेषु कदाचिज्जलधेः सुता। पप्रच्छ केशवं देवं शिवभक्त्या समादरात्॥२२॥

देवी कहती हैं—हे सखी! भगवती कमला ने श्रीकृष्ण का वाक्य सुनकर दृढ़ संकल्प होकर पति की आज्ञा लेकर नारद से यथारीति शिवपूजा विधान की शिक्षा ग्रहण किया तथा नित्य शिव पूजा करना प्रारम्भ कर दिया। उनकी शिवभक्ति नित्य प्रति वृद्धिगत होने लगी। कुछ काल व्यतीत होने पर लक्ष्मी देवी ने शिवभक्ति के सम्बन्ध में सादर प्रश्न किया।।२१-२२।।

श्रीरुवाच

प्रभो श्रीपुण्डरीकाक्ष केन पुष्पेण सर्व्वथा। परितुष्यति ते प्रेष्ठः शितिकण्ठस्त्रिलोचनः॥२३॥
तेन पुष्पसहस्त्रेण प्रत्यहं नीललोहितं। सङ्कल्प्य पूजयिष्यामि तन्मे पूरय मानसं॥२४॥

लक्ष्मी कहती हैं—हे प्रभो! पुण्डरीकाक्ष! आपके प्रभु नीलकण्ठ किस पुष्प के अर्पण से विशेष प्रसन्न होते हैं? वह कहकर मेरी अभिलाषा पूरी करिये। मैं कृतसंकल्प होकर उसी पुष्प से नित्य उन भगवान् नीललोहित की आराधना करूंगी।।२३-२४।।

भगवानुवाच

देवि प्रियतमे नार्थ लक्ष्मि प्राणाधिके शुभे। अहो ते भगवानीशः सुप्रसन्नो न संशयः।
शृणुष्वाब्धिसुते येन तुष्टो भवति शङ्करः॥२५॥
गवामष्टोत्तरशतं सवत्सं समलंकृतं। पयस्वि दत्त्वा विप्रेभ्यो यत् पुण्यं लभते नरः।
तत् पुण्यं करवीराख्यं पुष्पं दत्त्वा लभेत् कृती॥२६॥
सुरक्तकरवीरेण तत् पुण्यं द्विगुणं भवेत्। श्वेतेन करवीरेण तत् पुण्यं समुपार्ज्जयेत्॥२७॥
शेफालिकाख्यपुष्पेण रूप्यकोटिफलं लभेत्। शेफालिका शतगुणं कुन्दपुष्पन्तु शम्भवे॥
ततः शतगुणं प्रोक्तं मल्लीपुष्पमुदाहृतं॥२८॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे प्राणाधिके, शुभे, प्रियतमे, लक्ष्मी! भाग्य से प्रभु महेश्वर तुम्हारे प्रति निश्चित रूपेण प्रसन्न हैं। हे सिन्धुपुत्री! वे जिस पुष्प से प्रसन्न होते हैं, वह सुनो! भक्त व्यक्ति को चाहिये कि वह शंकर की अर्चना केवल श्वेत अथवा लाल कनेर पुष्पों से करें। श्वेत कनेर की पूजा से दूना फल लाल कनेर की पूजा से मिलता है। क्योंकि मनुष्य अलंकृत १०० सवत्सा गौ ब्राह्मण को देने से जो फल प्राप्त करता है, वही फल केवल लाल कनेर पुष्पों की पूजा द्वारा प्राप्त हो जाता है। जो शेफालिका पुष्प से शंकर की पूजा करता है, उसे करोड़ों रजत (चांदी) के पुष्पों से पूजा का फल मिलता है। शेफालिका की अपेक्षा कुन्द पुष्प से पूजा करने पर शेफालिका पुष्प पूजन से सौगुणित फल की प्राप्ति होती है। इससे भी १०० गुना फल मल्लिका, पुष्प पूजन का होगा।।२५-२८।।

निर्म्मितं मुक्तया लिङ्गं मुक्ताभिः पूजयेत् यदि। तत् पुण्यं लभते साधुर्द्रोणपुष्पप्रदानतः॥२९॥
सुवर्णनिर्म्मितं लिङ्गं शम्भोः स्वर्णेन पूजितं। तत् पुण्यं लभते दत्त्वा पुष्पं चम्पकनामकं॥३०॥
वैशाखे मासि शुक्लेन चामरेण सुवीजिते। शम्भौ या फलसिद्धिः स्यात्सा शिरीषप्रसूनतः॥
अश्वमेधस्य यत् पुण्यं तत् पुण्यं नागकेशरात्॥३१॥

मुचुकुन्दप्रसूनन्तु लब्ध्वा शम्भुः समुद्रजे। गयाश्राद्धफलं दत्ते पितॄणां परितोषदं॥
तत् फलं स्यात् शतगुणं तुलसीपत्रदानतः॥३२॥
शिवस्तगरपुष्पेण चन्द्रप्राप्तिफलं लभेत्। उपोष्य यत् फलं काश्यां तत् फलं वज्रपुष्पतः॥३३॥
उन्मत्तपुष्पं यो दद्यात् शिवाय परमात्मने। स तत् पुण्यं लभेत् यत् स्यात् उपोष्यैकादशीशतं॥३४॥
एवमन्यानि पुष्पाणि वर्जयित्वा तु केतकीं। शिवप्रियाणि ज्ञेयानि महालक्ष्मि निबोध मे॥३५॥

मुक्ताओं द्वारा मुक्तालिंग निर्मित करके पूजा का जो पुण्यफल है, द्रोण पुष्प से पूजन करने से वही फल मिलेगा। स्वर्णमय पुष्पों से शिवपूजन का जो फल है, वही फल चम्पा के पुष्प द्वारा पूजन का है। वैशाख मास के शुक्लपक्ष में शंकर को चंवर से वायु करने का जो फल है, वही शिरीष पुष्प चढ़ाने से प्राप्त होता है। नाग केशर पुष्पदान से अश्वमेध यज्ञफल तथा शंकर को मुचकुन्द पुष्पदान से पितृगण सन्तोषदायक गया श्राद्धफल प्राप्त करते हैं। जो व्यक्ति तुलसी के पत्ते अर्पित करता है, वह इसकी अपेक्षा सौगुणित फल लाभ करता है। भगवान् शिव को तगर का पुष्प चढ़ाने से चान्द्रायण व्रत फल, वज्र पुष्प चढ़ाने से काशी क्षेत्रस्थ उपवासी रहने का फल, तथा धतूरा का पुष्प चढ़ाने से एकादशी व्रत फल प्राप्त होता है। हे कमले! केतकी के अतिरिक्त शंकर को संतुष्ट करने वाले अन्य पुष्पों का वर्णन सुनो। (केतकी पुष्प शंकर को वर्जित है)।।२९-३५।।

एतानि सर्व्वपुष्पाणि दत्त्वा यत् फलमाप्नुयात्। तत् फलं समवाप्नोति शिवाय पद्मपुष्पदः॥३६॥
पद्मपुष्पात् परं नान्यत् शिवप्रीतिकरं सदा। तस्मात् पद्मप्रसूनानि देहि सङ्कल्प्य शम्भवे॥३७॥

पूर्वोक्त सभी पुष्प चढ़ाने से ज़ो फल प्राप्ति होती है, वह अकेले पद्मपुष्प प्रदान करने से मिल जाती है। शंकर को पद्मपुष्प से अधिक प्रिय कोई पुष्प नहीं है। अतः तुम संकल्प लेकर शंकर का पूजन पद्मपुष्प के ढेर से करो।।३६-३७।।

देव्युवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेन लक्ष्मीः पद्मालया शुभा। पद्मपुष्पप्रदानाय सङ्कल्पं प्रचकार ह॥३८॥
स्वयमाहृत्य कासारात् स्वयं प्रक्षाल्य यत्नतः। स्वयं दत्ते महेशस्य स्वर्णलिङ्गोपरि ध्रुवं॥३९॥
सहस्रं पद्मपुष्पाणि त्रिवारगणितानि च। प्रत्यहं भक्तिभावेन सुदृढ़ेन सखिद्वय॥४०॥
एवं वर्षे गतप्राये कदाचिज्जलधेः सुता।
प्रातः स्नात्वा सरो गत्वा निर्म्मलेनान्तरात्मना।
प्रचिकाय सरोजानि सख्यौ संख्याय तत्परा॥
पुनः प्रक्षालयामास न संख्यायैव संभ्रमात्॥४१॥४२॥
पूजां कृत्वा स्वर्णलिङ्गे सहस्रं पङ्कजानि सा। संख्याय दातुमारेभे सा पद्मा विजये जये॥४३॥
एकमेकं क्रमाद्दत्त्वा शेषे न्यूनाम्बुजद्वयं। विलोक्य चिन्तयामास शिवभक्ता समुद्रजा॥४४॥
अहो नु किमिदं जातं क्व गतं पङ्कजद्वयं। चोरितं केन वा किंवा मया नैव चितं भ्रमात्॥४५॥
धिङ्मामद्य त्रिधा नैव गणितं किल किं भवेत्। चयने क्षालनेऽर्च्चायां प्रत्यहं गणये मुहुः॥४६॥

अद्येशभक्तिशैथिल्यात् द्विरेव गणितं मया। तस्मान्मयैव विहितं भ्रान्तयानर्थमेव हि॥४७॥

देवी कहती हैं—देवी लक्ष्मी ने श्रीकृष्ण का वचन सुना तथा पद्म अर्पित करने का संकल्प लेकर वे नित्यप्रति सरोवर से स्वयं १००० पद्म चयन करके ३ बार गिनती थीं तथा उसे जल से स्वच्छ करके भगवान् शंकर को भक्तियुक्त होकर नित्य प्रदान करने लगी। ऐसे ही एक वर्ष व्यतीत हो गया। एक दिन लक्ष्मी ने सरोवर में प्रातःस्नान के अन्त में पवित्र मन से सावधानी से गणना करके १००० पद्म चयन किया तथा उसे प्रक्षालित किया। तदनन्तर स्वर्ण लिंग की पूजा करते समय गिन-गिनकर एक-एक कमल चढ़ाते हुए देखा कि २ कमल कम हो रहा है। तब शिवभक्त सिन्धुतनया लक्ष्मी विचार करने लगीं कि यह क्या? दो पद्म कहां गया? किसने उसे हर लिया? अथवा मैंने भ्रमवश दो कम गिना? जो भी हो, मुझे धिक्कार है। मैं तो नित्य चयन के समय, धोते समय तथा पूजा करते समय गणना करती रहती थी। लगता है मेरी अल्प भक्ति के कारण मैंने मात्र दो बार कमलों को गिना! जो भी हो, प्रभु की माया से भ्रान्त होकर यह अनर्थ हुआ है।।३८-४७।।

किं कर्त्तव्यं भवेत् किंवा सङ्कल्पक्षतिरीक्षते। न कुत्रापि दिने पुष्पं परहस्ताज्जितं कृतं॥४८॥
कथमद्य परद्वारा पङ्कजद्वयमानये। त्यक्त्वा पूजासनं नैव गन्तव्यमपि युज्यते।
अदत्तयोः पङ्कजयोरपि सङ्कल्पहानिकृत्॥४९॥

अब क्या करूं? क्या मेरा संकल्प खण्डित हो गया? मैंने तो किसी भी दिन अन्य व्यक्ति से कमल एकत्र नहीं कराया, अब आज अन्य के द्वारा दो कमल मंगा भी नहीं सकती। आसन छोड़कर अन्य स्थान पर जाना मेरे लिये अनुचित है। तथापि दो कमल कम होने के कारण मेरे संकल्प की हानि भी हो रही है।।४८-४९।।

इत्येवं चिन्तयित्वा च मनसा निश्चिकाय सा। सस्मार वचनं विष्णो रतिकाले यथोदितं॥५०॥
समुद्रकान्ते हे लक्ष्मि प्रिये तव कुचद्वयं। दत्तवान् कामदेवो मे पङ्कजद्वयमर्च्चकः॥५१॥
अत एतेन हे लक्ष्मि सरसि त्वयि सुन्दरं। प्रीतिदं परमं चारु स्तनपङ्कजयुग्मकं॥५२॥
अतएव स्तनावेतौ पद्मत्वे विष्णुवर्णितौ। न मिथ्या भवितुं योग्यौ पद्मावेतौ मतौ मम॥५३॥
एताभ्यामर्च्चयामीशं पूर्णमस्तु सहस्रकं। अनेन कर्म्मणा प्रीतः केशवोऽपि भविष्यति॥५४॥

इस प्रकार विचार करते हुए उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि भगवान् कृष्ण ने मुझसे रतिकाल में एक बार कहा था—"प्रिये! तुम्हारे स्तनद्वय देखकर लगता है कि मानो कामदेव ने दो कमलों से मेरी अर्चना की है। तथा वे तुम्हारे सौन्दर्य रूपी सरोवर में विराज कर मुझमें प्रेम की उत्पत्ति कर रहे हैं।" अतः जब भगवान् विष्णु ने स्वयं मेरे स्तनद्वय को कमल रूप कहा था, तब वह मिथ्या नहीं है। अतः मैं अपने स्तनद्वय रूपी कमल से महेश्वर की अर्चना करके १००० पद्म प्रदान करने का संकल्प पूर्ण करूंगी। इससे भगवान् विष्णु भी निश्चित रूप से प्रसन्न होंगे।।५०-५४।।

इति निश्चित्य मनसा देवी पद्मालया शुभा। दधार कर्त्तृकां हस्ते छेत्तुं द्वे स्तनपङ्कजे॥५५॥
स्तनाभ्यामिदमप्यूचे हर्षिताभ्यां सुहर्षिता। यथा नमति मे मौलिर्देवदेवं महेश्वरं।
तथा स्तनौ मत्सरोजे भवतं शिवपूजने॥५६॥
यथैव शरः कृष्णो न भिन्नौ भवतं क्वचित्। तथा युवां नातिभिन्नौ भवतं पङ्कजात् स्तनौ॥५७॥
हे स्तनौ मयि चेज्जातौ करमूर्द्ध्वमुखादिवत्। तदास्तं शम्भुपजाब्जसहस्त्रपूरकौ मम॥५८॥

इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके देवी कमला ने अपने स्तन काटने के लिये छूरी उठाया ही था कि उनके स्तनद्वय प्रसन्न होकर कहने लगे—"हे पद्मालये! हम तुम्हारे शरीर में उत्पन्न होकर धन्य हो गये। क्योंकि तीनों लोकों के स्वामी आज हमारे द्वारा पूजित होंगे।" तब कमला कहती हैं "जैसे मैं अपने सिर को भगवान् शिव के समक्ष झुकाऊंगी, उसी प्रकार तुम भी कमलरूपी होकर देवाधिदेव के समक्ष प्रणत हो जाना। जैसे शिव तथा विष्णु में कोई भेद नहीं है, उसी प्रकार से आज तुम्हारे तथा कमल के बीच में कोई भेद न रहे। हे स्तनद्वय! यदि तुम मेरे हाथ-पैर आदि अंगों के समान मुझमें उत्पन्न हुए हो, तब आज शिवपूजा हेतु सहस्रपद्म में जो दो पद्म का अभाव हो गया है, उसे पूर्ण करो।।५५-५८।।

इत्युक्त्वा सा स्तनं वामं धृत्वा वामेन पाणिना। चकर्त्त पाणिना भक्त्या दक्षिणेन सकर्तृणा।।५९।।

छित्वा चाविकलात्मैकं स्तनं कमलसन्निभं।
प्रफुल्लचारुशोणाभं स्पृष्टं पूर्वञ्च विष्णुना।।
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेणास्मरन्ती छेदवेदनां।
छित्वा दत्त्वा स्तनं वामं मत्वात्मानं कृतार्थिकां।
अपरं छेत्तुमारेभे स्तनं दक्षिणमुन्नतम्।।६०।।६१।।६२।।

अकस्मात्तु स्तनच्छेदादृणीभूतो महेश्वरः। नोत्सहे द्रष्टुमीशानश्छेत्स्यमानं स्तनं परं।।
आविर्भूय स्वर्णलिङ्गात् जगाद त्वरया श्रियं।।६३।।

भगवती लक्ष्मी ने यह कहकर बायें हाथ से कमल के समान शोण वर्ण उस स्तन को जो पूर्व में कभी भगवान् विष्णु द्वारा स्पर्श किया गया था, मन्त्र का उच्चारण करके दाहिने हाथ में पकड़ी गयी छूरी से काटकर भगवान् शंकर को समर्पण करके स्वयं को कृतकृत्य माना। तदनन्तर अपने उन्नत द्वितीय स्तन को काटने हेतु उद्यत होकर बायें हाथ में छूरी पकड़ा ही था, तभी उनके भक्तिऋण से ग्रस्त भगवान् महेश्वर यह न सह सकने के कारण उस स्वर्णिम लिंग से शीघ्र प्रादुर्भूत हो गये तथा देवी लक्ष्मी से कहने लगे।।५९-६३।।

शिव उवाच

मातः समुद्रतनये मा मा छिन्धि स्तनं परं। यत्ते छिन्नः स्तनो वामो जायतां पुनरेव सः।
ज्ञाता ते परमा भक्तिः पूर्णस्ते च मनोरथः।।६४।।
यश्च छिन्नस्तनो दत्तो मल्लिङ्गोपरि ते शुभे। सोऽस्तु वृक्षः क्षितौ पुण्यो नाम्ना श्रीफल इत्युत।।६५।।
मूर्त्तिमांस्तव वै भक्तिवृक्षः श्रीफलनामकः। त्वत्कीर्त्तये क्षितावास्तां यावच्चन्द्रदिवाकरौ।।६६।।
स तरुर्म्मम वै लक्ष्मि परमः सुप्रियो भवेत्। तत्पत्रेणैव मे पूजा भविष्यति न चान्यथा।।६७।।
स्वर्णमुक्ताप्रवालादिपुष्पाण्यन्यानि च ध्रुवं। श्रीफलच्छदने शस्यकलां नार्हन्ति कोटिकां।।६८।।
यथा मे त्रीणि नेत्राणि यथा गङ्गाजलं मम। तथा प्रियतमो लक्ष्मि त्रिपत्रः श्रीफलच्छदः।।६९।।

शिव कहते हैं—हे माता! सिन्धुतनया! और स्तनछेदन मत करो। मत काटो। तुम्हारा कटा हुआ वामस्तन पुनः उत्पन्न हो जाये। हे शुभे! मैं तुम्हारी परमभक्ति को जान गया। तुमने जो स्तन काटकर मेरे स्वर्णमय लिंग पर

रखा है, वह पृथिवी पर तुम्हारी भक्ति का मूर्त्तिमय स्वरूप श्रीफल नामक एक पवित्र वृक्ष उत्पन्न होकर धरती पर तब तक रहेगा जब तक यहां चन्द्र सूर्य की स्थिति रहेगी। हे लक्ष्मी! यह वृक्ष मेरे लिये परम प्रीतिजनक है तथा उससे मेरी पूजा होगी। इसमें तनिक संदेह नहीं है। स्वर्ण-मुक्ता-प्रवाल प्रभृति रत्न तथा अन्य जो सब मुझे प्रसन्नता देने वाले पुष्प हैं, उनमें से श्रीफल के पत्रकण के करोड़वें भाग इतना भी पुण्य फल नहीं है। जैसे त्रिपुन्ड्रक तथा गंगा जल मुझे अत्यन्त प्रिय है, तदनुरूप श्रीफल (बिल्व वृक्ष) वृक्ष का त्रिपत्र भी मुझे प्रिय होगा।।६४-६९।।

देव्युवाच

एवं वदति देवेशे लक्ष्मीः परमहर्षिता। रोमाञ्चितसमग्राङ्गी प्रणनाम पुनः पुनः॥७०॥
ॐ नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे। निवेदयामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर॥७१॥
एवं गद्गदवाक्येन स्तुवन्ती सा पुनः पुनः। शिवं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणनाम पुनः पुनः॥७२॥
उत्थायोत्थाय नमती स्थिरीभूता शिवाज्ञया। गद्गदोक्तिर्महेशानं लक्ष्मीः स्तौति पुटाञ्जलिः॥७३॥

देवी कमला यह सुनकर परम आनन्दपूर्वक तथा रोमांचित देह होकर गद्‌गद् स्वर में कहने लगीं—'हे शिव! हे शान्त! आप कारणत्रय के भी कारण, सबके आश्रय हैं। हे परमेश्वर! आपके श्रीचरण में मैं आत्मसमर्पण करती हूं।' इस प्रकार देवी लक्ष्मी स्तुति, पुनः-पुनः प्रदक्षिणा, पुनः-पुनः प्रणाम तथा गात्रोत्थान करने लगीं। तदनन्तर महेश्वर का आदेश पाकर स्थिर बैठकर कृतांजलिबद्ध हो स्तव करने लगीं। उनका स्वर गद्‌गद् हो गया।।७०-७३।।

श्रीरुवाच

शशधरशुचिमूर्त्ते चन्द्रमौलेऽमलाभ त्रिनयन मृदुचारुस्मेरवक्त्रामृताभ।
धवलवृषभपृष्ठे भ्राजमान प्रसीद प्रणतसदयदृष्टे देवदेवाधिदेव॥७४॥
त्रिगुणमय विराजत्र्यक्षधुस्तूरपुष्प प्रविलसितसिताभ डिण्डिमध्वानवादिन्।
सततसुखसुखाब्धौ त्वं शिवः सन् विहारी जय जय जय शम्भो पार्व्वतीश प्रसीद॥७५॥

श्रीलक्ष्मी कहती हैं—हे चन्द्रमौलि, त्रिनेत्र! आपकी मूर्त्ति अमृत तथा चन्द्रमा जैसी शुभ्रवर्णा है। आप हास्ययुक्त तथा शुभ्र-वृषभ पर विराजमान हैं। हे देवदेवाधिदेव! हे डिंडिम वादन करने वाले! आपकी शुभ्र शरीर कान्ति त्रिगुणात्मक है। आप अक्षमाला तथा धतूरे के पुष्प से शोभित हैं। आप भक्तों के प्रति सदा परम करुणामय रहते हैं। हे देव! मुझ पर प्रसन्न हो जाईये। आप सदैव सुख रूपी सागर में विहार करते हैं। हे पार्वतीश! प्रसन्न हों। हे शंभो! आपकी जय हो, जय हो, जय हो।।७४-७५।।

भुवननिचयनीलाधार साकार शम्भो अनलरविशशिक्ष्माश्वासभूताशुगेश।
सृजसि हरसि पासि स्वेच्छया त्वं कथन्तद् विदित इह ननु स्याः ईदृशो वा इयान् वा॥७६॥

हे शम्भु! आप निखिल भुवन लीलाधार हैं। चन्द्र-सूर्य तथा अग्नि आपके त्रिनेत्र हैं। आप जगत् प्राणवायु के भी ईश्वर हैं। आप अपनी इच्छा से समस्त जगत् का सृजन-पालन-संहार करते हैं। आप कैसे हैं, यह किस प्रकार से जाना जा सकता है?।।७६।।

मृतनिलयविचारी प्रेतधूल्याचिताङ्गो विवसनकृतमालाकीकशो भूतनाथः।
भवसि विभवभूतं त्वां पुनः साधुचित्तं लसति धरितुकामं प्रेतभूमीवराङ्क्षं॥७७॥

त्रिपुरहर महेश त्र्यक्ष सर्व्वेश नाथ प्रभव विभवनील श्वेतवक्त्र प्रसन्न।
गिरिश गहनगोप श्रीगुरो नीलकण्ठ क्षयकर हर दुःखं दुःखहन्तः प्रसीद॥७८॥

हे भूतनाथ! दिगम्बर! आप सतत् श्मशान में विचारण करते हैं। आपका कलेवर चिताभस्म तथा गला अस्थिमाला से विभूषित है। हे नाथ! आप समस्त ऐश्वर्यमय हैं। तब भी आप साधु चित्त हैं। श्मशानभूमि आपको सतत् अपने यहां ही धारण करना चाहती है। हे त्रिपुरारी! हे महेश! आप समस्त प्रभव तथा विभव की लीलास्थली हैं। आप श्वेत शरीर वाले तथा प्रसन्न हैं। हे श्रीगुरु! गिरिश! आप सबके प्रति सतत् प्रसन्न रहते हैं तथा संकट से सबकी रक्षा करते हैं। हे दुःखहारी, नीलकण्ठ! प्रसन्नतापूर्वक हमारा सर्वःदुख हरण करिये।।७७-७८।।

देव्युवाच

इति स्तुवन्तीं सरिदीशपुत्रीं उवाच शम्भुः परमः प्रसन्नः।
शुभे वरं प्रार्थय विष्णुपत्निश्रीस्तेऽहमीशो वरदो वराय॥७९॥

देवी कहती हैं—यह स्तवन लक्ष्मी द्वारा किये जाने पर सागर पुत्री से शम्भु प्रसन्न हो गये। उन्होंने लक्ष्मी से कहा—हे शुभे! विष्णुकान्ते। मैं तुमको इच्छित वर प्रदान करूंगा। तुम वर प्रार्थना करो।।७९।।

श्रीरुवाच

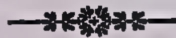
अद्याहं विष्णुपत्नीत्वं प्राप्ता भक्त्येह भाविता। दृष्टस्त्वञ्च महेशानः किमतोऽस्ति वरः परः॥८०॥
त्वत्दर्शनात् प्राप्तवरा सदाहं निगदे यतः। नमः शिवाय शन्तायेत्येवमस्तु वरः परः॥८१॥
भक्तिमेकां प्रयाचेऽहं शिवे त्वयि महेश्वरे। भक्तोपयुक्तकृत्यार्थं त्वमेव चतुरः परः॥८२॥

श्रीलक्ष्मी कहती हैं—हे प्रभो! आज से मैं आप की भक्ति के प्रभाव से विष्णु की प्रियपत्नी हो गयी। हे देव! आपका जो साक्षात्कार मिल गया, इससे बड़ा-वर और क्या होगा? जिनका दर्शन कोई पाने में समर्थ नहीं होता, मैं उन सुदर्शन भगवान् शिव से वर लाभ कर रही हूं। तथापि यह प्रार्थना करती हूं कि आपके प्रति मेरी अचल भक्ति बनी रहे, क्योंकि एकमात्र आप ही भक्तों का अभीष्ट पूर्ण करते हैं।।८०-८२।।

देव्युवाच

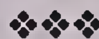
इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा महेशोऽन्तर्दधे सखि। कपालमोचनक्षेत्रे वृक्षः श्रीफलकोऽर्जितः॥८३॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे श्रीफलप्रादुर्भावे दशमोऽध्यायः।।



देवी कहती हैं—हे सखियों! भगवान् शंभु तथास्तु कहकर अन्तर्ध्यान हो गये। तभी से कपालमोचन क्षेत्र में श्रीफल वृक्ष आविर्भूत हो गया।।८३।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।



एकादशोऽध्यायः

बिल्ववृक्ष (श्रीफलवृक्ष) महिमा

देव्युवाच

वैशाखे शुक्लपक्षस्य तृतीयायां सखिद्वय। जातो वै श्रीफलतरुर्म्माहात्म्यं तस्य कथ्यते॥१॥
जाते तु श्रीफलतरौ देवाः सर्व्वे सवासवाः। ब्रह्मा नारायणश्चापि देवपत्न्यः समागताः॥२॥
ददृशुः स्निग्धविटपं त्रिपत्रैः सुदलैर्युतं। दीप्यमानं तेजसैव शिवरूपं शिवप्रदं॥३॥
प्रणेमुः सिषिचुस्तत्र वासञ्चक्रुः सुखान्विताः। तत्र क्षणाय भगवानुवाच विष्णुरव्ययः॥४॥

भगवानुवाच

अयं नाम्ना विल्व इति मालूरः श्रीफलस्तथा। शाण्डिल्यश्चाथ शैलूषः शिवः पुण्यः शिवप्रियः॥५॥
देवावासस्तीर्थपदः पापघ्नः कोमलच्छदः। जयो विजयमाना च विष्णुस्त्रिनयनो वरः॥६॥
धूम्राक्षः शुक्लवर्णश्च संयमी श्राद्धदेवकः। इत्येकविंशति नाम्ना दधात्वेष तरूत्तमः॥७॥

देवी कहती हैं—हे सखियों! यह श्रीफल वृक्ष वैशाख मास के शुक्लपक्ष में उद्भूत हुआ था। अब उसका माहात्म्य सुनो। इसके उत्पन्न होने पर भगवान् ब्रह्मा, नारायण तथा इन्द्रादि देवता तथा सभी देवपत्नीगण वहां आये तथा त्रिपत्रयुक्त, अपने तेज से देदीप्यमान शिवरूपी इस वृक्ष का उन सबने दर्शन प्राप्त किया। दर्शन करके सभी इसे प्रणाम करके तथा उसमें जलसिंचन करते हुए अत्यन्त सुखपूर्वक वहां निवास करने लगे। तदनन्तर भगवान् विष्णु ने उसकी रक्षा हेतु कहा कि इस तरुवर का बिल्व, मालूर, श्रीफल, शाण्डिल्य, शैलूष, शिव,पुण्य, शिवप्रिय, देवावास, तीर्थपद, पापघ्न, कमलच्छद, जय, विजय, विष्णु, त्रिनयन, वर, धूम्राक्ष, शुक्लवर्ण, संयमी तथा श्राद्धदेव—यह २१ नाम होगा।।१-७।।

धनुःशतञ्चास्य मूलात् खञ्चाग्रात्तीर्थमुच्यते। अधोभूमेस्तथा तीर्थमतस्तीर्थत्रयं सखि॥८॥
ऊर्द्ध्वपत्रं हरो ज्ञेयः पत्रं वामं विधिः स्वयं। अहं दक्षिणपत्रञ्च त्रिपत्रदलमित्यतः॥९॥
अस्य छायाञ्च पत्रञ्च लङ्घयेन्न पदा स्पृशेत्। हरते लङ्घनादायुः पादस्पर्शात् श्रियं हरेत्॥१०॥
पद्मपुष्पसहस्रस्य फलमत्र ममापि च। दर्शन प्रणतौ स्पर्शे स्थानसम्मार्ज्जने तथा।
पूजने चयने दाने क्रमान्मन्त्रानुदीरये॥११॥
विल्ववृक्ष महाभाग महेशस्य सदा प्रिय। शिवदर्शनकृज्ज्योतिः प्रसीदाब्धिसुतास्तन॥१२॥
नर एतेन मन्त्रेण प्रफुल्लाक्षः प्रगे शुभं। प्रपश्येत् स शिवं पश्येत् प्रणमेत्तदनन्तरं॥१३॥

इसके उर्ध्व-अधः तथा चारों ओर १०० धनुष पर्यन्त का स्थान तीर्थ होगा। इसका उर्ध्वपत्र शंकर, वामपत्र ब्रह्मा तथा दक्षिण पत्र मैं (विष्णु) हूं। जो व्यक्ति इसकी छाया का लंघन करके जायेगा, उसकी आयु का नाश होगा। जो इसे पैरों से छूयेगा उसकी लक्ष्मी नष्ट होगी। इसका मात्र १ पत्ता देवता शम्भु को प्रदान करने से १००० कमल प्रभु को चढ़ाने का फल लाभ होगा। इस बिल्ववृक्ष का दर्शन-स्पर्श इसके स्थान मार्जन, पूजन, पत्रचयन तथा दान

इस मंत्र से करें। मंत्र मैं कहता हूं—"हे बिल्ववृक्ष! हे महाभाग! तुम महेश्वर के परम प्रिय हो। हे लक्ष्मी के स्तनस्वरूप! हे ज्योतिर्मय विश्वरूपी! मुझ पर प्रसन्न हो जाओ।" जो मानव प्रातःकाल यह मंत्र उच्चारण करके आदर पूर्वक बिल्ववृक्ष का दर्शन करेगा, वह साक्षात् शिवदर्शन का फल प्राप्त करेगा। तदनन्तर यह मंत्र पढ़े।।८-१३।।

ॐ नमो विल्वतरवे सदा शङ्कररूपिणे। सफलानि ममाङ्गानि कुरुष्व शिवहर्षद॥१४॥
मन्त्रेणानेन मालूरमष्टाङ्गैः प्रणमेत् कृती। स वैष्णवो मतो भक्तः स मे प्रियतमः परः॥१५॥
शिवपूजक मालूर प्रियस्पर्श महातरो। स्पृशामि त्वां महापापसञ्चयान्मे प्रणाशय॥१६॥
देववृक्षवर प्रेष्ठ स्थलन्ते सुमनोहरं। क्रीड़न्त्यागत्य विबुधा मार्जये तत् प्रसीद मे॥१७॥
मन्त्रेणानेन विल्वस्य दशहस्तस्थलं मृजेत्। सगोमयजलैः प्रातःसमये स तु वैष्णवः॥१८॥
ॐ द्रुमाय श्रीफलाय नमो दशभिरक्षरैः। मन्त्रेण पूजयेद्विल्वं जपेच्छक्तिक्रमात्तथा॥१९॥
पुण्यवृक्ष महाभाग मालूर श्रीफल प्रभो। महेशपूजनार्थाय त्वत्पत्राणि चिनोम्यहं॥२०॥
मन्त्रेणानेन चिनुयात् विल्वपत्राणि भक्तितः। पक्षान्तद्वादशीसायंमध्याह्नभिन्नकालतः॥२१॥

"ॐ हे शिव को हर्षदायक बिल्वतरु! तुम सदा शंकररूपी हो। तुमको प्रणाम। तुम मेरा समस्त अंग सफल करो" जो व्यक्ति यह मंत्रोच्चार करके बिल्वतरु को साष्टाङ्ग प्रणाम करता है, वह मेरा परमप्रिय वैष्णव होगा। तब बिल्ववृक्ष को स्पर्श करें। उसका मंत्र है—"हे शिवपूजक मालूरतरु! हे प्रियस्पर्श! हे महातरु! मैं तुमको स्पर्श करता हूं। तुम मुझे पापों से रहित करो।" अब प्रातःकाल गोबर मिले जल से बिल्ववृक्ष के नीचे १० हाथ तक की भूमि का इस मंत्र से मार्जन करना चाहिये। वह व्यक्ति परम वैष्णव होगा। मंत्र है—'हे देववृक्ष! सुरगण आपकी मनोहर अधिष्ठान भूमि में आकर क्रीड़ा करते हैं। अतः मैं यहां भूमि मार्जन करता हूं। आप प्रसन्न हो जायें।' बिल्ववृक्ष की अर्चना का दशाक्षर मंत्र है "नमो रुद्राय श्रीफलाय नमः।" इसका यथाशक्ति जप करना चाहिये।" हे महाभाग! बिल्ववृक्ष! हे श्रीफल! हे प्रभो मालूरतरु! मैं भगवान् शंकर के पूजनार्थ तुम्हारे पत्ते तोड़ता हूं।" इस मंत्र से पत्र चयन करें। सायंकाल, मध्याह्न काल, द्वादशी, अमावस्या, पूर्णिमा के समय बिल्वपत्र चयन वर्जित है। अन्य समय उक्त मंत्र का पाठ करके भक्तिभाव से बिल्वपत्र चयन करें। तदनन्तर मंत्रोच्चार के साथ भगवान् शिव को बिल्वपत्र अर्पित करें।।१४-२१।।

शाखाभङ्गो न कर्त्तव्यो नैवारोहेत् तथा तरुं। वरमारुह्य चिनुयात् न शाखाभञ्जनं क्वचित्॥२२॥
खण्डितैश्च शिवः पूज्यः पत्रैरन्यस्त्वखण्डितैः। षण्मासानन्तरं विल्वपत्रं पर्य्युषितं भवेत्॥२३॥
पूज्या एतेन वै देवाः सूर्य्यलम्बोदरौ विना। विल्ववृक्षवनं यत्र सा तु वाराणसी पुरी॥२४॥
पञ्चविल्वद्रुमा यत्र तत्र तिष्ठेत् स्वयं हरः। सप्तविल्वद्रुमा यत्र तत्र दुर्गायुतो हरः॥२५॥
एको विल्वतरुर्यत्र तत्र शम्भुर्मया सह। विल्ववृक्षा यत्र दश तत्र शम्भुर्गणैः सह॥२६॥
एतान्युक्तानि तीर्थानि देवाः सर्व्वमरुद्गणैः॥२७॥

बिल्ववृक्ष पर आरोहण तथा शाखाभंग न करें। पत्रचयनार्थ आरोहण तो कर सकते हैं, तथापि उसकी शाखाएं न काटे। उसके पत्र छिन्न हों, अथवा अखण्डित हो, उनसे भी शिवपूजा करनी चाहिये। बिल्वपत्र, छः माह तक बासी नहीं होता। इसके द्वारा सूर्य तथा गणपति की पूजा नहीं करनी चाहिये। बाकी सभी देवता की पूजा कर सकते हैं। जहां

बिल्ववृक्ष के वन हैं, वह स्थान काशी के समान है। जहां ५ बिल्ववृक्ष हैं, वहां स्वयं महेश्वर विद्यमान हैं। जहां ६ बिल्ववृक्ष हैं, वहां पार्वती के साथ महेश्वर की विद्यमानता है। अधिक क्या कहें, जहां एक भी बिल्ववृक्ष हैं, वहां भगवान् शंकर तथा मैं भी स्थिर रहता हूं। जहां यह पुण्यप्रद तरु १० संख्या में लगे हैं, वहां मैं शंकर के अनुचर सहित स्थिर रहूंगा। यह तीर्थ स्थान कहलाता है। यहां देवदेव अपने गणों के साथ रहते हैं।।२२-२७।।

यत्र वाट्यां गृहस्थस्य कोणे ईशाननामके। जायते श्रीफलतरुर्न तत्र विपदः क्वचित्॥२८॥
पूर्व्वस्यां सुखदः स स्यात् दक्षिणे यमभीतिहा। पश्चिमे च प्रजादायी वृक्षो विल्व उदाहृतः॥२९॥
श्मशाने च नदीतीरे प्रान्तरे वा वनान्तरे। विल्ववृक्षतलं प्रोक्तं सिद्धपीठस्थलं सुराः॥३०॥
न मध्यप्राङ्गणे वृक्षं स्थापयेत् श्रीफलाख्यकं। दैवाद्यदि प्रजायेत तदा शिवदर्च्चयेत्॥३१॥

जिस गृहस्थ के बाग में ईशान कोण में बिल्ववृक्ष उत्पन्न होता है, वहां कभी विपत्ति नहीं आती। वाटिका के पूर्व में उत्पन्न बिल्ववृक्ष सुखदायक होता है। दक्षिण में उगा बिल्ववृक्ष भयनाशक तथा पश्चिम में उगा बिल्ववृक्ष सन्तान-सन्तति वर्द्धक होता है। हे देवगण। यह बिल्ववृक्ष श्मशान, नदीतीर, प्रान्तर में अथवा वन में हो, तब वह स्थान सिद्धपीठ ही है। इसे अपने प्रांगण के मध्य में कभी स्थापित न करें। यदि कदाचित् वहां उग आये, तब उसकी अर्चना भगवान् शंकर की तरह करनी चाहिये।।२८-३१।।

चैत्रादिचतुरो मासान् शम्भवे परमात्मने। दत्तं स्याद्विल्वपत्रैकं लक्षधेनुसमं सुराः॥३२॥
मध्याह्नकाले ये मर्त्त्या विल्वं कुर्य्युः प्रदक्षिणं। तैः सुमेरुगिरिवरः कृत एव प्रदक्षिणं॥३३॥
न छिन्द्यात् श्रीफलतरुं न दहेत् काष्ठमेव च। विना ब्राह्मणयज्ञार्थं पतितो विल्वविक्रयी॥३४॥

चैत्रादि चार मास में (चैत्र-वैशाख-ज्येष्ठ-आषाढ़) शंकर को मात्र १ बिल्वपत्र प्रदान करने से एक लाख गोदान का फल मिलता है। जो मानव मध्याह्न में बिल्ववृक्ष की प्रदक्षिणा करेगा, उसे तीन बार सुमेरु प्रदक्षिणा का फल प्राप्त होगा। ब्राह्मण के कार्य हेतु, किंवा यज्ञ के बिना उसके काष्ठ का काटना अथवा दहन करना वर्जित है। जो व्यक्ति इसे बेचता है, वह पतित हो जाता है।।३२-३४।।

पङ्कं विल्वसमिद् वृष्टं यो धत्ते मूर्द्धिन मानवः। यमाधिकारो नात्र स्यात् कृतपापेऽप्यपातके॥३५॥
विल्वपत्रं फलं वीजं भूमौ पतितमीश्वरः। स्वयं गृह्णाति शिरसा वैयर्थ्यभयशङ्कितः॥३६॥
चैत्रादिचतुरो मासान् सिञ्चेत् विल्वतरुं कृती।
यथास्निग्धो भवेद्वृक्षस्तथा तत् पितरोऽपि च॥३७॥
चैत्रादिचतुरो मासान् सदा भ्रमति शङ्करः। नवीनविल्वपत्रार्थी भक्तिमुक्तिप्रदायकः॥३८॥
हरिद्रानगरे यत्र वैद्यनाथो महेश्वरः। तत्राक्षयो विल्वृक्षः स्वर्णवृक्ष उदाहृतः॥३९॥
कामरूपे कामतरुः काश्यामुक्तस्तथादिमः। काञ्चीपुरेऽपरः प्रोक्तः श्रीफलोऽक्षयपुण्यदः।
तेऽपि तीर्थविशेषाः स्युस्तीर्थेष्वपि सदातनाः॥४०॥

जो व्यक्ति बिल्वकाष्ठ से मर्दित मृत्तिका शिर पर लगायेगा, भले ही वह घोरपापी अथवा घोर पुण्यात्मा हो, उसको दण्डित करने का यम का अधिकार नहीं रह जाता। अधिक क्या कहें! पत्र व्यर्थ न जाये इसलिये पृथिवी पर पतित बिल्वपत्र को स्वयं पशुपति धारण (मस्तक पर) करते हैं। जो पुण्यात्मा व्यक्ति चैत्रादि चार मास में बिल्ववृक्ष

की सिंचाई करता है, उसके पितृगण भी इसी वृक्ष की तरह अभिषिक्त हो जाते हैं। इस ४ मास में प्रभु शिवशंकर नवबिल्वपत्र हेतु सदा भ्रमण करते हैं।

हरिद्रानगर के जिस स्थान में महेश्वर वैद्यनाथ विराजित हैं। वहां का बिल्ववृक्ष स्वर्णवृक्ष कहा जायेगा। कामरूपस्थ बिल्ववृक्ष कामरुद्र, काशीधाम का बिल्ववृक्ष आदिम कहा जायेगा। कांचीपुर का बिल्ववृक्ष अक्षय पुण्यदायक कहलायेगा। ये सभी तीर्थ सनातन तीर्थ हैं।।३५-४०।।

देव्युवाच

एतस्मिन्नेव काले तु शम्भुरागत्य वै सखि।
ब्रह्मणा विष्णुना पत्रैः पूजितः श्रीफलैरभूत्।।४१।।

ततः सर्व्वे यथास्थानं जग्मुर्न्नारायणादयः। कथितोऽयं मया सख्यौ विल्वृक्षस्तरूत्तमः।।४२।।

अयं वां सम्प्रोक्तः शिवकथापुण्यनिचयः पवित्रः श्रोतव्यः श्रवणरमणीयः खलु सतां।
शिवे विष्णौ भेदापहरण उदारः सुमनसां सुसेव्यः पाद्यश्च प्रभवति शिवस्यापि निकटे।।४३।।

।।इति बृहद्धर्मपुराणे विल्ववृक्षमाहात्म्यं एकादशोऽध्यायः।।



देवी कहती हैं—हे सखियों! भगवान् विष्णु यह कह रहे थे, तभी शंकर वहां उपस्थित हो गये। तब ब्रह्मा एवं विष्णु ने बिल्वपत्र से उनकी पूजा किया तथा वे सब अन्य देवगण के साथ पूजनोपरान्त अपने-अपने धाम चले गये। यह मैंने तुमसे परम पुण्यप्रद मनोहर श्रीफल वृत्तान्त कहा। पुण्यात्मागण इसका पाठ करें अथवा सुनें। इससे उनकी भगवान् शंकर तथा नारायण में भेद दर्शन प्रवृत्ति समाप्त हो जायेगी।।४१-४३।।

।।एकादश अध्याय समाप्त।।



द्वादशोऽध्यायः

आमलकी आविर्भाव प्रसंग

सख्यावूचतुः

उक्तस्त्वया महेशानि तुलसीविल्वसम्भवः। अनयोस्तुल्य एकः कः शिवविष्णुप्रियस्तरुः।।१।।
तदावां श्रोतुमिच्छावः शिवसुन्दरि कथ्यताम्। त्वं सखी स्वामिनी त्वं वां त्वं वां परमदेवता।।२।।

जया-विजया सखियां कहती हैं—हे महेशानी! आपने तुलसी एवं बिल्वोत्पत्ति का वर्णन किया, तथापि क्या इनके समान कोई अन्य पुण्य वृक्ष है, जो हरि तथा हर, दोनों को प्रिय हो? हे शिवसुन्दरी! मैं यह सुनना चाहती हूं। आप हमारी सखी, कर्त्री, परम आराध्या देवता हैं। इसका वर्णन करने की कृपा करें।।१-२।।

देव्युवाच

अस्ति विल्वतुलसीतरुतुल्यः पुण्य एक उत विष्णुशिवार्हः।
नामतोऽमलक इत्यपि सख्यौ रोपितः कमलयाथ मयापि॥३॥
कदाचित् देवयात्रायां प्रभासपुण्यतीर्थके। सर्व्वे देवाः समायाता दिने पुण्ये च कुत्रचित्॥४॥
तत्रायातः स्वयं ब्रह्मा हंसारूढ़श्चतुर्मुखः। शिवो भूतगणैः सार्द्धं चन्द्रमौलिर्मया सह॥५॥
लक्ष्मया च सह गोविन्दः प्रसन्नवदनः सुरैः। इन्द्रः सुरपतिश्चैव वह्निः शमननैऋतौ॥६॥
यादोभिर्वरुणश्चैव पवनः स्वगणैः सह। कुवेरो धनदः श्रीमान्महेश्वरधनाधिपः॥७॥
ईशानश्च स्वयं देवः शिवमूर्त्तिः सनातनः। इत्यादयो देवगणा नारदाद्यैः सहर्षिभिः॥८॥
गोतमः कश्यपः साक्षात् वशिष्ठश्च्यवनोऽसितः। कण्वोमेधातिथिर्व्यासः पलाशश्च पराशरः॥९॥
विश्वामित्रः सजावालिर्जैमिनिश्च तपोधनः। आर्ष्णिसेनः पिप्पलादोऽप्यङ्गिराः पैल एव च॥१०॥
जामदग्न्यो भरद्वाजो जैगीषव्यः स्वयं मुनिः। इत्याद्या मुनयः सर्व्वे सशिष्याः सुकुतूहलैः॥११॥
आजग्मुर्ऋषयः सर्वे वेदवेदाङ्गपारगाः। ते सर्वे पुण्यकर्म्माणि चक्रुरेव यथोचितं॥१२॥
सर्वे संहत्य मुदिताः शिवं कृष्णं विधिन्तथा। अपूजयन् सुराधीशास्तीर्थभूतान् स्वयंप्रभान्॥१३॥

देवी कहती हैं—हे सखीद्वय! तुमने जो पूछा है, वैसा एक वृक्ष है। उसका नाम है आमलकी (आंवला)। देवी कमला तथा मेरे द्वारा वह उत्पन्न है। एक बार देवगण के उत्सव के उपलक्ष्य में एक पुण्यतिथि पर प्रभासतीर्थ में स्वयं हंसवाहन चतुर्मुख ब्रह्मा, प्रथमगण, मैं तथा प्रभु शिवशंकर, लक्ष्मी तथा नारायण, देवताओं के साथ इन्द्र, अपने-अपने अनुचरगण के साथ अग्नि-यम-कुबेर प्रभृति आठ दिक्पाल, नारदादि महर्षिगण, गौतम-कश्यप-च्यवन-असित-कर्ण-मेघातिथि-व्यास-पलाश-पराशर विश्वामित्र-जाबालि-जैमिनि-अर्ष्णिसेन, पिप्पलाद-अंगीरा-पैल-जामदग्न्य-भारद्वाज-जैगीषव्य तथा वसिष्ठ प्रभृति वेदवेदाङ्ग पारंगत मुनि-ऋषि आये तथा परस्परतः मिलकर परम आनंद में भरकर वहां का यथोचित पुण्यप्रद क्रियाकलाप करने लगे। सभी देवता-मुनि-ऋषि सानन्द देवाधिदेव शंकर, ब्रह्मा, विष्णु का पूजन भी करने लगे।।३-१३।।

तत्राहञ्च स्वयं लक्ष्मीरेकस्थाने समागते। नानाकौतूहलकथाश्चकार हि तया सह॥१४॥
तत्रावयोर्म्मतिर्जाता शिवविष्णुप्रपूजने। अहं श्रियमवोचञ्च सामुद्रि शृणु मे मतिं॥१५॥
स्वकल्पितेन द्रव्येण पूजयेऽहं हरिं प्रभुं। हरिः प्राणभृतामात्मा पूज्यश्च परमः सताम्।
तच्चिन्तय महाभागे किं सृष्ट्वा पूजये हरिम्॥१६॥

देव्युवाच

इत्यूचे च यदि मया तदा श्रीरपि हर्षिता। रोमाञ्चिताङ्गी सजये दण्डवत् प्रणनाम माम्॥१७॥
अहन्तु प्रणतां लक्ष्मीं समुत्थाप्य च बाहुना। समालिङ्गं समुत्थाय गाढ़मेव शुभाननाम्॥१८॥
मामुवाच ततो लक्ष्मीर्गद्गदाक्षरभाषिणी। ममाप्येवं मतिर्जाता त्वमवोचः स्वयं यथा॥
स्वकल्यितेन द्रव्येण पूजयेऽहं महेश्वरं॥१९॥

हे विजया! देवी कमला के साथ इस बीच मेरा नाना प्रकार से कौतुकपूर्ण वार्त्तालाप होने लगा था। तभी हम दोनों के मन में भगवान् शंकर तथा नारायण की अर्चना हेतु इच्छा जागृत हो गयी। मैंने लक्ष्मी से कहा—'हे सिन्धुपुत्री! मेरी इच्छा है कि हम स्वकल्पित वस्तु से प्रभु नारायण की पूजा करें। क्योंकि भगवान् श्री हरि समस्त प्राणीगण की आत्मा तथा साधुगण के परमाराध्य हैं। अतः तुम बताओ कि किस तरह से उनकी पूजा की जाये? हे विजया! देवी कमला मेरा कथन सुनकर परम संतुष्ट होकर रोमांचित हो गयीं। उन्होंने मुझे दण्डवत् होकर प्रणाम किया। तब मैंने अपने हाथों से उनको उठाकर उनका प्रगाढ़ आलिंगन किया। उन्होंने गद्‌गद् होकर कहा "हे पर्वतपुत्री! तुमने जैसे कहा है, वही मेरा भी अभिप्राय है। मैं भी स्वकल्पित द्रव्य से त्रिलोचन देव की पूजा करूंगी"।।१४-१९।।

देव्युवाच

सजये विजये देवि नावेवं भूतयोस्तदा। नयनेषु सुजातानि अमलाश्रुजलानि च॥२०॥

तानि नौ नयनेभ्यश्च निपेतुर्भुवि हे सखि। अमलानि कानि नाम द्वयोरेव लसन्मुदोः॥२१॥

ततो जाता द्रुमाः पृथ्व्यां चत्वारो विमलप्रभाः।
ख्याता आमलकी नाम्ना जाताः कादमलाद्यतः॥२२॥

श्यामलच्छदवृन्तास्ते कर्ब्बूरस्कन्धमूलकाः। शिराग्रथितपर्व्वाली पत्रमालैकपत्रकाः॥२३॥

विल्वस्य च तुलस्याश्च ये गुणाः कथिताः सखि।
ते ते गुणाः सर्व्व एवं आमलक्यां समाहृताः॥२४॥

पत्रमालादलैरस्याः शिवविष्णुसुरेश्वरौ। सर्व्वथा पूजितौ स्यातां सख्यौ नास्त्यत्र संशयः॥२५॥

माघे मासि सितायां तामेकादश्यां समुद्भवां। शुभामामलकीं दृष्ट्वा समेताः सर्वदेवताः॥२६॥

सृषयस्ते सशिष्याश्च हर्षमापुः परं तदा। शिवाच्युतस्वरूपञ्च ददृशुस्तुष्टुवुस्तदा॥२७॥

देवी कहती हैं—हे जया-विजया! उसी समय हम दोनों के नेत्र से निर्मल आनन्दाश्रु भूतल पर गिरे। तदनन्तर अश्रुजल से निर्मल प्रभा वाले चार वृक्ष उत्पन्न हो गये। उनके पत्ते तथा वृन्त श्यामल थे। तना तथा मूल कर्वरवर्ण तथा सभी पत्ते शिरा से ग्रथित थे तथा बहुल पत्र से एक पत्र गठित था। निर्मल नेत्रजलोत्पन्न होने के कारण इस वृक्ष का नाम आमलकी कहा गया। हे सखियों! तुलसी तथा बिल्व में जो-जो गुण है, वह सभी गुण अकेले आमलकी में स्थित है। इसके पत्तों में देवदेव हरि तथा हर, दोनों पूजित है। तदनन्तर माघमास की शुक्ला एकादशी के दिन उत्पन्न हरिहरात्मक पवित्र वृक्ष का निरीक्षण करके समस्त देवता तथा ऋषियों ने मिलकर आनन्दित मन से इसकी स्तुति की।।२०-२७।।

नमाम्यामलकीं देवीं पत्रमालास्वलंकृतां। शिवविष्णुप्रियां दिव्यां श्रीमतीं सुन्दरप्रभां॥२८॥

एतेन खलु मन्त्रेण सर्वा अस्याः क्रिया मताः।
एतामुदिश्य तीर्थानि त्रीण्युक्तानि मनीषिभिः॥२९॥

विल्ववृक्षवदेवेह पृथिव्यां कर्म्मणां स्थले। सिषिचुस्तामामलकीं सर्वतीर्थजलैर्द्विजाः॥३०॥

अथ सर्वसुराणाञ्च मुनीनाञ्च तदाग्रतः। मया संपूजितः कृष्णः श्रीश्च शम्भुमपूजयत्॥३१॥

तदा जयजयध्वानो बभूव क्षितिमण्डले। आकाशे पुष्पवृष्टिश्च शङ्खशब्दाश्च पुष्कलाः॥३२॥

देवगण तथा ऋषिगण कहते हैं—"जो हरि तथा हर, इन दोनों को प्रिय तथा पत्ररूपी माला से अलंकृत है, जिसकी प्रभा अत्यन्त मनोहर है, हम उन श्रीमत् देवी आमलकी को प्रणाम करते हैं।" हे सखियों! आमलकी से सम्बन्धित सभी कार्य हेतु यही मंत्रपाठ करना चाहिये। बिल्ववृक्ष की तरह इसके भी चतुर्दिक् १०० धनुष पर्यन्त स्थल को तथा उर्ध्व एवं अधोभाग को मनीषीगण भारतवर्ष में तीर्थ कहते हैं।

तदनन्तर सभी द्विजों ने सर्वतीर्थजल से उसका सिंचन किया तत्पश्चात् सभी देवगण के सामने उसके पत्तों से भगवान् विष्णु की मैंने अर्चना की। देवी लक्ष्मी ने भी इसी प्रकार वहां देवदेव शंकर की अर्चना सम्पन्न किया। चारों ओर से जयध्वनि उठी तथा आकाश से प्रचुर पुष्प वर्षा तथा गम्भीर शंखध्वनि होने लगी।।२८-३२।।

दृष्ट्वा ह्यामलकी देवी दधारानन्दमुत्तमं। तेन धात्रीति नाम्नापि राजत्वामलकी शुभा॥३३॥
नमस्कृत्य ह्यामलकीं गता देवा द्विजास्तथा। ब्रह्मविष्णुशिवाश्चापि तत्राधिष्ठानमाहिताः॥३४॥
जाता ह्यामलकी देवी परमानन्ददायिनी। मान्या स्थाप्या च पूज्या च प्रणन्तव्या सखीद्वय॥३५॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे आमलकीप्रादुर्भावो द्वादशोऽध्यायः।।



इसको देखकर देवी आमलकी ने अतुल आनंद धारण किया। तभी से उनका एक अन्य नाम छात्री पड़ गया। तदनन्तर सुरगण-ब्राह्मणगण ने उक्त आमलकी वृक्ष को प्रणाम किया तथा अपने-अपने स्थान चले गये। तथापि ब्रह्मा-विष्णु-महेश वही स्थिर रह गये। हे सखियों! इस परमानन्ददायिनी आमलकी देवी की स्थापना करना, उसका सम्मान (देखरेख) करना तथा अर्चना करना सबका कर्तव्य है।।३३-३५।।

।।द्वादश अध्याय समाप्त।।



त्रयोदशोऽध्यायः

नैमिषारण्य तीर्थोत्पत्ति

देव्युवाच

अथातः शृणुतं सख्यौ देशतीर्थानि नामतः। गङ्गाया अन्यतो यानि विश्रुतानि क्षितौ खलु॥१॥
प्रभास इति विख्यातो देशः पुण्यतमः सखि। यत्र चन्द्रो दक्षशप्तो विमुक्तो यक्ष्मण बभौ॥२॥
ततः पश्चिमतो नाम्ना तीर्थं सख्यौ पृथूदकम्। यत्राब्धिः स्वयमागत्य स्नाति प्रतिदिनं दिनम्॥३॥
ततो विन्दुसरो नाम तीर्थं सख्यौ सुविश्रुतम्। विधेर्यत्र गतस्याभूदानन्दाश्रुस्त्रवो बहुः॥४॥
यत्र स्वयं तपस्तेपे कर्दमो वै प्रजापतिः। तत उत्तरतस्तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति श्रुतम्॥५॥
यत्र पूर्वमुखी देवी नदी याति सरस्वती। तस्य पश्चिमतो नाम नैमिषारण्यमुत्तमम्॥६॥

सततं यत्र मुनयस्तिष्ठन्ति सत्क्रियान्विताः। यत्र नास्ति कलिर्देवः सत्त्वहारी नृणां सदा॥
शृणुतं येन तत् क्षेत्रं प्रशंसन्त्यृषयः सदा॥७॥

देवी कहती हैं—हे सखियों! अब भूमण्डल में जहां जहां गंगा नहीं हैं, उन-उन प्रसिद्ध स्थल तथा तीर्थों का उल्लेख करती हूं सुनो। प्रभास नामक एक अतीव पुण्यतीर्थ है। पूर्व में चन्द्रमा दक्षशाप के कारण यक्ष्मा से ग्रसित होने पर यहीं मुक्त हो सके थे। उसके पश्चिम में पृथूदक तीर्थ है। यहां समुद्र स्वयं स्नान करते हैं। तदनन्तर बिन्दुसर तीर्थ है। यहां भगवान् ब्रह्मा के आनन्दाश्रु से अनेक सरोवरों की उत्पत्ति हुयी। यही प्रजापति कर्दम ने घोरतर तपःश्चरण किया था। उसके उत्तर में ब्रह्मतीर्थ है। वहां सरस्वती नदी पूर्वाभिमुखीन बहती है। उसी के पश्चिम में नैमिषारण्य तीर्थ है। यहां मुनिगण सदा पुण्य क्रियाकलाप तथा यज्ञादि करते हैं। यहां मानवमात्र के सत्वगुण का हरण करने वाला कलि का कलुष नहीं व्याप्त होता। तभी ऋषिगण जिस कारण से इसकी प्रशंसा करते हैं, वह श्रवण करें।।१-७।।

पुरा सर्वे मुनिगणाः सशिष्याः कलिसन्निधौ। ब्रह्माणं शरणापन्नाः कलिभीता अथावदन्॥८॥

ऋषय ऊचुः

ब्रह्मन्नव्यय देवेश सत्त्वमूर्त्ते सनातन। चतुर्वक्त्र चतुर्बाहो हंसवाह नमोऽस्तु ते॥९॥
नमः श्वेताय नीलाय ब्रह्मणे शोणशोचिषे। सर्जकब्रह्मणे रक्षाब्रह्मणे प्रलयाय च॥१०॥
ब्रह्मणे ते नमस्तुभ्यं प्रमागम्याय ते नमः। प्रणवाधिष्ठातृदेव तुभ्यं (ब्रह्मन्नमो नमः॥११॥
नमः कमलभूताय कमलासनसंस्थित। चतुर्मुख नमस्तुभ्यं नमस्तेऽष्टविलोचन॥१२॥
नमोऽक्षसूत्रपाणे ते कमण्डलुकराय च। नमः पुस्तकहस्ताय नमस्ते कुशपाणये॥१३॥
सदा तिलकिने तुभ्यं सदा) वृद्धशिखाय च। सदोपवीतिने तुभ्यं सत्यवाक्याय ते नमः॥१४॥
गायत्रीपतये तुभ्यं ब्राह्मणाय नमो नमः। नमो विष्णुशिवाराध्य देवर्षीड़ित ते नमः॥१५॥
नमस्ते ऋग्यजुःसामाथर्ववेदविदे नमः। अनादिमध्यनिधनसर्वज्ञाय नमो नमः॥१६॥

एक बार पूर्वकाल में समस्त मुनिगण कलिकाल से भयभीत होकर शिष्यों के साथ ब्रह्मा के शरणापन्न होकर कहने लगे-'हे ब्रह्मन्! चतुर्मुख, चतुर्बाहु! आप अविनश्वर, सत्वगुण के आधार तथा सनातन हैं। हे हंसवाहन! आपको प्रणाम हे प्रभो! आप श्वेत हैं, आप नील हैं। आप सृष्टि-स्थिति-प्रलय करने वाले है। आपका कलेवर शोणवर्ण का है तथा आपके स्वरूप को कोई भी जान नहीं सकता, अतः आपको प्रणाम। हे कमलासन! आप प्रणव के अधिष्ठातृ देवता हैं। आपके ४ मुख, ८ नेत्र हैं। आपके ४ हाथों में अक्षमाला, कमण्डलु, पुस्तक तथा कुश विराजित है। आपके ललाट पर तिलक तथा गले में यज्ञोपवीत शोभित है। आप गायत्री पति को प्रणाम। आप ही ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्ववेदज्ञ हैं। भगवान् हरि तथा हर आपकी आराधना करते हैं। आपका आदि-मध्य-अन्त ही नहीं हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम।।८-१६।।

ब्रह्मोवाच

प्रसन्नो वोऽहमृषयः स्वाभिप्रायं वदन्तु च। आगता वा कथं यूथं तन्मे कथयतर्षयः॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—"हे ऋषिगण! मैं प्रसन्न हो गया। तुम लोगों का आगम किस प्रयोजन से हुआ है, बताओ"।।१७।।

ऋषय ऊचुः

पृथिवी कलिना व्याप्ता नृणां सत्यापहारिणा।
वयं तपोधना ब्रह्मन् कुत्र तप्स्यामहे क्षितौ॥१८॥

ऋषिगण कहते हैं—हे देव! मानवों के सत्व का हरण करने वाला कलि समस्त पृथिवी पर अधिकार कर रहा है। हे ब्रह्मन्! हम कहां जाकर तप इत्यादि सम्पन्न करें?।।१८।।

देव्युवाच

इत्युक्तः स तदा ब्रह्मा चिन्तयामास च त्रिधा।
तस्य चिन्तयतोऽक्ष्णोऽभूद्देवः कश्चिन्महाप्रभः॥१९॥
शशाङ्ककोटिधवलो द्विबाहुश्च त्रिलोचनः।
श्वेतमालाम्बरधरः स्मितशोभिशुभाननः॥
दधानो हस्तयुग्मेन जपमालाकमण्डलू।
तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे कोऽयमित्यब्रुवन् विधिम्॥२०॥२१॥

देवी कहती हैं—यह वाक्य सुनकर भगवान् चिन्ता में पड़ गये। तब उनके नेत्रों से करोड़ों चन्द्रमा के समान धवलकाय श्वेत माला तथा श्वेतवस्त्रधारी, जपमाला-कमण्डलु युक्त, प्रसन्न मुख, द्विभुज तथा दो नेत्र वाले एक महाप्रभु का प्रादुर्भाव हो गया। उसे देखकर ऋषियों ने ब्रह्मा से पूछा कि ये कौन हैं?।।१९-२१।।

विधिरुवाच

एष वै निमिषो नाम सत्त्वमूर्त्तिः सनातनः। सत्यकालोचिततनुर्युष्मदर्थेऽप्युपस्थितः॥२२॥
एनमग्रसरं कृत्वा यूयं गच्छत भूतले। यत्रैष तत्र गन्तव्यं स्थातव्यं यत्र तिष्ठति॥२३॥
यत्र चान्तर्हितो ह्येष भविष्यति हरेस्तनुः। स देश कलिना त्यक्तो युष्मदिष्टो भविष्यति॥२४॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—ये सत्वमूर्त्ति सनातन निमिषदेव हैं। इनका शरीर सत्यकामोचित है। ये तुम सबकी कार्यसिद्धि हेतु उपस्थित हैं। तुम इनको आगे करके पृथिवी पर जाओ। जहां यह स्थित हो जाये, वहीं तुम सब भी स्थित होना। ये विष्णुमूर्त्ति रूप जहां अन्तर्हित हो जायें, वही तुम लोगों के लिए इष्टदायक होगा। वहां कलि नहीं जा सकेगा।।२२-२४।।

देव्युवाच

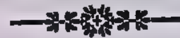
इत्युक्तास्ते मुनिगणा ब्रह्मणा क्षेमदायिना। निमिषाग्रेसरा जग्मुर्ब्रह्मलोकाद्धरातलम्॥२५॥
उत्तरं कुरुमागत्य भूमिष्ठास्ते तदाभवन्। अतीत्य पर्वतान् सर्वान् वर्षाणि षड़तीत्य च।
हिमाद्रेर्दक्षिणे वर्षे भारताख्ये च बभ्रमुः॥२६॥
तत्रैकत्र स्थले पृथ्व्यां सौराष्ट्रस्य समीपतः। विप्रः सोऽन्तर्दधे श्वेतो निमिषाख्यः सखीद्वय॥२७॥
तत्र चान्तर्हिते देवे मुनयस्ते महाव्रताः। सर्व्वं नारायणमयं ददृशुः स्थावरादिकं॥२८॥

विस्मिता मुनयः सर्व्वे जगदुस्तत्र ते मिथः। इदमेवोत्तमक्षेत्रं निमिषक्षेत्रमाहितम्॥
अस्पृष्टं कलिना नृणां परमक्षेमदायकम्॥२९॥
अत्र ये पशुपक्ष्याद्या लताद्रुमनरादयः। सर्वे नारायणा एव यथा गङ्गातटक्षितौ॥
यज्ञाध्ययनदानानां स्थानमेकमिदं स्मृतम्॥३०॥

देवी कहती हैं—हे सखियों! मुनिगण ब्रह्मा का यह आदेश सुनकर निमिषदेव के पीछे-पीछे चल पड़े। तदनन्तर वे उत्तर कुरु में अवतीर्ण होकर समस्त पर्वत तथा वर्षदेशों को पार करते-करते हिमालय के दक्षिण भारतवर्ष में भ्रमण रत हो गये। तदनन्तर वे सौराष्ट्र के समीप एक स्थान पर अन्तर्ध्यान हो गये। वहां मुनिगण समस्त स्थावर-जंगम का अनुभव विष्णुमय रूप कर रहे थे। वे अत्यन्त विस्मय से परस्परतः कहने लगे कि "आज से यह स्थान निमिषक्षेत्र कहा जायेगा। गंगातीर के ही समान यहां स्थित समस्त पशु-पक्षी-लता-गुल्म-वृक्ष तथा मनुष्य, सभी नारायण रूप है। यहां यज्ञादि सभी कार्य विशेष फलप्रद होगा। यहां अध्ययन, दानादि भी फलप्रद होगा"।।२५-३०।।

जम्बुद्वीपक्षितौ तत्र भारतं वर्षमुत्तमं। तत्रापि नैमिषारण्य तीर्थं परममुच्यते॥३१॥
इत्युक्त्वा मुनयः सर्व्वे तत्र वासं दधुश्चिरं। जुहुवुः सततपश्चेरुः सस्नुः कृष्णपरायणाः॥३२॥
एतत्तु वैष्णवक्षेत्रं नैमिषारण्यसंज्ञितम्। अधिष्ठायाद्यापि विप्राः कुर्व्वन्ति सत्क्रियाः सदा॥३३॥
यत्र सूत उग्रश्रवा लोमहर्षणजो महान्। श्रावयामास बहुधा पुराणानि सुधीः शुचिः॥३४॥
एतद्वां कथितं सख्यौ नैमिषारण्यसम्भवं। एतद् यः शृणुयात् सोऽपि मुच्यते कलिदोषतः॥३५॥
अत्र यत् कथितं स्तोत्रं ब्रह्मणः परमात्मनः। तत् श्रुत्वा ब्राह्मणो मोक्षमन्ये जन्मान्तरे सति॥
जायते ब्राह्मणो विद्वान् मुक्तिपात्रं हरेस्तनुः॥३६॥

।इति बृहद्धर्मपुराणे नैमिषारण्यसम्भवो नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।



"सभी द्वीपों में से जम्बूद्वीप श्रेष्ठ है। उसमें भारतवर्ष उत्तम है। भारतवर्ष में भी नैमिषारण्य सर्वोत्तम तीर्थ है।" मुनिगण यह कहने के पश्चात् वहीं रहकर सतत् हृदय में कृष्ण की भावना तथा स्वस्थ चित्त से होम, तप इत्यादि करने लगे। आज भी ब्राह्मणगण इस वैष्णवक्षेत्र नैमिषारण्य में सर्वदा पुण्यमय क्रियाकलाप करते रहते हैं। यहां लोमहर्षण पुत्र महाज्ञानी पवित्रात्मा सूत उग्रश्रवा ने ऋषियों को अनेक पुराण शास्त्र सुनाया है। हे सखीगण! मैंने तुमसे नैमिषारण्य तीर्थ का वर्णन किया। जो व्यक्ति इसे सुनेगा वह कलिकाल के कल्मष से मुक्त होगा। यदि कोई ब्राह्मण पूर्वोक्त ब्रह्मस्तोत्र का श्रवण करेगा, तब वह निश्चित रूप से आवागमन चक्र से मुक्त होगा। इसका कारण यह है कि ज्ञानी ब्राह्मण विष्णु का शरीर रूप तथा मुक्ति का पात्र है।।३१-३६।।

।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।



चतुर्दशोऽध्यायः

ज्ञातिकर्त्तव्य निरूपण

देव्युवाच

पुलहस्याश्रमस्तीरे गण्डक्यास्तीर्थमुत्तमम्। गण्डकी च नदी तीर्थं गिरेर्गण्डकतो भवा॥१॥
यत्र शालग्रामशिला वज्रकीटेन निर्म्मिताः। भवन्ति तन्महत्तीर्थं क्षितौ त्रैलोक्यविश्रुतम्॥२॥
अगस्तस्याश्रमस्तत्र मलयस्तीर्थमुच्यते। महेन्द्रपर्व्वते चैव भृगुरामस्य चालयः॥३॥
कावेर्य्याश्च तटे तीर्थं रङ्गनाथस्य चालयः। विन्ध्ये गिरौ च वासन्तीनिलयस्तीर्थमुच्यते॥४॥
श्रीशैलं ऋषभञ्चैव पर्वतं प्राहुरेव च। पञ्चाक्षरःसरस्तीर्थं गोकर्णाख्यं शिवस्थलम्॥५॥
सूर्पाकरं तथा तीर्थं दण्डकारण्यमेव च। माहिष्मती पुरी चैव विशाला च तथा पुरी॥६॥
त्रितकूपं परं तीर्थं काञ्चीद्वयञ्च वेङ्कटम्। तीर्थमाहुस्तथा वेणा कावेरी च सरस्वती॥७॥
यमुना सरयू पम्पा चन्द्रभागा च कौशिकी। गोदावरी विपाशा च नर्मदा च सरिद्वरा॥८॥
विपाशा कृतमाला च ताम्रपर्णी वटोदका। एतानि जलतीर्थानि कथितानि मनीषिभिः॥९॥
(मथुरा द्वारका चैव तथा गोवर्द्धनो गिरिः। वृन्दावनं महातीर्थं यमुनायास्तटे शुभे॥१०॥

देवी कहती हैं—गण्डकी नदी के तट पर पुलस्त्य ऋषि का आश्रम है। यह गण्डक पर्वत से उत्पन्न गण्डकी नदी परमतीर्थ हैं। यहां वज्र नामक कीट द्वारा शालग्राम शिला निर्मित होती है। अगस्त्याश्रम स्थल मलयागिरी तथा परशुराम का आलय महेन्द्रगिरि भी तीर्थ हैं। कावेरी तट पर रंगनाथ का स्थान है। विन्ध्यपर्वत, वासन्ती निलय, श्रीशैल, ऋषभगिरि, पञ्चअप्सरः सरोवर, शिवस्थान, गोकर्ण, सूर्पाकर, दण्डकारण्य, माहिष्मती तथा विशालापुरी, त्रितकूप, काञ्चीद्वय तथा वेंकट को महान् तीर्थ कहते हैं। मनीषीगण वेन्ना, कावेरी, सरस्वती, यमुना, सरस्वती, सरयू, पम्पा, चन्द्रभागा, कौशिकी, गोदावरी, सरिताओं में श्रेष्ठ विपाशा, नर्मदा, ताम्रपर्णी, वटोदका नदियों को नदीतीर्थ कहे गये हैं। हे शम्भु! मथुरा, द्वारका, गोवर्धनपर्वत तथा यमुना कूलस्थ वृन्दावन महातीर्थ हैं।।१-१०।।

कुरुक्षेत्रं तथा यत्र जामदग्न्यस्य वै यशः। सामुद्रश्च तथा सेतुरयोध्या च तथा पुरी॥११॥
गोतमस्याश्रमः पुण्यं तीर्थं प्रोक्तं मनीषिभिः)। तीरे ब्रह्मनदस्यापि कामकोष्टी च पुण्यदा॥१२॥

कामरूपमिति ख्यातं यत्र योनिः शिवा मता।
दक्षालये मृताया मे यत्र योनिः पपात ह॥१३॥

उज्जयिन्यां तथा पुर्य्यां पीठं मङ्गलकोष्ठकम्। शुभा मङ्गलचण्ड्याख्या यत्राहं वरदायिनी॥१४॥
ज्ञातयो बहवो यत्र मतं तत्तीर्थमुत्तमं। हिंसा न कार्य्या ज्ञातीनां ज्ञातिपूजारतो भवेत्॥१५॥
सहस्रब्राह्मणैस्तुल्य एकः स्वजन उच्यते। ब्राह्मणः स्वर्णतुल्यः स्यात् स्वजनस्य तुषो मतः॥१६॥
पुष्णीत स्वजनं दीनं सहायः स्याद्विपत्तिषु। कर्मणा मनसा वाचा ध्यायेत् स्वजनमङ्गलम्॥१७॥

कुरुक्षेत्र, सेतुबन्ध, अयोध्या गौतमाश्रम, ब्रह्मनद के तीरस्थ पुण्यप्रदा कामकोष्टि, जब दक्षकन्या सती ने देह त्याग किया था, तब उनका योनिभाग जहां गिरा था वह कामरूप नामक प्रसिद्ध स्थल, उज्जयनी स्थित मङ्गलकोष्ठ पीठ; जहां मंगलचंडी रूप से स्थित रहकर लोगों को मंगलदान देती हूं तथा उनको वर प्रदान करती हूं तथा वह स्थान जहां नाना ज्ञातिवर्ग का निवास है वह परमतीर्थ रूप है। उक्त ज्ञातिगण के प्रति कभी हिंसा भावना न रखें। सर्वदा उनका सम्मान करें। साधुगण इस एक ज्ञाति को सहस्र ब्राह्मण तुल्य कहते हैं। जो व्यक्ति ज्ञातिगण का प्रिय होता है, वह स्वर्णतुल्य आदर का पात्र है। इसीलिये ज्ञातिजन का पोषण, विपत्ति काल में ज्ञातिगण की सहायता तथा काया-मन तथा वाक्य से उनकी मंगल चिन्तना कर्तव्य होना चाहिये।।११-१७।।

स्वजनाय ऋणं दत्त्वा यो गृह्णात्यधिकेन तत्। तस्य वंशविलोपः स्यान्मृत प्रेतत्वमाप्नुयात्॥१८॥
अपुत्र स्वजनं स्वेन पुत्रेण पुत्रिणञ्च यः। कुरुते स भवेत् सख्यौ जन्म जन्म प्रजापतिः॥१९॥
बान्धवन्तु विषीदन्तं यः स्थापयति बान्धवः। शिवलिङ्गसहस्रस्य प्रतिष्ठाता स गीयते॥२०॥
अप्यकार्य्यशतं यस्तु ज्ञात्यर्थे कुरुते जनः। न स दोषेण लिप्तः स्यात् सखीद्वय न संशयः॥२१॥
पातकादुद्धरेत् ज्ञातिं दोषान्नापि प्रकाशयेत्। स्वदोषानपि न ज्ञातौ गोपयेत् तारके ततः॥२२॥
राजद्वारं बान्धवार्थे न गच्छेत् परितापितः। राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः॥२३॥

जो व्यक्ति ज्ञातिवर्ग से सूद-ब्याज लेता है, उसका वंशलोप होता है वह मृत्यु के अनन्तर प्रेत होता है। हे सखियों! जो व्यक्ति दीन, अपुत्र ज्ञाति को अपना पुत्र प्रदान करता है, वह पुत्रवान् हो जाता है। उसे प्रति जन्म में अनेक पुत्र होते हैं। जो व्यक्ति दरिद्र ब्राह्मण ज्ञाति को भूमि आदि दान देकर बसा देता है, साधुगण उसे १००० शिवलिंग प्रतिष्ठा कराने वाला मानते हैं। ज्ञाति हेतु सैंकड़ों अकार्य करने पर भी पापभागी नहीं होना पड़ता। अन्य लोगों से ज्ञाति का दोष न कहें तथा ज्ञाति के सामने अपने दोषों को न छिपायें। ज्ञातिजन की पापों से रक्षा करे। समर्थ हो, तब ज्ञाति के लिये, उसके हितार्थ राजद्वार भी जायें। जो व्यक्ति किसी की सहायता राजद्वार तथा श्मशान में करता है, वही यथार्थ बन्धु है।।१८-२३।।

आत्मनः साधुशीलेन ज्ञातिवह्निं सदा नरः। शान्तयद्दायकार्य्ये तु नोपेक्षेत कदाचन॥२४॥
ज्ञातिश्रेष्ठः स एव स्यात् नैव दोषैश्च लिप्यते। अतएव ज्ञातिदेशः परमं तीर्थमुच्यते॥२५॥
प्रसङ्गात् कथितं सख्यौ ज्ञातिकार्य्यमिदं मया। यः शृणोति पठेच्चैतत् स ज्ञातिप्रियकृद्भवेत्॥२६॥
जलतीर्थं पुष्करं स्यात् देशतीर्थं गया मतं। पुराणपठनं यत्र यत्र पद्मवनानि च॥२७॥
तच्च तीर्थं समाख्यातं गुरुदेवगृहं तथा। शालग्रामशिला यत्र तीर्थन्तत् क्रोशयुग्मकम्॥२८॥

जो मानव अपने सच्चरित्रतागुण से सदा ज्ञाति गण के सन्तापों को शान्त करता है तथा दयार्द्र होकर कभी भी दया करने में उपेक्षा नहीं करता, वही व्यक्ति ज्ञातिवर्ग में श्रेष्ठ तथा दोष रहित है। अतः जहां ज्ञातिजन निवास करते हैं, वह परमतीर्थ है। हे सखियों! मैंने तीर्थ प्रसंग में ज्ञातिवर्ग का उल्लेख किया है। जो इसको सुनता अथवा पढ़ता है, वह ज्ञातिवर्ग का प्रियकारी होता है। पुष्करादि जलतीर्थ हैं। गयाक्षेत्रादि स्थल तीर्थ हैं (देशतीर्थ हैं)। जहां पुराण पाठ होता है तथा जहां पद्मवन है, वह स्थान एवं गुरु का गृह भी तीर्थ ही है। जहां शालिग्राम शिला स्थित है, उसके चतुर्दिक् दो कोस पर्यन्त तीर्थ ही हैं।।२४-२८।।

वैद्यनाथसमाख्यातं तीर्थं कैलाससम्मितम्। वक्रेश्वरस्थलञ्चैव सुतीर्थं समुदाहृतम्॥२९॥
यत्र पापहरा नाम नदी पुण्यजला शुभा। ब्रह्माण्डाख्ये पुराणेऽस्य ज्ञेयं विवरणं शुभम्॥३०॥
देवपीठानि सर्वाणि विख्यातानि क्षितौ सखि।
तीर्थान्युक्तानि मुक्तीनां क्षेत्राणि विमलानि च॥३१॥
लवणाम्बुनिधेस्तीरे तीर्थं श्रीपुरुषोत्तमम्। मोक्षक्षेत्रं परं प्रोक्तं यत्रास्ते पुरुषोत्तमः॥३२॥
वाराणसी च कामाख्या द्वारका पुरुषोत्तमः। प्रयागश्च गया वृन्दावनं तीर्थोत्तमानि च॥३३॥
वनवासगतो रामो यत्र यत्र व्यवस्थितः। तानि चोक्तानि तीर्थानि शतमष्टोत्तरं क्षितौ॥३४॥

॥इति बृहद्धर्मपुराणे तीर्थप्रादुर्भावे चतुर्दशोऽध्यायः समाप्तः॥



वैद्यनाथ कैलासतुल्य तीर्थ है। जहां पापहरा नामक पुण्यमयी नदी विराजित है, वह वक्रेश्वर स्थान भी परमतीर्थ कहा गया है। ब्रह्माण्ड पुराण में इसका विशेष वर्णन है। हे सखियों! जितने प्रसिद्ध देवपीठ हैं तथा जितने मुक्ति क्षेत्र कहे गये हैं—वे सभी तीर्थ हैं, वे परमतीर्थ हैं। लवणसमुद्र तट पर जहां पुरुषोत्तम विराजित है, वह पुरुषोत्तम तीर्थ परम मुक्तिप्रद कहा गया है। वाराणसी, कामाख्या, द्वारका, पुरुषोत्तम, प्रयाग, गया, वृन्दावन, तीर्थों में प्रधान हैं। श्रीराम वनवास के समय जहां-जहां ठहरे थे, वे भूमण्डलस्थ १०८ स्थान महानतीर्थ हैं।।२९-३४।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।



पञ्चदशोऽध्यायः

वैशाखादि कालतीर्थ वर्णन

देव्युवाच

अथातः शृणु वक्ष्यामि तीर्थानीन्द्रियदेहतः। विप्राणां चरणौ तीर्थं गवां पृष्ठं तथा मतम्॥१॥
एते यत्र हि तिष्ठन्ति तच्च तीर्थमुदाहृतम्। स्त्रीणां सर्वाणि चाङ्गानि तीर्थान्युक्तानि सूरिभिः॥२॥
बालानाञ्च शिरस्तीर्थं स्वं तीर्थं चक्षुरुच्यते। तथैव दक्षिणः कर्णस्तीर्थं स्वं परिगण्यते॥३॥
सत्यवाक्यन्तु वाक्तीर्थं पुराणपठनन्तथा। देवलिङ्गधरं चित्तं तीर्थमित्युच्यते बुधैः॥४॥
असच्चिन्ताविरहितं मानसन्तीर्थमुच्यते। दातॄणाञ्च करौ तीर्थं देवपूजाकरौ तथा॥५॥
अन्तस्तीर्थं भूतशुद्ध्या प्राणायामाच्च नासिके। मन्त्रितश्चासनन्तीर्थं पैतृकी वसतिस्तथा॥६॥
अथातः शृणु वक्ष्यामि कालतीर्थानि सुन्दरि।
वैष्णवानि च शाक्तानि शैवसौरादिकानि च॥७॥

देवी कहती हैं—अब इन्द्रिय तथा देह में कौन-कौन तीर्थ कहा जाता है, वह कहती हूं। सुनो! ब्राह्मणों के दोनों चरण, गोपृष्ठ तीर्थ हैं तथा ये जहां स्थित रहते हैं, उसे भी तीर्थ कहा गया है। विद्वान लोग स्त्री के सभी अंगों को तीर्थ कहते हैं। बालक का मस्तक तीर्थ है। अपना नेत्र तथा दाहिना कान तीर्थ है। सत्य वाक्य तथा पुराण पाठ तीर्थ है। जिस मन में दुश्चिन्ता तथा कष्ट नहीं है वह तीर्थ रूपेण गण्य है। दान देने वाले का हाथ तथा देवपूजक का हाथ तीर्थ हैं। भूतशुद्धि हो जाने पर देहाभ्यन्तर तथा प्राणायाम में नासिका तीर्थ है। मंत्रपूत आसन तथा पैतृकगृह तीर्थ ऐसा पावन होता है।।१-६।।

काल एको विभुः साक्षात् देवो नारायणः प्रभुः। क्रियाकृतेरवच्छेदैर्भेदात् स त्रिविधो मतः।
वर्त्तमानश्च भूतश्च भविष्यन्निति सोपधिः॥८॥
सूर्य्यचन्द्रमसोर्गत्या परमाणुक्षणादयः। उपायोऽस्य च बहवो वैदिकव्यवहारतः॥९॥
दण्डा मनुष्यमानेन षष्ठी रात्रिन्दिवं मतम्। ते पञ्चदश पक्षः स्यात् द्वौ पक्षौ मास उच्यते॥१०॥

हे सुन्दरी! अब शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य प्रभृति के सम्बन्ध में कौन-कौन सा काल तीर्थ है, वह सुनो। यद्यपि सर्वव्यापी, सर्वसाक्षी, देदीप्यमान सृष्टिसंहार करने वाला नारायणरूपी काल एकमात्र ही है। तथापि क्रियाजनित भेद के कारण उसे भूत-भविष्य-वर्तमान रूप त्रिविध काल कहते हैं। चन्द्र-सूर्य की गति के कारण परमाणु तथा क्षण आदि नाना उपाधि वैदिक व्यवहार में प्रचलित है। मनुष्य परिमाण से ६० दण्ड का एक अहोरात्र होता है। १५ अहोरात्र को पक्ष तथा २ पक्ष का एक मास कहा जाता है।।७-१०।।

इन्दोः कलास्तु तिथयो वर्द्धमानाः परस्परं। शुक्लास्ता पञ्चदश वै शुक्लपक्ष इति स्मृतः॥११॥
सर्वाणि देवकार्य्याणि स्नानदानोत्सवादयः। प्रशस्यन्ते तत्र सख्यौ शशी यत्र हि वृद्धिमान्॥१२॥
अन्याश्च पञ्चदश वै कृष्णपक्ष उदाहृतः। क्षिणोति चन्द्रमा यत्र नाम्ना प्रतिपदादिषु।
चन्द्रस्य तु वलं यत्र मतमापञ्चमीतिथि॥१३॥
एवं पक्षौ शुक्लकृष्णौ पितृणां तदहर्न्निशम्। आश्विनाद्या मता मासाः सौरचान्द्रप्रमाणतः॥१४॥
मासद्वयमृतुः प्रोक्तो यथैवं कार्त्तिकौ शरत्। एवं षड्तवो मासा द्वादशैवायने समा।
साहर्न्निशा च देवानामयनोत्तरदक्षिणे॥१५॥

चन्द्रमा की एक-एक कला एक-एक तिथि हैं। जब चन्द्रकला वृद्धिगत होती है, तब पंचदश शुक्ल तिथि का शुक्लपक्ष होता है। हे सखियों! शुक्लपक्ष स्नान-दान-उत्सव तथा देवकायार्थ उत्तम है। जब चन्द्रकला का क्षय होता है, तब उन १५ तिथि को कृष्णपद कहते हैं। इस कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से चन्द्र का बल क्षीण होता जाता है। इस प्रकार शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष से पितृगण का एक अहोरात्र सम्पन्न होता है। सौर-चान्द्र भेद से आश्विन आदि जो मास कहे गये हैं, उन २ मास का एक ऋतु कहा गया है। जैसे आश्विन तथा कार्तिक का नाम शरद ऋतु है। इस प्रकार से १२ मास, ६ ऋतु तथा २ अयन होते हैं। इसका परिमाण से १२ मास का अथवा ६ ऋतु का, किंवा २ अयन का श्वत्सर होता है। देवताओं के लिये उत्तरायण दिन है, दक्षिणायन रात्रि है।।११-१५।।

तत्राषाढ़ः कार्तिकश्च माघो वैशाख एव च। तीर्थान्युक्तानि मासा वै चत्वारोऽभीष्टदायकाः॥१६॥
हविष्यं ब्रह्मचर्य्यञ्च कुर्य्यादेषु कृती नरः। स्नानं दानं तपो होमो गुरुदेवद्विजार्च्चनम्॥१७॥

इतिहासपुराणादिपाठश्रवणकर्म्मणी। कूपारामतड़ागादिदीक्षाद्याश्च क्रियाः शुभाः।
मासेष्वेषु प्रशस्यन्ते विप्रास्तीर्थाश्रया इव॥१८॥
वैशाखे यो वसेत् काश्यां शुचौ श्रीपुरुषोत्तमे।
कामरूपे कार्त्तिकिके प्रयागे माघमासि च।
यत्र कुत्र मृतोऽप्येष निर्वाणमुक्तिभाग् भवेत्॥१९॥

इस १२ मास में आषाढ़, कार्तिक, माघ तथा वैशाख को तीर्थ रूप तथा अभीष्टप्रद कहा है। इन ४ मास में मनुष्य ब्रह्मचर्य रहे तथा हविष्यान्न भक्षण करें। इससे वह कृतकार्य होगा। स्नान-दान-तपः-होम, देव, द्विज-गुरु पूजा, पुराण-इतिहासादि पाठ तथा श्रवण, कूप, अराम-तड़ागादि निर्माण, दीक्षा, शुभकार्य इन चारमास में तीर्थाश्रित ब्राह्मण की तरह उत्तम कहा गया। (जैसे तीर्थस्थ ब्राह्मण उत्तम है उसी प्रकार)। वैशाख मास में काशी में, आषाढ़ में श्रीक्षेत्र में, कार्तिक में कामरूप में, माघ में प्रयाग में जो निवास करता है, इसके पश्चात् वह कहीं भी मृत हो, उसे मुक्ति मिल जाती है।।१६-१९।।

अथ वासौ ह्यमीष्वेव कालेषु च स्थलेषु च। अन्तर्जले वा गङ्गायां मृतोऽवश्यं तथा भवेत्॥२०॥
आषाढ़े पद्मकुसुमैः कार्त्तिके तुलसीदलैः। दीपैर्बहुविधैश्चैव नैवेद्यैश्च यथोचितैः।
कुन्दैर्माघे विल्वपत्रैराधे स्वेष्टान् प्रपूजयेत्॥२१॥
विशिष्टमासेष्वेतेषु कालतीर्थं विशिष्यते। तृतीया नाम वैशाखे शुक्ला नाम्नाक्षया तिथिः।
हिमालयगृहे यत्र गङ्गा जाता चतुर्भुजा॥२२॥
पुराणे कथिता या च युगाद्या प्रथमा सखि। ततो जह्नुसप्तमी च यत्र नामास्तु जाह्नवी॥२३॥
तत एकादशी शुक्ला कालतीर्थं हि माधवे। ततो हि द्वादशी शुक्ला प्रशस्तं जलदानिका॥२४॥

अथवा यदि वह वहां निवास न करके वह उक्त चारमास में गंगा तीर पर किंवा गंगाजल में देहत्याग करता है, उसे अवश्य निर्वाणमुक्ति की प्राप्ति होती है। आषाढ़ में पद्मपुष्प से, कार्तिक में तुलसी पत्र तथा नानादीप एवं नैवेद्य से, माघमास में कुन्दपुष्प से तथा वैशाख मास में बिल्वपत्र द्वारा इष्टदेव का पूजन करना चाहिये। तीर्थरूप इन ४ मास में कालतीर्थ की विशेषता है। जैसे वैशाख शुक्ल तृतीया अक्षया तिथि है, इस तिथि पर गंगादेवी ने चतुर्भूत मूर्त्ति धारण कर हिमालय में जन्म लिया। हे सखी! पुराणज्ञ इस तिथि को सत्ययुग प्रारंभ की तिथि कहते हैं (अर्थात् उसी दिन से सत्ययुग आविर्भूत हुआ था)। तदनन्तर जह्नु सप्तमी है। इसी दिन से गंगा को जाह्नवी कहा गया।।२०-२४।।

वैशाखी पौर्णमासी च संयुता च विशाखया। शुक्लाषाढ़ा द्वितीया च वैष्णवी तिथिरुत्तमा॥२५॥
ततश्च सप्तमी सूर्य्य-प्रीतिदा दशमी ततः। मन्वन्तरा च विज्ञेया तत एकादशी शुभा॥२६॥
हरेरतितरां प्रेष्ठा युक्ता भेनामुराधया। यत्र स्वपिति वै विष्णुराद्यपादे जगत्पतिः॥२७॥
पौर्णमासी तथाषाढ़ी मता मन्वन्तरा तु या। ततो हि पञ्चमी शुक्ला नागदेवी-प्रियेष्यते॥२८॥

तदनन्तर शुक्लाएकादशी एवं शुक्लाद्वादशी तिथि जलदान (तर्पणादि) हेतु प्रशस्त है। विशाखायुक्त वैशाखी पूर्णिमा आदि कई तिथियां वैशाख मास की समयतीर्थ है। (समयतीर्थ = कालतीर्थ)। आषाढ़ीय शुक्ला द्वितीया विष्णु हेतु उत्तम तिथि है। तदनन्तर इसी मास की सप्तमी तिथि सूर्य के लिये प्रसन्नतादायक तिथि है। तदनन्तर दशमी है।

इसे मन्वन्तरा कहते हैं। तदनन्तर अनुराधा नक्षत्र युक्त एकादशी होने पर वह हरि की सर्वोत्तम तिथि है। इस तिथि के दिन अनुराधा के प्रथम चरण में जगत्पति विष्णु शयनरत हो जाते हैं। तदनन्तर आषाढ़ी पौर्णमासी को भी मन्वन्तरा कहा गया है। तत्पश्चात् आषाढ़ी कृष्ण पक्षीय पंचमी मनसादेवी की प्रिय तिथि है। मनसा देवी को नाग देवी भी कहते हैं।।२५-२८।।

अथैवं कार्त्तिके मासि द्यूतप्रतिपदित्यपि। शिवेन गिरिजया यत्र कृतं द्यूतं जयप्रदम्।।२९।।
दीव्यन्ति भूमिपास्तत्र सेवन्ते तौ द्विजातयः। पराजये न कर्त्तव्यं दुःखचित्तं नृपैः सदा।।३०।।
ततो भ्रातृद्वितीयेति यमुना यत्र चागतम्। अपूजयद्धर्मराजं स च तां भक्ष्यभूषणैः।।३१।।
यमुना च यमश्चैव तौ परस्परपूजितौ। द्वितीयायै तु तिथये ददतुः प्रथमं वरम्।।३२।।
द्वितीये शुक्लपक्षीये प्रिये भ्रातुः स्वसुः सदा।
त्वयि ये सोदराः पूजां करिष्यन्ति मिथः सुखैः।।३३।।
माल्यचन्दनताम्बूलैर्भोजनैर्विविधैः शुभैः। तेषां तासां यशः पापक्षयः स्वजनसङ्गतिः।।३४।।
आयुर्वृद्धिश्च भवति धर्मवृद्धिर्दिने दिने। न चापि कलहं द्वेषं पापकर्म च किञ्चन।।३५।।
पैशुन्यादि च नो कुर्य्यान्न चाध्ययनपाठने। ब्राह्मणान् भोजयेत् भ्रातॄन् भगिनीरपि पूजयेत्।।३६।।

इसी प्रकार कार्तिक मास की द्यूतप्रतिपदा है। इस अवसर पर पार्वती ने द्यूतक्रीड़ा में शिव को हराया था। नृपतिवर्ग इस दिन द्यूतक्रीड़ा करते हैं। तथा द्विजगण शिव-पार्वती पूजन करते हैं। इस दिन द्यूत में पराजय होने पर राजाओं को दुःख नहीं मनाना चाहिये। तदनन्तर भातृद्वितीया के दिन यमुना ने अपने गृहागत भ्राता यमराज (धर्मराज) की अर्चना किया था। धर्मराज ने भी यमुना का सत्कार भोज्य पदार्थ तथा आभूषणादि से किया था।

इस प्रकार वे दोनों परस्पर पूजित हुए तथा यह वर दिया कि यह बहन-भाईयों की प्रिय तिथि है। जो इस दिन उत्तम भोजन, माला, चन्दन तथा ताम्बूल से एक दूसरे का पूजन करेंगे। उन भाई-बहन को यशप्राप्ति, पापक्षय, स्वजन संगति, आयुवृद्धि तथा धनवृद्धि दिनों दिन होंगी। इस दिन कलह, द्वेष, पापकर्म, चुगली, अध्ययन, अध्यापन नहीं करें। ब्राह्मण भोजन कराये। भ्राता बहन का सत्कार करें।।२९-३६।।

ततोऽष्टमी कालतीर्थं गवां मङ्गलपूजनम्। ततो युगाद्या नवमी यत्र त्रेतायुगोद्भवः।।३७।।
ततोऽपि द्वादशी तीर्थं या तु मन्वन्तरा श्रुता। यत्र चोत्तिष्ठते विष्णुः शयनात् पापनाशकः।।३८।।
ततो मन्वन्तरा नाम पौर्णमासी तु कार्त्तिकी। यत्र दामोदरो देवो भक्त्या तु तुलसीदलैः।
प्रदीपैश्चारुनैवेद्यैरिष्ट आत्मानमर्पयेत्।।३९।।
ततः कृष्णा च नवमी युगान्त इति कथ्यते। माघे मासि सिता ख्याता चतुर्थी वरदा शुभा।।४०।।
ततः श्रीपञ्चमी नाम यत्र लक्ष्मीः प्रपूज्यते। महाकालीसरस्वत्यौ पूज्येते विविधार्च्चनैः।।४१।।
ततोऽपि सप्तमी शुद्धा स्मृता मन्वन्तरा सखि। अरुणोदयवेलायां तत्र स्नायात् शुचौ जले।।४२।।
सूर्य्यायार्घं मुदा दद्यात् सप्तजन्माघमुक्तये। गङ्गास्नानममुष्यान्तु सूर्य्यग्रहशतैः समं।।४३।।

इसके पश्चात् अष्टमी कालतीर्थ रूपा है। इस दिन गोपूजा से गृहस्थ का मंगल होता है। तदनन्तर नवमी युगाद्या

तिथि है, जिस दिन त्रेतायुग की उत्पत्ति हुयी थी। तदनन्तर द्वादशी भी तीर्थ रूपा है। इसे मन्वन्तरा कहा गया है। इस दिन प्रभु विष्णु शयन से उठ जाते हैं। तत्पश्चात् कार्त्तिकी पूर्णिमा भी मन्वन्तरा कही गयी है। इस दिन तुलसी के पत्ते, उत्तम नैवेद्य तथा प्रदीपदान द्वारा भक्ति भाव से दामोदर प्रभु की अर्चना करे। तदनन्तर कृष्णपक्षीय नवमी को युगान्ता कहते हैं। तदनन्तर जो चतुर्दशी है उसे रटन्ती चतुर्दशी कहा गया है। इस दिन जो अरुणोदय में स्नान सम्पन्न करता है वह यमालय गमन नहीं करता। माघ मासीय शुक्ला चतुर्थी को वरदा तथा शुभप्रदा कहा गया है। तदनन्तर श्री पंचमी के दिन लक्ष्मी, महाकाली तथा सरस्वती की नाना प्रकार से पूजा करे। तत्पश्चात् जो सप्तमी है, उसे मन्वन्तरा कहा गया है। उस दिन अरुणोदय काल में पवित्र जल से स्नान करे। मुदित मन से सूर्य को अर्घ्य देने वाला सात जन्म के पाप से मुक्त हो जाता है। इस दिन जो गंगा स्नान करता है, उसे १०० सूर्यग्रहण स्नान का फल प्राप्त होता है।।३७-४३।।

स्नाने चार्क्कार्घदाने च मन्त्रावेतावुदीरयेत्॥४४॥

यद्यज्जन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु। तन्मे रोगञ्च शोकञ्च माकरी हन्तु सप्तमी॥४५॥

जननी सर्व्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके। सप्तव्याहृतिके देवि नमस्ते रविमण्डले॥४६॥

स्नान तथा अर्घ्य काल हेतु मंत्र कहते हैं—

"मैंने सात जन्मों में जो-जो पाप किया है वह पाप-छिद्र तथा शोक इस माकरी सप्तमी द्वारा नष्ट हो।" यह स्नान मंत्र है। अब अर्घ्य मंत्र कहते हैं—"हे रविमण्डलस्थे, सप्तव्याहृतिके, सप्तसप्तिके, सर्वभूतजननी, देवी सप्तमी, आपको प्रणाम"।।४४-४६।।

ततोऽष्टमी यत्र भीमो विष्णुं प्राप त्यजन्नसून्। तत्र सन्तर्पयेत् भीष्मं सतिलाञ्जलिभिस्त्रिभिः॥४७॥

वैयाघ्रपद्यगोत्राय साङ्कृतिप्रवराय च। अपुत्राय ददाम्येतत् सलिलं भीष्मवर्म्मणे॥४८॥

अनेन खलु मन्त्रेण दद्यादम्भोऽञ्जलित्रयं। पितरस्तेन तृप्ताः स्युर्विष्णुश्चापि सनातनः॥४९॥

ततोऽपि नवमी नाम महानन्देति गीयते। यत्र विष्णोर्महानन्दो भीष्मं प्राप्तस्य निर्वृतम्॥५०॥

ततो माघी युगाद्या च पौर्णमासीति गीयते। यत्राभिषिच्यते विष्णुः सुगन्धिपुण्यवारिभिः॥५१॥

ततः कृष्णाष्टमी तीर्थं पितरो यत्र सर्व्वथा।

पूज्यन्ते साधुभिः शाकैर्यान्तः कलियुगस्य च॥५२॥

तत्पश्चात् अष्टमी के दिन भीष्म देवता को तीन अंजलि जल प्रदान करके अर्चना करें।

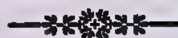
"मैं वैयाघ्रपद्यगोत्र, साङ्कृतिप्रवर, पुत्ररहित भीष्म वर्मा को यह जल प्रदान करता हूं" यह मंत्र पढ़कर भीष्म को तीन अंजलि जल प्रदान करें। इससे पितृगण तथा सनातन देवता विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं। तदनन्तर महानन्दा नवमी तिथि के दिन विष्णुदेव भीष्म को पाकर अत्यन्त आनन्दित हो गये थे। तत्पश्चात् युगाद्या माघी पूर्णिमा के दिन गन्ध-पुष्पदि द्वारा विष्णु का अभिषेक करें। तत्पश्चात् कृष्णपक्षीय अष्टमी तीर्थ रूपा है। इस दिन विहित शास्त्र से पितृगण की पूजा की जाये। इस दिन कलियुग का अवसान होगा।।४७-५२।।

ततश्चतुर्दशी कृष्णा रात्रियोगे शिवप्रिया। अगण्यमहिमाद्या वै शिवरात्रिस्तु गीयते॥५३॥

यस्यां पातालभूस्वर्गवासिनः शिवमोदिनः। रात्रौ चतुर्षु यामेषु शिवः संपूज्यते मुदा॥५४॥

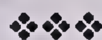
उपवासश्च पूजा च जागरश्च प्रमोददः। येषां भवन्ति तद्रात्रौ स कृती सर्व्वधर्म्मकृत्॥५५॥
एष्वेकमपि पापघ्नं किं पुनस्त्रिविधो विधिः। शम्भोश्चतुर्द्दशी रात्रिर्विष्णोर्जन्माष्टमी तथा।
देव्या महाष्टमी चैव मोक्षदाः स्युरुपोषणात्॥५६॥
अमावास्या ततो नाम ख्याता मन्वन्तरा सखि।
चतुर्ष्वेतेषु मासेषु कालतीर्थानि विद्धि मे॥५७॥
दिनानि खलु सर्व्वाणि सखि मासचतुष्टये। पुण्यानि कालतीर्थानि सत्कर्मार्हाणि सर्व्वतः॥५८॥
तथाप्येतानि वां सख्यौ विशिष्य कथितानि च।
मासेष्वन्येषु यान्येव सन्ति वक्ष्यामि तानि च॥५९॥

॥इति बृहद्धर्मपुराणे तीर्थकथने वैशाखादिकथनं पञ्चदशोऽध्यायः॥



तत्पश्चात् चतुर्दशी का रात्रि में योग होने पर यह शिवप्रिय तथा अनन्त महिमामण्डित शिवरात्रि है। इस दिन रात्रि में ४ प्रहर पर्यन्त स्वर्ग-मृत्युलोक तथा पातालस्थ लोग शिवभक्ति में मुदित हो आनन्द से शिवपूजा करते हैं। इस दिन रात में उपवास, पूजा तथा जागरण से जो आनन्दित होते हैं, वे कृती तथा सर्वधर्मकारी होते हैं। इस दिन उपवास-पूजा-जागरण में से एक ही कार्य द्वारा पापनाश होता है। त्रिविध कार्य जो सम्पन्न करते हैं, उनकी तो बात ही क्या? शिव चतुर्दशी, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तथा भगवती की महाष्टमी को उपवास करने से मोक्ष प्राप्ति होती है। तदनन्तर मन्वन्तरा नाम से प्रख्यात अमावस्या आती है। हे सखियों! इन चारमास में कई कालतीर्थ रूपी तिथियां आती है। यद्यपि इन ४ मास के सभी दिवस पुण्यप्रद तथा सत्कर्म हेतु कालतीर्थ (समयतीर्थ) रूप हैं, तथापि इनके सम्बन्ध में मैंने विस्तार से कह दिया। अन्य मास में जो कालतीर्थ हैं, वह भी कहती हूं।।५३-५९।।

।।पञ्चदश अध्याय समाप्त।।



षोडशोऽध्यायः

श्रीपञ्चमी प्रभृति समयतीर्थ वर्णन तथा अगस्त्य को अर्घ्यदान

देव्युवाच

पञ्चमी चैत्रमासस्य शुक्ला तीर्थमुदाहृतम्। यत्र श्रीर्ब्रह्मलोकाद्धि संप्राप्ता मानुषालयम्॥१॥
तस्मात्तां पूजयेत्तत्र यस्तं लक्ष्मीर्न मुञ्चति। एषा श्रीपञ्चमी कार्य्या विष्णुलोकगतिप्रदा॥२॥
ततः शुक्लाष्टमी चैत्रे ख्याताऽशोकाष्टमीति या। यस्यामशोककलिकायुक्तं वारि पिवेन्नरः॥३॥
भवत्यशोकभाक् तेन स्नात्वा देवीञ्च जाह्नवीम्। त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव।
पिवामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु॥४॥

गङ्गे देवि शिवे मातरशोके शोकनाशिनि। इह लोके परत्रापि शोकं हर महेश्वरि॥५॥
एताभ्यामेव मन्त्राभ्यां स्नानं गङ्गाजले चरेत्। अशोकपुष्पकलिकायुक्तं वारि पिवेदपि॥६॥
ततः श्रीरामनवमी पुष्यानक्षत्रसंयुता। यस्यां रावणनाशाय प्रादुर्भूतो जनार्द्दनः॥७॥
यस्यां ससीतासौमित्रिभरतं राममीश्वरम्। संपूज्योपोष्य तत्प्रीत्यै न भूयो जन्म लभ्यते।
दशम्यां भोजयेद्विप्रान् जुहुयाच्च तिलैः शतं॥८॥

देवी कहती हैं—हे सखियों! चैत्र मासीय शुक्ला पंचमी को भी समयतीर्थ (कालतीर्थ) कहा गया है। इस तिथि पर भगवती श्रीदेवी का ब्रह्मलोक से उतरकर मर्त्यलोक में आगमन हुआ था। जो व्यक्ति इस दिन उनका पूजन करता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं त्यागती। श्रीपञ्चमी विधि का पालनकर्त्ता विष्णुलोक में सद्गति लाभ करता है। तत्पश्चात् अशोकाष्टमी नाम से प्रख्यात शुक्लाष्टमी है। इस तिथि पर मनुष्य अशोक कलिकायुक्त जलपान तथा गंगा स्नान करके शोकयुक्त नहीं होता। इसका मंत्र है 'हे देवदेव वांछित चैत्रमास में उत्पन्न अशोक! मैं लोकसन्तप्त होकर तुम्हारा जल पी रहा हूं। मुझे सदा शोकमुक्त करो।' अब गंगास्नान मंत्र कहते हैं—"हे महेश्वरी, शोकनाशिनी माता देवी गंगे! हे अशोक! आप दोनों इहलोक तथा परलोक में मेरे शोकों का हरण करिये।" तदनन्तर पुष्य नक्षत्र युता श्रीरामनवमी के दिन भगवान् विष्णु पृथिवी पर दुष्टरावण के वधार्थ आविर्भूत हुए। इस दिन जो मनुष्य उपवासी रहकर भरत, लक्ष्मण, सीता के साथ रामपूजा करता है, वह पुनर्जन्म की पीड़ा को प्राप्त नहीं करता। इस दिन उपवासी तथा पूजनतत्पर रहकर दशमी को ब्राह्मण भोजन कराकर तिल की १०० आहुति प्रदान करे।।१-८।।

ततस्त्रयोदशी शुक्ला चैत्रे मासि श्रुता सखि। यस्यां संपूज्यते कामः सर्व्वकामसमृद्धये॥९॥
ततश्चतुर्द्दशी नाम दमनाख्या शिवप्रिया। तत्र ये मूलमन्त्रेण समूलदमनोच्चयम्।
निवेदयन्ति गौरीशे तेषां चैत्रार्च्चनं फलम्॥१०॥
चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमैर्माल्यवस्त्रकैः। नानाविधैश्च नैविद्यैः पूजा कार्य्या सखीद्वय॥११॥
ध्वजच्छत्रवितानादि देयं कार्य्यः प्रजागरः। महत्पुण्यमवाप्नोति चाश्वमेधशताधिकम्॥१२॥
ततः सौभाग्यदा चैत्री चित्रानक्षत्रसंयुता। तस्यां चित्रर्क्षगां पूजां कृत्वा चान्द्रपदं व्रजेत्।
पूजयेन्मां भक्तिभावात् चन्द्रशोभितमस्तकाम्॥१३॥
वारेऽर्कगुरुमन्दानां चैत्रे मन्वन्तरा यदि। अश्वमेधाधिकं पुण्यं तत्र स्नात्वा लभेन्नरः।
दानञ्चाक्षयतां याति पितृणाञ्चापि तर्पणम्॥१४॥

तदनन्तर शुक्लात्रयोदशी के दिन सर्वकाम प्राप्ति तथा समृद्धि हेतु कामदेव का पूजन करना चाहिये। इसके पश्चात् दमन चतुर्दशी शिवप्रिय तिथि है। जो व्यक्ति इस दिन मूलमंत्रोच्चारपूर्वक जड़युक्त दमनक महादेव को अर्पित करता है, वह समस्त चैत्रमास की अर्चना का फल प्राप्त कर लेता है। हे सखियों! अगुरु-चन्दन-कपूर-कुंकुम-माला-वस्त्र-नाना उत्तम नैवेद्य प्रदान करके महादेव की पूजा करें। उनको ध्वज-छत्र-वितान अर्पित करें तथा रात्रि में जागरण करें। इससे उस पूजक को १० अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक फल की प्राप्ति होती है। तदनन्तर चित्रानक्षत्र युता सौभाग्यप्रदा चैत्री पूर्णिमा को चित्रानक्षत्रदेव की पूजा करने से चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है तथा भक्तिभाव से इस दिन मुझ भगवती की पूजा करें। यदि चैत्री मन्वन्तरा तिथि शनि, रवि अथवा गुरुवार को पड़ती है, तब उस दिन स्नान

करने वाला व्यक्ति अश्वमेध यज्ञ से भी उत्तम फललाभ प्राप्त करता है। इस दिन दान तथा पितृतर्पण से भी अक्षय फल प्राप्ति कही गयी है।।९-१४।।

वैशाखे मासि शुक्लायां तृतीयायां जनार्दनः। यवानुत्पादयामास युगञ्चारब्धवान् कृतम्।।
ब्रह्मलोकात् त्रिपथगां पृथिव्यामवतारयत्।।१५।।
तस्यां कार्य्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्च्चयेत्।
यवान्दद्यात् द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद्यवान्।।१६।।
पूजयेच्छङ्करं गङ्गां कैलासञ्च हिमाचलम्। भगीरथञ्च नृपतिं सागरानपि सर्व्वतः।।१७।।
स्नानं दानं तपः श्राद्धं जपहोमादिकञ्च यत्। श्रद्धया कल्पते यत्तु तदानन्त्याय कल्पते।।
गङ्गातीरे विशेषेण सर्व्वमक्षयमुच्यते।।१८।।
ज्यैष्ठशुक्लचतुर्थ्यान्तु जाता पूर्व्वमुमा सती। तस्यां संपूजनीया सा स्त्रीभिः सौभाग्यवृद्धये।।१९।।
उपचारैश्च विविधैः नृत्यगीतोत्सवादिभिः। होमं विल्वदलैः कुर्य्यात् ब्राह्मणान् भोजयेदपि।।२०।।

वैशाख मास की शुक्लातृतीया को विष्णुदेव ने जौ की उत्पत्ति तथा सत्ययुग का प्रवर्त्तन किया था। इसी तिथि पर त्रिपथगा गंगा ब्रह्मलोक से पृथिवी पर अवतीर्ण हुयी थी। इस दिन यव होम तथा यव से ही प्रभु विष्णु की अर्चना करें। संयतचित्त से द्विजातिगण को यवदान तथा यवभोजन करायें। शंकर, गंगा, कैलास, हिमाचल, भगीरथ तथा समस्त सागर का पूजन करे। इस दिन स्नान, दान, तपः, श्राद्ध, जप, होमादि में से जो-जो श्रद्धा के साथ सम्पन्न किया जायेगा, उसका अनन्त फल होगा। विशेषतः गंगातीर पर किया यह सब कार्य अक्षय फल प्रदान करता है। ज्येष्ठशुक्लाचतुर्थी तिथि के दिन उमादेवी का जन्म कहा गया है। इस तिथि पर स्त्रीगण सौभाग्यवृद्धि हेतु उनकी पूजा करें। नानाविध उपचार, नृत्य-गीतादि उत्सव के साथ मनुष्य भगवती का पूजन, बिल्वपत्र से होम तथा नाना ब्राह्मणगण को भोजन प्रदान करें।।१५-२०।।

अथ शुक्ला च दशमी ज्यैष्ठे दशहरा स्मृता। हस्तर्क्षसंयुता भौमे वारे तीर्थं विशेषतः।।२१।।
अस्यां स्नानञ्च दानञ्च महापातकनाशनम्। यां काञ्चित् सरितं प्राप्य दद्याद्दर्भतिलोदकम्।
पितृभ्यः पातकैस्तेन मुच्यते दशभिः परैः।।२२।।
गङ्गाञ्च पूजयेद्भक्त्या माल्यचन्दनकादिभिः।
गङ्गास्तवांश्च शृणुयात् भोजयेत् ब्राह्मणानपि।।२३।।
गङ्गावतीर्णा धरणीमस्यां शैलाद्धिमालयात्। तस्मात् संपूजयेदत्र शम्भुं भूपं भगीरथम्।।२४।।
विरिञ्चिं कुलशैलांश्च धरणीं सागरानपि। हंसकारण्डवाख्यांश्च पक्षिणः स्त्रीगणानपि।।
होमं कुर्य्याद्विशेषेण करवीरैः सितैः शतम्।।२५।।

ज्येष्ठ शुक्लपक्षीय दशमी दशहरा कही जाती है। यदि यह तिथि मंगलवासरी होकर हस्तनक्षत्र युक्त हो, तब इसे विशेष तीर्थ कहा जायेगा। इस दिन स्नान-दान से महापाप नाश होता है। जिस किसी नदी में इस दिन पितरों हेतु कुशयुक्त तिल जल प्रदान किया जायेगा, वह १० जन्मों के १० प्रकार के पापों से मुक्ति प्राप्त करेगा। इस दिन

माला-चन्दनादि से गंगा पूजा, गंगास्तव श्रवण तथा अनेक ब्राह्मणों को भोजन करायें। इस दिन ही हिमालय से गंगावतरण हुआ था। इस दिन शंकर, ब्रह्मा, भगीरथ, कुलाचल, पृथिवी, सागर, हंस, बक, कारण्डव तथा मादा पक्षियों की पूजा करें। श्वेत कनेर से १०० होम भी करें।।२१-२५।।

एवं दशहरा-पूजां यः करोति नरोत्तमः। ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा भक्तितत्परः॥
अश्वमेधादयो यज्ञास्तेनैव तु कलौ कृताः॥२६॥
पूर्णिमा ज्यैष्ठमासस्य युक्ता चेत् ज्येष्ठया भवेत्। महाज्यैष्ठीति विज्ञेया युक्ता वाप्यनुराधया॥
शनिवारस्य योगस्तु फलाधिक्यात् प्रशस्यते॥२७॥
महाज्यैष्ठ्यान्तु यः पश्येत् पुरुषः पुरुषोत्तमम्।
विष्णुलोकमवाप्नोति मोक्षं गङ्गाम्बुमज्जनात्॥२८॥
इन्दुग्रहसहस्त्राणां सूर्य्यग्रहशतेष्वपि। फलं दत्ते भगवती महाज्येष्ठी महाफला॥
स्नानदानजपादिश्च गङ्गातीरे विशेषतः॥२९॥

इस प्रकार कोई भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भक्तियुक्त होकर दशहरा पूजा करेगा, उसे इसी कलिकाल में अश्वमेध यज्ञ फल की प्राप्ति होगी। ज्येष्ठमास की पूर्णिमा यदि ज्येष्ठ अथवा अनुराधायुक्त हो तब वह महाज्येष्ठी पूर्णिमा कही जायेगी। यदि उस दिन शनिवार भी रहे तथा फलाधिक्य होगा। उक्त महाज्येष्ठी के दिन जो पुरुष भगवान् पुरुषोत्तम का दर्शन करेगा, उसे विष्णु लोक प्राप्त होगा। उस दिन गंगा स्नान करने वाला तो मुक्तिभागी हो जाता है। भगवती महाज्येष्ठी उसे १००० चन्द्रग्रहण तथा १०० सूर्यग्रहण का फल प्रदान करती हैं। गंगा तट पर श्राद्ध-जप-स्नान-दान का विशेष फल मिलता है।।२६-२९।।

आषाढ्याः परतः कृष्णा पञ्चमी श्रवणायुता।
अर्हा वाजसनीशाखाध्यायिनान्तु द्विजन्मनाम्॥
उपाकर्मणि केषाञ्चित् केवलापि मता तथा॥३०॥
सखि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षे कलौ युगे। अष्टाविंशतिमे जातः कृष्णोऽसौ देवकीसुतः॥३१॥
गन्धमाल्यैस्तथा वस्त्रैर्यवगोधूमपिष्टकैः। सगोरसैर्भक्ष्यभोज्यैस्तथा बहुविधैः फलैः॥
रात्रौ जागरणं कुर्य्यात् नृत्यगीतमहोत्सवैः॥३२॥
निर्माय प्रतिमास्तासु कृष्णं नन्दवधून्तथा। देवकीञ्चापि संपूज्य लभेत् सर्व्वार्थसाधनम्॥३३॥

आषाढ़ी पूर्णिमा के पश्चात् श्रवणनक्षत्र युक्त कृष्णा पंचमी तिथि को महावाजसनेयी शाखाध्यायी द्विजगण के अनुसार उपाकर्म संस्कार के लिये उत्तम कहा गया है। अन्य मत से मात्र पंचमी तिथि ही प्रशस्त है, भले श्रवणनक्षत्र युक्त न हों। हे सखियों! अट्ठाईसवे कलियुग भाद्र मास में कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को देवकी के गर्भ से कृष्ण ने जन्म लिया था। इस तिथि के दिन कृष्ण प्रतिमा निर्माण करके गन्ध, माला, वस्त्र, गेहूं, जौ, पिष्टक, दुग्ध, भोज्य पदार्थ, पेय तथा नाना फलों द्वारा यशोदा-देवकी-कृष्ण पूजा तथा नृत्यगीत महोत्सव के साथ रात्रि जागरण द्वारा मानव सर्वतीर्थ फल प्राप्त कर लेता है। उस दिन कृष्ण-नन्द-देवकी प्रभृति की प्रतिमा बनाकर उनकी पूजा सर्वार्थ साधक है।।३०-३३।।

अष्टम्यां केवलायाञ्च पूजा कार्य्या विधानतः।
निशीथव्यापिनी युक्ता रोहिण्या सा फलाधिका॥३४॥
तस्यां संपूजयेत् कृष्णं दुर्गां नन्दवधून्तथा। देवकीं रोहिणीं रामं यमुनां नन्दमेव च॥
वसुदेवं तथा कंसं नारदञ्च महामुनिम्॥३५॥
विनापि भाद्रमासेन रोहिण्या सहितासु च। कृष्णाष्टमीषु सर्व्वासु सम्पूज्यौ शिवकेशवौ॥३६॥
तत्रापि रजनीयोगोऽपेक्ष्यते वै फलाधिकः। शृणुयात् कृष्णमाहात्म्यं कृष्णजन्मकथामपि॥
उपवासश्च कर्त्तव्यो जागरश्च महोत्सवैः॥३७॥
जयन्ती नाम योगोऽयं दैवतैश्च प्रशस्यते। पूजोपवासकर्म्मादौ नवम्या वेध इष्यते॥
जन्माष्टम्यान्त्वर्द्धरात्रिव्याप्तायां वैदिकक्रियाः॥३८॥
यद्बाल्ये यच्च कौमारे यौवने वार्द्धके च यत्।
सप्तजन्मार्ज्जितं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु॥
तत्क्षालयति भूतेशं तस्यामभ्यर्च्य भक्तितः॥३९॥
होमजप्यादिदानानां फलञ्च शतसम्मितम्। संप्राप्नोति न सन्देहो यच्चान्यन्मनसेप्सितम्॥
उपवासश्च तत्रोक्तो महापातकनाशनः॥४०॥

केवल अष्टमी को ही यह पूजा यथाविधान की जाती है। तथापि यदि यह तिथि रोहिणी नक्षत्रयुक्त निशीथव्यापिनी हो, तब पूजा इस जयन्ती योग में प्रचुर फलदायक होती है। तब कृष्ण, दुर्गा, नन्दवधूगण, देवकी, रोहिणी, बलराम, यमुना, नन्द, वसुदेव, कंस, महामुनि नारद का पूजन करें। अन्य कृष्णाष्टमी जो भले ही भाद्रमास की न हो, तथापि रोहिणी युक्त हो उन अष्टमियों के दिन शिव केशव पूजन करें। तथापि यह योग रात में पड़े तब फलाधिक्य होगा। यह योग देवगण द्वारा प्रशंसित भी है। इस दिन उपवास, जागरण, महोत्सव करें तथा श्रीकृष्ण महिमा एवं जन्मकथा श्रवण करें। पूजा-उपवासादि कर्म के लिये नवमी विद्धा अष्टमी ग्राह्य तो अवश्य ही है, तथापि जन्माष्टमी इस दिन अर्द्धरात्रि व्यापिनी होगी। इसी दिन वैदिक कार्य भी करना चाहिये। इस तिथि पर भक्ति के साथ श्रीकृष्णदेव की अर्चना करने से सात जन्मार्जित बाल्य-कौमार-यौवन तथा वार्द्धक्य का कृत पाप नष्ट हो जाता है। इस दिन होम-जप-दान अथवा जो कुछ किया जायेगा, उस सब का फल सौगुना प्राप्त होगा। यह निःसंदिग्ध है। इस दिन का उपवास महापातक नाशक है।।३४-४०।।

एवं कृत्वा विधिं सम्यक् परत्राहनि भक्तिमान्।
अरुणोदयवेलायां स्त्रियोऽपि च विभूषिताः॥४१॥
नदीषु च तड़ागेषु प्रतिमाः स्नापयेच्च ताः। कृत्वा महोत्सवांस्तत्र चागच्छेयुर्गृहानपि।
तिथिभान्ते मुदा कुर्य्युः पारणं वैष्णवैः सह॥४३॥
यद्येकयामरात्र्यन्तादधिके तिथिभे उभे। तथा सतीच्छया काले पारणाचरणं सखि।
दक्षिणां रुचिरान्दद्यात् गुरवे ब्राह्मणाय वा॥४४॥

इस प्रकार से सम्यक् विधि अष्टमी के दिन पालन करके अगले दिन अरुणोदय काल में स्त्री अथवा पुरुष सभी नदी किंवा जलाशय जाकर वहीं भक्तिपूर्वक प्रतिमा प्रभृति को स्नान कराये तथा वहां महोत्सव करके गृह में लौटे। हे सखियों! यदि दोनों तिथियों पर नक्षत्र एक प्रहर रात्रि से अधिक हो, तब अपनी इच्छा से पारण आचरण करें। गुरु अथवा ब्राह्मण के साथ कंजूसी न करके दक्षिणा प्रदान करें।।४१-४४।।

गवां पूजा च विविधा कर्त्तव्या नवमीदिने। गोपानां प्रीतिदानेन धर्मैः सम्पच्च वर्द्धते॥४५॥
कृष्णपक्षे भाद्रपदे छन्दोगानां द्विजन्मनां। पुष्यायां प्रोक्तमतुलमुपाकर्म्मविधानतः॥४६॥
भाद्रे सिता तृतीया च पुण्या मन्वन्तरा मता। स्त्रीणान्तत्रोत्सवः पुण्यं स्नानदानादिमङ्गलं॥४७॥
पञ्चम्याञ्च ततः कुर्य्यात्सर्पाणां देवतार्च्चनं। ततः षष्ठी च सामान्या मासि भाद्रपदे शिवा॥४८॥
नाम्ना पापहरा तत्र स्नानाद्यक्षयमुच्यते। ततश्चतुर्दशी कृष्णा द्वापराद्या महाफला॥४९॥

नवमी के दिन नाना उपचारों से गो पूजा करनी चाहिये। गोगण की प्रसन्नता द्वारा धर्म तथा सम्पत्ति वृद्धि होती है। भाद्रमास के पुष्यनक्षत्र में सामवेदी ब्राह्मणगण का उपाकर्म संस्कार महाफल जनक है। भाद्र मास में कृत उपाकर्म संस्कार महाफल जनक है। भाद्रमास की शुक्ल द्वितीया मन्वन्तरा है। उस दिन स्त्रीगण द्वारा उत्सव, स्नानदानादि पुण्य प्रद है। तदनन्तर पञ्चमी तिथि के दिन नागदेवता की अर्चना करनी चाहिये। तदनन्तर भाद्रमास की शुक्लाषष्ठी को स्नानदान से अक्षय फल मिलता है। इसका नाम है पापहरा षष्ठी। तदनन्तर कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी युगाद्य तिथि है। इस दिन द्वापर युग प्रवर्त्तित होता है। वह महाफलप्रदा है।।४५-४९।।

ततः प्रतिपदं शुक्लामारभ्य चाज्ञया हरेः। इन्द्रः पालयते पृथ्व्यां ब्रीहिशस्योषधीः स्वयं॥५०॥
तस्मात् स तत्र संपूज्यः सभार्य्यश्च दिने दिने। सगणः सानुयात्रश्च सायुधश्च सवाहनः॥५१॥
पटभित्तिकृतो देवो राज्ञा पूज्यो विशेषतः। पक्षेऽपि समुदायेऽत्र प्रत्यहं मघवेज्यते॥५२॥
सप्तम्याञ्च तथाष्टम्यां नवम्याञ्च विशिष्य च। शिवौ शिवञ्च देवीञ्च पूजयेयुः स्त्रियो व्रतैः॥५३॥
द्वादश्यामत्र नृपतिः शक्रमुत्थाप्य पूजयेत्। अत्र पार्श्वपरीवर्त्तः शयानस्य हरेरपि॥५४॥
इयञ्च श्रवणायोगात् श्रवणद्वादशी मता। कश्यपाददितौ जात उपेन्द्रो यत्र वामनः।
स्नानदानोपवासादि कुर्य्यात्तत्र हि वैष्णवः॥५५॥

तदनन्तर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त भगवान् हरि की आज्ञा से स्वयं इन्द्र पृथिवी पर धान्य, शस्य तथा औषधियों का पान करते हैं। इसलिये उक्त शुक्लपक्ष के दिन इन्द्रदेव की मूर्त्ति को कपड़े पर अंकित करके भार्या, वाहन, आयुध, परिवारवर्ग के साथ नित्य पूजा करे। विशेषतः इन देवता की पूजा करना अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य है। इसमें विशेष बात यह है कि सप्तमी-अष्टमी तथा नवमी के दिन शिवदुर्गा की पूजा करनी चाहिये। इस द्वादशी तिथि के दिन निद्रित भगवान् हरि अपनी करवट बदलते हैं। यह तिथि यदि श्रवण नक्षत्र युक्त हो जाये तब इस तिथि को श्रवणा द्वादशी कहते हैं। इस तिथि पर कश्यप के औरस तथा अदिति के गर्भ से भगवान् विष्णु ने वामनरूप से जन्म लिया था। इस दिन स्नान-दान उपवास आदि करना वैष्णव का कर्तव्य है।।५०-५५।।

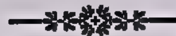
अत्रैव शुक्लपक्षे हि सिंहांशे दिनसप्तके। अगस्त्यं पूजयेत्प्रातः प्रत्यहं मानवो गृही॥५६॥
पञ्चरत्नसमायुक्तं घृतपायससंयुतं। नानाभक्ष्यफलैर्युक्तं ताम्रपात्रसमन्वितं॥५७॥

अङ्गुष्ठमात्रपुरुषं कुम्भजातं चतुर्भुजं। सुवर्णप्रतिमायान्तु पूजयेद्दक्षिणामुखः॥५८॥
धान्यसप्ताम्बरैर्युक्ते निदध्यात्प्रतिमां घटे। धेनुं सवत्सां दद्याच्च ब्राह्मणाय पयस्विनीं॥५९॥
एवमेव विधानेनागस्त्यायार्घ्यं प्रदापयेत्। काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥६०॥
होमं कृत्वा ततः पश्चात् वर्जयेन्मानवः फलं॥६१॥
एवं कृत्वा चेन्द्रलोकं रूपारोग्यसमन्वितः।
प्राप्नोति सखि यः सम्यक् सप्तैवार्घान् प्रयच्छति॥६२॥

इस शुक्लपक्ष में सिंह राशि के अंश में ७ दिन तक गृहस्थ व्यक्ति नित्य प्रातः अगस्त्यदेव का पूजन करें। पञ्चरत्न, घृत, पायस, नाना भक्ष्य तथा फल से ताम्रपात्रस्थ अंगुष्ठमात्र आकृति वाले चतुर्भुज कुम्भयोनि की स्वर्ण प्रतिमा की पूजा दक्षिणाभिमुख होकर करे। उक्त प्रतिमा धान्य तथा पहवस्त्र युक्त हो तथा उसे एक घट में रखें। तदनन्तर दुग्धवती सवत्सा गौ ब्राह्मण को प्रदान करें। इस विधान से अगस्त्यदेव को अर्घ्य दान करें। इस मंत्र से प्रणाम करना चाहिये। "हे काशकुसुम प्रतिकाश अग्नि-वायु से उत्पन्न, मित्रावरुण पुत्र कुम्भयोनि अगस्त्य! आपको प्रणाम!" तदनन्तर होम एवं फल अर्पित करें। हे सखियों! जो इस विधान से अगस्त्य देव को सात अर्घ्य प्रदान करता है, वह सुरूप, आरोग्य युक्त होकर मरणोपरान्त चन्द्रलोक गमन करता है।।५६-६२।।

उदेति यावद्भगवानगस्त्यो व्योम्नि तावतः। कालान् संपूजयेत्तं वै कन्यासिंहांशकान्तरे॥६३॥
तावच्चं भोजयेद्विप्रान् परमान्नफलादिभिः। दत्त्वा च दक्षिणां शुद्धं दद्यात्सर्वं द्विजातये॥६४॥
यद्यहं प्राप्नुयां कामं भगवन्मनसेप्सितं। त्वत्प्रसादादविघ्नेन भूयस्त्वां पूजयाम्यहं॥६५॥
इत्येवं प्रार्थयेत्काशीवासिनं कुम्भसम्भवं। इत्येवं सखि ते प्रोक्तान्येतानि दश पञ्च च।
कालतीर्थानि परतः शृणु वक्ष्यामि पक्षतः॥६६॥

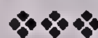
।इति बृहद्धर्मपुराणे व्यासजाबालिसम्वादे तीर्थकथने अगस्त्यार्घ्यः षोडशोऽध्यायः।।



जब तक अगस्त्य नक्षत्र आकाश में उगे हों तब तक कन्या एवं सिंह राशि के मध्य में उनकी पूजा करें। तथा पायस एवं फल का भोजन ब्राह्मण को कराकर विशुद्ध दक्षिणा प्रदान करके समस्त पूजा सामग्री ब्राह्मण को प्रदान करें।

यह प्रार्थना करें—"हे प्रभो! यदि आपकी कृपा से मेरी मनोकामना सिद्ध हो जाये तब आपकी पुनः पूजा करूंगा।" यह कहकर काशीवासी अगस्त्य ऋषि की पूजा करें। हे सखी! मैंने १५ समयतीर्थ का वर्णन किया। अब पक्षतीर्थ का वर्णन सुनो।।६३-६६।।

।षोडश अध्याय समाप्त।।



सप्तदशोऽध्यायः

पक्षश्राद्धविधि

देव्युवाच

सख्यौ तीर्थानि तिथयः पितॄणां प्रीतये पराः। अश्वयुक्कृष्णपक्षीयाः पितरस्तत्र लिप्सवः॥१॥
प्रत्यहं तासु कुर्व्वीत श्राद्धं वै पार्वणं विधिं। देवीं मामेव विधिना पितृरूपामधिष्ठितां॥२॥
यजेयुः प्रयता मर्त्याः कन्यासंस्थे रवौ सति। पूजा मे श्राद्धरूपेयं परमप्रीतिदायिनी॥३॥
अहमेव स्वधा स्वाहा नम ओङ्कार एव च। विशेषात् स्वयमेवाहं विष्णौ सुप्तेऽत्र सर्व्वथा॥४॥
तस्मादपरपक्षेऽस्मिन् श्राद्धं कुर्य्याद्दिने दिने। तदशक्त्या पञ्चमीतो दशमीतस्तोऽप्यलं॥५॥
ततोऽप्यशक्तौ त्रीण्येव दिनानि तत्र नापि चेत्। अमावस्यादिने श्राद्धं कर्त्तव्यं नात्र संशयः॥६॥
तत्राप्यभावे कर्त्तव्यं श्राद्धं दीपान्वितातिथौ। तस्माद्यत्नोऽपरे पक्षे कर्त्तव्यः श्राद्धतर्पणे॥७॥
सतिलं तर्पणं कार्य्यं गङ्गायामितरत्र वा। निषिद्धेऽपि दिने कुर्य्यात्तर्पणं सतिलं त्विह॥८॥
मघायां पिण्डदानन्तु न कुर्य्यात्पुत्रवान् गृही॥९॥

देवी कहती हैं—हे सखियों! आश्विन मास की कृष्णपक्ष की तिथियां पितरों हेतु परम प्रीतिप्रद तीर्थ हैं। इसमें पितर लोग पिण्डादि की कामना करते हैं। अतः उक्त पक्ष में नित्य पार्वण विधि श्राद्ध करें। रवि जब कन्याराशि पर हो तब मृत्युलोकवासी सन्नद्ध होकर इस विधान से पितृरूपेण अधिष्ठित मेरी पूजा करें। यह श्राद्धरूपा पूजा मुझे अतिशय प्रिय है। मैं ही स्वधा, स्वाहा, नमः तथा ओंकार हूं। विशेषतः भगवान् विष्णु के शायित होने पर मैं सर्वदा विद्यमान रहती हूं। अतः इस पितृपक्ष में नित्य श्राद्ध करें। इसमें यदि अशक्त हो तब पञ्चमी से दशमी पर्यन्त श्राद्ध करें। इसमें भी अशक्त हो तब तीन दिन, यदि इसमें भी अशक्त हो तब मात्र अमावस्या को श्राद्ध करें। यदि यह भी न कर सके तब दीपान्विता अमावस्या को श्राद्ध अवश्यमेव करना चाहिये। इसलिये इस पितृपक्ष में गृहस्थ श्राद्ध तथा तर्पणार्थ यत्नवान् रहें। इस पक्ष में गंगा किंवा अन्य तीर्थ में जल तर्पण करें। निषिद्ध तिथि पर भी तिल से तर्पण हो सकता है। पुण्यात्मा गृहस्थ मघा त्रयोदशी को पिण्डदान न करें।।१-९।।

आहवेषु विपन्नानां जलाग्निभृगुपातिनां। चतुर्द्दश्यां भवेत् पूजा अमावास्यां तु कामिकी॥१०॥
उपसर्गमृतानाञ्च तथैव चात्मघातिनाम्। पिण्डञ्चोदकदानञ्च कर्त्तव्यमिह वर्त्तते॥११॥
स्त्रियाः सूतिविपन्नायाः श्राद्धमत्र विधीयते। शाकश्राद्धमिहाष्टम्यां पितॄणां प्रीतिदायकम्॥१२॥
त्रयोदश्यान्तु मधुना पायसैः श्राद्धमिष्यते। पुत्रवानपि तत्कुर्य्यात् न चेत्कान्यं भवेद्धि तत्॥१३॥
इयं युगाद्यापि मता कृष्णाश्विनत्रयोदशी। अथातः शृणु वक्ष्यामि शरत्पूजादिनानि मे॥१४॥

युद्ध में, जल में डूबने से, अग्नि दाह से, ऊंचे से गिरने पर जो मरा हो, उसका पिण्डदान चतुर्दशी को करें। अमावस्या को काम्य श्राद्ध करे। इसी दिन आत्महत्या अथवा उत्सर्ग से मृत का पिण्डदान तथा तर्पण हो सकता है। जो नारी प्रसव काल में मृत हो, उसका भी श्राद्ध इसी दिन होगा। पितृपक्षीय अष्टमी के दिन शाक से श्राद्ध करें।

इससे पितर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। त्रयोदशी को मधु-पायस से श्राद्ध पितरों को प्रसन्न करता है। यदि काम्य श्राद्ध नहीं है, तब पुत्र-गृहस्थ भी इसे कर सकते हैं। आश्विन मास की कृष्णा त्रयोदशी युगाद्य तिथि है। इसके अनन्तर शारदीय पूजा तिथि को सुनो।।१०-१४।।

जाबालिरुवाच

पितृरूपा कथं देवी स्वधाभोक्त्री स्वयं शिवा। कथं वा शारदी पूजा अकाले युज्यते गुरो॥१५॥

जाबालि कहते हैं—हे गुरो! स्वयं भगवती देवी कैसे स्वधा भोजन करती हैं, अकाल में शारदीय पूजा कैसे होती है?।।१५।।

व्यास उवाच

एवमेव ततः सख्यौ देवीं पप्रच्छतुः शिवां। तदहं तेऽभिधास्यामि शृणुष्वैकमना द्विज॥१६॥

व्यास कहते हैं—तुमने जो प्रश्न पूछा है, यही प्रश्न सखियों ने पार्वती देवी से पूछा था। वह मैं बतलाता हूं। एकाग्रता से श्रवण करो।।१६।।

सख्यावुचतुः

कथं नु भवती भूता पितृरूपा स्वधार्थिनी। शरत्काले तवार्च्चा वा कथमाकालिकी शिवे॥१७॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे सप्तदशोऽध्यायः।।

सखियों ने देवी से पूछा—हे शिवे! आप पितृरूपा, स्वधार्थी हैं। आपकी शरत्कालीन पूजा कैसे होती है, कहें।।१७।।

।।सप्तदश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टादशोऽध्यायः

राम का रणारम्भ, रावणबधोपाय

देव्युवाच

आसीद्राजा दशरथः कोशलाधिपतिर्नृपः। सूर्य्यवंशसमुत्पन्नः सप्तद्वीपपतिर्महान्॥१॥
यज्वा दाता धर्मपरः शास्त्रतः सत्पराक्रमः। सार्द्धसप्तशतं भार्य्यास्तस्यासन् पृथिवीपतेः॥२॥

कौशल्या केकयी चापि सुमित्रा चापि तस्य ह।
तिस्रो महिष्यः सुभगाः सच्छीलाश्चारुलोचनाः।
आसंस्तस्य नृपस्यासीत्तासु योग्या न सन्ततिः॥३॥

विभाण्डकसुतं नाम्ना ऋष्यशृङ्गं समाश्रितः। पुत्रार्थमुद्यतः कर्तुं क्रतुं क्रतुमतां वरः॥४॥
एतस्मिन्नेव काले तु ब्रह्मा सुरगणैः सह। गत्वा वैकुण्ठभवनं वैकुण्ठे समुवाच सः॥५॥

ब्रह्मोवाच

नारायण जगन्नाथ वैकुण्ठ परमेश्वर। जनार्द्दन हृषीकेश केशवानन्त माधव॥६॥
लङ्कायां राक्षसपतिर्विहितस्ते दुरासदः। तं निहन्तुं क्षितौ नाथ मानुषीं तनुमाश्रय॥७॥
मया त्वस्मै वरो दत्तः सर्वाबध्यत्वमीप्सितम्। नागृह्णात् स स्वयं मोहान्मानुषाबध्यतां कुधीः॥८॥
भक्ष्या नो मानुषा एवमवलेपाज्जनार्द्दन। तस्मात् त्वं मानुषो भूत्वा रावणं जहि कण्टकम्॥९॥
राजा दशरथो मह्यां पुत्रार्थी यततेतराम। तस्य त्वं वैष्णवाग्र्यस्य पुत्रत्वं याहि माधव॥१०॥

देवी कहती हैं—सूर्यकुलोद्भव सप्तद्वीपयती दशरथ नाम कौशल राज एक प्रबल राजा थे। वे यज्ञपरायण, दाता, शास्त्रवेत्ता, सत्पराक्रमी तथा अत्यन्त दानी थे। अति धार्मिक भी थे, उनकी ७५० पत्नियां थी। उनमें कौशल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा नामक तीन रानियां सुशीला तथा सौभाग्यशाली थी। तथापि इन तीनों के गर्भ से सन्तान नहीं थी। राजा यह देखकर विभाण्डक मुनि के पुत्र ऋष्यशृंग की शरण में गये। राजा ने उनके द्वारा पुत्रेष्ठि यज्ञारंभ किया। इस अवसर पर ब्रह्मा देवताओं के साथ वैकुण्ठ गये तथा वैकुण्ठपति से कहा—"हे वैकुण्ठपति, जगन्नाथ! केशव, जनार्दन, अनन्त, माधव, हृषीकेश! लंका में दुर्दान्त रावण राक्षसराज है, यह आपको ज्ञात है। हे नाथ! उसका वध करने हेतु आप मर्त्यलोक में मनुष्य जन्म ग्रहण करें। मैंने उसे उसका इच्छित वर दिया था कि तुम अवध्य होगे। वह मन्दबुद्धि इस गर्व में था कि मानव मेरे भोजन हैं, इसलिये उसने मोहान्ध होकर मानव से अवध्य होने का वर नहीं मांगा। अतः आप मनुष्य देह धारण करके सबके लिये कण्टकरूप रावण का वध करिये। हे माधव! वैष्णव चूड़ामणि दशरथ के द्वारा पुत्रेष्ठि यज्ञ किया जा रहा है। आप उस राजा दशरथ का पुत्र होना स्वीकार करें—"॥१-१०॥

भगवानुवाच

ब्रह्मन् सत्यमिदं ज्ञातं मयापि निश्चयेन वै। मानुषोऽहं भविष्यामि तं वधिष्यामि राक्षसम्॥११॥
किन्त्वेकमस्ति कर्त्तव्यं गोपनीयं त्वया सह।
देवाः स्वस्वालय यान्तु साहाय्याय च मे भुवि।
ऋक्षवानरसङ्घेषु भवन्तु भावयन्तु च॥१२॥
इत्युक्त्वा देवतावर्गान्विनियोज्य तथा तथा। ब्रह्मणः सह कृष्णोऽगात् कैलासं यत्र पार्वती॥१३॥
तौ तत्र शम्भुना दृष्टौ पूजितौ च ममर्हणैः। ततो ब्रह्महरीशास्ते उपतस्थुरुमान्तु माम्॥१४॥
उद्यतेषु प्रणन्तुं मां तेषु देवेषु मत्तनोः। निःसृतैका भगवती महामेघप्रभा शुभा॥१५॥
अष्टादशभुजा चन्द्रकलाकलितमस्तका। देवभिरष्टभिर्युक्ता जयन्त्यादिभिरुत्तमा॥१६॥
नवयौवनसम्पन्ना नानाभरणकोज्ज्वला। स्वर्णसिंहासने पट्टे लसन्ती लोललोचना॥१७॥
तामेव संप्रणम्यैव जगदुस्ते स्वमीप्सितम्। तत्र विष्णुरुवाचेदं शृण्वतः कामवैरिणः॥१८॥

भगवान् कहते हैं—हे ब्रह्मन्! मैं यह विशेष रूप से जानता हूं। मैं मनुष्यावतार लेकर इस राक्षस का वध

अवश्य करूंगा। तथापि आपके साथ कुछ गोपनीय बात भी है। देवता भी यहां से प्रयाण करके मेरी सहायता के लिये रीक्ष तथा वानरयोनि में पृथिवी पर जन्म लें तथा अन्य को भी अवतीर्ण करें।'' भगवान् की यह बात सुनकर ब्रह्मा ने देवताओं को उस कार्य में नियुक्त किया। तब भगवान् विष्णु ब्रह्मा के साथ कैलास पर्वत गये। भगवान् देवदेव शिव ने उनको आते देख उनका सत्कार किया। तत्पश्चात् ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर मेरे (उमा) के साथ बैठे। उन्होंने मुझे प्रणाम किया। तब मेरी देह से महामेघ के समान नीलवर्ण अठारहभुजा वाली, नानाभरणभूषिता, नवयौवना, अर्द्धचन्द्र को शिर पर धारण किये स्वर्णसिंहासनपट्ट पर शोभिता लोलनयना कल्याणप्रदा भगवती जयन्ती प्रभृति आठ देवियां निकली। सबने उन देवियों को प्रणाम करके अपना अभीष्ट कहा। तब भगवान् विष्णु भगवान् शिव को सुनाते हुए कहने लगे।।११-१८।।

भगवानुवाच

मातरम्ब विष्णुमाये ब्रह्मायं दैवतैः सह। उपारुणद्रावणस्य बधाय लोकदूषिणः।।१९।।
अतस्तस्य वधार्थाय मानुषत्वं व्रजाम्यहम्। ऋक्षवानरसङ्घेषु देवा यास्यन्ति सम्भवम्।।२०।।
किन्तु त्वं सेवितानेन रावणेन महात्मना। अयञ्च पूजितः शम्भुर्यावज्जीवं दिने दिने।।२१।।
त्वद्भक्तः शिवभक्तो वा मद्भक्तो वा कथं मया।
हन्तव्यः शैलतनये न माञ्च द्वेष्टि स क्वचित्।।२२।।
युवाभ्यां देवदेवीभ्यां वर्द्धितः स च दर्पितः। विशेषतस्त्वमेवास्मै देवी लङ्केश्वरी शुभा।।२३।।
अतस्त्रैलोक्यरक्षायै रावणस्य वधादिह। चिन्तयोपायमतुलं यत्त्वत्प्रीत्या म्रियेत सः।।२४।।

भगवान् विष्णु कहते हैं—हे माता! विष्णुमाया! अभी ब्रह्मा ने देवगण के साथ लोकपीड़क रावण के वधार्थ मुझसे अनुरोध किया था। इसलिये मैं उसके वधार्थ मनुष्य रूप में अवतरित हो रहा हूं। देवगण भी रीछ तथा वानररूपेण अवतरित होंगे। तथापि यह दुरात्मा रावण आपका सेवक है तथा प्रतिदिन शिव पूजा करता है। हे शैलराजपुत्री! जो शिवभक्त है, वह मेरा भक्त है, तब मैं कैसे रावण वध करूंगा? वह तो मुझसे द्वेष नहीं करता। आपने तथा प्रभु शंकर ने ही उसे इतना बढ़ाया तथा बलगर्वित कर दिया! विशेषतः आप भी देवी लंकेश्वरी मूर्त्ति में स्थित होकर उसके शुभ विधान में तत्पर हैं। अतएव रावण का वध करके त्रिभुवन की रक्षा हो सके, इसके लिये किसी अतुलनीय उपाय का विधान करें, जिससे वह आपकी प्रीतिरहित स्थिति पाकर मृत हो सके!।।१९-२४।।

देव्युवाच

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा। विहस्योवाच देवेशं विष्णुं प्रभुमनामयम्।।२५।।

चण्डिकोवाच

सत्यं तेनाराधिता च भक्त्या च समुपासिता। शम्भुश्चाराधितस्तेन लब्धा सम्पच्च तादृशी।।२६।।
नैवावशिष्टं किञ्चास्ति प्राप्यञ्च तस्य दुर्लभम्। अधुना स्वविनाशाय लोकानुद्वेजयत्यसौ।।२७।।
मया विचिन्त्यते तस्य निधनाय दुरात्मनः। ब्रह्मणा तु वरो दत्तस्तेन चाहमुपासिता।।२८।।
आराधितश्च भूतेशस्त्वाञ्च न द्वेष्टि स क्वचित्। मानुषा भोजनं तस्य कस्मादेष मरिष्यति।।२९।।

उपायश्चिन्तितो यो हि ब्रह्मणा कृत एव सः। यस्त्वामुपारुणत्तस्य वधे मानुषभावतः॥३०॥
किन्तु त्यक्ता मया लङ्का त्वया सा धर्षिता भवेत्।
तस्मात् त्यक्ष्यामि तां लङ्कां तत्रोपायं शृणुष्व मे॥३१॥

देवी कहती हैं—देवपति भगवान् विष्णु के यह कहे जाने पर चण्डविक्रमा भगवती चण्डिका ने हंस करके कहा—"हे केशव! वह रावण भक्ति पूर्वक मेरी तथा भगवान् शम्भु की उपासना करता है, यह बात पूर्णसत्य है, तभी वह ऐसी सम्पदा प्राप्त कर सका है किम्बहुना, वह सभी दुर्लभ वस्तु प्राप्त कर चुका है, कुछ भी बाकी नहीं है। वह अब अपने विनाशार्थ लोकपीड़न में प्रवृत्त है। मैं उस दुरात्मा रावण के वधार्थ चिन्तित हूं। स्वयं ब्रह्मा ने उसे वर प्रदान किया है, ऊपर से वह शिव भक्त भी है। साथ ही आपका भक्त है। ऐसी स्थिति में मनुष्य तो उसके लिये भोजन हैं, तब वह कैसे मृत होगा? ऐसी स्थिति में ब्रह्मा ने आपको मनुष्य भाव धारण करके उसके वध हेतु कहा है, यही सर्वोत्तम है। तथापि जब तक मैं लंका त्याग नहीं करती उसका वध नहीं हो सकता। अब मैं वह उपाय कहती हूं जिससे उसका लंका त्याग हो जाये।।२५-३१।।

त्वयि मानुषतां जाते तव पत्नीञ्च मानुषीम्। श्रियं देवीं मद्विभूतिं हरिष्यति दुरात्मवान्॥३२॥
सा तु लक्ष्मीर्यदा तस्य पुरीं यास्यति सुन्दरी। तदा शम्भोरनुमते तां त्यक्ष्यामि पुरीं प्रभो॥३३॥
मम प्रतिनिधीभूतां यदा लक्ष्मीं तव प्रियाम्। अवमंस्यति दुष्टात्मा तदा स ह्रासमेष्यति॥३४॥
अतस्त्वं याहि मानुष्यं तद्वधे च मनः कुरु। त्वया च स्मरणीयाहं हृदि गुप्ता तदा तदा।
साहाय्यन्ते करिष्यामि शम्भुश्चैष प्रसाद्यताम्॥३५॥

जब आप मनुष्य होकर अवतार लेंगे, तब मेरी ही विभूतिरूपा आपकी पत्नी श्रीदेवी का हरण करेगा। जब ये लक्ष्मी सुन्दरी उसकी लंकापुरी में जायेगी तब मैं शंकर की अनुमति के अनुसार लंका त्याग करूंगी। जब वह दुरात्मा मेरी ही विभूतिरूपा आपकी पत्नी लक्ष्मी का अपमान करेगा, तब यह तय मानिये कि उसके मरण का समय आ गया। अतः आप मनुष्य मूर्त्ति धारण करके उसके वधार्थ प्रयत्नशील हो जायें। जब आप मेरा स्मरण करेंगे तब मैं आपकी सहायता करूंगी। अब आप भगवान् शम्भु को संतुष्ट करिये।।३२-३५।।

देव्युवाच

इत्युक्तः स तथा देव्या शृण्वतोर्देवयोस्तयोः। परमं प्रीतिमापन्नः शिवमैक्षत केशवः॥३६॥
देव्या अनुमतः शम्भुरीक्षिते हरिणा तदा। उवाच वचनं हर्षात् प्रोत्फुल्लनयनः शिवः॥३७॥
अहञ्चावतरिष्यामि वानर्य्यां पृथिवीतले। त्रैलोक्ये दुष्करं कर्म्म करिष्यामि मुदे तव॥३८॥
तवाज्ञामनुयास्यामि लोकातीतपराक्रमः। दशशीर्षेण तेनाहं नत एकादशो न च॥३९॥
तेन चैवापराधेन मर्द्दयिष्यामि तं ध्रुवम्। नन्दिना मेऽभिशप्तोऽसौ रावणो राक्षसाधिपः॥४०॥
मत्तुल्यवदना जीवा भवितारो बधे तव। अतोऽहं वानरो भूत्वा करिष्यामि मुदं तव॥४१॥
मयि याते तु लङ्कायां देवी त्यक्ष्यति तां पुरीम्। किं करिष्यति च ब्रह्मा ब्रूतां तत्र तु कर्मणि॥४२॥

देवी कहती हैं—जब भगवती चण्डिका ने ब्रह्मा तथा महादेव के समक्ष विष्णु से यह कहा, तब विष्णु अत्यन्त

प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने शिव की ओर दृष्टिपात किया। तब भगवान् शिव देवी की अनुमति से विष्णु की ओर देखकर हर्षोत्फुल्ल नेत्रों से युक्त हो कहने लगे—"हे प्रभो! मैं भूतल पर वानररूप में अवतीर्ण होकर आपको आनन्दित करूंगा। मैं अलौकिक विक्रम के साथ आपका आज्ञाकारी रहूंगा। नन्दी ने राक्षसराज रावण को शाप दिया था कि मेरे समान मुखवाला प्राणी तुम्हारा वध करेगा। अतः मैं वानरयोनि में जन्म लेकर आपका आनन्द वर्द्धन करूंगा। मैं इस वानरमूर्त्ति में लंका जाऊंगा। तब देवी भी लंकापुरी का त्याग करेंगी। अब ब्रह्मा क्या सहायता करेंगें, यह कहिये"।।३६-४२।।

देव्युवाच

इत्युक्तः शूलिना कृष्णः परं हर्षमुपागतः। हर्षाश्रुपूर्णया दृष्ट्या ब्रह्माणं समुदैक्षत॥४३॥

देवी कहती हैं—भगवान् शूलपाणि के कृष्ण से यह वार्त्ता करने पर वे आनन्दित हो गये। उन्होंने आनन्दाश्रु युक्त अपने नेत्रों से ब्रह्मा को देखा।।४३।।

ब्रह्मोवाच

अहञ्चावतरिष्यामि ऋक्षयोनौ महाबलः। तव मन्त्री भविष्यामि शुभाशुभविवेचनः॥४४॥
जात एव पुरा तत्र धर्म्मो देवो विभीषणः। सर्व्वथा लङ्घ्यते रक्षो देव मानुषतां व्रज॥४५॥

ब्रह्मा कहते हैं—मैं रीक्ष (भालू) योनि में जन्म लेकर महाबली, शुभाशुभदर्शी आपका मंत्री रहूंगा। पहले ही धर्मदेव ने विभीषण के रूप में जन्म ले लिया है। हे देव! राक्षसराज रावण सभी प्रकार से नष्ट होगा। आप मनुष्य देह धारण करिये।।४४-४५।।

देव्युवाच

इत्येवमुक्त्वा विजये जये सखि ब्रह्मादयस्ते मुदिता बभूवुः।
तं मेनिरे चैव हतञ्च रावणं जग्मुस्तथा चक्रुरथोचिताः क्रियाः॥४६॥
समाजगामाथ महीं हरिः स्वयं राज्ञोऽजपुत्रस्य वधूसु जन्मने।
एकश्चतुर्द्धा चरुसंविभागात् ब्रह्मैव तद्दाशरथं चतुष्कम्॥४७॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे रावणबधोपायोऽष्टादशोऽध्यायः।।

—※—

देवी कहती हैं—हे सखीगण! ब्रह्मर्षि तथा देवगण यह वार्त्ता सुनकर दुष्ट रावण को मृत मानकर आनन्द से पूर्ण स्थिति में अपने-अपने स्थान चले गये। तदनन्तर जो ब्रह्मा जी का आदेश था वह किया।

तदनन्तर स्वयं भगवान् हरि अजराजा के पुत्र दशरथराज की रानी के गर्भ से उत्पन्न होकर पृथिवी लोक आये। वे एक हैं तथापि यज्ञचरु के चतुर्धा विभक्त होने के कारण चार मूर्त्ति के रूप में आविर्भूत हो गये। अतः दशरथ के चार पुत्रों को ब्रह्म ही मानना होगा।।४६-४७।।

।।अष्टादश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

ऊनविंशोऽध्यायः

सीताहरण वृत्तान्त

देव्युवाच

कौशल्या सुषुवे रामं भरतं केकयी नृपात्। सुमित्रा सुषुवे पुत्रौ शत्रुघ्नलक्ष्मणौ यमौ॥१॥
रामश्च भरतश्चैव श्यामौ दूर्व्वादलप्रभौ। पीतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सर्व्वे सुन्दरविग्रहाः॥२॥
रामस्यानुगतो बाल्याल्लक्ष्मणो लक्षणान्वितः। भरतस्य च शत्रुघ्नो लोकचित्तानुरञ्जकाः॥
सर्वे बभूवुः सततं सर्वदा धर्मचारिणः॥३॥
अथायोध्यां समागत्य विश्वामित्रो महामुनिः। रामं दशरथं भूपमयाचत मखारकम्॥४॥
राजा कष्टाद्ददौ पुत्र रामं लोकमनोरमम्। रामश्च पितरं नत्वा लक्ष्मणानुगतो ययौ॥५॥
ताड़कां राक्षसीं हत्वा लब्ध्वा चास्त्राणि तन्मुनेः। जगाम मुनिना सार्द्धं यत्र रक्षोभयं क्रतौ॥६॥

देवी कहती हैं—राजा दशरथ के औरस से कौशल्या के गर्भ से राम का जन्म हुआ। कैकेयी के गर्भ से भरत का तथा सुमित्रा के गर्भ से शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण उत्पन्न हुये। ये शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण जुड़वा संतान थे। राम तथा भरत दूर्वादलश्याम तथा लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न गौर काञ्चनवर्ण थे। इस प्रकार सभी सुन्दर मूर्त्ति थे। सुलक्षण वाले लक्ष्मण बाल्यकाल से ही राम के तथा शत्रुघ्न भरत के अनुगत थे। वे सभी लोकरंजक तथा धर्माचरणतत्पर थे। एक बार महर्षि विश्वामित्र अयोध्या आये तथा राजा दशरथ से रामचन्द्र को मांगा। राजा दशरथ ने अत्यन्त कष्ट के साथ लोकाभिराम रामचन्द्र को उन्हें अर्पित किया। रामचन्द्र ने पिता को प्रणाम किया तथा वे लक्ष्मण को साथ लेकर मुनिवर विश्वामित्र के साथ चल पड़े। मार्ग में जाते हुए उन्होंने ताड़का राक्षसी का वध करके महर्षि से नाना प्रकार के अस्त्रों को प्राप्त किया तथा उनके साथ में राक्षसगण के भय से आक्रान्त यज्ञस्थल में आये।।१-६।।

हत्वा सुबाहुं तद्यज्ञे राक्षसं ताड़कासुतम्। मारीचमपि निःसार्य्य बाणेनैकेन राघवः।
रक्षित्वा तत्क्रतुं लेभे मुनिभ्यस्तु शुभाशिषः॥७॥
ततस्तु मुनिभिः सार्द्धं विश्वामित्रेण चर्षिणा। जग्मतुर्मिथिलां वीरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥८॥
गच्छन्नहल्यामिन्द्रेण रतां गौतमशापिताम्। विमोच्य शापात् प्रापय्य गौतमं रघुनन्दनः॥९॥
प्रविश्य च पुरीं तत्र ददृशे जनकं नृपम्। ददौ परिचयं तस्मै जनकाय स कौशिकः।
रामलक्ष्मणयोर्भ्रात्रोः श्रुत्वा स मुमुदे नृपः॥१०॥
रामोऽथ चापं परमं शूराणां शौर्य्यनाशनम्। श्रुत्वानाय्य समानस्य बभञ्ज भीमनिस्वनम्॥११॥
ततः स जनको राजा भूपं दशरथं मुदा। दूतैः सपुत्रमानाय्य तत्सुतेभ्यो ददौ सुताः॥१२॥

वहां राम ने सुबाहु का वध किया तथा ताड़का के पुत्र मारीच को एक ही बाण द्वारा १०० योजन दूर समुद्र जल में फेंककर यज्ञरक्षण कार्य किया। इस प्रकार वे मुनिगण के आशीर्वाद भाजन हो गये। तदनन्तर महावीर राम तथा लक्ष्मण ने विश्वामित्र तथा अन्य मुनिगण के साथ मिथिला प्रस्थान किया। पथ में इन्द्र द्वारा भोगी गयी गौतममुनि

के शाप से पाषाण मूर्त्तिरूपेण परिणत अहल्या को शापमुक्त किया तथा उनको पुनः गौतम ऋषि के साथ युक्त करके रामचन्द्र ने मिथिला नगरी में प्रवेश के उपरान्त जनकराज से भेंट किया। विश्वामित्र ने जनकराज के साथ राम तथा लक्ष्मण का परिचय कराया, जिससे राजा जनक अत्यन्त आह्लादित हो गये। तदनन्तर राम ने महावीरों के शौर्य का नाश करने वाले शैव धनुष की चर्चा सुनकर उसके सामने नतमस्तक होकर उसे भीषण घोर निनाद के साथ भग्न कर दिया। इससे राजा जनक आनन्द से उत्फुल्ल हो उठे। उन्होंने दूत भेजकर भरत-शत्रुघ्न के साथ राजा दशरथ को अपनी पुरी में निमंत्रित करके उनके आने पर उनके पुत्रों को अपनी कन्या प्रदान किया।।७-१२।।

सीतां ददौ स रामाय भरताय च माण्डवीम्। लक्ष्मणायोर्मिलान्तस्यानुजाय श्रुतकीर्त्तिकाम्॥१३॥
रामादयस्ते संप्राप्तसंमानाः सह यत्नतः। अयोध्यां गन्तुमारब्धा ददृशुः पथि भार्गवम्॥१४॥
तस्य दर्पं महाक्रोधं तथा स्वर्गपथं प्रभुः। तस्यैव धनुषैकेन वाणेन रघुनन्दनः।
हत्वा गृहीत्वा तच्चापं भार्गवेण नतः स्तुतः।
आजगाम मुदा सर्वैः सहायोध्यां मुदान्विताम्॥१५॥१६॥
रामस्य विरहेणार्त्तान् पौरान् सम्पूरयन्निव। प्रमोदैर्द्विगुणीभूतैः सद्वितीयः स्त्रिया तदा॥१७॥

उन्होंने रामचन्द्र को सीता, भरत को माण्डवी, लक्ष्मण को उर्मिला तथा शत्रुघ्न को श्रुतकीर्त्ति नामक कन्या प्रदान किया। इस प्रकार से सम्मान प्राप्त कर चारों भाई अपनी-अपनी पत्नी के साथ अयोध्या जा ही रहे थे कि उनका साक्षात्कार परशुराम से हो गया। तब प्रभु राम ने उनका धनुष तथा एक ही बाण से उनका दर्प, प्रचण्ड क्रोध तथा स्वर्गपथ भंग कर दिया। तब राम परशुराम से प्रणाम पाकर तथा स्तुत होकर अपने आनंदित सहचरों के साथ अपने विरह से कातर नगरवासीगण को दूने आनंद से मुदित करते सपत्नीक अयोध्या अपने घर पहुंचे।।१३-१७।।

मातामहगृहं याते भरते मातुलेन वै। इयेष सम्मतः सर्वैः राजा रामाभिषेचने॥१८॥
तद्दासीमुखतः श्रुत्वा कैकेयी विमनान्तरा। दासीबुद्ध्या विघटिता प्रावृषा स्वर्धुनी यथा॥१९॥

तदनन्तर कुछ दिनों पश्चात् भरत अपने नाना के यहां चले गये। राजा दशरथ ने सब की सम्मति हेतु राम के राज्याभिषेक के लिये इच्छा प्रकट की। मन्थरा दासी द्वारा यह समाचार पाकर कैकेयी पहले तो आनंदित हो गयीं। तथापि उसी दासी द्वारा परामर्श पाकर वर्षाकालीन गंगा के समान कैकेयी की बुद्धि विकृत हो गयी।।१८-१९।।

निजपुत्रे तु भरते प्रतिपादयितुं श्रियम्। विवासयामास रामं बद्ध्वा सत्येन भूपतिम्॥२०॥
सा दैवचोदिता रामं सखि हे विजये जये। गुणाभिरामं सर्व्वेषामारामं कटुवाचया॥२१॥
रामस्तु प्रस्तुतान्तां वै राज्यलक्ष्मीं विहाय वै। पितुः सत्यं पालयितुं क्षिप्त्वा शोकार्णवे जनान्।
यात्रामरण्यवासाय चकार रघुनन्दनः॥२२॥
तातं शोकार्णवे मग्नं कौशल्यां मातरं तथा। सुमित्रां सम्प्रणम्यैव स्फीतवक्त्रो जगाम ह॥२३॥
अनुवव्राज वैदेही लक्ष्मणश्च महाबलः। चीराजिनजटाधारं रामं राजीवलोचनम्॥२४॥
कैकेयी त्वरयामास वनं गच्छेति निष्ठुरम्। रामश्च दत्त्वा विप्रेभ्यो धनानि प्रययौ पुरात्॥२५॥
पुष्यायां शुक्लदशमीदिने रामः स्मिताननः। राज्यप्रतिनिधीभूतं वनवासमरोचयत्॥२६॥

उन्होंने अपने पुत्र भरत को राज्य देने हेतु राजा दशरथ को सत्यपाश में वद्ध किया तथा भवितव्यतावशात्

गुणाभिराम सर्वमनोरम रामचन्द्र से कटुवाक्य कहकर उनको निकाल दिया। पिता का वचन सत्य करने के कारण हस्तगत राज्यलक्ष्मी को रघुनन्दन राम ने त्याग दिया तथा सभी को शोकाकुल छोड़कर वनवास हेतु प्रस्थान कर दिया। उन्होंने शोक समुद्र में मग्न पिता को तथा माता कौशल्या एवं सुमित्रा को प्रणाम किया तथा स्मित हास्य युक्त मुखमुद्रा के साथ वन गमन हेतु प्रस्तुत हो गये। महाबली पराक्रमी लक्ष्मण एवं सीता ने भी उनके साथ गमन किया। तब निदारूणा कैकेयी जटाधारी मृगचर्म पहने राजीवलोचन राम से "वन जाओ' कहकर जल्दी से उनको हटाने का आदेश देने लगी। रामचन्द्र ने ब्राह्मणों को दान दिया तथा शुक्लपक्ष की दशमी तिथि के दिन पुष्य नक्षत्र में वहां से वनगमन किया।।२०-२६।।

अनुजग्मुः समं पौराः सुमन्त्रसहितं रथम्। प्रारुह्य नावं सरयूं तीर्त्वा गङ्गां ददर्श सः।।२७।।
तत्र सीता सुरधनीं नत्वा स्तुत्वा च भक्तितः। वलिभिर्मत्स्यमांसाद्यैर्गङ्गापारं ततो ययुः।।२८।।
शृङ्गवेरपुरे तत्र मत्स्यजीविगुहालये। सूतो विसर्जितोऽयोध्यामागमत्पौरकाश्च ते।
विलप्य बहुधा रामं ध्यात्वा प्राणान् जहौ नृपः।।२९।।

राम सहास्यमुख होकर राज्य के प्रतिनिधि रूप वनवास में जाने हेतु उद्यत थे। तब पुरवासीगण भी सुमन्त्र द्वारा हांके जा रहे रथ का अनुगमन करने लगे। राम ने नौका द्वारा सरयू पार किया, तब उनको गंगादर्शन प्राप्त हुआ। सीता ने भक्ति के साथ सुरधुनि गंगा को प्रणाम किया तथा स्तव भी करके धीवर की नौका द्वारा गंगा पार किया। वहां उन्होंने शृङ्गवेरपुर में मछली से जीविका चलाने वाले गुह के घर में विंश्राम किया। राम ने तब सुमन्त्र सारथी तथा नगरवासीगण को अयोध्या वापस भेजा। वहां राजा दशरथ ने करुण विलाप करके रामचन्द्र का चिन्तन करते प्राण त्याग दिया।।२७-२९।।

रामश्च सह सौमित्रिसीताभ्यां हि वने भ्रमन्। धनुष्पाणिर्मुनीन् रक्षन् बभ्राम वनराजिषु।
चित्रकूटं ययौ शैलं भरद्वाजस्य शासनात्।।३०।।
इह त्वराजकेऽमात्या वशिष्ठाद्याश्च भूसुराः। आनाय्य भरतं राज्ञः सत्क्रियां समकारयत्।
रामशून्यां पुरीं दृष्ट्वा मातरं समभर्त्सयत्।।३१।।
सपौरः सानुगामात्यो रामं द्रष्टुं ययौ वनम्। शत्रुघ्नेन सह भ्राता सर्व्वाभिरपि मातृभिः।।३२।।
समतीत्य बहून् देशान् भरद्वाजं प्रणम्य च। ददर्श चित्रकूटाद्रौ रामं चीरजटाधरम्।।३३।।

उधर वन में रामचन्द्र धनुष धारण करके मुनिवृन्द की रक्षा करने हेतु सीता तथा लक्ष्मण के साथ वनों में भ्रमण कर रहे थे। तदनन्तर भारद्वाज ऋषि के कहने पर उन्होंने चित्रकूट पर्वत प्रस्थान किया। अयोध्या में आमात्यगण तथा वसिष्ठ प्रभृति महात्माओं ने राज्य को राजा से रहित देखकर भरत को नाना के यहां से बुलाया। भरत द्वारा मृत राजा दशरथ का और्ध्वदैहिक कर्म सम्पन्न कराया गया। राम शून्यपुरी देखकर भरत माता की भर्त्सना करके मातृगण शत्रुघ्न, भ्राता, पौरगण, आमात्यगण तथा अनुचरों के साथ राम से मिलने वन में आये। उन्होंने अनेक देश पार करके भारद्वाज ऋषि को प्रणाम किया तथा चित्रकूट पर्वत पर चीर-जटाधारी राम का दर्शन किया।।३०-३३।।

भरतेनाथ पौरैश्च वशिष्ठाद्यैस्तथर्षिभिः। उक्तं वाक्यमनादाय रामेवनमरोचयत्।।३४।।
भरतस्तु न्यासभूतं रामराज्यमुपाददत्। पादुके चाभिषिच्यास्य नन्दिग्रामे तथा स्थितः।।३५।।

रामश्च दण्डकारण्यं जगाम दुर्गमं वनम्। तत्र हत्वा विराधाख्यं दनोः पुत्रं महाबलम्।
स्थितिं चक्रे पञ्चवट्यां कृत्वा पर्णकुटीद्वयम्॥३६॥
तत्र सूर्पनखा नाम राक्षसी कामरूपिणी। राममैच्छत् पतिं कर्त्तुं सीतां भुक्त्वा सखीद्वय॥३७॥
तस्यास्तु दुष्टनिर्बन्धं दृष्ट्वा सौमित्रिरेव हि। रामाज्ञया शरेणास्या नासे कर्णौ जघान ह॥३८॥
च्छिन्ननासा सूर्पनखा खरदूषणकादिकान्। जगाद रुदती सर्व श्रुत्वा तेऽपि समागताः॥३९॥
तान् राम एक एकेन चतुर्द्दशसहस्त्रिणः। जघान सापि तत् दृष्ट्वा जगाम रावणं प्रति॥४०॥
रावणस्तन्मुखात् श्रुत्वा सीतां परमसुन्दरीम्। हर्तुं मारीचमकरोत् सहायं ताड़कासुतम्॥४१॥

वहां वसिष्ठादि ऋषिगण ने, भरत तथा पुरजनों ने राम से पुनः-पुनः अयोध्या वापस चलने हेतु कहा लेकिन राम सम्मत नहीं हो सके। तब भरत उपायरहित होकर राम की पादुकाद्वय लेकर उसी का राज्याभिषेक करके स्वयं नन्दीग्राम में रहने लगे। तदनन्तर राम दुर्गम दण्डकारण्य की ओर चल पड़े। वहां दनुपुत्र महाबली विराध नामक राक्षस का वध करके वहां दो पर्णकुटी बनाया और पंचवटी वन में निवास करने लगे। हे सखियों! एक बार वहां शूर्पणखा नामक इच्छानुरूप रूप धारण करने वाली कामरूपिणी राक्षसी वहां आयी तथा वह राम को पति बनाने की इच्छा प्रकट करने लगी। लक्ष्मण ने उसकी दुष्टता देखकर राम की आज्ञा से उसका नाक-कान काट दिंया। वह राक्षसी नाक-कान कट जाने के कारग रोदन करती हुई अपने भ्राता खर-दूषण के पास आई। उससे समस्त वृत्तान्त सुनकर खर-दूषण १४००० राक्षस सैन्य के साथ वहां आये। राम ने अकेले एक बाण से उन सब का वध कर दिया। तब वह राक्षसी रावण के यहां गयी तथा समस्त घटना क्रम रावण से कहा। रावण ने शूर्पणखा से यह सुनकर कि राम पत्नी सीता परम सुन्दरी हैं, उसने ताड़का पुत्र मारीच से सहायता मांगी।।३४-४१।।

निवारितोऽपि बहुशो मारीचेन स रावणः। कालेन बलिनापन्नो नागृह्णात्तद्वचो हितम्॥४२॥
मारीचो राघवान्मृत्युं वरं मत्वा तथाकरोत्। सौवर्णो हरिणो भूत्वा सीतादर्शनमागतः॥४३॥
तं जानकी मृगं चित्रं चर्म्मण्यैच्छत् प्रभोः पुरः। रामश्चागाद्धनुष्पाणिर्लक्ष्मणो रक्षकः स्थितः॥४४॥
स रावणस्य कार्य्यार्थी मारीचो मृगदर्शनः। दूरं गतोऽनु रामोऽपि ययौ तं चित्रदर्शनम्॥४५॥
रामक्षिप्तेषुणा रक्षः पपात लक्ष्मणं रुवन्॥४६॥

मारीच ने यह कार्य न करने हेतु रावण को पुनः-पुनः रोकना चाहा, तथापि वह बलीकाल के द्वारा प्रेरित होकर उस मारीच के हितकर वाक्य को अनसुनी कर बैठा। तब मारीच ने यह सोचा कि राम के हाथों मरना अच्छा! तदनन्तर वह स्वर्णमृग रूप धारण करके सीता को दृष्टिगोचर हो गया। सीता ने अपने सामने विचित्र मृग देखकर राम से उसे मारने तथा उसका मृगचर्म लाने हेतु कहा। राम भी तत्काल धनुष धारण करके तथा लक्ष्मण को सीता के रक्षार्थ छोड़कर उस मृग के पीछे दौड़ पड़े। रावण का कार्य सिद्ध करने के लिये वह मृगरूपी मारीच जितनी दूर भागता था, राम भी उसके अनुगमन से नहीं हटे। अन्त में राम ने एक बाण के प्रहार से उसका वध कर दिया। मरते समय वह राक्षस "हा लक्ष्मण" कहता जोरों से चिल्लाया।।४२-४६।।

लक्ष्मणेत्याकुलं शब्दं श्रुत्वा सीताथ लक्ष्मणम्। अवदद्भ्रातरं याहि मायाविनाशितं द्रुतम्॥४७॥
यदि यास्यसि नैनं त्वं तदा पीत्वा विषं प्रिये। इत्यादिकटुवाक्येन स ययौ यत्र राघवः॥४८॥

एतदन्तरमासाद्य रावणो भिक्षुरूपधृक्। आगत्य चोक्त्वा कौशल्या त्वां दिदृक्षुरिति त्वरा।
गृहीत्वा रथमारोप्य स्वरूपेण खमापतत्॥४९॥
सा दृष्ट्वा खेगतात्मानं राक्षसस्य रथोपरि। राक्षसेन हृतां मत्वा चुक्रोश रामलक्ष्मणौ॥५०॥
क्रोशन्तीं तां भूषणादि क्षिपन्तीं कौ नपात्मजाम्। हरन् खेऽदृश्यत सखि पक्षिराज्ञा जटायुषा॥५१॥
जटायुर्युयुधे भूरि सखा दशरथस्य सः। तं पराभूतवान्दैवात् तेन चैव निपातितः॥५२॥
तं निपात्य गतो लङ्कां राक्षसीगणमध्यतः। अशोकवनिकामध्ये ररक्ष जनकात्मजाम्॥५३॥
सा रामहीना तत्रैव तस्थौ रावणवेश्मनि। बहुशः कथिता चापि स्मरन्ती राघवं सदा॥५४॥
ब्रह्मणो वचनादिन्द्रः प्राशयच्चरु मैथिलीम्।
तेन तस्याः क्षुधा तृष्णा गता यावत् स्थिता तथा॥५५॥

सीता के कानों में यह आर्त्तनाद प्रविष्ट हो गया। तब तत्काल सीता ने लक्ष्मण से कहा—"तुम शीघ्र जाओ। मायावी राक्षस तुम्हारे भ्राता को नष्ट कर रहे हैं। यदि तुम नहीं जाते तब मैं विष-भक्षण द्वारा प्राण त्याग करूंगी।" इस प्रकार सीता का नाना कठोर वाक्य सुनकर लक्ष्मण वहां के लिये प्रस्थान कर गये। तभी अवसर पाकर रावण भिक्षुक वेशधारी होकर आया। उसने सीता से कहा—"कौशल्या तुमको देखना चाहती है।" यह कहकर रावण सीता को रथासीन करके अपने वास्तविक रूप में आकर आकाशपथ से अपने रथ को दौड़ाकर वहां से चल पड़ा। अब सीता को ज्ञात हो गया कि वह राक्षस द्वारा हरी जा चुकी हैं। तब वे हा राम-हा लक्ष्मण का आर्त्तनाद करके भूतल पर अपने आभूषण फेंकने लगीं। उनका आर्त्तनाद सुनकर राजा दशरथ का मित्र पक्षिराज जटायु वहां आया तथा उसने रावण से अत्यन्त घोर युद्ध किया। दैव की इच्छा से जटायु रावण द्वारा मारा गया। तब रावण ने लंकापुरी जाकर सीता को अशोक वन में राक्षसियों के पहरे में रख दिया। सीता भी राम विरह के कारण सदा उनका ही ध्यान करती हुयी तथा अनेक दुःखों को सहती वहां रहने लगी। ब्रह्मा के आदेश से इन्द्र ने सीता को चरु भोजन कराया। उस दिव्य चरु के प्रभाव से जब तक सीता वहां थीं, उनको भूख-प्यास कभी नहीं लगी।।४७-५५।।

अथ रामः समागम्य तामदृष्ट्वा प्रियां रुदन्। बभ्रामाप्राप्य हत्वा च कवन्धं घोरराक्षसम्।
श्वासमात्रावशेषं तं ददर्श च जटायुषम्॥५६॥
स चोक्त्वा रावणं सीताहारकं सकृदेव तु। तत्याज प्राणमालोक्य रामं लक्ष्मणमेव च॥५७॥
ततः स शवरीं दृष्ट्वा कृत्वा स्वर्गगताञ्च ताम्। ऋष्यमूकं ययौ शैलं सुग्रीवो यत्र वानरः॥५८॥
वानरैर्हनुमन्नीलनलतारैः सह स्थितम्। सुग्रीवं वालिना भ्रात्रा हतभार्य्यं सुदुःखिनम्॥५९॥
सखायमकरोद्वीरं सूर्य्यपुत्रं कपीश्वरम्। अस्थिकूटं पदा क्षिप्त्वा भित्वा शालांश्च सप्त वै॥६०॥
हत्वा च वालिनं वीरं लाङ्गूलवद्धरावणम्। स्थापयामास किष्किन्ध्याराज्ये सुग्रीवमीश्वरम्॥६१॥

उधर स्वर्णमृग का वध करके जब राम-लक्ष्मण कुटिया में वापस आये, तब राम ने वहां प्रिय पत्नी सीता को न देखा तथा इधर-उधर उनका अन्वेषण करने लगे। मार्ग में उन्होने कवन्ध नामक भयानक राक्षस का वध किया तथा आगे पड़े घायल जटायु को देखा, जिनका प्राण कुछ ही शेष था। जटायु ने "रावण ने सीता का हरण किया है" कहकर राम-लक्ष्मण के सामने ही प्राणों को त्याग किया। तदनन्तर राम ने शबरी को दर्शन प्रदान किया तथा

सीता की मुक्ति हेतु वानर राज सुग्रीव से अधिष्ठित ऋष्यमूक पर्वत पर गये। वहां हनुमान-नल-नील तथा तार नामक वानरों के साथ सूर्यपुत्र वानरराज वीर सुग्रीव को देखा जो बालि द्वारा पत्नी हरण किये जाने से दुःखित थे। राम ने सुग्रीव को अपना मित्र बनाया तथा उसके कहने पर राम ने अस्थि-कूट पैरों से फेंका, सप्ततालभेद सम्पन्न करके वानरराजवीर बालि का वध किया तथा किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव को प्रदान किया।।५६-६१।।

एवन्तु श्रावणे मासि कर्म्म कृत्वा वने स्थितः। सुग्रीवश्च प्रतिज्ञाय सीतोद्धारं पुरं ययौ॥६२॥
पौर्णमास्यान्तु कार्त्तिक्यां सुग्रीवो राममागमत्। दूतैः कपीन् समानाय्य जगाद रघुनन्दनम्॥६३॥
प्रभो एते समायाता ऋक्षाश्च वानरा अपि। जाम्बवद्बालिपुत्रादिप्रधानास्तत्क्रियार्थिनः॥६४॥
सैकादशसहस्राणि सशतानि दशैव तु। लक्षाणि खलु कोटीनां तथा लक्षाणि केवलम्॥६५॥
चत्वारिंशत् सप्त वापि तथा दशसहस्रकम्। ऋक्षवानरसंघानां संख्येयं परिगण्यते॥६६॥
अत्र लक्षन्तु ऋक्षाणां जाम्बवान् यत्र चाधिपः। अपरे वानराः सर्वे गोलाङ्गूलादिजातयः॥६७॥
सुमेरुमलयादिस्थाः सर्वे एते महाबलाः। यान्तु भूमण्डलं सर्वे मृगयन्तु नृपात्मजाम्॥६८॥
मासस्याभ्यन्तरे वृत्तं कथयिष्यन्ति मामिति।
इत्युक्त्वा प्रेषयामास वानरांस्त्रिदिशः परान्॥६९॥
ततो याता दिशं याम्यां जाम्बवानङ्गदादयः॥७०॥

श्रावण मास में यह कार्य करके वे वन में रहने लगे। सुग्रीव ने भी सीता के उद्धार की शपथ लेकर अपनी नगरी की ओर प्रस्थान किया। तत्पश्चात् कार्तिकी पूर्णिमा तिथि को सुग्रीव ने राम के पास आकर कहा—"हे प्रभो! ये जाम्बवान तथा अंगदादि मुख्य वानरगण तथा ऋक्षगण आपके कार्य हेतु आये हैं। इनकी संख्या है दस लाख ग्यारह हजार एक सौ करोड़ सैंतालिस लाख दस हजार! साथ ही जाम्बवान एक लाख रीछ लेकर आये हैं। सुमेरु तथा मलय आदि पर्वतवासी अनेक वानर भी यहां आये हैं। ये सभी महाबली हैं। ये भूमण्डल के सभी स्थानों में सीता की खोज करके एक माह के अंदर ही संवाद लेकर लौटेंगे।" यह कहकर सुग्रीव ने वानरगण को सीता अन्वेषणार्थ भेजा। जाम्बवान तथा अंगद आदि दक्षिण की ओर गये तथा अन्य वानर सुग्रीव के आदेशानुरूप नाना दिशाओं की ओर प्रस्थान कर गये।।६२-७०।।

हनूमांस्तत्र रामस्य गृहीत्वैवाङ्गुरीयकम्। करिष्यन्दुष्करं साक्षात् देवदेवो महेश्वरः॥७१॥
सुग्रीवदेशितान्देशान् विचित्याप्राप्य मैथिलीम्। अतीतकालनियमा मरणे निश्चयं दधुः॥७२॥
एतस्मिन्नेव काले तु सम्पाती पक्षिसत्तमः। श्रुत्वा रामं दग्धपक्षः पक्षौ प्राप जगाद च।
सीता वसति लङ्कायां रावणेन हृतेति तान्॥७३॥

राम ने हनुमान को सीतान्वेषणार्थ प्रस्थान करते समय अपनी अंगूठी प्रदान किया था। वे साक्षात् देवदेव महेश्वर के अवतार तथा दुष्कर कार्य सम्पन्न करने वाले थे। हनुमान प्रभृति वानरगण सीता को न खोज पाने के कारण एक मास समय व्यतीत होने पर मरण के लिये कृतसंकल्प थे। तभी वहां पर पंख जले सम्पाति नामक गृध्र ने उन सब के मुख से राम नाम का उच्चारण सुना जिससे उसके दग्ध पंख पुनः उग आये। उसने वानरों से कहा—"सीता लंका में हैं। रावण उनका हरण करके ले गया है"।।७१-७३।।

देव्युवाच

इदन्ते वै श्रुत्वा वचनममलं पक्षिवरतः समुत्तस्थुर्हृष्टा जलधितटमीयुः कपिगणाः।
विलोक्याब्धेर्वेलां चकितहृदया आसत स मे हनूमांस्तत्पारं जिगमिषुरभूद्वृक्षपमतः।।७४।।

।।इति बृहद्धर्मपुराणे तीर्थप्रादुर्भावे सीतावृत्तान्तलाभे ऊनविंशोऽध्यायः।।



देवी कहती हैं—पक्षिप्रवर सम्पाति का यह वचन सुनकर सभी वानर आनंदित हो गये। वे समुद्र तट पर आये, तथापि दुस्तर समुद्र को देख सभी हताश हो गये। तभी हनुमान समुद्र को पार करने के लिये आकाश में उत्थित होकर लंका जाने लगे।।७४।।

।।एकोनविंश अध्याय समाप्त।।



विंशोऽध्यायः

हनुमान का लंका गमन हनुमान तथा सीता संवाद

देव्युवाच

वायुजो वायुवेगेन खे गच्छन् सुरसामुखं। प्रविश्य कर्णरन्ध्रेण निःससाराणुतां गतः।।१।।
ततः स सिंहिकां हत्वा स्पृष्ट्वा मैनाकमेव च। सायं विवेश लङ्कायां भूत्वौतुर्व्यचरत् पुरीम्।।२।।
विचित्य सप्त रात्राणि लङ्कायां पवनात्मजः। रहस्यातिरहस्यादि ददर्श न च जानकीम्।।३।।
सोऽनुमेनेऽनुमानज्ञः प्रमेयेऽत्रानुमानिके। अदृष्ट्वा चिन्तयित्वा चादृष्टं स कपिकुञ्जरः।।४।।
अशोकालीवनं रक्तं पुष्पितं प्रददर्श ह। तद्गत्वा राक्षसीमध्ये स्थितां परमसुन्दरीम्।
दृष्ट्वाऽनुमेने तां सीतां साध्वीचिह्नैः सुधीः कपिः।।५।।

देवी कहती हैं—वायुपुत्र वायु वेग से जा रहे थे। तब मार्ग में सुरसा ने रोका। वे उसके मुख में प्रवेश करके कर्णछिद्र से बाहर निकल आये। मार्ग में उन्होंने सिंहिका वध किया तथा मैनाकपर्वत का स्पर्श करके वे सायंकाल लंका पहुंचे तथा रात्रि में वहां विचरण करने लगे। पवननन्दन ने वहां ७ रात्रि पर्यन्त लंका के रहस्य तथा अतिरहस्यमय स्थानों का अवलोकन किया, परन्तु जानकी कहीं दिखलायी नहीं पड़ी। जानकी को वहां न पाकर अनुमानज्ञ हनुमान ने विचार किया कि लगता है जानकी मृत हो गयीं! वानरप्रवर इस प्रकार अदृष्ट चिन्तन करते-करते रक्त पुष्प से पुष्पित अशोक वन पहुंचे। वहां पर उन्होंने राक्षसियों के बीच स्थित एक परमसुन्दरी साध्वी स्त्री को देखा। सीता के साध्वी चिन्ह देखकर हनुमान ने यही अनुमान लगाया कि ये ही सीता हैं।।१-५।।

तरुमारुह्य स कपिरागतं रावणह्वयम्। प्रलोभयन्तं तां भीतां भर्त्सितञ्च तया मुहुः।।६।।

ततोऽवरुह्य वृक्षात् स प्रणनाम विदेहजाम्। रामदासोऽस्मि हनूमानित्याभाष्य सखीद्वय॥७॥
सीता तद्धुतं दृष्ट्वा श्रुत्वा च मधुराक्षरम्। पप्रच्छ विविधप्रश्नैः स चोवाच प्रमा वचः॥८॥
ततो ददावभिज्ञानं रामहस्ताङ्गुरीयकम्। सीता रुरोद तत् प्राप्य वक्षस्यारोप्य सुप्रभम्॥९॥
उवाच सीता मम वै मासोऽयं श्रावणाख्यकः। दर्शश्च परमं सार्थो नाथवृत्तान्तलाभकः॥१०॥
कृतस्त्वया कपे वत्स चिरं जीव सुखी भव। एवं गताश्च षड्यामा निशीथे घोरदर्शने।
प्रणम्य सीतामुत्तस्थौ दिदृक्षुस्तां पुरीं पुनः॥११॥

तब हनुमान उसी वृक्ष पर जाकर बैठ गये। तभी वहां रावण आया तथा उसने भय से विह्वला सीता को प्रलोभित करना प्रारम्भ किया। यह सब देखकर हनुमान निःसंदिग्ध हो गये कि ये ही सीता हैं। हे सखियों! तदनन्तर (रावण के जाने पर) हनुमान ने वृक्ष से उतरकर सीता से कहा—"मैं राम का दास हूं" तथा वैदेही को प्रणाम किया। सीता ने इस विचित्र प्राणी को देखा तथा उसकी मधुर वाणी सुनकर उनसे नाना प्रकार के प्रश्न करने लगीं। हनुमान ने सभी का संतोषप्रद उत्तर प्रदान किया। तदनन्तर हनुमान ने राम की मुद्रिका भी सीता को दिया। सीता उस सुखप्रद मुद्रिका को अपने वक्षः पर रखकर रुदन करने लगीं। तब सीता ने कहा—"तुमने आकर मेरे प्रभु का सब वृत्तान्त सुना दिया। तुमने इस मास को मेरे लिये उत्तम बना दिया है। हे वत्स! तुम चिरंजीवी होकर सुखपूर्वक निवास करो।" तदनन्तर हनुमान सीता को प्रणाम करके उस घोर नगरी के दर्शनार्थ पुनः चल पड़े।।६-११।।

चरन्ददर्श तत्रैव ऐशान्यां सुमनोहरम्।
तिन्तड़ीवनमध्यस्थे स्वर्णपीठे च पुष्कले।
फुल्लमेकमशोकाख्यं वृक्षं तन्मूलमुत्तमे।
ददर्श मन्दिरं चारु मणिमुक्तादिनिर्मितम्।
तच्छैलशिखराकारं वृहद्द्वारकवाटकम्॥१२॥१३॥

तस्मिंस्तु विवृते द्वारे ददर्श रुचिराननाम्। श्यामां रुचिरदोर्दण्डचमुष्कां स त्रिलोचनाम्॥१४॥
मुण्डैर्मन्दारपुष्पैश्च मालाञ्च दधतीं शुभाम्। अट्टहासां दिग्वसनां यौवनाभरणोज्ज्वलाम्॥१५॥
असंख्यकाममंस्थानकटाक्षां शिञ्जिनूपुराम्। नृत्यन्तीं वादयन्तीं च शङ्खघण्टाघनादिकान्॥१६॥
दिगम्बरीभिरष्टाभिरष्टवर्णैस्तथाविधैः। योगिनीभिः परिवृतां रावणे जयवादिनीम्॥१७॥
विलोक्य मारुतिर्दर्पात् हूंकारं घोरमुन्मदन्। खमुत्पत्यापतत्तत्र कामीतिभयदं वदन्॥१८॥
सा तं चकितदृग्दृष्ट्वा समाश्वास्य च योगिनी। पप्रच्छ को भवानेवंविधो वानररूपधृक्॥१९॥

वहां भ्रमण करते-करते हनुमान ने देखा कि ईशानकोण में तिन्तिड़ीवन के बीच स्वर्णवेदिका बनी है। उस पर एक प्रफुल्ल अशोक वृक्ष है। उसके मूलदेश में अत्युत्तम मणिमुक्तादि निर्मित पर्वत शृंगाकृति, बृहद् द्वार-कपाट युक्त मनोरम मंदिर है। उन्होंने मंदिर का द्वार खोलकर देखा कि अन्दर उत्तम चतुर्भुजा, त्रिलोचना, रूचिरवदना, श्यामा मुण्डमाल तथा मंदार पुष्पमाला भूषिता, कल्याणी, अट्टहासा, दिगम्बरा, यौवनभार से उज्वला, जिनके कटाक्ष मानो कामदेव का निवास स्थान है, ऐसी नूपुर युक्ता देवी नृत्यरता हैं तथा शंख-घंटादि शुभ वाद्य का वादन कर रही

हैं। उनके चतुर्दिक् श्वेत-पीत आदि आठ वर्णों वाली, दिगम्बरा अष्टयोगिनीगण हैं। वे 'रावण की जय' बोल रही हैं। पवननन्दन यह देखकर दारुण हुंकार के साथ दर्पयुक्त छलांग मारकर वहां आ पड़े तथा भयंकर शब्दों में कहा— "तुम कौन हो?" उन देवी ने चकित होकर देखा तथा अपनी योगिनियों को आश्वासन देकर हनुमान से प्रश्न किया "यह वानररूपी तुम कौन हो?"।।१२-१९।।

हनूमानुवाच

अहं वै हनूमान्नाम प्रभञ्जनसुतो बली। रामदासत्वमापन्नोऽन्वेष्टुं सीतां समागतः॥२०॥
समग्रां धरणीं युक्ता सागरैः साद्रिकाननाम्। दन्तैश्चर्वयितुं शक्त एकेन कवलेन हि।
त्वं पुनः कासि वद मे रावणे जयमिच्छसि॥२१॥

हनुमान कहते हैं—मेरा नाम हनुमान है। मैं पवनदेव का वीर पुत्र हूं। अभी राम का दासत्व प्राप्त करके सीता को खोजता घूम रहा हूं। मैं वन-शैल-सागर युक्त समस्त धरती को अपने दांतों से चबा सकता हूं। तुम रावण का जय चाहने वाली कौन हो, बताओ?।।२०-२१।।

चण्डिकोवाच

अहं हिमगिरेः कन्या चण्डरूपा महाभुजा। भक्त्या वशीकृतानेन रावणेन महात्मना॥२२॥
नाम्नाहं चण्डिका काली पार्वतीत्यादिनामिका। त्वं पुनर्भीमरूपत्वं मह्यं दर्शय वानर॥२३॥

चण्डिका कहती हैं—मैं महाभुजा चण्डरूपा हिमालय पुत्री हूं। महात्मा रावण ने अपनी भक्ति से मुझे वशीभूत किया है। मेरा नाम चण्डिका है तथापि काली-पार्वती आदि नाना नाम हैं। हे वानर! तुम अपना पृथिवी ग्रास करने वाला भीम रूप प्रदर्शित करो।।२२-२३।।

देव्युवाच

इत्युक्तः स तया वीरः कामरूपोऽनिलात्मजः। बभूव भीषणाकारो व्यावृताक्षो महामुखः॥२४॥
ददर्श तस्य काये सा शरीराणि च रक्षसाम्। नखदन्ताग्रलग्नानि कोटिशः कोटिलक्षशः॥२५॥
तथाकारान्महाभीमान्लोमसन्धिषु वानरान्। शीर्षे तस्य धनुष्पाणिं नवदूर्व्वादलप्रभम्॥२६॥
महाबलं महासत्वं रामं कमललोचनम्। रावणस्येषुलग्नस्य हरन्तं किल जीवितम्॥२७॥
कुम्भकर्णं चापमुष्टौ दधतं वामपाणिना। हनूमतो ललाटे च मा ददर्श च लक्ष्मणम्॥२८॥
जाज्वल्यमानं तिलकं रोचनाया इवातुलम्। चापमुष्टौ चरणाग्रेऽतिकायेन्द्रजितौ सखि॥२९॥
लक्ष्मणस्य किरीटे च ददर्श जनकात्मजाम्। पश्यन्तीं रामचरणौ रावणेन निरीक्षिताम्॥३०॥
भ्रुवोर्मध्ये पुरीं लङ्कां ज्वलन्तीं राक्षसैः सह। ततो ददर्श कीशस्य हृदये तु विभीषणम्॥३१॥
मूर्त्तिमन्तं भ्राजमानं धर्म्मं लङ्काधिपं सखि। एवं तस्य तथाङ्गेषु ददर्श सकलं शिवा॥३२॥
उवाच वचनं किञ्चिद्विनयेन महेश्वरी। जानामि त्वां कपितनो साक्षाद्देवं महेश्वरम्॥३३॥
रावणस्य वधार्थाय ह्यस्वतन्त्रं रघूत्तमे। मया तु करणीयं किं वद तत्सौम्यतां व्रज॥३४॥

देवी कहती हैं—चण्डिका का वचन सुनकर इच्छानुरूप वेश धारण सक्षम वीर पवनपुत्र तभी भीषणाकृति हो गये। नयन मानो बाहर ही निकल आयेंगे, इतने बड़े थे। मुखमण्डल अत्यन्त विशाल था। चण्डिका ने देखा कि हनुमान के दांतों तथा नखों में छिदे नाना राक्षस लटक रहे हैं। उनकी रोमसन्धियों में भीमाकृति लक्षकोटि वानर विराजित हैं। मस्तक पर स्थित हैं महासत्व, नवदूर्वादल के समान श्यामल महाबली कमल लोचन श्रीराम जो रावण को बाणों से भेदकर उसका वध कर रहे हैं तथा अपने वाम हाथ की अपने धनुष वाले मुट्ठी में कुम्भकर्ण को पकड़े हैं। चण्डिका ने देखा कि हनुमान के ललाट में गोरोचन तिलक के समान वर्ण वाले जाज्वल्यमान रूपी लक्ष्मण स्थित हैं। हे सखी! रणभूमि में अतिकाय मेघनाद को उन्होंने मुट्ठी में पकड़ लिया है। चण्डिका देखती हैं कि ललाटस्थ किरीट में स्थित लक्ष्मण की दृष्टि जानकी तथा श्रीराम के चरण युगल पर स्थित है। उन्होंने हनुमान के भ्रूमध्य में देखा कि लंका नगरी राक्षसों के साथ जल रही है तथा धर्म के मूर्त्तरूप विभीषण लंकापति होकर हनुमान के ह्रदय में जगमगा रहे हैं। इस प्रकार चण्डिका ने हनुमान के अंगों में सर्वतत्व का दर्शन किया।

तब विनयपूर्वक भगवती चण्डिका ने हनुमान से कहा—"मुझे ज्ञात है तुम साक्षात् रुद्र हो। रावण वधार्थ तुम वानर रूप हो गये हो। तुमने इसी हेतु राम की अधीनता का वरण किया है। अब सौम्यरूप धारण करके यह बताओ कि मेरा कर्त्तव्य क्या है?"।।२४-३४।।

देव्युवाच

इत्युक्तः स तया देव्या चण्डीमाह महेश्वरः। व्रज स्थानान्तरं लङ्कां त्यक्त्वा रावणपालिताम्।
सीतावमानिता येन किं तस्य जयमिच्छसि॥३५॥
त्वयि स्थितायामेतस्यां रामो नैनं हनिष्यति। अहते रावणे लोकः समूलो हि विनङ्क्ष्यति॥३६॥
मम या लक्षिता शक्तिः सा च कुण्ठा भविष्यति।
न चेदिमां शक्तिरूपां त्वं लङ्कां परिहास्यसि॥३७॥

देवी कहती हैं—हे सखियों! चण्डी देवी का वचन सुनकर वानर प्रवर हनुमान ने उनसे कहा—"आप रावण पालित लंका का त्याग करके अन्य स्थान चली जायें। जिस रावण ने सीता का अपमान किया है, उसकी जयाकांक्षा आप क्यों कर रही हैं? रावण वध न होने पर जगत् समूल नष्ट हो जायेगा। यदि आप इस शक्तिरूपा लंका का त्याग नहीं करतीं, तब आपने मेरी जो शक्ति देखी है, वह भी कुण्ठित हो जायेगी"।।३५-३७।।

चण्डिकोवाच

सीतावमानिता येन तेनाहमवमानिता। त्यक्तुकामा त्वया चोक्ता त्यजाम्येनां पुरीं कपे॥३८॥

चण्डी कहती हैं—"हे कपि! जिसने सीता का अपमान किया है, उसने मेरा भी अपमान किया है। अतएव मैं इस स्थान का त्याग करूंगी। तुमने तो मात्र स्थानत्याग के लिये कहा है, मैं तो इस नगर का त्याग कर देती हूं"।।३८।।

हनूमानुवाच

त्वां नमामि महेशानीं देवीं पर्व्वतनन्दिनीम्। लङ्केशीं विन्ध्यनिलयां कालरूपाञ्च सैन्धवीम्॥३९॥

ब्रह्मविष्णुशिवाराध्यां शक्तिमाद्यां सनातनीम्। सृष्टिपालनसंहारकारिणीं भक्तवत्सलाम्।
देवदेवादिदेवालिपालिनीं शत्रुनाशिनीम्॥४०॥
श्रीरामाय वरान्देहि यथा जयति रावणम्। साहाय्यञ्च विधातव्यं यथा जयति रावणम्॥४१॥

हनुमान कहते हैं—हे पर्वतनन्दिनी, देवी, महेश्वरी, विंध्यवासिनी, कालरूपे, सैन्धवी, लंकेश्वरी! आपको प्रणाम! आप ब्रह्मा, विष्णु, शिव की आराध्या, सृष्टि-स्थिति-लय करने वाली, भक्तवत्सला, सनातनी आद्याशक्ति हैं। आप ही देवगण-ब्रह्मा-विष्णु आदि की पालनकर्त्री तथा शत्रुनाशिनी हैं। आप श्रीराम को वर प्रदान करें जिससे वे रावण जय कर सके। आप राम की सहायता भी करिये, जिससे वे रावण पर विजयी हो जायें।।३९-४१।।

चण्डिकोवाच

वरान्ददामि रामाय रावणं स विजेष्यते। सीतां प्राप्स्यति कीर्त्तिञ्च राज्यञ्चेदं कुशासितम्।
साहाय्यं युज्यते नैव कर्त्तुं कालविरोधतः॥४२॥
देवासुरनरादीनां देवताकार्य्यसाधने। भवन्ति बोधिताः पूजाविधानैर्व्वेदनिर्म्मितैः॥४३॥
पूजाकालस्तु पौषस्य त्रयोदशदिनात्परम्। श्रावणे दशमीं यावत् मुख्यचान्द्रे परापि वा॥४४॥
रामस्तु पूजितः पूर्व्वं ससीतः सर्व्वदैवतैः। अकालपूजया कस्मादहं स्यां खलु वोधिता॥४५॥
वैदिकत्य विधेः कालो यदि स्यादेष मे कपे।
तदा स्यात् दुस्त्यजा लङ्का दुर्ज्जेयः स्याच्च रावणः।
अतएव वरो दत्तो रामो जेष्यति रावणम्॥४६॥

चण्डिका कहती हैं—मैं श्रीराम को वर देती हूं कि वे रावण पर विजय प्राप्त करेंगे। वे असीम कीर्त्तिशाली होकर इक्ष्वाकुवंश पालित राज्य प्राप्त करेंगे। तथापि मैं प्रत्यक्ष सहायक नहीं बन सकती। इससे काल जनित विरोध होगा। देवगण वेदोक्त विधान से प्रबोधित तथा पूजित होकर सुर-असुर-मानवगण का कर्म साधित करते हैं। पौष मास के १३ दिन बाद से चान्द्र श्रावण मास की शुक्ला दशमी तिथि पर्यन्त अथवा कृष्णादशमी पर्यन्त देवपूजा काल है। सीता तथा राम की भी सभी देवता पूर्ववत यथाकाल पूजा करेंगे। यह दक्षिणायन पूजा काल नहीं है। इस समय पूजा करने से मैं बाधित क्यों हो जाऊंगी? यदि यह वेदोक्त पूजा काल होता, तब मेरे लिये लंका त्याग कठिन होता तथा रावण विजय भी राम के लिये दुष्कर कार्य होता। क्योंकि तब रावण इस प्रकार से मेरी पूजा करता कि मैं विवश होकर उसका मंगल सम्पादन किये बिना नहीं रह सकती थी! तथापि यह पूजा का अकाल होने के कारण मैंने वर दिया है कि श्रीराम रावण पर विजय प्राप्त करेंगे।।४२-४६।।

हनूमानुवाच

स्वाहा त्वं देवता प्रीत्यै पितृणामसि स स्वधा। अतः स्वधैव साहाय्ये रामेण पूजिता भव॥४७॥
ब्रह्मणा तु पुरा सृष्टाः पितरो दर्शपर्व्वणि। तस्माद्दर्शेषु सर्वेषु पितरः कव्यभोजिनः॥४८॥
त्वं रामदत्तं कव्यं च भुक्त्वा रामक्रियां कुरु।
अमा नाम कलेन्दोर्या वसत्यर्केऽणुरूपिणी॥४९॥

निष्प्रपञ्चा ह्यशेषा च परमामृतरूपिणी। निर्वाणमोक्षरूपां यां चन्द्रद्वारेण यान्ति वै।।५०।।
मा कला त्वं हि परमा पितृणां कव्यरूपिणी। अरण्यतो हि सावाप्ता पितृभिर्दक्षिणायने।।५१।।

हनुमान कहते हैं—आप देवगण को प्रीति प्रदातृ स्वाहा हैं। आप ही पितृगण को प्रीति देने वाली स्वधा हैं। आप स्वधारूपेण श्रीराम द्वारा पूजिता हों। तदनन्तर आप सहायता करें। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने पितृगण तथा पितृलोक की सृष्टि सम्पन्न किया था। वह अमावस्या तिथि थी। पितृगण को सभी लोग अमावस्या के ही दिन कव्यभोजन करायें। तब आप राम प्रदत्त कव्यभोजन सम्पन्न करके रामकार्य करें। चन्द्र की अमाकला, अणुरूपा है। उस समय वे सूर्याधिष्ठिता रहती हैं। आप निष्प्रपञ्चा, दोषरहिता तथा परमामृत रूपिणी हैं। चन्द्ररूप द्वार का अवलम्बन लेकर ही उस निर्वाण मुक्तिदायिनी अमाकला की प्राप्ति होती है। आप पितृगण की कव्यरूपा परमाकला हैं। पितृगण दक्षिणायन में उसी कला को इस अरण्य में प्राप्त करें।।४७-५१।।

चण्डिकोवाच

एवमस्तु यदा रामः समेष्यति पुरीमिमाम्। ततः प्रभृति दर्शान्तां यास्यामि पितृरूपताम्।।५२।।
अपर्वस्पपि पर्वत्वं तद्दिनानां भविष्यति। तेन तेष्वेव कुर्वीत श्राद्धं पार्वणवैधकम्।।५३।।
वानरेन्द्र भवेन्नैवं शुक्लपक्षे ह्यसम्भवात्। संग्रामे रावणवधे पक्षोऽत्येत्यसितो यदि।।५४।।
तदा प्राणहरा दृष्टिर्न रक्षःसु भवेन्मम। ये पञ्चदश वै देवाः क्रमेणेन्दुकलाश्च ताः।।५५।।
ते समेष्यन्ति मामेव सुधाकरकलार्थिनः। किन्तु त्वं शङ्करः साक्षात् कलामश्नंश्चतुर्दशीम्।।५६।।
न समेष्यसि मां युद्धे तत्र पूर्णपराक्रमी। अतश्चतुर्दशीतिथ्यां न श्राद्धं विहितं भवेत्।।५७।।
तत्रामृतेक्षणेनैव सर्वाञ्चास्त्रहतान् कपे। प्रीणयिष्यामि चेत्युक्तं यथावदुपयोगतः।।५८।।

चण्डिका कहती हैं—एवमस्तु, यही हो! जब राम इस नगर में आगमन करेंगे तब से अमावस्या तक मैं पितृस्वरूप रहूंगी। सभी दिन भले ही अमावस्या न हो, तथापि पितृकर्म हेतु, सभी तिथियां अमावस्या का ही फल प्रदान करेंगी। सभी तिथियों पर पितृकर्म अमावस्यावत् ही होगा। अतएव सभी तिथियों पर पार्वणविधि से श्राद्ध किया जा सकेगा। हे वानरेन्द्र! शुक्लपक्ष में ऐसा नहीं हो सकेगा। पितृकार्य शुक्लपक्ष में असंभव है। यदि युद्ध काल में रावण वधार्थ कृष्णपक्ष व्यतीत हो जायेगा, तब राक्षस कुल पर मेरी प्राणनाशिनी दृष्टि नहीं पड़ेगी। यथाक्रमेण १५ चन्द्रकलायें मुझमें मिलित हो जायेंगी। तथा चन्द्रकला चाहने वाले १५ देवगण भी मुझमें मिल जायेंगे। केवल तुम जो साक्षात् शिव हो चतुर्दश कला का भोजन करके युद्ध करोगे। तुम मुझमें मिलित नहीं होगे। अतएव चतुर्दशी तिथि के दिन श्राद्ध अविहित है। हे कपिप्रवर! मैं इस युद्ध में अपनी अमृत दृष्टि से समस्त आहत वानरों का उपकार करके उन्हें प्रसन्न रखूंगी।।५२-५८।।

हनूमानुवाच

एवमेव विधेयन्ते भविष्यति न संशयः। अस्माभिरपि यत्नेन कार्य्यं युद्धं त्वरायुतैः।।५९।।
त्वामहं पूजयिष्यामि लङ्कायामिह संप्रति। तिष्ठ स्थानान्तरे देवि यावत्तिष्ठामि चेह वै।।६०।।

हनुमान कहते हैं—आप निःसंदिग्ध रूप से यही करेंगी। मैं भी त्वरितरूप से यत्नतः युद्ध करूंगा। सम्प्रति मैं इसी लंकापुरी में आपकी पूजा करूंगा। हे देवी! मैं जब तक यहां हूं, आप अन्य स्थान चली जायें।।५९-६०।।

देव्युवाच

एवन्तु भाषमाणस्य गतप्राया क्षपाभवत्। तत्याज पीठं तं देवी हनूमांश्च ततः परम्।
बभञ्ज दुर्गमान्येव वनानि कपिकुञ्जरः॥६१॥
तत् श्रुत्वा प्रेषयत् क्रुद्धो रावणे राक्षसान् बहून्।
तेषं रक्तैस्तदा चण्ड्यै पाद्यार्घ्याचमनान्यदात्॥६२॥
क्षिपन् सपुष्पान् वृक्षौघान् पुष्पैस्तां समपूजयत्।
अक्षादिकाराजपुत्रान् हत्वा बलीनिहाप्यदात्॥६३॥
ततो रात्रौ महायुद्धं मेघनादेन तस्य ह। बद्धः प्रातर्ययौ द्रष्टुं लङ्केशं विजये जये॥६४॥
बद्धो हनूमानकरोत्सम्बादान्रावणेन हि। वैरूप्यकरणार्थाय तल्लाङ्गूलमदीपयत्॥६५॥

देवी कहती हैं—इस वार्त्तालाप में रात्रि व्यतीत हो गयी। तब चण्डी ने उस पीठस्थान का त्याग कर दिया। तदनन्तर कपिप्रवर हनुमान ने दुर्गम प्रमोदवन सम्पूर्णतः भग्न कर दिया। यह सुनकर रावण क्रोधित हो गया। उसने अनेक राक्षसगण को वहां भेजा। हनुमान ने उनके रक्त से चण्डी को पाद्य, अर्घ्य तथा आचमनीय प्रदान किया। पुष्पों से युक्त वृक्षों को गिराकर हनुमान ने भगवती का अर्चन किया। उन्होंने अक्षय कुमार आदि राजपुत्रगण की बलि चण्डी को प्रदान किया। हे सखीगण! तदनन्तर रात्रि में इन्द्रजीत के साथ हनुमान का महायुद्ध छिड़ गया। तब हनुमान पाशबद्ध होकर लंकापति रावण के पास ले जाये गये। नागपाश से बंधे हनुमान तथा रावण के मध्य नाना कथा-वर्त्ता होने लगी। रावण ने हनुमान को कुरूप बनाने हेतु उनकी पूंछ में अग्नि लगवा दिया।।६१-६५।।

हनूमान्दीप्तलाङ्गूलो देवि दीपं गृहाण मे। धूपांश्च विविधानेवं ध्यायन् लङ्कां ददाह सः॥६६॥
ययौ देवी कामरूपं कपिश्चापश्यज्जानकीम्।
प्रीता तु जानकी प्रोचे कपिं रामप्रियं सती॥६७॥
वत्स वायुसुत श्रीमन् यस्मिन्नहनि राघवम्। गत्वा द्रक्षसि मां तत्र कथयिष्यसि मां यथा।
उद्धरेत्स राक्षसेशं हत्वा चाचिरतः स्वयम्॥६८॥
आगमन्तेऽनुकाङ्क्षन्ती द्वौ मासौ प्राणधारणाम्। करोमि गतयोर्मासोरहं त्यक्ष्यामि जीवितम्।
इदञ्च वाच्यं कार्य्यञ्च भवतापि च तादृशम्॥६९॥

तब हनुमान (स्वशक्ति से नागपाश से मुक्त होकर) ने कहा—"हे देवी चण्डी! मुझसे धूप तथा नाना दीप ग्रहण करें।" यह कहकर अपनी दीर्घ पूंछ से हनुमान लंका दग्ध करने लगे। चण्डी देवी वहां से कामरूप देश चली गयीं। तदनन्तर हनुमान जानकी के दर्शनार्थ अशोक वाटिका गये। सती जानकी ने प्रसन्नतापूर्वक रामप्रिय वानर से कहा—"श्रीमान्! वत्स! पवनपुत्र! अब यहां से जाकर राम को दर्शन मिल जाये, तब उनसे मेरा संदेश कहना—"आप स्वयं आकर राक्षसवध द्वारा मेरे उद्धार साधन को शीघ्र करें। मैं आपके आगमन की बाट देख रही हूं। मैंने आपके आगमन की बाट देखते-देखते २ महीना व्यतीत करूंगी। तदनन्तर प्राण त्याग करूंगी।' उन प्रभु से यह बात कहना। तुम भी तदनुरूप कार्य करना"।।६८-६९।।

देव्युवाच

ओमित्युक्त्वा कपिवरो ययौ सागरलङ्घने। लङ्घयित्वा तथैवाब्धिं ज्ञातीन्सर्व्वानतोषयत्॥७०॥
इत्युक्तं ते यथा पृष्टं पितृरूपत्वमेव मे। उक्तानि कालतीर्थानि तानि पञ्चदशैव तु॥७१॥

॥इति बृहद्धर्मपुराणे हनूमदागमनं विंशतितमोऽध्यायः॥

देवी कहती हैं—वानर प्रवर हनुमान ने देवी की आज्ञा मानकर सागरलंघन किया तथा उस पार पहुंचकर समस्त वानर सैन्य को संतुष्ट किया। तुम सब ने पितृरूपत्व आदि जो प्रश्न किया था, उसके सम्बन्ध में कालतीर्थ (समयतीर्थ) प्रसंग में कह दिया। कालतीर्थ १५ हैं॥७०-७१॥

॥विंश अध्याय समाप्त॥

एकविंशतितमोऽध्यायः

श्रीराम का लंकागमन, देवीबोधन देवीबोधनोपाय

देव्युवाच

अथागत्य ततः षड्भिर्दिनैः पवननन्दनः। अङ्गदाद्यैः सह श्रीमान् ददर्श रघुनन्दनम्।
प्रणम्य सर्ववृत्तान्तं जगाद मुदितानमः॥१॥
रामोऽपि दशमीं शुक्लां श्रावणे मासि निर्णयन्। सर्वया सेनया सार्द्धं यात्रां चक्रे मुदान्वितः॥२॥
अहोरात्रैश्चलन्तस्ते षोड़शप्रहरैः सखि। द्वादश्यामपराह्ने वै समुद्रं ददृशुः समे॥३॥
समुद्रपारसंप्राप्तौ तेषां चिन्तयतां ततः। त्रयोदश्यां समायातः शरणार्थी विभीषणः॥४॥
चतुर्भिः कर्वुरैर्युक्तं रामस्तत्र समीक्षया। बुद्ध्वा सखायं कृत्वा च लङ्काराज्येऽभ्यषेचयत्॥५॥
तस्यैव मन्त्रणाद्रामस्त्रिरात्रनियमैः स्वयम्। सिन्धुराजं प्रसाद्यैव चक्रे स्वीकृतबन्धनम्॥६॥
स विंशतिशतं वाब्धिर्योजनानि स्वकं जलम्।
अस्तम्भयत्तदा सेतुं कर्त्तुमारेभिरे स मे।
गिरिभिर्गिरिशृङ्गैश्च वृक्षैः शालपियालादिभिः॥७॥८॥
यमपुत्रो नलश्चक्रे सेतुं सिन्धौ सुदुष्करम्। श्रावण्यां पौर्णमास्यान्तु शेषयामद्वये स्थिते।
चकार सागरे सेतुं योजनानि चतुर्दश॥९॥

देवी कहती हैं—हनुमान ने छः दिवस लंका में रुककर पुनः वापस आकर अंगदादि के साथ रघुनन्दन का दर्शन किया तथा प्रणाम करके प्रफुल्ल मुख से सभी वृत्तान्त श्रीराम से कहा। श्री राम ने भी श्रावण शुक्ला दशमी

तिथि तय करके सभी सेना के साथ प्रसन्न चित्त से यात्रा किया। हे सखियों! वे अहोरात्र १६ प्रहर चलकर द्वादशी के अपराह्न समुद्र के पास पहुंचे। तब वे समुद्र पार जाने हेतु चिन्तातुर थे, तभी त्रयोदशी के दिन वहां विभीषण शरणार्थ आये। उनके साथ ४ राक्षस भी थे। राम ने पूर्ण विवेचना के साथ उनके साथ मित्रता स्थापित करके उनको लंकापति के रूप में अभिषिक्त किया। श्रीराम ने भी विभीषण की मन्त्रणा तथा विचार के अनुसार त्रिरात्र नियमपूर्वक समुद्रपति को प्रसन्न करके सेतुबन्धनार्थ प्रसन्न किया। तब समुद्र ने अपने १२० योजन जल को स्तंभित किया। वानरों ने उस सम जल पर सेतुबन्धन आरंभ कर दिया। "विश्वकर्मा के पुत्र (यहां मय पुत्र लिखा है जबकि रामायण अथवा अन्य स्थानों पर इन्हें विश्वकर्मा पुत्र कहा गया जो अधिक उचित है)" नल ने पर्वत, पर्वत शिखर तथा शाल-पियाल आदि वृक्षों से सागर में १४ योजन का सेतु निर्माण किया। तब श्रावणी पूर्णिमा का २ प्रहर ही बाकी था, जब यह सेतु निर्मित हुआ।।१-९।।

ततोऽष्टयोजनं त्यक्त्वा द्वितीयदिवसे नलः। षड्विंशतियोजनानि बबन्ध सागरे जलम्॥१०॥

योजनानि ततः सप्त त्यक्त्वाहनि तृतीयके।
पञ्चाशतं योजनानि बबन्ध सागरे जलम्॥११॥

योजनानि ततः पञ्च त्यक्त्वाहनि चतुर्थके। बबन्ध सागरे सेतुं चकार दशयोजनम्॥१२॥

बद्धे सेतौ त्रिभुवने बभौ जयजयध्वनिः। न दृष्टो न श्रुतो दृष्टः श्रुतः सेतुः सरस्वति॥१३॥

अयं रत्नाकरे सेतुर्यस्याप्रतिहता प्रभोः। आज्ञा वा खलु याञ्चा वा स रामो जयति श्रुतः॥१४॥

कोटीनामर्द्धलक्षेण वानराणां सहैव तु।
रामः कृष्णत्रयोदश्यां पुष्यायां दक्षिणं तटम्॥
सिन्धोः प्रापन्महाबाहुर्विभीषणसहायवान्॥१५॥१६॥

श्रुत्वा दशाननः प्राप भयं शोकञ्च दिग्भ्रमम्। प्रलापं बुद्धिमोहञ्च कल्पं चिन्तामहर्निशम्॥१७॥

दशावस्थां ततश्चक्रे चरप्रस्थापनादिकम्॥१८॥

द्वितीय दिन नल ने ८ योजन स्थान छोड़कर २६ योजन का सेतु बनाया। तृतीय दिन ७ योजन छोड़कर ५० योजन का सेतु बनाया। चौथे दिन ५ योजन छोड़कर १० योजन का सेतु बनाया। (बीच बीच में क्रमशः ८ योजन, ७ योजन तथा ५ योजन इसलिये पुल नही बनाया ताकि जो इस बिना पुल की दूरी पार न कर सके, वह लंका युद्धार्थ ले जाने लायक वानर नहीं है।) सेतु बन्धन हो जाने पर त्रिभुवन में जयध्वनि होने लगी। क्योंकि किसी ने समुद्र पर सेतु बनते नहीं देखा था न सुना था। वह अब देखने तथा सुनने हेतु, दोनों प्रकार से अनुभूत हो गया। सभी कहने लगे जिन राम की अप्रतिहत आज्ञा अथवा प्रार्थना के कारण समुद्र पर सेतु बना है, वे प्रसिद्ध राम विजयी हों। पचास सहस्र कोटि वानरगण के साथ तथा विभीषण के साथ महाबाहु श्रीराम श्रावण मास की कृष्णा त्रयोदशी के दिन पुष्पनक्षत्र में समुद्र के दक्षिण तट पर पहुंचे। दशानन यह सुनकर भय-शोक दिक्भ्रम, प्रलाप, बुद्धिमोह, कम्प, सततचिन्ता में हो गया। वह निरन्तर परामर्श, सुहृद् वाक्य श्रवण न करना तथा कटु बोलना इस १० अवस्था का शिकार हो गया। तब उसने गुप्तचर भेजा।।१०-१८।।

रामेण प्रेषितो दूतो बालिपुत्रः प्रतापवान्। मुकुटं रावणशिरादादायागात्प्रभोः पुरः॥१९॥

निश्चित्य रावणो युद्धं पुरगुप्तिमथाकरोत्।
रामश्चोत्तीर्णमालोक्य बलं निरवशेषतः॥
सर्वया सेनया युक्तो भाद्र्याः परदिने प्रगे।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां व्याप्ता च वानरैः पुरी॥२०॥२१॥
जले स्थलेषु वृक्षेषु प्राचीरेषु गृहेषु च। गृहप्रान्तरकोष्ठेषु दृश्यन्ते तत्र वानराः॥२२॥
अथ रामो महाबाहुर्हनूमन्तञ्च लक्ष्मणम्। विभीषणं जाम्बवन्तं सुग्रीवमङ्गदं तथा।
समाहूयाब्रवीद्वाक्यं विशुद्धां मतिमुद्वहन्॥२३॥
मनो मम महाभागाः प्रसन्नं भाति संप्रति। अपर्व्वणि पितॄन् यष्टुं त्वरते च मतिर्मम॥२४॥
मन्ये तिथिरियं कृष्णा त्वश्वयुक् प्रथमा सिता। एतामारभ्य सर्व्वासु पक्षेऽत्र तिथिषु ध्रुवम्।
अमाख्या भाविनी देवी व्याप्नुते पर्व्वरूपिणी॥२५॥
तस्मादद्य समारभ्य यावद्दर्शं महत्तमाः। करिष्ये पार्व्वणेनैव विधिना पितृपूजनम्॥२६॥

रामद्वारा भेजे दूत प्रतापी बालीपुत्र अंगद ने रावण के मस्तक का मुकुट उतारा तथा उसे प्रभु राम को अर्पित किया। अब रावण युद्ध निकट जानकर पुररक्षण का उपाय करने लगा। राम ने अपनी समग्र सेना को वहां समुद्र पार आया देखा तथा किसी को भी अनुपस्थित न देखकर भाद्रपूर्णिमा के प्रथम दिन प्रातःकाल सैन्य के साथ लंका नगरी में प्रवेश किया। लंका नगरी वानरों से भर गई। वहां जल, स्थल, वृक्ष, प्राचीर, गृह के ऊपर, गृह में, गृह के प्रकोष्ठ तक में वानर ही वानर थे। तब विशुद्ध संकल्प वाले भगवान् राम ने लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान् तथा अंगद को बुलाया तथा कहा—हे महाभाग! अब मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। पर्व नहीं है, तब भी मुझे पितृपूजा की इच्छा हो रही है। आज आश्विन मास के कृष्णपक्ष की प्रथम तिथि है। आज से १५ दिन पर्यन्त अमा नामक पर्व रूपा देवी चण्डी सभी तिथियों में व्याप्त रहती हैं। हे प्रमुख लोगों! आज से अमावस्या पर्यन्त मैं पार्वण विधि से पितृपूजा करूंगा।।१९-२६।।

हनूमानुवाच

भद्रन्ते पुण्डरीकाक्ष क्रियतामेष वै विधिः। ध्रुवं तव जयो भावी कीर्त्तिरेषा च पैतृकी॥२७॥
सर्वे खलु करिष्यन्ति श्राद्धान्यत्र स्वधाभुजाम्।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं शुभां बुद्धिं विपन्नाशं धनं बहु।
जयं धर्मञ्च विपुलं कामान् प्राप्स्यन्ति चापरान्॥२८॥
पितॄणामपराख्यानामर्चनात्र यतः शुभा। तस्मादपरपक्षोऽयमश्वयुक् कृष्ण इत्युत॥२९॥
श्राद्धञ्च तर्पणञ्चात्र तिलैर्गङ्गोदकैरपि। अनेकहयमेधानां प्रदत्ते फलमव्ययम्॥३०॥

हनुमान कहते हैं—हे पुण्डरीकाक्षा! आपका मंगल हो। यह कार्य आप अवश्य करें। इससे आपको युद्ध में विजय प्राप्त होगी तथा पितृकार्यार्थ आपकी अक्षय कीर्त्ति होगी। सभी इस काल में श्राद्ध करें। इसे ज्ञातिप्राधान्य, शुभबुद्धि, विपत्तिनाश, बहुधनार्जन, युद्धजय, विपुल धर्म तथा नानाविध अभिलषित वस्तु प्राप्त होगी। पितृगण का

नाम है अपर। इस आश्विन के कृष्णपक्ष में अपरगण की शुभ पूजा होती है। तभी यह अपरपक्ष कहा गया है। इस कृष्णपक्ष में श्राद्ध तथा गंगाजल तर्पण द्वारा अश्वमेध से भी अधिक फल मिलता है।।२७-३०।।

देव्युवाच

इत्युक्तो वायुपुत्रेण रामः प्रीतियुतः परः। गाढ़मालिङ्ग्य श्राद्धार्थमुवास दक्षिणामुखः॥३१॥
यदैव प्रतिपत्श्राद्धं कृत्वा रामो व्यवस्थितः। तदा ददर्श रक्षांसि घोराणि प्रेषितानि च।
रावणेन बलवता चतुरङ्गबलैः सह॥३२॥
अकम्पनाख्यं सेनान्यं महाबलपराक्रमम्। अक्षौहिणीपतिं तं तु मारुतिर्निजघान ह।
मुमोद परया प्रीत्या रामो दशरथात्मजः॥३३॥
एवं प्रतिदिनं श्राद्धं कृत्वा युद्धं करोत्यसौ। निहत्याकम्पनं सख्यौ धूम्राक्षं निजघान ह॥३४॥
धूम्राक्षं च निहत्यापि वज्रदंष्ट्रं जघान ह। वज्रदंष्ट्रे हते वीरे चिन्तया व्याकुलः परः।
प्रहस्तं मातुलं युद्धे प्रेषयामास सज्जितम्॥३५॥
तस्य युद्धे रात्रिरभूद् युद्धं तत्र महत्तरम्। देवासुरनराणाञ्च दैत्यानाञ्च भयानकम्॥३६॥
तस्मिन्विनिहते प्रातः सचिन्तोऽभूद्दशाननः। प्रियार्थं तस्य चायातो मेघनादस्तथात्मजः॥३७॥

देवी कहती हैं—पवन नन्दन के यह कहने पर राम ने अत्यन्त प्रेम के साथ उनका प्रगाढ़ आलिंगन किया तथा श्राद्ध हेतु दक्षिण मुख बैठे। जब राम प्रतिपदा का श्राद्ध करके बैठे थे, तब देखा कि बलवान रावण ने चतुरंग सेना के साथ घोर राक्षसगण को युद्धार्थ भेजा है। उस सेना का नायक अक्षौहिणी पति महाबली पराक्रमी अकम्पन था। उसे पवननन्दन ने मृत कर दिया। तब दशरथपुत्र राम हनुमान के प्रति अत्यन्त प्रसन्न हो गये। श्रीराम प्रतिदिन श्राद्धोपरान्त युद्ध करते थे। हे सखियों! अकम्पन वध के पश्चात् धूम्राक्ष का, तदनन्तर वज्रदंष्ट्र का वध हुआ। इससे रावण अत्यन्त चिन्तातुर हो गया। उसने अपने मातुल प्रहस्त को सज्जित करके युद्धार्थ भेजा। प्रहस्त का युद्ध रात्रि में हुआ। उस युद्ध से समस्त देव-दैत्य-दानव-मानव सभी त्रसित हो गये। यह विशेष तुमुल युद्ध था। प्रातः प्रहस्त मारा गया। इससे रावण चिन्तित हो गया, तब उसका पुत्र मेघनाथ पिता की प्रसन्नता हेतु युद्धार्थ आया।।३१-३७।।

मायाविना चेन्द्रजिता शरैर्बद्धौ रघूत्तमौ। गरुड़ान्मोचितौ वीरौ रावणश्चागतस्ततः॥३८॥
रामरावणयोर्युद्धं महदासीत्तदद्भुतम्। यत्र वीरा निपतिता दशकोटिसहस्रकम्॥३९॥
मुण्डमाला रक्तनद्यो बह्व्यस्तत्र समावहन्। स्कन्धा अनृत्यन्बहुशः प्राहसन् मस्तका अपि॥४०॥
अक्षौहिणीप्रमाणेन वीरेषु निहतेषु हि। स्कन्ध एकः समुत्थाय नृत्यते कुहको यथा।
दशस्कन्धेषु नृत्यत्सु मुण्ड एको हसत्युत॥४१॥
अथ राक्षसनाथोऽसौ युद्ध्वा रात्रिन्दिवद्वयम्। हतभग्नरथाश्वादिः समरेऽभूत् पराङ्मुखः॥४२॥
ततः प्रयुद्धो यत्नेन कुम्भकर्णो महाबलः। सर्वां तां वानरीं सेनां शक्तश्चर्वयितुं सखि॥४३॥
तस्मिन् प्रयुद्धे देवारौ कुम्भकर्णे महाबले। देवाश्चिन्तासमायुक्ता ब्रह्माणमिदमब्रुवन्॥४४॥

मायावी युद्धकर्त्ता इन्द्रजित् (मेघनाद) ने नागपाश से महावीर लक्ष्मण को बांध लिया, जिसे गरुड़ ने आकर

काट दिया। तब रावण स्वयं युद्धार्थ उपस्थित हो गया। राम-रावण का युद्ध अत्यन्त विस्मयकारी था। इसमें दस हजार करोड़ वीर मारे गये। मुण्डमालाओं से भरी अनेक रक्तनदी रणक्षेत्र में बहती जा रही थी। सिर कटे कबंध नृत्य कर रहे थे। उधर कटे हुए शिर हास्य कर रहे थे। एक अक्षौहणी वीर मारे गये। इन्द्रजाल के समान एक सिर कटा शव उठकर नाच रहा था। तदनन्तर राक्षसराज दो दिन-दो रात्रि युद्ध करके रथ टूट जाने तथा अश्वों के मारे जाने पर युद्धभूमि से भाग गया। तब वानरी सैन्य को चबा लेने में समर्थ एक वीर अनेक प्रयत्न से जगाया गया उसका नाम था कुंभकर्ण। महाबली कुंभकर्ण के जागने पर सभी देवता चिन्तातुर हो गये।।३८-४४।।

देवा ऊचुः

कोटीनां पञ्चलक्षैश्च रक्षोवीरैः सुदुर्मदैः। आवृतः कुम्भकर्णोऽसौ रामं योत्स्यति संयुगे।
वयं स्वस्त्ययनं कुर्मः प्रभो ब्रह्मन् मतं कुरु॥४५॥

वे ब्रह्मदेव से कहने लगे—"प्रभो! यह कुंभकर्ण पाच लाख करोड़ राक्षसी सेना से घिरा है। यह राम से युद्ध करेगा। अतः हम राम के लिये स्वस्तिपाठ करेंगे। हे ब्रह्मन्! आप अपना अभिमत दीजिए"।।४५।।

देव्युवाच

इत्युक्तो दैवतैर्ब्रह्मा पक्षं युद्ध्वाल्पशेषकम्।
रावणस्य वधश्चापि शुक्लपक्षेऽप्यनन्यथा॥
देव्या दृष्टिं विना नापि मरिष्यति दशाननः।
कदाचित् शुक्लपक्षे स देवीं यक्ष्यति रावणः॥
अविनाश्यस्तदा स स्यादतो देवी प्रबोध्यते।
इति संचिन्त्य मनसा ततो देवानुवाच ह॥४६॥४७॥४८॥

देवी कहती हैं—देवगण की प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा ने देखा कि कृष्णपक्ष तनिक ही बचा है। अतः शुक्लपक्ष के पूर्व रावण वध होता नहीं प्रतीत होता। देवी की दृष्टि तथा आदेश के बिना भी रावण वध संभव नहीं है तथा रावण यदि शुक्लपक्ष आने पर देवी पूजा कर लेगा तब तो रावण वध संभव ही नहीं होगा। अतएव अब देवी का प्रबोधन आवश्यक है। यह विचारोपरान्त ब्रह्मदेव कहने लगे।।४६-४८।।

ब्रह्मोवाच

सर्वैः स्वस्त्ययनं कार्य्यं श्रीरामस्य जयाय नः। विधानज्ञाः कुरुथ वै करोम्यहमपि ध्रुवम्।
किन्त्वृते बोधनं देव्याः कार्य्यसिद्धिः सुदुर्लभा॥४९॥
इत्युक्तास्ते देवगणाः सर्वे ते ब्रह्मणा सह। देवीं सन्तुष्टुवुर्भक्त्या रावणेन प्रपीड़िताः॥५०॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विधिज्ञ देवताओं! श्रीराम द्वारा रावण विजय हेतु हम सबको स्वस्तिवाचन करना आवश्यक है। भगवती के बोधन के बिना कार्य की सिद्धि दुर्घट है। ब्रह्मा का यह वचन सुनकर रावण पीड़ित सभी देवता ब्रह्मा के साथ भक्तिभाव से देवी आद्याशक्ति की स्तुति करने लगे।।४९-५०।।

देवा ऊचुः

नमस्ये पुण्डरीकाक्षीं देवीं परमदेवताम्। कालीं त्रिनेत्रां वरदां शाम्भवीं शाङ्करीं शिवाम्॥५१॥

भक्तिप्रियां भक्तिरूपां भवानीं भववल्लभाम्। भैरवीं भीमवदनां भीमां भीमाननां शुभाम्॥५२॥
वैष्णवीं विष्णुरूपाञ्च विष्णुकार्य्यकरीं क्रियाम्।
संहारकारिणीं सृष्टिकारिणीं स्थितिकारिणीम्॥५३॥
कपर्द्दिनीं करालाक्षीं चन्द्रशोभितमस्तकाम्। श्यामां श्वेतां तथा गौरीं विचित्रां चित्रसुन्दरीम्॥५४॥
कौमारीं शक्तिधात्रीञ्च देवानां शक्तिरूपिणीम्। चतुर्भुजाञ्च द्विभुजां षड्भुजाष्टभुजान्तथा॥५५॥
देवीं दशभुजां कालीं बाहुषोड़शसंयुताम्। अष्टादशभुजां कालस्वरूपां लक्षनेत्रिणीम्॥५६॥
सहस्त्रचरणां कोटिच्छविं निष्फलरूपिणीम्।
स्थूलां शुद्धाञ्च सूक्ष्माञ्च खर्वाञ्चाथ महत्तमाम्॥५७॥

देवगण कहते हैं—हे कमलनयनी, देवी, परमदेवता, काली, त्रिनेत्र, वरदा, शांभवी, शांकरी, शिवा, भक्तिप्रिया, भक्तिरूपा, भवानी, भववल्लभा, भैरवी, भीममुखी, भीमा, भीमवदना, शुभा, वैष्णवी, विष्णुरूपा, विष्णु कार्यकरी, क्रिया, संहारकारिणी, सृष्टिकारिणी, स्थितिकारिणी, कपर्दिनी, करालनेत्रा, मस्तक पर चन्द्रमण्डल से शोभिता, श्यामा, श्वेता, गौरी, विचित्रा, चित्रसुन्दरी, कौमारी, शक्तिधात्री, देवगण की शक्तिरूपा, चतुर्भुजा, द्विभुजा, षड्भुजा, अष्टभुजा, दशभुजा, काली, षोडशबाहुवाली, १८ भुजावाली, कालरूपा, लाखों नेत्रों, हजारों चरणों, करोड़ों रश्मिमालायुत, निष्कला, सूक्ष्मा, शुभा, स्थूला, खर्वा, महत्तमा यह आप ही हैं। आपको प्रणाम।।५१-५७।।

दीर्घजिह्वामप्रमेयां स्तवनीयां वृहच्छिलाम्। कामरूपां कामगमां मन्त्ररूपां जगन्मयीम्॥५८॥
ब्रह्माण्डकोटिजठरां सर्वामाकाशवासिनीम्। विन्ध्याद्रिनिलयां शैलतनयां लोकपावनीम्॥५९॥
शिववृक्षस्थितां विल्वदलस्थां गिरिवासिनीम्। श्रीदुर्गां दुर्गतिहरां शान्तां शान्तजनप्रियाम्॥६०॥
पद्मालयाञ्च पद्माक्षीं सहस्त्रदलवासिनीम्।
त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिस्त्रिविधा प्रसूः॥६१॥

आप दीर्घजिह्वावाली, अप्रमेय, स्तवनीय, वृहद्‌शिलारूपा,. कामरूपा, कामगमा, मन्त्ररूपा, जगन्मयी, ब्रह्माण्डकोटि को उदर में रखने वाली, आकाश में निवास करने वाली, विन्ध्य तथा अद्रि पर्वत पर निवास करने वाली, लोकपावनी, शैलपुत्री, शिववृक्ष स्थिता, विल्वदलस्था, गिरिनिवासिनी, श्रीदुर्गा, दुर्गतिनाशिनी, शान्ता, शान्तजनप्रिया, पद्मालया, पद्माक्षी, सहस्त्रदलनिवासिनी, आप स्वाहा, स्वधा, ह्रीं, बुद्धि तथा सात्विकी-तामसी तथा राजसी रूप त्रिविधा हैं।।५८-६१।।

देव्युवाच

एवमुक्त्वा तदा देवी सत्वरूपा सनातनी। कन्यारूपेण देवानामग्रतो दर्शनं ददौ॥६२॥

यह स्तवन करने पर सत्वरूपा सनातनी देवी ने कन्या रूपेण उन देवगण के समक्ष दर्शन दिया।।६२।।

देवा ऊचुः

त्वां नमस्यामहे देवीं दयार्द्रहृदयां शिवाम्। स्त्रीरूपां परमानन्दरूपां ब्रह्मसनातनीम्।
नमामः प्रणमामस्त्वां संनमामः सुभक्तितः॥६३॥

सर्वस्वरूपां सर्वेशीं सर्वशक्तिसमन्विताम्। त्वां नमस्यामहे देवी भयेभ्यस्त्राहि नोऽम्बिके।।६४।।

देवगण कहते हैं—हे देवी! आप दयार्द्र हृदया, शिवा, स्त्रीरूपा, परमानंदरूपा, ब्रह्मरूपा, सनातनी हैं। आपको प्रणाम। आपको संतत हम लोग सुभक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं। आप सर्वस्वरूपा, सर्वेशी, सर्वशक्तियुता हैं। हम भयभीत जन आपको प्रणाम करते हैं। हे अम्बिके! हमारी रक्षा करें।।६३-६४।।

कन्योवाच

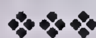
देवा ब्रह्मादयः सर्वे परितुष्टास्मि वो ध्रुवम्। दुर्गया प्रेषिता चाहं शृणुध्वं यत् ब्रवीमि वः।।६५।।
श्वो विल्ववृक्षे तां देवीं बोधयिष्यथ सम्प्रति। युष्माकमुपरोधेन बोधनं सा गमिष्यति।।६६।।
स्तुत्वा प्रणम्य तां बोध्य पूजयिष्यथ तां शिवाम्।
भविता कार्यसिद्धिर्वो रामस्य च महात्मनः।।६७।।
इत्युक्त्वा सा तदा देवी तत्रैवान्तरधीयत। ब्रह्मा देवगणैः सार्द्धं क्षितौ विल्वं समागतः।।६८।।

।।इति बृहद्धर्मपुराणे व्यासजाबालिसंवादे देवीबोधनोपाय एकविंशतितमोऽध्यायः।।



कन्यारूपा देवी कहती हैं—हे ब्रह्मादि देवगण! मैं आपलोगों से संतुष्ट हूं। दुर्गा ने मुझे भेजा है। उन्होंने जो कहा है, वह सुने-"आगामी कल बिल्ववृक्ष में भगवती का बोधन करें। इससे वे बोधित हो जायेंगी। बोधन, स्तव तथा प्रणामोपरान्त शिवपूजा करें। आप सब को तथा महात्मा राम को कार्यसिद्धि प्राप्त होगी। यह कहकर देवी अन्तर्हित हो गयीं। तब समस्त देवमण्डली के साथ ब्रह्मा भूतलस्थ बिल्ववृक्ष के निकट आये।।६५-६८।।

।।एकविंश अध्याय समाप्त।।



द्वाविंशतितमोऽध्यायः

देवीस्तव, राम को वर प्राप्ति, रावणवध

देव्युवाच

पृथिवीतलमागत्य ब्रह्मा देवगणैः सह। निर्ज्जने क्वापि ददृशे विल्ववृक्षं सुदुर्गमे।।१।।
तस्यैकपत्रे रुचिरे रुचिरां नवबालिकाम्। निद्रितां तप्तहेमाभां विम्बोष्ठीं तनुमध्यमाम्।
अनावृताङ्गां निश्चेष्टां रुचिरां नवबालिकाम्।।२।।
विरिञ्चिरथ तां दृष्ट्वा विस्मितस्तच्चरित्रवित्। तुष्टाव भूयः प्रणतः सर्वैः सुरगणैः सह।।३।।

देवी कहती हैं—ब्रह्मा ने देवगण के साथ भूतल पर आकर किसी सुदुर्गम निर्जन स्थान पर बेल का वृक्ष देखा। यह भी देखा कि उस बेलवृक्ष के एक मनोहर पत्ते पर तपे हुए स्वर्ण वर्ण की सुचारु नवमाला भूषिता, बिम्बोष्ठी,

क्षीणमध्या, रुचिरा, सद्यःप्रसूता जैसी बालिका निद्रिता है। वह बालिका निद्रा से निःश्चेष्ट है। शरीर पर कोई आवरण नहीं है। देवी के चरित्र को जानने वाले ब्रह्मा उसे देखकर विस्मित हो गये। पुनः उन्होंने सभी देवगण के साथ प्रणामोपरान्त उस कन्या की स्तुति करना प्रारम्भ किया।।१-३।।

ब्रह्मोवाच

जाने देवीमीदृशीं त्वां महेशीम् क्रीड़ास्थाने स्वागतां भूतलेऽस्मिन्।
शत्रुस्त्वं वै मित्ररूपा च दुर्गा दुर्गम्या त्वं योगिनामन्तरेऽपि॥४॥
एकानेका सूक्ष्मरूपाविकारा ब्रह्माण्डानि कोटिकोटिः प्रसूषे।
कोऽहं विष्णुः कोपरो वा शिवाख्यो देवाश्चान्ये स्तोतुमीशा भवेम॥५॥
त्वं वै स्वाहा त्वं स्वधा त्वञ्च वौषट् त्वञ्चौङ्कारस्त्वञ्च लज्जादिवीजम्।
त्वं वै स्त्री च त्वं पुमान् सर्वरूपा त्वां संनत्वा बोधये न प्रसीद॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—मैं आपको जान गया हूं। हे महेश्वरी! आप इस पृथिवी पर क्रीड़ार्थ आयी हैं। हे दुर्गे! आप शत्रु रूपिणी भी हैं—मित्ररूपिणी भी हैं। आप योगीगण हेतु अत्यन्त दुर्लभ हैं। आप एका-अनेका, सूक्ष्मरूपा, अविकारा, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाली हैं। मैं, विष्णु, शिव तथा अन्य देवगणों में से कोई भी आपकी स्तुति कर सकने में समर्थ नहीं है। आप ही स्वाहा, स्वधा, वौषट् हैं। आप ही प्रणव, ह्रीं, प्रकृति तथा बीज हैं। आप ही स्त्री, आप ही पुरुष हैं। यहां तक कि आप ही सर्वस्वरूपा हैं। मैं आपको प्रणाम करके बोधित करता हूं। मुझ पर प्रसन्न हो जायें।।४-६।।

त्वं वै वर्षो देवता कालरूपा त्वं वै मासस्त्वं ऋतुश्चायने द्वे।
कव्यं भुङ्क्षे त्वं यथा वै स्वधाख्या तद्वत् स्वाहा हव्यभोक्त्यम्ब देवि॥७॥
त्वं वै देवाः शुक्लपक्षेषु पूज्यास्त्वं पित्र्याद्याः कृष्णपक्षे प्रपूज्याः।
त्वं वै सत्यं निष्प्रपञ्चस्वरूपम् त्वां नत्वाहं बोधये नः प्रसीद॥८॥
द्वारेणार्केणायने त्वाद्यके त्वाम् मुक्तिं यान्ति त्वत्पदध्यानयोगात्।
चन्द्रद्वारेणायने तु द्वितीये त्वां वै मुक्तिं यान्त्यमी देवि सूक्ष्माम्॥९॥
उच्चैर्नीचं नीचमुच्चैश्च कर्तुम् चन्द्रञ्चार्कं त्वं विधातुं समर्था।
तत्राकाले शक्तिरूपा भव त्वम् त्वां नत्वाहं बोधये तत् प्रसीद॥१०॥
त्वं वै शक्ती रावणे राघवे वा रुद्रेन्द्रादौ मय्यपीहास्ति या च।
सा त्वं शुद्धा राममेकं प्रवर्त्त तत् त्वां देवीं बोधये नः प्रसीद॥११॥

हे माता! आप ही कालरूपा देवता हैं। आप ही वर्ष, मास, दोनों अयन रूप हैं। हे देवी! आप स्वधा रूप से कव्यभोक्तृ हैं। साथ ही आप ही स्वाहारूपेण हव्यभोक्तृ भी हैं। आप ही शुक्लपक्ष में पूज्य देवगण हैं। आप ही कृष्णपक्ष में पूज्य पितृगण हैं। आप ही निष्प्रपञ्च सत्य हैं। हम आपको प्रणाम करके बोधित करते हैं। आप हम पर प्रसन्न हो जायें। आपके चरणाविन्द का ध्यान करने वाला योगी उत्तरायण सूर्यकाल में मुक्तिरूपिणी आप भगवती को

प्राप्त करता है। आप दक्षिणायन में सूक्ष्मा मुक्तिस्वरूपा को चन्द्र द्वारा प्राप्त किया जाता है। आप ही उच्च को निम्न, निम्न को उच्च, चन्द्र को सूर्य, सूर्य को चन्द्र करने में समर्थ हैं। आप इस अकाल में शक्ति रूपा हो जायें। आपको प्रणाम करके बोधित करता हूं। आप प्रसन्न हो जायें। राम, रावण, रुद्र, इन्द्र तथा हमलोग, जो कोई भी विद्यमान हैं, वह सब आप ही हैं। हे देवी! इसी कारण से आपको बोधित करता हूं। हम पर प्रसन्न हो जाईये।।७-११।।

देव्युवाच

एवं स्तोत्रैः सा प्रबुद्धा महेशी बाल्यं त्यक्त्वा सा युवत्यास्त मद्यः।
निद्रां त्यक्त्वा चोत्थिता दैवतानां दृष्टिं प्राप्ता चोग्रचण्डेति नाम्ना॥१२॥

देवी कहती हैं—हे सखियों! वे महेश्वरी ब्रह्मा के इस स्तोत्र से प्रबुद्ध हो गईं। उन्होंने बालिका रूप त्याग कर युवती रूप धारण किया। वे निद्रात्याग कर उठीं तथा देवगण को दृष्टिगोचर होने लगीं! उनका नाम तब से 'उग्रचण्डा' कहा जाता है।।१२।।

चण्डिकोवाच

तुष्टाहं वो वाञ्छितं वै वृणुध्वं तान्ते देवाः संप्रपन्ना बभूवुः।

उग्रचण्डा कहती हैं—"मैं आप सबसे प्रसन्न हो गयी। आप अपना इच्छित कार्य कहिये।" देवगण उनके शरणागत हो गये।

ब्रह्मोवाच

श्रीमतीं त्वां स्वमिष्टं देवादीनां शृण्वतां मोदयुक्तः॥१३॥
ऐं रावणस्य बधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च। अकाले तु शिवे बोधस्तव देव्या कृतो मया॥१४॥
तस्मादद्यार्द्रया युक्तनवम्यामाश्विने शुभे। रावणस्य वधं यावत् अर्च्चयिष्यामहे वयं॥
ततो विसर्ज्जितास्माभिः यथास्थानं गमिष्यसि॥१५॥
एवं क्षितितले स्वर्गे पाताले च नरादयः। अर्च्चिष्यन्ति विशेषेण यावत् सृष्टि प्रवर्त्तते॥१६॥
नवम्यां कृष्णपक्षार्द्रानक्षत्रे त्वां महेश्वरीं। बोधयिष्यन्ति पूजायै महत्यै जगदम्बिके॥१७॥

तब ब्रह्मा ने प्रसन्न चित्त से सब देवगण के समक्ष अपना अभीष्ट विषय कहा—हे देवी! हे शिवे! रावण वधार्थ तथा राम के प्रति कृपा प्राप्त करने हेतु हमने अकाल होने पर भी आपका बोधन किया। आज शुभ आश्विन मास की आर्द्रायुता कृष्ण नवमी तिथि है। आज से जब तक रावण वध नहीं हो जाता, तब तक हम आपकी पूजा करेंगे। तदनन्तर हमारे द्वारा विसर्जित होने पर ही आप स्वस्थान गमन करें। जब तक स्वर्ग सृष्टि है, स्वर्ग-मर्त्य-पाताल सुर-नर की स्थिति हैं, तव तक हम विशेष रूप से आपका पूजन करते रहेंगे। हे जगदम्बिके! महेश्वरी! आर्द्रायुता कृष्णा नवमी के दिन महापूजार्थ आपका बोधन लोग करेंगे।।१३-१७।।

देव्युवाच

इत्युक्त्वा ब्रह्मणा देवी प्रत्युवाच दयावती। अनुग्रहाय लोकानामिह लोके परत्र च॥१८॥

चण्डिकोवाच

एवमेवास्तु सत्यं मे वचो ब्रह्मन्महामते। बोधिताहं त्वया कार्य्यं करिष्यामि तवेप्सितं॥१९॥

अद्य रक्षः कुम्भकर्णो मरिष्यति महाबलः। अतिकायस्त्रयोदश्यां लक्ष्मणास्त्रैः मरिष्यति॥२०॥
रावणस्तु चतुर्द्दश्यां युद्धयात्रां करिष्यति। मेघनादममावास्यानिशीथे स हनिष्यति॥२१॥
ततः प्रतिपदं प्राप्य मकराख्यो मरिष्यति। मरिष्यन्ति द्वितीयायां वीरा देवान्तकादयः॥२२॥
ततो रामधुनर्द्दिव्यं सुमेरुगुरु चाद्भुतम्। सप्तम्यां संप्रवेक्ष्यामि ततोऽष्टम्यां रणो भवेत्॥२३॥
रामरावणयोस्तीव्रं दृष्टं त्रैलोक्यवासिभिः। अष्टमीनवमीसन्धौ पतिष्यन्त्यस्य मौलयः॥२४॥
पुनः पुनः शिरोवृन्दनिपातोऽस्य भविष्यति। नवम्यामपराह्ले वै रावणोऽसौ पतिष्यति।
दशम्यां परमानन्दो जयी रामो भविष्यति॥२५॥

देवी कहती हैं—ब्रह्मा के यह कहने पर समस्त प्राणियों पर ऐहिक तथा पारलौकिक मंगल करने हेतु दयामयी देवी चण्डिका कहने लगी—"हे महामति, ब्रह्मन्! आपने मेरा बोधन किया है। इसलिये मैं आपकी कामना के अनुरूप वाला कार्य अवश्य सम्पन्न करूंगी। महाबली कुंभकर्ण आज मृत होगा वह अतिकाय राक्षस त्रयोदशी के दिन लक्ष्मण के अस्त्र से मृत होगा। रावण चतुर्दशी को युद्ध यात्रा करेगा लक्ष्मण द्वारा अमावस्या रात्रि में मेघनाद मारा जायेगा। प्रतिपदा को मकराक्ष तथा द्वितीया को देवान्तक आदि का वध होगा। तदनन्तर सुमेरु के समान सारयुक्त दिव्य राम के शरासन में मैं सप्तमी तिथि को प्रवेश करूंगी। अष्टमी के दिन राम-रावण युद्ध होगा। यह विचित्र युद्ध त्रैलोक्य के लोक देखेंगे। शुक्ला अष्टमी, नवमी के सन्धिकाल में रावण के शिर कट कर गिरेंगे। वे पुनः पुनः स्वस्थान पर लग कर पुनः काटने पर गिरते रहेंगे। शुक्लपक्षीय उस नवमी तिथि को अपराह्न में रावण वध सम्पन्न होगा। दशमी के दिन राम जय लाभ द्वारा परमानन्द मग्न होंगे।।१८-२५।।

एवं पञ्चदशाहानि मम पूजामहोत्सवः। अत्र त्रयोदशाहानि विल्वे मां पूजयेत्कृती॥२६॥
सप्तम्यां गृहमानीय पूजयित्वा दिनद्वयं।
नानाविधैश्च बलिभिः पूजाजागरणादिभिः॥
अष्टम्यामुपवासेन नवम्यां बलिदानतः।
अर्च्चयेन्मां महाभक्त्या योगिनीश्चापि कोटिशः॥२७॥२८॥
अष्टमीनवमीसन्धिकालोऽयं वत्सरात्मकः। तत्रैव नवमीभागः कालः कल्पात्मको मम॥२९॥

अभी जैसे मेरी पूजा की है, ऐसे ही १५ दिन मेरा पूजन महोत्सव सम्पन्न करिये। आज से शुक्ल षष्ठी पर्यन्त तेरह दिन विद्वान व्यक्ति बिल्ववृक्ष में १३ दिन मेरी पूजा करें। सप्तमी को गृह में पूजा करें। तदनन्तर दो दिन नानाविध बलि, पूजा तथा जागरणादि द्वारा मेरी पूजा होनी चाहिये। महाअष्टमी के दिन उपवासी रहें तथा नवमी को बलि प्रदान द्वारा महाभक्ति के साथ मेरी पूजा करें। इन दो दिन कोटि योगिनी पूजा भी करनी चाहिये। अष्टमी-नवमी के सन्धिक्षण में मेरी पूजा वत्सर स्वरूप काल है। उसमें नवमी का क्षण कल्पस्वरूप काल है। अर्थात् अष्टमी-नवमी सन्धिक्षण में पूजा करने पर १ वर्ष पूजा का फल मिलता है। नवमी क्षण में पूजा करने पर एक कल्प पर्यन्त का पूजा फल मिल जाता है।।२६-२९।।

सर्व्वस्वैरपि मे पूजा कर्त्तव्या तु दिनद्वयम्। ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा भक्तिसंयुतः॥३०॥
त्यक्त्वा विषयकार्य्याणि हिंसाकलहमत्सरान्। स्वच्छचित्ता अपचये लाभबुद्धियुताः सदा॥३१॥

नाध्यापनां नाध्ययनं न युद्धं क्रयविक्रयौ। न चार्घो न च कर्षादि कर्त्तव्यं तत्र वै क्वचित्॥३२॥
भगलिङ्गाभिधानैश्च शृङ्गारवचनैस्तथा। गानं कार्य्यं भोजयेच्च ब्राह्मणांस्तोषयेत् स्त्रियः॥३३॥
जुहुयाद्बिल्वपत्रैश्च सघृतैः परमादरात्। एवं यः कुरुते पूजां स सर्व्वार्थेश्वरो भवेत्॥३४॥

अष्टमी, नवमी इन दो दिन की पूजा को तो सर्वस्व व्यय करके भी सम्पन्न करें। यह चारों वर्ण वालों हेतु करने के योग्य कर्म है। हिंसा, कलह तथा मात्सर्य त्याग करके भक्तिभाव से पूजा करें। इसमें जो व्यय हो, उससे मन को दुःखी न करें। सदा लाभ बुद्धि युक्त रहे। अर्थात् इस खर्च को भी लाभ ही समझें। अध्ययन, अध्यापन, युद्ध, क्रय-विक्रय, मूल्यस्थिरीकरण अथवा खेती, इत्यादि इस समय कुछ भी न करें। भग-लिंग नाम युक्त शृंगार का रसपूर्ण शब्दों द्वारा गायन करें। ब्राह्मण भोजन तथा नारियों को वस्त्रादि से संतुष्ट करें। घृत सिक्त बिल्व पत्र से होम आदरपूर्वक सम्पन्न करें। जो व्यक्ति इस प्रकार से पूजा सम्पन्न करता है, वह व्यक्ति सभी कार्य का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।।३०-३४।।

अकुर्व्वाण इमां पूजां शारदीं मम पुष्कलाम्। प्रत्यवायी पितॄन् देवान् पीड़येच्चिरनारकी॥३५॥
महाविपत्तारकत्वाद्दीयतेऽसौ महाष्टमी। महासम्पद्दायकत्वात् सा महानवमी मता।
कर्मणाञ्च समारम्भे विजया दशमी मता॥३६॥
मूलापूर्वोत्तराषाढाश्रवणाभानि चेत्तथा। तिथिशु स्युः क्रमाद्ब्रह्मंस्तदा बहुतरं फलम्।
यथा प्रीतिर्महापूजा जनितेयं भविष्यति॥३७॥
यथा च रावणबधात् कीर्त्तीरामस्य पुष्कला। तथा तव महाकीर्त्तिर्मत्पूजास्थापनात् भवेत्॥३८॥
पूजां कुरु महाभाग ममाद्यां त्वन्तु शारदीम्। कारयापि च देवादीन् स्वर्गक्ष्मामण्डलादिषु॥३९॥

जो शरत्काल में मेरी पर्याप्त पूजा नहीं करता वह पापी है। वह स्वयं तो दीर्घकालीन नरक यातना भोगता है, उसके पितृगण को देवता पीड़ित करते हैं। यह अष्टमी पूजक को महाविपत्ति से बचाने के कारण महाष्टमी है। महासम्पदा देने के कारण यह नवमी ही महानवमी है। किसी भी कार्य का प्रारम्भ विजयादशमी से करना प्रशस्त है। हे ब्रह्मन्! सप्तमी से दशमी तक तिथि चतुष्टय है। यथाक्रमेण इनमें मूला, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा तथा श्रवणा नक्षत्र हो, तव पूजा का अत्यधिक फल मिलेगा। यह महापूजा करने पर मेरी प्रसन्नता मिलेगी। रावण वध से राम की कीर्त्ति प्रचुर होगी। मेरी यह पूजा संस्थापित करने से आपकी भी अपूर्व कीर्त्ति होगी। हे महाभाग! मेरी इस शारदीय पूजा को पहले आप करें। तत्पश्चात् स्वर्ग, पृथिवी प्रभृति स्थानों में देवों द्वारा भी यह पूजा करायें।।३५-३९।।

देव्युवाच

इत्युक्त्व सा तदा देवी तत्रैवान्तरधीयत। देवा अपूजयन्देवीं स्वर्गेऽथ पृथिवीतले॥४०॥
मनुष्यरूपतां गत्वा महापूजामवर्त्तयत्। रामोऽपि नाशयामास नवम्यां रावणानुजम्॥४१॥
ततोऽतिकायमरणं यात्रा वै रावणस्य च। इन्द्रजिन्मरणञ्चैव देवान्तकबधस्तथा।
शुक्लद्वितीयापर्यन्तं मकराक्षवधस्तथा॥४२॥
एवं नवसु घस्त्रेषु रात्रिन्दिवमहारणैः। निपेतुर्वानरा लक्षकोटयो राक्षसैर्हताः।
कोटयः पञ्च लक्षाणि सहस्त्राणि च षोड़श॥४३॥

निपेतूराक्षसा वीराः साश्वेभरथपत्तिकाः। स्कन्धा अनृत्यन् बहुशो मुण्डाश्च जहसुः सखि॥४४॥
मुण्डमालावहा घोरा रक्तनद्यश्च लक्षशः। भूताः सागरगा वेगान्महायुद्धे भयानके।
काका ऊर्द्धमुखैरक्तमपिवन् परमादरात्॥४५॥
ततस्तृतीयामारभ्य रामरावणयोर्महम्। महाभयानकं युद्धं दारुणं संबभूव ह।
नवाहयुद्धद्विगुणं युद्धमासीन्महत्तरम्॥४६॥

देवी कहती हैं—तदनन्तर वहां से देवी अन्तर्हित हो गयीं। देवगण ने भगवती की पूजा स्वर्ग में किया। देवगण ने मनुष्यरूप धारण करके मृत्युलोक में भी इसी पूजा का प्रवर्त्तन किया। इधर राम ने भी नवमी के दिन रावण के अनुज कुंभकर्ण का वध किया। तब अतिकाय का वध हुआ। रावण की युद्ध यात्रा, इन्द्रजीत वध, मकराक्ष वध, देवान्तक वध, शुक्ल द्वितीया तक सम्पन्न हो गया। इस प्रकार से ९ दिन दिन-रात चलने वाले महायुद्ध में राक्षसों ने अनेक कोटि वानर वध किया। अश्व, हाथी, रथ, पैदल सहित पांच लाख करोड़ सोलह हजार राक्षस भी मारे गये। हे सखियों! वहां अनेकों सिरकटे शव नाच रहे थे, कटे मुण्ड हास्यरत थे। मुण्डमाला संकुल, घोरतर लाखों-लाख सागर गामिनी रक्त नदी इस महायुद्ध में वेग से प्रवहमान थी। उस भयानक महायुद्ध में परम संतोषपूर्वक उर्ध्वमुख हो रक्त पी रहे थे। तृतीया से राम-रावण का महाभयानक युद्ध प्रारम्भ हो गया। यह युद्ध पूर्व के ९ दिन के युद्ध से द्विगुण भयानक तथा तुमुलयुद्ध था।।४०-४६।।

ततो रामो ववर्षाय रावणस्य दुरात्मनः। वाक्ययुद्धं महत्कृत्वा सुदीप्तं धनुराददे॥४७॥
दुर्निरीक्ष्यस्तदा रामो बभूवातिभयङ्करः। मेरुतुल्यगुरौ चापे दश वाणान् समादधौ।
पातयामास दश वै मस्तानि कालसन्धिके॥४८॥
एवमष्टोत्तरशतं छिदान् कृत्वा रघूत्तमः। नवम्यामपराह्ले वै पातयामास रावणम्॥४९॥
पतिते च महावीरे रावणे लोकरावणे। सुभीमे विंशतिभुजे दशास्ये लोककण्टके॥५०॥
चकम्पे पृथिवी सर्वा गिरयः सागरा अपि। स्त्रियो रुरुदुरागत्य सच्चकार विभीषणः॥५१॥

राम ने रावण पर बहुत से बाणों की वर्षा की। तदनन्तर महान् वाक्युद्ध भी दोनों के बीच कुछ समय तक चला। तब राम ने सुदीप्त धनुष उठाया। राम अत्यन्त दुर्दमनीय तथा भयानक हो गये। राम ने उस सुमेरुतुल्य महान् शरासन से १० बाणों का सन्धान किया तथा अष्टमी-नवमी तिथि सन्धि में रावण के दसों मुण्ड को काट दिया। इस प्रकार राम ने १०८ बार रावण के दसों मुण्ड का छेदन किया। अन्त में नवमी के अपराह्न में रावण का वध किया। जगत् को अपने अत्याचार से आर्त्तनाद कराने वाला लोककंटक दसशिर तथा बीस भुजावाला रावण जब निहत होकर गिर गया, तब समस्त धरती, पर्वतादि तथा सब समुद्र कम्पित हो उठे। स्त्रियां रुदन करने लगीं। उस समय विभीषण ने रावण का अन्तिम संस्कार सम्पन्न किया।।४७-५१।।

ततः प्रभाते विमले दशम्यां विजये जये। सीतामानाय्य सुकृशां ददर्श रघुनन्दनः॥५२॥
वानराः ददृशुः सर्वे सीतां साक्षादिव श्रियम्। प्रणेमुः परया भक्त्या जानकीं जननीमिव॥५३॥
अस्या अर्थे वयं सर्वा पृथिवी विचिता मुहुः।
सखा यदर्थे सुग्रीवो बाली नष्टो यदर्थतः॥५४॥

दग्धा लङ्का यदर्थेन बद्धः सिन्धुर्यदर्थतः।
यस्या अर्थे हताः सर्वे राक्षसाश्च सरावणाः। सेयं सीता रामभार्या जानकी नृपतिस्नुषा॥५५॥

हे जये, विजये! तदनन्तर रघुनन्दन ने दशमी के निर्मल प्रातःकाल में सीता को बुलवाकर देखा। वे अत्यन्त दुर्बल हो गयीं थीं। वानरगण ने सीता को साक्षात् लक्ष्मीरूपेण देखा और उन सबने अत्यन्त भक्ति के साथ उनको मातृभावना से प्रणाम किया। वे आपस में कहते जा रहे थे कि हमने जिनके लिये समस्त भूमण्डल का अन्वेषण किया, जिनकी खोज के लिये सुग्रीव राम के सखा बने, जिनके कारण बालिवध सम्पन्न हुआ, जिनके लिये समुद्र पर पुल बना, ये वे ही राजपुत्री जनकराज-नन्दिनी रामभार्या सीता हैं।।५२-५५।।

देव्युवाच

सीताथ रामवाक्येन प्रवेष्टुमग्निमैच्छत। ब्रह्मेशाद्याः सुराः सर्वे समागत्य न्यषेधयन्॥५६॥

अग्निप्रविष्टां सीताञ्च रामः प्राप ह्यकल्मषाम्।
मृतान् सर्वान् वानरर्क्षानिन्द्रश्चामृतवर्षणैः।
अजीवयत्तांश्च नीत्वा लङ्कायाञ्च विभीषणम्।
भूपं कृत्वा तेन सार्द्धं ययौ रामः पुरात्ततः॥५७॥५८॥
सेतौ शिवं स्थापयित्वा तीर्त्वा सत्यं पितुः प्रभुः।
अयोध्यामागतो रामः पुनः पौरान् प्रमोदयन्॥५९॥

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। रामो राज्यमुपास्यासौ ब्रह्मलोकं ततोऽगमत्॥६०॥
इत्येतद्वां समाख्यातं कालतीर्थौघकं समम्। आश्विनी पौर्णमासी च शेषतीर्थं किलाश्विने॥६१॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे कालतीर्थकथने रावणबधो द्वाविंशोऽध्यायः।।

देवी कहती हैं—सीता ने राम का वाक्य सुनकर अग्नि प्रवेश की इच्छा प्रकट किया। तब ब्रह्मा-शिव आदि देवता ने आकर राम को सीता का त्याग करने से रोक दिया। श्रीराम ने अग्निप्रविष्ट निष्पाप सीता को ग्रहण किया। इन्द्र ने अमृतवर्षा द्वारा मृत वानर तथा रीछों को पुर्नजीवित कर दिया। राम ने लंका के राज्यपद पर विभीषण को अभिषिक्त करके विभीषण, वानर, भालुओं के साथ लंका से प्रस्थान किया। प्रभु राम ने सेतुबन्ध पर शिव स्थापना तथा पितृवचन का पालन करते हुए तथा पुरवासीगण के आनन्द का विधान करते हुए अयोध्या में पुनरागमन किया। वहां राम ने १०,००० वर्ष राज्य करके अपने स्वरूपत्व को पुनः प्राप्त किया। मैंने तुम सखियों को कालतीर्थ समूह का वर्णन सुना दिया। आश्विनी मास की पौर्णमासी तथा अन्य तीर्थ वर्णन सुनो।।५६-६१।।

।।द्वाविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयोविंशोऽध्यायः

कोजागरी आदि व्रत वर्णन, द्वादशाक्षर विष्णुस्तुति

देव्युवाच

आश्विन्यां पौर्णमास्यान्तु लक्ष्मीः कमलसम्भवा।
रात्रौ भ्रमति सर्वत्र कृपया ब्रुवती त्विदम्॥१॥

उपोष्य दिवसं सर्वं प्रदोषे संप्रपूज्य च। नारिकेलोदकं पीत्वा को जागर्त्ति महीतले॥२॥
अस्याहमनुगृह्णामि धर्मार्थकाममोक्षदा। तस्मात् संपूजयेल्लक्ष्मीं भक्त्या शक्त्या सखीद्वय॥३॥
प्रदोषसमये मर्त्यः संलिप्सुः परमां श्रियम्। अतः परममावास्या शुभा दीपान्विता श्रुता॥४॥
पार्वणेन विधानेन श्राद्धं कुर्यादिहैव तु। सायं विसर्ज्जयेच्चैव पितॄनस्यां तिथौ सखि॥५॥
रात्रौ निशीथव्याप्तायाममावास्यामिहैव तु। पृथ्वीतलं समायाता काली दिग्वसनाम्बिका॥६॥

असुराणां वधार्थाय भवाय च सुपर्वणाम्।
यदा चकम्पे पृथिवी तद्भारासहने स हि।
तदा शिवः शवो भूत्वा तां दधार त्रिलोचनाम्।
तदा सर्वे स्थिरीभूता कूर्मशेषधरादयः॥७॥८॥

देवी कहती हैं—आश्विन मास की पौर्णमासी की रात में कमलोद्भवा भगवती लक्ष्मी कृपा परवश होकर सर्वत्र विचरण करती हैं। जो व्यक्ति पृथिवी पर समस्त दिन उपवासी रहकर प्रदोषकाल में मेरी अर्चना करके नारियल का जलपान करके रात जागरण करता है, मैं उसे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के दान से अनुगृहीत करती हूं। हे सखियों! इसलिये वह परमैश्वर्य कामी मानव प्रदोषकाल में भक्तिपूर्वक लक्ष्मी की अर्चना करके शुभदीपान्विता अमावस्या के दिन पार्वण श्राद्ध करें। सायंकाल पितृगण का विसर्जन कर देना चाहिए। पूर्वकाल में दिगम्बरी भगवती काली ने असुरवधार्थ तथा सुरगण के मंगलार्थ इस अमावस्या के रात्रिकाल में भूतल पर अपना आविर्भाव किया था। जब पृथिवी उन सब के भार से कम्पिता होने लगीं तब शंकर ने शवरूप से इन त्रिलोचना को धारण किया था। तभी कूर्म, अनन्त तथा वसुंधरा को स्थिरता मिल सकी।।१-८।।

अतस्तामत्र वै भक्त्या देवदेवीं द्विजातयः। पूजयेयुर्मुदा श्यामां पशुपुष्पार्घ्यसम्पदा॥९॥
वासोभिर्भूषणैरन्नैः पायसैर्विविधैरपि। गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च दीपमालासमन्वितैः॥१०॥
मालसीगाननिरता भगलिङ्गाभिशब्दिनः। जितेन्द्रिया जिताहारा जितनिद्रा महाशया॥११॥
पूजयेयुर्महाकालीं श्यामां चारुचतुर्भुजाम्। वराभयकरां वामे दक्षिणेऽसिनृमुण्डकाम्॥१२॥
संहारकालनिविड़ध्वान्तकायां दिगम्बरीम्। पापकोटितरध्वान्तं संहरन्तीमिवोज्ज्वलाम्॥१३॥
शवरूपमहादेवहृदये परमासने। तिष्ठन्तीं मुक्तकेशीञ्च ललज्जिह्वां हसन्मुखीम्॥१४॥

द्रवद्रक्तां सृक्कणीभ्यां दानवानां भयानकाम्।
सत्वरूपां सदा शुद्धां केवलां निष्फलां शिवाम्॥१५॥
पीनोन्नतस्तनां देवीं नानाभूषणभूषणाम्। ब्रह्मविष्ण्विन्द्रकालादिप्रणतां प्राणरूपिणीम्॥१६॥

इसलिये जितेन्द्रिय, आहार विजयी, निद्रा विजयी महाशय द्विजातिगण इस दिन पशु, पुष्प, वस्त्र, अलंकार, नाना खाद्य तथा दीपमाला से इनका पूजन करके नृत्य, गीत तथा भग्-लिंग आदि शब्द का उच्चारण करें। इन महाकाली के बायें ओर के करद्वय में वर तथा अभयमुद्रा तथा दाहिने करद्वय में खड्ग तथा नरमुण्ड शोभित हैं। वे शवरूपी महादेव के हृदयकमल के आसन पर अधिष्ठिता है तथा नाना आभरण भूषिता हैं। इन निष्कला शिवा चतुर्भुजा की देहकान्ति प्रलयकालीन निबिड़ अंधकारवत् है। इनको देखने से बोध होता है कि मानो कोटि-कोटि पापान्धकार का वे संहार कर रही हैं। उनके केशपाश घुंघराले तथा मुक्त हैं। (बंधे नहीं हैं) कटिप्रदेश वस्त्रविहीन हैं। स्तनद्वय स्थूल तथा उन्नत हैं। उनके ओठों के दोनों कोर से रक्त धारा बहती रहती है जो असुरों को भय प्रदान करती है। ये देवी सत्वरूपा, सदाशुद्धा, केवला तथा निष्कला एवं कल्याणप्रदा हैं। वे पीन तथा उन्नत स्तनवाली तथा नाना भूषण भूषिता हैं। ब्रह्म-विष्णु इन्द्रादि देवताओं से वन्दनीया तथा प्राणरूपिणी हैं।।९-१६।।

योगिनीभिः परिवृतां नृत्यन्तीभिरितस्ततः। ददतीभिः पिवन्तीभिः शोणितं मधुचासवम्॥१७॥
इत्यादि चिन्तयित्वा तां पूजयेयुर्मुदान्विताः। प्रीतये सर्वदेवानां विष्णोस्तु परमात्मनः॥१८॥
महाष्टमीविधानेन विधिनागमिकेन वा। पूजामिमां प्रकुर्वीत बल्यन्नाद्यैर्यथोचिताम्॥१९॥
ब्राह्मे मुहुर्त्तसमये तां विसर्ज्य जगन्मयीम्। चतुष्प्रहरपूजाया दद्याद्विपुलदक्षिणाम्।
परत्राहनि वै विप्रान् भोजयेद्भक्तितत्परः॥२०॥

इनके चतुर्दिक् योगिनीगण परस्परतः रक्त तथा आसव-मधु दान-पान तथा नृत्य करती रहती हैं। मानवगण इस प्रकार से इनका ध्यान करके समस्त सुरगण तथा परमात्मा विष्णु की प्रसन्नता हेतु नाना वाद्य वादन के साथ महाष्टमी विधान से किंवा तन्त्रशास्त्रोक्त विधान से प्रति प्रहर में इन जगन्मयी का पूजन करके ब्राह्म मुहूर्त्त में ब्राह्मणों को विपुल दक्षिणा प्रदान करें तथा विसर्जन के उपरान्त भक्ति के साथ अनेक ब्राह्मणों को भोजन करायें।।१७-२०।।

ततश्च कार्त्तिकीनाम पौर्णमासी सुविश्रुता। यत्र रामोत्सवञ्चक्रे गोपीभिर्नन्दनन्दनः॥२१॥
तस्मात्तत्र मुदायुक्तो गोपिकापतिमीश्वरम्। पूजयेत् सह गोपीभिः प्रतिमासु यथाविधि॥२२॥
दिवसेनऽनशनं कृत्वा सायञ्चातीत्य मानवः। चन्द्रे च विपुले पूर्णे पूजयेन्नन्दनन्दनम्॥२३॥
नवीननीरदश्यामं कृष्णं कमललोचनम्। वनमालानिवीताङ्गं हारकेयूरशोभितम्॥२४॥
तप्तहेमोज्ज्वलत्कान्तिवसनेन विराजितम्। गोरोचनायास्तिलकं ललाटे लोलकुन्तले॥२५॥
शोभयन्तं मञ्जुरावौ नूपुरौ चरणद्वये। मदनालसविभ्रान्तनयनद्वयपङ्कजम्॥२६॥
युवतीभीरसाढ्याभिः ज्वलत्कनककान्तिभिः। कामभावेन शीत्कारवासस्खलनसालसम्॥२७॥
नयनद्वयमारक्तं दधानाभिः सुमण्डितम्। पार्श्वस्थयोर्युवत्योस्तु मध्यस्थं नीलसुन्दरम्॥२८॥
एवन्तु गोपीबाहुल्यादनेकचारुविग्रहम्। सर्वाभिः स्वस्वनिकटे पूर्णरूपञ्च लक्षितम्॥२९॥

अन्यत्र प्रतिविम्बांश्च प्रपश्यन्तीभिरुज्ज्वलम्। एवं युगलकैशोरमुज्ज्वलं भावमाश्रितम्।
चिन्तयेत् सततं नन्दनन्दनं ब्रह्मवन्दितम्॥३०॥
रम्ये वृन्दावने पूर्णे ज्योत्स्नापुष्पैः सुशोभिते।
स्वागतासनपाद्याद्यैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥
वस्त्रालङ्कारभूषाद्यैराहूय ब्राह्मणानपि।
नृत्यगीतादिवाद्यैश्च कारयेद् गोपिकोत्सवम्॥३१॥३२॥

तदनन्तर सर्वजन विदित कार्त्तिकी पूर्णिमा है। इस दिन नन्दनंदन श्रीकृष्ण ने गोपिकागण के साथ रासलीला किया था। तभी मानवगण निशाकर की पूर्णता होने पर इस तिथि के दिन उपवासी रहकर सायंकाल व्यतीत करके मिट्टी आदि प्रतिमा के ऊपर आनन्द पूर्वक गोपिकागण के साथ नवघनश्याम, वनमालासुशोभित, हारकेयूर अलंकृत, स्वर्णमय समुज्वल पीताम्बरधारी, कर्ण में कुण्डल धारण करने वाले, ललाट पर गोरोचन तिलक से भूषित तथा चरणद्वय में सुमधुर शब्द वाले मणिमय नूपुरों से शोभित तथा ऐसी युवतीगण से घिरे जो प्रत्येक अपने-अपने पास के भगवान् श्रीकृष्ण को पूर्ण रूप मानती हैं तथा दूसरे के पास स्थित कृष्ण को प्रतिबिम्ब मात्र मानती हैं तथा जो बहुसंख्यक गोपियां के सन्तोषार्थ सब के पास अपनी मनोहारी मूर्त्ति में विद्यमान रहते हैं। ऐसे मद से घूर्णित नेत्रों वाले, पार्श्व में स्थित दो युवतियों के मध्य में स्थित, प्रेमभाव से सराबोर, युगल कैशोर, ब्रह्मवन्दित, ज्योत्स्ना पुष्प शोभित मनोहर वृन्दावन बिहारी नन्दपुत्र का ध्यान करके ध्यान में उनसे स्वागत प्रश्न पूछे। तदनन्तर उनको (मानस) आसन, पाद्य, वस्त्र, अलंकार तथा विविध नैवेद्य प्रदान करके उनकी अर्चना के अनन्तर नृत्यगीत, वाद्यवादन के साथ गोपिकोत्सव करें।।२१-३२।।

संपूज्य दक्षिणान्दत्त्वा ब्राह्मणान् परितोष्य च। विसर्जयेत्ताः प्रतिमाः परत्राहनि तूत्सवैः॥३३॥
भोजयेत् ब्राह्मणान्मिष्टं कृत्वैवं विधिमुत्तमम्। सपुत्रपौत्रस्वजनो विमुक्तः पापसञ्चयैः॥३४॥
वैकुण्ठेश्वरपादाब्जमन्ते याति निरामयः। ततोऽग्रहायणी नाम पौर्णमासी च पुण्यदा॥३५॥
युक्ता मृगशिरोभेण कालतीर्थमुदाहृतम्। पौषमाघाख्यमासाभ्यां रवेर्वारे दिवा यदि॥३६॥
अमावास्याव्यतीपातश्रवणाः सन्ति योगतः। तदार्द्धोदय आख्यातः कोटिसूर्य्यग्रहैः समः॥३७॥

तदनन्तर अगले दिन सादर दक्षिणा से ब्राह्मण को संतुष्ट करके महासमारोह से प्रतिमाओं का विसर्जन करके नाना मिष्ठान्न भोजन विप्रगण को कराये। इससे मानव अनायास समस्त पापपुञ्ज का अतिक्रमण करके पुत्र-पौत्र स्वजनगण के साथ अन्त में वैकुण्ठपति के चरणयुगल का लाभ करता है। तदनन्तर अग्रहायण मास की पूर्णमासी यदि मृगशिरानक्षत्र युक्त हो, तब उसे अत्यन्त पुण्यप्रद समयतीर्थ (कालतीर्थ) कहते हैं। मुख्यचान्द्रपौष मास तथा गौणचन्द्र माघ मास में यदि अमावस्या श्रवण नक्षत्र, रविवार तथा व्यतीपात योग युक्त हो, तब उसे अर्द्धोदय योग कहते हैं। यह काल करोड़ों सूर्यग्रहण के समान पुण्यप्रद है।।३३-३७।।

स्नानदानादि कुर्वीत श्राद्धञ्च तीर्थ उत्तमे। नातः परतरः कालो वर्त्तते कालतीर्थतः॥३८॥
अयं सुदुर्लभः कालो मन्तव्यःपुण्यलिप्सुभिः। ततश्च फाल्गुणे मासि द्वादशी धवला शुभा॥३९॥
गोविन्दः पूज्यते तत्र गोविन्दद्वादशीति सा। अत्र संपूजयेद्देवं गोविन्दं परमेश्वरम्॥४०॥

देवदेवीभिराराध्यं नैवेद्यपुष्पचन्दनैः। पूर्वेऽह्नि संयमी भूत्वा गोविन्दनाम संस्मरन्॥४१॥
चिनुयात् द्वादशीघस्त्रैः पूर्वाह्नव्यापके सति। पुष्पाणि द्वादशभेदानि तुलसीच्छदनानि च॥४२॥
दद्यात् द्वादशनैवेद्यं भोजयेत् द्वादश द्विजान्। स्वयञ्च फलमूलादि भुञ्जीत सुसमाहितः॥४३॥
इन्द्रञ्च सुरभिञ्चैव तथा गोवर्द्धनं गिरिम्। गोगोपगोपीश्च मुदा पूजयेच्चन्दनादिभिः॥४४॥

इस पुण्यकाल में स्नान-दानादि सत्कर्म तथा उत्तम तीर्थ में श्राद्ध करें। इसकी अपेक्षा पुण्यप्रद कोई भी कालतीर्थ नहीं है। पुण्यकामी मानव इसे सुदुर्लभ अवसर समझें। तदनन्तर फाल्गुन शुक्ला द्वादशी को गोविन्द द्वादशी कहा जाता है। मानव इसके एक दिन पूर्व गोविन्द नाम स्मरण करें तथा संयत रहकर पूर्वाह्नव्यापी द्वादशी के दिन १२ तरह के पुष्प तथा तुलसी लायें। इसके द्वारा तथा चन्दनादि सामग्री से १२ नैवेद्य अर्पित करके भगवान् गोविन्द की अर्चना करें। तदनन्तर समाहित चित्त से इन्द्र, सुरभि गौ, गिरि गोवर्धन, गौ तथा गोप-गोपीगण का पूजन करके १२ ब्राह्मणों को भोजन-दक्षिणा से तृप्त करें। स्वयं फलमूल खाकर रहें।।३८-४४।।

सख्यावूचतुः

मातर्देवि शिवे कस्माद्विधिरेष तु फाल्गुणे। युज्यते भाद्रमासेऽसौ न कथं विधिरुत्तमः॥४५॥

सखियां कहती हैं—हे माता! हे शाङ्करी देवी! यह क्या कारण है कि भाद्र मास में यह विधान न करके फाल्गुन मास में यह विधान किया गया।।४५।।

देव्युवाच

पुराभिषिक्त इन्द्रेण गोविन्दो मासि भाद्रके। गोपगोपीगवां मध्ये सर्वदेवेश्वरः स्वयम्॥४६॥
समुद्रस्तत्समाकर्ण्य पयोभिः सुरभेर्हरिम्। अभिषिक्तं महात्मानं चिन्तयामास सागरः॥४७॥
मम तोयैः कथं देवो हरिः श्रीमान्सनातनः। इति संचिन्त्य जलधिर्विप्ररूपेण भूतलम्।
बभ्रामान्विष्य भाद्रीयां द्वादशीं यत्नवान् परः॥४८॥
सप्तमे मास्यनुप्राप्ते फाल्गुणे नाम तां तिथिम्। अप्राप्नुवन् रुषाविष्टो जगाद द्वादशीं प्रति॥४९॥

देवी कहती हैं—पूर्वकाल में भाद्रमास की द्वादशी तिथि के दिन देवदेवेश्वर भगवान् हरि इन्द्र द्वारा सुरभि के दुग्ध द्वारा अभिषिक्त हुये। यह सुनकर सागर मन ही मन यह चिन्तन करने लगा। 'मैं कैसे इस तिथि के दिन जगत्पति गोविन्द को अपने द्वारा अभिषिक्त कर सकूंगा? इन्द्र ने सुरभि का दुग्ध सार्थक कर दिया। जो भी हो! मैं भी इस दिन परमात्मा गोविन्द का अभिषेक करूंगा। उन श्रीमान् सनातन का अभिषेक अपने जल से कब कर सकूंगा? यह विचार करता हुआ सागर पृथिवी पर आया। वह भाद्र द्वादशी का अन्वेषण करता विप्ररूपेण पृथिवी पर भ्रमण करने लगा। तदनन्तर एक बार भाद्रमास से सातवें मास फाल्गुन की द्वादशी का संधान पाकर वह क्रोधित हो गया।।४५-४९।।

समुद्र उवाच

तिथे द्वादशि रे मूर्खे किं न जानासि मामपि। त्वद्दिने धरणीं सर्वां प्लावये प्रतिवत्सरम्।
यथा त्वयि न पूजा स्यात् हरेः सर्वेश्वरस्य हि॥५०॥

एवं यदा तु चुक्रोध समुद्रो द्वादशीं प्रति। तदा प्रादुरभूद्देवी द्वादशी सभया शुभा॥५१॥
गौराङ्गी पीतवसना द्विभुजा श्यामपृष्ठिका। उवाच वचनं किञ्चिद्विनयेन जलेश्वरम्॥५२॥

सागर कहता है—हे मूर्ख द्वादशी! क्या तुम मुझे नहीं जानती? मैं तुम्हारी द्वादशी तिथि के दिन समस्त पृथिवी को प्रतिवर्ष जल से प्लावित कर दूंगा। यदि तुम सर्वेश्वर हरि की पूजा का अवसर नहीं दोगी।" जब समुद्र ने द्वादशी हेतु इस कठोर वचन का प्रयोग किया, तब वे शुभा द्वादशी देवी भय भीतावस्था में वहां प्रकट हो गयीं। वे गौरवर्णा पीतवस्त्रधारिणी द्विभुजा तथा श्यामपृष्ठिका थीं। उन्होंने विनयपूर्वक जलेश्वर से कहा।।५०-५२।।

द्वादश्युवाच

अह भाद्रपदीया तु फाल्गुणे मास्युपस्थिता। कल्पयित्वा फाल्गुणीं तु मामेव त्वं इतं कुरु॥५३॥

द्वादशी कहती हैं—हे सरिताओं के पति! मैं भाद्रद्वादशी तथा फाल्गुन द्वादशी के रूप में एक ही प्रकार से उपस्थित रहती हूं। अतः आप इसी फाल्गुनी द्वादशी के ही दिन अपना अभीष्ट व्रत-पूजा प्रभृति का अनुष्ठा करें।।५३।।

समुद्र उवाच

विभेषि द्वादशि कथं भाद्रीया फाल्गुण सिता।
त्वय्येव फाल्गुणीयायां श्रीपतिः पूर्वमेव च।
अभिषिक्तः किलेन्द्रेण कश्यपादितिसम्भवः॥५४॥
योऽभिषिक्तः किलेन्द्रेण गृहीतयज्ञसूत्रकः। छलयित्वा बलिं सर्वं ददाविन्द्राय वामनः॥५५॥
तस्मात् त्वयि पुरा भूतो गोविन्दोऽदितिनन्दनः। त्वय्यहं पूजयिष्यामि गोविन्दं यदुनन्दनम्॥५६॥
तामभिक्रम्य भद्रीयां अद्यारभ्य तिथे त्वयि।
गोविन्दं पूजयिष्यन्ति माकृथाश्चित्तकुञ्चनम्॥५७॥
कथामेताञ्च शृणुयात् त्रयोदश्यां पुनः पुमान्।
ब्राह्मणान् भोजयेद्भूयो भोजनञ्च स्वयञ्चरेत्॥५८॥

समुद्र कहता है—हे द्वादशी! तुम क्यों भयभीत हो रही हो! मैं जानता हूं कि तुम भाद्रपद तथा फाल्गुन में एक ही प्रकार से आती हो। पूर्व में इसी फाल्गुन द्वादशी तिथि के समय कश्यप तथा अदिति से उत्पन्न प्रभु श्रीपति ने देवराज द्वारा अभिषिक्त होकर यज्ञोपवीत धारण किया था। तदनन्तर वामनरूपी उन श्रीहरि ने बलिराज के साथ छल करके पुनः त्रैलोक्य का राज्य इन्द्र को प्रदान किया था। अतः मैं आज इस तुम्हारी द्वादशी को ही यदुनन्दन की अर्चना करूंगा। आज से सभी लोग भाद्र द्वादशी के स्थान पर फाल्गुनी द्वादशी के दिन श्रीहरि की अर्चना करके त्रयोदशी तिथि के दिन यह विवरण सुनकर विप्रगण को भोजन कराने के पश्चात् स्वयं भी भोजन करेंगे।।५४-५८।।

देव्युवाच

इत्युक्त्वा सा द्वादशी च प्रणनाम जलेश्वरम्। तदा प्रादुरभूद्देवो दैवकीनन्दनो हरिः॥५९॥
समुद्रश्चाद्भुतं दृष्ट्वा वाञ्छितार्थप्रपूरकम्। रोमाञ्चितसमग्राङ्गो गोविन्दमभ्यसेचयत्॥६०॥

तदा दिशासु सर्वासु बभौ शङ्खजयध्वनिः। अभिषिक्तो ययौ कृष्णः सेन्द्रैः सुरगणैः स्तुतः।
समुद्रश्च कृतार्थोऽगात् स्वस्थानं देवपूजितः॥६१॥

इत्येतत् कथितं सख्यौ कालतीर्थं हि द्वादशी। व्रतमेतद्विधेयन्तु स्त्रीपुंसामनुवार्षिकम्॥६२॥

देवी कहती हैं—जलेश्वर द्वारा यह कहे जाने पर द्वादशी ने उनको प्रणाम किया। इस अवसर पर सागर ने अभीष्टदायक अद्भुद् आकार वाले देव देवकीनन्दन को वहां प्रकट देखकर रोमांचित अवस्था में उनका अभिषेक सम्पन्न किया। तब सभी दिशाओं से शंखनिनाद तथा जयध्वनि उठने लगी। भगवान् के इस प्रकार से अभिषिक्त हो जाने से सरित्पति ने स्वयं को कृतार्थ माना तथा अपने स्थान लौट गये। हे सखियों! मैंने इस प्रकार से कालतीर्थ का वर्णन किया। स्त्री-पुरुष सभी को प्रतिवर्ष यह व्रत सम्पन्न करना चाहिये।।५९-६२।।

शुद्धकाले समारभ्य द्वादशाब्देषु या सिता। फाल्गुणे मासि भवति द्वादशी द्वादशीश्वरम्॥६३॥

तस्यां संपूजद्देवं नरा नार्य्यश्च भक्तितः। समापयेत् शुद्धकाले जुहुयात् द्वादशाहुतीः॥६४॥

भोजयेद्द्वादश द्रव्यं सुमिष्टं द्वादश द्विजान्। द्वादशाक्षरमन्त्रस्य द्वादशापि स्तकांश्चरेत्॥६५॥

स्त्री अथवा पुरुष शुद्ध काल से यह व्रत प्रारम्भ करके १२ वर्ष पर्यन्त प्रतिवर्ष फाल्गुन मास की शुक्ला द्वादशी के दिन भक्तियुक्त हो भगवान् की पूजा करे तथा बारहवें वर्ष शुद्धकाल में इसकी समाप्ति करे। तदनन्तर १२ आहुति प्रदान करके १२ ब्राह्मणों को १२ प्रकार के मिष्ठान का भोजन करायें तथा १२ बार द्वादशाक्षर मंत्र जप करके इस मंत्रात्मक स्तव का १२ पाठ करना चाहिये।।६३-६५।।

ॐकाररूपजगतामाद्य ब्रह्मस्वरूपक। अनन्तजगदाधार गदाधर नमस्तु ते॥६६॥

तेजःप्रसादरूपाय तेजोरूपाय तेजसे। तेजः प्रदीप्तलोकाय नमस्ते तेजसात्मने॥६७॥

न क्षीणस्त्वं न क्षरसि नारायण नरोत्तम। नवनीरधरश्याम नमस्ते नलिनेक्षण॥६८॥

मोक्षसेवितपादाब्ज मोहव्यूहविमोहन। मोदेनात्मस्वरूपेण मोदिताय नमोऽस्तु ते॥६९॥

भजतां भवनाशाय भव्योदधिशयाय च। भवाय भवभक्ताय ममस्ते भवलक्षणः॥७०॥

गगनालक्षरूपाय गगनव्याप्तिकारिणे। गरिष्ठाय गरीशाय गहनाय नमोऽस्तु ते॥७१॥

वरिम्ने वरणार्थाय वन्दनीयप्रदाय च। वरबीजप्रबीजाय वरहन्त्रे नमोऽस्तु ते॥७२॥

तेजःप्रसादरूपाय तेजोरूपाय तेजसे। तेजःप्रदीप्तलोकाय नमस्ते तेजसात्मने॥७३॥

हे गदाधर! आप अनन्त तथा जगदाधार हैं तथा प्रणव एवं ब्रह्मरूप हैं, हे पद्मपलाशलोचन, हे नवघनश्याम, नरोत्तम! आप लक्ष्मीपति तथा अविनाशी हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं। हे प्रभो! आप भक्तों के समस्त अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं तथा ब्रह्मात्मक आनन्द में विभोर रहते हैं। मोक्षलक्ष्मी निरन्तर आपके चरणों की सेवा करती है। आपको प्रणाम! हे मंगलमय! मंगलप्रिय! आप सतत् मंगलमय उदधि में शयनात रहते हैं। जो आपका भजन करते हैं, आप उनका समस्त भय दूर कर देते हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं। हे देव! आप सबसे श्रेष्ठ तथा दुर्जेय हैं। आप आकाशव्यापी हैं। अथच आकाश आपको नहीं जान पाता! मैं आपको प्रणाम करता हूं। हे वरहस्त! आप सबके वरेण्य, वरणार्थ, वन्दनीय तथा सर्वप्रद, गरिष्ठ, गिरीश गहन हैं। आपको प्रणाम्! आप सबके वर बीजरूप हैं। आप वरहन्त्र हैं। आपको प्रणाम! हे तेजोमय! आपके तेज से ही समग्र भुवन प्रदीप्त होता है। आप तेज तथा प्रसाद रूप हैं। आपको प्रणाम!।।६६-७३।।

वाणीनाथाय बालाय वायुरूपाय वाहिने। बान्धवाय बलद्बाहुबलयुक्ताय ते नमः॥७४॥
सुखाय सुखगम्याय सुदक्षाय सुखात्मने। सुन्दरत्वसमुद्रैकदेशलेशाय ते नमः॥७५॥
देश्यदेशकरूपाय देश्याय देशकाय च। देवत्रिकोटिदेहाय देवदेहाय ते नमः॥७६॥
वामदेवस्वरूपाय वामनाय नमो नमः। वाराहतनवे बालवपुषे ते नमो नमः॥७७॥
यज्ञयज्ञाय यज्ञाय यजमानाय ते नमः। यजुरादिविदे यज्ञयष्टव्याय नमो नमः॥७८॥

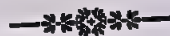
हे वाणीकान्त! आप नवकिशोर मूर्त्तिरूप हैं। आप वायुरूप से सदा प्रवहमान रहते हैं। आपको प्रणाम! आप बान्धव हैं, आप बलद्बाहु, बलयुक्त हैं। आपका बाहुबल असीम हैं। हे महात्मन्! आप सुखमय, सुखगम्य, सुख देने वाले, सुन्दर हैं। सातों समुद्र आपके अंशीभूत हैं। आपको प्रणाम! आप ही देश-देशक रूप, देशक हैं। आप देवस्वरूप हैं। आप तीन करोड़ देवताओं के देवता, देव देह हैं। आपको प्रणाम! आप वामदेव रूप हैं। आप वामन को प्रणाम! आप ने वराह मूर्त्ति धारण किया था। आपका शरीर बालक शरीर के समान है। आपको प्रणाम! आप ही यज्ञ, यजमान तथा यजुरादि चतुर्वेद के ज्ञाता हैं। याज्ञिक लोग यज्ञस्थल में आपकी ही पूजा करते हैं। अतएव मैं आपको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं।।७४-७८।।

द्वादश स्तव एकोऽसौ जप्तव्यो गेय उच्यते। सर्ववेदार्थसारोऽयं ब्रह्मलोकेऽपि गीयते॥७९॥
भगवन्तं वासुदेवं स्तवेनानेन चान्वहम्। स्तुत्वा नत्वा फाल्गुनस्य द्वादश्यान्तु विशेषतः।
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो वैष्णवीमाप्नुते गतिम्॥८०॥

यह द्वादशात्मक तथा मंत्रात्मक स्तव सर्वश्रेष्ठ स्तोत्र हैं। इसका जप तथा पाठ करना सबका ही कर्तव्य होना चाहिये। यह समस्त वेदों का सार है। अतः ब्रह्मलोक में भी इसका सस्वर पाठ किया जाता है। जो व्यक्ति प्रतिदिन, विशेष करके फाल्गुनी द्वादशी के दिन इस स्तुति से भगवान् वासुदेव का स्तव करके प्रणत होता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुपद प्राप्त करता है।।७९-८०।।

कृत्वा चैवं गुरून्नत्वा दत्त्वा विपुलदक्षिणाम्। सर्वाभीष्टं लभेन्मर्त्यो गोविन्दद्वादशीव्रतात्॥८१॥
ततश्च फाल्गुनी पौर्णमासी मन्वन्तरा मता। चैत्रमासस्य कृष्णा या तिथिर्नाम त्रयोदशी॥८२॥
वारुणेन समायुक्ता वारुणीति च गीयते। त्रिधा सा विहिता सद्भिर्महा चैव महामहा॥८३॥
शनिवारस्य योगेन सा महावारुणी मता। महामहेति विख्याता शुभयोगश्च तत्र चेत्॥८४॥
सहस्रैः शतसहस्रैर्कोटिभिश्च क्रमादिमाः। सूर्य्यग्रहफलं सर्वा दुर्लभा ददते सखि॥
ततः शुक्ला तृतीया च ख्याता मन्वन्तरा शुभा॥८५॥
एवं हि तीर्थानि मयोदितानि मासेषु सर्वेषु विशिष्य सख्यौ।
आत्मोषयुक्तानि नृणां हि तीर्थान्युपाहरे तानि निबोधतश्च॥८६॥

।इति बृहद्धर्मपुराणे व्यासजाबालिसम्वादे कालतीर्थकथनं त्रयोविंशतितमोऽध्यायः।।



जो मनुष्य उक्त द्वादशी व्रतानुष्ठान सम्पन्न करके गुरु को प्रणाम करने के पश्चात् ब्राह्मणों को प्रभूत दक्षिणा

प्रदान करता है, वह सर्वपापविनिर्मुक्त होकर अभीष्ट प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर फाल्गुनी पूर्णमासी है, जो मन्वन्तरा कही गयी है। तत्पश्चात् चैत्र कृष्णात्रयोदशी यदि शतभिषा नक्षत्र युक्त हो, तब उसे वारुणी कहते हैं। इसमें यदि शनिवार का योग हो जाये, तब पण्डितगण इसे महावारुणी कहते हैं। अधिक शुभयोग के कारण इसे महामहावारुणी रूप से कहा गया है। इस प्रकार वारुणी, महावारुणी एवं महामहावारुणी रूप से यह तीन प्रकार की है। हे सखियों! ये तीनों वारुणी दुर्लभ हैं। वारुणी के दिन स्नान से १०० सूर्यग्रहण फल मिलता है। महावारुणी स्नान द्वारा एक लाख गुणित तथा महामहावारुणी में स्नान द्वारा कोटि गुणित सूर्यग्रहण फल की प्राप्ति होती है। तदनन्तर शुक्ला तृतीया मन्वन्तरा है। हे सखियों! मैंने कालतीर्थ का यह विशेष विवरण प्रस्तुत किया है। अब पुनः मानवगण के लिये हितप्रद आत्मोपयुक्त तीर्थ का उल्लेख करता हूं। उसे सुनो।।८१-८६।।

।।त्रयोविंश अध्याय समाप्त।।



चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

जन्मदिवस आदि कालतीर्थ वर्णन

देव्युवाच

स्वजन्मदिवसश्चैव पित्रोर्मरणवासरः।
दृश्यते च गुरुर्यत्र यदा तीर्थश्च लभ्यते।
गङ्गादेशे सर्वकालस्तीर्थमेवोच्यते परम्।
पुत्रादिसंस्कारदिनं कालतीर्थमुदाहृतम्॥१॥२॥
यदा च लभ्यते साधुरतिथिश्च तथैव सः।
पुराणपाठकालश्च पुराणारम्भकस्तथा॥
यदारम्भसमाप्तिश्च स कालस्तीर्थमुच्यते।
सत्कर्मवासना यत्र स कालस्तीर्थ उत्तमः॥३॥४॥
स्वोपयुक्तानि तीर्थानि कालरूपाणि वै सखि।
अमावास्या सोमवारे आदित्याहे च सप्तमी॥
चतुर्थ्यङ्गारवारे च अष्टमी गुरुवासरे।
सूर्यग्रहसमा एते कालाः सद्भिः प्रपूजिताः॥५॥६॥
अष्टमी मङ्गलाहे च तथैव च चतुर्दशी। कालतीर्थे समुद्दिष्टे चन्द्रग्रहशतोपमे॥७॥

देवी कहती हैं—अपना जन्मदिन, पिता-माता का मृत्यु दिन तथा जब गुरुदर्शन हो तथा जब पुत्रों का उपनयनादि हो, जब अतिथि तथा साधु समागम हो, जब पुराण का अध्ययन या आरंभ किंवा समापन हो, जब पुण्यकर्म

की इच्छा मन में जागे, वह सब कालतीर्थ है। जिस देश में भगवती भागीरथी विद्यमान हैं, वह सदातीर्थ है। हे सखी! सोमवारी अमावस्या, रविवारी सप्तमी, मंगलवासरी चतुर्थी, तथा बृहस्पतिवारी अष्टमी का सूर्यग्रहणवत् फल होता है। अतः साधुगण सदा इन कालतीर्थों की कामना करते हैं। मंगलवासरी अष्टमी, चतुर्दशी का फल चन्द्रग्रहण जैसा होता है।।१-७।।

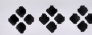
गुरुवारे यदा पुष्या केवला वाथ सम्भवेत्। तत्र स्नानादि गङ्गायां त्रिकोटिकुलमुद्धरेत्।।८।।
दिनक्षये व्यतीपातो रवौ तत्संक्रमोऽपि च। सत्कर्मणां समारम्भे दिवसाः साधवस्त्विमे।।९।।
मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे द्वादश्यां हरिरीश्वरः। वरनामासुरवरमवधील्लोकतुष्टये।।१०।।
वराहद्वादशी तेन वराप्रीतिदा परा। बुधाष्टमी बुधे माघे बुधजन्मदिनं मतम्।।११।।
भाद्रे चतुर्दशी शुक्ला तत्रानन्तः प्रपूज्यते। कार्त्तिके कृत्तिकायोगात् कार्त्तिकेयः प्रपूज्यते।।१२।।
इत्यादिनानातिथयः सद्व्रतानि च यानि वै।
तानि चोक्तानि तीर्थानि किमन्यत् कथयामि ते।।१३।।

।।इति बृहद्धर्मपुराणे कालतीर्थानि चतुर्विंशतितमोऽध्यायः।।



बृहस्पति को जब पुष्यनक्षत्र पड़े, तब उस दिन गंगा स्नानादि के द्वारा तीन कोटि कुल का उद्धार हो जाता है। शुभ कार्य आरंभ करने में अमावस्या, व्यतीपातयोग, रविवार तथा रविसंक्रान्ति अत्युत्तम होती है। अग्रहायण मास की शुक्लाद्वादशी के दिन भगवान् विष्णु ने त्रिलोक के संतोषार्थ वराह असुर का संहार किया था। इस तिथि को वराह द्वादशी कहते हैं। यह वराहदेव को अत्यन्त प्रिय तिथि है। यह सत्कार्य हेतु भी शुभ है। माघमास की शुक्लाष्टमी बुधवासरी हो, तब वह बुधग्रह का जन्म दिवस कहा गया है। भाद्रमास की शुक्लाचतुर्दशी अनन्तदेव की तिथि है। कार्त्तिक मास में कृत्तिकायोग होने पर भगवान् कार्त्तिकेय की पूजा की जाये। इन सब तिथियों पर सद्व्रत का अनुष्ठान होता है। अतः इन सब को तीर्थ कहते हैं। अब क्या सुनना है, बताओ।।८-१३।।

।।चतुर्विंश अध्याय समाप्त।।



पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

पुराणादि वर्णन, उपपुराण, रामायणादि उत्पत्ति वर्णन

सख्यावूचतुः

मातर्दुर्गे महेशानि पुराणं यत् त्वयोदितम्। किं तद्वस्तु मतं किम्बा मूलं तस्य च मे वद।।१।।

सखीगण कहती हैं—हे मातः, दुर्गे! हे महेशानि! आपने पुराणों का उल्लेख किया था। उन पुराणों का क्या मत है, वे कैसे समुद्भूत हैं?।।१।।

देव्युवाच

अथेदं शृणुतं सख्यौ (पुरा ब्रह्मविनिर्मितम्। हृदा यद्रक्षितं यत्नात् भवतीभ्यां प्रकाशये॥२॥
भवत्यौ खलु शुश्रुषू भक्तिमत्यौ सदामती। शृणुतं शृणुतं सख्यौ गोपनीयं परं त्विदम्)॥३॥
पुरा ब्रह्मा सिसृक्षुर्वै सृष्ट्वा नव प्रजापतीन्। अन्धकारमयं सर्वं बुबुधे परमाद्भुतम्॥४॥
सह मूकैः स्वयं मूके चिन्तापन्ने प्रजापतौ। तपेति वर्णयुगल माकाशादुदभून्महत्॥५॥
स शब्दः सर्वतो व्याप्तो रवेः किरणवत् सखि। चक्रे ज्योतिर्मयं सर्वं ब्रह्मा निर्वृतिमाप च।
मुखानि लेभे चत्वारि हठाद्दिक्षु दिदृक्षया॥६॥
ततो ब्रह्मा ससर्जादौ वाच एव सुनिर्मलाः। ससर्ज्ज चतुरो वेदान् संहिता विविधा अपि॥७॥

देवी कहती हैं—हे सखियों! मैं इस अति गुप्त विषय को कहती हूं, जो तुमने पूछा है। पूर्व में इनकी रचना ब्रह्मा ने करके इनका रक्षण हृदय में किया था। तुम लोग मेरे प्रति अत्यन्त भक्तिमती हो तथा नितान्त सुनने की इच्छा से युक्त हो। इसलिये मैं इसको तुम्हारे समक्ष प्रकाशित करता हूं। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने जगत् सृष्टि के लिये इच्छुक होकर सर्वप्रथम ९ प्रजापतिगण की सृष्टि किया। तदनन्तर ब्रह्मा समस्त विश्व को अंधकारमय देखकर विस्मयान्वित होकर वाक्शक्ति विहीन प्रजापतियों के साथ किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर चिन्तित हो गये। तब सहसा गगनमण्डल से 'तप' यह वर्णद्वय उद्भुत हुआ। हे सखियों! तब यह शब्द सभी दिशाओं तथा विदिक् में व्याप्त हो गया। इसे देखकर ब्रह्मा चिन्ता से मुक्त हो गये। वे चतुर्दिक् देखने हेतु चार मुख से युक्त हो गये। तब उन्होंने सबसे पहले निर्मल वाक् तथा तदनन्तर ४ वेदों एवं विविध संहिता का सृजन किया।।२-७।।

वाचः पवित्रं परमं वाचः स्वादु परं मतम्। वाचोऽमृतं विषं वाचो वाचो माल्यं करा वचः॥८॥
वाचा पवित्रितं सर्वं पवित्रयति सर्वथा। वाचो वेदाः संहिताश्च वाचो मन्त्राः सुपुष्कलाः॥९॥
वाचः काव्यं पुराणानि वाचः सत्याः प्रतिष्ठिताः। जयः पराजयश्चैव वाचोभिः प्रतिपद्यते॥१०॥
अतो वाचः ससर्ज्जादौ ब्रह्मरूपा न संशयः। अकारादिस्वरांश्चैव ककारादिहलांस्तथा॥११॥
परस्परञ्च मिलितान् वर्णानेतान् समासृजत्। ततो भाषाश्च ससृजे पञ्चाशत् षट् च संख्यया॥१२॥
तज्ज्ञानाय च बालानां तत्तद्व्याकरणानि च। पदज्ञानं व्याकरणैरर्थज्ञानञ्च दर्शनैः॥१३॥
धर्मज्ञानं पुराणाद्यैर्मन्त्रैर्मुक्तिरुदाहृता। वागेव ब्रह्मरूपैव तां यो मिथ्यासु विक्षिपेत्॥१४॥
मिथ्यावादी स विज्ञेयो नारकी परमो मतः।
वरं प्राणाः परित्याज्याश्छेदोऽपेक्ष्यं शिरोऽपि वा॥१५॥
न तथापि वचो ब्रह्म मिथ्यावाच्यं विधीयते। न ह्यसत्यात्परोऽधर्म इति होवाच भूरियम्॥१६॥

वाक् ही परम पावन द्रव्य है। वह सबसे स्वादयुक्त, अमृत तथा विष दोनों है। यही सबको पवित्र करती है। वेद, संहिता, मंत्र, काव्य, पुराणादि समस्त वाक्मय है। धैर्य, गांभीर्य, शौर्य, जय, अजय-सभी वाक् से सम्पन्न होता है। तभी ब्रह्मा ने सबसे पहले ब्रह्मरूपी वाक् का सृजन करके अकारादि स्वर तथा ककारादि हलवर्ण का और स्वरवर्ण एवं हलवर्ण से मिलित वर्ण का सृजन करके ५६ संख्यक भाषा की तथा बालकों को भाषा ज्ञान कराने हेतु नाना प्रकार के व्याकरण की सृष्टि सम्पन्न किया। व्याकरण से पदज्ञान, दर्शन शास्त्र से अर्थज्ञान, पुराणादि शास्त्रों से धर्मज्ञान

तथा मंत्रों से मुक्तिलाभ होता है। हे सखिगण! वाक् ही ब्रह्म है। जो इसका मिथ्या व्यवहार करता है, वह नारकीय तथा मिथ्यावादी है। भले ही मस्तक छेदन अथवा जीवन त्याग करना पड़ जाये, तथापि वाक्‌रूपी ब्रह्म का मिथ्या व्यवहार न करें। स्वयं शास्त्र का वचन है कि असत्य जैसा अधर्म कुछ भी नहीं है।।८-१६।।

सत्यवाक्यं गुरोः सेवा द्वयमेतत् परं मतम्। एतद् यस्यास्ति किं तस्य तपोभिः परमैरपि॥१७॥
सत्यवाक्यानि सर्वाणि पुराणानि द्विधानि च। उपपूर्वं महत्पूर्वं पुराणं द्विविधं मतम्॥१८॥
अष्टादशैव सङ्ख्यातान्युभयानि सखिद्वय। सावधानेन चित्तेन शृणु तानि च वर्णये॥१९॥
आदौ ब्रह्मपुराणञ्च पाद्मं ब्रह्माण्डमेव च। वैष्णवं ब्रह्मवैवर्तं महाभागवतं तथा॥२०॥
भविष्यं गारुड़ं लैङ्गं शैवं वाराहमेव च। मार्कण्डेयं तथा स्कान्दं कौर्मं मात्स्यं पुराणकम्॥२१॥
तथाग्नेयञ्च वायव्यं पुराणानि महान्त्युत। तथाप्युपपुराणानि कथयामि मुदा शृणु॥२२॥

जो सतत् सत्य वचन प्रयोग करता है तथा गुरुसेवा करता है, उसे अन्य कठोर तपःश्चरण का कोई प्रयोजन नहीं है। हे सखियों! पुराण दो प्रकार के कहे गये हैं, यथापुराण तथा उपपुराण। सभी पुराण सत्य वाक्य युक्त हैं। दोनों प्रकार के पुराण १८-१८ हैं। उनके नाम कहता हूं। एकाग्रता से श्रवण करो। ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, विष्णुपुराण, भविष्यपुराण, गरुड़पुराण, लिंगपुराण, शिवपुराण, वराहपुराण, मार्कण्डेयपुराण, स्कन्दपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, अग्निपुराण, वायुपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, नृसिंहपुराण, श्रीमद्भागवत। ये १८ महापुराण हैं। अब उपपुराणों का नाम सुनो।।१७-२२।।

आदावादिपुराणं स्यादादित्याख्यं द्वितीयकम्। ततो वृहन्नारदीयं नारदीयं ततः परम्॥२३॥
नन्दिकेशपुराणञ्च वृहन्नन्दीश्वरं तथा। शाम्बं क्रियायोगसारं कालिकाह्वयमेव च॥२४॥
ततो धर्मपुराणञ्च विष्णुधर्मोत्तरं तथा। शिवधर्मं विष्णुधर्मं वामनं वारुणं तथा॥२५॥
नारसिंहं भार्गवञ्च वृहद्धर्मन्तथोत्तमम्। एतान्युपपुराणानि सख्यावष्टादशैव तु॥२६॥
अन्याश्च संहिताः सर्वा मारीचकापिलादयः। सर्वत्र धर्मकथने तुल्यसामर्थ्यमुच्यते॥२७॥
रामायणं महाकाव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम्। तन्मूलं सर्वकाव्यानामितिहासपुराणयोः॥२८॥
संहितानाञ्च सर्वासां मूलं रामायणं मतम्। तदेवादर्शमाराध्य वेदव्यासो हरेः कला॥२९॥
चक्रे महाभारताख्यमितिहासं पुरातनम्। तदेवादर्शमाराध्य पुराणान्यथ संहिताः॥३०॥
चकार भगवान् व्यासः स्वयमन्ये महर्षयः। सर्वत्र कीर्त्तितो धर्मो ह्यधर्मश्च निवर्त्तितः॥३१॥
शास्त्रेष्वेतेषु सततं यस्य बुद्धिः प्रवर्त्तते। ते न मुह्यन्ति नियतं त एव बहुवित्तमाः॥३२॥

आदिपुराण, आदित्यपुराण, वृहन्नारदीयपुराण, नारदीयपुराण, नन्दीश्वरपुराण, वृहन्नन्दिकेश्वरपुराण, साम्बपुराण, क्रियायोगसार, कालिकापुराण, धर्मपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, शिवधर्मपुराण, वामनपुराण, विष्णुधर्मपुराण, वामनपुराण, वारुणपुराण, नारसिंहपुराण, भार्गवपुराण, बृहद्धर्मपुराण। ये १८ उपपुराण हैं। इसके अतिरिक्त मारीच एवं कपिलादि बहुतर संहिता है। उक्त समस्त ग्रन्थों में धर्म का विषय समभावेन वर्णित हैं। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण महाकाव्य को रचा है। वह समस्त इतिहास, पुराण तथा संहिता का मूल है। महर्षि वेदव्यास ने इसी रामायण के ही आदर्श पर हरिगुणअलंकृत महाभारत नामक पुरातन इतिहास, समस्त पुराण तथा संहिता का प्रणयन किया तथा

अन्य महर्षियों ने भी ऐसी नाना पुस्तकों को लिखा। सभी ग्रन्थों में धर्म का गुणकीर्त्तन तथा अधर्म निन्दा वर्णित है। जिनकी बुद्धि इन शास्त्रों में प्रवृत्त रहती है। वे कभी मोहग्रस्त नहीं होते। वे बहुदर्शी कहे गये हैं।।२३-३२।।

रामायणं पुराणानि महाभारतमेव च। मन्वादिधर्मशास्त्राणि धर्मार्थानि सदैव हि।।३३।।
पठेत्समभ्यसेत्तानि पाठयेदाचरेदपि। स एव सखि संसारादुत्तीर्ण इति मन्यते।।३४।।
कार्यकार्यनिर्णयोऽत्र स्मृतिर्वै धर्मसंहिताः। इतिहासादिवाक्यन्तु तन्निदर्शनसाधकम्।।३५।।
पुरा प्रजापतिर्देवो वर्णभाषाः पृथग्विधाः। सृष्ट्वा धर्मान् ससर्ज्जैव वर्णाश्रविभागजान्।।३६।।
चिन्तयामास लोकानामुपकर्तुं प्रजापतिः। धर्मज्ञानञ्च लोकानां विना शास्त्रं कथं भवेत्।।३७।।
इति संचिन्तयित्वा च ब्रह्मा चिन्तयतां वरः। चक्रे व्याकरणान्यादौ पदज्ञानाय सर्वशः।।३८।।
ततः ससर्ज्ज छन्दांसि जगत्यनुष्टुवादयः। ततः सरस्वती जाता शुक्लवर्णाक्षरात्मिका।।३९।।
नानालङ्कारभूषाढ्या त्रिनेत्रा शशिमौलिनी। चतुर्भुजा सुधाविद्या मुद्राक्षगुणधारिणी।।४०।।

तां दृष्ट्वा चारुनयनां प्रजापतिरुवाच ह।
का त्वं समागता कस्मात् याचसे किं करोषि किं।
कस्ते पिता पतिः कस्ते तन्मे वद सुलोचने।।४१।।

हे सखी! जो व्यक्ति सदा रामायण, पुराण, महाभारत धर्मजनक मन्वादि धर्म शास्त्र पाठ, अभ्यास एवं पाठन करता है तथा तदनुरूप आचरण करता है, वही संसार से मुक्त होता है। धर्म संहिता तथा स्मृतियों में धर्म-अधर्म का निर्णय दिया है तथा इतिहास आदि वाक्य उसमें निदर्शन रूप है। पूर्वकाल में भगवान् प्रजापति ब्रह्मा ने पृथक्तः वर्ण तथा भाषा सृष्ट किया था। उन्होंने वर्णाश्रम विभाग के अनुसार अनेक प्रकार के नियम (धर्म का अर्थ यहां नियम व्यवस्था है) धर्म का सृजन करके जनगण के मंगलसाधन के लिये यह चिन्तन किया कि शास्त्र के अतिरिक्त प्राणीगण को किस प्रकार से धर्म ज्ञान हो? इसलिये उन्होंने पहले पदज्ञानार्थ नाना प्रकार के व्याकरण का सृजन करके, तत्पश्चात् जगती-अनुष्टुम आदि छन्दों को रचा। तत्पश्चात् वर्णात्मिका शुक्लवर्णा सरस्वती देवी आविर्भूत हो गयी। उनके मस्तक पर चन्द्रकला, सर्वाङ्ग में नाना अलंकार, ललाट में तृतीय नेत्र तथा चारों भुजाओं में क्रमशः सुधा-विद्या-मुद्रा तथा अक्षमाला विराजित थी। उन चारुनयना को देखकर प्रजापति ने उनसे प्रश्न किया—"हे सुलोचने! तुम कौन हो, कहां से आई हो, क्या चाहती हो? मुझे तुम्हारे लिये क्या करना है? तुम्हारे पिता, पति कौन है?।।३३-४१।।

सरस्वत्युवाच

आकाशप्रभवो ब्रह्मा वर्णब्रह्मेति यं विदुः। ततोऽहं प्रभवा जाता नाम्ना चाहं सरस्वती।।४२।।
त्वं मे भ्राता पुरोजातो यद्ब्रवीमि शृणुष्व तत्। स्थानं मे कल्पय विधे पतिं कर्म च पुष्कलम्।
सत्कीर्त्तये तवाहं हि जाता निर्मलरूपिणी।।४३।।

यह सुनकर सरस्वती ने कहा—"जो आकाश से उत्पन्न हैं, जिनको वर्णब्रह्म कहते हैं, मैंने उनसे ही जन्मलाभ किया है। मेरा नाम सरस्वती है। तुम मेरे अग्रज भाई हो। अतः मेरा कथन सुनो। हे विधि! अब मेरा वासस्थान तथा पति निश्चित करो। मैं निर्मलरूपा हूं। मैंने तुम्हारी कीर्त्ति हेतु जन्म लिया है।।४२-४३।।

विधिरुवाच

ममेष्टमिदमेवेह भद्रं जातं सुलोचने। मुखानि मम चत्वारि प्रियस्थानं तवेरितम्॥४४॥
तव प्रियो हि भगवान् हृदि मे वर्त्तते हरिः। भव त्वं कविताशक्तिः कवीनां वदनेषु ह॥४५॥
ते प्रकुर्वन्तु शास्त्राणि धर्मः सञ्चरतां ततः। अधिष्ठात्री देवता च पतिर्नारायणस्तव।
शास्त्राणामपि सर्वेषां विश्वात्मा विश्वभावनः॥४६॥

विधाता ब्रह्मा कहते हैं—"हे सुलोचने! मेरा भी यही मत है। मेरे चारमुख ही तुम्हारे निवास स्थान हों। मेरे हृदय में जो भगवान् हरि विराजित हैं, वे ही तुम्हारे पति हो। अब तुम कवित्व शक्ति रूपेण कविगण के मुख में निवास करो। वे विविध शास्त्रों की रचना करें। धर्म का प्रवर्त्तन हो। विश्वात्मा विश्वभावन तुम्हारे पति भगवान् नारायण समस्त शास्त्रों के अधिष्ठातृ देवता होंगे।।४४-४६।।

सरस्वत्युवाच

कथमेकास्म्यनेकेषां कवीनां कवितात्मिका। भवेयं नैव ते युक्तं यद्युक्तं तत्वदस्व मे॥४७॥

सरस्वती कहती हैं—यह ब्रह्मन्! मैं अकेली किस प्रकार से समस्त कविगण की कवि शक्ति हो सकूंगी? यह असंगत लग रहा है। जो संगत हो, वह कहें।।४७।।

विधिरुवाच

कृत्वा पर्यटनं देवि त्रिलोक्यां योग्यमुत्तमम्।
पश्य यत्र शुभा शक्तिः कविता त्वं भविष्यसि॥४८॥
अहञ्च वर्णनीयानां वर्णनीयमनुत्तमम्। विष्णोरादिचरित्रं हि सर्वधर्मनिदर्शनम्।
भविष्यत् कल्पयिष्यामि यत् त्वं तत्र वदिष्यसि॥४९॥
कवेस्तस्यैव कृपया कवयोऽन्येऽपि भाविनः॥५०॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवी! तुम स्वयं त्रैलोक्य का भ्रमण करके उपयुक्त व्यक्ति को खोज लेना, जिसके मुखमण्डल में तुम कवित्वशक्तिरूपा निवास कर सको। साथ ही मैं भी समस्त वर्ण्य विषयों में अग्रगण्य, निखिल धर्म के निदर्शनरूप अनुपम भविष्य में घटित होने वाले विष्णु चरित्र की जब कल्पना करूंगा, तब तुम भी उसे श्रवण करना। तुम जिसका आश्रय लोगी उसी आदिकवि की कृपाबल से अन्य लोग भी कवि कहे जायेंगे।।४८-५०।।

देव्युवाच

इत्युक्ता सा वचो देवी ब्रह्मणो मुखवासिनी। चचार जगतीमध्येऽन्वेषयन्ती स्वमीप्सितम्॥५१॥
सुरादीन् सुरलोकेषु नागादीन् विवरादिषु।
सर्वं सत्ययुगं कालं यापयामास हे सखि॥५२॥
ततस्त्रेतायुगस्यादौ पृथिव्यां भारते तदा। ददर्श मुनिमत्युग्रतपोज्ज्वलिततेजसम्॥५३॥
तमसायां नाम नद्यां स्नात्वा सन्तर्प्य वै पितॄन्। चरन्तं शिष्यसहितं वनशोभाकुतुहलात्॥५४॥

स्वर्णप्रभजटाभारशिरसं ताम्ररोचिषम्।
कुशहस्तं स्मितास्याब्जं व्याघ्रचर्म्माम्बरं मुनिम्।
उत्तुङ्गवक्षसं नाभिगाम्भीर्य्यशोभिमध्यकम्।
आजानुबाहुं सन्मत्तगजखेलगतिं कविम्॥
आगच्छद्भिश्च गच्छद्भिर्मुनिभिः प्रणतं सदा।
वाल्मीकिं विलसत्तत्त्वज्ञानं शोकादिवर्जितम्॥५५॥५६॥५७॥

देवी कहती हैं—ब्रह्मा का यह वाक्य सुनकर ब्रह्ममुखनिवासिनी देवी सरस्वती ने अपने ईप्सित व्यक्ति का अन्वेषण करने हेतु समस्त विश्वमण्डल का पर्यटन प्रारम्भ किया। हे सखियों! उन्होंने सप्त पातालपुर तथा सप्त देवपुर का अन्वेषण करने में समस्त सत्ययुग व्यतीत कर दिया। तब त्रेतायुग के प्रारम्भ में भारतवर्ष का पर्यटन करते हुए देखा कि तेजः से दीप्त महर्षि वाल्मीकि शिष्यगण से घिरे तमसानदी में स्नानोपरान्त देवतर्पण समापन करके वनशोभादर्शन से विस्मय विमुग्ध होकर विभिन्न पादपों से शोभित तमसा तीरवर्त्ती वन में विचरणशील हैं। उनके मस्तक पर स्वर्णप्रभ जटाजाल हैं। हाथ में कुश तथा कमर में व्याघ्रचर्म है। उनकी शरीरकान्ति ताम्रवर्ण है। मुख स्मित हास्ययुक्त हैं। वक्षःस्थल उन्नत तथा प्रशस्त है। नाभि-गंभीर (गहरी) है। बाहुद्वय घुटने तक लम्बाई वाले हैं तथा गति सम्वर्त्त नामक हाथी के समान है। सभी मुनिगण वहां आ-जा रहे हैं। सभी उनको प्रणाम कर रहे हैं। वे वाल्मीकि मुनि विमलसत्व तथा ज्ञानयुक्त हैं तथा शोकादि से रहित हैं।।५१-५७।।

विचरंस्तमसातीरे वने बहुलपादपे। वाल्मीकिस्तत्र ददृशे पक्षिणं व्याधमारितम्।
पक्षिणीं रुदतीं शब्दैः करुणैः सविलापनैः॥५८॥
तत् श्रुत्वा मुनिशार्दूलः शोकाविष्टो बभूव ह॥५९॥
शोकावेशो मुनेस्तस्य नोपयुक्तः कथञ्चन। शोकादिर्यस्य वै ज्ञानं महर्षेर्नावगाहते॥६०॥
अद्भुतस्तस्य वै शोक इति शिष्याश्च मेनिरे॥६१॥

वे इस प्रकार अनेक वृक्षों से युक्त तमसा तीरस्थ वन में विचरण कर रहे थे। वहां तभी उन्होंने पक्षी को व्याध द्वारा हत देखा। उसकी मादा उच्च तथा करुण स्वर से रो रही थी। उस रुदन स्वर को सुनकर वे मुनिशार्दूल शोक से सन्तप्त हो उठे। इस उच्चस्तर के अन्तःकरण में ऐसा शोकसंचार होना असंगत हैं। इन महर्षि का हृदय कभी भी शोकावेग ग्रस्त नहीं हुआ था। आज वे इस प्रकार क्यों शोकाक्रान्त हो गये। ऐसी विवेचना से उनके शिष्यगण आश्चर्य चकित थे।।५८-६१।।

आकाशप्रभवा देवी तं दृष्ट्वा शोकसंयुतम्। न शेके शोकमोहादेरयोग्यं तपसां निधिम्॥६२॥
कविताशक्तिरूपा च विद्यारूपा सरस्वती। तस्य शोकापनोदाय महर्षेर्मुखमाययौ॥६३॥
यदैव सा वचोदेवी वाल्मीकेर्मुखमारुहत्। तदैव स च वाल्मीकिर्व्याधं वक्ति दयान्वितः॥६४॥
मा निषाद प्रतिष्ठान्त्वमिदं पादं तदादिमम्। द्वितीयपादं पद्यस्य अगमः शाश्वतीः समाः॥६५॥
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमिति पादं तृतीयकम्। चतुर्थं तन्मुखाज्जातमवधीः काममोहितः॥६६॥
एवं पादाश्च चत्वारः श्लोक इत्येव कथ्यते॥६७॥

तब आकाश प्रभवा देवी सरस्वती पहले मोहादि से असम्पृक्त रहे इन तपोनिधि को इस स्थिति में देखकर उनकी शोकशान्ति हेतु कवित्वशक्तिरूपेण उनके मुख में प्रविष्ट हो गयीं। इनके प्रवेश करते ही महर्षि ने दयार्द्र होकर व्याध से कहा—"हे निषाद! तुमने काममोहित पक्षी के जोड़े में से एक की हत्या की है, अनन्त काल पर्यन्त तुमको शाश्वती शान्ति नहीं मिलेगी।" यह चार पद है, अतः श्लोक कहा गया। इस श्लोक के ४ पाद (चरण) हैं। प्रथम हैं "मा निषाद प्रतिष्ठान्त्व"। द्वितीय पाद हैं "अगमः शाश्वती समाः", तृतीय पाद है "यत् क्रौञ्चमिथुनादेक"। चतुर्थ पाद है "मवधीः काम मोहितः"।।६२-६७।।

यदा तु निर्म्मला देवी वाल्मीकेर्मुखमागता। जयध्वनिस्तदा भूयान् बभूव भुवनत्रये॥६८॥
श्रुत्वा श्लोकमिमं विप्रा जगुः परमयत्नतः। पक्षिशोकं परित्यज्य श्लोकमेनं मुनिर्जगौ॥६९॥
ततो ब्रह्मा समागत्य वाल्मीकिमिदमब्रवीत्। महर्षे ननु वल्मीके भगवन् भवतो मुने॥७०॥
अधितष्ठौ स्वयं देवी वाणी काव्यस्वरूपिणी। एतदर्थेऽवतारस्ते मया सम्पादितः पुरा॥७१॥
यत् त्वं वेदार्थवक्ता स्याः काव्यरूपेण सर्व्वशः। अहं सृष्टिकरो ब्रह्मा तत्र लीलाकरो हरिः॥७२॥
तद्वर्णनस्य कर्त्ता त्वं सृष्टिरक्षाकरो भव। लोकानां धर्म्मरूपैव विष्णोर्लीला मलापहा।
त्वया सा वर्णिता लोके परो धर्म्मः स्थिरो भवेत्॥७३॥

तब त्रिभुवन में सर्वत्र जयध्वनि होने लगी। विप्रगण यत्नतः इस श्लोक को पढ़ने लगे। मुनि ने पक्षी शोक का त्याग करके जब इस चारों चरण वाले श्लोक का उच्चारण किया, तभी भगवान् ब्रह्मा वहां आ गये। उन्होंने कहा "हे महर्षि! अब से कवित्वशक्तिरूपा देवी सरस्वती (वाणी), स्वयं तुम्हारे कण्ठ में अधिष्ठित रहेंगी। अब तुम काव्यमय रूप से वेदार्थ का प्रकाशन करो। मैंने पूर्व में इसीलिये तुमको भूतल पर भेजा था। हे मुनिवर! मैं सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा हूं। भगवान् हरि इस सृष्टि में लीला करते रहते हैं। अतः तुम नारायण देव की लीला का वर्णन करके सृष्टि की रक्षा करो। प्रभु हरि की लीला सर्वपापहारिणी है। तुम उन लीलामय की लीला का गायन करो। इससे प्राणीगण का धर्म स्थापित होगा।।६८-७३।।

मा चिन्तां कुरु वाल्मीके श्लोकरूपा सरस्वती।
त्वन्मुखे निर्म्मला जाता कविता ब्रह्मरूपिणी॥७४॥
चतुर्व्वर्गफलप्राप्तिः काव्यादेवोपजायते। महतः पूर्व्वसंस्कारात् काव्यशक्तिर्नृणां भवेत्।
सा चेन्नीचेऽपि कविता नावमान्या कदाचन॥७५॥
अपुण्यो यदि वार्थः स्यात् काव्यबद्धो भवेद् यदि।
तदापि पुण्यदः स स्यात् किं पुनः स्यात् सदर्थकः॥७६॥
श्लोक एको भवेत् काव्यं महाकाव्यं तदुच्चयः।
अत्र सर्गाश्च कर्त्तव्याः स्वल्पाः स्वल्पाः पृथक् पृथक्॥७७॥
नारदस्योपदेशाद्धि यमर्थं ज्ञातवानसि। तं वर्णय महाभाग स च सर्व्वार्थसञ्चयः॥७८॥

हे वाल्मीकि! चिन्ता न करो। कविता ब्रह्मरूपा भगवती वाणी तुम्हारे मुखमण्डल से श्लोकरूपा आविर्भूत हैं। एकमात्र काव्य ही चतुर्वर्ग फल प्राप्ति का निदान है। जो महात्मा मानव है। उनमें पूर्व संस्कार से ही कवित्वशक्ति

का उदय होता है। नीचमुख से प्रकाशित होने पर भी कविता की अवमानना न करें। काव्य असद् अर्थ वाला होकर भी पुण्यप्रद हैं। तब यदि सदर्थ युक्त काव्य रचना हो, तब तो कहना ही क्या! श्लोक ही काव्य है। तुम विपुल श्लोक वाली विष्णुलीला की रचना करो। वह महाकाव्य होगा। तुम इस काव्य को पृथक्-पृथक् सर्ग में विभक्त करना। मुनि नारद ने तुमसे जिस हरिलीला का वर्णन किया था, उसी का वर्णन करना। हे महाभाग! इसी से सवार्थ सिद्धि होगी।।७४-७८।।

कृते त्वया महाकाव्ये भाव्यर्थे रामचेष्टिते। लोकेष्वनुचरिष्यन्ति कवयोऽन्ये सदुक्तयः।।७९।।
त्वञ्च त्रिकालवृत्तिज्ञः सत्यवादी प्रतिष्ठितः। नाहं त्वत्तः पृथग्भूतः कविरन्यः प्रजापतिः।।८०।।
कविर्ब्रह्मा कविर्विष्णुः कविरेव स्वयं शिवः। कविर्व्वै धर्म्मवक्ता च कविः सर्व्वरसैकवित्।।८१।।
न कवेर्वर्णनं मिथ्या कविः सृष्टिकरः परः। सर्व्वोपर्य्येव पश्यन्ति कवयोऽन्ये न चैव हि।।८२।।

जब तुम भविष्य में घटित होने वाली रामलीला का प्रणयन महाकाव्यरूपेण करोगे, तब जगत् के अन्य कवि भी उसका अनुवर्त्तन करेंगे। तुमको भूत-भविष्य-वर्तमान, सभी का ज्ञान है तथा तुम सत्यवक्ता एवं प्रतिष्ठित ऋषि हो। मैं तुमसे अलग नहीं हूं। कवि तो दूसरा प्रजापति ही है। कवि ही ब्रह्मा, विष्णु तथा स्वयं शिव है। जगत् में कवि ही धर्मवक्ता तथा सभी रसों का ज्ञाता होता है। कविवर्णित विषय कभी भी मिथ्या नहीं होते। कवि ही दूसरा सृष्टिकर्त्ता है। कवि ही सर्वपेक्षा सूक्ष्मदर्शन करता है। ऐसा और कोई नहीं कर सकता।।७९-८२।।

कवीनां वशगा (देवा इन्द्रोपेन्द्रयमादयः। कवीनां वशगा) मर्त्त्याः कवयो देवगोचराः।।८३।।

किम्बहुना इन्द्र-उपेन्द्र-यम आदि सभी देवता तथा समस्त वर्ण वाले कवियों के वश में होते हैं। कविगण समस्त देवताओं का अवलोकन करते हैं।।८३।।

त्वं तु रामचरित्राणि मुने भावीनि वर्णय। तत्तु रामायणं नाम महाकाव्यं भविष्यति।।८४।।
वर्णयिष्यसि यद्यत् त्वं तत्तु विष्णुः करिष्यति।
विष्णोः कीर्त्तौ भवत्काव्यं स्थास्यत्याचन्द्रतारकम्।।८५।।
श्रीरामस्य परा मूर्त्तिः काव्यं रामायणं तव। शृणु तत्कवचं येन कर्त्ता रामायणं भवान्।।८६।।

हे मुनि! तुम जिस भावी रामचरित्र का वर्णन करोगे, वह रामायण नाम से प्रसिद्ध होगा। भगवान् विष्णु उसी प्रकार से लीला करेंगे, जिस प्रकार से तुम रामायण महाकाव्य में लीला का वर्णन करोगे। जब तक आकाश में चन्द्रमा तथा तारकगण दीप्तिमान् परिलक्षित होते रहेंगे, तब तक तुम्हारे द्वारा रचित रामायण से विश्वमण्डल में रामरूपी विष्णु के गुणगण की घोषणा होती रहेगी। तुम्हारे द्वारा प्रणीत रामायण महाकाव्य भगवान् रामचन्द्र की दिव्यमूर्त्ति रूप होगा। अब रामायण कवच सुनो।।८४-८६।।

ॐ नमोऽष्टादशतत्त्वरूपाय रामायणाय महामन्त्रस्वरूपाय मा निषादेति मूलं शिरोऽवतु अणुक्रमणिकावीजं मुखमवतु ऋष्यशृङ्गोपाख्यानमृषिर्जिह्वामवतु जानकीलाभोऽनुष्टुप्च्छन्दोऽवतु गलं केकय्याज्ञा देवता हृदयमवतु सीतालक्ष्मणानुगमनश्रीरामहर्षाः प्रमाणं जठरमवतु भगवद्भक्तिः शक्तिरवतु मे मध्यं शक्तिमान् धर्म्मो मुनीनां पालनं ममोरू रक्षतु मारीचवचनं प्रतिपालनमवतु पादौ सुग्रीवमैत्रमर्थोऽवतु स्तनौ निर्णयो हनूमच्चेष्टावतु बाहू

कर्त्ता सम्पातिपक्षोद्गमोऽवतु स्कन्धौ प्रयोजनं विभीषणराज्यं ग्रीवां ममावतु रावणबधः स्वरूपमवतु कर्णौ सीतोद्धारोलक्षणमवतु नासिके अवगम्य ममोघस्तरोऽवतु जीवात्मानं नयः काललक्ष्मणसम्बादोऽवतु नाभिं आचरणीयं श्रीरामादिधर्म्मं सर्व्वाङ्गं ममावतु इति रामायणकवचं रामायणवाचकाः पठेयुस्त्वं चेदं जप्त्वा रामायणं कुरु सप्तकाण्डं।

देव्युवाच

एवमुक्त्वा मुनिं ब्रह्मा ययौ स्वर्लोकमुत्तमं।
वाल्मीकिः कविताशक्तिं प्राप्य निर्वृतिमाप ह॥८७॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे रामायणोत्पत्तिः पञ्चविंशतितमोऽध्यायः।।



मैं १८ तत्वरूप महामन्त्रात्मक रामायण को प्रणाम करता हूं। "हे निषाद! अनन्त काल तुम्हारी गति नहीं होगी।" यह मूल मेरे शिर की रक्षा करे। अनुक्रमणिका बीजं मुखमण्डल की, ऋष्यशृंग उपाख्यानरूप ऋषि रसना की, अनुष्टुप्छन्दः गले की, कैकेयी आदेशरूप देवता हृदय की, सीता-लक्ष्मण अनुगमन तथा श्रीराम चन्द्र का हर्षरूप प्रमाण जठर की, (भक्ति बल से शक्ति उद्भूत होती है), यह मंत्र मेरे शरीर के मध्यभाग की, मुनिगणपालन ही शक्तिमान् धर्म है—यह मंत्र उरुद्वय की, मारीच वाक्य प्रतिपालन चरणयुग्म की, सुग्रीव के साथ मैत्री स्तनद्वय की, हनुमत्कार्य दोनों भुजा की, सम्पाति के पंख उगने वाली वार्त्ता स्कन्धों की, विभीषण को राजप्रदान रूप प्रयोजन ग्रीवा की, रावणवध विवरण कर्णद्वय की, सीतादेवी का उद्धार नासिका की, लयकाल में लक्ष्मण-काल संवाद नाभि की, श्रीरामादि धर्म सर्वदेह की रक्षा करें। जो रामायण पाठ करें वे पहले इस रामायण कवच को अवश्य पढ़ें। तुम भी इस कवच का जप करके सात काण्ड वाली रामायण रचना में तत्पर हो जाओ। भगवान् ब्रह्मा ने वाल्मीकि को यह आदेश देकर ब्रह्मलोक गमन किया। कवित्व लाभ करके महर्षि वाल्मीकि भी पूर्ण सुखी हो गये।।८७।।

।।पञ्चविंश अध्याय समाप्त।।



षड्विंशतितमोऽध्यायः

रामायण प्रशंसा

देव्युवाच

रामायणं महाकाव्यं कृतं वाल्मीकिना स्वयम्। तत्र रामचरित्रस्य व्यपदेशेन सर्व्वशः।
सर्व्वे धर्म्माः समुदिष्टा वर्णाश्रमविभागशः॥१॥
स्त्रीधर्म्मा राजधर्म्माश्च ब्रह्मधर्म्माश्च पुष्कलाः। वैश्यधर्म्माः शूद्रधर्म्मा धर्म्माश्च गृहिणां तथा॥२॥

नानादेवचरित्राणि शत्रुमित्रकथा अपि। इतिहासस्वरूपेण सर्व्वे धर्म्मा निरूपिताः॥३॥
एतत् पाद्यञ्च बोध्यञ्च स्मरणीयं शमिच्छता॥
यस्य गेहे समग्रं हि लिखितं वर्त्तते सखि।
न तत्र विपदः क्वापि नाधर्म्मस्तत्र सञ्चरेत्॥४॥५॥

देवी कहती हैं—मुनिप्रवर वाल्मीकि स्वयं रामायण महाकाव्य के रचनाकार थे। इस काव्य में रामचन्द्र के चरित्र वर्णन के रूप में वर्णाश्रम धर्म का भी सम्यक् वर्णन है। इसमें महर्षि वाल्मीकि ने स्त्री धर्म, राजधर्म, ब्रह्मधर्म का प्रभूत वर्णन किया है। इसमें वैश्यधर्म, शूद्रधर्म तथा गृहस्थधर्म आदि सभी धर्म, नाना देवचरित्र तथा शत्रुमित्रादि व्यवहार का निरूपण मिलता है। अपनी कुशल चाहने वाले मनुष्य इस ग्रन्थ का पाठ, स्मरण तथा अर्थज्ञान करें। यह सर्वतोभावेन करना चाहिये। हे सखियों! जिसके गृह में सम्पूर्ण रामायण लिखित रूप से रखी होती है, वहां किसी विपत्ति अथवा अधर्म का प्रकोप नहीं होता।।१-५।।

यस्य नास्ति गृहे सख्यौ काव्यं रामायणं शुभम्।
श्मशानभूमिस्तद्वाटी पितृदेवविवर्जिता॥६॥
सर्गं सर्गार्द्धमेकं वा श्लोकं श्लोकार्द्धमेव वा। अहोरात्रान्तरे यस्तु न स्मरेत् स नराधमः॥७॥
मानिषादेतिपद्यन्तु यो बालः पञ्चवर्षकः। अभ्यस्तं हृदये धत्ते स कविः स्यान्न संशयः॥८॥
अनावृष्टिर्महापीड़ा ग्रहपीड़ाप्रपीड़िताः। आदिकाण्डं पठेयुर्ये ते मुच्यन्ते ततो भयात्॥९॥

हे सखीगण! जहां कल्याणप्रद यह रामायण नहीं रखी जाती है, वहां पितर, देवता नहीं स्थित होते। वह गृह श्मशानवत् है। जो व्यक्ति समय के अभाव को कहकर समस्त दिन-रात में उक्त रामायण का एक सर्ग, किंवा आधा सर्ग अथवा मात्र एक श्लोक, किंवा आधा श्लोक भी स्मरण नहीं करता वह नितान्त अधम है। पांच वर्षीय बालक यदि "मा निषाद" वाला यही श्लोक कण्ठस्थ कर लेता है, तब वह वयस्क होकर निःसंदिग्ध रूपेण कवि हो जाता है। मानवगण अनावृष्टि, संकट, पीड़ा में, किंवा ग्रहपीड़ा पीड़ित होने पर यदि आदिकाण्ड का पाठ करते हैं, तब उनका यह सब जो भी भय है, वह नष्ट हो जाता है।।६-९।।

पुत्रजन्मविवाहादौ गुरुदर्शन एव च। पठेच्च शृणुयाच्चैव द्वितीयं काण्डमुत्तमम्॥१०॥
वने राजकुले वह्निजलपीड़ायुतो नरः। पठेदारण्यकं काण्डं शृणुयाद्वा स मङ्गली॥११॥
मित्रलाभे तथा नष्टद्रव्यस्य च गवेषणे। श्रुत्वा पठित्वा कैस्किन्ध्यं काण्डं तत्तत् फलं लभेत्॥१२॥
श्राद्धेषु देवकार्य्येषु पठेत् सुन्दरकाण्डकम्। शत्रोर्जये समुत्साहे जनवादे विगर्हिते।
लङ्काकाण्डं पठेत् किम्बा शृणुयात् स सुखी भवेत्॥१३॥
यः पठेत् शृणुयाद्वापि काण्डमभ्युदयोत्तरम्। आनन्दकार्य्ये यात्रायां स जयी परतोऽत्र च॥१४॥

पुत्र जन्म, विवाह, गुरुदर्शन दिवस पर मंगलार्थ अयोध्याकाण्ड का पाठ अथवा श्रवण करें। अरण्य में, राजद्वार में अग्निभय में, जलभय में किंवा रोगग्रस्त होने पर अरण्यकाण्ड पढ़े किंवा श्रवण करें। मित्रलाभार्थ किंवा नष्टद्रव्यप्राप्ति हेतु किंष्किन्धाकाण्ड का पाठ अथवा श्रवण अभीष्टप्रद है। मानव देवकार्य, पितृश्राद्ध के समय देवता अथवा पितरों की प्रसन्नता हेतु सुन्दरकाण्ड का पाठ करें। उत्साहपूर्ण कार्य तथा लोकनिन्दा, शत्रु भय के समय

लंकाकाण्ड के पाठ अथवा श्रवण से मानव सुखी हो जाता है। जो आनन्दजनक कार्य अथवा यात्रा काल में उत्तराकण्ड का पाठ अथवा श्रवण करता है, वह इस लोक में तथा परलोक में जय प्राप्त करता है।।१०-१४।।

मोक्षार्थी लभते मोक्षं भक्त्यर्थी भक्तिमेव च। ज्ञानार्थी लभते ज्ञानं ब्रह्मतत्त्वोपलम्भकम्।।१५।।

यः पठेत् शृणुयाद्वापि काव्यं सर्व्वमतः क्रमात्। फलं तस्य प्रबक्ष्यामि शृणुतं विजये जये।।१६।।

स्त्रीराजपितृगोहन्ता ब्रह्महा हेमचोरकः।
सुरापो गुरुभार्य्यागो देवद्वेषकरस्तथा।
नानापापरतो वापि तत्क्षणादेव मुच्यते।
त्रैलोक्यपावनः सोऽपि देवानामपि दुर्लभः।।१७।।१८।।

महर्षि वाल्मीकि रचित सम्पूर्ण रामायण के पाठ किंवा श्रवण द्वारा मोक्षार्थी को मोक्ष, भक्तिप्रार्थी को भक्ति तथा ज्ञानार्थी को परम ज्ञान प्राप्ति होती है। हे सखियों! जो व्यक्ति शुद्ध काल में ब्रह्मचर्य पालन के साथ समाहित होकर माघमास में आदिकाण्ड, फाल्गुन में अयोध्याकाण्ड, चैत्रमास में अरण्यकाण्ड, वैशाख मास में किष्किंधाकाण्ड, ज्येष्ठ मास में सुन्दरकाण्ड, आषाढ़ में लंकाकाण्ड तथा उत्तर काण्ड को पढ़ता है, अर्थात् क्रमशः पूर्ण रामायण पाठ किंवा श्रवण सम्पन्न करता है, वह स्त्रीहत्या, राजहत्या, गोहत्या, पितृहत्या, ब्रह्महत्या, सुवर्ण चोरी, मद्यपीना, गुरुपत्निगमन, देवद्वेष तथा ऐसे नाना पापों से ग्रस्त होकर भी सर्वपाप रहित हो जाता है। उस व्यक्ति से त्रिभुवन परिपूत हो जाता है। देवगण उसकी प्रार्थना करते हैं।।१५-१८।।

यत्र रामायणस्यास्य प्रस्तावः खलु सम्भवेत्। तत्र सर्व्वेऽधितिष्ठन्ति तीर्थानि पितरः सुराः।।१९।।

रामायणस्य प्रस्तावे योऽन्यं प्रस्तावमाचरेत्।
सर्व्वपापाश्रयः स स्यात् मत्स्याशी सर्व्वभुग्यथा।।२०।।

रामायणस्य प्रस्तावे तत्क्षणादेव यस्य हि। न नश्यन्ति शोकदुःखपरीतापाः स वञ्चितः।।२१।।

आश्विने तु शारदीयमहापूजादिनेषु हि।
पठेद्यो रामचरितं चारु वाल्मीकिना कृतं।।
तस्य देवी मुक्तिदात्री ब्रह्मविष्ण्वादिवन्दिता।
प्रसीददति न सन्देहः सर्व्वाभीष्टफलप्रदा।।२२।।२३।।
श्रुत्वा पठित्वा काव्यन्तु वित्तिशाठ्यविवर्जितः।
दक्षिणां विपुलां दद्यात् आत्मदारसुतादिकाम्।।२४।।

इति वां कथितं सख्यौ कियद्रामायणोचितम्। रामायणगुणान्वक्तुं शक्तो नाहमशेषतः।

परमा दुर्लभा मुक्तिः शुश्रूषोर्यस्य किङ्करी।।२५।।

।।इति श्रीबृहद्धर्मपुराणे रामायणोत्कीर्त्तनं षड्विंशतितमोऽध्यायः।।



हे सखियों! जहां रामायण पाठ किया जाता है, वहां समस्त तीर्थ, पितृगण तथा देवता स्थिर रहते हैं। जो कोई

रामायण पाठ काल के प्रस्ताव काल में अन्य किसी विषय का प्रस्ताव रखता है, वह मानव सर्वप्राणी भोजन के पाप को भोगता है। जैसे एक मात्र भोजन के समय मत्स्य खाने वाला सर्वप्राणी भोजन का पापभागी होता है। यह भी वही बात है। रामायण पाठ के प्रस्ताव मात्र से जिनका समस्त शोक-दुःख-परिताप नहीं मिटता, वे परमेश्वर के यहां से भी वंचित हैं। आश्विन मास की शारदीय महापूजा काल में जो व्यक्ति वाल्मीकि रामायण में से मनोहर रामचरित का पाठ करता है उसके प्रति ब्रह्मादि देवगण से वन्दिता, सर्वअभीष्टप्रदा, मुक्तिदायिनी देवी भगवती परम प्रसन्न हो जाती हैं। रामायण के श्रवण तथा पाठान्त में कंजूसी किये बिना विपुल धन, स्त्री-पुत्रादि दक्षिणा प्रदान करे। हे सखियों! मैंने तुमसे यत्किंचित् रामायण महिमा का वर्णन किया है। सम्पूर्ण वर्णन दुःसाध्य है। जो मानव इस रामायण माहात्म्य का श्रवण करता है, उसके लिये परम दुर्लभ भक्ति देवी दासीरूप हो जाती हैं।।१९-२५।।

।।षड्विंश अध्याय समाप्त।।



सप्तविंशतितमोऽध्यायः

पुराणरचना में ऋषिगण में मतभेद

देव्युवाच

यदा रामायणं कृत्वा वाल्मीकिर्विरराम ह। तदा ब्रह्मा समागत्य वाल्मीकिमिदमब्रवीत्।।१।।
महर्षे ननु वाल्मीके कृतं रामायणं त्वया। नैवावशिष्टं किञ्चास्ति कर्त्तव्यं तव वर्त्तते।
अर्जिता परमा कीर्त्तिरक्षया धर्मरूपिणी।।२।।
किन्तु त्वन्मुखफुल्लाब्जे देवी गगनसम्भवा। देवितुं वाञ्छते नित्यं तत् कुरुष्व सदातनम्।।३।।
देव्या व्यसितं बुद्ध्वा महाभारतनामकम्। सनातनं महापुण्यमितिहासं पुरातनम्।
प्रकल्पितं मया सम्यक् तव श्लोकय तन्मुने।।४।।

देवी कहती हैं—जब महर्षि वाल्मीकि रामायण रचना करके विरत हो गये, तब ब्रह्मा ने वाल्मीकि से कहा—हे महर्षि वाल्मीकि! आपने रामायण रचना किया है, अतः अब आपका कोई कर्तव्य बाकी नहीं है। आपने धर्मरूपा अक्षय कीर्त्ति अर्जित किया है। तथापि गगन से उत्पन्ना देवी सरस्वती आपके मुखरूप प्रफुल्ल कमल में क्रीड़ा करने की अभिलाषिणी हैं। आप उनको चिरस्थायी करें। मैंने सरस्वती का उद्यम समझकर आपके लिये महाभारत नामक सनातन महापवित्र पुरातन इतिहास निश्चित करके रखा है। हे मुनिवर! आप उसे श्लोकबद्ध करें।।१-४।।

वाल्मीकिरुवाच

प्रभो ब्रह्मन् त्वया सर्व्वं ज्ञायते तत्तथापि ते। निवेदयाम्यात्मवृत्तिं यद्युक्तं तद्वदस्व मे।।५।।
कृतं रामायणं ब्रह्मन् व्यक्तं मोक्षस्य साधनम्। निःसन्देहो ह्यहं भूतः क्षोभमोहविवर्जितः।।६।।
किमर्थमपरं ग्रन्थं करिष्यामि वृथोद्यमः। सरस्वती चेत् सततं विहर्त्तुं देव वाञ्छते।।७।।

तदर्थं द्वापरे वेदव्यासनामा भविष्यति। सएव बहुचित्रार्थं महाभारतकृद्भवेत्॥८॥
पुराणोपपुराणानि स एव विरचिष्यति। नाल्पेन व्यवसायेन नृणां धर्ममतिर्भवेत्॥९॥
लोकानां धर्ममत्यर्थं कर्त्ता ग्रन्थान् बहून् स वै।
विष्णोः कलाऽसौ भविता वेदभागान् करिष्यति॥१०॥
अहं रामायणं कृत्वा कृतार्थोऽभवमीश्वर। व्यासायाहं वदिष्यामि काव्यवीजं सनातनम्॥११॥
येनासौ बहुधा ग्रन्थान् विधाय कुशलं भजेत्॥१२॥

वाल्मीकि कहते हैं—हे प्रभो! ब्रह्मन्! आप सर्वज्ञ हैं, तथापि मैं अपने विचार आपसे कहता हूं। मैंने रामायण रचना किया है, जो स्पष्टतः मोक्षसाधन है। मैं अब क्षोभ-मोह रहित तथा संसार शून्य हो गया। हे ब्रह्मन्! मैं किसके लिये उद्यम करूं? मेरे लिये अब सभी उद्यम व्यर्थ है। हे देव! यदि सरस्वती सतत् किसी के मुखकमल में विराजित होना चाहती हैं, तब उस हेतु द्वापर में वेदव्यास का जन्म होगा। वे विचित्रार्थयुक्त महाभारत की रचना करेंगे। वे पुराण-उपपुराण समूह की रचना करेंगे। अल्प चेष्टा से मनुष्य की धर्मबुद्धि नहीं होती। अतः वेदव्यास लोक में धर्मबुद्धि की स्थापना हेतु अनेक ग्रन्थ की रचना करेंगे। उनका जन्म विष्णु के अंश से होगा। वे वेदों का विभाग भी करेंगे। हे ईश्वर! मैं तो रामायण रचकर कृतार्थ हो गया। मैं उन व्यास को सनातन काव्यबीजोपदेश करूंगा। इसके प्रभाव से वे बहुतर ग्रन्थ रचकर मंगल प्राप्त करेंगे।।५-१२।।

देव्युवाच

इत्युक्तस्तेन वै ब्रह्मा हंसारुढश्चतुर्मुखः। एवमेवेति संमन्त्र्य ययौ लोकं निजं सखि॥१३॥
ततः काले गते दीर्घे द्वापरादौ हरेः कला। वेदव्यासो बभूवाथ सत्यवत्यां पराशरात्॥१४॥
चक्रे वेदतरोः शाखां दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः। अथ ब्रह्मसभायां वै समायाता महर्षयः॥१५॥
कश्यपः कपिलोऽत्रिश्च भार्गवश्च पराशरः। व्यासश्च परमोदारः पुलस्तः पुलहः क्रतुः॥१६॥
याज्ञवल्क्यश्च विष्णुश्च हारीतश्च वृहस्पतिः। विश्वामित्रो वामदेवः शङ्खश्च लिखितस्तथा॥१७॥
जैगीषव्यो वशिष्ठश्च एकतश्च द्वितस्त्रितः। बालिखिल्याश्च ऋषयो गोतमो गालवो भृगुः॥१८॥
कात्यायनोऽङ्गिरा दक्षः प्रजानाथो मनुः स्वयम्। एते चान्ये च बहवो मुनयो मेरुपर्वते॥१९॥

देवी कहती हैं—हे सखी! वाल्मीकि के यह कहने पर भगवान् ब्रह्मा ने कहा "ऐसा ही हो"। वे हंसवाहनासीन होकर ब्रह्मलोक चले गये। तब दीर्घकाल के उपरान्त द्वापर के आने पर सरस्वती के गर्भ से पराशर के औरस से विष्णु अंश वेदव्यास का जन्म हुआ। उन्होंने लोगों की मेधा में कालदोष से अल्पता देखकर वेदस्वरूप महावृक्ष का शाखा विभाग किया। एक बार कश्यप, अत्रि, कपिल, भार्गव, पराशर, परमउदार वेदव्यास, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, हारीत, बृहस्पति, विश्वामित्र, वसिष्ठ, एकत, द्वित, त्रित, बालखिल्यादि, गौतम, गालव, भृगु, कात्यायन, अंगीरा, दक्ष तथा प्रजापति मनु तथा अन्य अनेक मुनिगण सुमेरु पर्वत पर ब्रह्मसभा में आये।।१३-१९।।

एतान् संपूज्य विधिवत् सुखासीनान् पितामहः। उवाच परमप्रीत्या चिरेणाधिगतं हृदा॥२०॥

पुरा रामायणं नाम भाव्यर्थं विहितं मया। तत्तु वाल्मीकिना काव्यं कृतं मदुपदेशतः॥२१॥
पञ्चविंशतिसाहस्री संहिता सप्तकाण्डिका। सर्गैः प्रबन्धबहुला सरस्वत्या अनुग्रहात्॥२२॥
सा नित्या पुण्यबहुला तदनन्तरमेव च। महाभारतनामान्यत् पुराणान्युभयानि च॥२३॥
अष्टादश तथान्यानि विहितानि तथा पुरा। किन्तु न श्लोकबद्धानि संक्षेपसंयुतानि च॥२४॥
ऋषीणां खलु सर्वेषां मध्ये कोऽत्र समर्थकः। स करोतु पुराणानि महाभारतमेव च॥२५॥
एतदर्थं पुरा प्रोक्तो वाल्मीकिर्मुनिसत्तमः। स तु रामायणं कृत्वा निरपेक्षोऽन्यतोऽभवत्॥२६॥

जब ये सभी सुखासीन हो गये, तब पितामह ब्रह्मा उनकी यथाविधि अभ्यर्थना करके अत्यन्त प्रेमपूर्वक चिरकाल से सोची गयी मनोगत कथा कहने लगे। ब्रह्मा ने कहा—मैंने पूर्व में भविष्यत हेतु रामायण की घटना को निश्चित किया था। तदनन्तर वाल्मीकि ने मेरे उपदेश तथा सरस्वती की कृपा से उसकी रचना काव्याकार की है। यह २५००० श्लोकात्मक संहिता है, जिसमें सात काण्ड तथा अनेक परिच्छेद हैं। यह नित्य तथा सुखप्रदा है। तदनन्तर महाभारत नामक एक अन्य ग्रन्थ १८ पुराण तथा १८ उपपुराण भी मैंने प्रस्तुत किया है, तथापि वह श्लोकबद्ध नहीं है तथा संक्षिप्त है। इन सब ऋषिगण में इस कार्य हेतु कौन समर्थ है, जो पुराण तथा महाभारत रच सके। तभी मैंने यह मुनिप्रवर वाल्मीकि से कहा तथापि वे रामायण की रचना के पश्चात् अन्य विषय से विरत हो गये।।२०-२६।।

देव्युवाच

इत्युक्तानां मुनीनाञ्च कोऽपि किञ्चिन्नचोचिवान्। प्रणम्य नारदस्तत्र ब्रह्माणमब्रवीदिदम्॥२७॥

देवी कहती हैं—ब्रह्मा द्वारा यह कहे जाने पर किसी ने कोई उत्तर ही नहीं दिया। तब ब्रह्मा को प्रणाम करके मुनि नारद कहने लगे।।२७।।

नारद उवाच

नारदोऽहं नमस्यामि शृणु यन्मे निवेदनम्। पुरा तुभ्यं यदेवाह वाल्मीकिराद्यकाव्यकृत्॥२८॥
तदर्थं द्वापरे वेदव्यासनामा भविष्यति। सएव बहुचित्रार्थमहाभारतकृद्भवेत्॥२९॥
पुराणोपपुराणादि सएव विरचिष्यति। नाल्पेन व्यवसायेन नृणां धर्ममतिर्भवेत्॥३०॥
लोकानां धर्ममत्यर्थं कर्त्ता ग्रन्थान् बहुन् स वै।
विष्णोः कलासौ भविता वेदभागान् करिष्यति॥३१॥
अहं रामायणं कृत्वा कृतार्थोऽभवमीश्वर। व्यासायाहं वदिष्यामि काव्यवीजं सनातनम्॥३२॥
येनासौ बहुधा ग्रन्थान् विधाय कुशलं भजेत्॥३३॥
तस्मादसौ व्यासएव भवदाज्ञां करिष्यति। तद्यन्ये च समर्थाः स्युस्ते वदन्तु च॥३४॥

नारद कहते हैं—मैं नारद आपको प्रणाम करता हूं। मेरा निवेदन सुनिये। आदि कवि वाल्मीकि ने पूर्वकाल में आपसे जो कहा था, वही मैं भी निवेदन करता हूं। वाल्मीकि का कथन था "द्वापर में वेदव्यास का जन्म होगा। वे ही विचित्रार्थ सम्पन्न महाभारत की रचना करेंगे। वे ही पुराणों तथा उपपुराणों की रचना भी करेंगे। अल्पप्रयत्न से

मनुष्य में धर्मबुद्धि नहीं होती। वेदव्यास लोक धर्म वृद्धि हेतु अनेक ग्रन्थ रचेंगे। वेदों का विभाग करेंगे। उनका जन्म विष्णु के अंश से होगा। मैंने रामायण रचना किया है। उसी से मैं कृतकृत्य हो गया। मैं व्यास को सनातन काव्यबीज का उपदेश प्रदान करूंगा। उसके प्रभाव से व्यास अनेक ग्रन्थ रचना करके मंगल प्राप्त करेंगे।" अतएव ये व्यास ही आपकी आज्ञा का पालन करेंगे। यदि अन्य कोई समर्थ है, तब वही यह करे।।२८-३४।।

मुनय ऊचुः

सर्वे वयं समर्था स्म पुराणकरणे प्रभो। यो यत् पुराणकर्त्ता स्यात् तस्मै तत्तन्नियुज्यताम्।
किमेक एव व्यासोऽयं भवदाज्ञावहो भवेत्॥३५॥

मुनिगण कहते हैं—प्रभो! हम सभी पुराण रचना में समर्थ हैं। जो जिस पुराण को रचित करने के लिये कहे, उसे उस पुराण में नियुक्त करिये। एक व्यास ही आपके आज्ञापालक (कैसे होंगे?) हैं।।३५।।

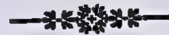
देव्युवाच

श्रुत्वेदं वचनं ब्रह्मा मुनीनां भावितात्मनाम्। हृदैव चिन्तयामास विरोधं तानुवाच ह॥३६॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे यदहं प्रब्रवीमि वः। श्रुतं वाल्मीकिवचनं नारदात् स यदाह माम्॥३७॥
समर्था अपि सर्वे वै पुराणकरणे द्विजाः। किन्तु गच्छत राजानं जनकं धर्मदर्शनम्॥३८॥
स वो विवादभङ्गाय मध्यस्थः प्रवदिष्यति। इत्युक्तास्ते मुनिगणा ययुः सर्वार्थदर्शिनः॥३९॥
वर्त्तते यत्र जनको राजा धर्मार्थदर्शिवान्॥४०॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे पूर्वखण्डे सप्तविंशतितमोऽध्यायः।।



देवी कहती हैं—ब्रह्मा ने आत्मध्यानतत्पर ऋषियों का यह वाक्य सुनकर मन ही मन इस विरोध के सम्बन्ध में चिन्तन करके ऋषियों से कहा—'हे मुनिगण! मैं जो कहता हूं उसे सुनें। हे द्विजगण! आप सभी पुराण रचना में समर्थ हैं। आप सब धर्मदर्शी जनक के यहां जायें। जनक मध्यस्थ होकर आपका विवाद समाप्त कर देंगे।' यह सुनकर सर्वार्थदर्शी वे मुनिगण धर्म के तात्पयार्थ को जानने वाले राजा जनक के यहां चले गये।।।३६-४०।।

।।सप्तविंश अध्याय समाप्त।।



अष्टविंशतितमोऽध्यायः

ऋषियों की परीक्षा

देव्युवाच

तान् दृष्ट्वा जनको राजा मुनीन् सर्वान् समागतान्।
आसनात् सहसोत्थाय पूजयामास सादरम्॥१॥

देवी कहती हैं—राजा जनक ने इन सभी मुनिगण को आया देखकर तत्क्षण आसन से उठकर सादर उनका पूजन किया।।१।।

राजोवाच

किमर्थमागता यूयं सर्वे सूर्य्यसमप्रभाः। सर्वे सर्वार्थबोद्धारः सर्वे सर्वार्थदर्शिनः॥२॥
सर्वे सर्वार्थकुशला यूयं गुरुतरा नृणाम्। वयं गृहस्था युष्माकं कृपां वाञ्छामहे सदा॥३॥
सा कृपा चेत् सुफलिता सर्वार्थः सिद्ध्यते तदा। वैष्णवाः साधवः शान्ता लोकानुग्रहकातराः॥४॥
स्वयं कृतार्थाः सततं यूयं ये ते मयेक्षिताः। किमतोऽस्ति गृहस्थानां लाभोऽन्यः साधुसङ्गमात्॥५॥

राजा कहते हैं—आप सभी सूर्य के समान तेजस्वी हैं। सभी सर्व विषय ज्ञाता हैं। आप सब सर्वार्थदर्शी तथा सभी कार्य में कुशल हैं। आपका यहां शुभागमन किस कार्य से है? आप सभी इस लोक के परम गुरु हैं। मैं गृहस्थ आपकी कृपा की भिक्षा मांगता हूं। उस कृपा के फलवती होने पर सर्व कार्य सिद्ध होता है। आप सभी वैष्णव, साधु, शान्त, लोकानुग्रहकारी तथा कृतार्थ हैं। मैंने आप सबका दर्शन प्राप्त किया, गृहस्थ हेतु इससे बड़ा लाभ क्या है?।।२-५।।

मुनय ऊचुः

सत्यं भवन्तं राजर्षिं द्रष्टुकामा वयं सदा। त्वन्तु धर्मतनुः साक्षाद्वयं धर्माभिकाङ्क्षिणः॥६॥
प्रेषिता ब्रह्मणा सर्वे भवत्सन्निधिमागताः। षट्त्रिंशतः पुराणानां भारतस्य च भूपतेः॥७॥
भवत्वमीषां कः कर्त्ता तन्निदेशय पृच्छताम्। अयं पराशरोऽस्माकं वक्ता यद्वक्ति तन्मतम्॥८॥
वयं हि सर्वे श्रोतारो भवान्सम्यङ्निरूपकः॥९॥

मुनिगण कहते हैं—आप सत्यरूप राजर्षि हैं। आपको देखने की हमारी सर्वदा इच्छा रहती है। आप साक्षात् धर्मावतार हैं। हम सब धर्माभिकांक्षी हैं। हम ब्रह्मा द्वारा प्रेरित होकर आपके पास आये हैं। हे भूपति! हमारी जिज्ञासा है कि १८ पुराण तथा १८ उपपुराण इन ३६ पुराणों की तथा महाभारत की रचना हममें से कौन कर सकता है? वह निर्णय करें। ये पराशर, हम सबका पक्ष रखेंगे। यह जो कहेंगे वही हमारा मत है। हम सभी श्रोता हैं। आप निर्णय व्यक्त करें।।६-९।।

राजोवाच

शक्तिपुत्र महाभाग पराशर नमोऽस्तु ते। किमुक्तं ब्रह्मणा कौ वा विवादे संशयस्थितौ॥१०॥

राजा कहते हैं—शक्ति पुत्र पराशर को प्रणाम करता हूं। हे महाभाग! ब्रह्मा का क्या कथन है? इसमें कौन संशयग्रस्त है।।१०।।

पराशर उवाच

राजन् ब्रह्मसमीपस्थान् मुनीनाह समागतान्। वाल्मीकिर्भगवान् काव्यं चक्रे रामायणं परम्॥११॥
पुराणानां भारतस्य कः कर्त्ता भवतां भवेत्। तत्रादौ नारदो व्यासः कर्त्ता वै भारतादिनः॥१२॥
वयं विवदमाना वै समर्थास्तत्र कर्मणि॥१३॥

पराशर कहते हैं—राजन्! ब्रह्मा ने समवेत सभी मुनिगण से कहा कि वाल्मीकि ने परम काव्य रामायण की रचना किया। अब आप सब में महाभारत तथा पुराणों का रचयिता कौन होगा? तब वहां उपस्थित नारद ने कहा कि हममें से वेदव्यास भारतादि पुराणों की रचना करेंगे। तथापि अन्य भी इस कार्य में समर्थ हैं, तभी विवाद उठा।।११-१३।।

राजोवाच

ब्रह्मा च नारदश्चैव व्यासपक्षावुभौ मतौ। भवन्तोऽनुमताः केन पुराणादि करिष्यथ॥१४॥
कर्त्ता देवः स्वयं ब्रह्मा सर्वशास्त्रस्य सर्वथा। तेनैवानुमतं व्यासं भवन्तो नानुमन्यते॥१५॥
व्यासोऽपि च भवन्तश्च सर्वशास्त्रार्थदर्शिनः। महात्म्यं भगवन्नाम्नां वदन्तु श्रूयते मया॥१६॥

राजा कहते हैं—ब्रह्मा तथा नारद, दोनों ही व्यास के पक्ष में हैं, आप किसकी अनुमति से पुराणादि रचना करेंगे? देवदेव ब्रह्मा ही सर्वतोभावेन सर्वशास्त्र रचनाकार हैं। व्यास उनके अनुमत हैं। तथापि आप लोग व्यास के पक्ष में नहीं हैं। व्यास तथा आप सभी सर्वशास्त्र द्रष्टा हैं। आप सब भगवान् के नाम की महिमा कहिये। मैं सुनूंगा।।१४-१६।।

पराशर उवाच

किं वाच्यं भगवन्नाममाहात्म्यं मिथिलाधिप। यथाज्ञानं कियद्वच्मि तुभ्यं जिज्ञासवे सकृत्॥१७॥
कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्त्तते। भस्मीभवन्ति राजेन्द्र महापातककोटयः॥१८॥

पराशर कहते हैं—हे मिथिलापति! भगवान् के नाम की महिमा क्या कहूं! आप बारम्बार पूछ रहे हैं, अतः तनिक़ कहता हूं। हे राजन्! जिसके मुंह से 'कृष्ण' यह मंगलमय नाम उच्चरित हो जाता है, उसके करोड़ों महापातक नष्ट हो जाते हैं।।१७-१८।।

व्यास उवाच

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत् कर्तुं न शक्तः स्यात् पातकं पातकी जनः॥१९॥

वेदव्यास कहते हैं—पापनाशक हरि नाम की शक्ति जहां तक है, पातकी लोग वहां तक पाप कर ही नहीं सकते।।१९।।

एवं श्रुत्वा महाराज उभयेषां सरस्वतीम्। पराशरादिं व्यासञ्च प्रोवाच जनको नृपः॥२०॥

राजोवाच

कर्त्ता महाभारतस्य वेदव्यासो हि नापरः। षट्त्रिंशतः पुराणानां व्यासश्चान्ये च ये द्विजाः॥२१॥

किन्तु गच्छत वाल्मीकिं महर्षिं चिरजीविनम्। स वो विधास्यते क्षेमं आदिकाव्यकृती कृती॥२२॥
श्रुतं मया यदाकाशे गच्छतः शुकपक्षिणः। शृणुध्वं तन्मुनिगणाः प्रोक्तं वाल्मीकिना पुरा॥२३॥
तदर्थं द्वापरे वेदव्यासनामा भविष्यति। (सएव बहुचित्रार्थमहाभारतकृद्भवेत्॥२४॥
पुराणोपपुराणादि सएव विरचिष्यति।) नाल्पेन व्यवसायेन नृणां धर्ममतिर्भवत्॥२५॥

लोकानां धर्ममत्यर्थं कर्त्ता ग्रन्थान् बहून् स वै।
विष्णोः कलासो भगवान् वेदभागान् करिष्यति॥२६॥

अहं रामायणं कृत्वा कृतार्थोऽभवमीश्वर। व्यासायहं वदिष्यामि काव्यवीजं सनातनम्॥२७॥
येनासौ बहुधा ग्रन्थान् विधाय कुशलं भजेत्। इदमेव ह्युपाख्यानं विधिं वाल्मीकिरब्रवीत्॥२८॥
मा चिन्तय महाराज लोके व्यासो भविष्यति। इत्येतद्विश्रुतं विप्राः खगस्य मुखतो द्विजाः॥२९॥
ततो गच्छत वै यूयं यत्र वल्मीकभूर्मुनिः। स्वद्वितीयः स्वयं ब्रह्मा काव्यसृष्टौ मुनीश्वरः॥३०॥
अस्यैवानुग्रहात् यूयं कवयोऽपि भविष्यथ। आस्तेऽसौ तमसातीरे जपन् रामायणं परम्॥३१॥

महाराज जनक ने दोनों पक्ष की भाषा सुनकर पराशर प्रभृति मुनिगण तथा व्यास से कहा "महाभारत की रचना वेदव्यास करेंगें। अन्य कोई नहीं करे। ३६ पुराण रचना व्यास तथा अन्य मुनिगण भी करें। जो भी हो, इस समय आप सब चिरंजीवी महर्षि वाल्मीकि के यहां जाईये। वे आदिकाव्यकर्त्ता तत्वज्ञ मुनि आपका कल्याण विधान करेंगे। एक पक्षी आकाश में उड़ता जा रहा था। उसने वाल्मीकि के कहे जो शब्द सुने, वह आप सब मुनिगण भी श्रवण करें। उसने सुना था "इसलिये द्वापर में वेदव्यास का जन्म होगा। वे ही बहुःविचित्र अर्थयुक्त महाभारत रचना करेंगे। वे ही पुराण-उपपुराण रचेंगे। मनुष्य में धर्मवृद्धि अल्प प्रयत्न से नहीं होती। लोक में धर्मसम्पादनार्थ वे अनेक ग्रन्थ रचना करेंगे। वे विष्णु अंश से जन्म लेंगे, उनके द्वारा वेद विभाग होगा। हे ईश्वर! मैं रामायण रचना से कृतकृत्य हूं। मैं वेदव्यास को सनातन काव्यबीज का उपदेश प्रदान करूंगा। उसके प्रभाव से वे अनेक ग्रंथ रचना करके मंगल प्राप्त करेंगे।" यह उपाख्यान वाल्मीकि द्वारा कहा गया है कि "चिन्ता न करें। जगत् में व्यास का जन्म होगा।" हे मुनिगण! मैंने पक्षी के मुख से यह प्रसंग सुना था। वे वाल्मीकि परम महाकाव्य रामायण का जप करते हुए तमसा नदी के तट पर स्थित हैं।।२०-३१।।

देव्युवाच

इत्युक्तास्ते मुनिगणाः जनकेन महात्मना। प्रययुः परमानन्दा यत्र चादिकविर्मुनिः॥३२॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे पूर्वखण्डे अष्टविंशतितमोऽध्यायः।।



देवी कहती हैं—महात्मा जनक के यह कहने पर मुनिगण वहां परमानन्द मग्न होकर गये, जहां आदिकवि वाल्मीकि स्थित थे।।३२।।

।।अष्टविंश अध्याय समाप्त।।



ऊनत्रिंशत्तमोऽध्यायः

पुराणादि लेखक निर्णय, वाल्मीकि द्वारा व्यास को उपदेश

देव्युवाच

ते गत्वा तमसातीरं वाल्मीकिं तपसां निधिम्। ददृशुः शिष्यसहितं भूमिष्ठमिव भास्करम्॥१॥
प्रणेमुः परया भक्त्या ब्रह्माणमिव देवताः। महर्षिरपि तान् दृष्ट्वा मुनीन् शक्त्रिसुतादिकान्।
स्वागताद्यैः पूजयित्वा पप्रच्छ स्वासनस्थितान्॥२॥

देवी कहती हैं—वे ऋषिगण तमसातीर जाकर देखते हैं कि वहां शिष्यों सहित तपोनिधि वाल्मीकि विराजमान हैं, जो पृथिवी के सूर्य के समान तेजयुक्त हैं। जैसे देवगण, ब्रह्मा को प्रणाम करते हैं, उसी प्रकार मुनिगण ने वाल्मीकि को प्रणाम किया। महर्षि वाल्मीकि ने भी पराशर आदि ऋषिगण को देखकर स्वागत संभाषणादि से उन सब के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। तदनन्तर सबके आसनासीन हो जाने पर वाल्मीकि ने उनसे पूछा।।१-२।।

वाल्मीकिरुवाच

पराशरव्यासमुख्याः मुनयो यूयमागताः। किमर्थमिह संप्राप्ताः सर्वे सूर्य्यसमप्रभाः॥३॥

वाल्मीकि कहते हैं—हे पराशर, व्यास आदि सूर्य के समान तेजयुक्त मुनिगण! आपका यहां किस प्रयोजन से आगमन हुआ है?।।३।।

मुनय ऊचुः

पुरा ब्रह्मा मुनीन् सर्वानस्मान् पप्रच्छ सत्तमः। तत्राह नारदो व्यास एक एव महाकविः॥४॥
भारतञ्च पुराणानि करिष्यति महामतिः। तत्रास्माकं मतिर्जाता पुराणकरणे प्रभो॥५॥
अस्मान् विवदमानान् वै बुद्ध्वा ब्रह्मा चतुर्मुखः। विवादभञ्जकं भूपं जनकं प्रजगाद नः॥६॥
तेनादिष्टा वयं सर्वे (जनकस्य च सन्निधिम्। प्राप्ताः संपूजितास्तेन पृष्टा अपि मुनीश्वर॥७॥
तत्रास्माकं पुण्यतमः शक्त्रिपुत्रः पराशरः। वक्ताभूच्च वयं सर्वे) श्रोतारो जनको नृपः॥८॥
प्रत्युवाच विवादस्य भङ्गाय नो नु शृण्वताम्। ब्रह्मणा सर्वशास्त्राणां मूलकर्त्रा महात्मना॥९॥
नारदेनाप्यनुमतो व्यासो भारतकृद्भवेत्। अन्येषान्तु पुराणानां व्यासोऽन्ये च महर्षयः॥१०॥
अत्र मे नास्ति माध्यस्थ्यं पूर्वं तेन निरूपतिम्।
व्यासे पुराणकर्तृत्वं विवादोऽपि न वः क्वचित्॥११॥
यूयं गच्छत वै यत्र वाल्मीकिस्तदनुग्रहात्।
यः कविः स्यात् स एव स्यात् भारतादिकृती कृती॥१२॥
स जानीते काव्यवीजं तस्मात् गच्छत तत्र वै। अतस्ते निकटं प्राप्ता वयं सर्वे महर्षयः।
सर्वान् कविन्नः कुरु वै प्रभो आदिकवे कवे॥१३॥

मुनिगण कहते हैं—कुछ समय पूर्व भगवान् ब्रह्मा ने हम सबसे पूछा था कि हे प्रधान ऋषिगण! महाभारत तथा पुराण रचना आप सब में से कौन कर सकता है? तब नारद ने कहा कि "महामति महाकवि वेदव्यास ही पुराणादि की रचना करेंगे। हे प्रभो! तब पुराण रचना हेतु हमारी भी इच्छा है। चतुर्मुख ब्रह्मा ने हमें विवाद में पड़ा देखकर हम लोगों से कहा कि राजा जनक विवाद समाप्त करेंगे। तब हम जनक के पास गये। जनक ने हम सबका स्वागत करके जिज्ञासा भी किया। तब हमारी ओर से शक्तिपुत्र पुण्यात्मा पराशर वक्ता थे। हमारे विवाद को समाप्त करने हेतु हमारे समक्ष राजा जनक ने कहा—"सर्वशास्त्र के मूलकर्त्ता ब्रह्मा तथा नारद से अनुमति प्राप्त वेदव्यास ही महाभारत कर्त्ता होंगे।"

"व्यास तथा अन्य लोग पुराण रचना करें। लेकिन इस विषय में मेरी मध्यस्थता उचित नहीं है, क्योंकि महर्षि वाल्मीकि ने वेदव्यास को पुराणकर्त्ता कहा है। अतः इस विषय में कोई विवाद नहीं हो सकता। अतः आप लोग जहां वाल्मीकि स्थित हैं, वहां जाये। उनके अनुग्रह प्राप्त ही महाभारतादि के रचयिता होंगे। महर्षि वाल्मीकि ही काव्यबीज जानते हैं। वहीं आप लोग जायें।" तब हम सब महर्षि आपके पास आये। हे प्रभो! आदि कवि! मुनिवर! हम सब को आप कवि बना दीजिए"।।४-१३।।

वाल्मीकिरुवाच

एको नारायणो देवः सत्वरूपी सनातनः। तस्यैव वशगाः सर्वे कर्म कुर्वन्ति कर्मिणः॥१४॥
तस्मिन्नेव प्रलीयन्ते तस्मादेवोद्भवन्ति वै। तस्यैव हि नियोगेन ब्रह्माद्या अथ वै वयम्॥१५॥
सर्वे कुर्मः क्रियाः सर्वा यथोद्देशं यथातथम्। अहं रामायणं काव्यमकार्षं तन्नियोगतः॥१६॥
मद्द्वितीयः कविर्व्यासस्तेनैव हि विनिर्मितः। महाभारतकर्त्तासौ विधिसृष्टः पुरातनः॥१७॥
पुराणानामयं कर्त्ता द्विविधानां मुनीश्वराः। भवन्तोऽपि करिष्यन्ति पुराणान्युत कानिचित्॥१८॥
व्यासस्यैव प्रसादेन तानि नैवात्र संशयः। व्यासायाहं वदिष्यामि काव्यवीजं सनातनम्॥१९॥

वाल्मीकि कहते हैं—एक नारायण देव ही सत्वरूप तथा सनातन है। उनके वश में रहकर ही जीवगण कर्म करते हैं। जीवगण उनमें ही लीन हो जाते हैं, उनसे ही उद्भूत भी होते हैं। उनके ही आदेश से ब्रह्मा से लेकर हम सभी कर्म करते हैं। मैंने उनके नियोग से ही रामायण महाकाव्य रचा है। उन्होंने ही व्यास को द्वितीय कवि बनाया हैं। ये विधाता द्वारा महाभारत रचयिता रूप से सृष्ट हुए हैं। इनकी सृष्टि (जन्म) से पहले यह विषय रुका पड़ा था। हे मुनिवरगण! ये ही विविध पुराणों की रचना करेंगे। भगवान् की कृपा से इनके ही द्वारा यह रचना होगी। यह निःसंदिग्ध हैं। मैं सनातन काव्यबीज का उपदेश व्यास को प्रदान करूंगा।।१४-१९।।

तेनैव यूयं सर्वे वै भविष्यथ कृतार्थकाः। आदौ महाभारताख्यं वेदव्यासः करिष्यति॥२०॥
ततो विष्णुपुराणस्य कर्त्ता भावी पराशरः। एवं महापुराणानि व्यासएव करिष्यति॥२१॥
कर्त्ता चोपपुराणानां व्यासोऽप्यन्येऽपि केचन। वेदव्यासः श्लोककर्त्ता सर्वेषामेव सर्वतः॥२२॥
लेखकः कोऽपि वक्ता च कोऽपि ह्यर्थनिरूपकः।
श्लोककाः संहितानाञ्च परे मन्वादयो द्विजाः॥२३॥
मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः। यमापस्तम्बसम्बर्त्ताः कात्यायनवृहस्पती॥२४॥

पराशरव्यासशङ्खलिखिता दक्षगौतमौ। शातातपो वशिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः॥२५॥
एतेषां केऽपि वक्तारः केऽपि श्लोकार्थकारकाः।
अन्येऽपि मुनयः सर्वे सन्तु शास्त्रकृतः स्वयम्॥२६॥

वेदव्यास पहले महाभारत रचना करेंगे। तदनन्तर पराशर द्वारा विष्णुपुराण की रचना होगी। अन्य सभी महापुराण अकेले व्यास ही लिखेंगे। उपपुराणों की रचना व्यास तथा अन्य कोई-कोई करेंगे। जितने महापुराण तथा उपपुराण हैं, उन सबकी श्लोक रचना वेदव्यास द्वारा ही होगी। आप सबमें से कोई लेखक, कोई वक्ता, कोई अर्थ निरूपक होगा। मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगीरा, यम, आपस्तम्ब, सम्वर्त्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप तथा वसिष्ठ—ये लोग संहिता अथवा धर्मशास्त्र प्रवर्त्तक होंगे। इनमें से कोई-कोई श्लोकार्थ लेखक भी होगा। अन्य ऋषिगण भी शास्त्रकर्त्ता होंगे।।२०-२६।।

सर्वे स्वस्वमतेनैव ग्रन्थान् कुर्वन्तु पावनान्।
सर्वे यूयं निवर्त्तध्वं यात स्वस्वालयान् द्विजाः॥२७॥
काव्यवीजं वदिष्यामि व्यासायाहं महात्मने।
व्यासस्यानुग्रहाद्‌यूयं कवयोऽपि भविष्यथ॥२८॥

सभी अपने-अपने मतानुसार पवित्र ग्रंथ प्रस्तुत करें। हे द्विजगण! आप सब-लोग निवृत्त होकर अपने-अपने गृहगमन करिये। मैं महात्मा व्यास को काव्यबीज का उपदेश प्रदान करूंगा। व्यास की कृपा से आप सब भी कवि होंगे।।२७-२८।।

देव्युवाच

इत्युक्तास्ते मुनिगणाः सानन्दा एव हे सखि। प्रणम्यादिकविं श्रीलं वाल्मीकिं ते गतास्ततः॥२९॥
वाल्मीकस्याश्रमे व्यासो विरराम सखीद्वय।
वाल्मीकिः काव्यबीजानि व्यासायोवाच सादरम्॥३०॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे पूर्वखण्डे ऊनत्रिंशत्तमोऽध्यायः।।



देवी कहती हैं—हे सखी! वाल्मीकि का यह वचन सुनकर सभी मुनिगण ने प्रसन्न चित्त होकर आदिकवि वाल्मीकि को प्रणाम किया तथा अपने-अपने स्थान चले गये। हे सखियों! वेदव्यास वहीं वाल्मीकि आश्रम में रुक गये। वाल्मीकि ने वेदव्यास को सनातन काव्यबीज का उपदेश दिया।।२९-३०।।

।।एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त।।



त्रिंशत्तमोऽध्यायः

वाल्मीकि द्वारा व्यास को भारत तत्वोपदेश

वाल्मीकिरुवाच

वेदव्यास किमादौ त्वं श्रोतुमिच्छसि सम्प्रति। तदहं भारतादीनां वीजं ते प्रवदामि वै॥१॥

वाल्मीकि कहते हैं—हे वेदव्यास! अभी आप क्या सुनना चाहते हैं, वह कहें। तदनन्तर मैं भारतादि का बीज प्रदान करूंगा?।।१।।

व्यास उवाच

कीदृशं भारतं नाम किं फलं तस्य तद्वद। केन वाहं करिष्यामि केन शक्तिर्भवेन्मम॥२॥

व्यास कहते हैं—भारत का रूप क्या है? उसका फल क्या है? मैं कैसे भारत रचना कर सकूंगा। वह शक्ति कैसे प्राप्त होगी?।।२।।

वाल्मीकिरुवाच

वेदः परिणतो भूत्वा महाभारततां गतः। विष्णोर्मुखात् समुद्भूता ब्राह्मण ये तपस्विनः॥३॥
बाहुतः क्षत्रिया जाताः पृथिवीजनपालकाः। ऊरुतो जज्ञिरे वैश्याः शूद्राः पादभवा मुने॥४॥
वर्णा अमी वै चत्वारस्तेषां कर्माण्यकल्पयत्। यजनं याजनं चैवाध्ययनाध्यापने तथा॥५॥
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्मा ब्राह्मणः स्मृतः। विप्रपूजा प्रजारक्षा दानं युद्धं करग्रहः॥६॥
क्षत्रियः पञ्चकर्मा स्याद्वैश्यकर्म च कथ्यते। ब्राह्मणक्षत्रयोः सेवा धनसङ्ग्रह एव च॥७॥
वाणिज्यञ्च तथा दानं चतुष्कर्मा वणिग्जनः। ब्रह्मक्षत्रविशां सेवा शूद्रस्य कृषिकर्म्म च॥८॥
एतानि किल कर्माणि वर्णानां कथितानि ते। तत्र त्रयाणां वर्णानां वेदे योग्यत्वमिष्यते॥९॥
स्त्रीशूद्रद्विजवन्धूनां (त्रयी न श्रुतिगोचरा। स्त्रीशूद्रद्विजवन्धूनां) वेदार्थज्ञानहेतवे॥१०॥

वाल्मीकि कहते हैं—वेद ही महाभारत रूपेण परिणत होता है। तपस्वी जाति ब्राह्मण विष्णुमुख से उद्भूत है। पृथिवीपालक जाति क्षत्रिय उनके बाहु से उत्पन्न हैं। हे मुनिवर! उनके उरु से वैश्य तथा चरण से शूद्र की उत्पत्ति हुयी है। यही चातुर्वर्ण है। इन चारों वर्ण के कर्त्तव्य का निरूपण महाभारत रूप से परिणत वेद में है। यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान तथा प्रतिग्रह ब्राह्मण के छः कर्म हैं। ब्राह्मण पूजा, प्रजारक्षा, दान, युद्ध तथा करग्रहण—ये क्षत्रिय के ५ कर्म हैं। अब वैश्यकर्म कहता हूं। ब्राह्मण-क्षत्रिय सेवा, धनसंचय, वाणिज्य, तथा दान—ये वैश्य के छः कर्म हैं। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य सेवा तथा कृषिकार्य शूद्र के कर्म हैं। मैंने आपसे चारों वर्ण के कर्म कहे। प्रथम तीन वर्ण का वेदाधिकार हैं। स्त्री तथा शूद्र को वेदाधिकार नहीं हैं। तथापि ब्राह्मण-क्षत्रिय तथा वैश्य में से जो अपकृष्ट लोग हैं, उनको तथा स्त्री-शूद्र को वेदश्रवण का भी अधिकार नहीं है।।३-१०।।

भारतं कृतवान् पूर्व्वं देवो नारायणः स्वयम्। रामायणं तस्य वीजं परात्परतरं मतम्॥११॥
आदौ रामायणं देवो ब्रह्मणे दत्तवान् पुरा। दत्तञ्च ब्रह्मणा मह्यं श्लोकबद्धं मया कृतम्॥१२॥
विस्तारितञ्च रुचिरं वेदार्थसारसम्मतम्। पुनश्च भारतं कर्तुं ब्रह्मणा देशितोऽप्यहम्॥१३॥

नैव स्वीकृतवान् पूर्व्वं भारतं कर्तुमेव च। भारतस्य विधानाय त्वं नारायणनिर्मितः॥१४॥
रामायणाच्च विस्तीर्णं त्वं महाभारतं कुरु। रामायणपरीपाट्या त्वं महाभारतं कुरु॥१५॥
रामायणस्य काव्यस्य भारतस्य च वै मुने। विशेषात् शृणु मद्वाक्यान्नारायणनिरूपितम्॥१६॥

अतः स्त्री-शूद्र तथा द्विजबन्धु गण (जो द्विजों में अपकृष्ट हैं, उत्कृष्ट नहीं हैं) को भी वेदार्थ ज्ञान हो इसीलिये नारायण ने स्वयं महाभारत की रचना की है। इस भारत की परात्परतर बीज है रामायण देव नारायण ने सबसे पहले ब्रह्मा को रामायण प्रदान किया। ब्रह्मा ने मुझे प्रदान किया। मैंने उसे श्लोकबद्ध किया। मैंने उसका विस्तार वेदार्थ-सारसम्मत रूप से तथा मनोज्ञरूपेण किया। भारत रचना हेतु ब्रह्मा ने मुझे आदेश दिया, तथापि मैंने स्वीकार नहीं किया, आप रामायण से भी विस्तीर्ण महाभारत की रचना करें। महाभारत की रचना रामायण के परिपाटीक्रमेण ही की जाये। रामायण तथा महाभारत में जो विशेष पार्थक्य नारायण ने कहा है वह कहता हूं। सुनें।।११-१६।।

एक एव स्वयं देवः परमात्मा विभुः प्रभुः। कालाकाशस्वरूपोऽसौ सुखदुःखविवर्जितः॥१७॥
सोऽयं मानुषतां गत्वा स्वेच्छया कमलापतिः। चिक्रीड जगतीमध्ये रक्षोवधच्छलेन वै॥१८॥
धर्मांश्च दर्शयामास वर्णाश्रमविभागशः। अहं तद्वर्णयिष्यामि काव्यं रामायणाह्वयम्॥१९॥
परमात्मस्वरूपस्य सीतानाथस्य चेष्टितम्। वर्णितं चैकरूपस्य तच्छरीरविशेषवत्॥२०॥

आत्माराम परमात्मा एक ही हैं। वे ही प्रभुत्व सम्पन्न तथा सर्वेश्वर हैं। वे ही कालाकाल रूप तथा सुखदुःख रहित हैं। वे कमलापति परमात्मा ही मनुष्य रूप में अवतीर्ण होकर राक्षस वध की आड़ में पृथिवी पर क्रीड़ा करते हैं। उन्होंने वर्ण तथा आश्रम व्यवस्था के अनुसार यथाविभाग धर्मतत्व का प्रदर्शन किया है। उन परब्रह्म स्वरूप सीतानाथ का वृत्तान्त रामायण काव्य में है। रामायण उन प्रभु का अंग ही है।।१७-२०।।

सएव देवो भगवान् कृष्णः कमललोचनः। जीवद्वितीयश्चिक्रीड़ भूभारक्षयहेतवे॥२१॥
जीवात्मपरमात्मानौ नरनारायणावुभौ। अर्जुनश्च तथा कृष्णस्तावेव स्वेच्छया स्थितौ॥२२॥
पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां तृतीयो योऽर्जुनो नरः। कृष्णश्च देवकीपुत्रो वासुदेवोऽखिलार्त्तिहा॥२३॥
नारायणो वासुदेवो नरश्चैवार्जुनाह्वयः। नरनारायणमयं तन्महाभारतं विदुः॥२४॥
एकं नारायणमयं कृतं रामायणं मया। रामायणे भारते च विशेषोऽयमुदाहृतः॥२५॥
गोपनीयो ह्ययं पन्था न वाच्यं यस्य कस्यचित्॥२६॥

वे परमात्मा देव ही कमललोचन भगवान् कृष्ण हैं। वे भूभारहरण हेतु जीवात्मा के साथ क्रीड़ा करते हैं। नर जीवात्मा है, नारायण परमात्मा हैं। स्वेच्छया अवतीर्ण नर ही अर्जुन हैं तथा नारायण ही कृष्ण हैं। पांच पाण्डवों में जो तृतीय हैं, वे अर्जुन ही हैं नर! देवकीनन्दन कृष्ण ही समस्त बाधाहारी वासुदेव हैं। वासुदेव ही नारायण हैं। अर्जुन ही नर हैं। जहां नर-नारायण का पूर्ण चरित्र अंकित हैं, उसे ही विद्वत्जन महाभारत कहते हैं। मैंने नारायण के एक काव्य रामायण की रचना की है। रामायण तथा महाभारत का मात्र यही अंतर है। यह तत्व अत्यन्त गोपनीय है। हर किसी से इसको प्रकाशित करना उचित नहीं है।।२१-२६।।

ईदृशं भारतं प्रोक्तं नरनारायणात्मकम्। भारतं परमं पुण्यं भारतं देवसम्मितम्।
भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः॥२७॥

भारतस्य समुद्रस्य मेरोर्नारायणस्य च। अप्रमेयाणि चत्वारि पुण्यतोयगुहागुणाः॥२८॥
भारतस्यान्तरीक्षस्य कालस्य च हरेरपि। अप्रमेयाणिं चत्वारि भावः सीमा गतिः क्रिया॥२९॥
भारतस्य च गङ्गाया शिवस्य च हरेरपि। अप्रमेयाणि चत्वारि नामपुण्यार्थशक्तयः॥३०॥
भारतं श्रूयते स्वर्गे भारतं श्रूयते क्षितौ। भारतं श्रूयते चैव पाताले परमादरैः॥३१॥
भारते विविधा अर्था भारते विविधा कथा। भारते षड्दर्शनानि भारते धर्मसञ्चयाः॥३२॥
न भारतमनाश्रित्य कथा काचित् प्रवर्त्तते। आहारमनपाश्रित्य शरीरस्येव धारणम्॥३३॥
यद्रात्रौ कुरुते पापं ब्राह्मणस्त्विन्द्रियैश्चरन्। महाभारतमाख्याय पूर्वां सन्ध्यां विमुञ्चति॥३४॥
यदह्ना कुरुते पापं ब्राह्मणस्त्विन्द्रियैश्चरन्। महाभारतमाख्याय सन्ध्यां मुञ्चति पश्चिमाम्॥३५॥
पूजयेद्भारतं गेहे स्थापयेत् भारतं गेहे। दद्याच्च भारतं सद्भ्यः पठेदपि॥३६॥
स एव परमश्रीमान् सार्थकं तस्य जन्म च। वृषोत्सर्गशतञ्चैव गयाश्राद्धशतं तथा॥३७॥
राजसूयाश्वमेधौ च यज्ञो विपुलदक्षिणौ। सदक्षिणौ भारतस्य श्रवणं पाठ एव च।
तुल्यान्येतानि कर्माणि मिथः प्रतिनिधीन्यपि॥३८॥
दक्षिणा भारतस्यापि आत्मा सर्वस्वमेव च। सर्वस्वं भारते दद्यात् सर्वस्वं पितृमातृषु॥३९॥
सर्व्वस्वं गुरुवे दद्यात् सर्व्वस्वं याचके क्रमात्। इत्येवं ते फलं प्रोक्तं भारतस्य समासतः॥४०॥

भारत ऐसा महाकाव्य है जिस के गृह में महाभारत है, जय उसके हाथों में है। भारत, समुद्र, सुमेरु तथा नारायण ये चारों अप्रमेय हैं। भारत का पुण्य अपरिमेय है। समुद्र का जल अपरिमेय है। सुमेरु की गुहा अपरिमेय है तथा विष्णु के गुण अपरिमेय हैं। भारत, गंगा, शिव तथा हरि, इन प्रत्येक नाम में पुण्यजनक शक्ति, अर्थसाधकता तथा सामर्थ्य रहता है। ये चारों अप्रमेय हैं। स्वर्ग में भारत (महाभारत) को सुनते हैं, पृथिवी तथा पाताल में भी इसे सुनते हैं। भारत का अत्यन्त आदर सर्वत्र है। भारत में अनेक अर्थ, अनेक कथा, षड्दर्शन तथा धर्मसमूह स्थित हैं। जैसे आहार के बिना जीवन नहीं रहता, वैसे ही भारत का आश्रय लिये बिना किसी कथा की पवृत्ति ही नहीं होती। ब्राह्मण इन्द्रियों के जाल में विचरण करता रात्रि में जो पाप संचय करता है, वह प्रातः महाभारत का नाम लेते ही निर्मूल हो जाता है। ब्राह्मण इन्द्रियों द्वारा मोहग्रस्त हो दिन में जो पाप करता है, सायंकाल महाभारत का नाम लेते ही उस पाप से मुक्त हो जाता है। गृह में महाभारत की पूजा करें। गृह में उसे स्थापित करें, विद्वानों को यह ग्रन्थ दान भी करें। भारत श्रवण करें तथा पाठ भी करे। जो ऐसा करेगा, वही उत्तम है। वही श्रीमान् तथा सार्थक जन्मवाला है। सौ वृषोत्सर्ग, १०० गया श्राद्ध, राजसूययज्ञ, सदक्षिणा वाला यज्ञ—इनका जो फल है, वह भारत के श्रवण तथा पाठ से प्राप्त हो जाता है। ये सभी कर्म परस्परतः तुल्य हैं। भारत के (अनुष्ठान में) लिये दक्षिणा ही आत्मा तथा उसका सर्वस्व है। भारत के पाठ अथवा श्रवण के पश्चात् दक्षिणा देनी चाहिये। पिता-माता के श्राद्ध में सर्वस्व व्यय करें। सर्वस्व गुरु तथा याचक को प्रदान करे। इस प्रकार भारत का फल संक्षेप में कह दिया।।२७-४०।।

कवचं कथ्यते विप्र भारतस्य शृणुष्व तत्। ॐ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि।
नराय परमेशाय जीवाय परमात्मने।४१॥
आदिपर्व्व पातु मूलवीजं पातु द्वितीयकम्। ऋषिर्नारायणः पातु शक्तीरामायणं तथा॥४२॥

विराटपर्व्व छन्दश्च देवतार्य्यास्तवोऽवतु। प्रमाणं भगवद्गीता शक्तिमान् पातु भीष्मकः॥४३॥
प्रतिपाद्यं द्रोणपर्व्व कार्ण पर्व्वार्थकोऽवतु। निर्णयः शल्यपर्व्व स्यात् कर्त्ता पातु गदादिकम्॥४४॥
प्रयोजनं शान्तिपर्व्व स्वरूपमाश्वमेधिकम्। लक्षणञ्चावगम्यञ्च लयश्चान्यान्यवन्तु माम्॥४५॥
अव्यादाचरणीयञ्च सर्व्वाश्चर्य्यमथोत्तरम्। एतद्वै कवचं धृत्वा कुरु भारतमुत्तमम्॥४६॥
भारते फलसिद्धिश्च कवचादप्यतो भवेत्। पठ रामायणं व्यास काव्यवीजं सनातनम्॥४७॥

अब इस ग्रन्थ का कवच कहता हूं। हे विप्र! इसका श्रवण करो। प्रणववाच्य परमेश्वर परमात्मा भगवान् वासुदेव का तथा नर रूप जीव का ध्यान करता हूं। आपको प्रणाम। मूल बीज आदि पर्व रक्षा करें। बीज सभापर्व रूप मेरी रक्षा करें। इसके ऋषि नारायण हैं, रक्षा करें। शक्ति रामायण है, रक्षा करें। विराटपर्व छन्द है और आर्यास्तव देवता हैं, ये भी रक्षा करें। प्रमाण भगवद् गीता हैं, शक्तिमान भीष्मपर्व रक्षा करें। द्रोणपर्व प्रतिपाद्य है। कर्णपर्व अर्थ है। ये भी रक्षा करें। शल्यपर्व सिद्धान्त है। यह शल्यपर्व तथा कर्त्ता की गदादि रक्षा करें। प्रयोजन शान्तिपर्व है।

स्वरूप अश्वमेध पर्व है। ज्ञेय लक्षण तथा लयरूप अन्य सभी पर्व मेरी रक्षा करें। आचरणीय अद्‌भुद् शेष पर्व मेरी रक्षा करें। यह कवच धारण करके उत्तम भारत की रचना करें। इस कवच से भी भारत के समान फल मिलता है। हे व्यास! सनातन कव्यबीज रामायण का पाठ करिये।।४१-४७।।

पुराणानाञ्च सर्व्वेषां क्रम एवंविधो मतः। अष्टादश पुराणानि तत्त्वान्यष्टादशैव तु॥४८॥
एवञ्चोपपुराणानि तत्त्वान्यष्टादशैव तु। महापुराणेषु मुने श्रीभागवतमन्ततः॥४९॥
बृहद्धर्मपुराणञ्च पुराणेष्वितरेषु च। मुने आचरणीयं स्यात् मूलादीनीतराणि च॥५०॥
कुरु सर्व्वपुराणानि महाभारतमेव च। तेषु तेषु पुराणेषु महाभारत एव च।
यत्र रामचरित्रं स्यात् तदहं तत्र शक्तिमान्॥५१॥
ब्रह्मणो वचनं व्यास प्रतिपाल्यं करोमि वै। अन्येषान्तु मुनीनां वै ग्रन्थेषु संग्रही कृती॥५२॥

सभी पुराणों का यही क्रम है। १८ पुराण में १८ तत्व हैं। १८ उपपुराण में भी १८ तत्व हैं। हे मुनिवर! जैसे महापुराणों श्रीमद्‌भागवत् सर्वोत्तम है, उसी प्रकार उपपुराणों में बृहद्धर्मपुराण उत्तम है। हे मुनिवर! ये दो पुराण ही पुराण प्रस्थान का सार है। अन्य बाकी पुराण जड़ आदि विभिन्न अंग हैं। आप सभी पुराण तथा महाभारत की रचना करें।

पुराण तथा महाभारत में जहां रामचरित होगा, वहां मेरी कवित्व शक्ति रहेगी। हे व्यास! इस प्रकार मैं ब्रह्मा की बात का पालन करूंगा। अन्य मुनियों में जिन्होंने ग्रन्थ के भाव का संकलन किया है, वे कृती हैं।।४८-५२।।

देव्युवाच

इत्याकर्ण्य तदा व्यासः प्रोक्तं वाल्मीकिनाद्भुतम्।
गुरुणा चादिकविना वेदव्यासो नमाम तम्॥५३॥

देवीं कहती हैं—व्यासदेव ने तब आदिकवि गुरु वाल्मीकि की अद्‌भुद् कथा सुनकर उनको प्रणाम किया। तदनन्तर व्यास कहने लगे।।५३।।

व्यास उवाच

महर्षेऽहं कृतार्थोऽस्मि कविरस्मि (महामतिः। रामायणं पाठितं मे प्रसन्नोऽस्मि) कृतस्त्वया॥५४॥

करिष्यामि पुराणानि महाभारतमेव च। धर्म्मानहं वदिष्यामि त्वत्प्रसादान्महामुने॥५५॥

व्यास कहते हैं—हे महर्षि! मैं रामायण को पढ़ते ही मैं महामति कवि तथा कृतकृत्य हो गया। आपने मेरे अन्तःकरण को प्रसन्न कर दिया। हे महामुने! आपकी कृपा से मैं भारत तथा पुराण रचना करके उसमें धर्म वर्णन करूंगा।।५४-५५।।

देव्युवाच

यदा रामायणं व्यासः पठित्वा सुव्यवस्थितः। तदैव भारतादीनां मूर्त्तीः सम्यग्ददर्श ह॥५६॥
षट्त्रिंशतः पुराणानां भारतस्य च हे सखि। संहितानाञ्च सर्वासां मूर्त्तीः संददृशे मुनिः॥५७॥
मूर्त्तिमन्ति पुराणानि भारतादीनि सर्वशः। प्रणम्य ततौ मुनिश्रेष्ठौ तत्रैवान्तर्हितानि वै॥५८॥
मुनिभिः सहितो व्यासो ययौ बदरिकाश्रमम्। इत्येतद्वां समाख्यातं सखै यत् पृष्टमेव हि।
आगच्छत गृहं यामो यत्र देवो महेश्वरः॥५९॥

देवी कहती हैं—जब व्यास ने रामायण का अध्ययन किया तथा सुव्यवस्थित हो गये, तभी वे भारत आदि की मूर्त्ति सम्यकृतः देख सके। हे सखियों! तब मुनि ने ३६ पुराण, महाभारत तथा सभी संहिताओं को सम्यकृतः देखा तब भारत पुराण मूर्त्तिमान होकर व्यास तथा वाल्मीकि को प्रणाम करके अन्तर्हित हो गया। व्यासदेव भी मुनियों के साथ बदरिकाश्रम चले गये। हे सखियों! तुमने जो पूछा था वह हमने कह दिया। अब महेश्वर गृह में हैं, हम भी वहीं चलें।।५६-५९।।

व्यास उवाच

जाबाले गिरिजा सती सखियुगं सानन्दफुल्लाननम्
स्वाख्यानश्रवणोल्लसत्तरमनःप्रव्यक्तरोमोद्गमम्।
गङ्गाया निकटस्थलादिविवरं कैलासमप्रापयत्
स्वार्द्धं स्वेन मुने विलोकितमिदं साक्षात्परं किं वदे॥६०॥

।।इति श्रीबृहद्धर्मपुराणे व्यासजाबालिसम्बादे जयाविजयासम्बादः पूर्वखण्डे त्रिंशत्तमोऽध्यायः।।

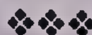
।।पूर्व्वखण्डः समाप्तः।।



व्यास कहते हैं—हे जाबालि! पार्वती की कथा सुनकर जया-विजया प्रफुल्लित हो गयीं। मुख प्रफुल्ल तथा देह रोमांचित हो गयी। देवी भी उन सबको गंगा के निकटवर्त्ती स्थान से गिरिवर कैलाश ले गयीं। यह सब मैंने साक्षात् देखा है। अधिक क्या कहूं।।६०।।

।।त्रिंश अध्याय समाप्त।।

।।पूर्वखण्ड समाप्त।।



मध्यखण्डः

मध्यखण्डः

एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः

सृष्टि प्रकरण, पुरुष सृष्टि

जाबालिरुवाच

रुद्राणीसखिसम्बादस्त्वया प्रोक्तो विशेषतः। तत्र गङ्गा पुण्यतमा प्रोक्ता सर्वसुरोत्तमा॥१॥
का गङ्गा किंप्रभावा च सम्भवोऽस्याः कुतोऽथ वा।
कथं हिमगिरेः कन्या जलरूपा कथं पुनः।
कथं पृथ्वीमागता वा तत्सर्व्वं वद मे गुरो॥२॥

जाबालि कहते हैं—हे गुरुदेव! आपने जो भगवती रुद्राणी तथा उनकी दो सखियों का कथनोपकथन कहा, उनमें से सभी स्थान पर जलाशयों में श्रेष्ठ तथा पुण्यप्रदा गंगा का नामोल्लेख किया गया, वे कौन हैं? उनका क्या प्रभाव है, उनकी उत्पत्ति कहां से है? वे हिमालय की कन्या रूपेण कैसे जन्मी? उन्होंने किस कारण से जलरूपिणी होकर पृथिवी पर अवतरण किया?।।१-२।।

व्यास उवाच

तत्राप्युदाहराम्येनमितिहासं पुरातनम्। शुकजैमिनिसम्बादं जावाले तं निबोध मे॥३॥
पुरा शुको नाम मुनिर्जैमिनिं शिष्यमात्मनः। अध्याप्य सर्वशास्त्राणि गङ्गां गन्तुं समादशित्॥४॥
तदा पप्रच्छ स गुरुं प्रश्नमेतं तु जैमिनिः। तदा शुकस्तं शिष्यं स्वं समुवाच कृपान्वितः॥५॥

व्यासदेव कहते हैं—हे जाबाल! तुम्हारा जिज्ञासित विषय बतलाने के लिये शुक-जैमिनी संवाद नामक एक पुरातन इतिहास है। उसे कहता हूं। श्रवण करो। पूर्व काल में एक शुकनामक ऋषि थे। उन्होंने अपने शिष्य जैमिनी को समस्त शास्त्रों का अध्ययन कराकर गंगातीर जाने का आदेश दिया। तुमने जो विषय पूछा है भगवान् जैमिनी ने वही प्रश्न गुरु से किया था। गुरु ने भी कृपापूर्वक उससे कहना प्रारम्भ किया।।३-५।।

शुक उवाच

पुरा जगदिदं त्वासीन्नष्टस्थावरजङ्गमम्। चन्द्रसूर्य्यादिरहितं शून्यरूपं तमोमयम्।
प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ (न तृतीयं तदा स्थितम्॥६॥
सिसृक्षां पुरुषः प्राप यदा कैवल्यसंस्थितः। तदैव प्रकृतेर्योगात् एकं ब्रह्म त्रिधा बभौ॥७॥)
सत्वं रजस्तमइति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः। तैर्गुणैः पुरुषा जाता नामान्येषाञ्च मे शृणु॥८॥
आद्यस्तु सात्विको नाम द्वितीयो राजसः स्मृतः। तृतीयस्तामस इति ब्रह्माणोऽमी त्रयः स्मृताः॥९॥

गुरु शुक कहते हैं—पूर्व में यह समस्त जगत् शून्यमय तथा अंधकारमय था। चन्द्र-सूर्यादि ग्रह-नक्षत्र तथा स्थावर-जंगमात्मक कुछ भी अवस्थित नहीं था। तब कैलास संस्थित पुरुष में सिसृक्षा (सृष्टि करने की इच्छा) उत्पन्न होने के कारण प्रकृति योग से एक ही ब्रह्म त्रिधा विभक्त हो गये। प्रकृति से उत्पन्न सत्व, रजः, तमः से पुरुषत्रय की उत्पत्ति होने के कारण उनका नाम था सात्विक पुरुष, राजसपुरुष तथा तामसपुरुष।।६-९।।

पुरुषं प्रकृतिर्वीक्ष्य त्रिधाभूतं गुणैस्त्रिभिः। चिन्तयामास कस्तावदेषु मां संग्रहीष्यति।।१०।।
इति संचिन्त्य प्रकृतिस्त्रयाणामुपकारिणी। ब्रह्मैकमद्वितीयञ्च बभूव परमाख्यकम्।।११।।
पुंसां सृष्टिविमूढानामभिज्ञा प्रकृतिः स्वयम्। अपएव ससर्ज्जादौ रसन्तासु न्ययोजयत्।।१२।।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।।१३।।

तत्पश्चात् देवी प्रकृति ने पुरुष को गुणत्रय में विभक्त देखकर मन ही मन विचार किया कि इनमें से कौन मुझे ग्रहण करेगा? उन पुरुषत्रय की उपकारिणी देवी प्रकृति ने यह चिन्तन करने के कारण अद्वितीय परम ब्रह्मरूप धारण करके जल की सृष्टि सम्पन्न किया तथा जल में रस गुण को संयुक्त किया। जो सृष्टि विषय से अनभिज्ञ रहता है, यह प्रकृति ही उसे अभिज्ञान प्रदान करती हैं। तदनन्तर यह प्रकृति ही पुरुष कलेवर धारण करके उस जल में अवस्थित हो गयी। अतः वह मूर्त्ति नारायण कही गयी। इसका कारण यह है कि नार शब्द जल वाचक है। उसमें जो अयन करे अर्थात् स्थान प्राप्त करें अतः जिसका निवास जल में है, वह है नारायण।।१०-१३।।

नारायण इति ख्यातिं प्राप्ता प्रकृतिरुत्तमा। शरीरं ग्राहयामास पुरुषांस्त्रीन् स्वयं कृतान्।।१४।।
ते जलेषु भ्रमन्तो वै स्थानमप्राप्य चिन्तिताः। शुश्रुवुश्च नभोवाणीं सर्वे तपतपेति च।।१५।।
श्रुत्वा तपतपेत्येवं स्तब्धीभूते च वारिणि। आत्मस्वात्मानमावेश्य तपश्चेरुः स्वयं बलात्।।१६।।
तान् तथा तपसाविष्टान् वीक्ष्य सा प्रकृतिः परा। परीक्षितुं मतिं चक्रे उपायेन तपस्यतः।।१७।।

तदनन्तर देवी प्रकृति ने उन सात्विकादि पुरुषत्रय को देह प्रदान किया, तथापि उनमें से दो वासस्थान न मिलने के कारण जल में भ्रमण करके चिन्तान्वित हो गये। तब उनको आकाश वाणी सुनाई पड़ी। "तुम सब तपः करो।" तभी वह जल स्तब्ध हो गया। वे आत्मा में स्थित होकर तपः करने लगे।।१४-१७।।

शवीभूता जले तत्र भासमाना ततस्ततः।
अनुत्ताना छिन्नभिन्ना सर्वाङ्गविगलत्कचा।।
कृमिभिश्चाकुलाङ्गा च गलन्मांसवसाविला।
वीभत्सन्तीव वारीणि सात्विकस्यान्तिकं ययौ।।१८।।१९।।
सात्विकस्तां विलोक्यैव विमुखः समभूत्ततः।
पूर्वा दिक् साभवत्तेन ततोऽपि विमुखोऽभवत्।।२०।।
तत्रापि सा ययौ तेन उत्तरा दिक् ततोऽभवत्।
तत्रापि सा ययौ सोऽपि ततोऽपि विमुखोऽभवत्।।२१।।
पश्चिमा दिगभूत्तेन तत्रापि सा गताभवत्। ततोऽपि विमुखः सोऽभूत् दक्षिणा दिगभूत्ततः।।२२।।

एवं चतुर्म्मुखो भूत्वा निर्वृतिं नाधिगम्य च। पलायितुं मतिश्चक्रे सा च तं तत्यजे द्विज।
तां दृष्ट्वा यदसौ वृद्धस्तेन ब्रह्मा बभूव सः॥२३॥

तब भगवती प्रकृति देवी उन सबको तपः तत्पर देखकर परीक्षा के लिये स्वयं शवरूप धारण करके उस जलराशि पर भासित होने लगी। उनके सभी अंग विकृत, छिन्न-भिन्न तथा कृमि से भरे थे। उसका मांस आदि गल रहा था। वे विभत्सरूप धारी प्रकृति जल पर भासित होकर सात्विक पुरुष के निकट गईं। सात्विक पुरुष ने विमुख होकर पूर्व की ओर मुंह फेर लिया। तब प्रकृति उत्तर की ओर गईं तो वह पश्चिममुखी हो गयी। पुनः उन्होंने (देवी ने) पश्चिम की ओर मुंह किया तब सात्विक दक्षिणाभि मुखी हो गये। सात्विक इस प्रकार चतुर्मुख हो गया। इतने पर भी छुटकारा न पाकर उसने भागने का विचार बनाया। तब प्रकृति ने उसका त्याग कर दिया। प्रकृति के दर्शन के कारण सात्विक पुरुष में अन्यं अतिरिक्त तीन मुख की वृद्धि हो गयी थी। अतः वह ब्रह्मा कहलाया।।१८-२३।।

तस्मै सात्विकभावस्य राजसं ह्यभिभावकम्। दत्वा कृत्वा रक्तवर्णं सर्ज्जकं संविधाय च।
निःससार ततः स्थानात् ययौ राजसिको यथा॥२४॥
तां स राजसिको दृष्ट्वा (व्याप्तवान् सर्वतो दिशः।
सहस्त्रशीर्षः पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
सुस्वाप स जले देवो मुद्रयित्वा तु चक्षुषी॥२५॥२६॥
सा देवी तां तथा दृष्ट्वा तं तत्याज तदैव हि।
तस्मै राजसभावस्य सात्विकं ह्यभिभावकम्॥
दत्वा कृत्वा शुक्लवर्णं पालकं संविधाय च।
निःससार ततः) स्थानात् ययौ तामसिको यथा॥२७॥

तब भगवती प्रकृति ने उसे सात्विक भाव के अभिभावक राजस भाव को प्रदान किया तथा उसे रक्तवर्ण प्रदान करके सृष्टिकर्त्ता बनाया तथा वहां से चली गयीं। तदनन्तर वह शवरूपा प्रकृति द्वितीय राजस पुरुष के समक्ष आयीं। वे मनोविकार के कारण सहस्रशीर्ष तथा सहस्रचक्षु एवं सहस्रपाद हो गये तथा दसों दिशाओं को व्याप्त करने के कारण विष्णु कहें गये। तदनन्तर वे नेत्र बन्द करके जल में शायित हो गये। तब प्रकृति ने उनका ऐसा भावदर्शन करके उनको राजसभाव का अभिभाव सात्विक भाव प्रदान किया तथा उनको शुक्लवर्ण तथा पालक बनाकर वहां से चली गयीं।।२४-२७।।

तामसस्य समीपं सा जगाम शवरूपिणी। न च कर्तुं समर्थाभूत्तत्समाधिनिवारणम्॥२८॥
ततो वायुं ससर्ज्जादौ जैमिने गन्धवाहिनम्॥२९॥
वायुस्तु तस्या वपुषः परामाणून् सुपूतिकान्। पुंसो घ्राणेन्द्रियेणैव योजयामास तत्क्षणात्॥३०॥
तेन दृष्टेन गन्धेन पुमान् भग्नसमाधिकः। ददर्श जानुसंपृष्टं शवं विकृतविग्रहम्॥३१॥
तदैवोत्थाय सलिले तां धृत्वा पाणिना द्विज। तद्वक्षसि समास्थाय मनो दध्रे समाधये॥३२॥
तदा सा बुबुधे देवी तं शिवाख्यं शिवाश्रयम्। तं समाशिश्रिये शक्तिः पुरुषं प्रकृतिः परा॥३३॥

शिवस्तु तां समारुह्य चिन्तयामास चेतसा। चिन्तयित्वा मुहूर्त्तेन ज्ञात्वा तां मूलरूपिणीम्।
अङ्गुष्ठमात्रः समभूल्लिङ्गरूपी महेश्वरः॥३४॥

तदनन्तर वे शवरूपा प्रकृति तामस पुरुष के पास गयीं। वे उनकी समाधि भंग न कर सकीं। अन्ततः उन्होंने गन्धवाहिनी वायु की सृष्टि किया। हे जैमिनी! तत्क्षण उस वायु ने देवी के सड़ रहे शव से दुर्गन्ध के परमाणु एकत्रित किया तथा उसे संचालित करके तामस पुरुष के नासारंध्र में उसका अनुभव कराया। इस दुर्गन्ध से तामस पुरुष की समाधि भंग हो गयी। तब वे अपनी तामस जानु पर उस विकृत शव को देखकर हाथों से उठाकर उसके वक्षस्थल पर बैठ गये तथा समाधि में चले गये। आद्याशक्ति देवी परमा प्रकृति ने उस तामस पुरुष को परम शिवमय जानकर उनको शिवनाम प्रदान करके मन ही मन उनका आश्रय ग्रहण किया। तब शिव भी उस शवासन पर आसीन होकर चिन्तन कर रहे थें। उन्होंने उसे मूल प्रकृति रूप से पहचाना और स्वयं अंगुष्ठ नाम वाले लिंग का रूप ग्रहण किया।।२८-३४।।

तं लिङ्गरूपिणं दृष्ट्वा देवी सा शवरूपिणी। शवरूपं परित्यज्य योनिरूपा बभूव ह॥३५॥
त्रिकोणमण्डलाकारे लिङ्गमारोप्य स्वात्मनि। माहेश्वरप्रजासृष्ट्यै ममज्ज सलिले द्विज॥३६॥
प्रकृतेः पुरुषस्यापि यावल्लिङ्गमिदं जले। तावन्माहेश्वरी सृष्टिर्वियोगे प्रलयो भवेत्॥३७॥

उन शवरूपा देवी ने महादेव को लिंग रूपी देखकर स्वयं योनिरूप धारण करके उस त्रिकोण में मण्डलाकार लिंग को स्थापित किया और वे महेश्वरी प्रजासृष्टि हेतु जलमग्न हो गयीं। हे द्विज! जब तक प्रकृति तथा पुरुषात्मक यह लिंग जल में रहेगा, तब तक माहेश्वरी सृष्टि बनी रहेगी। वहां जल का वियोग हो जाने पर प्रलय उपस्थित होगा।।३५-३७।।

योनिः साक्षात् भवगती लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः। तयोस्तु पूजनेन स्यात् सर्वदैवतपूजनम्॥३८॥
एतयोः पूजनाभावे सृष्टिलोपो न चान्यथा। अपूजयित्वा यो भुङ्क्ते स सर्व्वेष्टपराङ्मुखः॥३९॥
तत्र लिङ्गे जले मग्ने प्रकृतिः शवरूपताम्।
त्यक्त्वा चक्रे शिवं स्थूलं स्वार्थाय त्रिगुणात्मकम्॥४०॥
गुणेनैकेन सृष्टिः स्यात् गुणेनैकेन पालनम्। त्रिभिर्गुणैर्विना न स्यात् संहारः किल जैमिने॥४१॥
अतः शिवस्तु त्रिगुणः सर्व्वेषामुपकारकः। शुक्लवर्णो रराजासौ त्रिनेत्रो नीललोहितः॥४२॥
अथैव प्रकृतिं देवीमदृष्ट्वा पूर्वसम्भवौ। निरालम्बौ बभ्रमतुर्व्याकुलौ च बभूवतु।
तयोर्व्याकुलतां दृष्ट्वा प्रकृतिर्दर्शनं ददौ॥४३॥
निराकाराञ्च तां दृष्ट्वा दृष्ट्वा ज्योतिःस्वरूपिणीम्।
ब्रह्मविष्णू तुष्टुवतुः स्तुतिभिः परमादरात्॥४४॥

तभी योनि साक्षात् भगवती है, तथा लिंग साक्षात् महेश्वर हैं। इनकी पूजा से सबकी पूजा सम्पन्न हो जाती है। योनि तथा लिंग पूजा का अभाव होने पर सृष्टिलोप होना निश्चित है। जो उक्त लिंग पूजा बिना भोजन करता है, उसे उसके अभीष्ट नहीं मिलता। इसी प्रकार लिंग जलमग्न होने पर देवी प्रकृति शवरूपता त्याग करके कार्य साधन हेतु शिव को त्रिगुणात्मक मूर्त्ति धारण कराती हैं। एक गुण से सृष्टि होती है। अन्य गुण से पालन सम्पन्न होता है। हे जैमिनी!

गुणत्रय मिलने से ही संहार होता है, केवल एक-दो गुण से यह नहीं हो सकता। तभी नीललोहित, त्रिनयन, शुक्लवर्ण सर्वोपकारक भगवान् शिव त्रिगुण रूप से विराजित रहते हैं। इधर ब्रह्मा तथा विष्णु ने जब देवी प्रकृति को वहां नहीं पाया तब वे व्याकुल चित्त तथा निरालम्ब होकर चक्रमण करने लगे। तब प्रकृति ने उनकी व्याकुलता देख उनको अपना दर्शन प्रदान किया। तब ब्रह्मा तथा विष्णु ने निराकारा ज्योतिरूपा भगवती प्रकृति का स्तव आदरपूर्वक प्रारम्भ किया।।३८-४४।।

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

त्वं मूलप्रकृतिर्देवी निर्विकारा सनातनी। महदाद्या विकारास्ते षोड़श प्रकृतेर्हि ये॥४५॥
वयन्तु पुरुषा नाम सततं त्वद्वशाः स्थिताः। शिवं किमेकं गृह्णीषे त्यजस्यावां कथं पुनः॥४६॥

ब्रह्मा विष्णु कहते हैं—हे देवी! आप निराकृति, सनातनी, मूलप्रकृति हैं। महदादि १६ तत्व आप का ही विकार है। हम आपके अधीनस्थ हैं। अतएव आप हमारा त्याग करके केवल शंकर का ही आश्रय क्यों ले रही हैं?।।४५-४६।।

शुक उवाच

इत्युक्त्वा सा च प्रकृतिर्निराकारा ब्रवीति तान्। शिवञ्च सन्निधीकृत्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्॥४७॥

प्रकृतिरुवाच

सत्वं रजस्तमइति गुणा मे जगदीश्वराः। तेन त्रयो हि पुरुषाः कृता यूयं पृथङ्मताः॥४८॥
कथं त्यक्ता मया यूयं नैवं वै मन्यथ क्वचित्। यथा त्रयो वै पुरुषाः यूयं तद्वदहं पुनः।
भविष्यामि पञ्चभेदा प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका॥४९॥
ब्रह्मा चतुर्मुखश्चासौ करोतुसृष्टिमुत्तमाम्। पालनञ्च करोत्वेष विष्णुः परमपुरुषः॥५०॥
सत्वमूर्त्तिरयं देवो मध्यमो वो महोत्तमः। नारायणाख्यो भगवान् वासुदेवः सनातनः॥५१॥
शिवोऽयमन्ते प्रलयं करिष्यति गुणत्रयी॥ ब्रह्मा सृजतु भूतानि स्थावराणि चराणि च।
करोतु मानसीं सृष्टिं प्रजावृद्धिर्नचेद् भवेत्॥५२॥
तदा हि जङ्गमा सृष्टिर्द्विधा सम्पादयिष्यते। स्त्री पुमानिति भेदेन विस्तीर्णा स्यात् प्रजा तदा॥५३॥
स्त्रीरूपाहं भविष्यामि पुंरूपश्च महेश्वरः। लिङ्गाङ्का च भागाङ्का च तस्मान्माहेश्वरी प्रजा॥५४॥
एतदर्थं जले लिङ्गं भगविद्धं प्रवर्त्तते। भगलिङ्गं प्रजावृद्ध्ये प्रजाभिः पूजयिष्यते॥५५॥

शुक कहते हैं—निराकारा देवी प्रकृति ने ब्रह्मा-विष्णु का यह स्तव सुनकर वहां शंकर को बुलाकर सबसे कहा—सत्व-रजःतमः रूप मेरे गुणत्रय ही जगत् के ईश्वर हैं। इनसे ही सृष्टि-स्थिति-लय होता है। आप इन्हीं से उत्पन्न हैं। अतः ऐसा विचार न करें कि मैंने ब्रह्मा तथा विष्णु का त्याग कर दिया! आपने जिस प्रकार गुणत्रय के कारण तीन रूप धारण किया है, मैं भी विविध मूर्त्ति हूं। मैं भी पंचभाग में विभक्त हूं। अब चतुरानन ब्रह्मा सृष्टि करें। सत्वमूर्त्ति सनातन नारायण पालन कार्य करें। त्रिगुणात्मक शिव प्रलय करें। ब्रह्मा स्थावर तथा जंगम प्रजा सृष्टि करें। मानसी सृष्टि भी करें। मैं भी स्त्री-पुरुष भेदरूप विविध सृष्टि करूंगी। इससे प्रजा परिपूर्ण होगी। मैं स्त्रीरूप में तथा शंकर पुरुष

रूप में उत्पन्न है। अतः माहेश्वरी प्रजा लिङ्गाङ्का तथा भागाङ्का होगी। इस प्रजा वर्द्धन हेतु ही भगवद् लिंङ्ग जल में स्थित है। इस भगलिंग से ही प्रजावर्ग जगत् में व्याप्त है।।४७-५५।।

युष्मानपि च लप्स्यामि स्त्रियो भूत्वाथ पञ्च वै। गङ्गा दुर्गा च सावित्री लक्ष्मीश्चैव सरस्वती।।५६।।
एताः प्रकृतयः पञ्च भविष्यामि सुरोत्तमाः। नानारूपा भविष्यामो वयञ्च ब्रह्मसृष्टिषु।।
सत्वादि गुणकार्य्ये च यूयं भवत सादराः।।५७।।

इससे ही आप सबको सब मिले। गंगा, दुर्गा, सावित्री, लक्ष्मी तथा सरस्वती रूपा स्त्री रूप पंचमूर्त्ति तुब सबको प्राप्त हो। देवगण में प्रधानता से उक्त पंचप्रकार प्रकृति रूप उत्पन्न होकर पुनः समस्त सृष्टि में नानारूपेण प्रादुर्भूत होगा। अब आप सब सत्वादि गुणकार्य के प्रति यत्नतत्पर हो जायें।।५६-५७।।

शुक उवाच

इत्युक्त्वा प्रकृतिर्देवी निराकारा निरञ्जना। निववर्त्त पुमांसोऽपि कार्य्यकाले व्यवस्थिताः।।५८।।

।।इति श्रीबृद्धर्मपुराणे शुकजैमिनिसम्बादे मध्यखण्डे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः।।



शुक कहते हैं—देवी प्रकृति यह कहकर अन्तर्हित हो गयी तथा ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर ने अपने कार्य में मन लगाया।।५८।।

।।एकत्रिंश अध्याय समाप्त।।



द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः

देवसृष्टि

शुक उवाच

अथ पूर्णः पुमान् विष्णुः सत्वमाश्रित्य भूतवान्। अशयिष्ट जले तस्य नाभेः पद्ममभून्महत्।।१।।
स्त्रष्टुं समुद्यतो ब्रह्मा बहुधा सलिले भ्रमन्। तदेव पद्मं सुमहत् स्थूलं प्राप द्विजोत्तम।।२।।
तस्मिन्नेव महापद्मे स्त्रष्टुं समुपचक्रमे। कालमादौ ससर्जैव दण्डलक्षलवादिकम्।।३।।
अतो यज्ञे महातत्त्वं ततोऽहं समजायत। तन्मात्राणि ततः पञ्च तेभ्यो भूतानि पञ्च वै।।४।।
पृथिवीजलतेजांसि वाय्वाकाशौ तथैव च। सृष्ट्वा मात्राणि तेष्वेव साश्रयाण्यभवन् क्रमात्।।५।।
क्षितौ गन्धो रसो वार्षु रूपं तेजसि चाश्रितम्। वायौस्पर्शस्तथा शब्द आकाशे द्विजसत्तम।।६।।

शुक कहते हैं—तदनन्तर भूतभावन पूर्णपुरुष विष्णु ने सत्वगुण को आश्रय लेकर जलशायी स्थिति में अपने नाभि से एक पद्म समुद्भूत किया। हे द्विजोत्तम! तब भगवान् ब्रह्मा ने सृष्टि इच्छा से जल पर अनेक काल पर्यन्त भ्रमण

करके उसी पद्म का आश्रय लेकर पहले दण्ड-क्षण तथा लव आदि काल का सृजन किया। तत्पश्चात् काल से महत्तत्व, उससे अहंकार, उससे पञ्चतन्मात्र, उससे क्षिति-अप-तेज-मरुत्-व्योम रूप पञ्चभूत का सृजन किया। इस पंचभूत से पंचभूत तन्मात्र को उत्पन्न किया। इस क्रम में पृथिवी को गंध, जल को रस, तेज को रूप, वायु को स्पर्श तथा आकाश को शब्दाश्रय प्रदान किया।।१-६।।

चक्रे देहं पञ्चभूतैस्तन्मात्रैरिन्द्रियाण्यपि। अधिष्ठाताभवत्तत्र विष्णुर्जीवः स्वयं पुमान्॥७॥
प्रकृत्या वीक्षितो देव एवं सर्व्वत्र कल्पना। अहं ममेति नामत्वान्नानारूपञ्च प्राप्तवान्॥८॥
प्रकृतिस्त्रिविधा प्रोक्ता विद्याविद्या द्वयं तथा।
विद्या तु पञ्चधा भूता गङ्गाद्याः कथिता पुरा॥९॥
अविद्याद्वयमुक्तं यन्माया च परमा तथा। माया ह्यावरिका शक्तिः परमाजीवयोर्मता॥१०॥
जीवो नारायणो विष्णुः पुरुषः परमेक्षितः। यया वृतो न परमां द्रष्टुं प्राप्नोति बुद्धिमान्॥११॥

तत्पश्चात् उन्होंने पञ्चभूत द्वारा देह को स्पष्ट किया तथा पंचतन्मात्र से इन्द्रियों को स्पष्ट किया। तब परमपुरुष विष्णु जीवरूपेण देह के अधिष्ठाता हो गये। तदनन्तर वे प्रकृति द्वारा अवलोकित होकर अहं-मम् इत्यादि रूप से नाना रूप में विराजमान हो गये। प्रकृति तीन प्रकार की है विद्या तथा दो अविद्या। विद्या ही गन्धादि पंचमूर्त्ति में उत्पन्न होती है। यह पहले ही कहा गया है जो अविद्याद्वय की बात कही गयी है, उसमें एक है माया तथा दूसरी है परमा! माया तथा परमा जीव को आवरित कर लेती हैं। (माया आवरिका है। परमा जीव है।) जीव तत्त्वतः नारायण विष्णु होकर भी माया से आवृत होने के कारण परमा का सन्दर्शन करने में समर्थ नहीं है।।७-११।।

यदि तस्याः प्रसादेन तपस्यादिभवेन वै। तां पश्यति तदा तत्त्वं प्राप्य निर्वृतिमिच्छति॥१२॥
ततो ब्रह्मा ससर्जैव मानसांस्तनयान्दश। वशिष्ठमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्॥१३॥
भृगुं दक्षं नारदञ्च कर्द्दमं दशमं तथा। एते सृष्टाः स्वपितरं प्राहुर्ब्रह्मन् कथं वयम्॥१४॥
सृष्टास्तानाह वै ब्रह्मा प्रजाः सृजत पुत्रकाः। प्रतिसर्गे ह्यकुशलाः सृष्ट्यर्थं तपसि स्थिताः॥१५॥
ब्रह्मा वपुर्द्विधा चक्रे प्रजावृद्ध्यै द्विजोत्तम। वामार्द्धं शतरूपाख्या स्त्रीजाता चारुरूपिणी॥१६॥
दक्षिणार्द्धं पुमान् भूतो नाम्ना स्वायम्भुवो मनुः। कन्दर्पञ्च हृदः स्थानाज्जनयामास सृष्टये॥१७॥

तपादि से परमा को प्रसन्न करने पर उसकी कृपा से जीव उसका सन्दर्शन करके तत्वज्ञान की उपलब्धि द्वारा परम शान्ति लाभ करता है। तदनन्तर ब्रह्मा ने वसिष्ठ, अत्रि, अङ्गीराः, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, दक्ष, नारद तथा कर्दम, इन १० मानस पुत्र की उत्पत्ति किया। ये सब पिता ब्रह्मा से कहने लगे—"हे ब्रह्मन्! आपने हमारा सृजन क्यों किया"? तब ब्रह्मा ने कहा—"हे पुत्रगण! तुम सब प्रजोत्पत्ति करो।" तब उन्होंने कहा "हम इसमें सक्षम नहीं है।" तथा इन सब ने तपःश्चरण में मन लगाया। हे द्विजोत्तम! तब ब्रह्मा ने प्रजा की वृद्धि हेतु अपने शरीर को भागद्वय में विभक्त किया। वामार्द्ध का नाम था शतरूपा जो अत्यन्त सुन्दरी स्त्री थी। दक्षिणार्द्ध से स्वायम्भुव मनु नामक एक पुरुष जन्मा। ब्रह्मा ने अपने हृदय से कामदेव की भी सृष्टि की।।१२-१७।।

तदा मैथुनधर्मेण प्रजा समभवद् बहुः। भार्य्यायां शतरूपायां मनुः स्वायम्भुवो यदा।
पञ्चापत्यान्यजनयत् तिस्रः कन्याः सुतद्वयम्॥१८॥

आकूतिन्देवहुतिञ्च प्रसूतिमिति कन्यकाः। प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ च द्विजसत्तम॥१९॥
तदा प्रजानां स्थित्यर्थं विष्णुः शूकररूपधृक्। उद्धधार धरां धीर प्रजाधारणकारिणीम्॥२०॥

अब मैथुन से प्रचुर प्रजावृद्धि होने लगी। उक्त स्वायम्भुव मनु के औरस से तथा शतरूपा के गर्भ से प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दो पुत्रों का जन्म हुआ। साथ ही आकूति, देवहूति तथा प्रसूति नामक कन्यात्रय ने भी जन्म लिया। इसी काल में भगवान् विष्णु प्रजागण के अवस्थान का उपाय करने हेतु शंकर रूपी होकर पृथिवी का उद्धार करने रसातल गये तथा उसका उद्धार किया।।१८-२०।।

आकूतिं रुचये प्रादात् कर्दमाय तु मध्यमाम्। ददौ प्रसूतिं दक्षाय यैरेव वर्द्धिताः प्रजाः॥२१॥
कर्दमो जनयामास देवहूत्यां सुतान् बहून्। अरुन्धतीप्रभृतयो वशिष्ठादिस्त्रियः शुभाः॥२२॥
रुचेर्यज्ञस्तथाकूत्यां दक्षस्यापि प्रजाः शृणु। कन्याः संजनयामास दक्षो नाना प्रसूतितः॥२३॥
कन्यामेकामग्नयेऽदात् स्वाहानाम्नीं द्विजोत्तम। सतीनाम्नीं महेशाय कश्यपाय त्रयोदश॥२४॥
अदितिर्द्दितिर्दनुः काष्ठा अविष्टा सुरसा तिमिः। मुनिः क्रोधवशा ताम्रा विनता कद्रुरेव च॥
त्रयोदशी भानुमती शृण्वपत्यानि जैमिने॥२५॥

स्वायम्भुव मनु ने प्रजापति रचि को आकूति प्रदान किया। दक्ष को प्रसूति प्रदान किया। कर्दम को देवहूति प्रदान किया। कर्दम ने देवहूति के गर्भ से बहुल पुत्रों को उत्पन्न किया। रुचि ने आकूति के गर्भ से वसिष्ठ पत्नी अरुन्धति प्रभृति सुलक्षणा कन्याओं को उत्पन्न किया। अब दक्ष की सन्तति का वर्णन सुनो। उन्होंने प्रसूति के गर्भ से अनेक कन्याओं को उत्पन्न करके स्वाहा अग्नि को, सती शंकर को तथा कश्यप को दिति-अदिति-दनु-काष्ठा-अरिष्टा-सुरसा-तिमि-मुनि-क्रोधवशा-ताम्रा-विनता-कद्रु तथा भानुमति, इन १३ कन्याओं को प्रदान किया। हे द्विजोत्तम जैमिनी! अब इनके सन्तान का वर्णन श्रवण करो।।२१-२५।।

अदित्यां समभूत्सूर्य्यः सूर्य्यपुत्रो मनुः परः। सूर्य्यवंशो महानेष पुण्यकीर्त्तिरनामयः॥२६॥
दितेश्च जाता वै दैत्या दनोर्द्दानवसम्भवः। काष्ठायाः पशवोऽश्वाद्या अविष्टायास्तु भूरुहाः॥२७॥
सुरसायान्तु मारीचोऽजनत् पञ्चनखान् पशून्। तिमेः कुम्भीरमत्स्याद्या मुनेर्गोमहिषादयः॥२८॥
अत्रिपत्न्यां तु कार्दम्यां पुत्रत्रयमजीजनत्। दत्तं दुर्वाससं चन्द्रं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकान्॥२९॥
चन्द्रपुत्रो बुधो जातो बुधस्य च पुरूरवा। एवं हि चन्द्रवंशोऽयं पुण्यकीर्त्तिरनामयः॥३०॥

अदिति के गर्भ से सूर्य का जन्म हुआ। सूर्य के पुत्र थे। वैवस्वत मनु। मनु से ही महान् सूर्यवंश का प्रवर्त्तन कहा गया है। दिति के गर्भ से दैत्य, दनु के गर्भ से दानव, काष्ठा के गर्भ से अश्वादि पशु, अरिष्टा के गर्भ से महीरुह, सुरसा के गर्भ से ५ नख वाले पशु, तिमि के गर्भ से कुम्भीर-मस्त्य आदि जलचर, मुनि के गर्भ से गो-महिषादि की उत्पत्ति कही गयी है। अत्रिपत्नी कार्दमी के गर्भ से दत्त (नारायणात्मक), दुर्वासा (शिवात्मक), चन्द्र (ब्रह्मात्मक) नामक तीन पुत्र जन्मे। चन्द्र से बुध, बुध से पुरुरवा तथा पुरुरवा से परमपवित्र चन्द्रवंश का प्रवर्त्तन कहा गया है।।२६-३०।।

एषा तु मानवी सृष्टिः सर्वशो हि चतुर्विधा। ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चेति पृथक् पृथक्॥३१॥
सुरासुरनराः पक्षिपशुद्रुमलतादयः। एवं चतुर्व्विधा सर्वा प्रजा वर्णचतुष्टयी॥३२॥

ततः सन्ध्या समभवत् कन्या वै ब्रह्मणः शुभा।
तस्यां ब्रह्मा मनश्चक्रे मनोभवविधर्षितः॥३३॥
ब्रह्मा शरीरं तत्याज नीहारः समभूच्च तत्। ताञ्च सन्ध्यां त्रिधा चक्रे प्रातः सायञ्च मध्यमाम्॥३४॥
ततो ब्रह्मा पुनर्देही क्रोधञ्चक्रे महत्तरम्। ततो जातो महारुद्रः कामनाशाय धूर्जटिः॥३५॥
तं ददर्श तदा ब्रह्मा जटिलं नीललोहितम्। त्रिनेत्रं पञ्चवदनमेकवक्त्रं द्विवक्त्रकम्॥३६॥
त्रिवक्त्रञ्च चतुर्वक्त्रं भीमं कोटिरविप्रभम्। निःश्वसन्तं मुहुर्घुर्णन्नयनं नीललोहितम्॥३७॥
मारय भ्रामय क्रोधात् द्रावयोच्चाटयेति च। मुहुर्मुहुर्वदन्तञ्च धावन्तं दन्तदन्तुरम्॥३८॥

उक्त मानवी सृष्टि में सुर-असुर-नर-पशु-पक्षी-वृक्ष-लतादि निखिल पदार्थोत्पत्ति हुई। सभी ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्ररूपेण ४ जाति हैं। तब ब्रह्मा की मानसी कन्या संध्या का जन्म हुआ। ब्रह्मा उसके रूप-लावण्य को देख काम पीड़ित हो गये। उन्होंने उससे सहवास की कामना किया। तदनन्तर प्रातः मध्याह्न तथा सायाह्न भेद से उसको त्रिधा विभक्त करके अपना शरीर त्याग दिया इससे नीहार की उत्पत्ति हो गयी। तब ब्रह्मा ने पुनः देहधारण करके काम के प्रति अतिशय क्रोध किया। उस क्रोध से कामविनाशक कोटिसूर्य-समप्रभ भीममूर्ति रुद्र की उत्पत्ति हो गयी। वे नीललोहित, त्रिनेत्र, जटाधारी तथा समस्त जगत् को ग्रास करने वाले लगते थे। ब्रह्मा ने देखा कि ये कभी ५ मुख वाले, कभी ३ मुख वाले, कभी २ मुख वाले, कभी चार मुख अथवा १ मुख वाले होते रहते हैं। वे नेत्रों को घुमा-घुमाकर घन-घन प्रबल निःश्वास छोड़ते भीषण क्रोध युक्त हो भीमरव के साथ मारो-मारो-काटो आदि वाक्य ही उच्चरित कर रहे थे। वे दांत किकिटाते तथा चतुर्दिक् दौड़ रहे थे।।३१-३८।।

तं दृष्ट्वा भीषणवरं ग्रसन्तमिव सर्व्वतः। विभेदैकादशविधं रुद्रा एकादशाभवन्॥३९॥
ते तथैवोग्ररूपा वै अभूवन् सृष्टिलोपकाः। ब्रह्मा दक्षं समाहूय जगाद भयविह्वलः॥४०॥
वत्स दक्ष महाभाग भ्रातरोऽमी तवोत्तमाः। वशे स्थापय चैतांस्त्वं मा मां ग्रसत्वयं गणः॥४१॥

तब ब्रह्मा उन विकटदन्त महारुद्र का यह भाव देखकर भयग्रस्त हो गये। उन्होंने उसे ११ खण्डों में विभक्त किया। जिससे ११ रुद्र उत्पन्न हो गये। तदनन्तर तब भी उनकी सृष्टिनाशक उग्रता को देखकर भगवान् ब्रह्मा ने भयभीतावस्था में दक्ष को बुलाकर कहा "हे पुत्र! सुनों! महाभाग! ये तुम्हारे भ्राता है। इनको शीघ्र ले जाओ, जिससे ये मेरा ग्रास न करें।।३९-४१।।

श्रुत्वैवं ब्रह्मवचनं दक्षः पितृहिते रतः। स्वेन योगवलेनैव तान् वशेऽस्थापयत् स्वकान्।
सर्पानिव विषात्युग्रान् महामन्त्रवलेन वै॥४२॥
जनयित्वा विधी रुद्रांस्तत्याज क्रोधमात्मनः। क्रोधस्तु स्वाश्रयद्रोही तं श्रेयोर्थी परित्यजेत्॥४३॥
यच्च रुद्रभयाद् ब्रह्मा शरीरे विकृतिं गतः। यक्षरक्षोगणांश्चैव ततो जाताः सहस्त्रशः॥४४॥
एवं यथोपयोगेन गन्धर्व्वाद्याश्च जज्ञिरे। एवं ससर्ज वै ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता सनातनः।
विष्णुः पालयते सर्व्वमवतीर्य्य निजेच्छया॥४५॥

।।इति श्रीबृहद्धर्मपुराणे मध्यखण्डे द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः।।

तब पिता का हित चाहने वाले दक्ष ने ब्रह्मा का वचन सुनकर जैसे महामन्त्रबल से उग्रविषधर को वशीभूत किया जाता है, उसी प्रकार अपने योगबल से उनको वशीभूत किया। विधाता ने इस प्रकार रुद्रगण का उत्पादन करके क्रोध त्याग दिया। क्रोध जिसे उत्पन्न होता है, उसका ही अहित करता है। अतएव कुशल चाहने वाला व्यक्ति क्रोध त्याग करे। रुद्रभय से ब्रह्मा के शरीर में जो विकृति हो गयी थी, उससे हजारों यक्ष-राक्षस-गन्धर्वों की क्रमशः उत्पत्ति हो गयी। सृष्टिकर्त्ता सनातन ब्रह्मा ने इसी प्रकार से सृजन किया तथा ब्रह्मा भी स्वेच्छा से सृष्टि का पालन करने लगे।।४२-४५।।

।।द्वात्रिंश अध्याय समाप्त।।



त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

सतीस्वयम्बर

शुक उवाच

अंशस्तृतीयः प्रकृतेर्विद्या सा पञ्चधा मता। अर्द्धं दाक्षायणी देवी सावित्री पादमेव च।।१।।

पादमन्यत् द्विधाभूतं लक्ष्मीरथ सरस्वती।
तत्र दाक्षायणी देवी सती पितृमखे द्विज।।
श्रुत्वा शिवस्य निन्दां वै तनुं तत्याज सुन्दरी।
त्यक्त्वा तंनुं द्विधाभूता हिमालयमगाद्द्विज।।२।।३।।

शुक कहते हैं—जिस प्रकृति के विद्या तथा अविद्या आदि के अंशत्रय में से विद्या को ५ भाग में विभक्त करने का वर्णन किया गया है, उसमें विद्या के अर्द्धांश से दाक्षायणी, तृतीय अंश से सावित्री तथा चतुर्थांश से लक्ष्मी एवं सरस्वती प्रादुर्भूत हुयी थीं। हे द्विज! ये देवी दाक्षायणी ही सती हैं। इन्होंने पितृयज्ञ में शिवनिन्दा सुनकर देह त्याग दिया तथा गंगा एवं उमा रूप से हिमालय की पुत्री रूप में जन्म लिया।।१-३।।

जैमिनिरुवाच

कथं दाक्षायणी देवी तनुं तत्याज तादृशीम्। कथम्बा निन्दयामास शिवं देवं महेश्वरम्।।४।।
द्विधा भूत्वा कथं देवी हिमालयमगाद्गुरो। तद्वदस्वानुपूर्व्येण शिष्यस्तेऽहं प्रियो यदि।।५।।

जैमिनी कहते हैं—हे गुरुदेव! दक्ष ने महादेव की निन्दा क्यों किया? किस कारण दाक्षायणी ने देह त्याग किया तथा किस प्रकार हिमालय द्वारा द्विधा होकर जन्म लिया? यदि मैं आपका प्रिय शिष्य हूं, तब यथाक्रमेण यह सब विवरण वर्णन करिये।।४-५।।

शुक उवाच

पुरा प्रजापतिर्दक्षः शेषकन्यां सतीं शुभाम्। अनन्यकान्तिसौन्दर्य्यगुणाढ्यां सत्यरूपिणीम्।।६।।

तां दृष्ट्वा पतिसङ्गार्हां कस्मै देयेति चिन्तयन्। स्वयम्बरा भवत्वेषा दृष्ट्वा योग्यं पतिं सती॥७॥
इति निश्चित्य मनसा समाहूयाखिलानपि। चक्रे रूपमयीं गोष्ठीं विना देवं त्रिलोचनम्॥८॥
शिवमेव पतिं प्राप्तं सती यत्नवती सदा। आराधयामास सदा तन्न जानन्ति केचन॥९॥
अथ प्रजापतिर्दक्षः काले प्राप्ते सुलक्षणे। सभां प्रवेशयामास सतीं परमसुन्दरीम्॥१०॥
ज्वलत्कनकगौराङ्गीं मोहयन्तीं जगत्त्रयम्। वासः परिदधानाञ्च चन्द्रकोटिशुचिच्छवि॥११॥
सुगन्धिकुसुमाबद्धकेशपाशां कृशोदरीम्। सिन्दूरतिलकं भाले वहन्तीं चारुलोचनाम्॥१२॥
रूपरत्नाकरे रूपलक्ष्मीमिव समुत्थिताम्। माल्यहस्तां रत्नपीठवरोपरिलसत्तराम्।
तां दृष्ट्वा मुमुहुः सर्व्वे वाक्यागोचररूपिणीम्॥१३॥

शुक कहते हैं—प्रजापति दक्ष ने अनुपम रूपलावण्यवती सत्यरूपा कनिष्ठ कन्या सती को विवाह योग्य देखकर विचार किया "इसके उपयुक्त वर कौन होगा? मेरे विचार से सती स्वयंवर सभा में स्वयं वर का चयन करें!" दक्ष ने मन में यह विचार करके परमरमणीय स्वयंवर सभा का आयोजन किया, तथापि यह कोई नहीं जानता था कि सती बराबर महेश्वर को ही पतिरूपेण वरण करना चाहती थीं। तभी यत्नपूर्वक उनकी आराधना में तत्पर रहा करती थीं। दक्ष ने उस स्वयंवर सभा में शंकर को छोड़कर सभी को निमंत्रित किया था।

दक्ष जब परमसुन्दरी सती को सभास्थल में लाये, तब उनका रूपदर्शन करके त्रिलोक मुग्ध हो गया। वे उज्जवल स्वर्णवत् गौरवर्णा थीं। उनका वस्त्र कोटिचन्द्रवत् मनोहर था। केशपाश में सुन्दर पुष्पमालायें सजी थीं। ललाट पर सिन्दूर तिलक विराजित था। वह सुन्दर नेत्रों वाली तथा कृश उदरवाली सती माला हाथ में लेकर रत्नमय पीठ पर आसीन थीं। उनको देखकर सभी ज्ञानरहित हो गये। सबने मन ही मन विवेचन किया कि मानो समुद्र से रूपलक्ष्मी आविर्भूत हैं। वास्तव में सती के रूप लावण्य को देखकर सबकी वाणी ने मानो हार स्वीकार कर लिया अर्थात् किसी की बोली नहीं निकल रही थी।।५-१३।।

दक्ष उवाच

वत्से सति त्रिनयने योग्यं दृष्ट्वा पतिं वृणु। मुनयो देवदैत्याद्याः सर्व्वे ह्यत्र समागताः॥१४॥
त्वं यथा चारुसर्व्वाङ्गी तथा सर्व्वाङ्गसुन्दरम्। दृष्ट्वा नेत्रैस्त्रिभिः पुत्रि पतिं वृणवनया स्त्रजा॥१५॥

दक्ष कहते हैं—हे पुत्री सती! अब तुम स्वयं देखकर अपने पति का चयन करो। देव-दानव-मुनिगण—ये सभी यहां उपस्थित हैं। इनमें से जिनको अपने अनुरूप समझो, उसका वरण कर लो। हे पुत्री! तुम त्रिनयना हो। अपने तीनों नेत्र खोलकर देखो।।१४-१५।।

इत्युक्ता सा तदा पित्रा दृष्ट्वा समितिमुत्तमाम्। महेश्वरं न दृष्ट्वैव शिवशून्याममन्यत॥१६॥
मनसा चिन्तयामास पिता मम शिवं द्विषन्। शिवशून्यां सभाञ्चक्रे को मे शिवमृते पतिः॥१७॥
प्रभो देव महेशान बुद्धिरूप सनातन। नागतोऽसीह यस्मात् त्वं तन्मन्ये मामुपेक्षसे॥१८॥
किन्तु त्वां देवदेवेशं भगवन्तं विना परम्। नैवाहं वरयिष्यामि पतिं त्रिजगतां पतिम्॥१९॥
कोऽपि त्वां द्विषतु क्रूरः कोऽपि निन्दयतु ध्रुवम्। मामेव हन्तु वा कोऽपि भवानेव पतिर्मम॥२०॥

तव निन्दाकथा चैषां नास्तु मत्कर्णगोचरः। यदा ते निन्दनवचो मत्कर्णगोचरो भवेत्॥२१॥
तदा देहं परित्यज्य लप्स्यामि त्वां भवान्तरे। इति निश्चित्य मनसा देवी दाक्षायणी द्विज॥२२॥

पिता का वचन सुनकर सती ने सभा की ओर दृष्टि घुमाया, वे वहां महादेव को नहीं देख सकीं। उनको शिवरहित यह सभास्थल शून्यवत् लगा, तथापि वे सोचने लगीं कि त्रिलोचन के अतिरिक्त कोई मेरा पति नहीं होगा। वे सोच रहीं थी कि मेरे पिता शिव से द्वेष रखते हैं। तभी यह सभा शिवरहित है। हे प्रभो! देव देव महेश्वर! आप सनातन तथा बुद्धिरूप हैं। जब आप इस सभा में नहीं आये, तब आपने मेरी उपेक्षा किया है। हे नाथ! आप त्रैलोक्यपति हैं। आपके अतिरिक्त मैं किसी का भी वरण नहीं कर सकती। आपके प्रति चाहे कोई द्वेष करे, अथवा आपकी सैंकड़ों निन्दा करे, इस हेतु यदि मेरे प्राण भी चले जायें, तब भी आप ही मेरे पति हैं। आपकी निन्दा कभी भी मेरे कानों में न पड़े। जब कभी आपकी निन्दा का शब्द मेरे कानों में पड़ेगा, मैं देहत्याग कर दूंगी। अब यही प्रार्थना है कि जन्मान्तर में आप ही पतिरूप से मुझे मिलें। हे द्विज! तब दाक्षायणी ने मन में यह निश्चित किया।।१६-२२।।

भूमौ मालां निचिक्षेप नमः शिवाय वादिनी। देवदेव महेशान भक्तिलभ्य सनातन॥२३॥
अनेन भूमौ विन्यस्तमाल्येन मे पतिर्भव। एवमुक्तवती देवी शिवं भूमेः समुत्थितम्॥२४॥
कण्ठालम्बिततन्माल्यं ददर्श दक्षकन्यका। शिवं शशिसमूहाभं वृषारूढं महेश्वरम्॥२५॥
स्वदत्तमालासंशोभिगलं सा प्रणनाम तम्। आत्मानं दर्शयित्वा स शिवो दाक्षायणीन्तदा॥२६॥
अगोचरस्तदान्येषां तत्रैवान्तरधीयत। शिवाय दत्तमालां तां दृष्ट्वा दक्षादयो जनाः॥२७॥
हाहाकारं तदा चक्रुः सतीं प्रति शिवं गताम्। कृतवत्यसि किं मूर्खे शिवं पतिमुपागता॥२८॥
इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणो मरुत्। कुवेर ईश इत्येषां त्यक्त्वा चान्यतमं पतिम्॥२९॥
प्रतभूमीरजोभस्मगुण्ठितोरःस्थलं पतिम्। आलिङ्गितुं मतिः किन्ते जाता पुत्रि ममात्मजे॥३०॥
धिगस्तु तं विधातारं येन रूपवती कृता। चारुपुष्पकृता माला श्मशानेऽधिगता यथा॥३१॥
ब्रह्मसृष्टाविमे सर्व्वे रूपवन्तः समाहूताः। सर्व्वं मे विफलं जातं भस्मार्थमुद्यमो यथा॥३२॥
नस्यास्त्वं मे यदि सुता तदैव शुभदं भवेत्। त्वं मे जाता कुलं दुष्टं कृतं कस्मात् कृतागसः॥३३॥

देवी कहती हैं—हे सखियों! भक्तिपूर्वक माला पृथिवी पर फेंककर सती देवी कहने लगीं "हे देव महेश्वर! आप सनातन हैं। मैंने भक्तिपूर्वक यह माला भूमि पर रखकर आपका वरण कर लिया। आप मेरे पति हो जायें।" यह कहते-कहते दाक्षायणी ने देखा कि भगवान् महादेव करोड़ों चन्द्रद्युति धारण करके वहां आये तथा भूमि से उठा कर उस माला को अपने गले में पहन लिया। वह माला उनके गले में अपूर्व शोभायुक्त हो गयी। तब देवी सती ने वृषारूढ़ महादेव को प्रणाम किया। उस समय भगवान् त्रिलोचन सबके लिये अदृश्य थे। उन्होंने केवल देवी सती को ही अपना दर्शन दिया था। शिव के लिये वह माला प्रदान करते देखकर दक्ष आदि हाहाकार करने लगे तथा कहने लगे कि "तुम शिव को पाकर कैसे कृतार्थ होगी?" तब दक्ष ने कहा— "हे सती! तुम मेरी कन्या हो। इन्द्र, अग्नि, पितृपति, नैर्ऋत्, वरुण, वायु, कुबेर आदि को छोड़कर श्मशान धूलिधारी ही जिसके वक्षस्थल का आभूषण है, ऐसे पति के आलिंगन की इच्छा करती हो? तुमको तथा तुम्हारे

भाग्य को धिक्कार है! हे विधाता! तुमको भी धिक्कार है जो दुर्मति सती को यह रूपराशि प्रदान किया है! क्या इसके बालों में श्मशान भूमि पर लोटने हेतु प्रफुल्लित पुष्पमाला गूंथी गयी है? ब्रह्मा की सृष्टि के सभी रूपवान इस सभा में बुलाये गये हैं। हे सती! तुमने तो मेरे समस्त प्रयास को एकबारगी भस्म कर दिया। यदि तुम्हारे जैसी कन्या न होती तब मेरे लिये अच्छा होता। तुमने मेरे द्वारा जन्म लेकर मेरे कुल को दूषित कर दिया लगता है। मैंने तुम्हारा कोई अपराध किया होगा, जिसके कारण तुमने मेरे मन को यह महान् कष्ट दिया है।।२३-३३।।

नात्मानमपि जानीषे न शिवं न च मामपि। शिवोपमाः कृताः सर्व्वे कृतवत्या पतिं शिवम्॥३४॥
किं न दृष्टा मम गृहे रुद्रा एकादशैव हि। तथाभूतं परं रुद्रं त्वं वै कृतवती पतिम्॥३५॥
मन्ये तेनैव दुष्टेन कुमन्त्रज्ञानशालिना। रहो वशीकृता पुत्री ममेयं नात्र संशयः॥३६॥

तुमको शिव के सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं है। तुमको अपने तथा मेरे सम्मान का भी कोई विचार नहीं है। इसलिये तुमने शिव का वरण करके हम सबको शिव जैसा ही बना दिया! क्या तुमने मेरे यहां ११ रुद्रों को नहीं देखा? तुमने अन्य रुद्रों को अपना पति क्यों नहीं बनाया! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। लगता है वही दुष्ट शिव अपनी कुमन्त्रणा (षड़यंत्र) के कारण यहां गुप्त रूप से आया तथा तुमको वशीभूत कर लिया। यह निःसंदिग्ध है!।।३४-३६।।

शुक उवाच

एवं श्रुत्वा दक्षवाक्यं शिवनिन्दाकरं परम्॥३७॥
दधीचिर्मुनिशार्दूलः सभायां दक्षमब्रवीत्।

दधीचिरुवाच

किं निन्दसि महेशानं शिवं राजीवलोचनम्॥३८॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानात्मक एष सनातनः। आत्मना यादृशं भाग्यं न तत् पश्यसि मन्यते॥३९॥
कन्या ते प्रकृतिः साक्षात् शिवः साक्षात् पुमान् परः॥४०॥
कथं मतिरियं जाता शिवं निन्दयितुं प्रभो। कः शिवः का सतीत्येवमज्ञात्वा दुरदुष्टतः॥४१॥

शुक कहते हैं—इस प्रकार शिवनिन्दामय दक्ष का वाक्य सुनकर मुनिप्रवर दधीचि ने सभा में ही दक्ष से कहा—हे प्रजापति! आप राजीवलोचन शिव की निन्दा क्यों कर रहे हैं। वे ब्रह्मा-विष्णु से एकात्मरूप तथा सनातन देव हैं। आप अपना भाग्य समझ सकने में असमर्थ हैं। आपकी कन्या साक्षात् प्रकृति है तथा शिव साक्षात् परमपुरुष हैं। आप अपनी दूरदृष्टि में इनको न जान सकने के कारण ही शिवनिन्दा में क्यों प्रवृत्त हो रहे हैं?।।३७-४१।।

दक्ष उवाच

जाने शिवं श्मशानस्थं हरं प्रेतगणाधिपम्। भिक्षुकं वायुवसनं सदा विक्षेपवादिनम्॥४२॥
गुणहीनं रूपहीनं धनहीनं सुविश्रुतम्। कथं मम सुतायाः स योग्यः पाणिग्रहे भवेत्॥४३॥

ब्रह्मा सृजति भूतानि विष्णुः पालयते प्रजाः। उभावैश्वर्य्यवन्तौ तौ तस्यैश्वर्य्यं कुतो गतम्॥४४॥
तस्मादैश्वर्य्ययुक्ता वै ब्रह्मविष्णुशिवाख्यकाः।
तेऽन्ये रुद्रोऽप्ययं भिन्नो भिक्षुकत्वादिधर्म्मवान्॥४५॥

दक्ष कहते हैं—मैं इन श्मशान वासी, भिक्षुक, भूत-प्रेतों के अधिपति शिव को जानता हूं। उसका पहनने का वस्त्र है वायु, उन्मत्तवत् उसके वाक्य हैं, वह गुणहीन-बुद्धिहीन-रूपहीन स्थिति में सचराचर में प्रसिद्ध है। ऐसे व्यक्ति को मेरी कन्या के योग्य कैसे कहा जाये? ब्रह्मा सब का सृजन करते हैं। विष्णु सबके पालक है। इन दोनों के पास ऐश्वर्य है। तथापि शिव का जो ऐश्वर्य (मैंने ऊपर कहा है) है, उसे कैसे स्वीकार किया जाये?।।४२-४५।।

दधीचिरुवाच

यस्त्वया कथ्यते भिक्षुः श्मशानप्रिय एव च।
दृष्टवानसि कुत्रापि शिवो ह्यनुमितोऽपि वा॥४६॥
पारम्पर्य्येण लोकेषु श्रुतिमात्रं त्वया मतम्। येन सर्व्वेश्वरं देवं भवानपि च निन्दति॥४७॥
लोकेषु त्रिविधा लोका उत्तमाधममध्यमाः। यथा स्वयं तथा देवान् जानते सर्व्व एव हि॥४८॥
देवा लोके निजं भावं गर्हितं गर्हिते जने। विख्यापयन्ति ने त्वेवं प्रदर्शयन्ति मन्यताम्॥४९॥
अतः शिवं महेशानं नैव निन्दितुमर्हसि। तव कन्या गुणैराढ्या पतिमेतं यदावृणोत्।
अत एव हि मन्तव्यः शिवः सर्व्वेश्वरो हरः॥५०॥

दधीचि कहते हैं—आपने कहा शिव भिक्षुक तथा श्मशान प्रिय हैं! तथापि उनको भिक्षा मांगते क्या कहीं देखा गया है? केवल लोकपरम्परा से यह सब सुनकर आप सर्वेश्वर शिव की निन्दा कर रहे हैं? जगत् में उत्तम, मध्यम तथा अधम श्रेणित्रय के लोग होते हैं। यह आप जैसे देवता को भी ज्ञात है। इसी प्रकार गर्हित व्यक्ति के प्रति देवता भी गर्हित भाव प्रकाशित करते हैं।

तथापि आप जानते हैं कि यह वस्तुस्थिति नहीं है। (अर्थात् देवगण गर्हित के समक्ष उसकी गर्हित भावनानुरूप ही अपना भाव रखते हैं)। मैं सत्य कहता हूं कि शिव सबसे श्रेष्ठ हैं। इनकी निन्दा करना अनुचित है। जब आपकी गुणान्विता कन्या ने शिव का वरण किया है, तब तो यह जान लेना चाहिये कि शिव सर्वेश्वर हैं।।४६-५०।।

दक्ष उवाच

तादृशं देवदेवेशं शिवं देवं सतीपतिम्। द्रक्ष्यामि वाथ जानीयां तदा मे प्रत्ययो भवेत्।
गुणमात्रोत्कीर्त्तनात्तु गुणो दोषो न बुध्यते॥५१॥

दक्ष कहते हैं—जब मैं शिव को आपके कहे अनुरूप देवदेवेश्वर रूप में देखूंगा अथवा जान सकूंगा, तब मुझे विश्वास होगा। केवल किसी के द्वारा गुण वर्णन किये जाने से किसी का गुण-दोष समझ में नहीं आ सकता!।।५१।।

दधीचिरुवाच

यादृशास्तादृशः सोऽस्तु तस्मै चाहूय स्वां सुताम्।
संपूज्य च सतीं देहि सत्यैवानुमताय च॥५२॥

दधीचि कहते हैं—वे चाहे जैसे भी हों, जब सती ने उनका वरण कर लिया, तब आप उनको बुलाकर उनका सत्कार करके सती को उनको प्रदान करिये।।५२।।

दक्ष उवाच

अमुना तु सती नष्टा न जातेयं मदौरसात्। इत्युक्त्वा प्राविशद्गेहं गताः सर्व्वे स्वमालयं॥५३॥
सती तु शिवलाभेन हर्षिता व्यचरत् सदा। अन्यत्र मान-सम्मान-तुल्य-भावा द्विजोत्तम॥५४॥

।।इति श्रीबृहद्धर्मपुराणे मध्यखण्डे दक्षदधीचिसम्बादे सतीस्वयम्बरो नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।।

दक्ष कहते हैं—"सती ने मेरा नाश कर दिया। अब यही निश्चित है कि वह मेरी पुत्री नहीं है।" यह कहकर दक्ष ने गृह में प्रवेश किया तथा सभी लोग अपने-अपने स्थान पर वापस चले गये। हे द्विजप्रवर! सती शिव प्राप्ति से आनन्दित हो सदा हर्षपूर्वक भ्रमण करने लगीं। अन्य द्वारा किया सम्मान किंवा अपमान उनके लिये समान था।।५३-५४।।

।।त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

शिवकृत सतीप्रतारणा

शुक उवाच

कदाचित् स महेशानः सतीं द्रष्टुं समागतः। दक्षालयं भिक्षुरूपं धृत्वा सर्व्वस्वरूपवान्॥१॥
स्कन्धे कन्थां वहन् जीर्णां वायुना धूलिवर्षिणीम्।
सधूलि-तण्डुल-ध्वस्त-मृद्भाण्डञ्च करे दधत्॥२॥
दण्डमेकं तथा जीर्णं स्वयं जीर्णकलेवरः। वलीपलितसर्व्वाङ्गः कम्पमानशिरास्तथा॥३॥
एवम्भूतो महादेवो भ्रमंस्तत्र द्विजोत्तम। सतीं ददर्श सहितां सखिभिः सप्तभिः शुभाम्॥४॥
तासां स निकटीभूय वृद्धो वक्तुमुपाक्रमत्॥५॥

शुक कहते हैं—एक बार महेश्वर सती दर्शनेच्छा से भिक्षुरूप धारण करके दक्षगृह आये। उनके कंधे पर एक जीर्ण गुदड़ी थी। वायु चलने से उस पर से धूल उड़ती थी। बायें हाथ में एक मिट्टी का पात्र था जिसमें धूल भरे

चावल के कण थे। दाहिने हाथ में एक दीर्घ दण्ड था, वह भी उनकी जीर्ण देह जैसा कांप रहा था। उनका सर्वाङ्ग झुर्री भरा था तथा वृद्धावस्था के कारण मस्तक हिल रहा था। *.गवान् तो सर्वस्वरूपमय हैं। उनके लिये ऐसा वेष धारण करना कोई आश्चर्य घटना नहीं है। महादेव इस प्रकार वहां विचरण कर रहे थे, तभी उन्होंने ७ सखियों से घिरी सती को देखा। तदनन्तर वे उन सखियों के पास आये और सखियों से कहने लगे।।१-५।।

वृद्ध उवाच

केयं रुचिरसर्वाङ्गी ज्वलत्कनकदेवता। पुरदेवीव दक्षस्य भ्रमतीव यदृच्छया॥६॥

वृद्ध कहता है—तुम लोग कौन हो? सामने जिसे प्रज्वलित स्वर्ण प्रतिमा की तरह देख रहा हूं, वह सुन्दरी कौन है? यह नगरदेवी की तरह अपनी इच्छा के अनुरूप क्यों भ्रमणरत है?।।६।।

स्त्रिय ऊचुः

इयं दक्षसूता वृद्ध किमस्या ननु पृच्छसि। अस्याः पिता महाबुद्धिः सभाञ्चक्रे स्वयम्बरे॥७॥
तत्राहूतांश्च देवान् वै त्यक्त्वा शम्भुं स्त्रजावृणोत्।
अयोग्यं पतिमापन्ना पित्रा न प्रीयतेऽपि च॥८॥
तथापीयं सदा हर्षान्नैव दुःखं कदाचन। चिन्तयन्ती कृतार्थेव भ्रमन्ती हर्षचिन्तया॥९॥
अस्मिन्नर्थे ह्यमुष्यास्तु पित्राद्या दुःखिनः सदा।
न त्वेषा शिवपत्नी वै भूता नैक्षत् पतिं क्वचित्॥१०॥

स्त्रियां कहती हैं—हे वृद्ध! क्या कहूं। ये प्रजापति दक्ष की कन्या है। इनका नाम सती है। बुद्धिमान् प्रजापति ने कन्या का यह रूपलावण्य देखकर स्वयंवर हेतु सभा करके देवगण को निमंत्रित किया था, तथापि इन्होंने समागत देवगण का त्याग करके वरमाला द्वारा शम्भु का वरण पतिरूपेण किया। अयोग्य पति वरण करने के कारण पिता इसके प्रति विरक्त तथा दुःखी है। ये प्रियकन्या होकर भी पिता की स्नेहदृष्टि के बाहर हो गयीं। तथापि इनको एकक्षण के लिये भी दुःखी नहीं देखा गया। ये स्वयं को कृतार्थ समझती हैं तथा अपने आनन्द में स्वयं ही मग्न रहती हैं। इनके इस व्यवहार से पिता-माता सभी दुःखी हैं। यद्यपि इन्होंने शिव का वरण तो किया तथापि आजतक उनका साक्षात् नहीं पाया।।७-१०।।

वृद्ध उवाच

अहो इयं श्रुता शम्भुं पतिं प्राप्ता परोक्षतः। एतादृशीं स्त्रियं प्राप्य नैतां स्मरत्यसौ कथम्॥११॥
कथम्वा देववर्गेषु सत्सु शम्भुमुपाश्रिता। अहमेतां शिवो भूत्वा गृह्णामि यदि मन्यथ॥१२॥
क्व स शम्भुः श्मशानस्थः क्वेयं राजसुता शुभा।
अनया तस्य सम्बन्धो लक्ष्यः कस्य भविष्यति॥१३॥
लब्धैव किल कन्येयं दक्षेण रुचिरानना। अहमेनां ग्रहीष्यामि शिवस्यार्थः स्त्रिया च कः॥१४॥

वृद्ध कहता हैं—यह वास्तव में दुःख का विषय है। इसमें संदेह नहीं हैं। इसने परोक्ष में शिव को पति रूप में स्वीकार किया है, यह जानकर भी शंभु इसका स्मरण नहीं करते, यह आश्चर्य है। ऐसा स्त्रीरत्न शिव के लिये दुर्लभ

है। साथ ही इस कन्या को भी अभागी ही कहना होगा, जो इसने समस्त देवगण को छोड़ शम्भु का वरण किया! जो भी हो! यदि तुम लोग अनुमति प्रदान करो, तब मैं ही शिवरूपी होकर इसे ग्रहण करूं। कहां श्मशानवासी शंभु तो कहा यह अत्यन्त दुर्लभ राजकन्या। इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध कदापि उचित नहीं लगता। प्रजापति ने तो अपने सौभाग्य से ऐसी पुत्री प्राप्त किया है। शम्भु पत्नी लेकर क्या करेंगे? मैं ही इसे ग्रहण करता हूं!।।११-१४।।

स्त्रिय ऊचुः

अहो मूर्खोऽसि वृद्धोऽसि किमवाच्यं ब्रवीषि भो।
या देवानेव तत्याज सा किं त्वामधियास्यति॥१५॥

भिक्षुकस्त्वं महाजीर्णः क्षीण-सर्व्वेन्द्रियोऽपि च। मुमूर्षोरिव ते वाक्यं गच्छ दूरं जिजीविषुः॥१६॥
सखी रत्नमुखी नाम जगादैवं शूचिस्मिता। तां निवार्य्यापरा प्राह सखीं तां नीलकुन्तला॥१७॥

नीलकुन्तलोवाच

सखि रत्नमुखि प्राप्तो नायं वृद्धवरो मतः। अयमेव शिवः साक्षात् मूर्खाणां बुद्धिमोहकः॥१८॥
सखि पश्य सतीमेतां पश्यन्तीं भिक्षुकाननम्। देव-दुर्लक्ष-चारित्र्यां पण्डितस्तत्र मुह्यति॥१९॥

स्त्रियां कहती हैं—हे वृद्ध! तुम मूर्ख हो, अन्यथा ऐसा अकथनीय वाक्य क्यों बोलते? तुम भिक्षुक हो, तुम्हारी इन्द्रियां जीर्ण हैं तथा शरीर भी जीर्ण है। जिसने सभी देवगण को त्याग दिया, वह तुमको क्यों ग्रहण करेगी? तुम्हारी बातें सुनकर लगता है कि तुम मरने के किनारे हो! यदि तुम जान बचाना चाहते हो, तब यहां से दूर चले जाओ।' जब रत्नमुखी नामक स्त्री ने ऐसा कहा, तब नीलकुन्तला नामक स्त्री ने उसे रोका तथा कहा—"हे रत्नमुखी! यह सामान्य वृद्ध नहीं हैं। ये मुझे शिव लग रहे हैं। मूर्खगण इनको पहचान नहीं सकते और देखो सती एकटक इस वृद्ध का मुख देखती जा रही है। देवताओं का चरित्र कोई नहीं जान सकता। पण्डित भी उनकी माया से मोहित हो जाते हैं।।१५-१९।।

रत्नमुख्युवाच

सती यथा तथा त्वञ्च न भिन्ना युवयोर्मतिः। एतमेव युवां जातं को वा विधिनिषेधकः॥२०॥

रत्नमुखी कहती हैं—जैसी सती है, वैसी तुम हो! दोनों की मति एक जैसी ही है! भले यह वृद्ध हो किंवा महेश हो, इससे हमारा क्या आता-जाता है?।।२०।।

नीलकुन्तलोवाच

अहं जानामि विश्वेशं शिवमेतं सनातनम्। अपण्डितासि मूर्खासि दक्षोऽपि मूर्खसत्तमः॥२१॥
शिवनिन्दाफलं चापि लप्स्यतेऽसौ किलाचिरात्।
असौ सती दक्षकन्या आढ्या सर्व्वगुणैरपि॥२२॥
किमसन्तं पतिं मूर्खे करिष्यत्युत मन्यसे। इन्द्रादयो लोकपाला यस्य पादानुचर्च्चिनः॥२३॥
स एवास्याः पतिर्ज्ञेयोऽलक्ष्यलिङ्गो महेश्वरः। ममैवं मतिरुत्पन्ना मन्यतां कोऽपि किञ्चन॥२४॥

नीलकुन्तला कहती हैं—मैं इस वृद्ध को विश्वेश्वर सनातन शिव रूप से जान रही हूं। तुम इस विषय में मूर्ख

हो तथा दक्ष तो मूर्खों का प्रधान हैं। उसे शीघ्र ही शिवनिन्दाफल भुगतना होगा। हे मूर्खे! क्या तुम यह सोच रही हो कि सर्वगुणसम्पन्ना दक्षकन्या सती ने असत् पति खोजा है? इस विषय में तुम चाहे जो सोचो, तथापि मैं जान गयी हूं कि इन्द्रादि देवता जिनके चरणकमल की सेवा करते हैं, वे अलक्ष्यस्वरूप भगवान् महेश्वर ही इसके पति हैं।।२१-२४।।

रत्नमुख्युवाच

वृषबुद्धे महामूर्खे वद मा नीलकुन्तले। वृषत्वं याहि येनायं वृषारूढ़ो व्रजेत् पथि॥२५॥

रत्नमुखी कहती हैं—हे नीलकुन्तले! तुम महामूर्ख हो! अधिक बक-बक आवश्यक नहीं है। तुम बैल बुद्धि हो। तुमने जैसी शिवभक्ति दिखलायी है, उससे तो तुम्हारा बैल होना उचित है। इससे महादेव तुम पर सवार होकर भ्रमण करेंगे।।२५।।

नीलकुन्तलोवाच

एवमस्तु परं भाग्यं शिववाहनतामगाम्। शिवं शिवाञ्च सततं द्रक्षाम्येव यथेच्छया॥२६॥
इत्युक्त्वा सा वृषो भूता तां समारुरुहे शिवः। आकाशे च जयध्वानः पुष्पवृष्ट्या सहाभवत्॥२७॥
वृषारूढ़े भिक्षुके तु दक्षस्य नगरे तदा। सतीपतिः समायातः इति कोलाहलोऽभवत्॥२८॥
शिवश्चान्तर्दधे सर्व्वे जगुश्चापि परस्परम्। कुत्र शम्भुः कुत्र शम्भुर्वृषारूढ़ इहागतः॥२९॥
प्रत्यूचुरपरे शम्भुः श्रूयतेऽमुकवेश्मनि। एवं लोकवरात्मासौ विक्रीड़ति महेश्वरः॥३०॥
केनापि दृश्यते नैतद्धधीचेर्वचनं यथा। नन्दी नाम तत्र कश्चित् तार्किकः परितो भ्रमन्॥३१॥
अन्वेषयन् पुराद्वाह्ये निर्जने ददृशे हरम्। श्रान्तं शयानं क्षुधितं जीर्णं परमदुर्व्वलम्॥३२॥
वृषस्य निकटे शुक्लं चरन्तं वलिनाम्बरम्। तं तथाभूतमालक्ष्य नन्दी बुद्धिमताम्बरः।
प्रणनाम महेशाय तस्मै जीर्णाय रूपिणे॥३३॥

नीलकुन्तला कहती हैं—"जो भी हो, इससे अधिक भाग्य की क्या बात है कि मैं शिव वाहन रहूंगी। सर्वदा शिव तथा शिवा का इच्छानुसार दर्शन पाकर कृतार्थ रहूंगी।"

यह बात कहते-कहते नीलकुन्तला ने वृषरूप धारण किया तथा महादेव तत्क्षण वहां आकर उस पर सवार हो गये। तब आकाश से पुष्पवर्षा तथा जयध्वनि होने लगी। दक्षपुरी के सभी नगरवासीगण "सती के पति आये हैं" कहते कोलाहलरत हो गये। तभी महेश्वर अन्तर्हित हो गये। सभी कहने लगे 'शम्भु कहां हैं, शम्भु कहां हैं?"। कोई कहने लगा "अभी शम्भु वृषारूढ़ होकर यहां आये थे!" कोई कह रहा था कि शम्भु उस व्यक्ति के गृह में गये हैं। तब लोकपति प्रभु शंभु इस प्रकार विचरण कर रहे थे। कोई भी उन्हें देख सकने में सक्षम नहीं था। तभी कोई नन्दी नामक तर्कशास्त्री वहां अन्वेषण करके अन्त में नगर के बाहर शंकर को देख सका। उसने देखा कि वे परम दुर्बल, क्षुधार्त्त तथा जीर्ण हैं और शान्ति से शयन कर रहे हैं। उनका शुक्ल वृषभ उनके पार्श्व में विचरण कर रहा है। महाबुद्धि नन्दी ने उनको इस अवस्था में देखकर समझ लिया कि ये महेश्वर हैं तथा 'नमो महेशााय' कहकर प्रणाम किया।।२६-३३।।

वृद्ध उवाच

कथं महेशाय इति मां नमस्यसि सादरः। अहं पुनरिहायातो लोकोपद्रवशङ्कितः॥३४॥

वृद्ध कहता है—मैं वृद्ध हूं। किसलिए मुझे 'नमो महेशाय' कहकर प्रणाम कर रहे हो। मैं लोगों के उपद्रव को सहन न कर सकने के कारण यहां निर्जन में आया हूं।।३४।।

नन्द्युवाच

ज्ञातोऽपि मे शिवः साक्षादाच्छन्नो वृद्धरूपधृक्। वृद्धरूपेण चागत्य विड़म्बयसि किं जनान्॥३५॥

अहं नन्दी नाम नाम्ना दक्षस्यानुचरः सदा। शिष्यो दधीचेर्विप्रर्षेस्त्वत्प्रभावविदः सतः॥३६॥

नन्दी कहते हैं—आप छद्मवेशधारी, वृद्धरूपी हैं। मैंने आपको साक्षात् महेश्वर जाना है। आप यहां वृद्धवेश में क्यों आये हैं? सभी लोगों में विडम्बना हो रही है। मैं दक्ष का अनुचर नन्दी तथा विप्रर्षि दधीचि का शिष्य हूं, जिनसे मैंने आपका प्रभाव जाना है।।३५-३६।।

वृद्ध उवाच

अहं केन प्रमाणेन शिवो ज्ञातस्त्वया वरः। कीदृक् ते मतिरुत्पन्ना मामन्वेष्टुं महामते॥३७॥

वृद्ध कहता है—तुम बतलाओ कि किस प्रमाण से तुम मुझे शिवरूपी जान सकेमहामति! मेरे अन्वेषणार्थ तुम्हारी कौन सी बुद्धि उदित हुयी है?।।३७।।

नन्द्युवाच

(त्वं वुद्धिरूपी भगवान् शिवो दाक्षायणीपतिः। अहं त्वद्दत्तया मत्या ज्ञातवांस्त्वा महेश्वरम्॥३८॥

नन्दी कहते हैं—आप साक्षात् दाक्षायणी पति शिव हैं। वृद्धरूप से आप यहां आये हैं। हे भगवान्! यह मैं आप द्वारा ही प्रदत्त बुद्धि से जान गया!।।३८।।

शुक उवाच

इत्युक्तस्तेन वै शम्भुस्त्यक्त्वा वृद्धादिवेशताम्।
वृषारूढ़ो महेशोऽभूत् शशि-कोटि-शुचि-प्रभः॥)३९॥

शुकदेव कहते हैं—नन्दी का यह वचन सुनकर शंभु ने वृद्ध वेश का त्याग करके अपनी कोटि चन्द्रवत् मूर्त्तिधारण करके वृष पर आरोहण किया।।३९।।

नन्द्युवाच

नमाम ते महेश ते शतेन्दुकोटिरोचिषे। त्रिलोचनाय भास्वते गुणत्रयस्य धारिणे॥४०॥

सतौधराय योगिनां वराय योगधारिणे। धराधरैकशायिने शुभाशुभोपशायिने॥४१॥

विधिर्हरिः शिवो भवान् गुणैः प्रधानसम्भवैः। स्वसम्भवा वशीकृताः प्रधानतोऽवधानतः॥४२॥

त्वया पुनर्वशीकृतं प्रधानमेव सर्व्वथा। यतः प्रधानरूपिणी सती भवन्तमीहते॥४३॥

पुरे शरीरनामके पुमान् जड़ः स्वभावतः। स्थितः प्रधानसंज्ञके प्रधान-कर्तृताकृतिः॥४४॥

करोम्यहं दधाम्यहं ममेति विभ्रमाकुलः। समामनोति यः पुमान् स वैभवान्न मन्यते॥४५॥
स वै पुमान् पुरस्थितो हरिर्हि निर्गुणो गुणम्। प्रधानसम्भवं तथा लघुप्रकाशरूपकम्॥४६॥
दधत्तु सत्त्वनामकं सुखादिभोगसंहितम्। भवांस्तु शेषकारकः स्वयन्तु शेषरूपकः॥४७॥
शिवो हरः सनातनो महेश्वरः पुरातनः। वृषेश-पृष्ठ-शोभनो नमामि ते पदाम्बुजम्॥४८॥
भवत्समीपवासितां श्रयामि चेति वाञ्छया। समागतोऽहमत्र ते सतीपते प्रसीद मे॥४९॥

तब नन्दी स्तव करने लगे—हे महेश्वर! आपके चरणों में प्रणाम! हे त्रिलोचन! आपने भास्वर मूर्त्ति धारण किया है। आपकी देहप्रभा शत-शत् चन्द्रक्लान्ति को भी म्लान करती है। आप त्रिगुणधारी, योगीगण प्रवर तथा सतीपति हैं। आप धराधरशायी तथा जगत्कर्त्ता एवं जगत् संहारक हैं। आपको प्रणाम। आपने प्रकृति सम्भूत गुणत्रय धारण किया है तथा ब्रह्मा-विष्णु तथा शिवरूप आप ही हैं। स्वयम्भु तक प्रकृति के वशीभूत हो गये, तथापि आपने प्रकृति को वश में कर लिया। इसका उदाहरण यह है कि तभी प्रकृति रूपा सती आपको खोजती हैं। इस शरीर नामक पुरी में जो पुरुष है, वह स्वभावतः जड़ होकर भी प्रकृति के कर्तृत्वानुसार कृतिमान है। वह पुरुष मैं, मेरा, मैं करता हूं, मैं धारण करता हूं, आदि भ्रम के कारण भ्रमशील है। जो निर्गुण-अथच सुख आदि भोगरहित हैं, जो लघु प्रकाशरूप प्रकृति सम्भूत सत्वगुण को धारण करते हैं, आप ही वह जीवात्मा तथा परमात्मारूप पुरुषद्वय हैं। आप अन्तक, स्वयम्भु, शेषरूपी शिव, हर, सनातन, महेश्वर तथा पुराणपुरुष हैं। आप ही वृष की पीठ पर शोभायमान हैं। आपको प्रणाम! हे सतीपति! मेरी इच्छा है कि मैं सदा आपकी शरण में सर्वदा आपके निकट रहू। अब आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें।।४०-४९।।

शिव उवाच

अहं त्वया मतो यदि प्रसादतो ममैव तत्। ददामि ते वरं यथा मतिस्तथास्तु नन्दिनः॥५०॥
व्रजामि दक्षकन्यकां प्रणेतुकाम इच्छया। वृतस्तयास्मि तां विना क्वचित् क्षणन्नभाववान्॥५१॥

शिव कहते हैं—यदि तुम्हारा यही विचार है तब मैं वर देता हूं कि मेरी कृपा से तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। अब मैं दक्षकन्या से परिणय हेतु जा रहा हूं। उन्होंने मेरा वरण किया है। उनके बिना मैं क्षणमात्र भी स्थिरता नहीं पा रहा हूं।।५०-५१।।

एवं नन्दी शिव-परिचयात् प्राप्त-तादृक्-प्रसादो
नित्याभ्यास-स्थिति-मति-परस्तस्य शम्भोर्बभूव।
धृत्वा चासौ द्विज-तनु-कृतं नन्दिना सार्द्धमेव
प्रायाद्यस्मिन् सखि-गण-युता श्रीमती दक्षकन्या॥५२॥

।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे भिक्षुकागमनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।

—❖❖❖—

शुक कहते हैं—नन्दी ने भगवान् से यह वर प्राप्त करके मन ही मन निश्चय किया कि मैं इनका अनुचर रहूंगा। भगवान् ने नन्दी के साथ विप्रवेश धारण किया तथा जहां दक्षकन्या सखियों के साथ स्थित थीं वहां गये।।५२।।

।चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।



पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः

शिवद्वारा सतीहरण तथा दक्ष का शिवद्वेष रुद्रद्वेषनिवेदन

शुक उवाच

अथ दक्षपुरोद्याने तपस्वि-निलये शुभे। विप्ररूपेण भूतेश आजगाम सतीच्छया॥१॥
सखीभिः सप्तभिः सार्द्धं सती तत्र शुचिस्मिता। विचरन्ती महेशेन ददृशे विप्ररूपिणा॥२॥
पुष्पाधारकरश्रीमन्नन्दियुक्तेन जैमिने। ऊर्द्ध्वपुण्ड्रं मृत्तिलकं दधानेन द्विवाससा॥३॥
वासोदण्डयज्ञसूत्रैः श्वेतैर्व्विलसता सता। वेदांश्च पठता प्रोच्चैर्गायता नाम वैष्णवम्॥४॥
एवम्भूतं द्विजन्तञ्च दृष्ट्वा दाक्षायणी तदा। प्रणनाम मुदा भक्त्या मुनीनां पश्यतामपि॥५॥
विप्रश्च शिवरूपोऽसौ प्रणतां तां सतीं तदा। पाणिभ्यां भूमेरुत्थाप्य क्रोड़े कृत्वा खमुद्ययौ॥६॥
ततो महानभूत्पूर्य्यां हाहाकारो द्विजोत्तम। सर्व्वे पश्यत चाकाशे शिवो याति सतीं हरन्॥७॥

शुक कहते हैं—तदनन्तर भूतभावन महादेव ने ब्राह्मण वेशधारी होकर प्रजापति दक्ष की पुरी के पार्श्वस्थ उद्यान में गमन किया। उन्होंने देखा कि उद्यान अतीव मनोहारी है तथा चतुर्दिक् तपस्वीगण के आश्रम स्थित हैं। कुछ क्षण उद्यान में रुककर उन्होंने चिन्तन किया कि किस उपाय से दाक्षायणी सती का दर्शन होगा?। किन्तु उनको अधिक समय तक इस चिन्ता में नहीं रहना पड़ा। देखते-देखते सती सात सखियों से घिरी वहां पहुंच गयीं। भगवान् भूतनाथ सती को सखियों के साथ हास्यालाप करते देखकर वेदमंत्र पाठ तथा हरिगुण गायन करने लगे। इधर दाक्षायणी के नेत्रद्वय सखियों से हटकर विप्ररूपी महेश्वर पर एकाग्र हो गये।

उसने भक्तिभाव से उन विप्र को प्रणाम किया। सती देखती है कि सामने एक महातेज सम्पन्न ब्राह्मण हैं तथा उनके पार्श्व में उनका सहचर हाथों में पुष्प लिये खड़ा है। ब्राह्मण के ललाट पर उर्ध्वपुण्ड्र, गले में शुभ्र यज्ञोपवीत तथा उत्तरीय है। सती उनको प्रणाम करना उचित समझकर उनके निकट आईं। उद्यानवासी मुनिगण दोनों के तात्कालिक भाव का निरीक्षण कर रहे थे। दाक्षायणी मानो उनको आत्मसमर्पण करने के लिये भूमि पर दण्डवत् पड़कर प्रणाम कर रहीं थीं, तभी आशुतोष ने छद्मवेश छोड़ दिया तथा अपना रूप धारण किया तथा सती को भूमि से उठाकर वक्ष से लगाकर आकाश में चले गये। हे द्विजप्रवर! इस प्रकार से सतीहरण का संवाद सुनते ही अन्तःपुर में महान् कोलाहल व्याप्त हो गया।।१-७।।

सर्व्वेऽपश्यन्नथाकाशे सतीयुक्तं महेश्वरम्। वामेन बाहुनाक्रान्तं वामोरौ दक्षकन्यकाम्॥८॥
कोटि-चन्द्र-समाभासं शिवं हैमच्छविं सतीम्। सर्व्वमाकाशमावृत्य सतीशम्भू सुरोचिषौ॥९॥

सर्व्वे वै ददृशुर्लोकाः प्राप्तवन्तोऽपि विस्मयम्।
दक्षस्तु ददृशे तौ च कोटि-सूर्य्य-सम-प्रभौ॥१०॥

अनन्त-रूप-घटितौ विलसन्तौ द्विजोत्तम। सर्व्वा एव स्त्रियो दक्षः सतीरूपा व्यलोकयत्॥११॥

पुरुषानपि सर्व्वान् वै शिवरूपान् व्यलोकयत्।
यावत् खे मर्त्त्य-लोकानां चक्षुर्विषयतां स्थितौ॥१२॥

एवं वृत्ते मुहूर्त्ते तु तौ चैवान्तर्हितौ शिवौ। दिव्यज्ञानञ्च दक्षस्य लुप्तमास्त द्विजोत्तम॥१३॥

सबने अपनी दृष्टि उर्ध्व में करके देखा कि महादेव अपने वाम ऊरु पर सती को बैठाकर वामबाहु से उनको घेर कर चले जा रहे हैं। शंभु तथा सती भी अंगप्रभा से समस्त आकाश मण्डल व्याप्त था। उधर कोटिचन्द्र को भी म्लान करने वाली शिव की शुभ्रकान्ति के साथ दाक्षायणी की अंगछवि प्रज्वलन्त स्वर्णवत् मिलित होकर अपूर्व शोभा धारण कर रही थी। प्रजापति दक्ष विस्मित होकर आकाश पथ में शंभु एवं सती की अंगप्रभा मध्याह्न कालीन कोटिसूर्य के समान देखते जा रहे थे। जहां वे दृष्टि घुमाते, उधर ही सती का रूप भासित होता था। देखते-देखते वह प्रभामयी मूर्त्ति लोकलोचन के बर्हिगत होकर आकाश में विलीन हो गयी। इस समय दक्ष मूर्च्छित से हो गये। हे द्विजोत्तम! उनका दिव्यज्ञान तिरोहित सा हो गया।।८-१३।।

दक्षस्तु दिव्यज्ञानं हि मूर्च्छामिव व्यतीत्य सः। उवाच किं सती याता शिवं प्राणसमा सुता॥१४॥

परावर्त्तय मे पुत्रीं शिवाभासात् सतीं किल।
हे वत्से सति हा पुत्रि क्व यातासि विहाय माम्॥१५॥
अयोग्यं पतिमाप्तासि कृतेन स्वेन कर्म्मणा।

तब दिव्यज्ञान तिरोहित हो जाने के कारण दक्ष मूर्च्छित की तरह विलाप करते कहने लगे—"तुम लोग जाओ। मेरी सती को शिव के पास से लौटा लाओ। हाय-हाय! जो सती मेरे प्राणों की अपेक्षा मुझे प्रिय थी, जिसकी मुख मुद्रा को मलिन देखकर मुझे समस्त जगत् शून्य लगता था, वह चन्द्रमुखी सती श्मशानवासी शिव के भिक्षान्न से जीवनयापन करेगी। हे पुत्री! सती तुम मेरा त्याग करके कहां जा रही हो? हे बेटी! तुमने पूर्व जन्म में ऐसा क्या दुष्कर्म किया था, जिसके कारण तुमको ऐसा हतभाग्य अयोग्य पति मिला!।।१४-१५।।

शुक उवाच

एवं विलपमानं तं दक्षनामप्रजापतिम्। दधीचिः स्वयमागत्य तमुवाच प्रजापतिम्॥१६॥

शुक कहते हैं—प्रजापति इस प्रकार विलाप कर ही रहे थे कि वहां महर्षि दधीचि आये तथा प्रजापति से कहने लगे।।१६।।

दधीचिरुवाच

किं रोदिषि प्रजानाथ पण्डितो मूर्खतां गतः। दृष्ट्वापि ते मतिर्नैव जाता किमिदमद्भुतम्॥१७॥
आकाशे धरणौ तोये वृक्षादौ पशुपक्षिणः। सर्व्वस्त्रीलिङ्गपुंलिङ्गं नैक्षः शिवसतीमयम्॥१८॥
शिवनिन्दाफलं यावन्न प्राप्स्यसि प्रजापते। तावन्न ज्ञास्यसि प्रायः सतीमपि शिवं तथा॥१९॥

वञ्चितोऽसि विधात्रा त्वं यद्ब्रह्म परमं लसत्।
उपेक्षसे समीपस्थं रङ्को रत्नमिवागतम्॥२०॥

ममैव वच आकर्ण्य श्रेयः प्रेप्सुः प्रजापते। प्रकृतिं पुरुषं चापि हृदि ध्याय सतीशिवौ॥२१॥

दधीचि कहते हैं—हे प्रजानाथ! आप विद्वान् होकर भी मूर्खवत् विलाप क्यों कर रहे हैं? क्या आश्चर्य है! आकाश, पृथिवी, जल-थल, वृक्ष, पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष, सभी शिवमय तथा सतीमय हैं। तब भी आपका चित्तभ्रम

दूर नहीं होता! लगता है आपको जब तक शिवनिन्दा का फल नहीं मिलेगा, तब तक आपकी दुर्बुद्धि नष्ट नहीं होगी। तब तक आप देवदेव महादेव तथा सती का तत्व नहीं जान सकते! हे प्रजापति! विधाता ने वास्तव में आपको वंचित कर दिया है। अन्यथा हाथ में रक्खे रत्न की तरह शिवरूपी साक्षात् परब्रह्म वस्तु की उपेक्षा क्यों करते? अभी भी यदि आपको मंगल की कामना है, तब मेरा कथन सुने। वे प्रकृतिरूपी सती मूर्त्ति है तथा परमपुरुष शिवमूर्त्ति हैं। आप हृदय में इनका ध्यान करिये तथा मन-कर्म-वचन से इनकी शरण ग्रहण करिये।।१७-२१।।

दक्ष उवाच

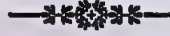
सत्यं वदसि मे कन्यां सतीं प्रकृतिरूपिणीम्। शिवं पुराणपुरुषं विष्णुं प्रभुमनामयम्।।२२।।
त्वाञ्च सत्यकथ जाने तथापि परमार्थतः। महेशान्नापरो देव इति मे न मतिर्भवेत्।।२३।।
ऋषयः सत्यवचस इति ज्ञानान्महेश्वरम्। शिवमेव ह्यसूयामि तस्य मूलं निबोध मे।।२४।।
ब्रह्मणः क्रोधसम्भूता रुद्रा एकादशैव तु। ब्रह्म-सृष्टि-विलोपाय ससृजुस्ते प्रजास्तथा।।२५।।
तथा दृष्ट्वा विधीरुद्रांस्तथाभूतान् समन्ततः। आज्ञया शमयामास माञ्चापि जगदे वचः।।२६।।
दक्ष रुद्रानिमान् पुत्र वशे रक्ष ममाज्ञया। यथामी लोपकर्म्माणः प्रश्रयं यान्ति नैव हि।
इत्येवं ब्रह्मवचनाद्रुद्रा एते वशे मम।।२७।।
वर्त्तन्ते ब्रह्मणा सृष्टा एकादश महत्तराः। यस्यैते भीमकर्म्माणो रुद्रा अंशावतारकाः।।२८।।
ममाज्ञामनुवर्त्तन्ते तस्मै देया कथं सुता। सत्पात्रे हि कृतं दानं कुलकीर्त्तिकरं भवेत्।।२९।।
अतः सत्कुलभूताय दद्यात् दुहितरं कृती। अहं सत्या अभिप्रायं मत्वा सत्याः स्वयम्बरे।।३०।।
शिवं नाहूतवावुद्रं रुद्राणामीश्वरं मुने। शृणु मे या मतिर्जाता स्वाभिप्रायं निवेदये।।३१।।
यावदेते महारुद्राः प्रभो मम वशे स्थिताः। न मामतिक्रमिष्यन्ति तावद्द्वेषः शिवे मम।।३२।।
यदा तु मामतिक्रम्य तस्मिन्देवे महेश्वरे। मिलितास्ते भविष्यन्ति तदा पूजा शिवे मम।।३३।।

दक्ष कहते हैं—मेरी कन्या सती प्रकृति रूपा है तथा शिव पुराणपुरुष हैं, यह सत्य हैं तथा मैं आपको भी सत्यवादी मान रहा हूं, तथापि महादेव को परदेवता मानने का मेरा मन नहीं है। मैं जो शिव के प्रति असूया प्रकट कर रहा हूं, उसका कारण सुनें! पूर्व में ब्रह्मा के क्रोध से एकादश रुद्र की सृष्टि हुई। वे ब्रह्मा की सृष्टि को लुप्त करने हेतु स्वयं सृष्टि करने लगे। यह देखकर ब्रह्मा ने मुझे आज्ञा के साथ उनको सान्त्वना हेतु कहा—"हे दक्ष! तुम मेरे आदेश से इन रुद्रगण को अपने वश में करो। अन्यथा ये प्रश्रय पाकर स्वेच्छाचारी न हों!" तब से ब्रह्मा के आदेश से आजतक ये महत्तर रुद्र मेरे वश में हैं। जिसके अंश से उत्पन्न ये एकादश रुद्र नौकर की तरह मेरी आज्ञा का पालन कर रहे हैं, हे महामुनि! उसके हाथों कैसे अपनी कन्या प्रदान करूं? सत्पात्र को कन्या देने से कुलकीर्त्ति बढ़ती है। अतः व्यक्ति को चाहिये कि सत्कुलोत्पन्न पात्र को सयत्न कन्या प्रदान करें। इसीलिये मैंने सती की इच्छा होने पर भी स्वयंवर में शिव को नहीं बुलाया था। अब मेरा भी अभिप्राय सुनें। जब तक ये महारुद्रगण मेरी आज्ञा का पालन करते रहेंगे, तब तक शिव के प्रति मेरा द्वेष रहेगा। जब ये मुझे अतिक्रम करके महादेव से मिल जायेंगे, तब महादेव मेरे पूज्य होंगे।।२२-३३।।

शुक उवाच

एवमुक्त्वा दधीचिञ्च प्रणम्य स प्रजापतिः। प्रायात् गृहं मुनिश्चापि तथेत्युक्त्वा निजाश्रमम्।।३४।।

।।इति श्रीबृहद्धर्मपुराणे मध्यखण्डे रुद्रद्वेषनिवेदनं पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः।।



शुक कहते हैं—यह कहकर प्रजापति ने दधीचि को प्रणाम करके स्वगृहगमन किया। मुनिवर दधीचि भी अपने आश्रम लौट गये।।३४।।

।।पंचत्रिंश अध्याय समाप्त।।



षटत्रिंशत्तमोऽध्यायः

दक्षयज्ञ, सती का दशमहाविद्यारूप धारण तथा यज्ञस्थल में जाना

शुक उवाच

अथ सङ्गम्य देवर्षिर्दक्षं दक्षालयेऽब्रवीत्। चरन्ति किल लोकेषु उपकाराय साधवः।।१।।

शुक कहते हैं—हे महाभाग! तत्पश्चात् देवर्षि नारद ने एक दिन दक्षगृह गमन किया। साधुगण केवल लोकोपकार हेतु विचरण करते हैं। उन्होंने प्रजापति से कहा।।१।।

नारद उवाच

अहो प्रजापते दक्ष त्वया शम्भुस्तु निन्द्यते। महेशस्तत्फलं दातुं चिकीर्षति तथा शृणु।।२।।
शिवो भूतगणैः सार्द्धमागत्य त्वत्पुरान्तरम्। अस्थिभस्मादिनिक्षेपं कर्त्ता दुर्द्धर्षणः परः।।३।।
इत्युक्त्वा स मुनिवरो ययौ विप्र विहायसा।
दक्षोऽपि चिन्तयामास कर्त्त्यव्यं मन्त्रिभिः सह।।४।।

नारद कहते हैं—हे प्रजापति! आप सदा शिवनिन्दा करते हैं। महेश्वर ने उसके प्रतिफलार्थ जो उपाय किया है वह सुनें। वे भूतों से घिरकर आपकी पुरी में आकर अस्थि तथा भस्म आदि फेंकेंगे। आप किसी भी प्रकार से इसका निवारण नहीं कर सकेंगे। यह कहने के पश्चात् मुनि नारद शून्य मार्ग से चले गये। तब प्रजापति दक्ष ने मंत्रियों सहित सलाह करके अपना कर्तव्य निर्धारण किया।।२-४।।

प्रेत-भूमि-प्रियः शम्भुरागमिष्यति मे पुरम्।अहं पुण्य-क्रियारम्भं करिष्यामि सुरैः सह।।५।।
इदं मम पुरं पुण्यं पुण्य-कर्म्म-विशेषितम्। नैवागमिष्यति तदा एष एवास्तु निर्णयः।।६।।
इति निश्चित्य मनसा जैमिने स प्रजापतिः। यज्ञमारब्धवान् कर्त्तुं शिवद्वेषे मतिं दधत्।।७।।
दक्षश्चाहूतवान् सर्व्वान् देवान् राक्षसकिन्नरान्। सिद्धान् यक्षांश्च गन्धर्व्वानप्सरःपितृचारणान्।।८।।

मुनीन् बहुविधान् दैत्यान् नरानुरगमञ्चयान्। सर्व्वानाहूतवान्दक्षो विना दाक्षायणीशिवौ॥९॥
मया शिवस्तु नाहूतः सती नापि शिवप्रिया। एवं ये नागमिष्यन्ति ते स्युर्भाग-बहिष्कृताः॥१०॥

दक्ष कहते हैं—"प्रेतभूमि प्रिय शम्भु मेरी नगरी में आगमन करेंगे, तथापि मैं देवगण के साथ पुण्यकर्म प्रारम्भ करता हूं। इससे महादेव पुण्यकर्म शोधित नगरी में नहीं आ सकेंगे।" हे जैमिनि! उन्होंने यह निर्णय लेकर शिवद्वेषी होकर यज्ञ प्रारम्भ किया। इस यज्ञ में उन्होंने देवता, राक्षस, किन्नर, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरा, पितर, चारण, मुनिगण, दैत्य, मनुष्य तथा सर्पों तक को बुलाया। केवल उन्होंने अपनी कन्या सती तथा जामाता शिव को न बुलाकर घोषित किया कि मैंने शिव तथा उनकी पत्नी सती को निमंत्रित नहीं किया। जो इस यज्ञ में नहीं आयेंगे, आज से उनको यज्ञभाग से बहिष्कृत किया जायेगा।।५-१०।।

एवन्दक्षवचः श्रुत्वा भीता एव सुरादयः। शिवशून्याञ्च समितिमागतः सर्व्व एव हि॥११॥
यस्य विप्र महायज्ञे वासोऽन्नादेस्तु पर्व्वताः। पयोघृतादिवस्तूनां नद्यो दीर्घाः प्रकल्पिताः॥१२॥
अथाह त्विह कैलासे सती श्रुत्वा पितुर्म्मखम्। गन्तुमिच्छुर्महादेवं पतिं विनयसंयुता॥१३॥

दक्ष का यह वचन सुनकर सुर-असुर सभी भयभीत होकर उस शिव रहित यज्ञ में आये। दक्ष ने वहां वस्त्र तथा अन्न का ढेर ऐसा बनाया मानो वह विंध्याचल पर्वत हो। वहां तो दुग्ध-घृतादि का सरोवर बना था। इस प्रकार महान् समारोह के साथ यज्ञ होने लगा। इधर दाक्षायणी सती पति के साथ कैलास पर्वत पर रह रहीं थी। उन्होंने लोगों से पितृगृह की यज्ञवार्त्ता को सुना तथा उत्सुक होकर वहां जाने की अनुमति हेतु महादेव को प्रसन्न करने के लिये स्तव करने लगीं।।११-१३।।

सत्युवाच

देवदेव महेशान लोकनाथ महामते। प्रसीद शरणापन्न वाञ्छितार्थप्रपूरक॥१४॥
त्वं सृष्टिकारको ब्रह्मा त्वं विष्णुः पालने रतः। त्वं वै त्रिगुणमव्यक्तो व्यक्तं धरसि तामसः॥१५॥
हरः संहर मे विश्वं सर्व्वं स्थावरजङ्गमम्। ब्रह्माविष्णू परित्यज्य प्रकृतिस्त्वयि निश्चला॥१६॥
त्वामाश्रयितुकामा सा परं यत्नं दधाति वै। अतो मां देवदेवेश प्रसीद वरदेश्वर॥१७॥

सती कहती हैं—हे देवाधिदेव महेश्वर! आप महामति तथा शरणागत की मनोभिलाषा पूर्ण कर देते हैं। आप ही ब्रह्मरूपेण सर्वजगत् सृष्ट करते हैं। आप विष्णुरूपेण सर्वजगत् का पालन करते हैं। आप अव्यक्त रूपेण होकर भी, त्रिगुणात्मक होकर, व्यक्त तमोगुणावलम्बी होकर स्थावर-जंगम रूप समस्त विश्व का संहार करते है। इससे आपका हर नाम (हरण) सार्थक हो जाता है। प्रकृति ने आपको वशीभूत करने का अनेक यत्न किया तदनन्तर वे ब्रह्मा-विष्णु को छोड़कर अपने ही निश्चला हो गयीं। हे वरप्रद ईश्वर! मेरे प्रति प्रसन्न हो जायें।।१४-१७।।

शिव उवाच

किमर्थं स्तौषि मां देवि तद्वदस्वाभिवाञ्छितम्। किन्ते प्रियं करिष्यामि निग्रहानुग्रहावपि॥१८॥

महादेव कहते हैं—हे देवी! तुम क्यों स्तव कर रही हो? अपनी इच्छा प्रकट करो। यदि किसी के प्रति निग्रह-अनुग्रह करना हो, तब तुम्हारी प्रसन्नता हेतु वही पहले करूंगा।।१८।।

सत्युवाच

भगवन् देवदेवेश त्रिलोचन महेश्वर। दक्षस्ते श्वशुरो यज्ञं करोति बहुमद्व्ययम्॥१९॥
तत्रावाञ्च गमिष्यावो यदि देवानुमन्यसे। आवयोस्तत्र सम्मानं करिष्यति प्रजापतिः॥२०॥

सती कहती हैं—हे प्रभो! त्रिलोचन देव! आपके श्वसुर दक्ष एक यज्ञ कर रहे हैं। त्रिभुवन वासी सभी उस यज्ञ में गये हैं। यदि आपकी अनुमति हो तब हम दोनों उस यज्ञ में चलें। वहां जाने पर पिता हमारा सम्मान करेंगे तथा मन ही मन वे प्रसन्न होंगे।।१९-२०।।

शिव उवाच

मैवं सति प्रिये चिन्तां मनसापि समाचर। अनाह्वानस्य गमनं मरणञ्च समं द्वयम्॥२१॥
दक्षो विद्याकुलधनैर्गर्व्वितो मम हेलनम्। करोति पश्चिमा दिक् सा रविवारश्च मे सदा॥२२॥
(श्वशुरश्च मम श्रीमान् ममापमानहेतवे। यज्ञमारब्धवान्देवि कथन्तद्गन्तुमिच्छसि॥२३॥
जामाता श्वशुरस्थानेऽपेक्षते परमादरम्। विष्णुं जामातरं मत्वा श्वशुरोऽपि समाचरेत्॥२४॥)
अनाह्वानञ्च दुर्वाक्यमसह्यकरणन्तथा। अदानमप्यवात्सल्यं जामातरि न चाचरेत्॥२५॥
यद्यन्यथा चरेदेतत् श्वशुरो दुहितुः पतौ। तदा तस्य धर्महानिः क्रियाहानिश्च लक्ष्यते॥२६॥

महादेव कहते हैं—हे प्रिये! ऐसे संकल्प को मन में स्थान भी न दो। अनिमंत्रित स्थिति में यज्ञादि कर्म में जाने को लोग मृत्युवत् मानते हैं। तुम्हारे पिता ने स्वयं को धनी, कुलीन तथा विद्वान् मानकर सदा गर्वपूर्वक हमारी अवहेलना की है। आज रविवार है। आज पश्चिम दिशा में जाना युक्ति संगत नहीं है। हे देवी! प्रजापति ने केवल हमारे अपमानार्थ यह यज्ञ आयोजन किया है। तब तुम क्यों कर वहां जाना चाहती हो। जामाता सदा श्वसुर से आदर चाहता है। जामाता को विष्णुतुल्य मानकर आदर करना श्वसुर का कर्तव्य है। जो जामाता को देखकर सम्बोधनादि नहीं करता, उससे दुर्वचन बोलता है, बलपूर्वक नौकर जैसे आदेश देता है, कभी कुछ प्रदान नहीं करता, वात्सल्य प्रदर्शन नहीं करता, वह लोक में निंदित है तथा उसके सभी धर्म कर्म व्यर्थ हैं।।२१-२६।।

यस्मै प्रदीयते कन्या जामाता यदि तं प्रति। असदाचरणं भाति मृतः स्यात् श्वशुरस्तदा॥२७॥
जामाता श्वशुरस्यापि प्रियं कुर्य्यात् सदैव हि। अमानितो न गच्छेच्च जामाता श्वशुरालयम्॥२८॥
रूपवृद्धिः प्रजावृद्धिः श्वशुरप्रीतितो भवेत्। श्वशुरो दुहितुः पत्युर्गुरून् भ्रातॄनथापरान्॥२९॥
सन्मान्यांश्चार्च्चयेच्छक्त्या ह्यन्यथा धर्म्मलोपकृत्।
कन्यां सम्मानयेद्विद्वान् जामातृ-प्रिय-काम्यया॥३०॥
कन्यापमानात् जामातुरपमानं विधीयते। श्वशुरस्य तु पुत्त्राद्या देववद्भगिनीपतिम्।
चिन्तयेत् पूजयेच्चैव वयोज्येष्ठो भवेद् यदि॥३१॥
एवं शास्त्रमनादृत्य दक्षो मे श्वशुरः प्रिये। जामातरं मां नाहूय सत्कर्म्माचरते कथम्॥३२॥
स्वेच्छयापि न मह्यं त्वां दत्तवान् स प्रजापतिः। त्वयाहं स्वेच्छया लब्धो न ममाज्ञामतिक्रम।
भार्य्या पतिमतिक्रान्ता न क्वचित् सुखमाप्नुते॥३३॥

जिसे कन्या दिया, वह जामाता यदि श्वसुर के प्रति असदाचरण करता है, श्वसुर के लिये यह मरण जैसा है। जामाता सदा श्वसुर का प्रिय करे। जो जामाता श्वसुरालय में असम्मानित होता है, उसका वहां जाना कदापि उचित नहीं है। जो जामाता श्वसुर का प्रीतिभाजन होता है, उसकी रूपवृद्धि तथा प्रजावृद्धि होती है। श्वसुर केवल जामाता का ही सम्मान न करे प्रत्युत् उसके पिता-माता-भाई, सब का सम्मान करे। श्वसुर जामाता की प्रिय कामना के साथ अपनी कन्या का भी सम्मान करे। कन्या के अपमान से उसकी माता अपमानित होती है। श्वसुर के जो पुत्रादि हैं, वे आयु में बड़े अपने बहनोई की देवतावत् पूजा करें। हे प्रिये! तुम्हारे पिता ने इन सब शास्त्रोक्त नियमों का अतिक्रमण किया है। नहीं तो हमें वे न बुलाते! हे दाक्षायणी! तुमसे कुछ भी अज्ञात नहीं है। तुम्हारे पिता ने स्वेच्छापूर्वक तुम्हारा पाणिग्रहण मुझसे नहीं कराया है। तुमने स्वेच्छा से मुझे प्राप्त किया। अब मेरी आज्ञा न टालो। पति की आज्ञा का उल्लंघन करने वाली पत्नी अपने सुख से वंचित रहती हैं।।२७-३३।।

सत्युवाच

यदुक्तं तद्धि वै सत्यं प्रभो नैवात्र संशयः। सुता कथञ्चरेद्धैर्य्यं श्रुत्वा पितृ-महोत्सवम्।।३४।।
असंमान्याः समाहूता लप्स्यन्ते यत्र पूजनम्। सम्मान्यस्तत्समाकर्ण्य कथं धैर्य्यं समाचरेत्।।३५।।
अहं पुत्री पितुर्वाप्यां किमाह्वानमपेक्षते। अपेक्षते पिता मेऽपि ममागमनमीप्सितम्।।३६।।
तस्मादहं गमिष्यामि कुरुष्वानुमतिं प्रभो। भविता मम सम्मानात्तव सम्मानमुत्तमम्।।३७।।
पिता मे यदि मूर्खोऽयं त्वन्न जानाति वै शिवम्। तत्राभिमानं कृत्वा किं निजभागमुपेक्षसे।।३८।।
मूर्खाय तस्मै दक्षाय ज्ञानञ्च दातुमर्हसि। तस्मात्ते गमनं युक्तं महेश्वर ममापि च।।३९।।

सती कहती हैं—हे प्रभो! आप द्वारा कहे सभी शास्त्रवाक्य सत्य हैं। इनमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है। तथापि आप स्वयं विचार करें, पिता के घर महोत्सव सुनकर कन्या को कैसे धैर्य हो सकेगा? जिस यज्ञ भूमि में असम्मानित का भी सम्मान होता है, वहां मैं पिता की प्रियकन्या होकर भी न जाकर कैसे स्थिरमना हो सकूंगी? पिता के यहां जाने में निमंत्रण की क्या आवश्यकता! इसीलिये पिता ने मुझे नहीं बुलाया, तथा आगमन के प्रतीक्षक हैं। हे प्रभो! आज्ञा दीजिए कि मैं वहां जाऊं। पिता मेरा प्रचुर सम्मान करेंगे और मेरा सम्मान तो आपका भी सम्मान है! यदि पिता मूर्खता के कारण आपका तत्व न जानकर ऐसा विपरीत कार्य करते भी हैं, तब भी आप अपने यज्ञ भाग की उपेक्षा क्यों करें? इसलिये हम दोनों का ही यज्ञगमन उचित है।।३४-३९।।

शिव उवाच

यत् त्वं वदसि तत्सर्व्वं पुरा मयावधारितम्। न तत्र गमनं युक्तं तवापि च ममापि च।।४०।।
स तु मां तु ह्यनादृत्य यज्ञमारब्धवान् सुरैः। लप्स्यते तत्फलं सर्व्वैर्मूर्खत्वञ्चापि हास्यति।।४१।।
त्वन्तु गत्वा क्षतिं स्वीयां करिष्यसि विलक्ष्यते। त्वां दृष्ट्वैव स ते तातो मम निन्दां करिष्यति।।४२।।
तच्छ्रोष्यसि स्वकर्णाभ्यां दुःसहं ते भविष्यति। अतस्ते तत्र नो युक्तं गमनं दक्षपुत्रिके।
सर्व्वार्थ ज्ञान-कुशला न मद्वाक्यमुपेक्षताम्।।४३।।

महेश्वर कहते हैं—हे प्रिये! तुमने जो कहा है, वह सब मैंने पहले ही विचार लिया था! किन्तु हम दोनों का

वहां जाना युक्तिसंगत नहीं है। उन प्रजापति ने हमारी अवहेलना करके देवगण के साथ जो यज्ञ प्रारंभ किया है, उसका फल वे शीघ्र भोगने वाले हैं। उनकी मूर्खता तभी दूर होगी। मुझे लगता है कि तुम वहां जाकर अपने अनर्थ को स्वयं निमंत्रित करने जा रही हो। तुम्हारे पिता वहां तुम्हारे सामने ही मेरा निन्दावाद प्रारंभ करेंगे। उसे अपने कानों सुनकर तुमको असह्य यंत्रणा भोग करना होगा। अतः वहां जाना उचित नहीं है। हे दक्षकन्ये! तुम सब जानती हो। मेरे कथन का उल्लंघन न करो।।४०-४३।।

सत्युवाच

यदुक्तं भवता देव तत्र नौ नोचितो गमः। आवाभ्यामन्यतस्तंतु युक्तिं तत्र निबोध मे।।४४।।
यज्ञ-दान-तपो-होमास्त्वत्परा स्त्रिदशेश्वर। त्वं वै देवाधिपो नाथ सर्व्वयज्ञेश्वरोपि च।।४५।।
आदृत्य वाप्यनादृत्य त्वामसौ कुरुते मखम्। त्वमेव पूजितस्तत्र मया सह महेश्वर।।४६।।
यथाहं तत्सुता देव त्वामनाहूतमप्यगाम्। तथा तत्कृतयज्ञोसौ त्वामेव ह्युपपद्यते।।४७।।
अतः परोक्ष-लब्धेऽर्थे गत्वा लब्धत्वमाचर। किमाह्वानमनाह्वानं विशेषयसि ते उभे।।४८।।
विशेषतस्त्वन्तु योगी (समः पूजापमानयोः। किमाह्वानमनाह्वानं विशेषयसि ते उभे।।४९।।

सती कहती हैं—हे देव! आपके मत से वहां दोनों का ही जाना उचित नहीं है। तथापि अन्य प्रकार से विवेचना से जाना उचित लगता है। हे देवगण के ईश्वर! आप सर्वदेवाधिपति हैं। सर्व यज्ञों के ईश्वर हैं। लोक में यज्ञ, दान, तप तथा होम, जो कुछ क्यों न हो, सभी आपको ही अर्पित होता है। तब मेरे पिता के यज्ञ में आपको भले ही न बुलाया गया हो, वह सब आपको ही अर्पित माना जायेगा। तब मेरे पितृ यज्ञ में आपको आहुति न दिये जाने पर भी वह आपको ही समर्पित होगा। जैसे पिता की इच्छा न होने पर भी मैं आपको अर्पित हो गयी, इस यज्ञ में भी यही होगा। इसमें आपको बुलाया जाना किंवा न बुलाया जाना महत्वपूर्ण नहीं हैं। आप योगी हैं। पूजा तथा अपमान आपके लिये समान ही है।।४४-४९।।

शिव उवाच

आह्वानम्बाप्यनाह्वानं न च योगी) विशेषयेत्। किन्तत्र गमनेनैव प्रयोजनमिहास्ति वा।।५०।।
न योगोपि विना कर्म न च कर्म विनोचितम्।
मान्यस्य पूजा ह्युचिता पूज्यो नापूजकं व्रजेत्।
अपूजकस्य पूजापि नैव पूजेति गण्यते।।५१।।
यत्तु पूज्यमनादृत्य पूजामारभते जनः। न सा पूजा हि फलदा विपत्कारणमेव सा।।५२।।
प्रतिवध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः। तस्मात्तत्र न ते युक्तं ममापि गमनं सति।।५३।।
तत्र त्वयि गतायान्तु मन्निन्दां साधु दुःसहाम्। श्रुत्वैव त्यक्ष्यसि प्राणान्दक्षोपि समखः सखि।।५४।।
अहन्तु गत्वा स्वां निन्दां श्रुत्वा लङ्क्ष्यामि दुर्मुखम्।
त्वं वै पितृवधात् प्रीता मयि नैव भविष्यसि।।५५।।
अप्रीतिर्मरणञ्चोभे समे ते आवयोस्तदा। भविष्यत इति ज्ञात्वा स्वयमेवोचितं कुरु।।५६।।

महादेव कहते हैं—हे देवी! बुलाया जाना तथा न बुलाया जाना, दोनों ही विषय योगी हेतु विधेय नहीं है, तथापि वहां जाने का क्या प्रयोजन? कर्म के बिना योग नहीं होता। साथ ही कर्म करते समय अनुचित कर्म करना विधि सम्मत नहीं है। मान्य की पूजा उचित है। जिसके यहां सम्मान न मिले, ऐसे श्रद्धाहीन के यहां पूज्य का जाना भी अनुचित है। श्रद्धाहीन यदि पूजा करे भी, तथापि वह पूजा नहीं है। ऐसी पूजा व्यक्ति का अनादर है। ऐसी पूजा से दूर ही रहे। यह पूजा विपत्ति का कारण हो जाती है। पूज्य व्यक्ति की पूजा में व्यतिक्रम होने पर अभीष्ट सिद्धि सामने होने पर भी दूर हो जाती है। अतः तुम्हारा वहां जाना कदापि उचित नहीं बोध होता। अपितु यह बोध हो रहा है कि तुम वहां जाकर निन्दा सुनोंगी तथा सहन न होने के कारण तत्काल प्राणत्याग करोगी। यह प्रजापति दक्ष के लिये भी यज्ञ सहित नाश का कारण होगा। अतः तुम पितृवध के कारण मुझसे विरक्त होगी जो हम दोनों के लिये अप्रीतिकर तथा मृत्युतुल्य होगा। यह विचार कर जो उचित हो वही करो।।५०-५६।।

सत्युवाच

यदुक्तं भवता तत्र गत्वाहन्ते विगर्हणाम्। श्रोष्यामि निजकर्णाभ्यां कथन्तन्मे भविष्यति।।५७।।
पुरा स्वयम्बरस्थाने तुभ्यं सम्प्रार्थितं मया। न मे भवतु ते निन्दा मत्कर्णविषयः क्वचित्।।५८।।
यदा मे कर्णविषयस्तव निन्दा भविष्यति। तदा प्राणान् परित्यज्य प्राप्स्यामि त्वां भवान्तरे।।५९।।
मयैतत्प्रार्थितं नाथ तत्र चावहितं तथा। अधुना त्वं कथं तत्र नावधानं करिष्यसि।
तस्मात्त्वयैव त्यक्ताहं मरिष्यामि न चान्यथा।।६०।।

सती कहती हैं—हे देव! आपने कहा कि अपने कानों आपकी निन्दा सुनूंगी, ऐसा कभी नहीं होगा। पूर्व में स्वयंवर काल में आपसे प्रार्थना किया था हे देव! कभी आपकी निन्दा न सुनूं। यदि आपकी निन्दा कानों में पड़े, तब तत्क्षण प्राण त्याग करूं।" आपने यह प्रार्थना सुनी थी। आप अन्य विचार न करें। आपके परित्याग करने पर मैं प्राणत्याग करूंगी।।५७-६०।।

शिव उवाच

भवत्या वाञ्छितं यत्तु वाधिर्यं तत्स्वयम्बरे। मम निन्दाश्रुतौ देवि तच्च सम्पादितं मया।।६१।।
अधुना तु त्वमेवेह मन्निन्दा-श्रुतिमैहथाः। यतो मन्निन्दक-गृहं गन्तुमिच्छसि लक्ष्यसे।।६२।।
तस्मादवारिता देवि यथेच्छं कुरु सर्व्वथा। अपकर्म्म स्वयं कुर्व्वन् परं दूषयते कुधीः।।६३।।

शिव कहते हैं—स्वयंवर स्थल में मैंने तुम्हारी प्रार्थना को पूर्ण कर दिया था। तब भी तुम स्वयं मेरी निन्दा सुनने जा रही हो। अन्यथा मेरे निन्दक दक्ष के यज्ञ में जाने की कामना क्यों होती? अब जो मर्जी हो करो। मैं रुकावट नहीं बनूंगा। दुष्टबुद्धि वाले स्वयं निन्दात्मक कार्य करके दूसरे पर दोषारोपण करते हैं।।६१-६३।।

ऋषिरुवाच

इत्युक्त्वा सा तदा देवी सती दाक्षायणी द्विज। स्तब्धाक्षा मौनमास्थाय सासूया शिवमैक्षत।।६४।।
वीक्ष्यमाणा शिवेनैषा स्तब्धाक्षी चारु-रूपिणी। भयानकैस्त्रिभिर्नेत्रैः शिवमेव व्यमोहयत्।।६५।।
तां ददर्श महादेवः क्रोध-दीप्त-विलोचनां। अग्नि-राशि-चयोद्गारि-तृतीय-नयनामपि।।६६।।

अट्टहास-समुद्गारि-तदूर्ध्व-दन्त-पङ्क्तिकाम्। मधुर-स्मित-भूषाढ्य-रक्ताधर-रदावलीम्॥६७॥

स्वेदाक्त-निखिल-स्वाङ्गां कामालस-लसत्तनुम्।
एवं शिवेक्ष्यमाणा सा त्यक्त्वा हैमीं रुचिं सती॥६८॥

बभूव तत्क्षणादेव ध्वान्ताञ्जन-चय-प्रभा। लोमाञ्चित-समस्ताङ्गी पीनोन्नत-पयोधरा॥६९॥

तीव्र-यौवन-मादेनागणयन्ती महेश्वरम्। मुक्त-केशा विवस्त्रा च वीर-बाहु-चतुष्टयी॥७०॥

ऋषि कहते हैं—महादेव का वाक्य समाप्त होने पर देवी दाक्षायणी ने स्तब्ध हो मौन धारण किया। तब वे अश्रुयुक्त नेत्र से शंकर को देखने लगीं। भगवान् उनके लोचनत्रय को देखकर मुग्ध हो गये। किन्तु कुछ क्षणोपरांत देखते हैं कि उनके दोनों नेत्र क्रोध से दीप्त हैं तथा तृतीय नेत्र से अग्निराशि निर्गत हो रही है। उर्ध्वदन्तपंक्ति अट्टहास युक्त हैं। अधररक्तवर्ण हैं। दन्तावलि मृदुल मृदुहास्य युक्त है। सर्वांग से पसीना बह रहा है तथा शरीर आलस्ययुक्त है। देखते-देखते उनके अंगों की प्रज्वलित स्वर्ण समप्रभ कान्ति छिप गयी। उन्होंने गाढ़ अंधकार राशि की प्रभा धारण कर लिया। समस्त शरीर रोमांचित था। दोनों स्तन पीन तथा उन्नत थे। केशकलाप खुले थे। वे देवी विवस्त्रा तथा चारभुजा युक्त थी।

वे वीरपुरुष के समान अपने देहभार से पर्वत को सब ओर से कम्पायमान कर रहीं थीं। उस समय भगवान् शंकर को भी वे अपने तीव्र यौवन मद से मत्त हो अग्रगण्य विवेचित करने लगीं।।६४-७०।।

देहभारेण तं शैलं कम्पयन्तीव सर्व्वतः। एवं भूत्वा सती देवी श्यामा कमल-लोचना॥७१॥

उत्तस्थौ सहसा चारु-विलसत्पाद-पङ्कजा। तां तादृशाकृतिं वीक्ष्य शिवो धैर्य्यमपोह्य च।
पलायने मतिं चक्रे धावमानो विमुग्धवत्॥७२॥

तं धावमानं गिरीशं दृष्ट्वा दाक्षायणी सती। माभैर्म्माभैरिति गिरा मा पलायेत्युवाच सा।
तथाप्येनं पलायन्तं ह्यनिवृत्तं विलोक्य च॥७३॥

दशमूर्त्तिर्व्वभौ देवी दशदिक्षु शिवेक्षिता। भयद्रुतो दिशं यां यां शिवः पश्यति जैमिने।
तस्यां तस्यां दक्षकन्यां सतीं पश्यति भीतितः। अप्राप्य शम्भुश्च दिशं विभयां स पलायितुम्॥७४॥

तत्रैवोवास नेत्राणि मुद्रयित्वा त्रिलोचनः। पुनः सम्मील्य नेत्राणि ददर्श गिरिशः स्वयम्॥७५॥

श्यामां ललित-सर्व्वाङ्गीं स्मित-शोभि-मुखाम्बुजाम्।
दक्षिणाभिमुखीं दिव्यां मुक्तकेशीं शुभस्तनीम्॥७६॥

तां दृष्ट्वा रुचिरापाङ्गीं श्यामवर्णां हसन्मुखीम्। सभीत इव तस्याग्रे कम्पमान-चदब्रवीत्॥७७॥

इस प्रकार श्यामा मूर्त्ति धारण करके कमलनयना सती सहसा उठी। उनके चरणयुगल प्रस्फुटित् कमल जैसे शोभायमान थे। महेश्वर ने उनकी यह मूर्त्ति देखा तब धीरज खोकर अन्य मार्ग न देखकर वहां से पलायन कर जाना ही उचित समझा तथा विमुग्ध होकर दौड़ पड़े। दाक्षायणी ने उनको पलायित होकर जाते देखा तब "भय मत करें भय न करें" का शब्द करने लगीं। तथा भूतनाथ को पलायन से न रुकते देख देवी ने १० दिशाओं में १० मूर्त्ति धारण किया। भय से ग्रस्त भूतनाथ जिधर भी दृष्टि फेरते उधर ही दाक्षायणी की उन-उन मूर्त्ति को देखकर भीत हो गये। जब शम्भु कहीं भी पलायन का मार्ग न मिलने से अशक्त हो गये, तब उन्होंने वहीं खड़े होकर नेत्र बंद कर लिया।

कुछ क्षण के उपरांत नेत्र खोलकर देखा तो वे मुक्त केशी श्यामाङ्गी ही दक्षिणाभिमुखीन होकर हास्यरत थी। तब महेश्वर भय कम्पित होकर कहने लगे।।७१-७७।।

शिव उवाच

त्वं क्वासि चारुनयना श्यामवर्णा-लसत्तनुः। सती दाक्षायणी मा मे क्व गता सहचारिणी॥७८॥

शिव कहते हैं—हे देवी! आप मधुर श्यामवर्णा कौन हैं? मेरी सहचरी-दाक्षायणी सती कहां है?।।७८।।

सत्युवाच

अहं दक्षसुता देवी कथमेवंमतिर्भवान्। वर्ण-मात्र-परावृत्तां किं मां लक्षयसेऽन्यथा॥७९॥

देवी कहती हैं—मैं ही दक्षतनया हूं। मेरा दैहिक वर्णमात्र परिवर्त्तित हुआ है, तभी आप मुझे नहीं पहचान पा रहे हैं!।।७९।।

शिव उवाच

कथं त्वं श्याम-वर्णाभूः कथम्बाभूर्भय-प्रदा।
इमा वा तव देव्यः कास्त्वञ्चासां कतमा वद॥८०॥

शिव कहते हैं—हे देवी! तुमने यह भयावह श्याममूर्त्ति धारण किया है, तुम इनकी कौन हो तथा ये सभी दसों देवी मूर्त्ति किसकी हैं, परिचय दो।।८०।।

सत्युवाच

अहन्तु प्रकृतिः सूक्ष्मा प्रसूत्यां दक्षतोऽभवम्। लसत्कनक-गौराङ्गी लिप्सुस्त्वां पुरुषोत्तमम्॥८१॥
यदा यूयं त्रयो जाता ब्रह्म-विष्णु-शिवा इति। तदाहं शवरूपेण युष्माकं निकटं गता॥८२॥
तत्र मां विकृताकारां पूर्व्वाभ्यां समुपेक्षिताम्। गृहीतवान् भवानेव तेनाहं वशगा तव॥८३॥
त्वं मे प्राणाः सुहृद्भर्त्ता पुरुषः प्रकृतिप्रियः। त्वामेव लिप्सुर्दक्षस्य क्षेत्रे धृतवती वपुः॥८४॥
तव निन्दाश्रुतौ काले बाधिर्य्यं यन्मयेप्सितम्। तव त्यागलक्षणं तत् मया पूर्व्वं निरूपितम्॥८५॥
यदि श्रोष्यामि ते निन्दां तदा त्यक्ष्याम्यहं तनुम्। कथ्यते भवताप्येवं मन्निन्दा श्रोष्यते त्वया॥८६॥
यत्र त्वया न गन्तव्यं तज्जाताहं न ते प्रिया। अतएव मया त्याज्यं देहञ्चोभयथा शिव॥८७॥
दक्षजेन शरीरेण नाहं ते निकटोचिता। इति कृत्वा कियद्भेदं शरीरं विहितं मया॥८८॥
इमाश्च देव्यो नव वै अहमेव विभूतितः। तवानिष्टौ यज्ञदक्षौ नाशये यदि मन्यसे।
दक्ष-यज्ञ-विनाशाय सामर्थ्यं ते प्रदर्शितम्॥८९॥

देवी कहती हैं—मैं सूक्ष्म प्रकृति हूं। आप पुरुषोत्तम हैं। आपको पाने के लिये ही मैंने दक्ष के औरस से तथा प्रसूति गर्भ से गौरवर्णा होकर जन्म लिया। जब ब्रह्मा-विष्णु तथा आपने जन्म लिया, तब मैं शवरूपा हो आप लोगों के निकट आयी। मेरा विकृत रूप देखकर ब्रह्मा-विष्णु ने मुझे उपेक्षित किया लेकिन आपने मुझे ग्रहण किया। तभी से मैं आपके वशीभूत हूं। आप मेरे प्राण हैं। आपको पाने हेतु मैंने दक्ष के यहां जन्म लिया। तभी मैंने आपकी निन्दा

श्रवण करते ही देहत्याग का प्रण किया। आप मेरा त्याग करेंगे, यह मैंने पहले ही जान लिया। अब यदि आपकी निन्दा सुनना पड़ेगा, तब मैंने प्राणत्याग का संकल्प लिया। आपने भी कहा कि जहां शिवनिन्दा हो वहां जाना उचित नहीं है। अतः मैं आपकी प्रीतिभाजन नहीं हो सकी। इसलिये मृत्यु ही श्रेयप्रद है। दक्ष से यह शरीर उत्पन्न है, अतः इस शरीर को आपके पास रखने में लज्जा बोध हो रहा है। आपने जिन देवी मूर्त्तियों को देखा है, वे सभी मेरे ही ऐश्वर्य से उद्‌भूत हैं। दक्षयज्ञ विनाश का सामर्थ्य दिखलाने के लिये ही इन मूर्त्तियों को मैंने प्रकट किया है। यदि अनुमति हो तब दक्षयज्ञ ध्वंस करूं।।८१-८९।।

शिव उवाच

त्वं यदि प्रकृतिः सूक्ष्मा (अहञ्चेत् पुरुषः परः। कथं मे वशगा भूता स्वतन्त्रा शक्तिरूपिणी॥९०॥

शिव कहते हैं—हे देवी! यदि आप सूक्ष्म प्रकृति हैं तथा मैं साक्षात् परमपुरुष हूं, तब आप स्वतंत्रा एवं शक्तिरूपा होकर भी मेरे वश में क्यों है?।।९०।।

सत्युवाच

शृणु देव महादेव गुह्याद्गुह्यतरं परम्। आदिसृष्टेरुपाख्यानं ब्रह्मविष्ण्वाद्यगोचरम्॥९१॥
या मूलप्रकृतिः सूक्ष्मा) परमा निरुपाधिका। ब्रह्माण्ड-कोटि-कोटीनां मूलं मूलान्तवर्जिता॥९२॥
सत्वंरजस्तम इति गुणास्तस्याः पृथक् पृथक्।
अथ जातासि सूक्ष्मास्याः स्वयम्भूता सनातनी॥९३॥
सिसृक्षायाञ्च जातायां त्रयस्ते प्रकृतेर्गुणाः। एकीभूता पुमान् जातश्चेतना-रहितः क्षणात्॥९४॥
तं दृष्ट्वा पुरुषं जातं गुणत्रयमयं शिव। सिसृक्षां तत्र पुरुषो समक्रामयदिच्छया॥९५॥
संक्रान्तायां सिसृक्षायां पुरुषे तत्र तादृशे। शक्तिमान् पुरुषो भूतस्त्रिविधश्च गुणैस्त्रिभिः॥९६॥
ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चापि रजःसत्वतमोमया। त्रीनेतान् पुरुषान् जातान् ददर्श परमा यदा।
परमोपाधयो भूतास्तदा ते पुरुषास्त्रयः॥९७॥
तथापि सृष्टिर्न भवेदिति ज्ञात्वा महेश्वरी। पुरुषांश्च द्विधा चक्रे जीवञ्च परमन्तथा॥९८॥

सती कहती हैं—भगवान्! सुनें! जिस प्रकार से प्रथमतः सृष्टि होती है, वह गुप्त आख्यान है। वह ब्रह्मा-विष्णु भी नहीं जानते। यह मूल प्रकृति सूक्ष्मा तथा उपाधिशून्य है। जो अनन्त ब्रह्माण्ड के मूल कारण हैं, जिनका आदि-अन्त तक नहीं है, जो गुणत्रय के आधार हैं, पहले उन्होंने ही सृष्टि की इच्छा की। तब गुणत्रय ने एकत्र होकर एक चेतना रहित पुरुष को जन्म प्रदान किया। तत्पश्चात् गुणत्रय ने एकत्रित होकर त्रिविध रूप धारण किया। उनमें से प्रथम थे ब्रह्मा सत्वगुणात्मक, द्वितीय थे विष्णु रजोगुणात्मक तथा तृतीय शिव थे तमः गुणात्मक। जब इन परमाप्रकृति ने तीनों का निरीक्षण किया, तब वे परम उपाधियुक्त हो गये। तथापि तब भी सृष्टि न होते देख कर महेश्वरी ने उनको जीव तथा परम उपाधियुक्त—इस दो प्रकार से बांट दिया।।९१-९८।।

जीवस्तु परमोपाधिं पुरुषं तं मयक्षितम्। सदा पश्यन् याति तत्त्वं नैव सृष्टिस्तदाभवत्॥९९॥
तदा सा मूलप्रकृतिरात्मानमकरोत् त्रिधा। माया विद्या च शक्ती द्वे परमा च सनातनी॥१००॥

मायाभूद्वशगा पुंसः परमस्य ययावृतम्। परमं नेक्षते जीवः पुरुषं पुरुषो यतः॥१०१॥
महामाया मोहमयी सृष्टिरिष्टा प्रवर्त्तते॥१०२॥
ततस्त्रयाणां पुंसां च परमोपाधिशालिनां। गुणेभ्य उपकाराय विद्याभूत् प्रकृतिर्हि सा॥१०३॥
विद्यारूपा च प्रकृतिराकाशे तु निराकृतिः। पुरुषान् भ्रमतः प्राह सृजावसंहरेति च॥१०४॥
तदर्थं तपतपेत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत। ते श्रुत्वा वचनं तस्या ब्रह्मा सत्त्वगुणाश्रयः॥१०५॥
अप एव ससर्जादौ तत्र ते पुरुषोत्तमम्। तान् दृष्ट्वा तपसाविष्टान् देवी प्रकृतिरुत्तमा॥१०६॥
को मां ग्रहीष्यतीत्येवं बभ्राम शवरूपिणी। तत्रादिर्नाम ते ब्रह्मा मां दृष्ट्वा भयमाश्रितः॥१०७॥
चतुर्दिक्षु चतुर्वक्त्रो बभूव तदनन्तरम्। मध्यमोऽभूज्जले मग्नो मुद्रिताजो विचेतनः॥१०८॥

तथापि परमपुरुष के प्रति जीव का सदैव दृष्टिपात होते रहने के कारण, उसे तत्वज्ञान होने लगा। तब भी सृष्टि न होते देखकर मूल प्रकृति ने स्वयं को माया तथा विद्यारूपेण विभक्त कर दिया। इसमें माया परम पुरुष की वशवर्त्तिनी थी तथा माया से आवृत परमपुरुष के प्रति जीव का अवलोकन न होने के कारण माया द्वारा मोहमयी सृष्टि का सूत्रपात हो गया। तब विद्यारूप प्रकृति ने आकाश में गुप्त भाव से अवस्थित होकर परमपुरुष को आदेश दिया "हे ब्रह्मन्! तुम सृष्टि करो। हे विष्णु! तुम पालन करो। हे महेश्वर! तुम संहार करो। इसके लिये तुम तीन तपः करो।" इस देववाणी को सुनकर ब्रह्मा ने जल सृष्टि किया तथा उसमें तीनों तप करने लगे। उनको तपःश्चरण करते देखकर प्रकृति देवी ने वहां आकर कहा—"कौन मुझे ग्रहण करेगा।" यह देख ब्रह्मा ने चारों ओर मुख फेरा और चतुर्मुख हो गये। विष्णु आखें बंद करके अचेतनरूपेण जलमग्न हो गये।।९९-१०८।।

ततः परं शिवं याता स तां जग्राह सादरः। स त्वं साहं त्वद्वशगा न त्यक्ता तादृशी यतः॥१०९॥
तत्राहं सृष्टिकर्त्तारं चक्रे ब्रह्माणमीश्वरम्। विष्णुञ्च पालकं चक्रे शयानो यो जलेऽभवत्।
संहारकारकं त्वाञ्च शिवनामानमक्षरम्॥११०॥

प्रकृति कहती हैं—जब प्रकृति शिव के पास गईं तब उन्होंने प्रकृति को सादर ग्रहण कर लिया। हे देवाधिदेव! आप ही वे शिवरूपी परमपुरुष हैं तथा मैं ही वह मूल प्रकृति हूं। आपने मेरा त्याग नहीं किया, अतः मैं आपके वशीभूत हो गयी। मेरे ही आदेश से ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हैं, तत्कालीन जलशायी विष्णु पालनकर्त्ता तथा आप परमपुरुष संहारकर्त्ता हो गये।।१०९-११०।।

विष्णुस्तु मध्यमो देवः सत्त्वरूपी विभुः प्रभुः।
मयेक्षितः सत्त्वहदृष्ट्या सर्व्वश्रेष्ठत्वमाप्तवान्॥१११॥
प्रेरकः सर्व्वभूतानामन्तर्यामी च कल्पितः॥११२॥
स चक्रे सात्विकीं सृष्टिं ब्रह्माण्डन्तु जलान्तरे। ततश्चक्रे द्विधा ह्यण्डं भूरादि ह्यतलादि च॥११३॥
जलपूर्णार्द्धभागन्तदधोर्द्ध्वं ददृशे तमः। तस्य नाभेरभूत् पद्मं तत्र ब्रह्मा ससर्ज च॥११४॥
जलादुत्थाप्य पुरुषं कलाषोड़शसंयुतम्। सर्व्वावयवसम्पूर्णं स्त्रष्टुं समुपचक्रमे॥११५॥

मेरी सत्वदृष्टि से विष्णु ने सर्वश्रेष्ठत्व प्राप्त किया। वे सर्वभूतसमूह के नियन्ता हो गये। उन्होंने पहले जल

में सात्विक सृष्टि रूप ब्रह्माण्ड सृष्ट करके भूरादि तथा अतलादि रूपेण ब्रह्माण्ड को द्विधा विभक्त किया। उसका अर्द्धभाग जलपूर्ण, मध्यस्थल अन्धकारपूर्ण है। तदनंतर उनके नाभि से एक पद्म निकला। उस पर बैठकर ब्रह्मा ने सृष्टि किया तथा षोडशकला वाले पुरुष को जल से उठाकर सर्वतोभावेन सृष्टि करने लगे।।१११-११५।।

इयञ्च राजसी सृष्टिः सृष्टा वै ब्रह्मणा तु या।
संक्षिप्ता सात्विकी सृष्टिर्व्विस्तृता राजसी मता॥११६॥
संहारकारिणी सृष्टिस्तामसी परिकीर्त्तिता। सात्विकी सृष्टिकर्त्ता वै विष्णुरेव सनातनः॥११७॥
राजसी तामसी सृष्ट्योर्ब्रह्मैको राजसः पुमान्।
शेषे संहारकृत्यर्थं शिवस्त्वं त्रिगुणात्मकः॥११८॥
सत्वं रजस्तम इति गुणाः सर्व्वे परस्परम्। साचिव्यं कुर्व्वते तस्मात् नैकत्रैकश्च केवलः॥११९॥
प्राधान्येनैव सत्वादेः सात्विकत्वादिरुच्यते। अहं त्रिभिर्गुणैर्हीना विभामि सगुणेन वै॥१२०॥
तेन त्रिगुणकाम्यायै त्वामेव शिवमाश्रिता। ब्रह्मविष्णु चाश्रिताहं अंशेन त्र्यक्ष तादृशी॥१२१॥
त्वान्तु मुख्यतयाश्रित्य विहरामि विशेषतः। ब्रह्मसृष्टौ वयं सर्व्वे सृष्टा इवानुमोदिताः॥१२२॥
अतोऽहं दक्षभार्यायां जाता नाम शरीरिणी।
एवं लक्ष्मी-सरस्वत्यौ सावित्री च पुरो ययोः॥१२३॥

ब्रह्मा द्वारा जो सृष्टि होने लगी, यही है राजसी सृष्टि, जो अत्यन्त विस्तार वाली है। यही संहारकारिणी तामसी सृष्टि भी है। सात्विकी सृष्टि अत्यंत सीमित है। सनातन विष्णु सात्विकी सृष्टिकर्त्ता हैं। राजसी-तामसी सृष्टिद्वय में ब्रह्मा एकमात्र राजस पुरुष रूप सृष्टिकर्त्ता हैं। संहारकार्य हेतु आप त्रिगुणात्मक शिव रूप से स्थित हैं। सत्व, रजः तथा तमः गुणत्रय सुसम्बद्ध रहता है। एकमात्र कोई गुण नहीं रहता। जिसे सात्विक कहते हैं। वहां सत्व की प्रधानता तथा रजः-तमः की गौणरूपता है। जो राजसी सृष्टि है, उसमें रजोगुण प्रधान है तथा तमः एवं सत्व अप्रधान है। तामसी सृष्टि में तमः प्रधान है। सत्व तथा रजः गौण है। मैं स्वयं निर्गुण होकर भी सत्वगुण के साथ मिलित रहती हूं। आप त्रिगुणात्मक हैं, तभी आपका आश्रय लिया। हे त्रिलोचन! एवं विध मैं ब्रह्मा तथा विष्णु का भी आश्रय लेती हूं, तथापि सर्वतोभावेन आपका ही आश्रय लिया है। अब ब्रह्मा के सृष्टिकार्य में हम सब स्वेच्छा से जन्म लेते हैं। तभी मैंने प्रसूति नामक दक्षपत्नी के गर्भ से जन्म लिया था। लक्ष्मी-सरस्वती-सावित्री मेरी ही अंशरूपा हैं।।११६-१२३।।

प्रीतये वै अहं जाता तदर्थे दक्षकन्यका। मत्तोऽपि ह्यधिका सूक्ष्मा या मूलप्रकृतिर्हि सा॥१२४॥
अथैता दश वै देव्यो मूर्त्तयो मम पश्य ताः। महाविद्या इमाः प्रोक्ता नामान्यासान्तु वर्णये॥१२५॥
काली तारा महाविद्या षोड़शी भुवनेश्वरी। भैरवी च्छिन्नमस्ता च सुन्दरी बगलामुखी।
धूमावती च मातङ्गी महाविद्या दशैव ताः॥१२६॥

जो मूलप्रकृति मुझसे भी श्रेष्ठा तथा सूक्ष्मा हैं, ये सम्मुखीन दसों मूर्त्ति वाल देवियां उनकी ही अंश हैं। ये सब दस महाविद्या हैं। इनका नाम है क्रमशः काली, तारा, षोड़शी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, सुन्दरी, बगलामुखी, धूमावती तथा मातंगी।।१२४-१२६।।

शिव उवाच

प्रोक्तास्त्वया महाविद्याः कस्याः किं नाम कथ्यताम्।
आसामुपासनाकारं कथय त्वं महेश्वरि॥१२७॥

शिव कहते हैं—हे देवी! आपने इन सबके नाम तो कहे, तथापि किसका क्यों यह नाम है, तथा उपासना का विधान क्या है?।।१२७।।

एषा ते पुरतो या तु सा तु काली दिगम्बरी। यान्तरीक्षे श्यामवर्णा सा तारा कालरूपिणी॥१२८॥
दक्षिणे च्छिन्नमस्तेयं वामे ते भुवनेश्वरी। वगलामुखी च पश्चात्ते वह्नौ धूमावती तव॥१२९॥
सुन्दरी ते च नैऋत्यां वायौ मातङ्गनामिका। षोड़शी च तथैशान्यां अहं ते भैरवी तनौ॥१३०॥

देवी कहती हैं—जो सामने दिगम्बरीरूपा हैं, वे काली हैं। जो अन्तरिक्ष में कालरूपा श्यामा परिलक्षित हैं वे तारा हैं। आपके दाहिनी ओर छिन्नमस्ता हैं। वामभाग में भुवनेश्वरी हैं। पीछे बगलामुखी, अग्नि कोण में धूमावती, नैर्ऋत्य कोण में सुन्दरी, वायु कोण में मातंगी, ईशान में षोडशी तथा भैरवीरूप में आपके शरीर में मैं विराजमान हूं।।१२८-१३०।।

एताभिः खलु विद्याभिस्तव द्वेषकरं पशुम्। सयज्ञं पितरं दक्षं नाशयामि वदस्व चेत्॥१३१॥
एताः सर्व्वा महाविद्याः भजतां मोक्षदाः पराः।
मारणोच्चाटन-क्षोभ-मोहन-द्रावणानि च॥१३२॥
जृम्भन-स्तम्भ-संहारान् वाञ्छितार्थान् प्रकुर्व्वते।
एतत्त्वे कथितं तत्त्वं यत्पृष्टाहं त्वया शिव॥१३३॥
व्यामोहं मा कुरु स मे मनो धत्स्व महेश्वर। गोपनीयम्परञ्चैतत् न प्रकाश्यं कदाचन॥१३४॥

अब मैं आपकी अनुमति लेकर इन महाविद्यागण के साथ शंकरद्वेषी प्रजापति दक्ष को यज्ञ के साथ नष्ट करूंगी। जो ये सभी महाविद्या भक्तगण को मुक्तिदायिनी हैं ये ही मारण, उच्चाटन, क्षोभण, द्रावण, जृम्भण, स्तम्भन तथा संहार आदि वांछित फल भी देती है। हे महेश्वर! मैंने आप द्वारा पूछे गये समस्त प्रश्नों का उत्तर दिया। यह गोपनीय है तथा सभी के समक्ष इसे नहीं कहे।।१३१-१३४।।

दिव्यज्ञानेन भगवन् पश्य मां जगदम्बिकाम्।
ममाराधनशास्त्राणि करिष्यसि तथा स्वयम्॥१३५॥
काली-तारादि-रूपाया मम मन्त्रान् महाफलान्।
स्तवांश्च कपचान्येवं त्वं वदिष्यसि सर्व्वथा॥१३६॥
अहं वै सर्व्ववेदानां रहस्या परमामला। मम वै मन्त्रतन्त्राणि सुरहस्यानि सर्व्वथा॥१३७॥
तेषां वक्ता च कर्त्ता च भवानेव भविष्यति।
आगमस्य भवान् कर्त्ता वेदकर्त्ता हरिः स्वयम्॥१३८॥
आदावागमकर्तृत्वे भवान् वै विनियोजितः। पश्चाद्वै वेदकर्तृत्वे हरिः सम्यङ्नियोजितः॥१३९॥

आगमश्चैव वेदश्च द्वौ बाहु मम पुष्कलौ। द्वाभ्यामेव धृतं सर्व्वं त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम्॥१४०॥
यश्चागमञ्च वेदञ्च विलङ्घयति धूर्जटे। सोऽधः पतति हस्ताभ्यां गलितो मे चिरं चिरम्॥१४१॥
यश्चागमम्बा वेदम्बा विलङ्घ्यान्यतमं भजेत्।
तस्याहं विकलाङ्गाभ्यां समुद्धर्तुमशक्तिका॥१४२॥

हे भगवन्! आप दिव्यज्ञान चक्षुओं से देखें। मैं वही जगदम्बिका हूं। मेरी आराधना के शास्त्रों का (तंत्रों का) आप ही प्रणयन करेंगे तथा काली तारा आदि सभी विद्याओं का मंत्र-स्तव-कवचादि का प्रकाशन आप ही सर्वतोभावेन सम्पन्न करें। मैं सभी देवों में निर्मला तथा अत्यन्त गुप्त हूं। मेरे रहस्य को तथा मंत्र-तंत्र को आप ही व्यक्त करें। आप आगम कर्त्ता हैं। विष्णु वेदकर्त्ता हैं। आप पहले आगम विषय में विनियुक्त थे। तत्पश्चात् वेद विषयों में विष्णु नियोजित हुए। आगम तथा वेद, मेरे दो बाहु हैं। इनके द्वारा मैं भूलोक, भुवलोक आदि समस्त जगत् को धारण करता हूं। हे धूर्जटे! जो व्यक्ति आगम तथा वेद का उल्लंघन करता है, वह मेरे हाथों गलित होकर चिरकाल तक अधःपतित होता है। जो आगम किंवा वेद का उल्लंघन करके अन्य का आश्रय लेता है, मैं विकलांगी होकर उसका कभी उद्धार नहीं कर सकती।।१३५-१४२।।

द्वावेव शिवपन्थानौ दुरूहौ दुर्घटावपि। दुर्ज्ञेयौ च सुदुष्पारौ भेदयेन्न कदाचन॥१४३॥
सर्व्वेषामेव देवानां मन्त्रतन्त्रादिकृद्भवान्। तन्त्रमन्त्रास्तु मे गोप्या वैष्णवाचारशालिभिः॥१४४॥
तस्मान्मद्दीक्षकाः शम्भो भवेयुः शाक्तवैष्णवाः।
शक्तौ विष्णौ यस्य भक्तिः स शाक्तः स्यान्न चापरः॥१४५॥
विष्णुभक्तिमनाश्रित्य कथं शाक्तीं विधिं चरेत्। वैष्णवानान्तु मन्त्राणामहं दैवतमेव हि॥१४६॥
तस्मान्ममोपासकः स्याद्विष्णुदीक्षाबिधौ गुरुः। शक्तेरदीक्षितो यस्तु शक्तिदीक्षां प्रवर्त्तयेत्।
तावुभौ याति तौ स्यातां कूपेन्धाविव दुर्म्मती॥१४७॥
एतद्वचो मे परमं ध्यायन् शम्भो त्रिलोचन। अहं यामि दक्षयज्ञं पिता मे स प्रजापतिः॥१४८॥

ये दोनों मार्ग मंगलप्रद, दुरुह, दुर्घट, दुर्जेय तथा दुरतिक्रमणीय हैं। इनमें विभिन्नता देखना अनुचित है। आपने सभी देवगण के मंत्रों-तंत्रों को व्यक्त किया है। वैष्णव के लिये भी मेरा मंत्र-तंत्र रक्षणीय है। अतः मंत्र दीक्षित के लिये शाक्त तथा वैष्णव में पारस्परिक भेद नहीं हैं। शक्ति तथा विष्णु के प्रति जो अचला भक्तियुक्त हैं, वे ही यथार्थ शाक्त हैं। अन्य तो शाक्त हो ही नहीं सकता। जिसने विष्णु भक्ति नहीं किया, वह शक्ति विधान का आचरण कैसे करेगा? समस्त वैष्णवमंत्रों की मैं ही देवता हूं। केवल मेरा उपासक ही विष्णुदीक्षा का गुरु हो सकता है। यदि कोई व्यक्ति शक्ति दीक्षित हुए बिना शक्ति दीक्षा देता है, तब मंत्र देने तथा मंत्र लेने वाला ये दोनों अंधकूप में जा गिरते हैं। यह सब आप स्मरण रखें। अब मैं पिता दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जाती हूं।।१४३-१४८।।

शुक उवाच

इत्युक्त्वा सा महाकाली तारा गगनवासिनी। एकरूपा वभूवैव देव-देवी त्रिलोचना॥१४९॥

शुक कहते हैं—यह कहकर गगनवासिनी महाकाली ने तारा आदि महाविद्यागण के साथ मिलित होकर एकरूप धारण किया।।१४९।।

शिव उवाच

त्वं देवी प्रकृतिः सूक्ष्मा पुंसामर्थे शरीरिणी।
मत्पत्नीत्वमनुप्राप्ता क्व त्वं काहं पुमान् जड़ः॥१५०॥
त्वं यद्गमिष्यसि शिवे दक्षस्य निलयं स्वयं। का मे शक्तिस्तन्निषेधे निषेधशेषरूपिणी॥१५१॥
यन्मया कथितं तुभ्यं प्रभुत्वाभिमतेन वै। तत् क्षन्तव्यं महेशानि यथारुचि तथा कुरु॥१५२॥

महादेव कहते हैं—देवी! आप ही सूक्ष्म प्रकृति हैं। आपने लोक कार्य हेतु देहधारण किया है। आपने पतिभाव से मेरा आश्रय लिया तो है, तथापि कहां आप सूक्ष्मरूपा मूलप्रकृति कहां मेरे समान जड़पुरुष! यदि आप स्वयं दक्षयज्ञ में जाती है तब क्या मुझ जैसे को आपके रोकने की शक्ति है? हे महेशानि! आप अपनी अभिरुचि से कार्य करिये। मैंने पति प्रभुत्ववशात् आपसे जो कुछ कहा था उसे क्षमा करें।।१५०-१५२।।

शुक उवाच

श्रुत्वैवं दक्षकन्या शिववचनमथो मुक्तकेशी सुवेशी
काली कालाम्बुदाभा गगनपथगतिर्व्वाहुदण्डैश्चतुर्भिः।
धावन्ती वेगयुक्ता पवनविचलितव्याघ्रचर्म्मोरुभागा
पीनोत्तुङ्गस्तनाढ्या भयदतरमुखी दीप्त-नेत्र-त्रयाभूत्॥१५३॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे षट्त्रिंशोऽध्यायः।।



शुक कहते हैं—शिव के इस वाक्य को सुनकर दक्षकन्या मुक्तकेशी, नीलाम्बुद विनिन्दिता, चतुर्भुजा देवी काली मूर्त्ति धारण करके आकाश मार्ग से जाने लगीं। उनका कटिदेश में बंधा व्याघ्रचर्म पवन वेग से विचलित हो रहा था। उनके पीन स्तनद्वय अतिवेग से हिल रहे थे तथा उनके प्रदीप्त लोचनत्रय से उनका मुखमण्डल अतीव भयंकर लग रहा था।।१५३।।

।।षड्त्रिंश अध्याय सम्पन्न।।



सप्तत्रिंशोऽध्यायः

सती का देहत्याग

शुक उवाच

ततः सती समागत्य दक्षस्य निलयं पितुः। सती समागतेत्येवं वाचालमकरोत्समम्॥१॥
सर्व्वे सर्व्वाणि सन्त्यज्य कर्म्माण्यावालवृद्धकाः। सतीं द्रष्टुं समायाताः श्यामीभूतलसत्तनुम्।
विवेशान्तःपुरं देवी यत्र माता प्रसूरिति॥२॥

प्रसूर्विलोक्य तां पुत्रीं क्रोड़े कृत्वा चिरागताम्। रुरोद वत्से वत्सेति सिञ्चन्ती नेत्रजैर्जलैः॥३॥
वत्से प्राप्तासि देवेशं शिवं स्वामिनमुत्तमम्।
अशोच्यासि गतास्यस्मान् शोच्यान् कृत्वा शुचिस्मिते॥४॥
चिरेणाधिगतः शोको दूरीभूतोऽद्य सर्व्वथा। पिता तव सुदुर्बुद्धिः शिवद्वेषकरः सदा॥५॥
अनाहूय शिवं त्वाञ्च करोति यज्ञमुत्तमम्। अद्य स्वप्ने मया दृष्टं तत्समाकर्ण्यतां सुते॥६॥

शुकदेव कहते हैं—तदनन्तर सती दक्षालय में उपस्थित हुईं। वहां सती के आने का महान् कोलाहल उठा तथा पुरी के बाल-वृद्ध सभी श्यावर्ण सती को देखने आये। क्रमशः सती ने अन्तःपुर में प्रवेश किया तथा अपनी माता प्रसूति के पास आयीं। प्रसूति ने दीर्घकाल के पश्चात् समागता सती का अवलोकन किया तथा उसे गोद में लेकर रोदन करने लगीं। उनके नेत्रश्रुओं से सती का सर्वांङ्ग अभिषिक्त हो गया। कुछ क्षण के उपरान्त प्रसूति ने कहा—बेटी! तुमने सभी देवों के अधीश्वर महेश को पतिरूप से प्राप्त किया है तथा उनकी हृदयवल्लभा होकर हम लोगों को तुमने एकदम भुला दिया! हे शुचिस्मिते! हम तुम्हारे वियोग में शोक सागर में मग्न हैं। अब बहुत दिनों के उपरान्त यह शोक दूर हो सका। तुम्हारे पिता की दुर्बुद्धि के सम्बन्ध में क्या कहा जाये? वे सर्वदा से शिवद्वेषी हैं तथा इसी कारण उन्होंने तुम दोनों को न बुलाकर यह यज्ञ आरंभ किया है।,हे पुत्री! मैंने एक स्वप्न देखा है। उसे सुनो।।।१-६।।

प्रजापतिः स्कन्धहीनो मूत्रकुण्डतटे स्थितः। राक्षस्यो विकृताकाराः खादितुं तं समुद्यताः॥७॥
नृत्यन्ति च हसन्त्यन्याः पिवन्त्यन्याश्च शोणितम्।
कृत्वा दक्षशिरश्चान्याः कन्दुकं विहरन्ति च॥८॥
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च कुष्माण्डकटपूतनाः। दक्षं प्रदक्षिणीकृत्य नृत्यन्ति च हसन्ति च॥९॥
दृष्टैवन्तु वयं सर्व्वे दक्षस्य नगरस्थिताः। व्याकुला रोदमानाश्च निर्वृतिं न लभामहे॥१०॥

ये प्रजापति स्कन्ध हीन हो यज्ञ कुण्ड के पास पड़े हैं। विकृत आकार की राक्षसी उन सबके भक्षणार्थ समुद्यत हैं। कोई नृत्यरत है, कोई हास्यरत है। कोई रुधिर वर्षा कर रही है कोई दक्ष का मस्तक लेकर उसी से गेंद खेल रही है। इस प्रकार से समस्त, भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड तथा कटपूतना आदि दक्ष की प्रदक्षिणा करते हास्य के साथ नृत्यरत हैं। नगर स्थित प्रजागण तथा हम सभी यह सब देखकर व्याकुल होकर रुदन कर रहे हैं। अब हमारा क्या कर्तव्य हो, कुछ भी तय नहीं कर पाये!।।७-१०।।

तदनन्तरमेवाथ दृष्टा काचिन्महेश्वरी। महामेघप्रभा श्यामा यौवनाभरणोज्ज्वला॥११॥
सूर्य्यकोटिच्छविर्देवी साट्टहासा दिगम्बरी। त्रिनेत्रा चारुविलसद्दोश्चतुष्का महारवा॥१२॥
तामागतां समालोक्य सर्व्वे ते राक्षसादयः। दूर विदुद्रुवुर्भीतास्ताक्ष्‍र्यत्रस्ता इवाहयः॥१३॥
तत् दृष्टा मत्पुरस्थायी रुद्र एकादशो ययौ। पप्रच्छ कासि कस्यासि किमर्थमिह चागता॥१४॥
तं रुद्रं सा जगादैवं सती दाक्षायणी ह्यहम्। पित्रा बद्धं महायज्ञं राक्षसाद्याः प्रभञ्जते॥१५॥
पिता मे छिन्नमस्तोऽभूदप्येवमिति दर्शनात्। व्यग्रा वयं समागत्य सर्व्वारिष्टानि मत्पितुः॥१६॥
त्वन्तु कः परमो ह्युग्रः सदने भीमरूपवान्। ततस्तामाह रुद्रोऽसौ रुद्रोऽहं दक्षकन्यके॥१७॥

अन्यैश्च दशभिः सार्द्धं वसामि दक्षपत्तने। त्वं पुनर्दक्षकन्या चेद्दक्षं जीवय जीवय॥१८॥

तदनन्तर देखा कि महामेघ के समान श्यामवर्णा दिगम्बरी, त्रिनयना, चतुर्भुजा एक महेश्वरी मूर्त्ति जो करोड़ों सूर्य प्रभायुक्ता थीं अट्टहासरत थीं। उसके महाशब्द से दिग-दिगन्त व्याप्त था। जैसे गरुड़ के भय से सर्प भाग जाते है, वैसे ही उसे देखते ही राक्षसादि सब भयभीत होकर यहां वहां भाग गये। यह देख कर मेरे पुर में स्थित एकादश रुद्र वहां आये तथा उससे पूछा, "आप किसकी कन्या हैं? यज्ञ स्थल में क्यों आई हैं? तब उस दिगम्बरी ने कहा—मेरा नाम दाक्षायणी सती है। मेरे पितृयज्ञ को राक्षस नष्ट कर रहे हैं। मैंने अपने पिता का कटा शिर देखा है, अतः व्याकुल होकर सर्वविघ्न विनाशार्थ यहां आ गयी। आप लोग भीमरूपी कौन हैं? अपना परिचय दीजिए।" रुद्रगण कहते हैं—हम रुद्र हैं। मैं अन्य १० रुद्रों के साथ दक्षभवन में रहता हूं। यदि आप वास्तव में दक्षकन्या हैं, तब अपने पिता को जीवन दीजिए।।११-१८।।

इत्युक्ता तेन सा देवी तेन रुद्रेण तत्क्षणात्। पतिं शिवं समानाय्य दक्षञ्च समजीवयत्॥१९॥
दक्षश्छागमुखं लब्ध्वा शिवं तुष्टाव हर्षितः। दूरीभूता कुबुद्धिश्च साक्षात् शिवसतीपदे॥२०॥

यह रुद्रवाक्य सुनकर वे देवी अपने पति महादेव को तत्काल यज्ञस्थल ले आयी तथा दक्ष को जीवन प्रदान किया। तब बकरे के मुख से युक्त दक्ष हर्षित होकर शिवस्तुति करने लगे। उनकी कुबुद्धि नष्ट हो गयी।।१९-२०।।

तदा सर्वे समायाता देवाः सेन्द्रा विधिस्तथा। विष्णुश्च परमोदारः क्रतुसम्पूरणं दधुः॥२१॥
एवं स्वप्ने मया दृष्टं गतरात्रौ सुते सति। सैव त्वं श्यामवर्णाद्य समायातासि मेऽन्तिकम्॥२२॥
भवितव्यं मया दृष्टं दक्षस्य शिवनिन्दिनः। शिवनिन्दाफलं प्राप्य दक्षो वां ज्ञास्यति ध्रुवम्॥२३॥

वत्से जीव चिरं नाहं त्यक्तव्या च त्वया क्वचित्।
त्वं यस्य स ह्यशोच्यः स्यात् त्वं यस्य स हि सार्थकः॥२४॥

तदनन्तर, इन्द्र-ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगण ने वहां आकर यज्ञ पूर्ण किया। हे वत्से! गत रात्रि में मैंने यह स्वप्न देखा है। मुझे बोध होता है कि तुम ही वह कालरूपा महेश्वरी हो। अन्यथा श्यामाङ्गी होकर मेरे पास आती क्यों? शिवनिन्दक दक्ष शिवनिन्दा का फल पाकर तुमको पहचान लेगा, यह मैंने स्वप्न में देखा है। यह मिथ्या नहीं है। हे बेटी! तुम चिरंजीवी हो जाओ। मैं तुम्हारी माता हूं। कभी मेरा त्याग न करना। मैं तुम्हारा मुख देखकर कृतार्थ हो गयी। सभी शोक विस्मृत हो गया।।२१-२४।।

सत्युवाच

मातरेवं यथोक्तन्ते मामनुज्ञातुमर्हसि। पितरं द्रष्टुमिच्छामि यज्ञशालागतं प्रसूः॥२५॥
इत्युक्त्वा मातरं नत्वा प्राप्य सम्मानमुत्तमम्। आगत्य ददृशे दक्षं भग्नीभिः सह चारुभिः॥२६॥
स्वाहा वषट् च वौषट् च मन्त्रानुच्चरतां गणैः। अर्ध्वय्यूद्गातृहोत्राद्यैर्युक्तो यज्ञस्थले स्थितम्।
शिवद्वेषोद्भवं हर्षं ख्यापयन्तं पुनः पुनः॥२७॥
अथ दक्षो ददर्शैनां कालीं कमललोचनाम्। भग्नीगणस्य मध्यस्थां ताराणां रोहिणीमिव॥२८॥

दक्ष उवाच

का त्वं कस्य सुता काली लक्ष्यसे त्वं सतीव मे। किंवा शिवात्ममायाता सुता मम सतीत्यसि॥२९॥

सती कहती हैं—"माता! आपने जो कहा, वह सब सत्य है। अब आज्ञा दो कि मैं यज्ञशाला में स्थित पिता से मिलूं।" यह कहकर सती ने माता को प्रणाम किया। उनसे सम्मान पाकर बहनों के साथ यज्ञस्थल में जाकर देखा कि अध्वर्यु, उद्गातृ तथा होतृगण में से कोई स्वाहा, कोई स्वधा, कोई वौषट् इत्यादि मन्त्रोच्चार कर रहा है। प्रजापति उनके साथ शिवनिन्दा से उत्पन्न हर्ष प्रकट कर रहे हैं। तब दक्ष ने तारागण के बीच स्थित रोहिणी के समान बहनों से घिरी कमललोचना सती को देखकर कहा—"तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? तुम श्यामवर्णा होकर भी सती की तरह लग रही हो। अथवा तुम वास्तव में मेरी पुत्री सती हो जो यज्ञ में स्वयं आई है?।।२५-२९।।

सत्युवाच

किं पितः स्वां सुतां प्रेष्ठां मां न लक्षयसे सतीम्।
प्रजापतिस्त्वं दक्षोऽसि पितरं त्वां नतास्म्यहम्।।३०।।

सती कहती है—हे पिता! मैं आपकी प्रियकन्या सती ही हूं। आप मुझे क्यों नहीं पहचान रहे हैं? आप प्रजापति तथा मेरे पिता हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूं।।३०।।

दक्ष उवाच

हा सुते प्राणप्रतिमे सति वत्से सुलोचने। श्यामीभूतासि भूतानामधिपं पतिमीहिता।।३१।।
जानाम्यहं तञ्च रुद्रं त्वं यस्य तु समीपगा।(लसत्कनकगौराङ्गी श्यामरूपमुपाश्रिता।।३२।।
एवं तस्य चरित्रं वै रुद्रस्य दुष्टशीलिनः। तद्दोषादेव हे वत्से नाहूता त्वञ्च सत्सुता।।३३।।
इतः परं न गन्तव्यं त्वया तत्र शिवान्तिके। कन्या हि स्वामिना भग्ना पितुर्गेहे समर्हति।।३४।।
तस्मात्त्वमत्र मे तिष्ठ पुनर्मा याहि तं शिवम्)। लसत्कनकगौराङ्गी येन श्यामा कृता सती।।३५।।

दक्ष कहते हैं—हा बेटी! हा प्राण के समान! तुम भूतपति शिव के हाथों में पड़कर इस अवस्था को प्राप्त हो गयी। तुम्हारे शरीर की कान्ति ऐसी श्यामल हो गयी। बेटी! तुम तो जिसके यहां रहकर स्वर्ण गौर शरीर से श्याम वर्ण हो गयी, उस दुष्ट स्वभाव रुद्र के सभी चरित्र को मैं जानता हूं। इसी कारण तुमको यज्ञ में नहीं बुलाया। जो भी हो अब शिव के यहां लौटकर जाना आवश्यक नहीं है। क्योंकि पतिसुख से वंचित कन्या का पितृगृह वास ही उचित है। अब तुम मेरे पास रहो। दुराचारी शिव के यहां न जाओ।।३१-३५।।

शुक उवाच

इत्येवं सा समाकर्ण्य पितुर्वाक्यं सती सती। रुषा प्रस्फुरितापाङ्गी सती पितरमब्रवीत्।।३६।।

सत्युवाच

वाचं नियच्छ हे दक्ष यदि कल्याणमिच्छसि।
शिवनिन्दाकरीं जिह्वां छिन्धि धर्म्माभिलिप्सया।।३७।।

शिव आत्मा च भूतानां प्रभुरप्ययमावयोः। निन्दा च घातनं तस्य नात्मघातित्वमाप्नुहि।।३८।।
सभा तव महामूर्खा दण्डार्हा शिवनिन्दिनी। शिवनिन्दाफलं सम्यक् प्राप्स्यत्येव न संशयः।।३९।।

शुक कहते हैं—सती ने इस प्रकार का पिता का वाक्य जब सुना तब क्रोध से प्रस्फुरित नेत्रों वाली होकर

कहा—'हे दक्ष! यदि कल्याण चाहो, तब अधिक बकवाद की आवश्यकता नहीं है। यदि तुममे धर्म के प्रति तनिक भी प्रेम बचा है, तब अपनी जिह्वा स्वयं काटो। महादेव सर्वभूतात्मा तथा मेरे पति हैं। विवेचना करके देखो कि निन्दा सबके लिये मरण के समान होती है। अतः सर्वभूतात्मरूप शिव की निन्दा करके अपना आत्मघात करने का क्या प्रयोजन। इस सभा के सभी लोग महामूर्ख हैं तथा शिवनिन्दक होने के कारण दण्ड के पात्र हैं। इसलिये सभी को शिवनिन्दा जनित फल शीघ्र भोगना होगा। इसमें संदेह नहीं है।।३६-३९।।

दक्ष उवाच

वालिके स्वल्पमतिके निजबुद्ध्या समर्जितम्। तमेव हि पतिं नीत्वा स्वयोग्यं सुखमाप्नुहि॥४०॥
अस्माकमिह तस्यैतां कथं कीर्त्तिं तनोषि वा। वयं तं खलु जानीमो यथा स पूज्यतायुतः॥४१॥
अहं प्रजापतिर्दक्षो देवदेवीषु गोचरः। किं ममाग्रे तत्प्रशंसां करोषि मम दुःसहाम्॥
स तुभ्यं रोचते साधुर्नान्येभ्य इति मन्यताम्॥४२॥

दक्ष कहते हैं—हे बालिके! तुमने अपनी बुद्धि की अल्पता के कारण शिव का वरण पतिरूप में किया। अतः अब तुमको उसके सुख से सुखी होना पड़ेगा, लेकिन उसका क्या सम्मान है, यह सब मुझे ज्ञात है। यहां उसकी प्रशंसा करना व्यर्थ है। मैं प्रजापति दक्ष हूं। सभी देवी-देवता मुझे जानते हैं। मेरे समक्ष उसके लिये प्रशंसावाक्य कहना दुःसह है। तुम निश्चित जानो। महेश्वर को तुमने ही चुना है। अन्य के लिये उसका महत्व नहीं है।।४०-४२।।

सत्युवाच

वाचं नियच्छ हे दक्ष पुनस्त्वां प्रब्रवीम्यहम्। नियन्ता चेन्न विद्येत न कश्चिद्धर्ममाचरेत्॥४३॥
त्यज पापमतिं दक्ष शृणु मद्वचनं हितम्। प्रणमस्व महारुद्रं देवं दाक्षायणीपतिम्॥४४॥
सुताया अपि मे वाक्यं गृहाणाङ्गभुवस्तव। कनिष्ठस्य च सद्वाक्यं गृह्णन्ति खलु साधवः॥
स एव खलु साधुः स्यात् सदसज्ज्ञानवान् हि यः॥४५॥
त्वं तु पापमतिर्दक्षः साधुत्वरहितः परः। यावज्जन्म शिवद्वेषं कृत्वा फलमवाप्स्यसि॥
मा यापय वृथा कालं निन्दयित्वा महेश्वरम्॥४६॥
सर्वैः स वन्दितः शम्भुः (भवता निन्द्यते कथम्।
सर्वैः सम्पूजितः शम्भुः) त्वया कस्मान्न पूज्यते॥४७॥

सती कहती हैं—दक्ष! शान्त हो जाओ। जब स्वयं पर नियंत्रण नहीं है, तब कोई भी धर्माचरण नहीं कर सकता। मैं पुनः कहती हूं, शान्त हो जाओ। पापबुद्धि त्यागकर मेरा हितकर वाक्य श्रवण करो। देव महारुद्र के चरण में प्रणाम करो। मैं तुम्हारी पुत्री हूं। मेरे वाक्य की अवहेलना नहीं करो। साधुगण छोटे का भी हितकर सद्वाक्य मानते हैं। जो सत्-असत् जानता है, वही साधु है। तुम पाप बुद्धि तथा साधुत्व रहित हो। नहीं तो जन्म से ही शिवद्वेषी होकर दण्ड के भागी क्यों होते! अब महेश्वर की निन्दा करके व्यर्थ समय व्यतीत न करो। क्या आश्चर्य है! जो शिव सब के आनन्द भाजन हैं तथा पूज्य हैं, वे तुमसे निन्दित तथा अपूज्य हो गये!।।४३-४७।।

दक्ष उवाच

अहो सभ्या अमुष्याः किं प्रलापः श्रूयते न वा। प्रजापतिं मां पितरं पुत्री यद्वदतीदृशं॥४८॥

एनां वाक्यैः शान्तयत स्थलात् दूरयतापि वा। इमां शिवां शिवगतां शिववन्मे दुदुःसहाम्॥४९॥
रे दुश्चरित्रे शिवगे चक्षुषोर्मे वहिर्भव। यदा शिवं पतिं प्राप्ता तदैव त्वं मृता मम॥५०॥
पुनः पुनः स्मारयसि रुद्रं नाम निजं पतिम्। तुषानल इवान्तःस्थो वह्निर्मे येन वर्द्धते॥५१॥
एवञ्च नैव जानीषे कुलजे मम कन्यके। रुद्राय दत्तां त्वां दृष्ट्वा कथं जीवेत्प्रजापतिः॥५२॥
सन्ति मे बहवो रुद्राः शूलहस्ताः कपर्द्दिनः। एकादशस्थानगता नाहं वेद्मि महेश्वरम्॥५३॥
एकादशानां रुद्राणामृते ह्यन्यतमं सुते। कं शिवाख्यं महारुद्रं पतिं प्राप्तासि दुर्म्मते॥५४॥

तब प्रजापति दक्ष ने क्रूद्ध होकर कहा—हे सभ्यगण! मैं प्रजापति तथा पिता हूं। क्या आप लोग मेरे प्रति कहा गया सती का वाक्य नहीं सुन रहे हैं! अब आप लोग इसे सान्त्वना दीजिए अथवा यहां से भगा दीजिए। आज से शिव की तरह सती भी मेरे लिये दुःसहा हो गयी। हे दुश्चरित्रे! शिवप्रिये! तुम मेरे आंखों के सामने से हट जाओ। जब से तुमने स्वेच्छा से शिव का पतिरूप में वरण किया है, तबसे मैं तुमको मृत हो गयी कन्या मान रहा हूं। तुम मेरी पुत्री होकर भी यह नहीं समझ पा रही हो कि तुम रुद्र के हाथों समर्पित हो। यह देखकर मैं जीवन्मृत हो गया हूं। अन्यथा तुम अपने पति रुद्र को पुनः-पुनः स्मरण कराकर भूसे के ढेर में छिपी मेरी क्रोधाग्नि को क्यों बढ़ा रही हो? मेरे भवन में जटाजूटधारी शूलपाणि ११रुद्र सदा रहते हैं। इन ११ रुद्र के अतिरिक्त मैं किसी को भी महेश्वर नहीं मानता। हे दुर्मति! वह शिवनामधारी तो अन्य कोई रुद्र है, जिसे तुमने पति माना है।।४८-५४।।

सत्युवाच

धर्म्म एव पिता माता गुरुर्बन्धुः पितामहः। पत्नी भ्राता सुतः सर्वे धर्म एव न चान्यथा॥५५॥
त्वञ्चाधर्ममतिः कस्मात् पिता भवितुमिच्छसि। अहं धर्ममतिर्भूत्वा तत्सुता स्यां कथं वद॥५६॥
या ते भवति पुत्री त्वं तां रक्षाद्याहमन्यथा। अहन्तु शिवमेवाप्ता भगवन्तं त्रिलोचनम्॥५७॥
स मे भर्त्ता महादेवः शान्तो बन्धुः कृपाकरः। अद्वेषी सर्वभूतात्मा कूटस्थो जगदीश्वरः॥५८॥
त्वन्तु मूर्खतया तं वै सदा द्वेषयसे किल।

सती कहती हैं—पिता, माता, गुरु-बन्धु, पितामह, पत्नी, भ्राता पुत्रादि सभी धर्मस्वरूप होते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है। तुम अधर्मबुद्धि हो, तब कैसे मेरे पिता होने की इच्छा कर रहे हो? तथा मैं धर्ममति होकर क्यों तुम्हारी कन्या बनी रहूं? जो तुम्हारी कन्या हैं, उनकी तुम रक्षा करो। आज से मैं तुम्हारी कन्या नहीं हूं। मैं भगवान् त्रिलोचन की शरण में हूं। वे शान्त, बन्धु, कृपा करने वाले महादेव मेरे पति हैं। वे अद्वेषी, सर्वभूतात्मा, कूटस्थ, जगत्पति हैं। लेकिन तुम अपनी मूर्खता के कारण सदा उनसे वैरभाव रखते हो!।।५५-५९।।

शिवेति द्व्यक्षरं नाम यस्यामङ्गलनाशकम्॥५९॥
केवलस्मरणेनैव पापराशीन्निवारयेत्। यस्य वै नाम्न एतादृक् त्रैलोक्ये ह्युपकारिता॥
किं तस्य साक्षाद्भजतामुपकारित्वमुच्यते॥६०॥
शिवभक्तिसुखं तुभ्यं विधात्रा नैव दीयते। वञ्चितोऽसि विधात्रा त्वं किं करिष्यसि चावशः॥६१॥
शिवद्वेषफलं साक्षात् किं हृदा नानुभूयते। शिवशून्यः शिवद्वेषी निष्कल्याणः समार्थकाः॥६२॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन भज रुद्रं महेश्वरम्। अधुनाप्युपकाराय वदाम्येतत् प्रजापते॥
शिवं स्तवय हे दक्ष नान्यथा मद्वचः कुरु॥६३॥

जिनका 'शिव' रूपी दो अक्षर का नाम सर्वअमंगल नाशक है, जिनके स्मरणमात्र से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, जिनके नाम स्मरण से त्रिलोक में ऐसा उपकार होता है, उनकी साक्षात् सेवा करने पर व्यक्ति का जो उपकार होगा उसे कौन कह सकता है? अथवा इसमें तुम्हारा क्या अपराध! विधाता ने तुमको वंचित कर दिया है अन्यथा तुमको शिवभक्ति सुख क्यों न प्राप्त होता? क्या शिवद्वेष का परिणाम तुम हृदय में अनुभव नहीं कर रहे हो? शिवद्वेषी व्यक्ति कल्याण रहित तथा मंगल रहित होता है। हे प्रजापति! मैं तुम्हारे उपकारार्थ कहती हूं। महेश्वर रुद्र की उपासना यत्नपूर्वक करो। स्तव आदि से उनको प्रसन्न करो। मेरा वाक्य अन्यथा न करो!।।५९-६३।।

दक्ष उवाच

मुखे मे स्तवशब्दोऽयमन्यथैव शिवार्थतः। पुनः पुनः कथं ब्रूषे सर्वो भिन्नरुचिर्जनः॥६४॥
त्वञ्च मे चक्षुषोर्वाह्या भव शीघ्रं दुरात्मिके। त्वद्दर्शनान्मनोदुःखं दावाग्निरिव वर्द्धते॥६५॥

दक्ष कहते हैं—तुमने स्तव शब्द कहा है। मैं इसका विपरीत पाठ करता हूं। वह शिव बोधक होगा। (स्तव का विपरीत होगा वस्त इसका अर्थ है बकरा। इस प्रकार वस्त का प्रयोग दक्ष ने शिव हेतु करके एक प्रकार से शिव को गाली दिया।) तुम पुनः-पुनः क्यों वही बात करती हो। सबकी रुचि एक जैसी नहीं होती। मेरी जो इच्छा वह करूंगा। तुम मेरी आंख से दूर जाओ। तुमको देखकर मेरे मन का दुःख दावाग्नि जैसे वर्द्धित हो रहा है।।६४-६५।।

सत्युवाच

रे मूर्ख अधमाचार शिवशून्य यथोचितम्। फलं प्राप्नुहि यच्चोक्तं स्तवशब्दोऽन्यथा मुखे॥
तदप्यस्तु मुखं तेऽस्तु यथावस्तमुखं तथा॥६६॥
शब्दश्च छागवत्तेऽस्तु यथान्यच्छिवनिन्दनम्।
तन्मुखादपि शृण्वन्ति न केऽपि क्वचिदप्युत॥६७॥
अहञ्च ते दृशोर्वाह्या भविष्यामि न केवलम्। त्वज्जातदेहवाह्यापि भविष्याम्यचिरादिह॥६८॥

अब सती कहती हैं—हे मूर्ख! अधम आचार वाले! अब शिव निन्दा का परिणाम भोगों! तुमने जो कहा कि मैं स्तव शब्द का उच्चारण 'वस्त' करता हूं। तब तुम वस्तमुखी हो जाओ। (तुम्हारा मुख बकरे जैसा हो जाये) तुम्हारे मुख से जो शब्द निकले, वह भी बकरे जैसा हो। इससे भविष्य में कोई शिवनिन्दा न कर सके। आज मैं केवल तुम्हारे नेत्रों से बाहर ही नहीं जा रही हूं। यह देह तुम्हारे द्वारा उत्पन्न है। मैं इसके बाहर जाती हूं।।६६-६८।।

शुक उवाच

इत्येवमुक्तस्तु तदा प्रजापतिश्छागाननश्छागरवश्च जैमिने।
सर्वे च देवा मुनयस्तपोधनाः प्राप्ताः परं विस्मयमेव सर्वतः॥६९॥
तदा चकम्पे समितिः सवासवा यदा चचालैव सती ततः स्थलात्।
काली चलन्ती किल कम्पयन्ती धरां समग्रामिव दुर्निवारिता॥७०॥

दुष्प्रेक्षणीया भ्रुकुटीमुखोल्वना संस्तम्भयन्ती च वचोऽखिलानां।
न केऽपि शक्ता वचनञ्च वक्तुं निवारणायेति गलद्धियो जनाः॥७१॥
हाहेति चाव्यक्तरवाश्च सर्वतः सतीमदृष्ट्वा चरतां बभूवुः।
दक्षः समुत्थाय सतीति वक्तुं छागध्वनिं तत्र दधच्चचार॥७२॥
सर्वे धरण्यां गगने दिशासु विदिक्षु लोकाः परितो विचेरुः।
सतीसतीत्येव वचः समाकुलाः क्वास्ते सती का च सतीति वादिनः॥७३॥
सती तु गत्वा नगराजसन्निधौ महावने क्वापि सुदुर्गमे मुने।
त्यक्त्वा वपुर्दक्षभवं शिवप्रिया द्विधा भवन्ती प्रययौ हिमालयम्॥७४॥

शुक कहते हैं—सती का वाक्य समाप्त होते-होते दक्ष प्रजापति का मुख बकरे जैसा हो गया। वे बकरे जैसा मेमियाने का शब्द करने लगे। हे जैमिनी! यह देखकर समस्त देवता तथा मुनिगण विस्मयांन्वित हो गये। तदनन्तर जैसे ही सती ने उस सभास्थल का त्याग किया, इन्द्रादि देवताओं के साथ वह सभास्थल कम्पायमान हो उठा। उनके पैरों के नीचे की समस्त धरती कांपने लगी। सबकी बोलती बन्द हो गयी। तथा वे हतबुद्धि हो गये। कोई भी सती को रोकने में सक्षम नहीं हो सके! उनकी भ्रुकुटी भीषण थी। किसी में साहस नहीं था जो उनका मुख देख सके। दक्ष ने प्रकृतस्थ होकर 'सती' शब्द कहकर पुकारना चाहा तथापि उनके मुख से बकरे जैसी आवाज ही निकली। पृथिवी-आकाश, सर्वत्र 'सती' शब्द को छोड़ कुछ भी श्रुतिगोचर नहीं हो रहा था। सभी "सती कहां हैं" कहते हुए दसों दिशाओं की ओर दौड़ पड़े। शिवप्रिया सती ने वहां से प्रस्थान कर दिया था। वे हिमालय के दुर्गम वन में जाकर वहां दक्ष से उत्पन्न देह त्यागने के लिये उद्यत हो गयीं।।६९-७४।।

दक्षालये तु प्रगते मुहूर्ते सुस्था बभूवुर्निखिला जनौघाः।
दक्षं लसच्छागमुखं श्रयित्वा भूयोऽभवन् यज्ञविधौ प्रवृत्ताः॥७५॥
कर्तुं प्रवृत्ता अपि ते तदा मखं न चालभन्तैव सुखं तदानीम्।
प्रजापतिर्वै स्वयमेव यत्र च्छागाननश्छागरवं प्रकुर्वन्॥७६॥

उधर दक्षगृह में कुछ क्षणों उपरान्त स्वस्थ होकर बकरे की आकृति वाले दक्ष ने पुनः यज्ञ कार्य प्रारम्भ किया। वह लोग यज्ञकार्य में भले ही प्रवृत्त थे, तथापि कोई सुखी नहीं था। क्योंकि यज्ञाधिकारी दक्ष बकरे के मुख वाले होकर जब मंत्रोच्चार करते तब वे बकरे की ही बोली का विस्तार करते। इसकी अपेक्षा असुख का विषय और क्या हो सकता था!।।७५-७६।।

केचिद्धसन्तोऽनुतपन्त एके केचिद्रुदन्तोऽनुपठन्त एके।
केचिज्जगुः किं किल कन्यकैषा दक्षस्य पुत्र्युद्धतशक्तिरेका॥७७॥
केचिज्जगुः शम्भुगुणापलापफलं प्रकाशं समगादिहैव।
केचिज्जगुः क्वाथ ययौ सती वा केचिज्जगुः शम्भुमगात् सती सा॥७८॥
अन्तःपुरस्या च तदा प्रसूतिः सतीप्रसूर्ज्ञानवती विमोहा।
सती तु मूलप्रकृतिः पराख्या पुत्रीति मिथ्यामतिरेवमेव॥७९॥

।इति श्रीबृहद्धर्मपुराणे मध्यखण्डे सतीदेहोत्सर्गो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः।।



यह देखकर कोई हास्य करता, कोई अनुताप करता, कोई रोदन करता। कोई यह कहता कि दक्षपुत्री की क्या उत्तम शक्ति है! कोई कहता कि शिवनिन्दा का फल तत्काल प्रतिफलित हो गया। कोई कह रहा था कि सती कहां चली गयीं। किसी का मत था कि सती शम्भु के पास गयी हैं। तथापि यह सब सुनकर भी दक्ष पत्नी दुःखित नहीं थी। तब उनका पुत्री मोह दूर हो गया था। उन्होंने यह समझ लिया था कि सती साक्षात् परमा मूल प्रकृति हैं। उनके प्रति जो भी मेरी कन्या बुद्धि थी, वह भ्रम ही था!।।७७-७९।।

।।सप्तत्रिंश अध्याय समाप्त।।



अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः

शिवद्वारा दक्षयज्ञध्वंस, दक्षपत्नी कृत शिवस्तुति

शुक उवाच

ब्रह्मणा प्रेषितो देवो नारदो मुनिपुङ्गवः। सतीदेहपरित्यागं शम्भुमागत्य चाब्रवीत्॥१॥
देवदेव महादेव त्रिलोचन नमोऽस्तु ते। दक्षयज्ञगता देवी सती देहं जहौ प्रभो॥२॥
दक्षो निनिन्द बहुधा तत्समाकर्ण्य सा सती। दक्षं शप्त्वा रुषाविष्टा जहौ देहं मनोहरा॥३॥
दक्षश्छागमुखो भूत्वा छागशब्देन वै रुदन्। सती सतीति व्याक्षिप्य पुनर्यज्ञे मनो दधौ॥४॥
एवं श्रुत्वा महादेवो नारदस्य मुखाद्वचः। रुदित्वा बहुधा शोकान्नारदं समभाषत॥५॥

शिव उवाच

वत्स नारद कार्य्यं मे वद यत्तत्र युज्यते। तत्याजैव सती देहं माञ्च व्याकुलचेतसं॥६॥

शुक कहते हैं—ब्रह्मा द्वारा भेजे गये देवर्षि नारद सती के देहपरित्याग का समाचार देने के लिये महादेव के पास पहुंचे तथा कहने लगे—"हे देवदेव, त्रिलोचन! आपको प्रणाम! देवी सती ने दक्षालय में देहत्याग किया है। प्रजापति दक्ष ने सती के समक्ष आपकी अनेक निन्दा किया था। यह सुनकर भगवती ने दक्ष को क्रोधपूर्वक शाप देकर दक्ष से उत्पन्न अपनी देह का त्याग किया। दक्ष ने अपने बकरे के मुख से सती-सती कहकर कुछ क्षण विलाप करके पुनः यज्ञ में मन लगाया। शिव ने नारद के मुख से यह सुनकर कुछ क्षण विलाप करके शोक विह्वल स्थिति में नारद से कहा—वत्स नारद! सती ने देह त्याग करके व्याकुल चित्त मेरा भी त्याग किया। अब मेरे लिये क्या करना उचित है?।।१-६।।

नारद उवाच

सतीं प्राप्स्यसि मा चिन्तां कुरु देव महेश्वर। सती तवैव सततं त्वञ्च सत्याः सदा प्रियः॥७॥
व्रज प्रजापतेर्वाटीं यत्र देहं सती जहौ। जानीहि चरितं तस्य दक्षस्य च प्रजापतेः॥८॥
किं विधत्ते किमाचष्टे किंवा छागाननश्चरेत्। सत्याश्च मरणं सत्यं किंवा छलकृतं तथा।
भवता तदपि ज्ञेयं तत्र गत्वा न संशयः॥९॥
भूत्वा छागाननो दक्षो यदि त्वां निन्दयेत् पुनः। तदा यज्ञञ्च दक्षञ्च नाशयिष्यसि सर्व्वथा॥१०॥

ये तस्य भवने सन्ति रुद्रा एकादशैव हि। तेषामन्यतमो भूत्वा गच्छ तत्र महेश्वर॥११॥

नारद कहते हैं—हे देवदेव महेश्वर! चिन्ता न करें। आप पुनः सती को प्राप्त करेंगे। सती आपके अतिरिक्त अन्य किसी की नहीं हैं। तीनों लोक में आप ही उनके पति हैं। अब जहां सती ने देहत्याग किया, प्रजापति के उस भवन में आप जायें तथा प्रजापति के सम्बन्ध में सब पता करें। सम्प्रति वे बकरे का मुख पाकर किस प्रकार का कार्य कर रहे हैं तथा सती के देहत्याग का समाचार सत्य है अथवा नहीं। यह ज्ञात करना आवश्यक है, यदि दक्ष बकरे का मुंह पाकर भी आपकी निन्दा करते हैं, तब तत्क्षण यज्ञ के साथ उसे नष्ट करिए। अतः दक्ष भवन में जो ११ रुद्र रहते हैं, आप उनका ही रूप धारण करके वहां जायें।।७-११।।

शिव उवाच

एवमेवं व्रजाम्येव दक्षस्य निलयं त्वरा। त्वञ्च गच्छ यथा वाञ्छा ब्रह्मपुत्र मुनीश्वर॥१२॥

शिव कहते हैं—मैं तो अभी वहां जा रहा हूं। मुनीश्वर! तुम जहां इच्छा हो जाओ।।१२।।

शुक उवाच

एवं निश्चित्य मनसा देवदेवो महेश्वरः। बभूव भीषणाकारो महारुद्रो महाहनुः॥१३॥
व्रजन् पदे पदे रुद्रो मूर्त्तिवैलक्षण्णं चरन्। ताम्रवर्णजटाजूटो धूर्जटिः सम्बभूव ह॥१४॥
दीर्घे ललाटफलके भस्मलेपो व्यराजत। तुषाराभ्यन्तर इव चन्द्रखण्डविभूषणम्॥१५॥
मुहुर्मुहुः श्वसन् घोरं हसन्नट्टाट्टमेव च। मुण्डमालाविभूषाङ्गो नागयज्ञोपवीतवान्॥१६॥
कालदण्डं दधत् स्कन्धे धृत्वा वामेन पाणिना। कपालं दक्षिणे हस्ते भिक्षापात्रं दधत्तथा॥१७॥
गजाजिनं परिदधन्नागवद्धं स्त्रवद्रसं। दीर्घजानुर्दीर्घजङ्घो महागुल्फो महापदः॥१८॥
जगाम दक्षनिलयं कम्पयन्निव मेदिनीम्। तं दृष्टा दारुणाकारं भीताः सर्व्वे विदुद्रुवुः॥१९॥
दक्षशालावहिः स्थित्वा ररावोच्चैस्तरां मुने। अहो दक्ष अहो दक्ष भिक्षां मे देहि भिक्षवे॥२०॥
शब्दमेतं महाघोरं ते कुम्बाभ्यन्तरस्थिताः। श्रुत्वा हृदयदौर्बल्यं प्रापुः कर्म्मसु शैथिलाः॥२१॥
दक्षश्छागरवं कृत्वा सङ्केतेनावबोधयन्। प्रेषयामास वै कञ्चिद्देवं भिक्षुबुभुत्सया॥२२॥
दक्षेण प्रेषितो देवः कुम्बाया बहिरागतः। ददर्श भीषणाकारं पप्रच्छ भयदर्पवान्॥२३॥
कस्त्वं किं याचसे भिक्षो दर्पिष्ठो दृश्यते भवान्। नैतादृशं भिक्षुरूपं भिक्षुका विनयान्विताः॥२४॥

शुकदेव कहते हैं—तब देवाधिदेव शिव ने मन हीं मन निश्चय किया तथा भीषणाकृति महारुद्ररूप धारण किया। उनका उस समय अत्यन्त बृहत् हनु था। उनकी वह मूर्त्ति क्षण-क्षण में विलक्षण हो रही थी। उस समय उनके जटाजूट ताम्रवर्ण थे। ललाटफलक दीर्घ था। अंग भस्म लिप्त था। नेत्रत्रय पर चन्द्र खण्ड स्थित था। मुखमण्डल से दीर्घश्वास तथा अट्टाहास का शब्द हो रहा था। गले में मुण्डमाला तथा नागयज्ञोपवीत स्थित था। वे हाथों में कपाल तथा भिक्षापात्र धारण किये हुए थे। कटि में हाथी का चर्म, कंधे पर नागवस्त्र था। वे सुदीर्घ जानुयुक्त, दीर्घ जघन प्रदेश वाले, बृहद् गुल्फ युक्त तथा महापद धारी थे। वे पदतल से धरती मण्डल को प्रकम्पित करते दक्षगृह पहुंचे। उनकी भीषण मूर्त्ति देखकर सभी भयभीत हो पलायित हो गये। वे दक्षशाला के बाहर उच्चस्वर से कहने लगे—"अरे दक्ष!

मैं भिक्षुक हूं। मुझे भिक्षा प्रदान करो।" घर में जितने भी लोग थे, सभी का इस महाघोर शब्द से हृदय तक कांपने लगा। सभी अपने-अपने कार्य से विरत हो गये। दक्ष ने बकरे की बोली से संकेत किया। तब कोई देवता भिक्षुक के पास गया। वह देवता उस भीषणाकृति महारुद्र को देखकर भयपूर्ण दर्प के साथ पूछने लगा "तुम कौन हो! तथा क्या चाहते हो? तुमको तो देखकर यह नहीं लगता कि तुम भिक्षुक हो! तुम दर्पयुक्त लग रहे हो। भिक्षुक का आकार ऐसा नहीं होता, वह विनयावनत होता है।।१३-२४।।

रुद्र उवाच

अहन्तु खलु भिक्षार्थी रुद्राख्यो नात्र संशयः। स्वभावेनैव भीमोऽहं सतीं याचे समागताम्॥२५॥

त्वं दातुं शक्यसे मह्यं सतीं चारुसुलोचनाम्।
न चेत् को दास्यते मह्यं सतीं तद्वद भो त्वरा॥२६॥

रुद्र कहते हैं—मैं निश्चय ही भिक्षाप्रार्थी हूं। मेरा नाम रुद्र है। मैं स्वभावतः भीमाकृति हूं। यहां मैं सती की भिक्षा मांगने आया हूं। क्या तुम लोग सुलोचना सती को देने में सक्षम हो? यदि तुम सक्षम नहीं हो, तब कहो, कौन सक्षम होगा?।।२५-२६।।

व्याघूर्णन्नयनेनैव मुक्तः स तं तदाब्रवीत्। दक्षोऽस्ति यज्ञशालायां तं गत्वा भिक्ष्यतां सती॥२७॥
इत्युक्त्वा तं महारुद्रं स्थापयित्वा गतस्तु सः। यज्ञशालां महारुद्रः प्रविवेशाकुतोभयः॥२८॥
तं दृष्ट्वा तु महारुद्रं दक्षः क्रुद्धः स्फुरन्मुखः। अयं रुद्रः सतीचोरः इति व्याक्षिप्तवान् बहु।
वार्य्यतां वार्य्यतामेष रुद्रो दाक्षायणीपतिः। मलीमसीकृतं येन कुलं मे विमलं पुरा।२९॥

जब घूर्णित नेत्रों वाले महारुद्र ने यह वाक्य कहा, तब उस देवता ने कहा "यज्ञशाला में स्थित दक्ष से सती की भिक्षा मांगो।" यह कहकर देवता चला गया। इधर अकुतोभय रुद्र ने यज्ञमण्डप में प्रवेश किया तब दक्ष ने क्रोध से भरे नेत्रों से रुद्र को देखकर कहना प्रारंभ किया—"इसी रुद्र ने सती का हरण करके हमारे निर्मल कुल को कलंकित किया था। इस दुरात्मा को यहां से दूर करो"।।२७-२९।।

रुद्र उवाच

किं रे वदसि छागास्य च्छागशब्दास्फुष्टं वचः। सती मे दीयतां मह्यं श्यामा परमसुन्दरी॥३०॥
न चेत् सह त्वां यज्ञेन नाशयामि प्रपश्यताम्। इत्युक्त्वा घूर्णयामास त्रीणि नेत्राणि चैकदा॥३१॥
तं दृष्ट्वा दुद्रुवुः सर्व्वे देवर्षिनरकिन्नराः। शम्भुश्च तान् समाक्रम्य हस्ताभ्यामवलीलया।
तस्थौ पश्यन् दृशा दक्षं सर्व्वेषां केशकर्षणः॥३२॥

रुद्र कहते हैं—"हे बकरे के मुख वाले! तुम अस्फुट शब्दों में क्या कहते हो? अब हमें उस श्यामवर्णा परमसुन्दरी सती को प्रदान करो, नहीं तो सबके समक्ष इस यज्ञ के साथ तुमको भी नष्ट करूंगा।" यह कहकर प्रभु अपने तीनों नेत्र घुमाने लगे। इसे देखकर देवर्षि, मनुष्य, किन्नर आदि यत्र-तत्र दौड़ने लगे। परन्तु शंभु लीला क्रीड़ा मात्र से अपने हस्तद्वय द्वारा सब पर आक्रमण करके उनका केश खींचने लगे तथा दक्ष को भीषण नेत्रों से देखने लगे।।३०-३२।।

रुद्रहस्तगतैः केशैस्ते देवर्षिनरादयः। स्थिता दक्षस्तु तान् रुद्रानाह्वयामास शब्दयन्॥३३॥
दक्षच्छागरवाह्वानात् त्वरावन्तोऽकुतोभयाः। रुद्रा एकादशैवेत्य ददृशूरुद्रमीश्वरम्॥३४॥
स्वेषामेव ह्यन्यतमं दृष्ट्वा स्मेराननाम्बुजम्। सह दक्षादिभिश्चापि कुर्व्वन्तं कलहं परम्॥३५॥
अभिन्नमतयो भूताः सङ्ख्ययैकादशापि च। यदा ते मिलिताः सर्व्वे रुद्रा एकादशैव तु।
तदा प्रजापतिं प्रोचे महारुद्रः शिवाख्यकः॥३६॥

जब दक्ष ने रुद्र द्वारा देवर्षि-मनुष्यादि का केश खींचते देखा तब वे एकादश रुद्रों का आवाहन करने लगे। तभी वे एकादश रुद्र वहां तत्काल उपस्थित हो गये। उन्होंने देखा कि महारुद्र दक्ष प्रभृति के साथ विवाद में पड़े हैं। तब वे अभिन्न मति वाले एकादश रुद्र उन महारुद्र रुद्रेश्वर में मिल गये। इस पर शिवात्मक महारुद्र प्रजापति दक्ष से कहने लगे।।३३-३६।।

महारुद्र उवाच

किं विवक्षसि मे दक्ष सतीं दास्यसि वा न वा।
मृत्युं व जीवनं वापि वाञ्छसे तद्वदस्व मे॥३७॥
एवं श्रुत्वा तदा दक्षो मानुषीं गिरमाप्तवान्। उवाच रुषितो वाचं महारुद्रं महेश्वरम्॥३८॥

महारुद्र कहते हैं—हे दक्ष! अब तुम क्या चाहते हो? सती को प्रदान करके जीवित रहना चाहते हो, अथवा मृत्यु की कामना करते हो! यह सुनकर दक्ष को मानुषी वाणी प्राप्त हो गयी। वे क्रुद्ध होकर महारुद्र से कहने लगे।।३७-३८।।

दक्ष उवाच

सती मम सुता पूर्व्वं तुभ्यं दत्तैव मे न वै। अधुना ते कथं दास्ये रुद्रनाम्ने शिवाधम॥३९॥
अधुनेह समागम्य मृतामेव जहौ तनुम्। तामन्वेषय कुत्रापि प्रेता प्रेतस्थलप्रिय॥४०॥
नैतत्स्थानं प्रेतभूमिर्नाहं प्रेताधिपोऽपि च। अनाहूतो भवान् कस्मान्मरणायेह चागतः॥
इतो निःसर मे यज्ञे न वृथा विघ्नमाचर॥४१॥

दक्ष कहते हैं—हे शिवाधम! पहले भी मैंने अपनी इच्छा से तुमको अपनी कन्या सती को प्रदान नहीं किया था, अब कैसे प्रदान करूंगा? सती ने स्वेच्छा से तुमको पति स्वीकार किया था तथा मैंने भी उसी दिन से मान लिया था कि सती मृत हो गयी। अभी सती ने यहां आकर अपना वह मृत शरीर पुनः त्याग दिया तथा प्रेतत्व को प्राप्त हो गयी। तुम प्रेतत्व स्थान प्रिय हो अतः प्रेतों के स्थान में जाकर उसकी खोज करो। यह स्थान प्रेतलोक नहीं है तथा मैं भी प्रेतराज नहीं हूं। मैंने तुमको कदापि नहीं बुलाया। तब यहां मरने क्यों आये हो? यहां से चले जाओ। वृथा यज्ञविघ्न करना उचित नहीं है।।३९-४१।।

शुक उवाच

एवं प्रोक्तः स दक्षेण देवो रुद्रः सनातनः। वीरभद्र इति ख्यातिं ययौ रुद्रेषु तेषु वै॥४२॥
एकादशैव ते रुद्राः निःश्वसन्तो मुहुर्मुहुः। बहूनुत्पादयामासुर्व्वीरान् रुद्रसमान् मुने॥४३॥

तांस्तु वीरान् समुत्पन्नान् किं करोमीति वादिनः।
छिन्धि भिन्धीति चाज्ञप्तास्तथा चक्रुः सुदुर्म्मदाः॥४४॥
यज्ञकुण्डं तदा चक्रे मूत्रपूर्णं ततः क्षणात्। केशेनाकृष्य दक्षस्य पीड़यामास चित्रधा॥४५॥
देवाः सर्व्वे विभिन्नाङ्गाः प्राणमात्रावशेषिताः। प्राणापचयभीताश्च महामर्दं व्यलोकयन्॥४६॥
केचित् क्षताक्षा घोरान् वै शब्दं शुश्रुवुरुत्थितान्। केचिच्च ददृशुश्चापि महाघोरं विमर्द्दनम्॥४७॥
ब्राह्मणास्तु समाक्रान्ता म्लानवक्त्राः कृतागसः।
वयं व्रिप्रा वयं विप्रा इति त्यक्ताः पलायिताः॥४८॥
वीरभद्रः स्वयं देवो महारुद्रः प्रतापवान्। चकर्त्त दक्षमूर्द्धानं गिरेः शृङ्गमिवौजसा॥४९॥
पूषा (च भग्नदन्तो)ऽभूत् भग्नाक्षस्तु भगोऽभवत्।
अन्तःपुरं समाक्रम्य स्त्रियो व्यापादिता अपि॥५०॥
एवं दक्षमहायज्ञं विनाश्य विरराम सः। प्रसूत्या वीक्षितः शम्भुः शान्तप्रायोऽभवत् कियत्॥५१॥
शान्त्युन्मुखं तं दृष्ट्वा तु प्रसूतिर्दक्षवल्लभा। दिव्यज्ञानात् शिवं ज्ञात्वा स्तोतुं समुपचक्रमे॥५२॥

शुक कहते हैं—दक्ष के यह कहने पर वे ११ रुद्र पुनः-पुनः निःश्वास त्याग करने लगे। उनके निःश्वास से अनेक उनके ही समान रुद्र उत्पन्न हो गये। इससे रुद्रेश्वर उनके बीच वीरभद्र कहलाये। रुद्रगण ने वीरभद्र से कहा—"हमें क्या करना है" तब वीरभद्र ने उनसे यज्ञ विध्वंस के लिये कहा। रुद्रगण ने तत्क्षण यज्ञकुण्ड को मूत्र से भर दिया तथा दक्ष का केश खींचते हुए उसे नाना प्रकार से कष्ट देने लगे। देवगण भी अंगहीन होकर अपने बचे प्राणों के रक्षार्थ इतःस्ततः देखते जा रहे थे। समागत लोग घोरतर शब्दों को सुन रहे थे, कोई इस महाघोर यज्ञध्वंस को देख रहे थे। किसी के नेत्र, किसी के कान क्षत-विक्षत होते जा रहे थे। रुद्रगण द्वारा आक्रान्त होकर ब्राह्मणगण "हम ब्राह्मण हैं" कहते-कहते भागने लगे। वीरभद्ररूपी महारुद्रदेव ने स्वयं पर्वतशृंग जैसा दक्ष का मस्तक उखाड़ लिया। पूषा के दांत तोड़ दिया, भग को अंधा बना दिया, रुद्रगण यह कृत्य करने के पश्चात् अन्तःपुर में प्रवेश करके वहां नारीगण का नाश करने लगे। तभी दक्षपत्नी प्रसूति ने कातर नेत्र से देखा कि शंभु कुछ शान्त हो गये हैं। उनको शान्त देखकर प्रसूति दिव्यज्ञान बल से प्रभुशंभु को परमपुरुष जानकर स्तुति करने लगीं।।४२-५२।।

प्रसूतिरुवाच

नमामहे तवपदपङ्कजद्वयं यदद्वयं भयहरमिष्टसाधकम्।
स्मरन्ति वै सुरनरकिन्नरादयः समोभवान्निखिलजनेविशेषकृत्॥५३॥
शिवो हरः स्मरहर ईश उत्तमो महेश्वरो भवभयकृद्भवोऽरिहा।
त्रिलोचनः शशिरविवह्निलोचनो महामना मनसि विराज मादृशाम्॥५४॥
शतेन्दवो रविकुलकोटिरेव ते प्रभाकरप्रभमिति नावगम्यते।
यदीदृशाः प्रविलसद्दण्डकोटयो भवत्तनोः कणविवरेषु लक्षिताः॥५५॥
मतिर्भवानपि यजमान एवच त्वमुत्तमो मख उपकल्पितो ह्ययम्।
त्वमिज्यसे क्रतुषु समेषु सेवकैः पशोरिदं गणयति किं वचोऽसमम्॥५६॥

तव प्रिया प्रकृतिविशेषषरूपिणी समागता मयि जनुषेऽजनुः सती।
अनुग्रहस्तदपर एव लक्षितो न निग्रहोप्ययमधुना त्वया कृतः॥५७॥

प्रसूति कहती हैं—हे महेश्वर! आपके चरण कमलों में प्रणाम अर्पित करती हूं। क्योंकि आपके चरणकमल तीनों लोक में अद्वितीय रूप से भय का हरण करने वाले तथा इष्ट साधक हैं। सुर-नर-किन्नरादि सभी आपके चरणों का ध्यान करके समस्त भय से रहित हो जाते हैं। आप शिव, कामदेव का नाश करने वाले, अतः स्मरहर हैं। इसी प्रकार आप हर, ईश, उत्तम, महेश्वर आदि नामों से प्रतिपाद्य हैं। आप संसार भय से मुक्त करते हैं। आपका स्मरण करने से समस्त शत्रुगण का नाश हो जाता है। चन्द्र-सूर्य-अग्नि आपके नेत्रत्रय हैं। आप महामना होकर भी मेरे जैसे लोगों के मन में विराजित रहते हैं। आपकी प्रभा सैंकड़ों सूर्य-चन्द्र के समान है। आपके प्रभाव को जाना ही नहीं जा सकता, क्योंकि करोड़ों ब्रह्माण्ड आपके शरीर में लक्षित होते हैं। यह उत्तम यज्ञ आपमें ही समर्पित है,क्योंकि समस्त यज्ञ आपकी ही पूजा करते हैं। आप क्यों पशुतुल्य दक्ष की बातों पर विचार करते हैं? आपकी प्रियतमा अशेषरूपा प्रकृति देवी ने मेरे गर्भ से जो जन्म ग्रहण किया है, यह केवल मेरे ऊपर कृपा ही है। यह जो यज्ञध्वंस हुआ, यह भी मैं आपकी कृपा मानती हूं।।५३-५७।।

यदीश्वरेक्षणकण एव वाञ्छ्यते महाफलः सकृदपि विश्वभावन।
इदं हि ते खलु परिपूर्णवीक्षणं विनिग्रहात्मकमिति गण्यते मया॥५८॥
प्रजापतिस्त्वयमतिकुत्सितं वचः सदाजनुः समवददेव यन्मतम्।
अनुग्रहात् स च भवता विमर्द्दनच्छलाग्निना कनकमिवाभिशोधितम्॥५९॥
प्रजापतेर्जनुरिह देव सार्थकं कृतं त्वया न च कुरु वै वृथा क्वचित्।
मतिं शुभां प्रभजतु ते पदाम्बुजं सुभक्तितः प्रणमतु लक्ष्यते सकृत्॥६०॥
इदम्बपुस्तव विलसत्तरं परं शशिप्रभं कमलतरं प्रगोप्यतु।
अदर्शयः कथमिति गर्हितार्थकं गुणागुणाः प्रभुतरमेव यान्ति वै॥६१॥

जिस ईश्वर के कणमात्र का अवलोकन महाफलदायक होने के कारण लोग उसकी कामना करते हैं, उन ईश्वर ने स्वयं इस यज्ञ पर निग्रहात्मक दृष्टि किया है। इस प्रजापति ने आजन्म आपके प्रति कुत्सित वाक्यों का प्रयोग किया है। तथापि आपने अनुग्रह करके इसे भी अग्नि में तप्त किये गये स्वर्ण की ही तरह अपनी निग्रह रूपी अग्नि से शुद्ध कर दिया! इसका जन्म सार्थक हो गया। अब आप इसे सुमति दीजिए, जिससे यह भक्तिपूर्वक आपके चरणों में प्रणत होकर अब आपके चरणों की सेवा करें। हे प्रभो! आपने अपनी चन्द्रमा के समान सुकोमल मूर्त्ति को छिपाकर यह भीषण मूर्त्ति क्यों धारण किया है?।।५८-६१।।

शुक उवाच

प्रसूत्या विहितैतेन स्तवेन भगवान् हरः। चारुरूपः प्रसन्नात्मा बभूव वृषवाहनः॥६२॥
तदा ब्रह्मा समागत्य हंसारूढश्चतुर्मुखः। विष्णुश्च गरुड़ारूढो जगदाते वृषध्वजम्॥६३॥
कृतापराधं देवेश दक्षमेतं व्यमर्द्दयः। कृतं तत्तु समीचीनं शान्तिमेवाधुना चर॥६४॥

देवान् प्रकृतसर्व्वाङ्गान् कुरु दक्षञ्च जीवय। स्थिता ते शाश्वती कीर्त्तिर्दक्षयज्ञविनाशनात्।
दक्षयज्ञहरायेति स्तोष्यन्ति त्वां सुरादयः॥६५॥

शुक कहते हैं—भगवान् शिव प्रसूति के इस स्तव से प्रसन्न हो गये तथा अपना वृषस्थ मनोहर रूप धारण कर लिया। तभी ब्रह्मा हंसारूढ़ होकर तथा विष्णु गरुड़ारूढ़ होकर वहां आये। वे वृषध्वज शिव से कहने लगे—"हे देवेश! यद्यपि आपने दक्ष को इस प्रकार से विमर्दित किया है, यह उसके अपराध का परिणाम है। अब आप शान्त होकर भग्न अंग वाले देवताओं को स्वस्थ करिये। ये सभी आपकी स्तुति करना चाहते हैं। आप दक्ष को भी जीवन प्रदान करें। इस दक्ष यज्ञ विनाशन रूप आपके कार्य की शाश्वती कीर्ति बनी रहेगी।।६२-६५।।

रुद्र उवाच

एवमेवास्तु देवाश्च प्रकृताः सन्तु सर्व्वशः। नैव कदाचित्कुर्व्वन्तु ममापमानसङ्गमम्॥६६॥
दक्षाय च शिरो देहि छिन्नमन्यत्पशोरिह। मन्निन्दाकलुषख्यातिं धृत्वा निष्कलुषो भवेत्॥६७॥

रुद्रदेव कहते हैं—ऐसा ही हो। समस्त देवता स्वस्थ हो जायें। लेकिन ये मेरे अपमान रूप ऐसा कार्य कदापि न करें। एक पशु का मस्तक लाकर दक्ष को लगाया जाये। अब यह मेरी निन्दा का फल भोग करके पापरहित हो गया है।।६६-६७।।

शुक उवाच

एवं रुद्रवचः श्रुत्वा ब्रह्मविष्ण्वादयोऽपि च। नन्दी स्वयं मुने तत्र छागस्यान्यस्य कस्यचित्॥
मूर्द्धानं योजयामास तदा दक्षोऽपि जीवितः॥६८॥
ददर्श पुरुषांस्त्रीन् वै ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्। अद्भुतां परमां शोभां दृष्ट्वा दक्षोऽपि विस्मितः॥६९॥
सम्मार्जितेन चित्तेन दर्पणेनेव चारुणा। ददर्श स महेशानं महात्मानं परात्परम्॥७०॥
परमानन्दसम्पूर्णं पारावारमिवापरम्। कोटिचन्द्रप्रतीकाशं त्रिलोचनविराजितम्॥७१॥
त्रिशूलडमरुधरं स्वर्णाभरणभूषितम्। अणिमादिसिद्धिभिश्च मूर्त्ताभिः समुपासितम्।
विराजमानं मध्यस्थं ब्रह्मविष्ण्वोर्म्महारुचोः॥७२॥
एवं दृष्ट्वा महादेवं देवदेवं महेश्वरम्। स्तोतुं समुपचक्राम वक्तुं नैव तदाशकत्॥७३॥
तत् दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा विष्णुश्चापि सनातनः। ऊचतुः परमोदारौ महात्मानं प्रजापतिम्॥७४॥

शुक कहते हैं—रुद्रदेव का यह वाक्य सुनकर ब्रह्मा तथा विष्णु की आज्ञा से नन्दीश्वर एक बकरे का मस्तक लाये तथा उसे दक्ष के शिर से युक्त कर दिया। प्रजापति दक्ष ने जीवित होकर ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर का दर्शन किया तथा उनकी अपूर्व शोभा से विस्मित हो गया। दक्ष का चित्त अब स्वच्छ किये दर्पण की तरह निर्मल हो गया था। वह कोटि चन्द्र प्रभायुक्त महेश्वर की मूर्त्ति का निरीक्षण कर रहा था। उसने देखा कि परात्पर देव महेश्वर का मुखमण्डल लोचनत्रय से युक्त अपूर्व रूप से शोभायमान है। करद्वय में त्रिशूल तथा डमरु है। सर्वांग स्वर्ण आभूषणों से सजा है। अणिमादि सभी सिद्धियां मूर्त्तिमान होकर उनकी उपासना कर रही हैं। वे ब्रह्मा तथा विष्णु के मध्य में विराजमान हैं। महादेव की यह मूर्त्ति देखकर दक्ष ने स्तव करने का उपक्रम किया, किन्तु वह बोल नहीं सका। यह देखकर सनातन देव ब्रह्मा तथा विष्णु कहने लगे।।६८-७४।।

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

प्रजापते महाभाग भगवांस्त्वं बभूविथ। अयं साक्षान्महादेवस्तव दृक्पथमागतः॥७५॥
यत्पूर्व्वमपराधो वै स क्षान्तोऽनेन सर्व्वथा। स्तुहि प्रणम देवेशं भक्त्या परमया मुदा॥७६॥
आशु तुष्यत्यसौ देवः स्वभावात् शिवनामकः।
न ह्यस्यास्ते हृदा किञ्चित् वैषम्यं त्वत्कृते पुनः।
दण्ड्यन्तु दण्डयत्येष नापराधमपेक्षते॥७७॥

ब्रह्मा-विष्णु कहते हैं—'हे प्रजापति! आप महाभाग्यवान् हैं। क्योंकि साक्षात् महेश्वर आपके समक्ष खड़े हैं। आप अपने पूर्वकृत अपराधों के प्रति क्षमायाचना करिये। भक्तिभाव तथा आनन्दपूर्वक इनको प्रणाम करें। ये स्वभावतः आशुतोष तथा शिव रूप हैं। इनके हृदय में आपके प्रति वैषम्य बुद्धि कदापि नहीं है। ये दण्डार्ह को दण्ड देते हैं। तथापि अपराध की अपेक्षा नहीं करते।।७५-७७।।

शुक उवाच

इत्युक्तः स तदा दक्षः प्रणनाम च तान्मुदा। स्तोतुं समुपचक्राम महात्मानं महेश्वरम्॥७८॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे दक्षयज्ञध्वंसो नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः।।

शुकदेव कहते हैं—इनके वाक्य को सुनकर प्रजापति दक्ष ने आनन्दित होकर महादेव को प्रणाम किया तथा स्तव करने लगे।।७८।।

।।अष्टत्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षकृत शिवस्तुति-यज्ञ को शिवद्वारा सफल करना

दक्ष उवाच

नमस्ते देवदेवेश सुरासुरनमस्कृत। विश्वभावन विश्वेश तुभ्यं भगवते नमः॥१॥
त्वामादिमादिकर्त्तारं विश्वाद्यं विश्वरक्षकम्। पशवः किं नु जानन्ति दक्षाख्योऽहं पशुः परः॥२॥
किं मे दैवं पर जातं (जन्म वै व्यर्थमाहितम्। भगवन्तं महादेवं) भवन्तं वै त्वजानतः॥३॥
त्वमात्मा सर्व्वभूतानां त्वं गतिः परमा ततः। त्वं भवो भगवानादिस्त्वमनन्तो भवापहः॥४॥
त्वं शिवाख्यो महाभागः परमेशः पुरातनः। हरः सनातनो देवः परमात्मा परेक्षितः॥५॥

दक्ष कहते हैं—हे देवदेवेश्वर! आप सुर-असुरगण द्वारा वन्दित हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं! आप

विश्वभावन तथा विश्वेश्वर हैं। आपको प्रणाम! आप ही स्वयं आदि एवं आदिकर्त्ता हैं, समस्त विश्व के आप ही रक्षक हैं। पशुगण भी जानते हैं कि मैं पशु की अपेक्षा भी निकृष्ट हूं। मैंने आपका तत्व न जानकर अपना जन्म विफल कर दिया। आप सर्वभूतात्मा, परमगति, अनादि, अनन्त, भव, मुक्तिदाता, भगवान्, शिव, महाभाग तथा पुरातन परमेश हैं। आप भयहर्त्ता हैं। आप हर, सनातन देव, परमात्मा अगोचर हैं।।१-५।।

क्षमाशीलश्चाशुतोषः सन्तोषश्च प्रतोषकः। करुणासागरः शान्तः कमनीयः प्रजापतिः॥६॥
विश्वेश्वरो विश्वबन्धुः पूर्णानन्दो विखण्डधीः। केवलानुभवानन्दस्वरूपः परमेश्वरः॥७॥
विरूपो विश्वरूपश्च कालः कालीपतिः पतिः। सतीनाथः सतीबन्धुः सबन्धुर्बन्धुरूपवान्॥८॥
भगवान् भगहा नन्दी महानन्दो महामनाः। विश्वोद्भवः प्रसन्नात्मा कामरूपः प्रतापवान्॥९॥

कालानलः कालकर्त्ता कालरूपी कलानिधिः।
कामिनीनायकः कामी कौतुकी कामलालसः॥१०॥

कामः कालाग्निरुद्रात्मा कौषेयाम्बरभूषणः। कपर्द्दी कूटकङ्कालः कूटस्थः केवलात्मकः॥११॥
कोङ्कारः कोङ्करीकारः कोङ्कवेङ्कटवासकः। क्रीड़ात्रयपरिश्रान्तः क्रीड़ाकारी कलिः कलः॥१२॥
कायी केयी केयकेयी केकयी शोकयध्वनः। कालीपरः कपाली च करपालीविभूषणः॥१३॥
कपालभूषणो भव्यो योगविद्योगरूपवान्। यज्ञरूपो यज्ञकर्त्ता यजनीयो यमः स्वयम्॥१४॥
यङ्कारशोषको याता यम्भनो यम्भयम्भकः। योनिदेवो योनिमाली यशस्वी यत्नवान् परः॥१५॥
यक्षनाथो यक्षराजो यक्षराजेश्वरो यमी। पुण्यः पवित्ररूपी च परमानन्दविग्रहः॥१६॥
पूर्णः पूरयिता पाता पुण्यश्रवणकीर्त्तनः। पद्मगन्धः पद्महस्तः पद्ममुद्रापदाम्बुजः॥१७॥
पटुः पटीयान् पवनः पण्डितः परमार्थवान्। गोपनीयो गोपनाथो गोपालो गगनस्थितः॥१८॥
गुरुर्गगनवासी च गौराङ्गो गौरमस्तकः। गोलोकवासी गतिमान् गेयो गानकृती गदी॥१९॥

गणाध्यक्षो गयारिश्च पिता माता पितामहः।
सद्बुद्धिदाता सद्बुद्धिः सात्विकः सत्वरूपवान्॥२०॥

साक्षी त्र्यक्षो दयासारो दिव्यभावी दिविस्थितः। प्रेतभूमीप्रियो भूतिप्रतिभूषित एव यः॥२१॥
त्वं प्रेतस्त्वं जीवरूपो निन्द्यस्त्वं पूजितो भवान्। यदुक्तं भवते पूर्व्वं निन्दावाक्येन भूतिद॥२२॥
तैश्च त्वं प्रतिपाद्योऽसि निन्द्यरूपः स्वरूपवान्। वेदागम्यो वेदकर्त्ता वेदवेद्यो विदाम्बरः॥२३॥

आप क्षमाशील, आशुतोष, संतोष तथा संतोष प्रदायक, करुणासागर, शान्त, कमनीय, प्रजापति, विश्वेश्वर, विश्वबन्धु, पूर्णानन्द, सममति, परमईश्वर, विशुद्ध बुद्धि हैं। आपका रूप केवल अनुभवानंद पूर्ण है। आप विरूप, विश्वरूप, काल, कालीपति, सबके पति (स्वामी), सतीनाथ, सतीबन्धु, निजबन्धु तथा रूपवान् हैं। आप भगवान्, भगहानन्दी, महानन्दमय, महामना, विश्वोद्भव, प्रसन्नात्मा, कामरूप, प्रतापी, कालानल, कालहर्त्ता, कलानिधि, कालरूपी, कामिनीनायक, कामी, कौतुकी, काम की लालसा वाले, काम, कालाग्नि रुद्रात्मा, कौषेयवस्त्रधारी हैं। आप कंपर्दी, कूटकंकाल, कूटस्थ, केवलात्मक, कोङ्करीकार, कोङ्क, वेंकटवासक हैं। आप क्रीड़ात्रय से परिश्रान्त,

क्रीड़ाकारी, कलिः तथा कल, कायी, केलि, केय केकयी शोक निर्मूलक, कालीपर, कपाली, करपाली विभूषणयुक्त, कपालभूषण, भव्य, योगविद्, योगरूपवान, यज्ञरूप, यज्ञकर्त्ता, यजनीय, यमः हैं। आप यज्ञार शोषक, याता, यम्भ, यम्भक, यम्भन हैं। आप योनिदेव, योनिमाली, यशस्वी, यत्नवान, पर, यक्षनाथ, यक्षपर, जयी, यक्षराजेश्वर, परमानन्द विग्रह, परिग्रह, पवित्ररूपी, पावन, पूर्ण, पूरयिता, पाता, पुण्यश्रवणकीर्त्तन, पद्मगन्ध, पद्महस्त, पद्ममुद्रा, पदाम्बुज, पटुः, पटीयान, पवन, पण्डित, परमार्थवान् हैं। आप गोपनीय, गोपनाथ, गोपाल, गोपनस्थित, गुरु, गगनवासी, गौराङ्ग, गौरमस्तक, गोलोकवासी, गतिमान्, गेय, गानकृती, गदी, गणाध्यक्ष, गमारिश्च, पिता, माता, पितामह, सद्बुद्धि प्रदाता, सद्बुद्धिः, सात्विक, सत्वरूपवान्, साक्षी, त्र्यक्ष, दयासार, दिव्यभाव, दिविस्थित, प्रेतभूमिप्रिय, भूति प्रीतिभूषित भी हैं। आप प्रेत, जीवरूप, निन्दित तथा पूजित दोनों हैं। हे महेश! आप इन सब नामों से प्रतिपाद्य हैं। मैंने पूर्वकाल में आपके प्रति जितने निन्दापूर्ण वाक्य कहे हैं, उससे भी आपके ही स्वरूप का गायन हुआ है। आप वेदों से अगम्य, स्वयं वेदकर्त्ता तथा आप ही वेदज्ञ भी हैं। आप वेदविदों में सर्वश्रेष्ठ हैं।।६-२३।।

दक्षस्त्वं कश्यपस्त्वञ्च चन्द्रः सूर्य्यो भवानपि।
त्वं विष्णुस्त्वञ्च वै ब्रह्मा राजसस्तामसो भवान्॥२४॥
सुमतिः कुमतिस्त्वञ्च शास्त्रकर्त्ता प्रकर्षणः। जृम्भणो मोहनस्त्वं वै द्रावणः क्षोभणो भवान्॥२५॥
एकादशात्मा रुद्रस्त्वं जगद्ग्रासकरः परः। कोऽहमेकः पशुर्दक्षस्त्वां जाने परमेश्वरम्।
यस्योदर इदं सर्व्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥२६॥
किमिदं दृश्यते नाथ युद्धं वृत्तमिवेक्ष्यते। अहो यज्ञः समारब्धो मया स्मरणमागतः॥२७॥
स एव दृश्यते नष्टः कृतं साधु महेश्वरैः। न यत्र पूज्यते शम्भुस्तत्कर्म न समाप्यते॥२८॥

दक्ष, कश्यप, चन्द्र, सूर्य, आप का ही रूपभेद है। ब्रह्मा तथा विष्णु भी आपसे अलग नहीं हैं। आपसे ही सुमति तथा कुमति का प्रवर्तन होता है। आप ही शास्त्रकर्त्ता, सर्वभूत प्रवर्त्तक हैं। जृम्भण, मोहन, विद्रावण, क्षोभण, प्रभृति सब आपका ही ऐश्वर्य है। ११ रुद्र भी आप हैं तथा उन रूप से जगत् को त्रासित करते हैं। मैं तो पशु से भी अधिक मूर्ख हूं, अतः जिनके उदर में स्थावर-जंगम रूप समस्त जगत् स्थित है, मैं कैसे उनका स्तव कर सकूंगा? हे नाथ! आपको युद्धार्थ प्रस्तुत क्यों देख रहा हूं। मैंने आपका स्मरण किये बिना जो वृथा यज्ञ किया था, उसे नष्ट करके आपने उचित प्रतिफल प्रदान किया। क्योंकि जिस कार्य में शंभु पूजित नहीं हैं, वह कभी भी सम्पन्न होने लायक नहीं है।।२४-२८।।

शुक उवाच

इत्येवमपराधेन भूयसा स प्रजापतिः। भीतो निपत्य पदयोरिदं स्तोत्रं चकार सः।
तेन प्रीताः सर्व्वदेवाः बभूवुर्द्विज जैमिने॥२९॥
निपत्योत्थायमुत्थायं प्रणनाम पुनः पुनः॥ भक्त्या प्रजापतिर्दक्षः ःषड्भिः श्लोकैर्महेश्वरम्॥३०॥

शुक कहते हैं—हे द्विजप्रवर जैमिनी! प्रजापति अपने स्वयं कृत अपराध से भयभीत होकर महादेव के चरणों पर गिर पड़े। तब सभी देवता उनके प्रति प्रसन्न हो गये। दक्ष पुनः-पुनः शंभु के चरणों पर गिर-गिर कर प्रणाम करने लगे तथा पुनः स्तव करने लगे।।२९-३०।।

दक्ष उवाच

नमस्यामि देव त्वदीयाङ्घ्रियुग्मं यदाधाय चित्ते त्यजे मृत्युभीतिम्।
भवव्याधिशान्त्यै भवन्नामभिन्नं न भैषज्यमास्ते श्रुतिस्तत्प्रमाणम्॥३१॥
प्रभो दीनबन्धो कृपापारसिन्धो मनश्चक्षुरात्मस्वधिष्ठानकारिन्।
मनोवृत्तिसाक्षिन्नमस्यामि तेऽङ्घ्री क्षमस्वापराधं महादेव शम्भो॥३२॥
पुरो जन्मजन्मार्जितात्कर्मणो वै शरीरात्मकोऽसौ ध्रुवं बन्ध एषः।
अतो बन्धमुक्त्यै नमस्यामि तेऽङ्घ्री क्षमस्वापराधं महादेव शम्भो॥३३॥

दक्ष कहते हैं—आपके चरणद्वय का ध्यान करने से मृत्युभय नष्ट हो जाता है। मैं आपको प्रणाम करता हूं! आपके नाम के अतिरिक्त भवरोग की कोई औषधि नहीं है, श्रुति इसका प्रमाण है। हे दीनबन्धु! आप ही मन, नेत्र तथा आत्मा के अधिष्ठाता हैं। आप सर्वान्तर्यामी हैं। आपके चरणों में प्रणाम! मेरे अपराधों को क्षमा करें। मैं पूर्वजन्मार्जित कर्मवशात् इस शरीरात्मक बन्धन में बंधा हूं। इस बन्धन से मुक्त होने के लिये आपके चरणों में प्रणाम करता हूं। मेरे अपराधों को क्षमा करें।।३१-३३।।

इदं यच्छरीरं वृथा मोहरूपं ममाहं तवेत्यादिदुष्टग्रहश्च।
जिहासुः कदा वा नमस्यामि तेऽङ्घ्री क्षमस्वापराधं महादेव शम्भो॥३४॥
मनस्ते वचस्ते दृशौ ते करौ ते रसज्ञापदत्वक्श्रुती ते मदीये।
विनिश्चित्य चेदं नमस्यामि तेऽङ्घ्री क्षमस्वापराधं महादेव शम्भो॥३५॥
दिगाकाशकालस्वरूपो महात्मा न तद्वस्तु यत्र त्वमेको न भासि।
शरीरी सदागा नमस्यामि तेऽङ्घ्री क्षमस्वापराधं महादेव शम्भो॥३६॥
शरीरस्वभावात् सदागतःप्रबन्धो न चेत्त्वं प्रभु; सन् क्षमेथा महेश।
क्व याम्येष तस्मान्नमस्यामि तेऽङ्घ्री क्षमस्वापराधं महादेव शम्भो॥३७॥
क्षमस्वापराधं न वा मे क्षमस्व प्रभो ते गृहीते पदे पङ्कजाभे।
मृतौ वा जनौ वा धृते जीवने वा गतिस्त्वं गतिस्त्वं महादेव शम्भो॥३८॥

हे महादेव! मैं 'मेरा' 'मैं' आदि मोह से मोहान्वित हूं। आपके चरणों में प्रणाम करता हूं जिससे मेरा मोह कुछ तो भंग हो सके। मेरे अपराध क्षमा करिये। मेरे वाक्य-चक्षु-हाथ-जिह्वा-पैर-त्वचा-कान आदि सभी आपके हैं, मेरे नहीं हैं। अतः आपको प्रणाम! मेरे अपराधों को क्षमा करें। आप महात्मा, दिक्-आकाश-कालरूप हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है जहां आप स्थित न हों। आपको प्रणाम! मेरे अपराधों को क्षमा करें।

हे शंभु! शरीरधारण करके सदा ही आपका अपराधी होना पड़ता है। यदि आप स्वामी होकर अपराध क्षमा नहीं करते, तब मैं कहां जाकर अपराधों से त्राण पा सकूंगा? हे महादेव! आप अपराध क्षमा करें। अथवा न करें। मैं आपके चरणों को धारण करता हूं। जीवनकाल अथवा मरणकाल, जो भी काल हो आपके अतिरिक्त कोई गति ही नहीं है।।३४-३८।।

शुक उवाच

इत्येवं पतितं पादे भक्तिमन्त प्रजापतिम्। आकृष्य निजपाणिभ्यामुद्दधार दयानिधिः॥३९॥
शिवदेहामृतस्पर्शनिर्वृतः स प्रजापतिः। आत्मनः पूर्णतां मेने तत्क्षणात्कल्पकोटिवत्॥४०॥
नरकादिव वै घोरादुद्दधार महेश्वरः। आत्मानमीदृशं मेने तदा दक्षः प्रजापतिः॥४१॥
त्रैलोक्यनाथो भगवान् शिवः परमपूरुषः। यस्योद्धारकरः साक्षात् तस्मै आत्मा समर्प्यते॥४२॥

शुक कहते हैं—इस प्रकार से चरण पर गिरे भक्तिमान प्रजापति को दयानिधि महेश्वर ने हाथों से उठाया। शिवदेहामृत स्पर्श से प्रजापति ने परम निवृत्ति का लाभ किया तथा इस प्रकार प्रजापति ने स्वयं को आप्तकाम समझा। यह क्षणमात्र का समय मानो उनको कोटिकल्पवत् प्रतीत होने लगा। तब दक्ष ने यह विचार किया कि मैं घोर नरक जाने से मुक्त हो गया। हे वत्स जैमिनि! त्रैलोक्यपति शिव परम पुरुष हैं। उनका साक्षात्कार संसार से उद्धार करने वाला है। अतः उनके प्रति आत्मसमर्पण उचित है।।३९-४२।।

पश्याम्यार्त्तदयालुत्वं हरस्याप्याशुतोषताम्।
आजन्मनिन्दको दक्षः सकृत् स्तुत्वा विमुक्तिभाक्॥४३॥
तस्मात् सव्वप्रयत्नेन भज देवं महेश्वरम्। घोरसंसारतः पाता शिव एको महेश्वरः॥४४॥
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददामि यत्। यत्तु पश्यसि वा वत्स तत्कुरुष्व शिवार्पणं॥४५॥
वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वापि कर्त्तनम्। न त्वसंपूज्य भुञ्जीत भगवन्तं त्रिलोचनम्॥४६॥

साथ ही इनकी दयालुता की विवेचना करके देखो। जो दक्ष आजन्म उनका निन्दक था, वह केवल मात्र एक स्तुति द्वारा पापमुक्ति पा गया। अतएव इन देव की सेवा सर्वतोभावेन करनी चाहिये। क्योंकि एकमात्र महेश्वर ही संसार बन्धन से मुक्त करते हैं। हे वत्स! तुम अपने सभी कर्म, भोजन, होम, दानादि सबको शिव को समर्पित करो। भूख से प्राण जा रहे हों, तब भी बिना त्रिलोचन की अराधना किये भोजन न करो।।४३-४६।।

अथ भक्तियुतं दक्षं विलोक्य विधिकेशवौ। ऊचतुः परमप्रीतौ महेशस्य च शृण्वतः॥४७॥

ब्रह्मा तथा केशव ने दक्ष को अत्यन्त भुक्तियुक्त देखकर महेश्वर को सुनाते दक्ष से परमप्रीतिपूर्वक कहा।।४७।।

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

प्रजापते महाभाग यज्ञमारब्धवान् भवान्। तं सम्पादय (सर्व्वेषां देवानं प्रीतिहेतवे॥४८॥
सर्व्वेषां खलु) देवानां भागाः सङ्कल्पितास्त्वया।
न कल्पितौ द्वौ तु भागौ सत्या अपि शिवस्य च॥४९॥
ताविहापि च कल्प्येतां भागौ सत्याः शिवस्य च।
अनयोः शेषपूजा तु नास्तु सम्मानहानिकृत्॥५०॥
मर्य्यादा श्रूयतां तत्र याद्यारभ्य निरूप्यते। काली शिवश्च द्वावेतौ सर्व्वदेवमयौ मतौ॥५१॥
एतयोः पूजने वृत्ते नान्यपूजां पुनश्चरेत्। तस्मात्सर्व्वांस्तु संपूज्य शेषे एतौ प्रपूजयेत्॥५२॥

सर्व्वदेवांस्तु संपूज्य न पूज्येते शिवौ यदि। तदा वृथासमा पूजा प्रमाणं तत्र ते मखः॥५३॥
पूजयन् सर्व्वदेवान् यो ह्यसमाप्तेऽन्यपूजने। शिवौ संपूजयेद् यस्तु तेन तस्य कृतार्थता॥५४॥
ततो न पूजयेदन्यं शिवपूजनतः परम्। तत्र संपूज्यतां शम्भुर्विना देवीञ्च सम्प्रति॥५५॥

ब्रह्मा तथा विष्णु कहते हैं—हे प्रजापति! आप अत्यन्त भाग्यशाली हैं। अब देवगण की प्रसन्नता हेतु आरंभ यज्ञ को पूर्ण करें। आपने सब देवगण का यज्ञभाग कल्पित किया था। केवल सती एवं महेश्वर का यज्ञभाग कल्पित नहीं किया था। जो भी हो अब उसे कल्पित करके यज्ञ सम्पन्न करें। यह पूजा इनके लिये सम्मान हानिकर नहीं है। ये सर्वदेवमय हैं। वरन् इनकी पूजा के अनन्तर अन्य पूजा निषिद्ध है। अतः जब सब की पूजा हो जाये तब महेश्वर की पूजा करे। जो सभी देवगण की पूजा करके भी शिव एवं सती का पूजन नहीं करता, उसकी समस्त आराधना व्यर्थ है। इस हेतु आपका यज्ञ ही दृष्टान्तरूप है। अन्य पूजा न भी की जाये, तथापि शिवपूजा से व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है। इसीलिये नियम है कि शिवपूजनोपरान्त अन्य देव की पूजा न हो। अब आप शिवपूजा करें। देवी सती के न रहने पर भी शंभु दोनों भाग ग्रहण करेंगे।।४८-५५।।

ग्रहीष्यति ह्यसावेवं भागौ द्वावेव संप्रति। उभयोरपि पूजायां शिवपूजा विशेषतः।
(अमुष्य पूजनेनैव तस्याः पूजा विशेषतः)॥५६॥
अमुष्य पूजननेनैव तस्याः पूजापि वर्त्तताम्।
तस्मात् शिवस्य पूजास्य सर्व्वशेषे विधीयताम्॥५७॥

इन दोनों की पूजा एक ही है। इसमें कोई विशेषतत्व अलग से नहीं हैं। एक की पूजा से दोनों की पूजा हो जाती है। अतः इस पूजा का समर्पण महादेव को करें।।५६-५७।।

शुक उवाच

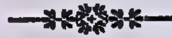
श्रुत्वैवं स तयोर्व्वाक्यं प्रजेशो विष्णुवेधसोः। तथा चक्रे विधानज्ञो विधानज्ञैर्महर्षिभिः॥५८॥
देवाः सर्व्वे प्राप्तभागाः पूजिताः स्वस्थलं ययुः।
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च देवदेवो गणैः सह।
दक्षेण पूजितौ प्रीतौ स्वलोकौ द्विज जग्मतुः॥५९॥
सर्व्वे च ऋषयोऽन्येच गन्धर्व्वासुरकिन्नराः। ययुः स्वं स्वं स्थलं सर्व्वे यथायोग्यं प्रपूजिताः॥६०॥
इति ते कथितं विप्र दक्षयज्ञविनाशनम्। सतीदेहपरित्यागो दक्षोक्तः शाम्भवः स्तवः।
पुनर्यज्ञस्य संसिद्धि र्देवानां परितोषदा॥६१॥
एतद् यः शृणुयान्नित्यं पठेद्वा सुसमाहितः। तस्य पापविलोपः स्यान्मृतः शिवत्वभाग्भवेत्॥६२॥

शुक कहते हैं—विधि के ज्ञाता प्रजापति देव ने दोनों के वाक्य को सुनकर विधानज्ञ महर्षियों के साथ मिलित हो त्रिलोचनदेव की यथाविधान पूजा करके यज्ञकार्य सम्पन्न किया। ब्रह्मा-विष्णु तथा सभी ने अपने-अपने यज्ञ भाग ग्रहण करके स्वस्थान गमन किया। महर्षिगण, अप्सरायें, किन्नर, गन्धर्वादि भी स्वस्थान चले गये। यह दक्षयज्ञ विनाश का मैंने वर्णन कर दिया। सती देहत्याग, दक्षोक्त शंभुस्तव, पुनः यज्ञसिद्धि, देवताओं की संतुष्टि इत्यादि सभी

प्रसंग मैंने वर्णित किया। जो व्यक्ति इसे नित्य सुनता अथवा पाठ करता है, वह पापों से रहित होकर मुक्त होता है। उसे परलोक में शिवत्व प्राप्ति होती है।।५८-६२।।

श्राद्धकाले पठेदेतमध्यायं शृणुयाच्च वा। तदा स्युः पितरस्तुष्टा वर्षाणामयुतायुतम्॥६३॥
यात्राकाले विवाहे च पुत्रसंस्कारकर्म्मसु। भक्तियुक्तः पठेदेतमध्यायं शृणुयाच्च वा॥६४॥
गङ्गातटेऽथ खलु साधुसमीपतो वा लिङ्गञ्च शैवमपि यत्र विराजते वा।
शुश्रूषुसज्ज्नसमीपगतोऽपि वामुं शृण्वन् पठन् भवति शम्भु-शरीर-धारी॥६५॥

।।इति श्रीबृहद्धर्मपुराणे मध्यखण्डे दक्षयज्ञसम्भवो नामोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।



जो श्राद्धकाल में इन स्तवों का पाठ करता है उसके सभी पितृगण अयुतायुत वर्ष तक संतुष्ट रहते हैं। यात्राकाल, विवाहादि संस्कार, नित्य संध्याकाल में भक्तिपूर्वक यह पाठ करें। गंगा तट पर, साधु के सानिध्य में, शिवलिंग के पास तथा श्रवण के इच्छुक सज्जनों में इसका पाठ किंवा श्रवण करने पर साक्षात् शंभु स्वरूपता प्राप्त होती है।।६३-६५।।

।।उनचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



चत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षशोक पीठोत्पत्ति विवरण

जैमिनिरुवाच

ततः किमकरोद्दक्षः शिवं प्राप्य क्रतौ कृते। गङ्गा वा समभूत् कुत्र तन्मे वद गुरो प्रभो॥१॥

जैमिनी कहते हैं—हे गुरुदेव! तदनन्तर प्रजापति दक्ष ने क्या किया तथा किस प्रकार से किस स्थान से गंगा देवी उत्पन्न हैं? कृपया वर्णन करें।।१।।

शुक उवाच

गतेषु तेषु सर्वेषु देवर्षिमानवादिषु। प्रसूत्या भार्य्यया सार्द्धं दक्षो मुग्धः परोऽभवत्॥२॥
शिवो मोहपरश्चापि बभूव मुनिपुङ्गव। भार्य्यां विना न जामाता शोभते श्वशुरालये॥३॥
दक्षोऽनुतेपे बहुशो हा सतीति मुहुः स्मरन्। क्व गतासि महाभागे वत्से सति सुलोचने।
अस्मांस्तु जन्मनैवान्धान् क्षिप्त्वा कूपवरे सुते॥४॥
दिव्यज्ञानेन देवेशं ज्ञात्वा त्वं शिवमीश्वरम्। पतिं प्राप्तासि हित्वैव देवादीन् देववन्दिते॥५॥
देवादिवन्दिता त्वञ्च देवादिवन्दितः शिवः। उभौ तु दम्पती योग्यौ नैवं जाने कुधीरहम्॥६॥

मन्दभाग्यस्य मे दोषात् त्यक्त्वा चैनं पतिं शिवम्।
परलोकं प्रयातासि मादृशो नास्ति दुष्कृती।
त्वन्तु जन्मान्तरेऽप्येनं पतिं प्राप्स्यसि शोभने॥७॥

शुक कहते हैं—तदनन्तर जब देवर्षि-मनुष्यादि जब सभी अपने-अपने स्थान चले गये, तब प्रजापति अपनी भार्या प्रसूति के साथ ही शोक मुंग्ध से हो गये। हे मुनिपुंगव! यदि भार्या मृत है, तब जामाता श्वसुर गृह में शोभित नहीं होता। अतः महादेव भी अत्यन्त मुग्धवत् हो गये। दक्ष पुनः-पुनः दीर्घनिश्वास परित्याग करते हुए अनुताप करते जा रहे थे। उन्होंने कहा "हा पुत्री सती! हा सुलोचने! मैं जन्म से ही मोहान्ध था। अब तुम हम सब का त्याग करके कहां चली गयीं। बेटी! तुम महाभाग्यवती हो। तुमने अपने दिव्यज्ञान बल से शिव का परमेश्वर रूप जान लिया, तथा सभी देवगण का त्याग करके उनका ही तुमने आश्रय लिया। बेटी! तुम देवगण द्वारा वन्दिता हो तथा शिव देववंदित हैं। तुम दोनों दम्पति योग्य हो। लेकिन मैं दुर्बुद्धि कुछ समझ नहीं सका। जगत् में मेरे समान दुष्कृत्य करने वाला कोई नहीं है। हे शोभने! मेरे दोष से ही तुम पति का त्याग करके परलोक चली गयी।।२-७।।

नास्माभिश्चक्षुषा दृष्टौ युवां चारुसतीशिवौ।
हाहा हतोऽस्मि दग्धोऽस्मि वृक्षाप्राणोऽस्मि चानिमि॥८॥
त्रैलोक्यदुर्लभं लब्ध्वा क्षिप्तं गम्भीरपाथसि। शिवं राजीवताम्राक्षमेतं परमपूरुषम्।
यष्टुं जामातृबुद्ध्यापि न प्राप्तो विधिवञ्चितः॥९॥

'हे पुत्री! तुम जन्मान्तर में भी महादेव को पतिरूप से प्राप्त करोगी। केवल हम दोनों तुम्हारी मनोहर मूर्त्ति नहीं देख पाये। हाय! मैं जीते जी मृत हूं। मेरे समान व्यक्ति का जीवन धारण व्यर्थ है। मैंने तुम जैसा त्रैलोक्य दुर्लभ रत्न पाया, उसे भी जल में फेंक दिया। मैंने परमपुरुष राजीवलोचन शिव को भी पाकर उनका आदर नहीं किया! लगता है कि भाग्य ने हमें वंचित किया है।।८-९।।

शुक उवाच

इत्यादिमनुतापं तं कुर्वन्तं वै प्रजापतिम्। क्व सती क्व सतीत्येवं जगाद मुग्धवच्छिवः॥१०॥
उत्थाय च ततः स्थानात् ययौ स उत्तरामुखः।
सती कालीति कालीति शब्दयन् भयदं परम्॥११॥
तदा सदुर्निरीक्ष्योऽभूद्देवैरपि सवासवैः। दक्षाद्या दूरतस्तस्थुः शिवोऽगाद्दुर्गमं परम्॥१२॥
ददर्श तत्र महसा दीप्यमानां मृतामपि। सतीं दाक्षायणीं कालीमनुत्तानामनावृताम्॥१३॥

शुकदेव कहते हैं—प्रजापति द्वारा यह अनुताप करने पर उधर महादेव प्रजापति से बारम्बार पूछते जा रहे थे। "मेरी सती कहां है?" कुछ क्षणों बाद शंकर मुग्ध की तरह वहां से उठे तथा "सती-सती"-"काली काली" कहते भयानक शब्दोच्चार करते हुए उत्तर की ओर चले गये। तब उनकी ओर दृष्टिपात कर सकना भी साध्य नहीं था। इन्द्रादि देवगण की भी दुर्दशा हो रही थी। दक्ष प्रभृति दूर खड़े महादेव को वहां जाते देख रहे थे जहां दाक्षायणी ने देह त्याग किया था। वे उस दुर्गम स्थान पर पहुंचे। वहां जाकर देखते हैं कि वहां दाक्षायणी का शव पड़ा है। अनावृत तथा अधोमुख सती की देहलता वहां भूलुण्ठित थी। उस देह में प्राण न होने पर भी अद्भुत तेज से शवदेह दीप्त था।।१०-१३।।

दृष्ट्वा तां कालमेघाभां भूमावुत्तारलोचनाम्।
शिवोऽहन्ते पतिः साध्वि त्वञ्चोत्तिष्ठेत्यभाषत॥१४॥
कृतार्था त्वं स्वभावेन गता भावान्तरं सति। अकृतार्थौ विधायैव शिवदक्षौ कृतागसौ॥१५॥
दक्षो मौढ्यमनुप्राप्तो भवतीं नोपलब्धवान्। अहन्तु त्वां मृतामेनां न त्यक्ष्यामि कदाचन॥१६॥
एवं विलप्य बहुधा हरः प्राकृतलोकवत्। बाहुभ्यां तां परिष्वज्य जग्राह शिरसापि ताम्॥१७॥

केवल उनके नेत्रत्रय उलट गये थे, यही मृतचिन्ह लक्षित था। तब महेश्वर कहने लगे—हे साध्वी! उठो! यह देखो हतभाग्य त्रिलोचन यहां उपस्थित हैं। हे सती! तुम हम सब को अकृतार्थ रखकर स्वयं परलोक जाकर कृतार्थ हो रही हो! मैंने तथा तुम्हारे पिता दक्ष ने तुम्हारे साथ अपराध किया है, इसी कारण तुमने मेरा त्याग किया। तुम्हारे पिता मूढ़त्व के कारण तुमको पहचान न सके, तथापि मैंने तो तुम्हारा त्याग कदापि नहीं किया था। भगवान् शिव सामान्य व्यक्ति की तरह इस प्रकार से नाना विलाप कर रहे थे। तत्पश्चात् उन्होंने सती के शव को अपनी भुजाओं से उठाकर अपने मस्तक पर रखा।।१४-१७।।

गृहीत्वा शिरसा कालीं देवीं दाक्षायणीं शिवः। परमं मोदमापन्नो जगादात्मानमात्मना॥१८॥
अहो मे परमं भाग्यं यत्त्वाहं शिरसावहम्। भार्य्येति लोकलज्जाभि र्या त्वं नाराधिता मया॥१९॥
इत्युक्त्वा परमानन्दविह्वलो नर्त्तुमुद्यतः। आकाशे द्रष्टुमायाताः सर्व्वे ब्रह्मादयः सुराः॥२०॥
कदाचिच्छिरसाधाय कदाचिद्वामपाणितः। कदाचिद्दक्षिणे हस्ते धृत्वा दाक्षायणीं शिवः।
ननर्त्त धरणीखण्डे महाताण्डवपण्डितः॥२१॥
तदा धरण्यां गगने तिलकायितचन्द्रमाः। न मम्लौ स महादेवः कण्ठ-भूषण-भास्करः॥२२॥
बाहुक्षेपैर्बहुविधैर्दिक्पालास्ताड़िता गताः। जटा-वेग-प्रतिक्षिप्ता अभूवंस्तारकागणाः॥२३॥
धरणी धैर्य्यमुत्सार्य्य चचाल ह्यचलापि या। कूर्म्मानन्तौ धरां धर्त्तुं व्यथितौ सम्बभूवतुः॥२४॥

जगदात्मा महेश्वर ने देवी का शवदेह मस्तक पर रखा तथा परमानन्द पूर्वक कहने लगे—"हे सती! मैंने लोकलज्जा से कभी भी तुमको भार्या नहीं कहा, अब मेरा क्या सौभाग्य है, जो मैं तुमको मस्तक पर ले जा रहा हूं।" यह कहकर भगवान् त्रिलोचन परमानन्द से विह्वल होकर नृत्यरत हो गये। ब्रह्मादि देवता यह दर्शन करने गगनपथ पर उपस्थित थे। महान् ताण्डव पण्डित महेश्वर देवी का शवदेह कभी मस्तक पर, कभी बायें हाथ पर, कभी दाहिने हाथ पर धारण करके समग्र धरणी मण्डल पर नृत्यरत हो गये। उनके द्वारा नृत्य में हस्तविक्षेप से ताड़ित होकर दिक्पाल इतःस्ततः गमन कर गये। मस्तकस्थ जटायें विक्षिप्त होकर तारागण को प्रतिक्षिप्त करने लगी। पृथिवी तो अचला कही जाती है, किन्तु उस समय स्वाभाविक धीरज छोड़कर चालित होने लगी। ऐसी स्थिति में कूर्म तथा अनन्तदेव पृथिवी को धारण कर सकने में विह्वल हो गये।।१८-२४।।

पाद-प्रक्षेप-सम्भूत-वायुना परिपीड़िता। अचला अपि ते चेलुः शैलाः कैलाशमेरवः॥२५॥
अब्धयोऽप्युछलत्तोयतरङ्गा धैर्य्यमत्यजन्। सर्व्वे च पशुपक्ष्याद्या नीरवा मृतका इव।
भूता आकालिकापाये आकस्मिक उपागते॥२६॥
आनन्दविह्वलो देवो लोकानां विपदं पराम्। नावधायैव बहुधा ननर्त्त घूर्णितेक्षणः॥२७॥

भगवान् के द्वारा नृत्य में पदप्रक्षेप किये जाने के कारण जो वायु उद्भूत हो रही थी उससे कैलाश, मेरु प्रभृति अचल पर्वत भी विचलित होने लगे। समुद्रगण ने स्वाभाविक स्थिरता त्याग दिया। उत्ताल तरंगमाला से वह पूर्ण हो गया। किम्बहुना पशु-पक्षी आदि मृतप्राय से होकर एकान्त में स्थित हो गये। देव महेश्वर आनन्द से विह्वल होकर लोकसमूह की विपत्ति की चिन्ता किये बिना घूर्णित नेत्र से नाना प्रकार के नृत्य करने लगे।।२५-२७।।

सर्व्वेषामिह लोकानां देवादीनां महामुने। केनोपायेन देवोऽसौ शाम्येदिति हृदा दधुः॥२८॥
तत्रोपायं विनिश्चित्य विष्णुः पालनपण्डितः। सतीदेहं महादेव-शिरस्थं भीतभीतवत्।
सुदर्शनेन चक्रेण चिच्छेद खण्डशः शनैः॥२९॥

तब देवता-मनुष्यादि सभी चिन्ता करने लगे कि भगवान् महेश्वर को कैसे शान्त किया जाये? जो समस्त जगत् के पालनहार हैं, वे भगवान् विष्णु तनिक भय के साथ उपाय निश्चित करके सुदर्शन चक्र के द्वारा महादेव के मस्तकस्थ सतीदेह को क्रमशः खण्डित करने लग गये।।२८-२९।।

यदा निःक्षिपते पादं धरणौ स महेश्वरः। तस्यैव यौगपद्येन क्षिपंश्चक्रं चकर्त्त सः॥३०॥
चक्रेण विष्णुना च्छिन्ना देव्या अवयवास्तु ते। निपेतुर्धरणौ विप्र सा सा पुण्यतरा क्षितिः॥३१॥
क्वचित्पादौ क्वचिज्जङ्घे क्वचिज्जिह्वा क्वचिन्मुखम्।
क्वचित् स्तनौ क्वचिद्वक्षः क्वचिद्बाहू क्वचित् करौ।
क्वचित्पार्श्वे क्वचिद्योनिः पपात शिवमस्तकात्॥३२॥

जब महादेव भूमि पर चरण निक्षेप करते थे, तभी भगवान् विष्णु तत्काल सतीदेह का छेदन चक्र से कर देते। इस प्रकार सुदर्शन चक्र से विच्छिन्न होकर देवी के अंग जहां-जहां गिरते, वह-वह स्थान पुण्यभूमि हो गया। त्रिलोचन के मस्तक से सतीदेह सुदर्शन से छिन्न होकर कहीं पद, कहीं जंघा, कहीं जिह्वा, कहीं मुख, कहीं स्तन, कहीं वक्ष, कहीं बाहु, कहीं हाथ, कहीं पार्श्वद्वय, कहीं योनि इस प्रकार से गिर रहे थे।।३०-३२।।

यत्र यत्र सती-देह-भागाः पेतुः सुदर्शनात्। ते ते देशा धराभागा महाभागाः किलाभवन्॥३३॥
ते तु पुण्यतमा देशा नित्यं देव्या ह्यधिष्ठिताः। सिद्धपीठाः समाख्याता देवानामपि दुर्लभाः।
महातीर्थाणि तान्यासन् मुक्तिक्षेत्राणि भूतले॥३४॥
भूमौ पतितमात्रास्ते देव्या अवयवाः किल। जग्मुः पाषाणतां शीघ्रं लोकानुग्रहहेतवे॥३५॥
तत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च दिक्पालाश्चारणादयः। स्वलोकेभ्यः समागत्य सेवन्तेऽहरहः सतीम्॥३६॥

पृथिवी के जिस स्थान में ये अंग-प्रत्यंग पतित हो रहे थे, वे स्थान जगत् में श्रेष्ठ तथा पुण्यप्रद माने गये। देवी इन सभी स्थानों में नित्य स्थित रहती हैं। ये सिद्धपीठ देवगण के लिये भी दुर्लभ हैं। ये सभी स्थल महातीर्थ तथा पृथिवी के मुक्ति क्षेत्र हैं। देवी के अंग पृथिवी पर गिरते ही लोकानुग्रहार्थ पाषाण हो गये। ब्रह्मा-विष्णु-दिक्पाल-सिद्ध-चारणादि वहां उपस्थित रहकर अहरहः भगवती सती का पूजन करते हैं।।३३-३६।।

तीर्थचूड़ामणिस्तत्र यत्र योनिः पपात ह। तीरे ब्रह्मनदाख्यस्य महा-योग-स्थलं हि तत्॥३७॥
कालीपुराणे विज्ञेयं मुने विवरणं ततः। माहात्म्यं तस्य देशस्य विष्णुर्जानाति नापरः॥३८॥
एवं कृत्ते सतीदेहे नृत्यन्देवो महेश्वरः। लघुर्भूतो दिशः सर्वा ददर्श शान्तिमावहन्॥३९॥

देवाः सर्वे नुता स्तस्थुर्भीताः क्वापि च कुत्रचित्। नारदः सहसा गन्तुं मतिं तन्निकटेऽकरोत्॥४०॥
शनैः शनैः स्तुवन् गत्वा नारदो मुनिपुङ्गवः। पुटाञ्जलिः पुरस्तस्थौ नृत्यतस्तस्य जैमिने॥४१॥
दृष्ट्वा च नारदं शम्भुः प्राञ्जलिं पुरतः स्थितम्। पप्रच्छ को भवान् दृष्टः सतीं दाक्षायणीमिति॥४२॥

जहां देवी की योनि गिरी है, वह स्थान तीर्थचूड़ामणि है। यह ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे है। इसे जगत् का हितकारी महायोगस्थल कहते हैं। कालीपुराण में इसका विवरण विशेषतया अंकित है। इस स्थल की महिमा विष्णु के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता। इस प्रकार सती देह विच्छिन्न होने पर महेश्वर ने नृत्य करते-करते सभी दिशाओं में लघुत्व (भार रहित) अनुभव किया। उनको कुछ परिमाण में शांति भी प्राप्त हो गयी। तब देवगण भयभीत होकर इतस्ततः अवस्थित थे। तदनन्तर देवर्षि नारद स्तव करते-करते धीरे-धीरे भगवान् के समक्ष अंजलिबद्ध हो खड़े हो गये। हे जैमिनी! शंभु ने कृतांजलि युक्त नारद को सामने देखकर पूछा—"तुम कौन हो? क्या तुमने दाक्षायणी सती को देखा है?।।३७-४२।।

नारद उवाच

प्रभो देव महेशान सतीं प्राप्स्यसि सर्व्वथा। आकालिकोऽसौ प्रलयः स्वकृतो नावधीयते॥४३॥
प्रभुर्भवसि लोकानां कर्त्ता पाताभिरक्षिता। कथं नृत्यच्छलेनेदं जगन्नाशयसि स्वयम्।
नैतादृशं प्रभोः कर्म्म नाशयेद् यत् समाश्रितान्॥४४॥

नारद कहतें हैं—देवदेव महेश्वर! आप सती को पुनः प्राप्त करेंगे, तथापि आप यह अकाल में ही प्रलय क्यों कर रहे हैं? आप समस्त लोकों के प्रभु तथा कर्त्ता हैं। आप ही रक्षक हैं। तब आप किसलिये नृत्य द्वारा जगत् का ध्वंस कर रहे हैं? आश्रितों का विनाश करना प्रभु के लिये उचित नहीं है।।४३-४४।।

शिव उवाच

अनृत्यः शान्तभूतोऽहं शान्ताः सन्तु सुरादयः। सतीदेहः शिरस्थो मे क्व गतो वद शृन्वतः।
सती वा लप्स्यते कुत्र तदपि ब्रूहि नारद॥४५॥

शिव कहते हैं—नारद! अब मैं शान्त हूं। अब कोई भय नहीं है। देव-नर आदि सबने शान्ति प्राप्त किया है। तथापि बतलाओ, मेरे मस्तक पर रखी सतीदेह कहां हैं, मैं कहां जाकर सती को पुनः पा सकूंगा?।।४५।।

नारद उवाच

भगवन् भूतभव्येश त्रिलोचन महेश्वर।
त्रैलोक्यविपदं दृष्ट्वा त्वां शान्तयितुमर्थिनः।
उपायज्ञस्य विष्णोस्तु चक्रेण त्वच्छिरःस्थितः।
खण्डखण्डीकृतो देहः सत्यास्त्वञ्च लघुः कृतः॥४६॥४७॥
दृश्यतां यत्र यत्रैव पतिता अङ्गसञ्चयाः। महापीठाश्च ते भूताः कामरूपादयो हर॥४८॥

नारद कहते हैं—भगवान्, भूतनाथ, त्रिलोचन भूतभव्येश! त्रिलोक को विपत्तिग्रस्त देखकर उपाय जानने वाले विष्णु ने चक्र से सती देह के खण्ड करके आपको हल्का कर दिया। यह देखें! देवी के अंग जहां-जहां गिरे हैं वह महापीठस्थान कामरूपादि हो गया है।।४६-४८।।

शुक उवाच

इत्युक्तः स महादेवो ददर्श योनिमण्डलम्। (लोमाञ्चितसमग्राङ्गो बभूव दर्शनात्ततः॥४९॥
दृष्टमात्रा तु सा योनिः शम्भुना मुनिपुङ्गव। धरां विभिद्य पातालं गच्छतीव बभूव ह॥५०॥
तदा तु व्याकुलं सर्व्वं दृष्ट्वा देवो महेश्वरः।
स्वयं गिरिवरो भूत्वा दध्रे तद्योनिमण्डलम्)॥५१॥
ब्रह्मा विष्णुश्च तत्रापि साहाय्यार्थमुपागतौ। सर्व्वे भूताश्चतुर्भागां देवीं धर्त्तुं भगात्मिकाम्॥५२॥
हरश्च पर्व्वतो भूत्वा धृत्वा योनिञ्च मोदितः।
यत्र यत्र सती-देह-भागास्तत्र स्वयंमुने।
पाषाण-लिङ्ग-रूपेण ह्यधिष्ठाय व्यसेवत।
ततः स नारदं प्राह क्व सती तत्तु मे वद॥५३॥५४॥

यह कहने पर महादेव ने योनिमण्डल देखा। महादेव के निरीक्षण मात्र से योनिमण्डल पृथिवी भेद करके पाताल में चला गया। सबको व्यग्र देख महेश्वर ने स्वयं पर्वतरूपी होकर योनिमण्डल धारण किया। वहां विष्णु तथा ब्रह्मा उनके सहायतार्थ आये तथा सभी भग्नात्मिका देवी को धारण करने वहां उपस्थित हो गये। महेश्वर ने पर्वतरूपेण योनिमण्डल धारण करके परम संतोष लाभ किया। जहां-जहां सती के देह भाग गिरे, वहां वे देवी की आराधना के लिये पाषाण लिंग रूपेण स्थित हो गये। तब उन्होंने पुनः नारद से पूछा "मेरी सती कहां है!"।।४९-५४।।

नारद उवाच

इहैव कामरूपे त्वं योगेनाधाय मानसम्। विश्राम्य मे सतीं देवीमन्वेष्टुं प्रव्रजाम्यहम्॥५५॥
मा चञ्चलत्वं गन्तव्यं मान्यभावः कदाचन। त्वामृते न सती क्वापि वर्त्स्यते चिरतः प्रभो।
अहं ते दर्शयिष्यामि सतीं सत्येन ते शपे॥५६॥

नारद कहते हैं—हे प्रभो! आप यहीं कामरूप में योगावलम्बन द्वारा विश्राम करें। मैं देवी सती के अन्वेषणार्थ जा रहा हूं। आप चंचल न हों। अन्य आश्रय न लें। आपके अतिरिक्त सती कहीं आश्रय नहीं लेगी। प्रभो! मैं आपसे शपथ लेता हूं। आपके निकट सती को पुनः ले आऊंगा।।५५-५६।।

शुक उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशं तं प्रणम्य महेश्वरम्। ययौ विहायसा तत्र शम्भुश्च शान्तिमान् स्थितः॥५७॥
सर्व्वे च शान्तिमापन्ना निश्चिन्ताश्च तदा जगुः।
यदि न स्यादसौ विष्णुः प्रलयः स्यात्तदा परः॥५८॥
धन्योऽपि नारदश्चासौ यः शम्भोर्निकटं गतः। त्रैलोक्यदुष्करं कर्म्म विष्णुश्चक्रे प्रपालकः॥५९॥
यः संहारकरो देवो महादेवो महाप्रभुः। तन्मुखात् त्रिजगच्चैतत् ग्रस्तं पुनरपालयत्॥६०॥
सत्यमेव महात्मासौ लोक-पालन-कारकः। यदि न स्यादयं देवः किन्तदा स्यादिहैव तु॥६१॥

इत्येवं चिन्तयित्वा तु ब्रह्मेन्द्राद्याश्च देवताः। जग्मुर्नारायणो यत्र स्तोतुकामा हरिञ्च तम्।
विष्णुलोकं समासाद्य विष्णुं तुष्टुवुरन्विताः॥६२॥

शुकदेव कहते हैं—देवर्षि ने यह कहकर महेश्वर को प्रणाम किया तथा आकाशपथ से प्रस्थान किया। शम्भु भी वहां शान्तिपूर्वक स्थित हो गये। देवता, मनुष्य सभी शान्ति लाभ करके कहने लगे "यदि आज प्रभु विष्णु न होते, तब प्रलय में कोई विलम्ब नहीं था। धन्य हैं देवर्षि नारद जो भगवान् शम्भु के निकट इस स्थिति में जाने का साहस कर सके। त्रैलोक्य का दुष्कर कर्म विष्णु चक्र ने सम्पन्न किया। अन्यथा जो संहारक हैं, उनके मुख से त्रैलोक्य रक्षा किसके द्वारा साध्य है? वास्तव में विष्णुदेव सदा त्रैलोक्य रक्षण कार्य करते-रहते हैं। यदि वे यह कार्य न करते, तब त्रैलोक्य रक्षक कौन होता? इन्द्र-ब्रह्मा आदि देवगण ने यह विचार किया तथा भगवान् विष्णु की स्तुति करने विष्णुलोक गये। वहां जाकर सभी भगवान् की स्तुति करने लगे।।५७-६२।।

देवा ऊचुः

विष्णुं पुराणपुरुषं त्वां नमस्यामहे वयम्। त्रिगुणायाविकल्पाय नमो नारायणाय ते॥६३॥
सत्यव्रताय सत्याय नमस्ते सत्ययोनये। नमः सत्यनिधानाय नमः सत्यात्मकाय ते॥६४॥
इष्टाय यजमानाय यज्ञदेवाय ते नमः। देव-देवा-धिपतये विष्णवे लोकधारिणे॥६५॥
नमः कारणशून्याय सर्व्वेषामपि हेतवे। पुरुषाय च जीवाय सुखदुःखार्थकाय च॥६६॥
नमः कमलपादाय नमः कमलपाणये। नमः कमलनेत्राय विष्णवे परमात्मने॥६७॥

हे प्रभो! आप विष्णु, पुराण पुरुष हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं। आप त्रियुग तथा विकल्परूपी हैं। हे नारायण! आपको प्रणाम! आप सत्यव्रत, सत्य, सत्ययोनि तथा सत्यविधान एवं सत्यात्मक हैं। आपको प्रणाम! आप इच्छा, यजमान तथा ज्ञानदेवता रूप हैं। आप देवाधिपति, विष्णुरूपी, त्रैलोक्य रक्षक हैं। आप निखिल विश्वकारण हैं। आपका कारण कोई नहीं है। आप पुरुष तथा सुखदुःखात्मक जीव हैं। आप पद्मपाद, पद्महस्त, पद्मनेत्र, परमात्मा विष्णु हैं, आपको प्रणाम।।६३-६७।।

यज्ञेश्वराय यज्ञाय दैत्यदानवघातिने। शिवाय शिवरूपाय शिवदात्रे च ते नमः॥६८॥
सदा पालनकर्त्रे च नमः सत्त्वगुणाय ते। गुणातीताय गुणवद्दृष्टाय परमेष्ठिने॥६९॥
वेदज्ञाय वेदकर्त्रे वेदाचरणकारिणे। नमः स्थूलाय सूक्ष्माय नमस्ते शास्त्रकारिणे॥७०॥
निष्फलाय विशेषाय प्रसन्नाय प्रसादिने। कर्त्रे हर्त्रे प्रवक्त्रे च नमस्तुभ्यं नमो नमः॥७१॥
प्रायो विनाशिता सृष्टिः पुनः संरक्षिता त्वया। संहारकारकाच्छम्भोः कोऽपरो वा भयापहः॥७२॥
संहारकारकः शम्भुः सत्यमेव न संशयः। त्वञ्च पालनकर्त्ता वै तत्र नास्तीह संशयः॥७३॥

आप यज्ञेश्वर तथा यज्ञरूप हैं। आप दैत्यदानव विनाशक हैं। आप शिवरूप, शिवदाता, सतत् पालनहार, सत्वगुणाश्रय, गुणातीत परमेष्ठि हैं। केवल गुणवान् ही आपका दर्शन प्राप्त करते हैं। आप वेदज्ञ, वेदकर्त्ता तथा वेदहरणकर्त्ता भी हैं। आप निष्कल, विशेष, प्रसन्न, प्रसन्नताप्रदाता, कर्त्ता, हर्त्ता, प्रवक्ता हैं। आपको प्रणाम। यह समस्त सृष्टि विनष्ट हो रही थी। आपने उसकी पुनः रक्षा किया था। संहारक हैं शंभु तथा आप पालक हैं। इसमें संदेह नहीं है।।६८-७३।।

शुक उवाच

इत्येवमुक्त्वा ते देवाः स्तुत्वा देवं सनातनम्। ब्रह्मविष्णुयुताः सर्व्वे शिवं द्रष्टुमुपागमन्।।७४।।

।।इति श्रीबृद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।



शुकदेव कहते हैं—देवगण ने इस प्रकार स्तव किया था तथा ब्रह्मा-विष्णु आदि सभी मिलकर देव महेश्वर के दर्शनार्थ कामरूप प्रदेश गये।।७४।।

।।चत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



एकचत्वारिंशोऽध्यायः

शक्तिस्तव, शक्ति द्वारा सबको शाप, विष्णु स्तोत्र

शुक उवाच

ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च तपस्यन्तं महेश्वरम्। आगत्य वै ददृशतुः कामरूपे महाप्रभुम्।।१।।

तमूचतुश्च तौ देवौ पूजितौ च समर्हणैः। निर्ज्जने तत्र मुदितौ शिवदर्शनतस्तदा।।२।।

शुक कहते हैं—तब ब्रह्मा तथा विष्णु ने कामरूप में तप करते भगवान् महेश्वर के पास आये। वहीं निर्जन में महाप्रभु को देखकर ब्रह्मा, विष्णु ने परमानन्द प्राप्त किया।।१-२।।

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

देवदेव महादेव तव भार्य्या सती शुभा। तत्त्याज देहं रुचिरं दक्षयज्ञे मनस्विनी।।३।।

किं कर्त्तव्यमवश्यं यद्भाव्यं तद्भाव्यमेव हि।।४।।

भार्य्या पुत्राश्च भृत्याश्च धनानि बान्धवास्तथा।

न कोऽपि कस्यचित् क्वापि शरीरमपि नात्मनः।

इत्येवं निश्चितं ज्ञात्वा न विमुह्यन्ति पण्डिताः।।५।।६।।

विशेषतस्तु मरणं जातस्य नियतं मतम्। तस्मादपरिहार्य्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।७।।

त्वञ्च ज्ञानी महायोगी शिवस्त्रैलोक्यविश्रुतः। हीनमोहोऽसि सततं वचो नः सोहृदार्थकम्।।८।।

सा च त्वया सती प्राप्ता विना यत्नेन सुन्दरी। त्वाञ्च प्राप्तं यत्नवती पुनः प्रत्युपपत्स्यते।।९।।

ब्रह्मा-विष्णु कहते हैं—हे देवदेव महादेव! आपकी पत्नी मनस्विनी सती ने दक्षयज्ञ में अवश्य देहत्याग किया, तथापि अवश्यम्भावी विषय में शोक व्यर्थ है। जो होना था हो गया। भार्या-पुत्र-भृत्यु-धन-बन्धु-कोई भी किसी

का नहीं है। किम्बहुना शरीर भी अपना नहीं है। यह जानकर पण्डित जन मोहग्रस्त नहीं होते। विशेषतः जन्म लेने पर मृत्यु अवश्यम्भावी है। अतः अपरिहार्य विषय में शोक करना उचित नहीं है। आप ज्ञानी, महायोगी, शिव हैं। आप त्रैलोक्य विश्रुत हैं। यद्यपि आप में मोह आदि तनिक भी नहीं हैं। तथापि हम सब सौहार्द्र पूर्वक यह कह रहे हैं। आपने पहले बिना यत्न सती को प्राप्त किया था, अब आपको पाने हेतु सती स्वयं यत्नशील होगी।।३-९।।

अपि चैषा सती भार्य्या न ते भार्य्यैव केवलम्। सा मूलप्रकृतिर्देवी स्वेच्छया देहधारिणी॥१०॥

ब्रह्मा विष्णुरिमावावां त्वञ्च शम्भुः सनातनः। त्रयो वै परमात्मानस्तया परमयेक्षिताः।

वहामो वै गुणांस्तस्याः सहायाश्च परस्परम्॥११॥

सर्व्वानस्मान् हि सा प्राप्ता सतीरूपेण रूपिणी। तत्र त्वां पूर्णभावेन आवामंशेन वै त्रिधा॥१२॥

तस्यास्ते खलु भार्य्याया दाक्षायण्या महेश्वर। प्रकल्पितं महापीठं कामरूपाख्यमद्भुतम्॥१३॥

इहैव तां परां स्तुत्वा द्रक्ष्यामो यदि मन्यसे। दृष्ट्वा त्वया तां संयोज्य याव आवां यथागतम्॥१४॥

सती मात्र आपकी भार्या थीं, ऐसा नहीं है, वे मूलप्रकृति हैं। वे अपनी इच्छा से देहधारण करती हैं। मैं, विष्णु तथा शिव सनातन परमात्मा हैं। हमें वे परमा प्रकृति देखती रहती हैं। तभी हम परस्परतः सहायक होकर उनके तीनों गुणों को वहन करते रहते हैं। ये ही प्रकृति देवी हम तीनों के पत्नी रूप से हम सबका आश्रय लेकर स्थित हैं। तब भी वे स्वयं का पूर्णभाव से आश्रय लेती हैं तथा हम लोगों का आश्रय अंशरूपेण करती हैं। यही भेद है। हे महेश्वर! आपकी भार्या दाक्षायणी का यह कामरूप नामक महापीठ प्रकल्पित हुआ। अब यदि आपकी अनुमति हो, तब हम यहीं उन परमाप्रकृति का स्तव करके उनका दर्शन प्राप्त करें। उनका आपसे मिलन कराकर हम यथास्थान गमन करें।।१०-१४।।

शिव उवाच

नारदस्तु प्रतिज्ञाय तस्या अन्वेषणाय वै। जगाम तत्कथञ्चाद्य युवां मे दर्शयिष्यथः॥१५॥

तस्य दर्शनपर्य्यन्तमहमत्र तपःपरः। सा सती मे क्वचिद्याता मान्तु प्रप्स्यति तन्मता॥१६॥

शिव कहते हैं—पहले नारद प्रतिज्ञापूर्वक सती के अन्वेषणार्थ जा चुके हैं। अब आप लोग उनका दर्शन कैसे करायेंगे? जब तक मुझे सती का दर्शन नहीं मिल जाता, तब तक मैं यही तपःश्चरण करता रहूंगा। प्रतीत होता है कि सती ने कहीं जन्म लिया है। मैं उसे पुनः प्राप्त करूंगा।।१५-१६।।

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

नारदस्यागमो देव चिरेण सम्भविष्यति। अचिरेणैव लभ्या चेत् कथं चिरमुपेहसे॥१७॥

ब्रह्माविष्णु कहते हैं—हे देव! नारद के वापस आने में अनेक विलम्ब होगा। यदि आपको उनका दर्शन शीघ्र हो जाये, तब इस विषय की उपेक्षा क्यों करते हैं?।।१७।।

शिव उवाच

एवं भवतु तां देवीं स्तोष्यामो भक्तिसंयुताः।

द्रक्ष्याम एव तां देवीं लब्धाऽलब्धास्तु वा तथा॥१८॥

शिव कहते हैं—जो भी हो! आप लोगों की बात स्वीकार कर लेता हूं। उनका दर्शन मिले अथवा न मिले, चलें! सभी भक्ति के साथ उनकी स्तुति करें।।१८।।

ब्रह्मविष्णुशिवा ऊचुः

देवि प्रसीद परमेऽखिल-मूल-रूपे चिद्रूपिणी परमसूक्ष्मतरा सदासि।
न श्रूयसे न च दृशापि च लभ्यसे त्वं न ध्यायसे च परमाणुहृदा नमस्ते॥१९॥
निद्राङ्गतस्य पुरुषस्य तनूरुहेषु गच्छत्पिपीलि-गति-वोध इतीह यश्च।
सैव त्वमात्मनि सुयोग-विविक्त-चित्ते सूक्ष्मातिसूक्ष्म-मतिरेव नमोऽस्तु ते वै॥२०॥
एतादृशं परमसूक्ष्मतरं महेशि ज्ञानं न सम्भवति देवमनुष्यकेषु।
यस्तु प्रशक्यतितरामचलावबोधः सैवासि मुक्तिरपरा प्रणनामि तुभ्यम्॥२१॥
किं सम्भवेत् परमसूक्ष्मकलात्मिकायाः स्तोत्रप्रणाममननानि तवातिसूक्ष्मे।
तत्रापि देवि भवतीं प्रतिलब्धुकामाः स्यामो वयं कृपय देवि परिप्रसीद॥२२॥
त्वं स्वेच्छया सृजसि पासि गुणत्रयार्हान् शेषे च संहरसि नोऽपि जगत् किमन्यत्।
स्थूलासि सूक्ष्मपरमासि महात्मिकासि त्वं निष्कलानवगमासि निषेधशेषा॥२३॥
सानुग्रहात् धृततनूरपि निर्व्विकारा भ्रूभङ्गमात्रकलिताण्डचयासि देवि।
तेन प्रणाममननस्तवनादिकानि कार्य्याणि कुर्म्म इह देवि वरे प्रसीद॥२४॥

ब्रह्मा-विष्णु-शिव कहते हैं—हे देवी! मूलरूपा, चिद्रूपिणी, आप सूक्ष्मा परमा प्रकृति हैं। हम लोगों के प्रति प्रसन्न हो जायें। आपको कोई भी न तो सुन सकता है, न तो देख ही सकता हैं। परमाणुरूपी मन से भी कोई आपका ध्यान नहीं कर सकता। निद्रान्वित पुरुष की रोमाबलि में पिपीलिका (चींटी) के बोध के समान योगरत पुरुष के हृदय में आप सूक्ष्मातिसूक्ष्म बुद्धिरूपा हैं। आपको हम प्रणाम करते हैं। हे महेश्वरी! देवलोक, मनुष्यलोक, में ऐसा परमतत्व ज्ञान किसी को भी नहीं है जो आपका तत्व जान सके। उन मुक्तिरूपा आपको प्रणाम! हे अतिसूक्ष्मा! आप परमसूक्ष्म कलात्मिका हैं। आपका स्तव, प्रणाम, मनन कुछ भी संभावित नहीं है, तथापि हम आपको पाने की कामना करते हैं। हमपर कृपा करके प्रसन्न हो जायें।।१९-२४।।

निर्हेतुभक्तिसुलभे भवदुर्लभा त्वं निर्हेतुभक्तिरपि दुर्घटिता जनेषु।
तस्माच्छरीर्य्यपि शरीर-विबन्ध-हीनो यस्त्वां स्मरेत् स भवतीं समवैति लोके॥२५॥
त्वं ब्रह्मविष्णुशिवदेहकरी च विष्णुराकाश-कालवद-तीन्द्रियकासि मातः।
ब्रह्माण्डकोटिकसमुद्धरलोमकूपा किं क्षुद्रचेतसि जनैः परिचिन्तनीया॥२६॥
दाक्षायणीमपि सतीं सुरुचिं रवीन्दुसाहस्रकोटिरुचिकां परितः स्मरामः।
श्यामासि चन्द्रधवलासि च हेमगौरी रक्तासि चित्तमनुरूपतनुं स्मरामः॥२७॥

आपने अपनी इच्छा से हम त्रिगुणात्मक देवों की सृष्टि तथा पालन किया है। अन्त में आप ही हमारा संहार भी करती हैं। तब जगत् की तो बात क्या हैं? आप स्थूला, सूक्ष्मा, परमा, महात्मिका तथा निषेधरूपा हैं। आपको कोई

जान नहीं सकता। आपने अनुग्रह करके शरीर धारण करके अपनी भ्रूभंङ्गिमा से जगत् का पालन किया है। तभी हम आपका स्तवन, प्रणाम, मनन आदि करते हैं। हे देवी! हम पर प्रसन्न हो जायें। आप तो महेश्वर के लिये भी दुर्लभा हैं। केवल स्वार्थरहित भक्ति से ही आपकी प्राप्ति संभव है। तथापि हे देवी! निःस्वार्थ भक्ति इस लोक में असंभव है। इसलिये जो शरीरधारी होकर भी शरीर बंधन मुक्त (देहात्मबोधरहित) होकर आपकी शरण लेता है, वह आपको प्राप्त कर लेता है। आप ही ब्रह्मा-विष्णु शिवादि की देह की कारण हैं। तथापि आप आकाश तथा काल के समान इन्द्रियों से परे हैं। हे माता! आपके रोमकूपों में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड की सत्ता है। हम ऐसे क्षुद्र व्यक्ति आपके सम्बन्ध में क्या जाने? आप दाक्षायणी सती हैं। आपकी उत्तम कान्ति तथा करोड़ों सूर्य ऐसी तेजराशि का सर्वतोभावेन हम स्मरण करते हैं। आप श्यामवर्णा, चन्द्रमा के समान शुक्ला, स्वर्णवत्, गौराङ्गी हैं। आप अनुरूप आपके शरीर की हम भावना करते हैं।।२५-२७।।

त्वं वै समस्तसकलात्मसु वर्त्तमाना यद्यन्नियोजयसि देवि तदेव सर्व्वे।
कुर्व्वन्ति चाथ खलु ये मम तेऽहमेतत् सम्यक्करोम्युत किलेति शिवासि माया॥२८॥
काली नवीनघनरूपपरार्द्धचन्द्रविभ्राजमानशुभमौलितलामला च।
दुर्गा लसच्चरणपद्मतला भवानी माताम्बिका च सदया सततं प्रसीद॥२९॥
एनं शिवं सकलपूरुषमग्र्यरूपं भीमं त्रिणेत्रमपि सत्वपरं महेशम्।
त्यक्त्वा कथं कृतविभावतरा स्थितासि ह्येनं निरीक्ष्य दयया खलु जीवयास्मान्॥३०॥

हे देवी! आप समस्त में सभी आत्मा में विद्यमान रहती हैं। जिसे जिस रूप से नियुक्त करती हैं, वह वैसा ही कार्य करता है। 'मैं' 'मेरा' रूप जो ममत्व बुद्धि है, वह आपकी ही माया है। हे माता! नव मेघमाला विनिन्दित आपकी मूर्त्ति श्याम है। अथच परार्द्ध चन्द्रमा के समान दीप्तिमती एवं विमल है। आपके चरणद्वय खिले कमल की प्रभा को भी म्लान करने वाले हैं। हे अम्बिके! आप दयायुक्त होकर प्रसन्न हो जायें। ये शिवनामक परमपुरुष उग्ररूप होकर भी सत्वगुणाश्रय हैं। इन त्रिलोचन का त्याग करके आप अपने विभव का संहार करके क्यों स्थित हैं? हे देवी! कृपा करके इन त्रिलोचन के प्रति दृष्टि निक्षेप करके हम सबको जीवनदान करें।।२८-३०।।

शुक उवाच

एंव तान् स्तुवतो देवान् देवी कमललोचना। नारीसहस्त्ररूपेण तेषां सन्दर्शनं ययौ॥३१॥
सर्व्वास्ताश्चारुसर्व्वाङ्ग्यो युवत्योऽतिमनोहराः।
नानाभरणभूषाढ्याः स्मेरोत्फुल्लमुखाम्बुजाः॥३२॥
तास्ते सन्ददृशुर्देवा नानारूपाः सुवाससः।
क्षणे श्यामाः क्षणे शुक्लाः क्षणे रक्ताः क्षणेऽन्यथा॥३३॥
क्षणे विवस्त्रास्तरुणीः क्षणे कानकवाससः। नृत्यन्तीश्च हसन्तीश्च गानवाद्यकराः क्षणे॥३४॥
पुरः पृष्ठे पार्श्वयोश्च ऊर्द्ध्वञ्चाधः क्षणे क्षणे। दृष्ट्वैव तादृशीस्तास्ते चलच्चित्ता महामुने॥३५॥
लेभिरे निर्वृतिं नैव किमाभ्यो ब्रूमहे वयम्। पश्यामो वा दिशङ्काञ्च दिशङ्काञ्चाभिसंस्तुमः॥३६॥

इमा हि सा ध्रुवं देवी स्वरूपं समदर्शयत्। देवी तु तांस्तु व्यामुग्धान् विलोक्य कृपयान्विता॥३७॥
एकीभूता वभौ विप्र सती भिन्नेव निर्म्मिता।

शुकदेव कहते हैं—ब्रह्मादिदेवगण देवगण द्वारा इस प्रकार से स्तव करने पर कमललोचना देवी सहस्रनारीरूपा होकर दृष्टिगोचर हो गयी। वे सभी युवती, मनोहर अंगोवाली, नाना आभरण भूषिता थीं तथा उनका मुख कामदेव के प्रभाव से उत्फुल्ल था। सभी दिव्य वस्त्र धारिणी तथा नानारूप वाली थीं। वे कभी श्यामवर्णा, कभी शुक्लवर्णा, कभी रक्तवर्णा हो रही थीं तथा कभी विवस्त्रा, कभी स्वर्णवस्त्रा तो कभी युवती तो कभी वृद्धा दीखती थीं। वे कभी नृत्य, कभी गायन, कभी वाद्य वादन करती थीं। कभी सामने, कभी पीछे, कभी उर्ध्व में, कभी अधः में विराजित रहती थीं। उनके इस भाव का अवलोकन करके महात्मा ब्रह्मा प्रभृति का चित्त चंचल हो उठा। सभी विचार करने करने लगे। "हम इनसे क्या कहें, किधर देखें, किधर स्तव करें। प्रतीत होता है देवी हमें इस प्रकार अपना स्वरूप प्रदर्शित कर रही हैं।" तब देवी ने इन सबको विमुग्ध देखकर कृपा पूर्वक एक मूर्त्ति धारण किया। मानो सती ही भिन्न प्रकार से निर्मित होकर उनके समक्ष आई हैं।।३१-३७।।

ब्रह्मविष्णुशिवा ऊचुः

एते वयं त्रयो देवाः भवद्दर्शनकाङ्क्षिणः। त्वं सती भव शम्भ्वर्थे सदया पूर्ववद्भव॥३८॥

ब्रह्मा-विष्णु-शिव कहते हैं—देवी! आप तो वे ही सती हैं। ये शंभु आपके ही हैं। अब दया करके पूर्व भाव ग्रहण करें।।३८।।

देव्युवाच

युष्माकं विहितात् स्तोत्रात्तुष्टाहं दर्शनं गता। त्यक्तदेहा कथं शम्भुमशरीरा ह्युपाश्रये॥३९॥
एवञ्चेद् भवतोऽभीष्टं विष्णोश्च ब्रह्मणस्तथा। तत्कथं मे वपुश्छिन्नं त्रैलोक्यापायकातराः॥४०॥
तच्चेद्वपूरक्षितं स्यात्तदा तत्र पुनर्गता। प्राप्ता शिवं स्यान्देवेशास्तद् युष्माभिर्विनाशितम्॥४१॥
यावद्दक्षे कुधीः सम्यक् विनष्टा न भवेदपि। अहन्तावद्वपुस्त्यक्त्वा तिष्ठाम्यन्यत्र सङ्गता॥४२॥
शुभां मतिं गते दक्षे पुनस्तद्वपुरास्थिता। शिवमेव भजिष्यामीत्येवं मे मनसि स्थितम्॥४३॥
शिवो मां परमानन्दपूर्णः सन् शिरसाकरोत्। तेनैवासन्नजीवाहं युष्माभिः प्रतिबाधिता॥४४॥

देवी कहती हैं—आप सबके स्तव से प्रसन्न होकर मैंने दर्शन दे दिया। तथापि मैंने देहत्याग किया था, अब अशरीरी होकर कैसे शम्भु का आश्रय ले सकूंगी? यदि आपकी यही अभिलाषा थी, तब आपने त्रैलोक्य के उपाय हेतु मेरा शरीर क्यों विच्छिन्न किया। यदि वह शरीर रक्षित रहता, तब मैं पुनः वही शरीर ग्रहण करके शम्भुदेव का आश्रय ले सकती थी। तथापि हे देवश्रेष्ठगण! आपने उस देह को नष्ट कर दिया। जो भी हो मैंने यह निश्चय किया था कि जब तक दक्ष की कुबुद्धि नष्ट नहीं होती, तब तक मैं अशरीरी स्थिति में अन्यत्र रहूंगी। तदनन्तर दक्ष में सुमति उत्पन्न होते ही पुनः अपना शरीर ग्रहण करके शम्भु का आश्रय लूंगी। जब तक शंभु ने परमानन्द में मुझे मस्तक पर रखा, तभी मेरा देह प्राणयुक्त हो रहा था लेकिन आप लोगों द्वारा उसे प्रतिहत किया गया।।३९-४४।।

किन्तु शम्भुशिरश्चैको वासो मम तदाभवत्। तच्च सम्पत्स्यते पश्चात् सम्भविष्याम्यहं यदा॥४५॥
यूयन्तु मम वै देवा यद्वाञ्छितविरोधकाः। बभूव तेन वै ब्रह्मा मुहुर्मृत्युवशं व्रजेत्॥४६॥

विष्णुर्निद्रावशं गच्छेत् मासान् वै चतुरोऽब्दिकान्। ब्रह्मा चतुर्युगदिने गते निद्रास्यते तथा॥४७॥
प्रलयानन्तरां सृष्टिं करोत्वेष पुनः पुनः। सुरा विपन्ना भूयासुः सम्पत्तियाचका अपि॥४८॥
एवं श्रुत्वा विमनसौ बभूवतु रतीव तौ। ब्रह्मविष्णुमहात्मानौ प्रोचतुः प्राञ्जलिस्थितौ॥४९॥

आवां कृतागसौ देवि त्वया शप्तौ निजेच्छया।
कथमेष शिवो नाम नास्मत्तो भिद्यते क्वचित्।
शापेऽवशिष्यसे देवि वयं ते सर्व्वतः समाः॥५०॥

जहां शंभु के मस्तक पर मेरा वास था, पुनः जन्म ग्रहण लेने पर वहीं मेरा निवास होगा। हे देवगण! आप सबने अभिलषित विषय के प्रतिकूल आचरण किया है, अतः ब्रह्मा पुनः-पुनः मृत्युवश में होंगे। विष्णु ४ मास प्रतिवर्ष निद्रित होंगे। इस प्रकार चतुर्युग के पश्चात् ब्रह्मा भी निद्रित रहेंगे। तदनन्तर प्रलय के पश्चात् पुनः सृष्टि करेंगे। अन्य देवता सम्पत्ति कामना करने पर भी विपन्न रहेंगे। इस प्रकार देवी का वाक्य सुनकर अमित तेजस्वी देवता भी विमना हो गये। तब ब्रह्मा एवं विष्णु अंजलिबद्धावस्था में कहने लगे "हे देवी! हमने अपराध किया है, उसके लिये आपने शाप प्रदान किया, तथापि शंभु हमसे किसी भी प्रकार से भिन्न नहीं हैं। तब वे किसलिये बचे हैं (शाप नहीं पाये) आपके समक्ष हम सभी तो समान हैं!।।४५-५०।।

शुक उवाच

इत्युक्ता सा तदा देवी प्रतिवाक्येन चारुणा। स्फूरत् स्मितमुखाम्भोजा जगाद मधुराक्षरम्॥५१॥

देव्युवाच

एवमेव महेशोऽयं शापमर्हति नान्यथा। प्रेतभूमिप्रियोऽस्त्वेष दरिद्रो धनवानपि॥५२॥
युवाभ्याञ्च वरानिष्टान् ददामि स्तवतोषिता। ब्रह्मन् प्रजापतिर्भूया वर्णानां जनकोऽपि च॥५३॥
ब्राह्मणास्ते प्रजा ज्येष्ठा भवन्तु शुचयः सदा। पृथिवीधारकाः शास्त्रचक्षुषः क्षमिणः सदा॥५४॥
देवैरपि समाराध्या धर्म्मपूर्णां महाप्रभाः। सर्व्वेषामेव देवानां मुखानि तीर्थपादकाः॥५५॥
त्वञ्च विष्णो भव श्रीमान् देवैः सर्व्वैरभिष्टुतः। सत्वस्वरूपी भगवान् सर्व्वभूतसमः सुहृत्॥५६॥
विष्णुस्त्वं व्यापकत्वाच्च महाशक्तिः सनातनः। अजरश्चामरः सत्यः सद्यशा विश्वरूपवान्॥५७॥
त्वं नानावतारान् कृत्वा प्रजाः संपालयिष्यसि। मन्वन्तरेषु सर्व्वेषु ह्यवतारान् करिष्यसि॥५८॥
यदा यदा हि धर्म्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः। तदा त्वमवतीर्णः स्या धर्म्मबृद्ध्यै अधर्म्ममुद्॥५९॥

शुक कहते हैं—उनका वाक्य सुनकर देवी ने मृदुहास्य के साथ कहा—"यह सत्य है कि शंभु को भी शापित करना उचित है। अतः वे प्रेतभूमि (श्मशान) प्रिय तथा धनवान् होकर भी दरिद्र रहेंगे। हे ब्रह्मा! आपके स्तव से मैं प्रसन्न हूं। अतः वर देती हूं, आप समस्त वर्णों की सृष्टि करके प्रजापति होंगे। आप जिस प्रजा की सृष्टि करेंगे वह पवित्र-क्षमावान्-शास्त्रज्ञ तथा पृथिवी रक्षक होगी। वह महाप्रभावशाली, धर्मज्ञ, तथा देवगण से भी स्तुत होगी। वे सभी देवगण के मुखरूप होंगे। उनके चरणों में सभी तीर्थों का निवास होगा। हे विष्णु! आप श्रीमान् तथा सर्वदेववन्दित होंगे। आप सर्वभूत समूह के समानरूपेण सुहृद, सहस्ररूपी, भगवान् तथा सर्वव्यापक विष्णु होंगे। समस्त महाशक्तियां

आपके अधीन होगी। आप सनातन-अजर-अमर-सत्य-सद्यश युक्त-विष्णु रूपी होंगे। आप नाना अवतार लेकर प्रजापालन करेंगे। आपका अवतार प्रत्येक मन्वन्तर में होगा। जब भी धर्म की हानि तथा पापवृद्धि होगी, तब आप अधर्मनाश एवं धर्मबुद्धि के लिये अवतार लेंगे।।५१-५९।।

वर्णाश्रमाणामाचारान् बहून् धर्म्मान् प्रवर्त्तयेः। अहञ्च त्वानुयास्यामि श्रीरित्यंशेन धर्म्मिणी॥६०॥
यत्र यत्रावतारास्ते तत्र श्रीरवतारिणी। आदौ कृते युगे देव ब्रह्मचारी भविष्यसि॥६१॥

आपके द्वारा अनेक वर्णाश्रम धर्म प्रवर्तित होगा। मैं लक्ष्मी रूप से अंशावतार लेकर पत्नीभावेन आपका आश्रय ग्रहण करूंगी। आप जो-जो अवतार लेंगे, उनमें मैं भी लक्ष्मीरूपेण अवतीर्ण रहूंगी। हे देव! आप आदि कृतयुग में ब्रह्मचारी होंगे।।६०-६१।।

द्वितीये नारदो भूत्वा बहूंस्तन्त्रान् करिष्यसि। वराहमूर्त्त्या पृथिवीमुद्धरिष्यसि लीलया॥६२॥
हिरण्यनयनं नाम तदर्थे संबधिष्यसि। ततो भूयस्तपःकर्त्ता नरो नारायणस्तथा॥६३॥
ततश्च कपिलो भूत्वा सांख्ययोगं वदिष्यसि। भविष्यसि ततः षष्ठ आत्रेयो दत्तनामकः॥६४॥
ततो रुचेः सूतो हूत्यां यज्ञाख्यः संभविष्यसि। ततः प्रैयव्रते वंशे ऋषभाख्यो भविष्यसि॥६५॥
ततो राजा पृथुर्भूत्वा पुरादीन् कल्पयिष्यसि। दशमः शफरो भूत्वा वेदान्समुद्धरिष्यसि॥६६॥

द्वितीय अवतार में नारद रूपेण अनेक तंत्रों का प्रवर्त्तन करेंगे। तत्पश्चात् वराहरूपी होकर लीला में ही पृथिवी का उद्धार कार्य तथा हिरण्याक्ष वध करेंगे। तदनन्तर पुनः नर-नारायण रूप अवतार लेकर तपःश्चरण करेंगे। तदनन्तर कपिलरूपेण जगत् में सांख्ययोग का विस्तार आपके द्वारा होगा। तदनन्तर दत्तात्रेय नामक षष्ठावतार ग्रहण करेंगे। तदनन्तर प्रजापति रुचि के औरस से तथा हुति के गर्भ से यज्ञावतार ग्रहण करेंगे। तदनन्तर प्रियव्रत वंश में ऋषभ-देव रूप से आपका अवतार होगा। तदनन्तर महाराज पृथु के रूप में अवतीर्ण होकर ग्राम-नगरादि व्यवस्थापन करेंगे। दशम अवतार में शफरी रूप से अवतीर्ण होकर देवगण का तथा वेदों का रक्षण करेंगे। (शफरी मत्स्यावतार)।।६२-६६।।

(मन्थानं मन्दरं शैलं कूर्म्मः पृष्ठे भविष्यसि। तेन देवासुरैरब्धिं मथित्वामृतमाहरेः॥६७॥
धन्वन्तरिस्ततो भूय आयूर्व्वेदप्रवर्त्तकः। नरसिंहस्ततो भूत्वा दैत्यराजं वधिष्यसि॥६८॥
रावणं कुम्भकर्णञ्च रामो भूत्वा हनिष्यसि। ततश्च वामनो भूत्वा राज्यमाच्छिद्य वै बलेः॥६९॥
दास्यसीन्द्राय देवाय ततो गङ्गा प्रवर्त्स्यति। भूत्वाथ भार्गवो रामो निःक्षत्रां क्ष्मां करिष्यसि॥७०॥
भूत्वा महर्षिर्वाल्मीकिर्महाकाव्यं करिष्यसि। भूत्वा पाराशरिर्व्यासः पुराणादि करिष्यसि॥७१॥

तदनन्तर कूर्मावतार लेकर मन्थनदण्डरूप मन्दराचल को पीठ पर धारण करेंगे। इससे समुद्रमंथन द्वारा देवगण को अमृत मिलेगा। तदनन्तर आप धन्वन्तरी रूपेण आयुर्वेद प्रकाशित करेंगे। तदनन्तर नरसिंह रूपेण हिरण्यकशिपु का विनाश करेंगे। तदनन्तर रामरूपी अवतार लेकर रावण तथा कुम्भकर्ण का अन्त करेंगे। तत्पश्चात् वामनरूपी होकर छल से बलिराज्य का हरण करके इन्द्र को त्रैलोक्य राज प्रदान करेंगे। तदनन्तर भृगुराम रूप से जन्म लेकर पृथिवी को क्षत्रिय रहित करेंगे। तत्पश्चात् वाल्मीकि रूपेण महाकाव्य विस्तार करेंगे। तत्पश्चात् पराशरपुत्र व्यासरूपेण पुराणादि प्रवर्तित करेंगे।।६७-७१।।

ततो लोकविमोहाय बुद्धस्त्वं हि भविष्यसि। पृथ्वीं तदा धर्म्मद्वेषि भावपीड़ायुतां स्वयम्॥७२॥
विलोक्य धरणीखण्डे कृष्णरामौ भविष्यसि। वसुदेवात्तु देवक्यां जन्मनी सप्तमाष्टमे॥७३॥
गोकुले गोपवृन्दानामीश्वरौ त्वं भविष्यसि। विहिंसितुं तदा कंसं प्रागेव पूतनादिकान्॥७४॥
हत्वा गत्वा च मथुरां कंसं शत्रुं हनिष्यसि। इन्द्रयागं विखण्ड्यैव धर्त्ता गोवर्द्धनं पुरः॥७५॥
सर्व्वासां गोपरामाणां युवतीनां महोत्सवः। शृङ्गाररसमिच्छूनां पूरयेस्त्वं मनोरथम्॥७६॥
तदा मे प्रीतिरधिका त्वदर्थे संभविष्यति। तत्तु ते पुण्यदं कर्म्म लोक गेयं भविष्यति॥७७॥
जरासन्धवलं हत्वा भीतस्त्वं यवनात् परम्। समुद्रे द्वारकानाम्नीं पुरीं पुण्यां करिष्यसि॥७८॥
च्छलेन यवनं हत्वा मुचुकुन्दवरप्रदः। षोड़शस्त्रीसहस्त्रस्य अष्टोत्तरशतस्य च॥७९॥
पतिर्भूत्वा तथा मूर्त्तीः कृत्वा तत्र सुखी भवेः। पुत्रपौत्रादिकां गौष्ठीं कृत्वागे हीभविष्यसि॥८०॥
तेनैव तु गृहस्थानामाश्रमज्ञानदो भवेः। जरासन्धबधञ्चैब शिशुपालवधन्तथा॥८१॥
शौभं शाल्वं निहत्यापि दन्तवक्रं हनिष्यसि। ततोऽर्ज्जुनस्य कौन्तेय-पाण्डवस्य नरस्य च॥८२॥

सम्भूय सारथिः श्रीमान् हन्ता दुर्य्योधनादिकान्।
कृष्णार्ज्जुनौ नामतो वै नरनारायणौ युवाम्॥८३॥

भूत्वा भारं भुवो हत्वा पृथ्वीं संसुखयिष्यसि। युधिष्ठिरं धर्म्मपुत्रं साक्षाद्धर्म्ममिवापरम्॥८४॥
धर्म्मसिंहासने भूपं स्थापयित्वा पुरीं ब्रजेः। ततस्तु ब्रह्मशापेन च्छलेन स्वकुलात्मकम्॥८५॥

तदनन्तर बुद्धावतार लेकर लोक को मोहित करेंगे। तदनन्तर समस्त पृथिवी को धर्मद्वेषियों से भरा देखकर वसुदेव के औरस से तथा देवकी के अष्टमगर्भ तथा सप्तम गर्भ से कृष्ण-बलराम रूप से जन्म लेंगे। वे गोकुल में गोपवृन्द के अधीश्वर होंगे। तब कंस का नाश करने हेतु प्रथमतः पूतनादि उसके अनुचरों का वध करके मथुरा जाकर दुष्ट शत्रु कंस का नाश करेंगे। तब कृष्ण इन्द्र यागविहीन अर्चना करके गोवर्द्धनधारी होकर गोपों तथा गोपीगण की रक्षा करेंगे। कामाभिलाषिनी गोपियों का महोत्सव में मनोरथ भी पूर्ण करेंगे। इस समय मेरे प्रति आपकी अधिक प्रीति होगी। तदनन्तर जरासन्ध का समस्त बल नाश करके यवनों के भय से समुद्र मध्य में द्वारिका नामक पुण्यापुरी का निर्माण करके छल द्वारा यवनों का विनाश करके राजा मुचकुन्द को वरदान देंगे। आप इस अवतार में १६१०८ रानियों के पति होकर स्वयं भी इतनी ही मूर्त्ति धारण करके सुख से कालयापन करेंगे। आप पुत्र-पौत्रादि गोष्ठी के साथ गृही होकर गृहस्थों को आश्रम धर्मोपदेश प्रदान करेंगे। आप जरासन्ध, शिशुपाल, सौभ, शाल्भ, दन्तवक्त्र आदि का वध करके पाण्डुपुत्र अर्जुन के सारथि बनकर दुर्योधनादि धर्मद्वेषी गण का ध्वंस करेंगे। आप साक्षात् नर-नारायण ही अर्जुन-कृष्णरूप से पृथिवी का महान् भार हरण करके सुख तथा स्वच्छन्दता की वृद्धि करेंगे तथा साक्षात् धर्मस्वरूप धर्मपुत्र युधिष्ठिर को धर्मसिंहासनासीन करके द्वारिका पुरी जायेंगे। तदनन्तर ब्रह्मशाप के बहाने अपने कुल का भार हरण करके वैकुण्ठपुरी प्रयाण करेंगे।।७२-८५।।

हरिष्यसि धराभारं वैकुण्ठञ्च गमिष्यसि। वैकुण्ठाख्यं तव स्थानं पश्य सङ्कल्पितं मया।
नामानि तव गास्यन्ति पुण्यानि परमानि च॥८६॥

वैकुण्ठ स्थान आपके ही लिये कल्पित है। आपके पुण्यप्रद नामों का गायन लोग इस प्रकार करेंगे।।८६।।

नारायनाच्युत हरे मधुकैटभारे गोविन्द केशव भयापह पूतनारे।
गोपीजनप्रिय वकान्तक नन्दसूनो चानूरमुष्टिकविनाशक कंसशत्रो॥८७॥
श्रीदेवकीतनय गोपपते मुरारे गोपालपालक धराधरराजधारिन्।
श्रीनाथनाथ गजराजविपत्तिमोचिन् कंसालये कुवलयेभशिरोविदारिन्॥८८॥
दामोदर त्रिपदविक्रमलङ्घितार्क चन्द्रादिमण्डलविखण्डयशः प्रसीद।
भूभारहारक नवाम्बुदसान्द्रमूर्त्ते भूदेव देव वसुधोद्धरणाव्ययात्मन्॥८९॥
लोकेश गोद्विजसुरार्त्तिहरावतार भीमानुजातरथसारथिभूत पाहि।
देवप्रलम्बबधकाघविनाशकारिन् सारिष्टधेनुकविनाशपवित्रनामन्॥९०॥
विष्णो मुकुन्दपुरुषोत्तमपद्मनाभवैकुण्ठ वामन जनार्दन वासुदेव।
रामानुजात मथुरेश्वर रौहिणेय व्यामोहनाशन नवाम्बुजनेत्र पाहि॥९१॥
गोपीपते व्रजपते यमुनाविहारिन् वृन्दावनेश्वर गदाधर यादवेन्द्र।
वार्ष्णेयसात्वतपते जयसत्यभामा सूर्य्यात्मजाधर सुधाकर माधवेश॥९२॥
श्रीरुक्मिणीधव माधव कौस्तुभाभा शोभाढ्यशाङ्गकर कामकलारसज्ञ।
नागेन्द्रमर्दन भयार्दनयज्ञभोक्तः श्रीमन्नृसिंहहरभक्तहरैकभक्त॥९३॥
भक्तैकवश्य रघुवीर मनो महर्षे राजाधिराज जयजीवनरूप कृष्ण।
पाद्मांशषोड़शसहस्त्रशताष्टभार्य्या तत्पुत्रपौत्रसमुपार्जितवंशगेहिन्॥९४॥
प्रद्युम्नदेव अनिरुद्ध सदानिरुद्ध सङ्कर्षणाभयदशान्तिकरप्रसीद।
इत्यादि खलु नामानि तव गास्यन्ति नित्यशः।
पाताले शेषशय्यायां लक्ष्मीसंसेवितः स्वराट्॥९५॥
शिवो ब्रह्मा तथा त्वञ्च न भिन्ना वै कदाचन।
मन्मयाः खलु यूयं यत्तस्माद्भिन्ना न वोऽप्यहम्॥९६॥

नारायण, अच्युत, हरि, मधुकैटभहन्ता, गोविन्द, केशव, भयहारी, पूतनाशत्रु, गोपीजन प्रिय, बकासुर नाशक, नन्दपुत्र, चाणूर-मुष्टिक विनाशक, कंसशत्रु, देवकीपुत्र, गोपपति, मुरारी, गोपालपालक, धराधरराज धारिन्, श्रीनाथ, अनाथ नाथ, गजेन्द्र विपत्तिनाशक, कंसगृह में कुवलयहस्ति का शिर फाड़ने वाले, दामोदर, तीनपाद में सूर्य चन्द्रादि ग्रहों को नापने वाले, अखण्ड सुयशधारी, आप प्रसन्न हो जायें। हे भूभारहारी, नवाम्बुदसान्द्रमूर्त्ति, भूदेव देव, अव्यय, वसुन्धरा उद्धारक, लोकनाथ, गो-ब्राह्मण क्षितिदुःखहारी, अर्जुनसारथी, कृष्णरूपी अवतार लेने वाले हे देव! आपने बकासुर तथा प्रलम्बासुर का वध किया। अरिष्टनेमि तथा धेनुक दैत्य का वध करके देवगण को शंकारहित किया। हे मुकुन्द, पुरुषोत्तम, आप पद्मनाभ विष्णु हैं। हे वैकुण्ठ, वामन, जनार्दन, वासुदेव, मथुरानगरेश्वर, रामानुज, रौहिणेय, सुन्दर नयन कमल से मोहित करने वाले, गोपीपति, वज्रपति, यमुनातट पर विचरण शील आप

वृन्दावनेश्वर यादवेन्द्र, गदाधारी हैं। आप सत्यभामा तथा सूर्यात्मजा यमुनाधर एवं सुधाकर हैं। आप वृष्णिवंश में जन्मे सात्वतगण के स्वामी है। आप माधव, रुक्मिणीधर तथा कौस्तुभ को वक्ष पर धारण करने वाले हैं। आपके हाथों में शार्ङ्गधनुष शोभित है। आप कामकला चतुर, हरि, यज्ञभोक्ता, नागेन्द्रभय का मर्दन करने वाले, श्रीनृसिंह, भक्तभयहारी, भक्तरंजन हैं। आप महर्षिमनरंजन तथा दशरथात्मज हैं। आप राजाधिराज तथा जीवनरूप कृष्ण हैं। आप की जय हो। आपकी १६१०८ भार्या हैं। आप पुत्र-पौत्रयुक्त गृही हैं। हे केशव! आप प्रद्युम्न-अनिरुद्ध-संकर्षण रूपधारी है। हे नाथ! आप शान्तिप्रद तथा अभयप्रद हो जायें। आपके इन नामों का लोग नित्य गायन करते हैं। आप पातालपुरी में शेष शय्या पर शायित रहते हैं तथा आपकी सेवा लक्ष्मी करती हैं। शिव, ब्रह्मा तथा आपमें कोई भेद ही नहीं है। क्योंकि आप तीनों मेरे ही स्वरूप हैं। अतः कोई भिन्नता नहीं है।।८७-९६।।

अभिन्नानाञ्च भेदार्थी नारकी परमो मतः। अहन्तु भवतां सर्व्वकार्य्येषु खलु संस्मृता।।९७।।
अभीष्टं साधयिष्यामि युष्माकमित्यसंशयम्। अहञ्च गोपनीया वो नारीणां योनिरूपिणी।।९८।।
सर्व्वासु खलु नारीषु ममाधिष्ठानमुत्तमम्। कुमारीषु च सर्व्वासु युवतीषु विशेषतः।।९९।।

आसां योनिं स्तनं दृष्ट्वा प्रणमेन्मामनुस्मरन्।
कटुवाक्यं तथा पीड़ां पुष्पेणापि च योषिति।।१००।।
शाक्तो वा वैष्णवः शैवो न कदापि समाचरेत्।
स्त्रीषु पीड़ादिकर्त्ता हि देवान् वैमुख्यमाचरेत्।।१०१।।

अहं माता हि जगतां सर्व्वासु स्त्रीष्वधिष्ठिता। मम तन्त्रांश्च मन्त्रांश्च शिवो वक्ष्यति नापरः।।१०२।।

आप लोगों में जो भेदबुद्धि रखता है, वह नारकी प्राणी है। आपको चाहिये कि मेरा स्मरण करके अपने कार्यों को सम्पन्न करें। मैं निश्चय ही आप लोगों की इच्छा पूर्ति करूंगी। मैं नारियों में योग रूपा हूं। आप लोगों के पास गोपनीया हूं। सभी नारियों में मेरा अधिष्ठान है। विशेषतः कुमारी तथा युवती के हृदय में मैं सदा निवास करती हूं। इनकी योनि किंवा स्तन परिलक्षित होने पर मेरा स्मरण करके प्रणाम करे। शाक्त, शैव, वैष्णव कोई भी स्त्री के प्रति कटुवाक्य न बोले, उनको कोई कष्ट प्रदान न करें। पुष्प द्वारा भी इन पर आघात न करे। जो व्यक्ति स्त्रियों को पीड़ित करता है, देवगण उससे विमुख हो जाते हैं। मैं सर्वजग की माता स्त्रीगण के हृदय में निवास करती हूं। मेरे तंत्र तथा मंत्रों का जगत् में शिव ही प्रकाशन करेंगे। अन्य कोई नहीं करेगा।।९७-१०२।।

अहं त्यक्तशरीरैव क्वापि लब्ध्वा जनुः परम्।
द्विधा भूत्वा शिवं प्राप्स्ये चिन्तितव्यो न संशयः।।१०३।।
यूयं परस्परं कार्य्ये सहायाः कुरुत क्रियाः।
मया निरीक्षिताः सर्व्वे शक्तिमन्तो न चान्यथा।।१०४।।

इस समय मैंने शरीर त्याग किया है। तदनन्तर किसी स्थान में द्विधाभूत होकर जन्म लेने के उपरान्त महादेव का आश्रय ग्रहण करूंगी। इसमें संशय नहीं हैं। आप पारस्परिक सहयोग द्वारा कार्य करें। मेरी कृपादृष्टि से आप सबको शान्ति प्राप्त होगी। यह अन्यथा वचन नहीं है।।१०३-१०४।।

शुक उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी ब्रह्मविष्णू ततो गतौ। शिवश्च नारदापेक्षी कामरूपे तपःस्थितः।।१०५।।

सती च त्यक्तदेहा सा द्विधा भूत्वा हिमालयम्। जगाम मेनकागर्भेऽभवत् कन्याद्वयं द्विज॥१०६॥
सत्यामृतां तनुं शम्भुः शिरसा विदधे यदा। तदैव शम्भुमौलौ सा वासं प्राप सती शुभा॥१०७॥
तदर्थं शिरसि स्यातुं शम्भोः किल सती शुभा। गङ्गा बभूव मेनायां उमा तस्याः स्वसानुजा।
तत्रादौ जन्मकर्म्माणि गङ्गायाः शृणु कथ्यते॥१०८॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे सतीब्रह्मादिसंवादनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः।।



शुक कहते हैं—देवी यह कहकर अन्तर्ध्यान हो गयीं। ब्रह्मा-विष्णु ने स्वस्थान गमन किया। महेश्वर नारद की प्रतीक्षा करते वहीं कामरूप में तपःश्चरण करने लगे। तदनन्तर हिमालय के गृह में मेनका के गर्भ से सती दो रूपों में उत्पन्न हुयीं। जब सती के शव को शम्भु ने मस्तक पर धारण किया था, तब सती ने अपना वासस्थान शंकर के मस्तक पर भी कल्पित किया था। अब वे शिव मस्तक पर अवस्थिति हेतु मेनका के गर्भ से गंगारूपेण उत्पन्न हो गयीं। उनकी छोटी बहन के रूप में उमा ने जन्म लिया। अब मैं गंगा का जन्म कर्मादि कहता हूं। श्रवण करें।।१०५-१०८।।

।।एकचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

गङ्गोत्पत्तिवर्णन

शुक उवाच

या मेना तु मनोरमा सुरगिरेः कन्या ततः सम्भवा
गङ्गा स्वर्गपुरं गता सुरगणैर्नीता च भाण्डे विधेः।
तत्रैवाप पतिं शिवं हरितनुं याता द्रवीकारितां
सा विष्णोश्चरणाद्भगीरथवशात् त्रैलोक्यगा स्वर्धुनी॥१॥

सती देहं परित्यज्य दक्षयज्ञे महामुने। पुनः सा जन्मने शैलं ययौ देवी हिमालयम्॥२॥
पुत्री सुमेरोः सुभगा मेना नाम मनोरमा। तस्या गर्भे जनुर्लेभे सती गङ्गेति योच्यते॥३॥
वैशाखे मासि शुक्लायां तृतीयायां दिनार्द्धके। बभूव देवी सा गङ्गा शुक्ला सत्ययुगाकृतिः॥४॥
सुतायां तत्र जातायां शैलराजो हिमालयः। बभूव परमप्रीतो मङ्गलञ्चाकरोद्बहु॥५॥
दिने दिने च सा कन्या ववृधे गिरिवेश्मनि। त्रिनेत्रा शुक्लवर्णा सा चतुर्ब्बाहुः सुलोचना॥६॥
एवम्भूताञ्च तां दृष्ट्वा सर्व्वे मुमुदिरे द्विज। तत्र शैलाधिराजस्य ववर्द्ध स्नेह उत्तमः॥७॥

तस्यां सुतायां चार्व्वङ्ग्यां कोटिचन्द्रसमत्विषि। स्फुरद्वागिव सा जाता गते मासचतुष्टये।
अथ देवालये देवानभ्यभाषत नारदः॥८॥

शुक कहते हैं—सुमेरु कन्या मेनका गर्भ से गंगा का जन्म हुआ। तदनन्तर वे ब्रह्मा के कमण्डलु में अदृश्यरूपेण स्थित होकर सुरगण द्वारा स्वर्ग ले जायीं गयीं। तत्पश्चात् साक्षात् नारायणमूर्त्ति शंकर की पत्नी होकर कुछ काल के उपरान्त भगीरथ की तपस्या के कारण द्रवमयी होकर विष्णु के चरणों से भूतल पर अवतीर्ण हो गयीं। हे महामुने! पूर्व में दक्षयज्ञ में सती ने देह विसर्जित करके सुमेरु कन्या हिमालयपत्नी भाग्यवती मेनका के गर्भ से वैशाख मास की शुक्लातृतीय के दिन मध्याह्न काल में साक्षात् सत्ययुग की मूर्त्तिरूपा शुक्लवर्णा गंगारूप में वे प्रादुर्भूत हो गयीं। तब शैलराज परम आनन्दित होकर नाना उत्सव मनाने लगे। तदनन्तर त्रिनेत्रा शुक्लवर्णा चतुर्भुजा सुलोचना गंगादेवी दिनों-दिन शशिकला की तरह वर्द्धित होने लगीं। समस्त द्विजगण उनके दर्शन से आनन्दित हो गये तथा उन करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रभायुक्त परम लावण्यवती पुत्री गंगा के प्रति शैलराज का वात्सल्य वर्द्धित होने लगा। तदनन्तर चार मास व्यतीत होने पर गंगादेवी की वाक्शक्ति स्फूर्त्त हो गयीं। एक दिन देवर्षि नारद स्वर्ग में देवगण से कहने लगे।।१-८।।

नारद उवाच

देवा ब्रह्मादयः सर्व्वे शृणुतेदं मयेरितम्। त्यक्तदेहा सती जाता हिमालयगृहे सुता॥९॥
इयमेवाभवद्गङ्गा भागार्द्धेन महाप्रभा। भागार्द्धमपरञ्चापि तत्रैवोमा भविष्यति।
साम्प्रतन्तु वंय गङ्गां भुवि द्रक्ष्यामहे वयम्॥१०॥

नारद कहते हैं—हे ब्रह्मा आदि देवगण! मेरा कथन सुनें। सती ने देह त्याग करके सम्प्रति हिमालय के यहां अर्द्धांश से गंगारूप में जन्म लिया है। वे अपने अन्य अर्द्धांश से वहीं उमारूपेण आविर्भूता होंगी। चलिये! हम सब वहां जाकर उनका दर्शन करें।।९-१०।।

देवा ऊचुः

अहो नारद किं सत्यं प्राप्तदेहा सती पुनः। वद गत्वा शिवं शीघ्रं सतीविरहदुःखिनम्॥११॥

देवगण कहते हैं—हे नारद! यह आनन्द का विषय है। क्या सती ने वास्तव में पुनः देहधारण किया है? अतः शीघ्र चलकर सती विरह विधुर भगवान् शिव से यह समाचार कहा जाये।।११।।

नारद उवाच

अहो यूयं न जानीध्वमविचार्य्य वचो हि वः। मया यदुच्यते वाक्यं तद्विचारयताखिलम्॥१२॥
यदा शम्भुः सतीं धृत्वा शिरसा संननर्त्त ह। तदा तस्य महानृत्यसुखं युष्मद्विनाशितम्।
तेनानन्दविरोधेन शिवो वोऽद्यापि दुःखितः॥१३॥
अतः शिवस्य सन्तुष्टयै शिवाय गिरिजां सतीम्। वयमेव हि दास्यामः समानीतामिहैव हि॥१४॥
अत आदौ गिरिसुतां गङ्गामानयतामराः। पश्चाच्छिवो ज्ञापनीयो लब्धा दाक्षायणीति वै॥१५॥

नारद कहते हैं—हे देवगण! आपका विचार सम्यक् नहीं है। आपने उचित विवेचना नहीं किया हैं। मैं जो

कहता हूं, उसका विचार करें। जब भगवान् शंभु ने सती देह मस्तक पर धारण करके नृत्य किया था, तब आप लोगों ने ही उनको इस नृत्य सुख से वंचित किया था। तभी से वे आप लोगों के प्रति निरतिशय दुःखित हैं। अतः मेरे विचार से हम लोग गिरिजा सती को स्वर्ग लाकर तब शंकर के संतोष हेतु उन्हें गिरिजा समर्पित करें। हे अमरगण! पहले आप लोग गिरिकन्या गंगा को लाईये। तदनन्तर हम दाक्षायणी को प्राप्त करेंगे।।१२-१५।।

देवा ऊचुः

कथं शैलो महाभागो देवीं त्यक्ष्यति नः सुरान्। कथं वा तं परित्यज्य दिवं देव्यागमिष्यति॥१६॥
सा देवी भक्तिसुलभा भक्तिमांश्च हिमालयः। आगमिष्यति किं देवी तस्मादस्माकमालयम्॥१७॥

देवगण कहते हैं—तथापि महाभाग शैलराज देवीगंगा को हमारे पास क्यों भेजेंगे? तथा देवी भी कैसे शैलराज का त्याग करके आयेंगी? वे देवी भक्ति के अधीन हैं। हिमालय भी उनके प्रति परम भक्तिमान् हैं। अतः वे हिमालय का गृह त्यागकर हमारे साथ क्यों आयेंगी?।।१६-१७।।

नारद उवाच

यूयं देवा महात्मानो दातारं तं हिमालयम्। याचध्वं स हि वो दाता गङ्गां दास्यति नान्यथा।
गङ्गा च संस्तुता स्वर्गं युष्माकमागमिष्यति॥१८॥

नारद कहते हैं—हे देवगण! आप सब महात्मा हैं। गिरिराज हिमालय भी परमदाता हैं। अतः आप लोगों द्वारा प्रार्थित होने से वे गंगादेवी को अवश्य प्रदान करेंगे तथा आपलोग गंगा देवी की स्तुति करके उनको निःसंदेह स्वर्गपुरी ला सकते हैं।।१८।।

शुक उवाच

इत्युक्त्वा नारदेनैते देवा ब्रह्मादयोऽखिलाः। एवमेवेति निश्चित्य तथा कर्त्तुं समुद्यताः॥१९॥
ब्रह्मा इन्द्रः कुवेरश्च वरुणश्च यमस्तथा। हिमालयगृहं गन्तुं मतिं चक्रुस्त्वरान्विताः॥२०॥
गङ्गा चात्मानममलां हिमालयमदर्शयत्। स्वप्ने ददर्श तां शैलश्चारुरूपां चतुर्भुजाम्॥२१॥
शुक्लां त्रिणयनां देवीं मकरासनसंस्थिताम्। चतुर्भुजा वरं पद्ममभयं चामृतं तथा॥२२॥
दधानां युवतीं चारु सर्व्वाङ्गीं सस्मिताननाम्। नानाभरणभूषाढ्यां प्रणतां सर्व्वदैवतैः॥२३॥
भासयन्तीं दिशः सर्व्वाः स्वया कान्त्या लसत्तराम्।
पापभूधरदावाग्निशिखामिव हि सर्व्वतः॥२४॥
एवं सा स्वं निजं रूपं दर्शयित्वा हिमालयम्। अभ्यभाषत देवानां प्रविधातुमनुग्रहम्॥२५॥
शैलाधिराज धर्म्मात्मन् तवाहं तनया शुभा। श्रुतं ते दक्षभवने जहौ दाक्षायणी तनुम्॥२६॥
सैवाहमर्द्धभागेन त्वत्तो लब्धवती वपुः। पुनरन्या भविष्यामि दुहिता ते सुलोचना॥२७॥
मां नेतुं स्वर्गसमरास्त्वामायास्यन्ति याचकाः।
तेषां दास्यसि तत्रैव पतिं प्राप्स्याम्यहं शिवम्॥२८॥

शुकदेव कहते हैं—नारद का यह वाक्य श्रवण करके ब्रह्मादि देवगण ने यही कर्त्तव्य निश्चित किया तथा इस सम्बन्ध में कार्य हेतु तत्पर हो गये। तत्पश्चात् ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेर, वरुण, यम, त्वरित रूप से हिमालय जाने हेतु सन्नद्ध हो गये। इधर देवी गंगा ने स्वप्न में हिमालय को अपना रूप दिखलाया। हिमालय देखते हैं कि उनकी कन्या गंगा के ४ हाथ हैं। उनमें वरमुद्रा, अभयमुद्रा, पद्म तथा अमृत स्थित हैं। वे शुभ्रवर्णा, त्रिनयना हैं तथा मकर पर आरूढ़ हैं। उनके अंग-प्रत्यंग अत्यन्त मनोहर तथा मुखमण्डल ईषत् हास्ययुक्त हैं। वे नाना आभरण से भूषिता तथा युवती हैं। समस्त देवगण उनको प्रणाम कर रहे हैं। वे अपनी शरीर कान्ति द्वारा समस्त दिक्-विदिक् ऐसे उद्भासित कर रहीं हैं, मानो पर्वत के चतुर्दिक् दावानल प्रज्वलित है। भगवती गंगा ने हिमालय को इस प्रकार अपनी मूर्त्ति का दर्शन कराकर देवगण के प्रति अनुग्रह करते हुए कहा—"हे महात्मा शैलराज! मैं आपकी प्रिय कन्या हूं। आपने सुना होगा कि दक्षयज्ञ में सती ने प्राण त्याग किया था। मैं उन सती का अर्द्धांश गंगारूप में आपकी पुत्री रूपेण उत्पन्न हुयी। अन्य अर्द्धांश उमा रूप में जन्मलाभ करेगा। अमरगण मुझे सुरलोक ले जाने की जब प्रार्थना करें, तब उनके साथ आप मुझे भेज देना। क्योंकि मैं सुरपुर में भगवान् शंकर को पतिरूपेण प्राप्त करूंगी।।१९-२८।।

त्वञ्चा न्यान्तनयां तस्मै शिवायाहूय दास्यसि। अहं देवोपरोधेन स्वर्गं यास्यामि भूतलात्॥२९॥
मद्विच्छेदान्मा विमोहं भवान् क्वापि करिष्यति। एतदर्थं पुरोऽवोचं मोहशान्तिकरं वचः॥३०॥
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी शैल उत्थाय तल्पतः। चिन्तयामास यद्दृष्टं श्रुतं स्वप्ने किलाद्भुतम्॥३१॥
तस्याश्च दुहितुस्तत्त्वं सर्व्वं ज्ञात्वा धराधरः। मोहं तत्यज कन्येयं ममेति यः पुरा कृतः॥३२॥

कुछ समय पश्चात् आप अपनी द्वितीया कन्या स्वयं भगवान् शंकर को बुलाकर उनको समर्पित करें। देवकार्यार्थ मेरे सुरपुर जाने पर आप मेरे वियोग हेतु शोकार्त्त न हों। मैं इसलिये आपको यह शोकशान्ति रूप वाक्य कह रही हूं। देवी गंगा यह कहकर अन्तर्ध्यान हो गयी। तब शैलराज शय्या से उठकर उस अद्भुद् दर्शन के सम्बन्ध में, तथा जो कुछ स्वप्न में सुना था, उसके सम्बन्ध में विचार करने लगे। इसके पहले गंगा को अपनी कन्या मानने के कारण जो मोह था, वह अन्तःकरण से दूर हो गया।।२९-३२।।

शयने भोजने स्नाने कथायाञ्च सदा गिरिः। दध्यौ तां परमां देवीं देवदेवीभिरर्च्चिताम्॥३३॥
अथागताः पञ्च देवा अवतीर्य्य नभस्तलात्। हिमालयं महाभागं ददृशुः स्मितभाषिणः॥३४॥

हिमालयस्तान् पञ्चैव स्वतेजोभिः समुज्वलान्।
पूजयामास विधिवद्ब्रह्मबुद्ध्या महाप्रभान्।
आसनेषूपविष्टांस्तान् शैलराजोऽभ्यभाषत॥३५॥

तभी से वे गिरिराज शयन, भोजन, स्नानादि सभी स्थिति में देवी देवता द्वारा अर्चनीय परम देवी गंगा के विषय में चिन्तन रत रहते थे। तत्पश्चात् ब्रह्मादि पञ्चदेवता गगनमण्डल से उतरे। वे महाभाग हिमालय को दृष्टिगोचर हो गये। तब गिरिराज ने स्वतेज से दीप्तिमान ब्रह्मा की ओर अवलोकम किया तथा उनकी सविधि अर्चना करके आसन पर आसीन कराया। तब उन्होंने कहा-।।३३-३५।।

हिमालय उवाच

के यूयं सुप्रभावन्तः किमर्थं वा समागताः। ममात्र वान्यत्र वा वो विद्यते कार्य्यमुत्तमम्॥३६॥

हिमालय कहते हैं—हे महाभाग! आप कौन हैं, किस प्रयोजन से आपका आगमन हुआ है? मुझे आपका कौन सा प्रिय कार्य करना होगा, कहिये।।३६।।

देवा ऊचुः

वयमेते महाभाग देवास्ते निकटागताः। किञ्चिदर्थं याचितुं च समायाताः शृणुष्व तत्।।३७।।
अयं ब्रह्मा अयञ्चेन्द्रो यमोऽयं वरुणोऽप्ययम्। अयं कुबेर आख्यातः पञ्चैते देवताधिपाः।।३८।।
कश्चिदस्ति महावृक्षो नानाविधफलैर्युतः। तस्यैकन्तु फलं नेतुमागता वै वयन्त्विमे।
सहायो भव तत्र त्वं येन तत् फलमाप्नुमः।।३९।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे महात्मा! हम देवगण हैं। हम जिस कार्य से यहां आये हैं, उसे सुनो। मैं ब्रह्मा हूं, ये इन्द्र हैं। ये यम हैं। ये वरुण हैं तथा ये कुबेर हैं। नाना फलयुक्त एक वृक्ष है। हम उस वृक्ष के एक फल हेतु यहां आये हैं। अब जिस प्रकार से हम वह फल पा सकें, तुम हमारी सहायता करो।।३७-३९।।

शुक उवाच

श्रुत्वैवं वचनं तेषां शैलराजो हिमालयः। ज्ञातवान् खलु गङ्गान्तां नेतुकामान् सुरोत्तमान्।।४०।।
गङ्गायां वचनं स्मृत्वा दृष्ट्वा च तान् सुरोत्तमान्।
गङ्गात्यागं सुदुःसहं चिन्तयित्वाऽब्रवीच्च तान्।।४१।।

शुक कहते हैं—गिरिराज हिमालय ने देवगण के वाक्य को सुना। इससे उनको स्वप्नावस्था में गंगा द्वारा कहा वाक्य स्मरण आ गया। तदनन्तर इन देवगण का भाव देखकर वे समझ गये कि देवगण गंगा को ले जाने हेतु आये हैं, तथापि गंगा का विछोह दुःखकारी होने के कारण हिमालय कहने लगे।।४०-४१।।

हिमालय उवाच

ज्ञाता यूयं मया देवा ब्रह्माद्याः परमोदयाः। युष्माकञ्च समायातं महाभाग्योदयोद्भवम्।।४२।।
एवञ्च खलु जानामि तथाप्येवं निवेदये। अचलोऽहं विधिकृतः क्व यास्यामि ह्यशक्तिकः।
कोऽसौ वृक्षो न जानेऽसौ फलं वा तस्य कीदृशम्।।४३।।

हिमालय कहते हैं—हे देवगण! आप लोग का तथा देवाधिपति परम एश्वर्य सम्पन्न भगवान् ब्रह्मा का मेरे यहां आना—मेरे लिये महान् सौभाग्य का फल है। यह मैं जानता हूं। तथापि आप मेरी तनिक प्रार्थना भी सुनें। विधाता ने मुझे अचल बनाकर चलने की शक्ति से रहित किया है। (पर्वत अचल होता है) अतः मैं वृक्ष के अन्वेषणार्थ कहां जा सकूंगा? वह वृक्ष क्या है, उसका फल कैसा है? यह सब मुझे ज्ञात ही नहीं है।।४२-४३।।

देवा ऊचुः

अस्ति सोऽसौ महावृक्षो भवतो वशगोऽपि च। फलञ्च त्वद्वशे तस्य वर्त्तते नात्र संशयः।।४४।।
ददासि चेत् स्वच्छहृदा वयञ्च प्राप्नुमस्तदा। सर्व्वः स्वार्थपरो लोको न वेद परसङ्कटम्।
यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः।।४५।।

देवगण कहते हैं—वह महावृक्ष तथा उसका फल सब तुम्हारे वश में है। यदि तुम सरल अन्तःकरण से कहो

कि दान करूंगा, तब हम उसे पा सकते हैं। जगत् में सभी स्वार्थ के वश में हैं। कोई भी दूसरे की विपत्ति चिन्ता नहीं करता। यदि दूसरे की चिन्ता लोग न करें तथा प्रार्थित विषय दान न करें, तब कोई किसी से याचना ही न करें।।४४-४५।।

हिमालय उवाच

अस्ति तावन्महावृक्षः फलन्तस्य च वर्त्तते। अनिष्पन्नं तच्च फलं तद्विच्छेदोऽतिदुःसहः।।४६।।

हिमालय कहते हैं—एक महान् वृक्ष तथा उसका फल तो है, यह बात सत्य हैं तथापि उसका फल अपरिपक्व है। उसका विच्छेद दुःख भी सहने योग्य नहीं है।।४६।।

देवा ऊचुः

वृक्ष एव फलं धत्ते परार्थमेव नान्यथा। उपस्थितेभ्यः पात्रेभ्यो दत्तं स्यात्तद्धि सार्थकम्।।४७।।
विशेषतो वयं देवास्तत्फलार्थाः समागताः। न प्रत्याख्याहि शैलेश भव नानीश्वरोऽपि च।।४८।।

देवगण कहते हैं—वृक्ष कभी भी फल अपने लिये धारण नहीं करता। वह सदा अन्य हेतु फल धारण करता है। अतः उपस्थित याचक पात्र को उसका दान करना ही सार्थक है। विशेषतः हम देवता हैं। उस फल को प्राप्त करने यहां आये हैं। यदि तुम उस फलरूप धन से धनी न होते, तब कभी भी तुम हमारा दर्शन न पाते।।४७-४८।।

शुक उवाच

एवं तद्वचन श्रुत्वा विवक्षुं तं धराधरम्। ज्ञात्वा गङ्गा समागत्य कन्यारूपेण चाब्रवीत्।।४९।।

शुक कहते हैं—पर्वतराज को इतना कातर देखकर तथा देवगण की बात सुनकर गंगा वहां आकर कहने लगीं।।४९।।

कन्योवाच

किं देवैः सह संवादं कुरुषे पार्थकं पितः। यद्ब्रुवन्ति तदेवेष्टं समाचर धराधर।।५०।।
अहं ते निकटस्थैव किं प्राकृत इवाचर। अदूरस्थापि दूरस्था कर्म्मविक्षिप्तचेतसाम्।।५१।।
दूरस्थापि हृदिस्थाहं सदा भक्तिमतामिह। भक्त्याहमेकया ग्राह्या न ध्यानान्न च दर्शनात्।
अतस्ते निकटस्थां मां न दूरस्थां विचिन्तय।।५२।।

गंगा कहती हैं—हे पिता! शैलराज! आप देवगण के साथ क्या वार्त्तालाप कर रहे हैं? ये लोग जो कह रहे हैं, वह उत्तम है। मैं तो सदा आपके पास ही हूं। अतः आप सामान्य लोग जैसे क्यों शोकग्रस्त हो रहे हैं? जो सर्वदा अन्य कार्य में मन लगाये रहते हैं, उनके पास रहकर भी मैं दूर ही हूं। जो मेरे प्रति सदा भक्तिपरायण हैं, उनसे दूर होकर भी मैं सदा उनके हृदय में ही स्थित रहती हूं। प्राणीगण केवल भक्ति से ही मुझे पा सकते हैं, अन्यथा धन-धान्यादि किसी उपाय से मुझे नहीं पा सकते। अतः मैं चाहे जहां भी रहूं, आप सदा मुझे निकटस्थ जाने! कभी भी दूरस्थ न समझें!।।५०-५२।।

हिमालय उवाच

स्वयञ्चेद् यद्यसौ देवी गन्तुमिच्छति वः पुरम्। तदहं केन यत्नेन रक्षिष्याम्यविदूरतः।।५३।।

किन्तु मन्मुखतो वाक्यं यातु चेति न निःसरेत्। देव्या अभिमतं मत्वा कुरुध्वमुचितं सुराः॥५४॥

हिमालय कहते हैं—यदि देवी स्वयं ही आपके यहां गमनोद्यत हैं, तब मैं इनको कैसे रोक सकता हूं। लेकिन मेरे मुख से 'जाओ' शब्द कैसे निकले? आप देवता हैं। देवी का अभिप्राय जानकर जो उचित हो करें।।५३-५४।।

शुक उवाच

इत्युक्तास्ते सुरगणाः प्रफुल्लवदनास्तदा। आकाशे वर्त्तमाना वै देवीं भक्त्या प्रतुष्टुवुः॥५५॥

शुकदेव कहते हैं—हिमालय का वचन सुनकर देवता प्रफुल्लित हो गये। वे आकाश में स्थित होकर भक्ति के साथ देवी को प्रसन्न करने के लिये स्तव करने लगे।।५५।।

त्वां नमस्यामहे देवीं सतीं सज्जनसेविताम्। महाप्रभावां देवेशीं नित्यामाकाशवासिनीम्॥५६॥
अजामाद्यामनन्ताञ्च प्रकृतिं परमेश्वरीम्। दुर्गमां सुगमां गङ्गां कोटिब्रह्माण्डवासिनीम्॥५७॥
आदिशक्तिं महाशक्तिं शुक्लां सत्यस्वरूपिणीम्। तरुणीं रूपसम्पन्नां सेवनीयां कलावतीम्॥५८॥
गीतां गणेश्वरीं वन्द्यां वन्द्यवन्द्यां त्रिलोचनाम्। त्रिगुणामगुणां शुद्धां परमां पापनाशिनीम्॥५९॥
पवित्रनाम्नीं पुण्याख्यां पुण्यकीर्त्तिमनामयाम्। अव्ययां पावनीं रामां वामाक्षीं वीररूपिणीम्॥६०॥

देवगण कहते हैं—हे देवी! आपका प्रभाव असीम है। आप समस्त देवगण की ईश्वरीय तथा नित्य आकाशवासिनी हैं। साधुगण सतत् आपकी सेवा करते हैं। आप अनादि तथा अनन्त प्रकृति परमेश्वरी है। आप सुगम होकर भी दुर्गमा हैं। कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड में आप अधिष्ठित हैं। आप आद्याशक्ति तथा महाशक्ति एवं परमरूपलावण्ययुता तरुणी हैं। आपका कलेवर शुभ्रवर्ण तथा सत्यस्वरूप है तथा आपका नाम भी पवित्र एवं पुण्यप्रद है। आप सबकी आराध्या एवं गणेश्वरी हैं। समस्त प्राणीगण आपकी वन्दना करते हैं। आप त्रिगुणात्मिका होकर भी गुणों से अतीत हैं। आप प्राणियों के पापों का नाश करती हैं। समस्त त्रिभुवन आपका मूर्त्तरूप है। आप कलावती, त्रिलोचना, परमा, अनामया, चिद्रूपा, अव्यया, वामा, वामाक्षि, वीररूपा तथा वरदा हैं। आपको प्रणाम।।५६-६०।।

वरदामीश्वरीं बालां त्रिजगद्रूपरूपिणीम्। एवं प्रणमतां तेषां सुराणां गिरिजा सती॥६१॥
त्यक्त्वा भूमितलं याता ब्रह्मादिनिकटं नभः। तान्ते सुदुर्लभां लब्ध्वा मुदा परमया युताः॥६२॥
ययुः स्वर्गपुरं सर्व्वे सर्व्वे देवा मुदं ययुः। सदा तां परमानन्दमयीं गिरिसुतां शिवाम्॥६३॥

शुक कहते हैं—गिरिजा सती देवी देवगण की इस स्तुति से संतुष्ट हो भूमितल से उर्ध्व में उत्थित होकर ब्रह्मादि देवताओं के पास आकाश में आ गयीं। देवगण ने दुर्लभ गंगा को प्राप्त कर लिया तथा वे आनन्द सागर में निमग्न हो गये। तत्पश्चात् गंगादेवी ने ब्रह्मा के कमण्डलु में अन्तर्हित रूप से अवस्थान किया। ब्रह्मा आदि देवता इस प्रकार उनको लेकर देवलोक आये। वहां समस्त देवता परमानन्दमयी गिरिपुत्री की सेवा करके अतिशय आनन्द का अनुभव करने लगे।।६१-६३।।

सेवमानाः सुरगणा मुदमापुः सुदुर्घटाम्। मेनकाद्यास्त्वनालोक्य तां देवीं पुत्रीरूपिणीम्॥६४॥
व्यामुग्धा हा हता नष्टा क्व सा बालेति चारुदन्। प्रबोधिताश्च शैलेन ज्ञात्वा वृत्तान्तमादितः॥६५॥
अभिशेपुस्तदा गङ्गां दुःखेन महता तदा। यदस्मान्नाभिनन्द्यैव गता स्वर्गं निजेच्छया॥६६॥
तस्माद्भूयो नदी भूत्वा स्थलादुच्चैरधःपतेः। गां स्वर्गं सङ्गता यस्मात्तस्माद्गङ्गाभिधा भव॥६७॥

उधर मेनका आदि हिमवान् की पत्नियां पुत्री रूपा देवी को न देखकर नितान्त कातर स्वर में रुदन करने लगीं। "क्या सर्वनाश हो गया! पुत्री! तुम कहां हो!" वे नाना प्रकार के दुःख भरे वाक्य कहती रोती जा रही थीं। तदनन्तर शैलराज ने उन सबको प्रबोधवाक्य द्वारा सान्त्वना प्रदान किया तथा आदि से अन्त पर्यन्त समस्त विवरण उन लोगों से कहा। तब वे मातायें अतिशय दुःखित होकर कहने लगीं—हे पुत्री! तुम हम लोगों से मिले बिना अपनी इच्छा से देवलोक गयी हो। तब तुम निःसंदेह नदी रूपेण स्वर्ग से पृथिवी पर अवतरण करोगी। तुम जो पृथिवी अर्थात् 'गां' का त्याग करके स्वर्ग गयी हो, इसी कारण तीनों लोक में तुम्हारा नाम गङ्गा होगा। हम लोग तुम्हारे अर्द्धांश से उत्पन्न कन्या (उमा) को पाकर सुखी होंगे।" इस प्रकार से उन्होंने स्वयं को प्रकृतिस्थ किया।।६४-६७।।

वयं तदपरां प्राप्य पुनर्निर्वृतिमाप्नुमः। ततो यातेषु कालेषु नारदो देववर्शनः।
ययौ यत्र महादेवः सतीं ध्यायंस्तपस्यति॥६८॥

तत्पश्चात् कुछ समय व्यतीत हो जाने पर नारद वहां पहुंचे, जहां भगवान् महेश्वर सती के ध्यान में निरत होकर तपःश्चरणरत थे। वहां आकर नारद कहने लगे।।६८।।

नारद उवाच

नारदोऽहं महादेव प्रणमे त्ववधेहि माम्। सती भूयः प्रलब्धा ते तां द्रष्टुमुद्यमं कुरु॥६९॥

नारद कहते हैं—हे महादेव! मैं नारद आपको प्रणाम करता हूं। हे देव! हमलोगों ने सती को पुनः प्राप्त किया है। यदि देखना चाहते हैं, तब चलें।।६९।।

शुक उवाच

शिवोऽद्भुतमिव श्रुत्वा रोमाञ्चिततनुर्मुने। किं किं किं किं कुतः कुत्रेत्यूचे तूर्णं मुहुर्मुहुः॥७०॥
आसनात् सहमोत्थाय गन्तुमैच्छद्दिदृक्षया। सर्व्वतश्चारयंश्चक्षुश्चकितो हरिणो यथा।
क्व गन्तव्यं क्व गन्तव्यं सती सा मे क्व वेति च॥७१॥

शुकदेव कहते हैं—हे मुनिवर! भगवान् त्रिलोचन नारद के मुख से ऐसा परम विस्मयजनक वाक्य सुनते ही रोमांचित हो गये तथा सहसा आसन से उठ पड़े तथा सती की दर्शनाभिलाषा से चतुर्दिक् नेत्र विस्फारण करते बारम्बार कहने लगे—'नारद! तुमने क्या कहा? कहां है? मेरी सती कहां है? कहां जाने से उसका दर्शन होगा?।।७०-७१।।

नारद उवाच

प्रभो महेश शाम्यस्व किमेवं वदसे वचः। क्षणं संस्तभ्य मद्वाक्यं सावधानः शृणुष्व च॥७२॥
धीरो भव न चाधैर्य्यं कृत्वा कार्य्यं करिष्यसि।
अधैर्य्येणावसन्ना हि ध्वस्तकार्य्या भवन्ति वै॥७३॥
मया नानास्थलं भ्रान्त्वा भूपातालस्वरादिकम्। सती हिमवतः क्षेत्रे लब्धदेहा मयेक्षिता॥७४॥
शुक्ला चतुर्भुजा चारुनेत्रत्रयविराजिता। आसीना मकरे शुक्ले प्रफुल्लवदनाम्बुजा॥७५॥
शिवेशान महादेव प्रभो स्वामिन्महेश्वर। एवं जपन्ती सततं सती दृष्टा मया तव॥७६॥

आनीता च स्वर्गपुरं हिमालयगृहात् सुरैः। ब्रह्मेन्द्रवरुणैः कालकुवेराभ्यां प्रयत्नतः।
अधुना वर्त्तते स्वर्गे तां गत्वा पश्य सुन्दरीम्॥७७॥

नारद कहते हैं—हे प्रभो! हे महेश! स्थिर होईये! ऐसा क्यों कर रहे हैं? क्षणकाल में अपने चित्त को स्थिर करें तथा मेरा कथन सुनें। अधीर होकर कार्य न करें। अधीर होने पर कोई कार्य सिद्ध ही नहीं होता। मैंने स्वर्ग, मृत्युलोक, पाताल आदि स्थानों का पर्यटन करके यह जाना कि आपकी सती ने हिमालय पत्नी मेनका के गर्भ से जन्म लिया है। वे शुक्लवर्णा, चतुर्भुजा हैं। उनका मुखकमल प्रफुल्ल है। वे श्वेतवर्ण मकरासन पर आसीन होकर निरन्तर केवल 'हे प्रभो, हे महादेव, हे स्वामी' कहते आपका ही जप करती हैं। इस समय वे ब्रह्मादि देवगण द्वारा हिमालयगृह से अनेक यत्नों द्वारा लाई जाकर देवलोक में स्थित हैं। आप वहां जाकर उनको देखें।।७२-७७।।

शिव उवाच

जीव जीव चिरं वत्स महर्षे देव नारद। वया पुनर्मे देहेऽस्मिन् प्राणाः संक्रामिता इव॥७८॥
आलिङ्गयामि ते पुत्र चारु शुक्लतरं वपुः। त्वमेव खलु जानीषे सतीं प्राणाधिकां मम।
व्रज यामि त्वया सार्द्धं यत्र सा मे सती प्रिया॥७९॥

शिव कहते हैं—हे वत्स, देवर्षि नारद! तुम चिरंजीवी हो जाओ। तुमने मेरे मृतप्रायः शरीर में पुनः जीवन संचार किया है। हे पुत्र! पास आओ। मैं तुम्हारे मनोहर शुक्लवर्ण देह का एक बार आलिंगन करूं। सती मुझे प्राणों से अधिक प्रिय है, यह केवल तुमको ज्ञात है। मेरी प्रिया सती जहां है, अभी वहां तुम्हारे साथ चलता हूं।।७८-७९।।

शुक उवाच

इत्युक्त्वा वृषमारुह्य नन्दिना सह शङ्करः। ययौ स्वर्गं पुरं यत्र गङ्गा वसति पार्व्वती॥८०॥
शिवमागतमाकर्ण्य सर्व्वे तत्र दिवौकसः। ब्रह्माद्या मिलिताः सर्व्वे सभां चक्रुः सुशोभनाम्॥८१॥
आगतास्तत्र दिक्पालाः सायुधाः सहवाहनाः। सहस्रैः परिवारैश्च सायुधैः सबला मुने॥८२॥
नानाभरणभूषाढ्या मुदिताः परमादरैः। दिदृक्षवश्चिरान्नष्टपार्व्वतीशिवसङ्गमम्॥८३॥

।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे शुकजैमिनिसंवादे गङ्गाजन्मकथनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः।।



शुक कहते हैं—भगवान् शंकर ने यह वाक्य कहकर वृषारोहण किया। जहां पार्वती स्थित थी, वहां नन्दी के साथ उस देवपुर में पहुंचे। ब्रह्मादि देवगण ने शंकर को आया सुनकर सभी देवगण के साथ एक सभा आहूत किया। हे मुने! तब समस्त दिक्पाल हर-पार्वती मिलन को देखने नानावस्त्र, आभरण, अस्त्र-शस्त्र से शोभित होकर अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर हजारों-हजार परिजनों के साथ प्रफुल्ल मन से वहां आये।।८०-८३।।

।।द्विचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

देवसभा तथा शिव गंगा का मिलन

शुक उवाच

अथ सर्व्वे तदा देवाः सह सर्व्वेण तां सभाम्। प्राविशन्मेरुशिरसि सर्व्वदेवगणालये॥१॥
सभामध्ये तदा गङ्गा बभौ चन्द्रचयोज्ज्वला। सर्व्वेन्द्रियाभिमुख्येन परमेवात्मरूपिणी॥२॥
तस्याश्च चारुसर्व्वाङ्ग्या मुखचन्द्रं समुज्ज्वलम्। आनन्दामृतपानस्य पात्रं नेत्रैरलभ्यत॥३॥
नेत्राणि शम्भोस्तद्वक्त्रं वीक्षमाणानि यत्नतः। कालान् संयापयामासुस्तृप्तिं नाप्तानि जैमिने॥४॥
सर्व्वे देवास्तदा देव्यै गङ्गायै सुमुदान्विताः। मालामेकां ददुः शुक्लां शुभां चान्द्रमसीमिव॥५॥
सा च गङ्गा समुत्थाय तां मालां प्राप्य जैमिने। ददौ शिवाय देवाय शङ्कराय महात्मने॥६॥

सा च माला प्रभोर्मूर्द्धिन विरराज विराजिता।
न च मौलिं परित्यज्य गता कण्ठस्थलं तदा॥७॥

यदा माला मौलिगता शिवस्याभून्महामुने। दशदिक्षु तदा भूता जयशङ्खादिनिस्वनाः।
महादेवः प्रियां मालां प्राप्य देवानुवाच ह॥८॥

शुक कहते हैं—तदनन्तर क्रम से सभी देवगण मेरु शिखरस्थ सुरसभा में समासीन हो गये। उन देवगण के मध्य में अनेक चन्द्रमा के समान देदीप्यमान् गंगादेवी उस प्रकार से शोभित हो रही थीं जैसे इन्द्रियों से वेष्ठित देह में परमात्मसत्ता शोभित होती है। सभी के नेत्र इन मधुरमूर्त्ति गंगादेवी के आनन्दामृत पान के पात्र स्वरूप हो गये। सबके मुखमण्डल निश्चल थे। हे जैमिनी! भगवान् शशांखशेखर ने यत्नतः अपने तीनों नेत्रों को खोलकर देर तक उनके मुखमण्डल का दर्शन किया। तथापि उनको तृप्ति नहीं मिल रही थी। तत्पश्चात् देवताओं ने देवी के हाथों में सुनिर्मल चन्द्रकौमुदी के समान शुक्लवर्षा माला अर्पित किया। तब देवी ने उठकर उस माला को भगवान् शंकर के मस्तक पर स्थापित किया। वह माला शिव के गले में नहीं सरकी! वह तो शिर पर ही मनोहर सौंदर्य का विस्तार किये जा रही थी। तभी वहां चारों ओर से जय-जयकार तथा शंखध्वनि होने लगी।।१-८।।

शिव उवाच

इयं माला मया देवा गृहीता शिरसैव हि। शिरसैव धृता भार्य्या गङ्गेयमिति मन्यताम्॥९॥
यदा मृतवपुः सत्याः शिरसा धृतवानहम्। तदैव मे शिरोवासमियं प्राप मनस्विनी॥१०॥
वस्तुतो हृदि मे योगो वामाङ्गे शक्तिरस्ति मे। दक्षिणाङ्गन्तु वै पुंसां कन्यापुत्रादिधारकम्॥११॥
तस्मात् सम्यग्विचार्य्यैव शिरसीयं धृतैव मे। एतद्विज्ञाय यूयञ्च संशयं त्यजत ध्रुवम्॥१२॥

तदनन्तर भगवान् पिनाकधारी शिव ने देवताओं को सम्बोधित करते हुए कहा—हे देवगण! मैंने जब गंगाप्रदत्त माला को शिर पर धारण किया, तब आप सब यह निश्चित समझें कि मैंने प्रियतमा गंगा को ही मस्तक पर धारण कर लिया। मैंने जिस समय सती के शव को धारण किया था, उसी समय से यह देवी मेरे शिर पर स्थान

पा गयीं। मेरे हृदय में योग तथा वामाङ्ग में शक्ति विराजमान हैं। दक्षिण की (दाहिनी) ओर कन्या-पुत्र आदि का वास होता है। अतः मैंने सम्यक् विचार पूर्वक देवी को मस्तक पर धारण किया। आप सबने इसका कारण जान लिया, अतः इस सम्बन्ध में आप सब अन्य प्रकार का संदेह न करें।।९-१२।।

शुक उवाच

इत्युक्तास्ते देवगणाः शिववाक्यामृतं परम्। विमुक्तसंशयाः सर्व्वे प्रणेमुः शिवमुत्तमाः॥१३॥
तन्मालाशिरसं देवमद्भुतं ददृशुः शिवम्। शिवशक्तिमयं ब्रह्ममूर्त्तं चक्षुरिवागतम्॥१४॥
गङ्गां नीत्वा जिगमिषुं शिवं बुद्ध्वा विधिस्तदा। विनयेनाभिसङ्गम्य चतुर्वक्त्रैरभाषत॥१५॥

ब्रह्मोवाच

इयं गङ्गा क्षितौ जाता प्राप्तास्माभिस्तु भिक्षया। तुभ्यं दत्ता वरायैषा दुहितेवामलानना॥१६॥
कश्चित्कालमिहैवास्तु पितृगेहे सुरालये। अतीते कतिचित्काले तव गेहं गमिष्यति॥१७॥

शुक कहते हैं—देवगण ने शंकर का यह परमार्थपूर्ण वाक्य सुना तथा वे परम पुलकित एवं संशयविहीन होकर मस्तक पर मालाधारी शंकर के अलौकिक रूप का अवलोकन करने लगे। तत्पश्चात् भगवान् चतुरानन ब्रह्मा ने शंकर को गंगा के साथ जाने की इच्छा करते देखकर वहां आगमन करके विनयपूर्वक शंकर से कहा—हे देव! इन सुमुखी गंगा ने पृथिवी पर जन्म लिया। तदनन्तर हमने भिक्षा द्वारा इनको प्राप्त किया। आप इनके लिये उपयुक्त पात्र हैं। अतः गंगा आपको समर्पित करता हूं। आप कुछ समय पितृगृहतुल्य इस देवलोक में निवास करके कुछ समय पश्चात् अपने गृह चले जायें।।१३-१७।।

शिव उवाच

दत्ता युष्माभिरेवेयं कथं पुनरपेक्षते। नारीणां चिरवासो हि बान्धवे नोपपद्यते॥१८॥
तस्मादद्यैव मे गेहमियमायातु सर्व्वथा। अथवेयं स्वमेवेष्टं ब्रवीतु तद्धि मे मतम्॥१९॥

यह सुनकर महादेव कहते हैं—जब आपने गंगा को मुझे प्रदान कर दिया तब क्यों ममता करते हैं? देखिये, स्त्रियां स्वामीगृह में रहें, यही उनका कर्तव्य है। इसलिये मेरा इनके साथ अपने भवन जाना ही उचित है। अथवा जो उचित हो वह कहे।।१८-१९।।

गङ्गोवाच

ब्रह्मन्नहं शिवं प्राप्ता दत्ता युष्माभिरेव च। विना शिवं न मे युक्ता स्थितिः कुत्रापि सम्भवेत्॥२०॥
यूयञ्च भक्तिमन्तो मां प्राप्ता एव न चान्यथा। अतः कमण्डलौ ब्रह्मन्मम वासश्चिरन्तनः॥२१॥
न त्याज्यः स च मे वासो देव ते वै कमण्डलुः। नित्यं ह्यधिष्ठिता तत्र तव ब्रह्मन् कमण्डलौ॥२२॥
सदा युष्मत्कार्य्यकाले तत्क्षणे मां प्रलप्स्यथ।
मूर्त्ता त्वेषा सदा शम्भोः स्थास्यामि निकटे किल॥२३॥
अहं शिवा शिवो ह्येष नावयोर्विच्छिदा क्वचित्। सदा भक्तिमताञ्चापि निकटेषु वसाम्यहम्।
एवं विज्ञाय सन्देहं त्यक्त्वा (सुख) मवाप्नुत॥२४॥

गंगा कहती हैं—हे ब्रह्मन्! जब आपने मुझे शंकर को अर्पित कर दिया, तब शंकर को छोड़कर अन्य स्थान पर रुकना वैध नहीं है। आप सब मेरे प्रति अत्यन्त भक्तिमान हैं। आपने भक्तिबल से ही मुझे प्राप्त किया है। हे ब्रह्मन्! आपके कमण्डलु में मैं सदा वास करूंगी। कभी त्याग नहीं करूंगी। आवश्यकता होते ही मुझे प्राप्त करें। मैं स्वमूर्त्ति के साथ सर्वदा शंकर के निकट ही रहूंगी। मैं शिवा हूं। ये शिव हैं। हम दोनों का विच्छेद कथमपि संभव नहीं है। साथ ही मैं भक्तिमान के पास भी सदा वास करती हूं। आप सब यह जानकर संदेह रहित हों। सुखलाभ करें।।२०-२४।।

ब्रह्मोवाच

एवमेव महेशानि गिरिजे शिवसुन्दरि। त्वदीया हि वयं सर्व्वे यथोचितमथो कुरु॥२५॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे गिरिजे! शिवसुन्दरी। हम आपके भक्त हैं। जैसा उचित हो, करें।।२५।।

शुक उवाच

इत्युक्त्वा ते तदा देवा ब्रह्माद्या ब्रह्मणो मुखात्।
प्रणेमुः शिरसा भक्त्या शिवं गङ्गाञ्च तत्पराः॥२६॥

गङ्गा च मूर्त्तिभागेन शिवं प्राप्ता जगाम सा। अन्तर्द्धानांशभागेन स्थिता ब्रह्मकमण्डलौ॥२७॥

देवाः सर्व्वे यथास्थानं गता एव यथागतम्। ब्रह्मा ययौ ब्रह्मलोकं मुदा परमया युतः॥२८॥

कमण्डलुगतां गङ्गां वुबोध परमार्थतः। गङ्गां कमण्डलौ कृत्वा ब्रह्मलोकं जगाम सः॥२९॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे शिवगङ्गासमागमस्त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।।

शुक कहते हैं—तदनन्तर ब्रह्मादि देवता ने भक्ति के साथ भूलुण्ठित होकर शिव-शिवा को प्रणाम किया। तदनन्तर गंगा ने ब्रह्मा के कमण्डलु में अपने अन्तर्ध्यानांश को सुरक्षित रखकर शंकर के साथ वहां से प्रयाण किया। तत्पश्चात् सभी देवता अपने-अपने स्थान चले गये। भगवान् ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु में देवी गंगा को स्थित जानकर परमानन्द पूर्वक ब्रह्मलोक गमन किया।।२६-२९।।

।।त्रिचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

शिवगान

शुक उवाच

गते शिवे तु कैलासं गङ्गां नीत्वा शिरःस्थिताम्। ययौ च नारदौ विप्र वैकुण्ठं देवसत्तमः॥१॥

ददर्श स च वैकुण्ठे देवं नारायणं प्रभुम्। लक्ष्मी-सरस्वती-युक्त-पार्श्व-द्वन्द्वं महाप्रभम्॥२॥
नारदोऽहं नतोऽस्मीति प्रणनाम हरिं प्रभुम्। स च नारायणो देवो नारदं देवदर्शनम्॥३॥
ददर्श महसा भातं जटा-मण्डल-धारिणम्। शङ्खश्वेतं महोरस्कं दीर्घमाजानुबाहुकम्॥४॥
श्वेताम्बरधरं दिव्यं दिव्यभावयुतं सदा। वीणा-तन्त्री-लसत्पाणि-पद्माङ्गुलिदलं मुनिम्॥५॥
तं दृष्ट्वा पूजयामास पाद्यार्घ्याचमनासनैः। ततः पप्रच्छ सहसा तदागमनकारणम्॥६॥

शुक कहते हैं—भगवान् महेश्वर ने गंगा के साथ कैलास गमन किया। तब देवर्षि नारद ने वैकुण्ठधाम जाकर वैकुण्ठनाथ नारायण का सन्दर्शन करके कहा—"हे प्रभो! मैं नारद हूं। आपको प्रणाम करता हूं।" भगवान् नारायण ने जटाजाल मण्डित, शंखवत् शुभ्रकाय, विशालवक्ष आजानुलम्बित, श्वेताम्बरधारी, दिव्यभावपूर्ण, वीणावादन तत्पर इन देवदर्शन नारद का दर्शन करके—पाद्य-अर्घ्य से पूजा करके उनके आगमन की जिज्ञासा किया।।१-६।।

नारद उवाच

प्रभो देव जगन्नाथ दक्षकन्या सती पुनः। हिमालयगृहे जाता देहं लब्धवती बभौ॥७॥
सा भूतलात् समानीता स्वर्गं ब्रह्मादिपञ्चभिः। तत्रैव सा सुरैर्दत्ता शम्भवे परमप्रभा॥८॥
तां प्राप्य स ययौ स्थानं कैलासं गङ्गया सह।
ब्रह्मा कमण्डलुस्थां तां बुद्ध्वा नीत्वा ययौ निजम्॥९॥
एतदेव प्रभो तुभ्यं मयागत्य निवेदितम्। न दृष्टं भवता तादृक् परमाद्भुतमीश्वर॥१०॥

नारद कहते हैं—"हे प्रभो! जगन्नाथ! दक्षकन्या सती ने देहत्यागोपरान्त पुनः हिमालयगृह में मेनका के गर्भ से जन्मग्रहण किया था। ब्रह्मादि देवगण ने उनको सुरलोक लाकर भगवान् शंकर को समर्पित कर दिया। शंकर ने उनको लेकर कैलासपुर गमन किया तथा ब्रह्मा ने भी अन्तर्हित भाव से कमण्डलु स्थिता गंगा को ले जाकर ब्रह्मलोक गमन किया। हे प्रभो! आप के दृष्टिपथ के अतीत यह अद्भुत विवरण मैंने निवेदन किया।।७-१०।।

हरिरुवाच

अहो प्राप्तः सतीं शम्भुः प्रनष्टामिव वै चिरम्। तथाभूतमहं तञ्च द्रक्ष्याम्येव न संशयः॥११॥
गत्वा द्रक्ष्याम्यहं तौ वा तौ वात्रागच्छतां मम। किमत्र ब्रूह्यनुष्ठेयं देवर्षे ननु नारद॥१२॥

हरि कहते हैं—हे नारद! अत्यन्त आनंद का विषय है कि शंकर ने इतने दिनों के पश्चात् सती को प्राप्त किया। अब यह बतलाओ कि मैं स्वयं जाकर सती का शंकर के साथ दर्शन करूं, किंवा वे यहां आगमन करेंगे?।।११-१२।।

नारद उवाच

(तव वैकुण्ठभवनं तावेवागच्छतामिदम्। गङ्गा पश्यतु वैकुण्ठं तवेमं पुरमुत्तमम्॥१३॥
इदमेव मतं मेऽस्तु यद्युक्तं तत्समाचर। अहं गायामि निकटे तवेति यदि मन्यसे॥१४॥

नारद कहते हैं—आपके वैकुण्ठ भवन में उनको आना चाहिये। गंगा यहां आकर परम उत्तम वैकुण्ठपुरी का अवलोकन करे। यह तो मेरा मत है। आपको जैसी इच्छा हो वैसा ही करें। यदि आप अनुमति दें तब मैं गायन करूं।।१३-१४।।

हरिरुवाच

गाय नारद देवर्षे वीणापाणे महामते। गानन्तु परमं ब्रह्म विधिरूपेण तद्भवेत्॥१५॥)

श्री हरि कहते हैं—हे वीणापाणि महामति! हे नारद! देवर्षि! गान परम ब्रह्म हैं। यह विधि रूप होता है।।१५।।

नारद उवाच

त्वन्तु ब्रह्म परं विष्णो गानञ्च ब्रह्म चाव्ययम्। उभयं मिलितञ्चास्तु लक्षयामीति मन्यते॥१६॥

नारद कहते हैं—हे विष्णु! आप साक्षात् ब्रह्म हैं तथा संगीत भी साक्षात् ब्रह्मरूप हैं। अतएव आप दोनों के सम्मिलन को देखना चाहता हूं।।१६।।

हरिरुवाच

यथाविधि कृतं गानं जगन्मोहयते चिरात्। तस्माद्यथाविधानं वै गाय नारद श्रूयते॥१७॥
सौस्वर्य्यञ्च विधिज्ञानं गाने द्वयमपेक्ष्यते। अतिशेते विधिज्ञानं सौस्वर्य्यन्तु फलाधिकम्॥१८॥
पदाली तु पदार्थानां वाचिका न तु दर्शिका। स्वरबन्धविशेषेण रससाक्षात्करी तु सा॥१९॥
मूलाधारे वसेदग्निस्तस्मान्नादोऽभिपद्यते। पञ्चस्थानानि भित्वासौ व्यक्तो भवति मूर्द्धनि॥२०॥
नाभौ सूक्ष्मोऽतिपूर्व्वः स्यात् सूक्ष्मो हृदि विशिष्यते।
कण्ठे भवति चाव्यक्तो मुखे कृत्रिमतां व्रजेत्॥२१॥
मूर्द्धनि च तथाऽव्यक्तो नाद एष प्रकीर्त्तितः। नाभेश्च मूर्द्धपर्य्यन्तं सन्ति द्वाविंशतिः क्रमात्॥२२॥
श्रुतयो नाम विख्याता दयावत्यादयो मताः। ता वै चतस्रो द्वे तिस्रश्चतस्रस्तिस्र एव च।
द्वे च षट् च संहताः स्युः षड्जाद्याः सप्त वै स्वराः॥२३॥
षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा। पञ्चमो धैवतश्चैव निषादश्चैव तत्क्रमात्॥२४॥
एते सप्तस्वराः प्रोक्तास्त्रिधैषां गतयो मताः। घोरो मद्रस्तथोच्चैश्च स्वरबन्धविशेषकाः॥२५॥
स्वरप्रबन्धनामानो रागा रागिण्य एव च। कोटयः पञ्चलक्षाणि पञ्च तद्वत् सहस्रकम्॥२६॥
रागिण्यश्चैव रागाश्च शिवकण्ठे वसन्त्यमी। तेषां प्रधानभूताश्च षड्रागाः कामदादयः॥२७॥
षट्त्रिंशदपि तेषां वै भार्य्या दासीसमन्विताः। सालङ्काराः सुरूपास्ता परमानन्दमूर्त्तयः॥२८॥

श्री हरि कहते हैं—हे नारद! यथाविधि संगीत से तीनों लोक मोहित हो जाता है। अतः यथाविधि संगीत करो। संगीत हेतु सुस्वर तथा विधिज्ञान आवश्यक है। राग-रागिनी बोध तथा सुस्वर रहने से ही संगीत का उत्कर्ष होता है। संगीत में जो सब पद व्यवहृत होते हैं, वे केवल पदार्थ वाचक हैं। कुछ भी परमार्थ वाचक नहीं हैं, तथापि यह सब पदावलि स्वरयुक्त होकर रससाक्षात्कार कराती है। मूलाधार में जो अग्नि स्थित है, उसी से नाद उत्पन्न होता है। यह नाद प्रथमतः मूलाधार से उत्पन्न होकर नाभिदेश में अतिसूक्ष्म, हृदय में सूक्ष्म, कण्ठ में अव्यक्त तथा मुख में व्यक्तभावेन प्रकाशित होकर मस्तक में पूर्ण स्फुट हो जाता है। नाभि से मस्तक तक दयावति आदि २२ श्रुतिमण्डल स्थित है। इनमें प्रथम चार श्रुति समष्टि से षड्ज, द्वितीय दो श्रुति से ऋषभ, तृतीय त्रिसंख्यक श्रुति से गान्धार, चतुर्थ

चार श्रुति से मध्यम, पंचम त्रिसंख्यक श्रुति से धैवत तथा सप्तम षट्संख्यक श्रुति से निषद, इस प्रकार श्रुतिमण्डल से षड्जदादि सप्तस्वर उत्पन्न होता है। उक्त सप्तस्वर की तीन गति है। यथा घोर-मन्द्र तथा उच्च। इस सप्तस्वर की पांच करोड़ पांच लाख सहस्र राग-रागिनियां शंकर के कण्ठ में निवास करती हैं। इनमें प्रधान भूता हैं कामदादि छ राग। दासी समन्विता ३६ रागिनियां इसकी पत्नी हैं। ये सभी अलंकारयुक्त सुरूपा तथा परमानन्द मूर्त्तियां हैं।।१७-२८।।

एवन्तु खलु रागाणां सुसम्यक् प्रतिपत्तये। आरोहन्त्यवरोहन्ति सञ्चरन्ति स्वरा द्विजः॥२९॥
आरोही चावरोही च सञ्चारी तेन ते त्रिधा। एते यन्त्रेष्वपि प्रोक्ता यन्त्रकण्ठावुभौ समौ॥३०॥

इन सभी रागों की सम्यक् प्रतिपत्ति हेतु पूर्वोक्त सप्तस्वर कभी आरोही, कभी अवरोही तो कभी संचारी हो जाते हैं।

स्वर के आरोह-अवरोह तथा संचरण क्रम से सभी राग त्रिविध हो जाते हैं। यह यंत्र (वाद्य) तथा कण्ठ—दोनों से समभावेन आविर्भूत होते हैं।।२९-३०।।

नारद उवाच

रागाणां वद नामानि रागिणीनाञ्च सत्तम। काश्च दास्यः परिप्रोक्ता दासा वा कमलेक्षण॥३१॥

नारद कहते हैं—हे सुर सत्तम! कमललोचन! कृपापूर्वक इन सभी राग-रागिनियों का, उनके दास दासीगण का नाम कहिये।।३१।।

हरिरुवाच

कामदश्च वसन्तश्च मल्लारश्च विभाषकः। गान्धारो दीपकश्चैव रागा एते षड़ीरिताः॥३२॥
मायूरी तोटिका गौड़ी वराड़ी च विलोलिका।
धानाश्रीरपि विख्याता कामदस्य प्रिया शुभा॥३३॥
वागीश्वरी शारदी च श्यामा वृन्दावनी तथा। वैजयन्ती जयन्ती च दास्य एताः प्रकीर्त्तिताः॥३४॥
परजश्चैव दासश्च भवेत् कामदकस्य हि॥३५॥
केदारी चैव कल्याणी सिन्धुरा सुहया तथा। अश्वारूढ़ा च कार्णाटी वसन्तस्य प्रिया मता॥३६॥
श्यामकेली देवकेली मालिनी कामकेलिका।
सम्भावती सम्बरा च दास्यस्तासां क्रमात् स्मृताः॥३७॥
हिल्लोल इति विख्यातो वसन्तरागकिङ्करः॥३८॥
नटी च सुरहट्टी च पाहिड़ी चारुरूपिणी। नीला जयजयन्ती च षड्व मल्लारयोषितः॥३९॥

विष्णु कहते हैं—कामद, वसन्त, मल्लार, विभाष, गान्धार तथा दीपक—ये छ राग हैं। इनमें मायूरी, तोटिका, गौढ़ी, वराड़ी, विलोलिका, धानश्री नामक छः रागिनियां कामद राग की पत्नी हैं। वागेश्वरी, शारदी, श्यामा, वृन्दावनी, वैजयन्ती, जयन्ती ये छः रागिनियां कामद राग की पत्नियों की दासी है। परज कामद राग का दास है। केदारी, कल्याणी, सिन्धुरा, अश्वारूढ़ा तथा सुधारा नामक छ रागिनी वसन्त राग की पत्नी हैं। श्यामकेली, देवकेली, मालिनी, कामकेली, सम्भावती तथा सम्बरी नामक इनकी दासी हैं। (रागिनियों की दासी है)।

हिन्दोलनामक सन्त राग का एक दास भी है। नटी, सुरहट्टी, पाहिड़ी, चारुरूपा, नीला, जयजयन्ती, मल्हार राग की पत्नियां हैं।।३२-३९।।

चक्रवाकी चन्द्रमुखी रसिका च विलासिका।
यामिनी श्यामघटिका दास्यस्तासां क्रमात् स्मृताः॥४०॥
(रामकेली च ललिता कोड़रा कौमुदी तथा। भैरवी शर्व्वरी चैव विभाषस्य प्रिया मता॥४१॥
तरङ्गिणी नागिनी च किशोरी हेमभूषणा। कल्लोलिनी भीमनेत्रा दास्यस्तासां क्रमान्मताः॥४२॥
श्यामघोटक इत्याख्यो विभाषस्य तु किङ्करः॥४३॥
श्रीर्वै रूपवती गौरी धानसी च तथापरा। मङ्गलाख्या च गान्धर्व्वी गान्धारस्य प्रिया इमाः॥४४॥
पटमञ्जरी च मञ्जीरा महापद्मावती तथा। वेलावली च भूपाली गन्धिनी चेति दासिकाः॥४५॥
गौड़राज इति ख्यातो दासो गान्धारसेवकः॥४६॥

चक्रवाकी, चन्द्रमुखी, रसिका, विलासिका, यामिनी, श्यामघोटिका, क्रमशः उनकी दासियां हैं। विभाष राग की पत्नियां हैं—रामकेलि, ललिता, कोवड़ा, कोमुदी, भैरवी, शर्वरी, तरगिंणी, नागिनी, किशोरी, हेमभूषणा, कल्लोलिनी तथा भीमनेत्रा क्रमशः उसकी दासियां हैं। विभाष का नौकर है श्यामघोटक। गान्धार राग की पत्नी हैं। श्री, रूपवती, गौरी, धानसी, मंगला तथा गंधवर्त्ती उनकी दासी हैं। पटमंजरी, मंजीरा, पद्मावती, वेलावती, भूपली तथा गन्धिनी। गान्धार राग का सेवक है गौड़राज।।४०-४६।।

उत्तरी पूर्व्विका चैव गुज्जरी कालगुज्जरी। तथा गोण्डकरी ख्याता मालेति दीपकप्रिया॥४७॥
दीपहस्ता दीपवर्णा दीपकर्णा प्रदीपिका। दीपाक्षी दीपवक्त्रा च दास्यस्तासां प्रकीर्त्तिताः॥४८॥
प्रदीपनाभ इत्याख्यो विख्यातो दास एव च॥४९॥
एते प्रोक्ता रागवर्गा गाय नारद तत्त्ववित्॥५०॥

दीपकराग की पत्नियां हैं—उत्तरी, पूर्विका, गुज्जरी, कालगुज्जरी, गोण्डकरी तथा माला। उनकी दासियां हैं। दीपहस्ता, दीपवर्णा, दीपकर्णा, प्रदीपिका, दीपाक्षी, दीपवक्त्रा। दीपकराग का सेवक है प्रदीपनाभ। हे नारद! इस प्रकार मैंने तुमसे रागिणीगण का वर्णन किया।।४७-५०।।

शुक उवाच

नारदश्च तथेत्युक्त्वा गातुं समुपचक्रमे। यत्नवान् परमो भूत्वा वीक्षमाणो मुखं हरेः॥५१॥
ये प्रोक्ता हरिणा रागाः साक्षादानयितुञ्च तान्। साक्षाद्देवमुनिश्रेष्ठो न चाशक्यत सर्व्वशः॥५२॥
कश्चित् स्थानपरिभ्रष्टः खञ्जः पथि रुजा स्थितः।
कश्चित् काणो भिन्नवर्णः कश्चिद्रागोऽपि विह्वलः॥५३॥
कश्चिद्दुर्व्वलतां यातः कश्चिद्दलितभूषणः। पत्नीहीनः कोऽपि कोऽपि कश्चिद्बधिरतां गतः॥५४॥
एवं विघटिता रागा नारदेन कृतास्तदा। आवृत्य वसनेनास्यं जहासे यत् सरस्वती।
तत् दृष्ट्वा तत्यजे गानं नारदो म्लानवक्त्रतः॥५५॥

शुक कहते हैं। तदनन्तर नारद ने संगीत आरंभ किया। भगवान् हरि ने जिन राग-रागिनीगण का उल्लेख किया था, देवर्षि नारद ने अत्यन्त यत्नपूर्वक अविकल रूपेण उन सब को संगीत में उतारने की चेष्टा की। परन्तु कदापि सफल न हो सके। कोई रागरागिनी स्थान भ्रष्ट होती, कोई खञ्ज हो जाती, कोई मार्ग में ही रोगग्रस्त हो जाती, कोई विवर्ण तो कोई विह्वल सी रह जाती! कोई बलहीन तो कोई भूषण विहीन, कोई पत्नी विहीन तो कोई अधीर हो जाती! तब भगवती सरस्वती ने राग-रागिनियों की यह दुखस्था को देखा। वस्त्र से मुंह ढांककर हंसने लगीं। तब नारद म्लानमुखी होकर संगीत से विरत होने का विचार करने लगे। यह देखकर भगवान् हरि कहने लगे।।५१-५५।।

हरिरुवाच

गानाद्विरम देवर्षे कृतं गानं विलक्षणम्। नवशिक्षापरीपाकाद्गानवित्त्वं भविष्यसि॥५६॥
गानं कुरुष्व चेत्युक्तो यो गायति स मूढ़धीः। जिज्ञासोर्निकटे विप्र तस्य गानं विधिक्षतम्॥५७॥
अतएव न गायेत प्रोक्तो जिज्ञासुना क्वचित्। मया जिज्ञासुना त्वञ्च गायेत्युक्तश्च गीतवान्॥५८॥
उत्तिष्ठ मत्पुरं पश्य वैकुण्ठं सकलं मम। पुरेऽस्मिन् रागवर्गा मे सन्ति तान् पश्य सर्व्वशः॥५९॥

श्री हरि कहते हैं—हे नारद! जो 'संगीत करो', यह कहते ही संगीत के लिये उद्यत हो जाये, वह सुबुद्धिमान नहीं हैं। जो व्यक्ति जांचने के लिये संगीत का आदेश करे, उसके पास भी संगीत करना अवैधानिक है। मैंने तुम्हारी परीक्षा हेतु संगीत करने को कहा था। उससे तुम संगीत करके लज्जित हो गये। अब उठो तथा मेरे वैकुण्ठधाम का सब ओर निरीक्षण करो। यहां तुम समस्त राग-रागिनीगण को उपस्थित देखोगे।।५६-५९।।

शुक उवाच

इत्युक्तो हरिणा तेन नारदो मुनिपुङ्गवः। उत्थाय हरिण सार्द्धं ददर्श सकलं पुरम्॥६०॥
यत्र सर्व्वे लसच्चारुवक्त्राश्चारुचतुर्भुजाः। शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धराः सर्व्वे घन-प्रभाः॥६१॥
किरीटिनः कुण्डलिनो लसत्पुष्करमालिनः। सर्व्वे च नूत्नवयसः सस्मेरवदनाम्बुजाः॥६२॥
दिशो वितिमिरालोकाः कुर्व्वन्तः स्वेन तेजसा।
तत्र क्वापि स्थलेऽपश्यद्व्यङ्गान् कांश्चिच्छरीरिणः॥६३॥

शुक कहते हैं—भगवान् हरि के यह कहने पर मुनिश्रेष्ठ नारद ने उनके साथ उठकर वैकुण्ठ दर्शन करना प्रारंभ किया। वे देखते हैं कि वहां सभी चतुर्भुज, नवयौवन युक्त, मनोहर मुख से शोभित, अपने चार हाथों में शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, मस्तक पर मुकुट, कानों में कुण्डल तथा गले में मालाधारी हैं। उनकी देहप्रभा से दिशायें आलोकित हो रही थीं। तदनन्तर नारद ने एक स्थान पर कतिपय विकलांग प्राणीगण को देखकर कहा।।६०-६३।।

नारद उवाच

देव श्रीपुण्डरीकाक्ष पुरेऽस्मिंस्ते सुखालये। एवंभूतानि भूतानि कथं नरकदेशवत्॥६४॥

हे देव! पुण्डीकाक्ष! आपके इस सुखमय स्थान में ये नारकीय जैसे विकृत प्राणी क्यों परिलक्षित हो रहे हैं?।।६४।।

हरिरुवाच

एत एव कृता रागा भवता व्यङ्गचक्षुषः। यत एव सरस्वत्या हसितञ्चावृतास्यया।
एते सज्जीभविष्यन्ति साङ्गोपाङ्गाः शिवागमात्॥६५॥

श्री हरि कहते हैं—हे नारद! ये रागरागिनियां हैं। तुमने ही इनको विकृत किया है, जिसे देखकर सरस्वती ने वस्त्र से मुंह छिपाकर हास्य किया था।

भगवान् शंकर के आगमन पर पुनः इनको इनका पूर्वरूप प्राप्त हो जायेगा।।६५।।

शुक उवाच

इत्युक्तस्तेन हरिणा नारदो लज्जयान्वितः। न जागद मुखे किञ्चिद्धरिणा सह चावसत्॥६६॥
हरिर्लक्ष्मीसरस्वत्योर्मध्यगो विरराज सः। उवास नारदश्चापि पूर्व्वकल्पित आसने॥६७॥
अन्ये च ऋषयस्तत्र वैकुण्ठपुरवासिनः। ऊषुर्विष्णुसभायान्ते परमामोदनिर्वृताः॥६८॥
सस्मार च हरिः शम्भुं सगङ्गं वेधसन्तथा। तेन स्मृतास्ते स्वस्थानात् शम्भुर्ब्रह्मा च दैवतेः॥६९॥
आगता चैव गङ्गा च स्मृता कृष्णेन विष्णुना। ब्रह्मा विष्णुः पिनाकी च इन्द्राद्याश्चैव देवताः॥७०॥
ऋषयो नारदाद्याश्च तत्रोषुः स्वासनेषु च। गानं शुश्रूषवः सर्व्वे यत्तु शम्भुः करिष्यति॥७१॥

शुक कहते हैं—देवर्षि नारद श्री हरि का यह कथन सुनकर लज्जावनत हो गये। वे कुछ न बोलकर श्रीहरि के साथ बैठ गये। तब भगवान् सरस्वती तथा लक्ष्मी के मध्य में आसीन होकर अलौकिक रूप से शोभायमान थे। तभी वैकुण्ठपुर निवासी अन्य ऋषिगण जो परमात्मतत्ववेत्ता थे, उस सभा में आकर बैठ गये। भगवान् नारायण ने तब महेश्वर, गंगा एवं ब्रह्मा को स्मरण किया। इनके आगमन के अनन्तर इन्द्रादि देवता भी शंकर के संगीत को सुनने की अभिलाषा से वहां आ पहुंचे।।६६-७१।।

अथ तत्र महादेवं वसन्तं परमासने। शुक्लमालालसच्छीर्षं गङ्गासंशोभिवामकम्॥७२॥
पिनाकपाणिं शुक्लाभं पिहितव्याघ्रचर्म्मकम्। विलोक्य पूजयित्वा च ब्रह्माद्यर्च्चनपूर्व्वकम्।
उवाच परमप्रीतो वैकुण्ठेशो गदाधरः॥७३॥

तत्पश्चात् ब्रह्मा आदि देवता ने वहां रत्नमय सिंहासन पर बैठे, मस्तक पर श्वेतमाला धारण किये हुए, व्याघ्रचर्मधारी, पिनाकपाणि, धवलवर्णा भगवान् महेश्वर की अर्घ्य दानादि से पूजा किया। पूजा हो जाने पर वैकुण्ठपति गदाधारी भगवान् विष्णु ने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक वचन कहना प्रारंभ किया।।७२-७३।।

हरिरुवाच

चन्द्रशेखर हे शम्भो किं लोके परमं सुखम्।
किं शोकनाशनं लोके किं वा दुःखविमोचकम्॥७४॥

श्री हरि कहते हैं—हे शम्भु! चन्द्रशेखर, जगत् में कौन कार्य अत्यन्त सुखकारी तथा शोक-दुःखहारी है?।।७४।।

शिव उवाच

त्वत्सेवनं सुखं लोके त्वद्ध्यानं शोकनाशकम्। दुःखानां मोचकं कृष्ण तवैव नाम नान्यथा॥७५॥

अस्ति चान्यत् परं तादृग्गानं त्वत्कीर्त्तिकीर्त्तकम्।
यस्य तेऽङ्गेभ्य उत्पन्ना रागा रागिण्य एव च॥७६॥
चित्रिताः पुष्पिता वाचो न चेत्त्वत्कीर्त्तिबोधिकाः। मिथ्या हेमक्षितिं तान्तु हेमज्ञो नानुधावति॥७७॥

शिव कहते हैं—हे कृष्ण! जगत् में आपकी सेवा ही परम सुखप्रद तथा शोक-दुःख नाशक है। आपके अंग-प्रत्यङ्ग से जिन राग-रागिनियों का आविर्भाव हुआ हैं, वह आपका गुणकीर्त्तन पूर्ण संगीत भी शोक-दुःखहारी कर्म हैं। जिसे वस्तुतः स्वर्ण की पहचान है, वह स्वर्ण वर्ण की भूमि देखकर प्रभावित नहीं होता।।७५-७७।।

विना गानेन ते नाम पवित्रयति नान्यथा॥७८॥
नारायणाच्युतानन्त कृष्ण श्रीमधुसूदन। इति गायन्ति ये नित्यं न ते संसारिणः पुनः॥७९॥
गोविन्द केशवानन्द श्रीराम पुरुषोत्तम। इति गायन्ति ये नित्यं न ते संसारिणः पुनः॥८०॥
मुकुन्द पद्मनाभेति पुण्डरीकाक्ष माधव। इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः॥८१॥

ऐसा जानकार व्यक्ति नाना अलंकारों से शोभित विचित्र वाक्य से कदापि प्रभावित नहीं होता, यदि वे आपके गुण कीर्त्तन से विहीन हो। जो नित्यप्रति हे नारायण! हे अच्युत! हे अनन्त! हे कृष्ण! हे श्री मधुसूदन! नाम का गायन करते हैं, उनको पुनः संसार में नहीं आना होता। किंवा जो व्यक्ति हे केशव! श्रीराम! पुरुषोत्तम! का गायन करते हैं, उनका भी पुर्नजन्म नहीं होता। जो नित्य हे मुकुन्द! पद्मनाभ, माधव! पुण्डरीकाक्ष का उच्चारण करते रहते हैं, उन पर कलि का आक्रमण ही नहीं होता।।७८-८१।।

हरिरुवाच

उक्तं मन्नाममाहात्म्यं पुण्यकीर्त्तन शङ्कर। कर्णौ प्रीणय मे गानात् सर्व्वे शुश्रूषवः स्थिताः।
गानामृतमहाविद्याकुशलोऽसि न चापरः॥८२॥

श्री हरि कहते हैं—आपने मेरे नाम की महिमा का कीर्त्तन किया। अब आप अपने संगीत से हमारे कर्णकुहर को परितृप्त करें। सभी आपके संगीत को सुनना चाहते हैं। संगीतरूपी सुधामयी महाविद्या में आपके अतिरिक्त कोई भी दक्ष नहीं है।।८२।।

शुक उवाच

इत्युक्तः श्रीमता तेन हरिणा प्रभुना द्विज। गातुं प्रचक्रमे शम्भुर्गानशास्त्रविशारदः॥८३॥
तेन चानुजगे गायन्नारदोऽपि महामुनिः।
लक्ष्मीः सरस्वती ब्रह्मा विष्ण्वाद्यास्तन्मुखाः स्थिताः॥८४॥
आदौ नादं समुत्थाप्य गान्धारं समभाषयत्। ब्रह्मविष्ण्वादयः सर्व्वेऽपश्यन् गान्धारमागतम्॥८५॥
लसत् सुहेमाभरणं समुज्ज्वलन्नवाम्बुदाभासमपूर्व्वसुन्दरम्।
गृहीतपीताम्बरमम्बुजद्वयं ददर्श गान्धारमिमं सभा च सा॥८६॥
सुचारुहेमासनमासिते वरं महाप्रभे रागवरे महेश्वरः।
जगौ हरिं कापि च दूतिकागता प्रियोक्तसन्देशवचोऽब्रवीदिति॥८७॥

शुकदेव कहते हैं—हे द्विज! गायनशास्त्र विशारद शंकर ने भगवान् श्री हरि द्वारा यह कहे जाने पर संगीत आरंभ किया। उनके साथ महामुनि नारद भी उनके अनुगत के रूप में संगीत करने लगे। वहां लक्ष्मी, सरस्वती, ब्रह्मादि सभी देवता तथा ऋषि एकटक शंकर को देखने लगे। भगवान् शंकर सर्वप्रथम नाद उत्थापन करके गान्धार राग का आलाप करने लगे, तब ब्रह्मा-विष्णु आदि सभी ने वहां साक्षात् गान्धार राग को समागत देखा। देखा कि उसका शरीर मनोहर है। वह स्वर्ण आभरण भूषित, कटि में पीतवस्त्रधारी, तथा दोनों हाथों में दो कमल धारण करके देदीप्यमान हैं। उसका अंग-प्रत्यंग दीप्त है तथा शरीरकान्ति नवमेघ के समान है। इस महाप्रभ रागप्रवर के स्वर्णासन पर आसीन होते ही भगवान् महेश्वर ने हरिगुणगायन प्रारंभ कर दिया। तभी एक दूती आकर प्रिय के कहे संदेश को कहने लगी।।८३-८७।।

दूतिकोवाच

केशव कमलंमुखीमुखकमलं कमलनयन कलयातुलममलम्।
कुञ्जगेहे विजनेऽति विमलं। ध्रुवः।।८८।।

दूती कहती है—हे कुञ्जनाथ! विजनस्थ कमलमुखी के विमल मुखकमल के प्रति अपने कमलनयन का कटाक्ष करिये।।८८।।

सुरुचिर हेमलतानवलम्बातरुणतरुं भगवन्तम्।
जगदवलम्बनमवलम्बितुमनुकलयति सा तु भवन्तम्।।८९।।
इतीह सङ्गायति गानपण्डिते महेश्वरे चारुतरस्वरे हरे।
ददर्श दूतीं समुपस्थितामिव श्रियः पतिः स्तब्धविलोचनद्वयः।।९०।।

दूती के इस प्रकार पुनः पुनः कहने पर मधुरकण्ठ गानविशारद भगवान् महेश्वर यह संगीत करने लगे। 'अवलम्बन विहीना मनोहर हेमलतामयी देवी जगत् के आधार अवलम्बन स्वरूप तरुण तरु के समान मूर्तिमान भगवान् श्रीकृष्ण का आश्रय लेने की अभिलाषा कर रही हैं। भगवान् शिव द्वारा यह संगीत गायन किये जाने पर भगवान् वैकुण्ठाधिपति विष्णु जड़ित नेत्रों से दूती को देख रहे थे।।८९-९०।।

सभा च सानन्तरबोधवर्ज्जिता शिवेऽर्पिताक्षा अचला इव स्थिता।।
सरस्वती श्रीरपि तादृशौ तदा ब्रह्मा विघूर्णच्चतुराननोऽभवत्।।९१।।
पुनः शिवो गायति गानसम्भवप्रमोदविच्छेदविरागतो द्विज।
समावभाषे स्वरबन्धसम्भवा श्रीनामिका रागवरस्य वल्लभा।।९२।।
ज्वलत्सुवर्णामलचारुकायिका करद्वये पद्मयुगञ्च बिभ्रती।
विचित्रभूषाभरणोज्वलांशुका श्रीरागिणी राजतसस्मितानना९३।।
या दूतिकाऽह्वतवती हरिं पुरः सैवान्यथाकारगतेव सा प्रिया।
हरिं प्रलभ्येव रहः स्थिताऽश्लिषत् तदेति साक्षादिव वीक्षते हरिः।।९४।।

उस समय के संगीत को सुनकर सभा में उपस्थित सभी लोग वाह्यज्ञानरहित होकर शंकर को अपलक देख रहे थे तथा भगवान् ब्रह्मा के चारों शिर के नेत्र भी घूर्णित होते जा रहे थे। हे द्विज! तदनन्तर शंकर के पुनः संगीत

करने पर स्वरवद्धसंभवा गान्धरराग पत्नी श्री रागिणी आनन्द-विच्छेद भय से वहां प्रकट हो गयीं। उसका देह स्वर्णवत् निर्मल तथा उज्जवल था। बे विचित्र आभूषणों से भूषित थीं। उनके दोनों हाथों में कमल तथा मुख पर ईषत् हास्य था। पूर्व में जो दूती भगवान् हरि को सम्बोधित करके बोल रही थी, वह हरि की प्रियारूपिणी होकर हरि को अपना मोहित रूप दिखलाकर एक ओर बैठी मन्द-मन्द मुस्कुरा रही थीं। हरि भी अपनी उस प्रिया का साक्षात् दर्शन करने लगे।।९१-९४।।

प्रियोवाच

रसिकेश केशव हे। रससरसीमिवमामुपयोजय रसमय रसमिवहे। ध्रुवः॥९५॥

प्रिया कहती है—"हे रसिकेश! हे केशव! हे रसमय! आपकी जय हो! आप रससरोवर के समान मुझे प्राप्त करके सतत् रसमण्डल में अवस्थान करें।" प्रिया ने यही रट लगा दी।।९५।।

शुक उवाच

एवं गायति देवेशे देवो नारायणस्तदा। आलिङ्गितेव तादात्म्याद्धरिर्निरवलम्बनः॥९६॥
रसोऽभूद्रसतादात्म्यादपतच्चासनात्ततः। तैजसन्तच्छरीरन्तु द्रवीभूतं लसत्तरम्।
संप्लावयितुमारेभे वैकुण्ठं पुरमुत्तमम्॥९७॥
तदा सर्व्वे भग्ननिद्रा इव ब्रह्मादयः सुराः। प्लाव्यमानं पुरं सर्व्वं ददृशुश्चाप्यचिन्तयन्॥९८॥
कुत एतज्जलं जातं वैकुण्ठस्य विपादकम्। क्व वा यातो हरिर्देव आसने च न दृश्यते॥९९॥
ब्रह्मा तदवधार्य्याथ शिवगानफलं तदा। गङ्गाधिकरणं तत्र कमण्डलुमदर्शयत्॥१००॥
गानब्रह्मभवं ब्रह्म हरिदेहद्रवाख्यकम्। गङ्गा ब्रह्म संवृणुयादिति ब्रह्मा ह्युपाययत्॥१०१॥
भाण्डसंस्पर्शमात्रेण सर्व्वो हरितनुद्रवः। गङ्गां विवेश सहसा तत्क्षणादेव पश्यताम्॥१०२॥
तदा नीरमयी गङ्गा बभूव पापनाशिनी॥१०३॥

शुक कहते हैं—देवाधिदेव महादेव के ऐसा संगीत आरंभ करने पर भगवान् नारायण उनका आलिंगन करके रसतादात्म्य के कारण स्वयं रसरूपेण परिणत होकर आसन से अधः आ गये। भगवान् श्री हरि का तेजोमय शरीर द्रवीभूत होकर समस्त वैकुण्ठधाम को प्लावित करने लगा। तब ब्रह्मा आदि समस्त देवता निद्रा से तत्काल चैतन्य लाभ करने वाले की तरह चैतन्य लाभ करके मन ही मन चिन्तित हो उठे—"यह क्या?"। यह जल कहां से उत्पन्न हो गया? भगवान् नारायण कहां चले गये? उनको सिंहासन पर भी नहीं देखा जा रहा है!' कुछ काल एवंविध चिन्ता करके उन लोगों ने तय किया कि यह शिवसंगीत का ही प्रतिफल है। ब्रह्मा ने यह निश्चय करके अपने गंगायुक्त कमण्डलु को आवरण रहित करके कहा—"संगीत भी ब्रह्मसम्भूत ब्रह्ममय है तथा देव हरि भी स्वयं ब्रह्म होकर भी द्रवीभूत हो गये। हे ब्रह्ममयी गंगा! इस जलराशि का संवरण करो।" तदनन्तर ब्रह्मदेव के कमण्डलु का स्पर्श होते ही देखते-देखते समस्त जल गंगा के साथ मिश्रित हो गया। तभी से देवी गंगा पापनाशक जलमय हो गयी। (क्योंकि उसमें नारायण द्रवरूपेण मिलित हैं)।।९६-१०३।।

यथैवात्मानमाश्रित्य शरीरं प्रविराजते। तथा गङ्गां समाश्रित्य हरेर्देहद्रवो बभौ॥१०४॥

कमण्डलौ तदा ब्रह्मा निहितं ब्रह्म दुर्लभम्। नीत्वा ययौ ब्रह्मलोकं शिवोऽपि प्रययौ तथा।
अन्ये च वासवाद्याश्च ययुः स्वस्थानमुत्तमम्॥१०५॥

जिस प्रकार से आत्माश्रय के कारण शरीर शोभित होता है, तदनुरूप द्रवमय भगवान् हरि का आश्रय लेकर गंगा का जल दीप्तिमान हो गया। तत्पश्चात् भगवान् चतुरानन ब्रह्मा इस देवदुर्लभ कमण्डलु को लेकर ब्रह्मलोक चले गये तथा देवदेव महादेव तथा देवराज इन्द्र प्रभृति सभी देवगण अपने अपने स्थान चले गये।।१०४-१०५।।

शिवगानप्रभावेण द्रवीभूतोऽच्युतोऽभवत्। इति वै घोषयामासुः सर्व्वं त्रैलोक्यवासिनः॥१०६॥
तदा लक्ष्मीसरस्वत्यौ विनाभूते बभूवतुः। हरेर्देहग्रहं भूयो ह्यपेक्षन्त्यौ स्थिते तथा॥१०७॥
कैलासे तं शिवं देवी गङ्गा वै शिश्रियेतराम्। साकारत्वफलं तत्तु यद्गङ्गा शिवभाविनी॥१०८॥
इयं ते कथिता गङ्गा हिमालयसुता शुभा। कमण्डलौ स्थिता देवी ब्रह्मणो ब्रह्मलोकगा॥१०९॥
सैव विष्णोः पदं प्राप्ता वामनस्य महात्मनः। ततो विष्णुपदाद्भूता समायाता धरातलम्।
राज्ञो भगीरथस्येष्टं संपूरयितुमिच्छती॥११०॥
ततो भूमेरधो गत्वाऽपावयत् सगरात्मजान्। ततोऽनन्तं समासाद्य विरराम जलावधि॥१११॥
इत्येतत् कथितं विप्र संक्षेपात् सकलं वचः।
श्रोतुमिच्छसि किं भूयः पृच्छ तन्मां वदामि तत्॥११२॥

।इति श्रीबृहद्धर्मपुराणे मध्यखण्डे शिवगानं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।।



तब समस्त त्रिलोकवासी को यह घोषणा हो गयी कि भगवान् नारायण संगीत के प्रभाव से द्रवीभूत हो गये। लक्ष्मी-सरस्वती इस प्रकार वहां से भगवान् का दर्शन न मिलने के कारण अन्तर्हित होकर पुनः हरि के शरीरी होने की प्रतीक्षा करने लगीं। गंगा कैलास जाकर शंकर की सेवा करने लगीं। शंकर की शिवप्रिया हो गयीं। यह उनके पुनः शरीर धारण का फल है। हे द्विजप्रवर! लोकों को पावन करने वाली हिमालय सुता गंगादेवी जिस प्रकार ब्रह्मा के कमण्डलु में स्थित होकर ब्रह्मलोक गयीं, वह सब आपसे कह दिया। तदनन्तर गंगा ने विष्णु चरणाश्रय लेकर भूपति भगीरथ के मनोरथ की पूर्ति हेतु पृथिवी पर आगमन किया। तदनन्तर पाताल में प्रवेश करके सगर पुत्रों को मुक्ति देकर अनन्तदेव के पास जलरूपेण विराजित हो गयीं। हे विप्र! मैंने संक्षेप में समस्त विवरण कहा। अब पुनः आप क्या सुनना चाहते हैं?।।१०६-११२।।

।।चतुश्चत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

बलि उपाख्यान, अदिति की तपस्या

जैमिनिरुवाच

कथं विष्णुपदं प्राप्ता गङ्गा ब्रह्मकमण्डलोः। कथं वा वैष्णवात् पादाद्गङ्गायाता धरातलम्॥१॥
कथं वाऽराधयद्गङ्गां देवीं राजा भगीरथः। कथं सगरपुत्रान् वाऽपावयत् परमेश्वरी॥२॥
विरराम कुतो देवी प्रश्नानेतान् वदस्व मे। संक्षेपात् ये त्वया प्रोक्तास्तेषां पुष्पमुदाहर॥३॥

जैमिनी कहते हैं—हे भगवान! देवी गंगा ने किस प्रकार से विष्णुपद लाभ किया, कैसे वे विष्णुपद से धरातल पर प्रवांहित हो गयी? भूपति भगीरथ ने कैसे उनकी आराधना सम्पन्न किया? किस प्रकार से उन परमेश्वरी ने सगर राजा के पुत्रों को पावन किया? वे कहां तक प्रवाहित होकर निवृत्त होती हैं? कृपया यह सब विषय कहें। आपने जो सब विषय संक्षेप में कहा था, उसे विस्तार से कहिये।।१-३।।

शुक उवाच

मरीचिर्ब्रह्मणः पुत्रस्तस्माज्जातस्तु कश्यपः। हिरण्यकशिपुर्जातः कश्यपाद्दितिगर्भभूः॥४॥
तस्य पुत्राश्च चत्वारः प्रानुसंपूर्व्वकेवलाः॥५॥
ह्लादास्तेषां तु प्रह्लादो ज्येष्ठो विष्णुपरायणः। विरोचनस्तस्य पुत्रो वलिस्तस्याभवत्सुतः॥६॥
स इन्द्रादीन्देवगणानभिभूय महाबलः। भूरादिं बुभुजे लोकं सर्व्वदैत्यगणेश्वरः॥७॥
अदितिर्देवमाता वै पुत्राणां दुःखशान्तये। पत्याज्ञया हरिं देवमाराध्यं समराधयत्॥८॥
वने सा निर्जने क्वापि तपः परममास्थिता। आराधयामास हरिं वरदं जगदीश्वरम्॥९॥

शुक कहते हैं—मरीचि नामक एक ब्रह्मपुत्र थे। उनसे कश्यप का जन्म हुआ। तदनन्तर कश्यपपत्नी दिति के गर्भ से हिरण्यकशिपु नामक दैत्य उत्पन्न हो गया। उक्त दैत्यप्रवर के ४ पुत्र थे। उनमें परम विष्णुपरायण प्रहलाद सर्वज्येष्ठ थे। प्रहलाद का पुत्र विरोचन था, जिसका पुत्र था बलि। महाबली पराक्रमी बलि ने संग्राम में सभी देवगण को पराजित करके स्वयं भूर्लोकादि सभी लोकों का उपभोग प्रारम्भ कर दिया। तब देव माता अदिति पुत्रों के दुःखशमनार्थ पति की आज्ञा लेकर अरण्य में तपस्या द्वारा भगवान् हरि की आराधना करने लगीं।।४-९।।

तां तदा तपसाविष्टां विलोक्य दितिनन्दनाः। देवमूर्त्तिधरा भूत्वा शठा अदितिमब्रुवन्॥१०॥

एक बार दुष्टभाव परायण दैत्यगण उनको ऐसा तपःश्चरण करते देखकर वहां देवताओं का रूप धारण करके आये तथा देवी को देखकर कहने लगे।।१०।।

दैत्या ऊचुः

देवा वयं नमस्यामो भवत्याश्चरणद्वयम्। इदमेव पदद्वन्द्वमस्माकं कुशलार्थकम्॥११॥
कथं तपस्यसि प्रायो देहकर्षणमुग्रकम्॥१२॥

त्वञ्चेत्तिष्ठसि जीवन्ती तदा नो मङ्गलं महत्। त्वञ्चेदुपेक्षसे देहं कुतो नः कुशलं भवेत्॥१३॥
यस्य नास्ति गृहे माता भार्य्या वा प्रियवादिनी। अरण्यन्तेन गन्तव्यं यथारण्यन्तथा गृहम्॥१४॥
यस्य नास्ति गृहे माता भार्य्या वाक्यकरः सुतः। विरक्तश्च परिवारो गन्तव्यं तेन वै वनम्॥१५॥
किमस्माकन्तु राज्येन किं सुखेनात्मनापि वा। यत्र त्वं महताविष्टा तपसोपेक्षसे तनुम्॥१६॥
अप्राप्तदुःखा भवती ह्यस्मदर्थेऽतिदुःखिनी। तपस्यति यतो मातस्ततो नो धिक् प्रवर्त्तताम्॥१७॥

दैत्य कहते हैं—हे माता! हम देवता हैं। आप को प्रणाम करते हैं। आपके चरणद्वय ही एकमात्र हमारे मंगल के कारण हैं। इसलिये आप उपवास से देह शुष्क करके ऐसा कठोर तप क्यों कर रही हैं? आपके जीवित रहने पर ही हमारा अत्यन्त मंगल होगा। अतः आप देह की यह उपेक्षा कर रही हैं, इससे हमारा क्या मंगल होगा? देखें, जिसके गृह में माता नहीं हैं, भार्या अप्रिय बोलने वाली है, उसका तो वनगमन ही उचित है। क्योंकि उसका घर स्वयं वनभूमि हो जाता है। जिसके गृह में माता-भार्या नहीं है, पुत्र वाक्यकर (जवाब देने वाला) है, वह तो परिवार से विरक्त होकर वन चला जाये। आप तो यह कठोर तप करके अपने शरीर के प्रति अनादर प्रकट कर रही हैं, ऐसे हाल में हमारे राज्य, सुख तथा जीवन का क्या प्रयोजन? हे माता! आप दुःख सहन करने योग्य नहीं हैं। आप दुःखित हृदय से हमारे लिये तप कर रही हैं, तब हमें अपने ऊपर धिक्कार है!।।११-१७।।

ईश्वरः सुखदुःखानां कर्त्ता नान्योऽस्ति कुत्रचित्।
अनाराधित एवासौ कर्त्ता स्यात् सुखदुःखयोः॥१८॥

अस्माकं सुखदुःखं यदस्ति स्वोपार्जितं पुरा। तत् किं त्वं तपसोग्रेण शक्ता वारयितुं भवेः॥१९॥
तस्मात्त्यक्त्वा तपश्चैतत् स्मर गेहे हरिं प्रभुम्। चिरं वर्त्तस्व हे मातस्तद्राज्यं नो महत्तरम्॥२०॥
अस्माकं दुरदृष्टन्तु राज्यनाशाय चास्थितम्। त्वं तदात्मविनाशेन न वर्द्धय परेष्टदम्॥२१॥

हे माता! मात्र जगदीश्वर प्रभु ही प्राणीगण के सुख-दुःख के कर्त्ता हैं। अन्य कोई नहीं हैं। तथापि वे तो बिना आराधना किये ही सुख-दुःख का विधान करते हैं। क्योंकि जीवगण का सुख-दुःख तो पूर्वजन्मार्जित कर्म का फल है। आप उसका निवारण कठोर तपश्चरण से कैसे करेगी? हे माता! आप इस उग्र तपः का त्याग करके गृह में ही स्थित होकर हरि का रात दिन भजन करें। हे माता! आप चिरकाल पर्यन्त सुखपूर्वक जीवन स्थायी रखें। यही हमारा राज्यलाभ है। आप अपना आत्मविनाश करके हमारे राज्यविनाशक दूरवर्ती अदृष्ट को और न बढ़ायें। उसमें हमारा मंगल नहीं है।।१८-२१।।

अदितिरुवाच

यूयं सदा मम प्रायः सर्व्वमङ्गलचिन्तकाः।
देवा अपि च यूयं वै ध्वस्तराज्याः स्थ चाचिरात्॥२२॥

अहं हि वः परीहास्या परिहासं यथापि च। देवा इवापातदुःखा दुःखभाजः स्थ सर्व्वदा॥२३॥
अहमाराधयामीशं विष्णुं प्रभुमनामयम्। कर्त्तारं सुखदुःखानां धिगित्येवास्तु वोऽपि च॥२४॥

(दैत्यों को पहचानकर) दैत्यों का वाक्य श्रवण करके अदिति कहती हैं—तुम लोग सदैव मेरा मंगल चिन्तन

करते रहते हो। तुम शीघ्र ही देवगण द्वारा राज्य रहित किये जाओगे। मैं तुम लोगों के परिहास का पात्र नहीं थी, तब भी तुम लोगों ने मेरा परिहास किया। अतएव शीघ्र ही तुमलोग देवगण जैसा दुःख प्राप्त करोगे। मैं सुख-दुःख के कर्त्ता अनामय प्रभु हरि की आराधना कर रही हूं। तुम उसका उपहास करने आ गये। तुम सबको धिक्कार है।।२२-२४।।

शुक उवाच

इत्युक्तास्ते दैत्यगणा असिद्धार्थाः क्रुधान्विताः।
दन्तैर्दन्तान् विनिष्पीड्य निश्वसन्तो मुहुर्मुहुः॥२५॥
उद्गीर्य्य मुखतो वह्निं निश्वासवायुनेरितम्। वनं तज्ज्वालयामासुः समन्तात्तद्दिधक्षया॥२६॥
वनदाहभयाद्दैत्यास्ततो याता बलिं ययुः। सर्व्वं निवेदयामासुर्दग्धा चादितिरित्ययिं॥२७॥
इह त्वरण्ये देवानां मातरं दावमध्यगाम्। सुदर्शनेन स्वास्त्रेण ररक्ष हरिरव्ययः॥२८॥
ततोऽदितिस्तपश्चेरे महोग्रं हरिमीक्षितुम्। वायुमात्राशना चोर्द्धं तिष्ठत्यङ्गुष्ठस्पृष्टभूः॥२९॥
एवं वर्षे गते दिव्ये श्रीहरिर्देवमातरम्। दर्शयामास चात्मानं परमाद्भुतविग्रहम्॥३०॥

शुक कहते हैं—अदिति का यह वाक्य सुनकर दैत्यगण भग्न मनोरथ होकर दांतों से दांत दबाते तथा घन निःश्वास छोड़ते समस्त वन को दग्ध करने हेतु मुखमण्डल से निकली अग्नि से वनमण्डल को प्रज्वलित करने लगे। तब वन में जल जाने के भय से वहां से भागकर दैत्यराज बलि के पास गये तथा उससे समस्त घटनाचक्र का वर्णन किया। इधर अव्यय भगवान् हरि ने सुदर्शनास्त्र द्वारा अदिति की अग्नि से रक्षा की। तब अदिति भगवान् हरि की दर्शन लालसा हेतु पृथिवी पर मात्र अंगूठे के बल खड़ी होकर उग्राति उग्र तप करने लगीं। इस प्रकार एक दिव्य वर्ष व्यतीत होने पर प्रभु हरि ने अपने अत्यद्भुद् कलवेर द्वारा अदिति को दर्शन प्रदान किया।।२५-३०।।

देवं मरकतश्यामं पीतवाससमच्युतम्। श्रीमद्दीर्घचतुर्वाहुं तप्तकाञ्चनकुण्डलम्॥३१॥
पुण्डरीकाभिरामाक्षं किरीटशोभिमौलिनम्। स्मेरस्फुरद्वक्त्रपद्ममालोलतुलसीस्त्रजम्।
आरूढ़विनतापुत्रं ददर्शादितिरच्युतम्॥३२॥

उन प्रभु का शरीर मरकत मणि की तरह मनोहर श्यामवर्ण था तथा उनकी परम सुन्दर दीर्घ चार भुजा शोभित हो रही थी। उन पद्मपलाशलोचन श्रीकृष्ण की कमर में पीतवस्त्र शोभित था। कानों में उज्वल स्वर्णकुण्डल, मस्तक पर रत्नमय मुकुट, गले में पद्म एवं तुलसी की माला विराजमान थी। वे गरुड़ पर आसीन थे। उनका मुखकमल ईषत् हास्य युक्त था। उनकी रूप माधुरी असीम थी।।३१-३२।।

दर्शनोत्पादितानन्दभारनम्रेव सा तदा। प्रणतादितिरेषाहं देवमाताऽतिदुःखिनी॥३३॥
क्वाहमल्पमतिर्योषित् क्व त्वं त्रैलोक्यनायकः। अनुग्रस्वभावात्मा प्राप्तोऽसि मम दर्शनम्॥३४॥
तस्मात्त्वां प्रणमामीशं कमलापतिमव्ययम्। अभीष्टपूरकस्त्वन्तु स्वभावेनैव किं वदे॥३५॥
प्रसीद लोकेश (जगन्निवास) स्थौल्येन सौक्ष्मेण च व्यापृतात्मन्।
गुप्तस्त्रिलोकेषु स्वतः प्रसिद्धस्त्वं कालरूपी जगतां विधाता॥३६॥

त्वं सत्वरूपी जगदेकबन्धुरतर्क्यरूपो भगवाननन्तः।
कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणो महानलात्मा शशिसूर्य्यरूपः॥३७॥
यस्त्वं हि योगेन दृढ़ेन योगिभिः प्रलक्ष्यसे विष्णुरनुस्वरूपः।
वपुःषु सर्व्वेषु भवाननेको वह्निर्यथा दारुषु ते नमोऽस्तु॥३८॥
सुभाससे स्वात्मकबोधरूपिणे (स्वरूपिणे) सर्व्वंजनेषु यस्त्वम्।
तस्मै नमस्ते गुरवे पराणवे महात्मने वेदनताय विष्णो॥३९॥

तब अदिति ने इन भगवान् का दर्शन किया तथा दर्शन जनित आनन्द से पूर्ण हो नतशिर स्थिति में उनकी स्तुति करने लगीं। वे अत्यन्त दुःखित होकर बोलीं—हे प्रभो! मैं अत्यन्त दुःखी देवमाता अदिति आपको प्रणाम करती हूं। हे देव! मैं अल्पबुद्धि स्त्री हूं। आप त्रैलोक्य नियन्ता हैं। मेरे आपके बीच अनेक प्रभेद हैं। आप स्वभावतः कृपापरायण होकर मुझे दर्शन दे रहे हैं। आप त्रैलोक्य के ईश्वर, कमलाकान्त तथा अव्यय हैं। आपको प्रणाम। आप स्वभावतः जनगण की अभीष्ट पूर्ति करते हैं और मैं आपसे क्या कहूं? हे लोकेश! जगन्निवास! आप प्रसन्न हो जायें। आप स्थूल-अथच सूक्ष्म हैं। आप त्रिलोक में गुप्त होकर भी प्रख्यात हैं। कोई भी आपके स्वरूप को नहीं जान सकता। आप कालरूपी तथा जगद्बन्धु हैं। आपका कहीं अन्त नहीं होने के कारण आपको अनन्त कहा गया है। चन्द्र-सूर्य-अग्नि आपकी ही मूर्त्ति हैं। आप कूटस्थ आद्य तथा पुराण पुरुष हैं। योगीगण कठोर योगाभ्यास से आपकी विष्णुमूर्त्ति का दर्शन पाते हैं। जैसे अग्नि विभिन्न काष्ठ में जलकर विभिन्न रूपी हो जाता है, उसी प्रकार आप एक होकर भी निखिल जीवदेह में स्थित हैं। आप समस्त प्राणीगण में ज्ञानरूपेण स्थित रहते हैं। हे विष्णु! वेदचतुष्टय आपका ही स्तवगायन करते है। आप सर्वजगत् के गुरु, परमात्मा हैं। आपको पुनः पुनः प्रणाम।।३३-३९।।

शुक उवाच

इत्यादि स्तुवतीं देवमातरं तपसा कृशाम्। ऊचे मधुरया वाचा दैवकीनन्दनोऽदितिम्॥४०॥

हरिरुवाच

वरं वृणु महाभागे वरदोऽस्मि तवागतः। तपसा परितुष्टोऽस्मि स्तवेनानेन चानघे॥४१॥

शुक कहते हैं—देवकीनन्दन श्री हरि ने तप से दुर्बल देह देवमाता अदिति की स्तुति सुनकर मधुर वचन से कहा—"हे महाभागे! मैं तुमको वर देने हेतु आया हूं।" हे निष्पाप! इच्छित वर याचना करो। मैं तुम्हारी तपस्या तथा स्तुति से अतिशय प्रसन्न हूं।।४०-४१।।

अदितिरुवाच

नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर। अहं वरार्थिनी सत्यं त्वञ्च देवो वरप्रदः॥४२॥
अन्तर्यामी भवान् कस्मान्मां पृच्छति विशेषवित्। स्वयमेव हृदिस्थं मे जानीषे यदुनन्दन॥४३॥
स्वयं मे हृदयं ज्ञात्वा वरं देहि यथोचितम्। (अहन्तु वरदेशानं त्वां मोक्षपरिसेवितम्॥४४॥
न वक्ष्यामि वृथावाक्यं राज्यादियाचनार्थकम्। बहुधा वासना देव शरीरधारणाफलम्॥४५॥
त्वयेव ग्राहितं जीवं नैव त्यजति दुस्त्यजम्। तस्मात्त्वयैव विज्ञेन वरोदेयो यथारुचि।
ममाभिप्राय एषोऽद्य त्वां प्रप्स्यामि यथोचितम्॥४६॥)

अदिति कहती हैं—हे शंख-चक्र-गदाधारी नारायण! आपको प्रणाम! सत्य ही मैं वर प्रार्थिनी हूं तथा आप भी वरदाता हैं। हे देव! आप तो अन्तर्यामी होकर क्यों मुझसे पूछते हैं? हे यदुनन्दन! आपने तो स्वयं मेरा हृदयगत अभिप्राय जाना है। अतः जो उचित हो आप करें। आप समस्त वर देने वालों के भी ईश्वर हैं। मुक्ति आपकी सेविका है। अतः मैं आपसे राज्यलाभ आदि व्यर्थ प्रार्थना क्यों करूं? हे देव! आप जीवगण को उनकी विविध वासनार्थ देह प्रदान करते हैं, तथापि इन वासनाओं का त्याग कर सकना अतीव दुर्लभ है। उसे कोई त्याग नहीं कर पाता। आप सर्वज्ञ हैं। अतएव आप यथारुचि वर प्रदान करिये। मेरी आशा है कि मैं आपको यथोचित रूप से पा सकूं।।४२-४६।।

हरिरुवाच

तथास्तु देवमातस्ते यत्त्वया वाञ्छितं हृदा। इन्द्रादयस्ते पुत्रा वै राज्यं प्राप्स्यन्ति नान्यथा॥४७॥
तवगर्भे लब्धजन्मा राज्यं बलिहृतं तव। दास्यामि तव पुत्राय पुनरिन्द्राय सर्व्वथा॥४८॥

श्री हरि कहते हैं—हे देवमाता! तुमने जो कामना किया है, वही हो। तुम्हारे इन्द्रादि पुत्रगण पुनः निःसंदिग्ध रूपेण राज्यलाभ करेंगे। मैं तुम्हारे गर्भ से जन्म लेकर बलिद्वारा हरण किया राज्य इन्द्र को प्रदान करूंगा। यह निःसंदिग्ध है।।४७-४८।।

शुक उवाच

एवं श्रुत्वा हरेर्वाक्यं देवमातादितिस्तदा। कम्पमानहृदा भीता हरिं वचनमब्रवीत्॥४९॥

अदितिरुवाच

प्रभो विश्वेश विश्वात्मन् वरेणालं मतं मम। कथं त्वां धारयिष्यामि स्वगर्भे जगदीश्वरम्॥५०॥
(त्वं विश्वमूर्त्तिभगवान् विश्वव्यापी पुमान् परः। यस्य ते लोमकूपस्थो ब्रह्माण्डप्रचयः प्रभो।
त्वां कथं धारयिष्यामि स्वगर्भे जगदीश्वरम्॥५१॥)
अहन्तु कृपणायोषित् तापसी च कृशोदरा। कथं त्वां धारयिष्यामि स्वगर्भे जगदीश्वरम्॥५२॥
प्रसीद जगतां नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम। वरो वरं विरमतां कथं धार्य्यो मया भवान्॥५३॥

शुक कहते हैं—देवमाता अदिति ने भगवान् का यह कथन सुनकर भयकम्पित हृदय से कहा—हे प्रभो! विश्वेश! विश्वात्मन्! मैं यह वर नहीं चाहती। आप विश्वमूर्त्ति विश्वव्यापी परमपुरुष हैं। आपके रोमकूपों में अखिल ब्रह्माण्ड स्थित है। मैं आपको किस प्रकार से अपने उदर में धारण करूंगी? हे जगन्नाथ! एक तो मैं सामान्य क्षुद्र स्त्री जाति, ऊपर से तपस्वी कैसे! आपके के उदर में स्थित होने पर गर्भ रक्षा करूंगी। हे गोविन्द, हे पुरुषोत्तम! ऐसा वर दूर ही रहें। मैं तो आपका मन में चिन्तन कर सकूं, इसकी भी क्षमता मुझ में नहीं है।।४९-५३।।

भगवानुवाच

माभैर्मातर्देवमातः कथं मां न धरिष्यसि। मां ते धर्त्तुं कथं चित्ते भयं प्राविशदत्र हि॥५४॥
अहञ्चेज्जगदीशानः प्रवेक्ष्याम्युदरे तव। इति त्वमपि शक्तास्या धर्त्तुं मां जठरे स्वके॥५५॥
सर्व्वतः समचित्तात्मा सदा सर्व्वोपकारकः। सत्यवादी क्षमाशीलो मां धारयति वैष्णवः॥५६॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः। सर्व्वत्रसमभावो यो मां धारयति नित्यशः॥५७॥
पितुर्मातुः प्रीतिकरो गुरुभक्तः प्रियम्वदः। शिवपूजारतः साधुर्मां धारयात नित्यशः॥५८॥
भोजने शयने याने कथने पुण्यकर्म्मसु। यः सदा मत्प्रियं कर्त्ता स मां धारयति नित्यशः॥५९॥
(यः पुराणार्थशुश्रूषुः साधुसङ्गममीहकः। तुलसीधारणपरः स मां धारयति नित्यशः॥६०॥
यः पुमान् पुत्रवित्तादौ पद्मपत्रजलोपमः। स वै भागवतो ज्ञेयः स मां धारयति नित्यशः॥६१॥)

अदिति का यह वाक्य सुनकर भगवान् ने कहा—हे माता! देव जननी! आप भय न करें। आप अवश्य मुझे गर्भ में धारण करेगी। आप क्यों मुझें गर्भ में धारण करने से शंकित हैं? मैं जगदीश्वर होकर भी यदि (स्वेच्छा से) आपके गर्भ में प्रवेश करूं तब आप उसे अवश्य धारण करेंगी। जो सबके प्रति समभावापन्न है, सबका उपकारी, सत्यवादी, क्षमावान् है, वह मुझे धारण कर सकता है। जिसका चित्त दुःख से उद्विग्न नहीं है, सुख की स्पृहा नहीं रखता, सर्वत्र समदर्शी है, वह मुझे सतत् धारण करता है। जो व्यक्ति पिता-माता को प्रसन्न रखने वाला, गुरुभक्त, प्रियवक्ता तथा शिवपूजारत है, वह साधुशील युक्त व्यक्ति सदा मुझे धारण करता है। जो शयन, भोजन, गमन, कथन, पुण्यकर्म, सम्पादन आदि सर्वावस्था में मेरा प्रिय करता है, वह निरन्तर मुझे धारण करता है। जो व्यक्ति पुराण का अर्थ सुनने में लोलुप है, साधु सहवासी तथा तुलसीधारण तत्पर है, वह नित्य मुझे धारण करता है। धन तथा पुत्रादि में जो पद्मपत्र पर पड़े जल जैसा अलिप्त भाव रखता है, वह परम वैष्णव मुझे नित्यधारण कर सकता है।।५४-६१।।

गङ्गास्नानरतो यस्तु ब्राह्मणे भक्तिसंयुतः। स वै भागवतो ज्ञेयः स वै धरति नित्यशः॥६२॥
यश्च रुद्राक्षमालावान् रुद्रविष्णुप्रपूजकः। स वै भागवतो ज्ञेयः स वै धरति नित्यशः॥६३॥

जो गंगा स्नानरत, ब्राह्मण के प्रति अचला भक्ति रखने वाला परम वैष्णव है, वह सदा मुझे धारण करता है। जो रुद्राक्ष मालाधारी है तथा नित्य हरि-हर पूजा तत्पर रहता है, वह परम वैष्णव सदा मुझे धारण करता है। जिसकी आसक्ति चण्डी पाठ तथा जप में है वह परम वैष्णव नित्य मुझे धारण करता है।।६२-६३।।

यश्चण्डीपाठनिरतश्चण्डीजपपरायणः। स वै महाभागवतो मां धारयति नित्यशः॥६४॥
(यः शास्त्रज्ञः स्वयं धर्म्मानाचरेन्मत्समाश्रयः। स वै भागवतो ज्ञेयः स मां धरति नित्यशः॥६५॥
यो वै मदीय नामानि सदा गायति नित्यदा। स वै भागवतो ज्ञेयः स मां धरति नित्यशः॥६६॥
रामनारायणानन्त मुकुन्द पुरुषोत्तम। इति गायति यो नित्यं स मां धरति नित्यशः॥६७॥
पद्मनाभ कृपानाथ गुरो श्रीपुरुषोत्तम। इतीरयति यो नित्यं स मां धरति नित्यशः॥६८॥
गरुड़ध्वज गोविन्द मधुसूदन केशव। इतीरयति यो नित्यं स मां धरति नित्यशः॥६९॥)
शिव शङ्कर रुद्रेश नीलकण्ठ त्रिलोचन। इतीरयति यो नित्यं स मां धरति नित्यशः॥७०॥

जिसे शास्त्रज्ञान है, जो व्यक्ति मेरा आश्रय लेकर समस्त धर्मकार्य का अनुष्ठान करता है, वह मेरा परमभक्त है। वह सर्वदा मुझे धारण करता है। जो जन सर्वदा मेरे नाम गायन में तत्पर हैं, वे परम वैष्णव मुझे सदा धारण करते हैं। जो सदा हे राम, हे नारायण, हे अनन्त, हे मुकुन्द, हे मधुसूदन! नाम का उच्चारण करता है, वह मुझे नित्यधारण करता है। जो सर्वदा हे गरुड़ध्वज, गोविन्द, मधुसूदन, केशव नामोच्चार करता है, वह सदा मुझे धारण करता है। जिसके मुख से हे शंकर, हे ईश, नीलकण्ठ, त्रिलोचन! यह नामोच्चार होता है, वह सदा मुझे धारण किये रहता है।।६४-७०।।

वृषकेतो भवेशान श्रीकण्ठ पार्व्वतीपते। इतीरयति यो नित्यं स मां धरति नित्यशः॥७१॥
(चन्द्रमौले वासुदेव हरे हर हरित्पते। इतीरयति यो नित्यं स मां धरति नित्यशः॥७२॥
महाविपत्तियुक्तोऽपि यो न धर्म्मं जहाति वै। स वै देवप्रियो नित्यं स मां धरति नित्यशः॥७३॥)
कर्म्मभूमिमिमां प्राप्य यो मां भजति भक्तिमान्। स वै देवप्रियो नित्यं स मां धरति नित्यशः॥७४॥
दुर्गेति भद्रकालीति वैष्णवी चण्डिकेति च। मुदा गायति यो नित्यं स मां धरति नित्यशः॥७५॥
पतिपूजापरा या स्त्री सद्भक्ता च दयान्विता। सुशीला साधुचित्ता च स मां धरति नित्यशः॥७६॥
अहं महानहं दीर्घो वामनोऽहमहं कृशः। स्थूलश्चाहमनुश्चाहं सुरूपश्च कुरूपकः॥७७॥
यादृशं मां धर्त्तुमीशा भविष्यसि वृणुष्व तत्। तेन रूपेण ते साध्वि भविष्यामि सुतोऽदिते॥७८॥

जिसके मुखमण्डल से नित्य हे वृषाकपि, ईशान, भव, पार्वतीपति शब्द निर्गत होता है, वह नित्य मुझे धारण करता है। जो व्यक्ति सर्वदा हे चन्द्रमौले, वासुदेव, हरित्पते! नाम का गायन करता है, वह सतत् मुझे धारण करता है। जो महाविपदा में पड़कर भी धर्मत्याग नहीं करता, वह देवगण का प्रिय होता है। वह सर्वदा मुझे धारण करता है। जो कर्मभूमि भारत में जन्म लेकर नित्य भक्ति के साथ मेरा भजन करता है, वह मुझे धारण करता है। जिसके मुख से सदा दुर्गा, भद्रकाली, वैष्णवी, चण्डिका नाम का गायन होता है, वह सदा मुझे धारण करता है। जो रमणी सदा पतिसेवारत है, साधु के प्रति जिसकी भक्ति है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, वह नित्य मुझे धारण करती है। मैं ही महान्, मैं ही दीर्घ, मैं ही वामन, मैं ही कृश, मैं ही स्थूल, मैं ही सूक्ष्म तथा मैं ही कुरूप हूं। मैं ही सुरूप हूं। हे साध्वी अदिति! आप जैसे भी मुझे धारण करना चाहें, मैं उसी रूप में आपका पुत्र हो जाऊंगा।।७१-७८।।

अदितिरुवाच

वरदो यदि मे देव वरार्हा यदि वाप्यहम्। तदा मे वामनो भूत्वा पुत्रत्वं याहि केशव॥७९॥
नातिस्थूलो नातिकृशो यथा त्वां धर्त्तुमुत्सहे॥८०॥
स्वयं वामनको भूत्वा खण्डयित्वा वलिं हरे। इन्द्रस्य राज्यमिन्द्राय दातुमर्हसि केशव॥८१॥
मद्गर्भे तव जातस्य बलिं खण्डयतस्तथा। कीर्त्तिस्ते विपुला लोकमलघ्ना जागरिष्यति॥८२॥

अदिति कहती हैं—हे देव! यदि आप मुझे वरयोग्य समझें, तब हे देव! हे केशव! जो न तो अति कृश हो, न अतिस्थूल हो, ऐसी वामन मूर्त्ति में मेरे पुत्र हो जायें। हे केशव! आप स्वयं वामनरूपेण आविर्भूत होकर बलि को पराजित करके पुनः इन्द्र का राज्य इन्द्र को प्रदान करें। आप मेरे गर्भ से उत्पन्न होकर बलि को परास्त करेंगे, आपकी यह पापहारी कीर्त्ति जगत् में चिरकाल पर्यन्त व्याप्त रहेगी।।७९-८२।।

शुक उवाच

इत्युक्तो देवमात्रा स हरिर्नारायणः प्रभुः। शिवगानान्नष्टदेहो देहार्थी तां तथेति वै॥८३॥
उक्त्वा चान्तर्दधे सद्यः पश्यन्त्या अदितेः पुरः। अदितिश्च ययौ काले सेवितुं कश्यपं पतिम्॥८४॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डेऽदितिवरप्राप्तिर्नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः।।

शुक कहते हैं—देवमाता अदिति की प्रार्थना सुनकर भगवान् नारायण ने शिवसंगीत से अपना देहनाश हो जाने पर पुनः देहधारणार्थ अदिति से तथास्तु कहा तथा तत्काल अन्तर्हित हो गये। तदनन्तर अदिति यथाकाल पति कश्यप की सेवा हेतु चली गयीं।।८३-८४।।

।।पञ्चचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

अदिति कृत विष्णुस्तव, वामन्जन्म

शुक उवाच

अथ काले देवमाता देवी कश्यपभाविनी। कश्यपात् गर्भमाधत्ते प्राची दिगिव भास्करम्।।१।।
अदितिं गर्भिणी श्रुत्वा सर्व्वे शक्रादयः सुराः। स्तोतुं प्रचक्रमुर्विष्णुमलक्ष्या असुरादिभिः।।२।।

शुक कहते हैं—तदनन्तर कुछ काल के उपरान्त कश्यप पत्नी अदिति ने उसी प्रकार गर्भधारण किया जिस प्रकार पूर्वदिशा सूर्य को धारण करती है। इन्द्रादि देवगण अदिति को गर्भवती होने का समाचार पाकर अलक्षित भाव से वहां आकर गर्भस्थ भगवान् विष्णु का स्तव करने लगे।।१-२।।

देवा ऊचुः

ॐ नमः कृष्णाय जगदेकनाथाय गोविन्द पुरुषोत्तम वासुदेव निखिलजगदघसङ्घातघातक विविधपापनिचयनिधनकरभास्कर देवाधिदेव वैकुण्ठपुरुषोत्तम सकलसुरनरकिन्नरगणशरीरेषु त्वङ्मनश्चक्षुःश्रवणरसज्ञाघ्राणाधिष्ठात्रे ज्ञानरूपाय वाक्पाणिपादपायूपस्थमनोऽधिष्ठात्रे कर्म्मरूपाय महात्मने श्रीपतये निर्म्मलाय ते नमः।।३।।

देवता कहते हैं—हे गोविन्द, पुरुषोत्तम, वासुदेव! आप जगत् के एकमात्र ईश्वर हैं! आपको प्रणाम! हे समस्त जगत् का पाप हरण करने वाले! आप सूर्यदेव की तरह पापरूप हिमपुंज का नाश करते हैं। हे देवाधिदेव, वैकुण्ठ, पुरुषोत्तम! आप समस्त जगत् के अग्रगामी हैं। आप निखिल प्राणीगण के शरीर में मनः-चक्षु-कर्ण-रसना तथा घ्राणरूप पंच ज्ञानेन्द्रिय रूप तथा वाक्-पाणि-पाद-पायु तथा उपस्थरूप पञ्चकर्मेन्द्रिय की अधिष्ठात्री देवतारूपेण विराजित हैं। आप ही जीवगण के चैतन्यरूप, निर्मल, श्रीपति हैं। अतः आपको बारम्बार प्रणाम।।३।।

एवञ्चाहरहर्देवाः स्तुवन्ति जगदीश्वरम्।।४।।
काले प्रादुरभूद्देवः कश्यपस्य गृहे प्रभुः। भवाय विप्रदेवानामभवाय बलेरपि।।५।।
भाद्रे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां द्विजपुङ्गव। श्रवणानक्षत्रयुक्ते मुहूर्त्तेऽभिजिति प्रभुः।।६।।
अदितिः कश्यपश्चापि हरिं ददृशतुस्तथा। चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदापद्मैर्विराजितम्।।७।।
मणिना कौस्तुभाख्येन जाज्वल्यमानवक्षसं। कुण्डलोद्भासिगण्डञ्च कृष्णं श्रीवत्सलाञ्छनम्।।८।।

पीताम्बरं रक्तवर्णं ब्रह्मेन्द्रादिभिरीड़ितं। तं दृष्ट्वात्यद्भुतं देवं प्रणनाम च कश्यपः॥९॥

कश्यप उवाच

ॐ कृष्णाय गोविन्दाय हरये परमात्मने। प्रणतक्लेशनाशाय श्रीनाथाय नमोनमः॥१०॥

शुक कहते हैं—सुरगण ने इस प्रकार नारायण का स्तव किया। हे द्विजपुंगव! तदनन्तर भाद्रमासीय शुक्लपक्ष के श्रवण नक्षत्र युक्त द्वादशी तिथि के चन्द्रमुहूर्त्त में भगवान् विष्णु ने विप्र तथा देवगण के मंगलार्थ तथा बलि के अमंगलार्थ कश्यप भवन में जन्म लिया। कश्यप एवं अदिति ने उनका दर्शन किया। वे चतुर्भुज थे तथा शंख-चक्र-गदा-पद्मयुक्त विराजमान थे। उनके वक्षस्थल पर कौस्तुभ मणि तथा श्रीवत्सचिन्ह था। कर्ण में रत्नकुण्डल तथा कमर में पीतवस्त्र धारण किये हुए शोभित हो रहे थे। उनका कलेवर रक्तवर्ण था। ब्रह्मा आदि देवता उनकी वन्दना कर रहे थे। कश्यप ने इस अत्यन्त अद्‌भुद् मूर्त्ति का दर्शन करके प्रणामोपरान्त स्तुति करते हुए कहा—"हे हरि! आप परमात्मा तथा प्रणत लोगों के क्लेश का नाश करते हैं। हे कमलाकान्त! आपको पुनः पुनः प्रणाम।।४-१०।।

अदितिरुवाच

तस्मै नमस्ते कृष्णाय हरये परमात्मने। अजाय चादितेयाय काश्यपाय नमोऽस्तुते॥११॥
नमस्ते पृश्निगर्भाय कैवल्यपतये नमः। (देववन्दितपादाब्ज नमस्तुभ्यं नमोनमः॥१२॥
स्मृतार्त्तिनाशकानन्त देव पद्मविलोचन। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥१३॥
इदं ब्रह्माण्डमखिलं क्रीड़ागेण्डूकमेव ते। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥१४॥
(निक्षिप्तोत्क्षिप्तविक्षिप्तप्रतिक्षिप्ता वयन्तथा।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥१५॥)
विष्णो तव कृपा यस्य परमानन्दवर्षिणी। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥१६॥
तपस्ते यस्य हृदयं भक्तिस्ते यस्य दर्शनं। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥१७॥
परमां निष्कलां सूक्ष्मां प्राप्य यश्चात्मनि स्थितः। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥१८॥
(प्राणायामादिनिर्धूतकल्मषो यं समीक्षते। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥१९॥)
चन्द्रादित्यौ दृशौ यस्य ब्राह्मणा यस्य वै मुखं। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥२०॥
(निक्षिप्तोत्क्षिप्तविक्षिप्तप्रतिक्षिप्ता वयं पुनः। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥२१॥)
अग्निर्यस्य मुखं चास्य कर्णौ यस्य दिशोदश। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥२२॥
वायुर्यस्य स्वयं श्वासो माया हास्यञ्च यस्य वै। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥२३॥
पृथ्वी यस्यासनं सत्यं लोको मुकुटमेव यत्। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥२४॥
दक्षिणा चोत्तरा दिक् च भुजौ यस्य महाबलौ। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥२५॥
नासाग्रं यस्य पूर्व्वा दिक् पृष्ठं यस्य च पश्चिमा। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥२६॥

अदिति कहती हैं—हे कृष्ण, हे हरि, परमात्मन्! आप अजन्मा है, तथापि आज से आदितेय (अदिति पुत्र)

तथा काश्यपेय हो गये। मैं आपको प्रणाम करती हूं। हे मोक्षपति! देवगण सतत् आपके चणारविन्द की वन्दना करते हैं। हे देव! पद्मपलाश नेत्रों वाले! आपके स्मरण मात्र से सर्वदुःख दूरीभूत हो जाता है। आपको पुनः-पुनः प्रणाम। समस्त ब्रह्माण्ड आपकी क्रीड़ा हेतु गेंद के समान है। आप नित्य उसका निःक्षेप, विक्षेप तथा प्रतिक्षेप करते रहते हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम। हे विष्णु! आपकी कृपा पाकर जीवगण परम आनन्दित होते हैं। तपस्या आपकी हृदयरूप है तथा एकमात्र भक्ति से ही आपको साक्षात् किया जा सकता है। आप अपनी निष्कला, परमा, सूक्ष्म मूर्त्ति से प्राणीगण के अभ्यन्तर में निवास करते हैं। मैं आपको पुनःपुनः प्रणाम करती हूं। प्राणायामादि से जो लोग अपनी समस्त पापराशि का दहन कर चुके हैं, ऐसे योगी ही आपको प्रत्यक्ष कर पाते हैं। आपको प्रणाम तथा पुनः-पुनः प्रणाम!

चन्द्रमा तथा सूर्य जिनके दो नेत्र हैं, ब्राह्मण तथा अग्नि जिनके मुख हैं, जिनके कर्ण दसो दिशाओं में हैं, वायुदेव जिनके श्वास-प्रश्वास हैं, पृथिवी जिनका आसन है, दक्षिण-उत्तर महाबली बाहु है, पूर्व दिशा नासाग्र तथा पश्चिम दिक् पृष्ठ है, माया जिनका हास्य है, समस्त लोक जिसके मुकुट हैं, उनको असंख्य प्रणाम।।११-२६।।

यस्याज्ञाकारिणो वायुसूर्य्यचन्द्रधराम्बुदाः। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥२७॥
त्रैलोक्यं लङ्घितं येन दुर्लङ्घ्यशासनेन वै। (नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥२८॥)
यस्योदरस्थं सकलं त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकं। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥२९॥
मुखबाहूरुपादेभ्यो वर्णा यस्य बभूविरे। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥३०॥
मनश्चक्षुःश्रुतित्वग्भ्यो यस्याभूवंस्तथाश्रमाः। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥३१॥

हे देव! जिनके चन्द्र-सूर्य-वायु-वरुण आदि आज्ञाकारी हैं, जिन्होंने त्रैलोक्य लंघन किया तथा जो दुर्लङ्घ्य शासन वाले हैं, जिनके उदर में भूर्भुवादि समस्त लोक अवस्थित हैं, जिनके मुख से ब्राह्मण बाहु से क्षत्रिय, उरु से वैश्य तथा चरण से क्षूद्र तथा क्रमशः जिनके मन-चक्षु-कर्ण तथा त्वक् से चारों आश्रम उद्भूत हैं, उनको पुनः-पुनः प्रणाम।।२७-३१।।

सहस्त्रशीर्षा यः कूटः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥३२॥
आदित्यकोटिवर्णो यो योऽतीतो निखिलन्तमः। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥३३॥
एक उर्व्वरितो यस्तु कल्पान्ते महति प्रभुः। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥३४॥

आपके सहस्रों शीर्ष हैं, चक्षु, चरण भी सहस्रों हैं। आप करोड़ों आदित्य के समान तेजपुंज कलेवर हैं तथा समभावापन्न हैं। आपके दर्शन से व्यक्ति का अज्ञान रूपी अंधकार दूर हो जाता है। महाप्रलय में आप ही एकमात्र विराजित रहते हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम।।३२-३४।।

एतावानेव नैव त्वमनन्तगुणशक्तिमान्। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥३५॥
त्रिगुणानामपार्थक्यात् सृष्ट्यादि कुरुषे च यः। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥३६॥
भक्तेच्छानुगतो यस्त्वं मम गर्भगतोऽभवः। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमोनमः॥३७॥
गर्भे जातोऽसि मे देव गर्भदुःखविवर्जितः। गर्भदुःखविमोची त्वं पुत्रबुद्धिर्न तेऽस्तु मे॥३८॥
त्वन्तु पुत्रः पिता माता गुरुश्च परदेवता। भार्य्या पतिश्च शिष्यश्च सर्व्वरूपो भवान् पृथक्॥३९॥

आपकी शक्ति अपार है। आप जिस रूप में दृष्ट होते हैं, केवल वही आपका रूप नहीं हैं। आप गुणत्रय

भेद से पृथक्-पृथक् मूर्त्ति द्वारा सृष्टि, स्थिति तथा लय क्रिया करते हैं। आप अनन्तगुण शक्तियुक्त हैं। आपको पुनः पुनः प्रणाम। आप केवल मुझ भक्त की कामना पूर्ण करने हेतु मेरे गर्भ से अवतरित हैं। आपको पुनः पुनः प्रणाम। आप गर्भदुःख रहित हैं। आप भक्तजन के गर्भ दुःख का विनाश करते हैं, जिससे उनको पुनः गर्भावस्था प्राप्त नहीं होता। मेरी आपके प्रति पुत्रबुद्धि कदापि न हो। हे प्रभो! आप ही अपने पृथक् रूप से जीवगण के पिता-माता-गुरु परदेवता, भार्या, पति, शिष्य आदि रूपधारी हो जाते हैं। आपको प्रणाम।।३५-३९।।

शुक उवाच

इति स्तुवन्तीमदितिं भगवान्देवमातरं। मोचनः किल दुःखानां जगाद द्विजपुङ्गव॥४०॥

शुक कहते हैं—हे द्विज! उन सर्वदुःखहारी भगवान् हरि ने अदिति को इस प्रकार से स्तुति करते देखकर कहा।।४०।।

भगवानुवाच

मातरेवं यदेवात्थ तत्तदेव नचान्यथा। एषोऽहं वामनो भूतस्त्वत्कार्य्यार्थं समाश्वस॥४१॥

भगवान् कहते हैं—हे माता! आपने जो कहा है, वह सत्य है। उसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है। हे जननी! आप आश्वस्त रहिये। मैंने आपकी कार्य सिद्धि हेतु वामनरूप धारण किया है।।४१।।

इत्युक्त्वा तत्क्षणादेव द्विभुजो वामनोऽभवत्। कश्यपस्तस्य मङ्गल्यं चकार बहुधा मुने॥४२॥
सर्व्वमङ्गलपूर्णोऽपि समुद्र इव पर्व्वणि। जवाकुसुमसङ्काशः काश्यपेयो महाद्युतिः॥४३॥
रराज वामनो बालः कश्यपादितिवेश्मनि। चकार नामकरणं तस्य बालस्य कश्यपः॥४४॥
इन्द्रानुजत्वादुपेन्द्रो वामनत्वाच्च वामनः। काश्यपिश्चादितेयश्च रक्त इत्यपि नामतः॥४५॥

शुक कहते हैं—भगवान् ने यह कहकर तत्काल वामनरूप धारण कर लिया। कश्यप ने उनके लिये नाना प्रकार के मंगलमय उत्सव सम्पन्न किया। पहले दिन समुद्रवत् सर्वमंगलमय जवाकुसुम के समान महाद्युतिवान् कश्यपपुत्र शिशु वामनदेव परम शोभित हो गये। तत्पश्चात् कश्यप ने उनका नामकरण किया। इन्द्र के छोटे भ्राता होने के कारण उनका नाम उपेन्द्र रखा गया। छोटे आकृति के कारण वामन, रक्तवर्ण होने के कारण रक्त तथा कश्यप अदिति से उत्पन्न होने के कारण काश्यपेय तथा आदितेय भी कहलाये।।४२-४५।।

त्रेतायुगेऽवतीर्णोऽसौ रक्तार्णश्च वामनः॥४६॥
ततः काले गते क्वापि निश्चित्योपनयार्हतां। ऋषीन्देवास्तथामन्त्र्य संस्कर्त्तुं पुत्रमुद्यतः॥४७॥
आहूय वह्निं संशुद्धं हुत्वा विधिवदेवच। बृहस्पतिर्यज्ञसूत्रं ददौ मालाभिलम्बितं॥४८॥
सविता स्वयमागत्य गायत्रीं प्रददौ द्विज॥४९॥
अथ देवी समागत्य पार्व्वती शिवसुन्दरी। ददौ भिक्षां वामनाय वटुमानवकाय वै॥५०॥

वामनदेव त्रेता में रक्तवर्ण अवतीर्ण हुए। कुछ काल अतिवाहित होने पर कश्यप ने पुत्र को उपनयन योग्य जानकर देवगण तथा ऋषियों को आमंत्रित किया तथा विशुद्ध अग्नि में यथाविधान आहुति दान किया। बृहस्पति ने सुलम्बित यज्ञोपवीत प्रदान किया। सूर्यदेव ने स्वयं आकर वामनदेव को गायत्री उपदेश प्रदान किया। तत्पश्चात् शिवसुन्दरी पार्वती ने आकर भिक्षा देने हेतु वामनदेव से कहा-।।४६-५०।।

विप्र तुभ्यं प्रयच्छामि भिक्षान्ते प्रथमामहं। त्वञ्च प्रतिगृहाणेमां जरामरणहारिणीम्।।५१।।

पार्वती कहती हैं—हे विप्र! मैं तुमको प्रथम भिक्षा प्रदान करूंगी। तुम जरामरण हारिणी भिक्षा ग्रहण करो।।५१।।

वामन उवाच

मातर्भगवति प्रेष्ठां भिक्षां मे देहि पार्व्वति। ॐ स्वस्तीति सकृत् प्रोच्य भगवान् बटुवामनः।।५२।।

वामनदेव कहते हैं—हे माता पार्वती! आपसे भिक्षा प्रथमतः प्रार्थनीय है। अतः प्रदान करें।।५२।।

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु गृहीत्वा तस्य वै कियत्। मूर्द्ध्ना ववन्दे चेत्येव प्रतिजग्राह जैमिने।।५३।।
ततो द्यौः प्रददौ छत्रं पादुके प्रददौ धरा। भिक्षापात्रं ददौ शम्भुः कौपीनञ्च लसत्तरम्।।५४।।
दण्डञ्च वैणवं प्रादात् प्रजासंयमनो यमः। ब्रह्मर्षयो ददुर्दर्भान् ब्रह्मा प्रादात् कमण्डलुं।
गिरयस्तिलकं शुक्ल मूर्द्धपुण्ड्रं विराजितम्।।५५।।
एवं परमतेजस्वी भूत्वा वटुकवामनः। रराज राजराजस्य क्षितौ राजेव चापरः।।५६।।
ततः स वामनोविप्रः कृत्वा परिसमूहनं। मातरं पितरञ्चोभौ प्रणनाम क्रमाद्गुरू।।५७।।
ब्रह्मादिदेवताः सर्व्वा ऋषीन् सर्व्वानथैकदा। ब्राह्मणेभ्यो नमइति प्रणनाम महाप्रभुः।।५८।।
प्रणम्य सर्व्वानित्येवं प्राञ्जलिः प्रजगादा वै।।५९।।

वामन उवाच

शुक कहते हैं—तदनन्तर भगवान् वामन ने 'स्वस्ति' वाक्य का उच्चारण करके अंगुष्ठ तथा अनामिका से किंचित भिक्षा का अंश ग्रहण करके उनकी वन्दना किया। हे जैमिनि! तदनन्तर आकाश ने उनको छत्र, पृथिवी ने पादुकाद्वय, शंकर ने भिक्षापत्र तथा मनोहर कौपीन, यम ने दण्ड, ब्रह्मर्षिगण ने कुश, ब्रह्मा ने कमण्डलु तथा पर्वतगण ने श्वेत तिलक तथा उर्ध्वपुण्ड्र प्रदान किया। इस प्रकार वामनदेवता अत्यन्त तेजस्वी होकर भूमण्डल में अन्य सम्राट के समान देदीप्यमान होने लगे। तदनन्तर महाप्रभु वामन ने इस परिसमूह के अन्त में यथाक्रमेण गुरु, माता तथा पिता को प्रणाम किया। तत्पश्चात् ब्रह्मादि देवता, समस्त ऋषिगण को तथा समस्त ब्राह्मणों को "ब्राह्मणेभ्यो नमः" कहकर कृतांजलि हो गये।।५३-५९।।

अहं व्रजामि गुरुषु यूयं तत्रानुमोदत। समावृत्य पुनः सर्व्वान् द्रक्ष्याम्यहमुपागतः।।६०।।

वामन ने कृतांजलि होकर सब से कहा—"मैं अब गुरुकुल जा रहा हूं। आप सब अनुमोदन करिये। समावार्त्तन के उपरान्त आकर आप सबका दर्शन करूंगा"।।६०।।

शुक उवाच

इत्युक्त्वा याति तनये चिन्तयामास चादितिः।
अन्ये च कश्यपाद्या वै यथायोग्यमचिन्तयन्।।६१।।

अयं देवोऽव्ययो विष्णुः कश्यपाद्गर्भजो मम। महाप्रभावो विप्रोऽभूद्याति वस्तुं गुरावपि।।६२।।
कीदृशेन ह्युपायेन बलिञ्च मोहयिष्यति। इन्द्राय राज्यं तद्ग्रस्तं कथमेष प्रदास्यति।।६३।।

अयन्तु वामनोबालो ब्राह्मणो नूतनोऽपि च॥६४॥
कथं दानवदैत्यानां पतिं तं बलिनामकं। खण्डयिष्यति धर्म्मात्मा देवा उद्वेजिता यतः॥६५॥
मन्ये ह्यस्य तेजसैव मुग्धो वैरोचनो बलिः। सर्व्वं राज्यममुष्मै तु दास्यत्येव न संशयः॥६६॥
अयं पुनर्दानलब्धं सर्व्वमिन्द्राय दास्यति॥६७॥
बलिस्तु दाता धर्म्मात्मा दण्डमर्हति नैव हि॥६८॥
तेनायं विप्ररूपेण शक्रार्थे भिक्षयिष्यति॥६९॥

शुक कहते हैं—कश्यप अदिति वामनदेव को इस प्रकार जाते देखकर चिन्तातुर हो गयीं। अदिति सोच रहीं थीं कि "इन अव्यय विष्णु ने कश्यप से मेरे गर्भ में जन्म लिया। अब महाप्रभावशाली ब्राह्मण होकर गुरुकुल में यथार्थतः जा रहे हैं। ये किस उपाय से बलि को पराजित करेंगे, नहीं जानती।" अन्य लोग विचार कर रहे थे कि पृथिवी पर बालक वामनरूपी भगवान् ब्राह्मण होकर किस प्रकार से बलि द्वारा हरे गये राज्य को पुनः इन्द्र को देंगे? समस्त देवगण भी शंकित थे कि धर्मात्मा वामन कैसे दैत्यराज बलि को परास्त करेंगे? हम सबकी यही विवचेना है कि वामनदेव के प्रभाव से मुग्ध होकर बलि इनको अवश्य समस्त राज्य प्रदान करेगा। ये दान में प्राप्त राज्य इन्द्र को प्रदान करेंगे। बलिराज दाता तथा धर्मात्मा है। उसे भगवान् दण्ड न देकर इन्द्र के लिये राज्य को भिक्षारूप में मांग लेंगे।।६१-६९।।

एवं चिन्तयतां तेषां वामनो विप्रनन्दनः। कतिचिद्ब्राह्मणैः सार्द्धं ययौ गुरुनिवेशनम्॥७०॥
तत्र सर्व्वाणि शास्त्राणि पपाठ वटुवामनः। बृहस्पतिर्व्याकरणं पाठयामास तं तदा॥७१॥
ततो वेदान्तमीमांसे न्यायपातञ्जलौ तथा। सांख्यं वैशेषिकञ्चापि पपाठ दर्शनानि षट्॥७२॥
ततः पपाठ सर्व्वानि स्मृतिशास्त्राणि वाक्पते। आगमान्निगमांश्चैव पुराणानि पपाठ च॥७३॥
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां चितिः। छन्दसां विचितिश्चैव षडङ्गो वेद इष्यते॥७४॥
सर्व्वं कश्यपपुत्रोऽसौ पपाठाङ्गिरसाद्गुरोः॥७५॥
एवमल्पेन कालेन विद्याः सर्व्वा अधीतवान्। गुरुदक्षिणया जीवं छन्दयामास वामनः॥७६॥

सब यही विचार किये जा रहे थे कि इस बीच भगवान् वामन किसी ब्राह्मण के साथ गुरुगृह चले गये। वहां वटुवामन ने सभी शास्त्रों को पढ़ा। उन्होंने बृहस्पति से व्याकरण, वेदान्त, मीमांसा, न्याय, पातञ्जल, सांख्य, वैशेषिक दर्शन, स्मृति, आगम-निगम, पुराण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द तथा वेद का अध्ययन किया। कश्यप पुत्र ने यह सब आंगीरस बृहस्पति गुरु से अल्पकाल में ही पढ़ लिया। तब वामनदेव बृहस्पति से गुरुदक्षिणार्थ कहने लगे।।७०-७६।।

वामन उवाच

बृहस्पते महाभाग गुरो शास्त्राणि मे भवान्। अध्यापयद्दक्षिणया कया स्यां निर्ऋणस्त्वयि॥७७॥
एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये समर्पयेत्। त्रैलोक्ये नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा सोऽनृणो भवेत्॥७८॥
यदि तत्र गुरुर्देवः प्रसीदति किल स्वयम्। तदा स्वल्पञ्च वै द्रव्यं दक्षिणत्वाय कल्पते॥७९॥

त्वन्तु मे सर्व्वशास्त्राणां ज्ञानदाता प्रसीद मे। अहन्तु जाने कियतीं भक्तिमेव बृहस्पते॥८०॥

वामन कहते हैं—हे महाभाग! हे गुरो बृहस्पति! आपने मुझे समस्त शास्त्रों का अध्ययन कराया। अब क्या दक्षिणा देकर आपके ऋण से मुक्त हो सकूंगा? यदि गुरु शिष्य को मात्र एक ही वर्ष की शिक्षा देता है, तब ऐसी कोई वस्तु विश्व में नहीं है, जिसे प्रदान करके शिष्य गुरु ऋण से मुक्त हो सके। यदि गुरु प्रसन्न हैं, तब सामान्य वस्तु भी गुरुदक्षिणा हो सकती है। आप तो समस्त शास्त्रों के ज्ञान दाता हैं। आपको मैं क्या दे सकूंगा? आप स्वयं मुझ पर प्रसन्न हो जायें।।७७-८०।।

गुरुरुवाच

भवान् वामनरूपेण ह्यवतीर्णोऽखिलेश्वरः। लोकयात्रानुकुर्व्वाणो विद्या सर्व्वाः पपाठ वै॥८१॥

सर्व्वशास्त्रस्य कर्त्ता त्वं सर्व्वलोकपतिर्भवान्। लोकातीतो भवानेन प्राप्तोऽसि भगवन्मया॥८२॥

अतःपरा दक्षिणा का यत्त्वां प्राप्य परं स्पृहे। यदर्थमवतीर्णोऽसि दक्षिणा परमैव सा॥८३॥

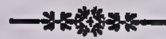
हृतराज्यः पुनः शक्रस्त्वत्तो वासं प्रलप्स्यते। प्रसन्नोऽहं गुरुस्ते वै गच्छ यत्र प्रयोजनम्॥८४॥

बृहस्पति कहते हैं—आप निखिल जगत् के ईश्वर हैं। आपने वामनरूप से अवतार लेकर समस्त विद्या का अध्ययन किया। अन्यथा आप समस्त शास्त्रों के कर्त्ता हैं। आप सर्वलोकपति तथा सर्वलोकातीत हैं। मैंने आपको शिष्यरूप से प्राप्त किया। इसकी अपेक्षा अधिक दक्षिणा क्या हो सकेगी, जिसे पाने की इच्छा करूं? आप जिस लिये अवतीर्ण हैं, वही मेरी परम दक्षिणा है। देवराज इन्द्र बलि द्वारा राज्य हरण किये जाने के कारण आपकी कृपा से पुनः राज्य लाभ करें, इससे अधिक आनन्द क्या होगा? मैं परम प्रसन्न हूं। आप यथाप्रयोजन गमन करें।।८१-८४।।

शुक उवाच

इत्युक्तस्तेन गुरुणा वामनोऽदितिनन्दनः। गुरुं प्रणम्य प्रययौ कतिचिद्ब्राह्मणैः सह॥८५॥

।।इति श्रीबृहद्धर्मपुराणे मध्यखण्डे वामनचरिते षट्चत्वारिंशोऽध्यायः।।



शुकदेव कहते हैं—बृहस्पति द्वारा यह कहे जाने पर अदितिनन्दन वामनदेव उनको प्रणामोपरान्त कुछ ब्राह्मणों के साथ वहां से चले गये।।८५।।

।।षट्चत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

वामन द्वारा बलि को छलना

शुक उवाच

पप्रच्छ ब्राह्मणान् विप्र वामनोऽदितिनन्दनः। विज्ञातार्थोऽपि भगवान् लोकयात्रामनुष्ठितः॥१॥

शुक कहते हैं—हे विप्र! तब भगवान् अदितिनन्दन वामन सर्वदर्शी होने पर भी लोक यात्रा हेतु छल से ब्राह्मणों से पूछने लगे।।१।।

वामन उवाच

अहन्तु भूमिभिक्षार्थी तपःस्थानाय संप्रति। को मे दास्यति वै भूमिं यत्र तप्स्यामि तापसः॥२॥

वामन कहते हैं—हे ब्राह्मणगण! तपस्याचरण के लिये मैं भूमि की भिक्षा चाहता हूं। जहां तपस्वी होकर तप कर सकूं। ऐसी भूमि कौन देगा?।।२।।

ब्राह्मणा ऊचुः

अधुना सकला भूमिर्बलेर्वैरोचनस्य हि। सोऽधुना यजते तीरे नर्म्मदाया अथोत्तरे॥३॥
स तुभ्यं दास्यते भूमिं यज्वा दाता द्विजप्रियः।
त्वं गत्वा खलु याचस्व धरां स्वार्थस्य साधनीम्॥४॥

ब्राह्मण गण कहते हैं—इस समय समस्त भूमि विरोचन पुत्र बालि द्वारा अधिकृत है। वह यज्ञकर्ता तथा ब्राह्मण भक्त है। इस समय वह नर्मदा के उत्तर की ओर वाले तट पर यज्ञ कर रहा है। वहां जाकर अपने प्रयोजन को सम्पन्न करने वाली याचना करो।।३-४।।

शुक उवाच

एवमेवेति चोत्क्वाऽसौ बलिं गन्तुं मनो दधे। पदे पदे चकम्पे च धरणी तस्य गच्छतः॥५॥
आगच्छन्तं ततो दूराद्वामनं तं बलिर्नृपः। यज्ञासने स्थितोऽद्राक्षीदृषिमण्डलमध्यगः॥६॥
तर्कयामास बहुधा कोऽयमित्येव भूपतिः। दृश्यते दिवि सूर्य्योऽसौ नोदेति दिवसे शशी॥७॥
अग्निर्ममात्र सम्पूर्णः कोऽयमन्योऽभिलक्ष्यते। सनत्कुमार एवासौ नैव ह्रस्वत्वलक्षणात्॥८॥
इत्येवं बहुधा तर्कं कुर्व्वतस्तस्य वै बलेः। उपाजगाम सर्व्वेषां पश्यतां चालयन् धराम्॥९॥

शुकदेव कहते हैं—तब बालक वामन ऐसा ही हो कहकर बलि के निकट जाने का उपक्रम करने लगे। उनके गमन काल में पग-पग पर पृथिवी कांप रही थी। इसी समय ऋषि मण्डल से घिरे यज्ञासनासीन बलिराज ने दूर से ही उनको आते देखा और मन ही मन तर्क-वितर्क करने लगे कि क्या साक्षात् सूर्यदेव आ रहे हैं? चन्द्रमा तो दिन में नहीं उगते। क्या ये अग्नि हैं? अथवा सनत्कुमार हैं? सत्वगुणलक्षणान्वित हैं, अतः रुद्रदेव तो हो नहीं सकते। वह इस प्रकार से मन में तर्क-वितर्क कर ही रहे थे कि देखते-देखते धरती को कम्पित करते वामन देव वहां आ गये।।५-९।।

बलिस्तु धैर्य्यमुत्सार्य्य तद्भासा क्षिप्तमानसः। दीक्षासनात् समुत्तस्थौ वारितो वामनेन च॥१०॥
ततो बलिर्वामनाय ददावासनमुत्तमम्। सौवर्णं ज्वलदग्न्याभं स तत्रोवास वामनः॥११॥
तस्य पादद्वयं राजा क्षालयामास वै स्वयम्। तत्पादक्षालनजलं शिरसा च दधार सः॥१२॥
यज्ञकर्म्म परित्यज्य तत्पूजायां मनो दधे॥१३॥
तं पूजयित्वा विधिवन्निर्मलेनान्तरात्मना। कृताञ्जलिपुटः स्थित्वा वामनं बलिरब्रवीत्॥१४॥

तब उनके तेज से दैत्यराज बलि का चित्त आकृष्ट हो गया। वे अधैर्य से निवृत्त होकर आसन से उठे तथा उनको ज्वलित अग्नि जैसा चमकता स्वर्णासन प्रदान किया। वामनदेव उस पर आसीन हो गये। राजा ने अपने हाथों उनके चरणद्वय को धोकर उस पादोदक को मस्तक पर धारण किया तथा यज्ञकर्म छोड़कर उनके पूजन में मन लगाया। बलिराज ने निर्मल अन्तःकरण से उनकी पूजा करने के उपरान्त अंजलिबद्ध होकर कहना प्रारंभ किया—"हे महाबाहु! आप कुशल से हैं? हे महामुने! आपको प्रणाम। आज ब्रह्मर्षिगण की साक्षात् तपस्या दृष्टिगोचर हो रही है। आपको कुछ दानार्थ देने की मेरी इच्छा है। लगता है आप भी किसलिये प्रार्थी होकर आये हैं? आप जैसा याचक पाकर मैं कृतकृत्य हो गया।।१०-१४।।

बलिरुवाच

स्वागतन्ते महावाहो नमस्तुभ्यं महात्मने। ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षादस्मद्दृग्गोचरो मतः॥१५॥
दातुमिच्छामि ते किञ्चिल्लक्षये त्वाञ्च याचकम्।
त्वादृशं याचकं प्राप्य सार्थकत्वमुपैम्यहम्॥१६॥

बलि कहते हैं—हे महात्मा, महाबाहो! आपका स्वागत है। आपको मैं प्रणाम करता हूं। आज साक्षात् बहर्षिगण का तप मैं देख रहा हूं। मैं आपको कुछ देना चाहता हूं। आज आप जैसा याचक पाकर मैं स्वयं को सार्थक कृतार्थ समझ रहा हूं।।१५-१६।।

वामन उवाच

उचितन्ते वचश्चैतत् प्रह्लादपौत्र धार्म्मिक। अहं याचक आयातो यजतस्ते मखोत्तमम्॥१७॥
मह्यं दास्यसि यत्किञ्चिद् याचितस्तन्न संशयः। ब्राह्मणा हि वयं स्वल्पं याचेम बहुनिःस्पृहा॥१८॥

वामन कहते हैं—हे धार्मिक प्रवर प्रह्लाद पौत्र! आपका यह वाक्य आपके ही अनुरूप अवश्य है। आप यज्ञानुष्ठान कर रहे हैं। मैं यह सुनकर याचकरूप से आया हूं। इसमें संदेह नहीं है कि याचना करने पर आप अवश्य प्रदान करेंगे। मैं निःस्पृह ब्राह्मण के समान स्वल्प याचना ही करूंगा।।१५-१८।।

बलिरुवाच

कथं बहुतरं त्यक्त्वा स्वल्पं याचिष्यते भवान्॥१९॥
अहमाढ्यः परो ब्रह्मंस्त्वञ्च तेजीयसां वरः। मां प्राप्य प्राप्तसर्व्वार्थो न भूयोऽर्हति याचितुम्॥२०॥
भवान् कथं स्वल्पमर्थं नीत्वान्यं याचयिष्यति॥२१॥
तस्मान्मां ननु याचस्व द्वीपं गिरिमथापि वा।
सागरं वा स्त्रियो वापि ग्रामान् वा नगराणि वा॥२२॥

वनानि वाथ हस्त्यश्वरथान् वा कोटिकोटिशः।
मणिमुक्तास्वर्णरूप्यकोषान् वा लक्षकोटिशः॥२३॥
अपर्य्याप्तधनं कस्मात् स्वल्पं दास्ये भवादृशे॥२४॥
यस्य प्रसादात् सर्व्वा मे विपुला राज्यसम्पदः। तस्मै ते ब्राह्मणश्रेष्ठ दातुं कृपणता न मे॥२५॥
तस्माद् याचकदात्रो नौं योग्यं याचस्व वामन।
नोपहास्यौ यथाहञ्च त्वञ्च स्यावः कदाचन॥२६॥

बलि कहते हैं—मैं आपको साक्षात् ब्रह्मण्यदेव रूप से देखता हूं। आप बहुतर याचना त्याग करके स्वल्प याचना क्यों करें, जबकि मैं धनाड्य हूं। मेरे पास आप अपनी सभी प्रार्थना के अनुसार वस्तु प्राप्त कर सकते हैं। आप मेरे यहां से स्वल्प अर्थ ले जाकर पुनः अन्य से याचना क्यों करें? अतः आप सागर, शैल, द्वीप, नगर, ग्राम, वन अथवा, करोड़ों हाथी, अश्व, रथ, लक्षकोटि मणि, मुक्ता, स्वर्ण-चांदी जो इच्छा हो, मुझसे याचना करें। मैं प्रचुर ऐश्वर्यवान् हूं आपकी तरह के महात्मा को अल्प अर्थ क्यों प्रदान करूं? हे ब्राह्मणप्रवर! जब आपके आशीर्वाद से मुझे यह विपुल राज्य सम्पत्ति प्राप्त है, तब आपको प्रदान करने में कृपणता नहीं है। हे वामन! जैसा दाता हो तदनुरूप ही याचना करिये।।१९-२६।।

वामन उवाच

यदुक्तं तद्धि सत्यन्ते वदान्यस्य दयावतः। किन्तु दाता भवान् यद्वन्नाहमर्थी च तादृशः॥२७॥
अहं तापसवंशे हि जातोऽल्पार्थेऽर्थको नृप। त्वन्तु पर्य्याप्तमैश्वर्य्यं प्राप्तोऽस्येव न चान्यथा॥२८॥
स्वल्पत्वं विस्तरत्वञ्चाप्यपर्य्याप्तमपेक्षया। यत्तु स्वल्पमहं याचे परापेक्षन्तु तद्बहु॥२९॥

वामन कहते हैं—हे दयालु, वदान्यप्रवर! आपने जो कहा सत्य है, किन्तु आप जिस परिमाण में दाता हैं उस परिमाण में मैं अर्थी (याचक) नहीं हूं। यह सत्य है कि आपके पास प्रभूत अर्थ है, लेकिन मेरा जन्म तापस वंश में हुआ है। मुझे सामान्य अर्थ की ही आवश्यकता है। हे बलिराज! स्वल्प अथवा अधिक, यह अपेक्षा बुद्धि से ही पर्याप्त होता है। आपसे मैं जो स्वल्प मांग रहा हूं वही किसी के लिये अधिक भी हो सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।।२७-२९।।

ब्रह्माण्डराज्यञ्चाल्पं स्याद्दशब्रह्माण्डचिन्तया।
तस्मात् किन्नु त्वया ज्ञातं बहुत्वं स्वल्पतापि वा॥३०॥
अर्थिनो यादृशे द्रव्ये कार्य्यं भवति भूपते। तदेव देयं दात्रा वै नात्र स्वल्पादिभावना॥३१॥
न देयं स्वल्पमित्येव नित्यदातर्वचस्त्यज। स्वल्पं वा विस्तरं वापि दातारो ददते ध्रुवम्।
अहन्ते यत्तु याचे वै तद्बले दीयतां मम॥३२॥

यह ब्रह्माण्ड राज्य भी १० ब्रह्माण्डों के समक्ष अत्यल्प होता है। अतः हे भूपति! आप अल्प तथा बहु कैसे जानेगें? याचक को जितना प्रयोजन हैं, उतना ही देना चाहिये। इस संदर्भ में अल्प किंवा बहु भावना उचित नहीं है। यह अभिमान त्याग देना चाहिये कि स्वल्पदान अदान के समान है। अतः अल्प की हो अथवा अधिक की याचना हो, वह अवश्य दान करें।।३०-३२।।

बलिरुवाच

याचस्व किं तवाभीष्टं तदेव श्रूयते वद। अज्ञात्वा ते ह्यभिप्रायं कथमेतद्वृथा वचः॥३३॥

बलि कहते हैं—आपकी अभीष्ट याचना क्या है, वह कहें। अभिप्राय ज्ञात हुये बिना कुछ नहीं होता। वृथा बातचीत का क्या प्रयोजन।।३३।।

वामन उवाच

अहं तपश्चरिष्यामि बले ब्राह्मणबालकः। तदर्थं ते धरां याचे तुभ्यं त्रिपदसम्मिताम्॥३४॥
एतेनैव कृतार्थोऽस्मि त्वञ्च सर्व्वप्रदो भवेः। निरीहा ब्राह्मणाः सर्व्वे तत्राहं याचकस्तव॥३५॥

वामन कहते हैं—मैं ब्राह्मण बालक हूं! तपस्या हेतु तीन पग भूमि चाहिये। इसे पाकर मैं कृतार्थ हो जाऊंगा। आप भी सर्वप्रद्र हो जायेंगे। ब्राह्मण निःस्पृह होता है। मैं आपका याचक हूं।।३४-३५।।

बलिरुवाच

अहो ब्राह्मणदायाद अयोग्यं किं नु भाषसे। न लज्जसे वचस्यत्र त्रिपादक्षितियाचने॥३६॥
सभ्याः शृणुत नो यूयं किमेष भाषते द्विजः। अहमेकः कथं कुर्य्यां विवादं परमं जनाः॥३७॥

बलि कहते हैं—अहो ब्राह्मणपुत्र! आपने क्या अयोग्य बात कही है। आप मात्र तीन पग भूमि मांगने से लज्जित नहीं हैं? हे सभ्यगण! यह ब्राह्मण बालक क्या कहते हैं, आप सुनें! मैं अकेले इस सम्बन्ध में क्या प्रतिवाद करूं?।।३६-३७।।

वामन उवाच

शृणु राजन् बले धीर वचो मम समार्थकम्। यन्मया याच्यते तन्मे दीयतां त्रिपदस्थलम्॥३८॥
यत्त्वयोक्तं याचनाय द्वीपवर्षादिवस्तु वै। प्रत्येकं दातुकामेन बलिना कामपूरिणा।
समुदायफलं त तत्त्रिपदक्षितितो भवेत्॥३९॥
मा चिन्तय महाभाग दानयोग्यन्तु याचितम्। मत्पादत्रिकसम्मानसम्मितां देहि मे धराम्॥४०॥

वामन कहते हैं—हे बलिराज! आप मेरे उचित वाक्य को पुनः सुनें। मेरी याचनानुरूप तीन पग स्थान ही मुझे चाहिये। आप जो प्रत्येक वस्तु, सागर, पर्वतादि देने की बात कर रहे हैं, तो त्रिपादमात्र भूमि देने से ही वह सब दान सम्पन्न मानिये। हे महाभाग! इस दान में अधिक विवेचना न करके मुझे अभी तीन पग भूमि दान करें।।३८-४०।।

बलिरुवाच

अहो ते वामन वचः सुदृढं नापरार्थकम्। कुतस्ते मतिरुत्पन्ना याचनेऽत्र द्विजर्षभ॥४१॥
सर्व्वथा वामनोऽसि त्वं तेजसास्यमितो मतः। किं ब्रूत सभ्या एतस्मै वाञ्छितार्थः प्रदीयते॥४२॥

बलिराज कहते हैं—हे वामन! आश्चर्य है! आपका वाक्य सुदृढ़ है। ऐसी याचना की मति आपको कहां से हो गई। आप तो सभी तरह से वामन ही हैं। हे सभा के लोगों! आप क्या कहते हैं? तब भी इनको यही अभीष्ट दान दिया जाये?।।४१-४२।।

सभ्या ऊचुः

यदेष ब्राह्मणसुतो याचते तत् प्रदीयताम्। याचमानस्य चाल्पं हि दातुर्नाकीर्त्तिसूचकम्॥४३॥

सभ्यगण कहते हैं—हां! ये ब्राह्मण जो याचना कर रहे हैं, वही इनको दिया जाये। जो अल्प चाहता है, उसे वही देने में कोई भी कीर्त्ति-अकीर्त्ति नहीं है।।४३।।

शुक उवाच

इत्येवं निश्चितं ज्ञात्वा वामनस्य वचः परम्। दास्यामि खर्व्व ते ह्यद्यं गृह्यतामित्युवाच सः॥४४॥

इत्युक्त्वा जगृहे राजा तद्दितुर्जलभाजनम्। ताम्रपात्रे कुशजलं तिलांश्चादाय वै यदा।

ॐतत्सदित्युदाहार्षीत्तदा शुक्रोऽभ्यभाषत॥४५॥

शुक कहते हैं—बलिराज ने वामनदेव का यही निश्चित मत जानकर कहा—"हे वामन! आपकी अभीष्ट वस्तु देता हूं। ग्रहण कीजिये। यह कहकर बलि ने जैसे ही ताम्रपात्र में संकल्पार्थ तिल-जल ग्रहण किया तथा कुश लेकर 'ॐ तत्सत्' कहा, तभी शुक्राचार्य ने वारण करते कहा।।४४-४५।।

शुक्र उवाच

अहो विरम हे राजन् सत्यमेव ददासि हे। त्यज्यतां ताम्रपात्रञ्च यद्ब्रवीमि शृणुष्व तत्॥४६॥

दाता दत्ते विचार्य्यैव दानं पात्रञ्च सत्तम॥४७॥

ज्ञातोऽयं ते गृहीता यो दानं किं तच्च ते मतम्।

राजासि चाविचार्य्यैव कथं कर्म्म करोषि भो॥४८॥

शुक्राचार्य कहते हैं—हे राजन्! रुक जाओ। यदि सत्य ही देना है, तब ताम्रपात्र त्याग करके जो कहता हूं, उसे सुनों। हे सत्तम्! दाता व्यक्ति दान तथा पात्र का विचार करके दान करें। क्या तुम दान लेने वाले को जानते हो? क्या वह तुम्हारा अभिप्रेत दान है? तुम राजा होकर बिना विचार किये कार्य तत्पर हो गये!।।४६-४८।।

बलिरुवाच

नम आचार्य्य मे तुभ्यं पुरोहित भृगूद्वह। तेजसा धर्षितोऽस्म्यद्य ब्रह्मरूपेण भार्गव॥४९॥

जिज्ञासितं नाम किञ्चिद्विप्र इत्येव दीयते॥५०॥

भवांस्तु यदि जानीते एनं ब्राह्मणसत्तमम्। तन्मां कथय नामास्य गोत्रं कर्म्माण्यभीप्सितम्॥५१॥

बलि कहता है—आचार्य देव! आपको प्रणाम! हे भार्गव! इनके ब्रह्मतेज से मैं इतना आकृष्ट हो गया कि कुछ भी नहीं पूछा। ब्राह्मण जानकर दानार्थ उद्यत हो गया। यदि आप इन द्विजवर को जानते हैं, तब इनका नाम गोत्र तथा कर्म अनुग्रहपूर्वक कहिये।।४९-५१।।

शुक्र उवाच

अयं बले महाभागः कश्यपादितिसम्भवः। मायया वामनो भूतो विष्णुरेष सनातनः।

देवानां कार्य्यसिद्ध्यर्थमवतीर्णोऽपक्वत्तव॥५२॥

शुक्राचार्य कहते हैं—हे महाभाग बलिराज! ये साक्षात् सनातन विष्णु हैं। माया के द्वारा कश्यप के औरस से तथा अदिति के गर्भ से जन्म लिया है। ये देवगण की कार्य सिद्धि हेतु तथा तुम्हारा अपकार करने के लिये अवतीर्ण हैं।।५२।।

बलिरुवाच

अहो विष्णुरयं देवो हरिर्नारायणः प्रभुः। देवानां कार्य्यसिद्ध्यर्थमवतीर्णोऽत्र मे कथम्।।५३।।

बलि कहता है—क्या ये वे ही विष्णु, हरि, प्रभु नारायण हैं? क्या ये देवकार्य सिद्धि हेतु जन्में हैं? तब ये मेरे अपकारी कैसे हैं?।।५३।।

(शुक्र उवाच

इन्द्रस्य राज्यं निखिलं यत्त्वया नृप भुज्यते। तदेव त्वां त्रिपादेन च्छलेनैष प्रयाचते।।५४।।
धरामेकपदेनैष द्वितीयेन दिवं तथा।
क्रमिष्यति च कायेन सर्व्वमेव नभःस्थलम्। तृतीयपादकार्य्यार्थं नास्ति यत्त्वं प्रदास्यसि।।५५।।

शुक्राचार्य कहते हैं—हे नृपति! आप इन्द्र के अखिल राज्य का भोग कर रहे हैं। तभी ये तीन पैर भूमि के बहाने आपसे भूमि मांग रहे हैं। ये एक पद से मर्त्यलोक, द्वितीय पद से स्वर्ग तथा देह द्वारा समस्त नभस्थल अतिक्रमण कर लेंगे। तृतीय पद के लिये कुछ नहीं रहेगा, जो तुम दोगे।।५४-५५।।

बलिरुवाच)

द्वौ पादावस्य दृश्येते तृतीयो नास्य दृश्यते। कथमेष त्रिभिः पादैर्याचते त्रिपदस्थलम्।।५६।।
पादौ द्वावेव सर्व्वेषां वर्त्तते ख्यातमस्य च। अनेन वा कुतो लब्धं तृतीयचरणाम्बुजम्।।५७।।

बलि कहता है—इनके दो ही पद दृष्टिगोचर हो रहे हैं। तृतीय पद तो देख नहीं पा रहा हूं। तब ये तीन पद से त्रिपाद भूमि कैसे मांग रहे हैं? सब इनके दो ही पद देख रहे हैं। ये कहां से तृतीय पाद प्राप्त करेंगे?।।५६-५७।।

शुक्र उवाच

इन्द्रराज्यगृहीतुस्ते खण्डनाय पदद्वयम्। रजस्तमस्वरूपञ्च धराकम्पनकृद्गुरु।
धृत्वायातस्तवात्रेह विष्णुर्वामनरूपधृक्।।५८।।
तव वै सात्त्विकाद्वाक्यादपरं सत्त्वरूपकम्। जातं पदं तृतीयं वै लघु चैव प्रकाशकम्।।५९।।
अतएव पदान्यस्य त्रीणि जातानि भूपते। दत्त्वा त्रिपादसामग्रीं त्वं कुत्र ननु स्थास्यसि।।६०।।

शुक्राचार्य कहते हैं—इन्द्र को राज्य प्रदान करने तथा तुम्हारे दमनार्थ मेदिनी प्रकम्पक (धरती हिलाने वाले) रजः तथा तमः रूप पदद्वय धारण करके विष्णु वामन रूप से आपके समक्ष आये हैं। अब आपके सात्विक वाक्यों से सत्वरूप प्रकाशक अन्य एक तृतीय पद उत्पन्न हो गया। हे भूपते! इनको तीन पद मिल गया। यह तीन पद भूमि देने पर आपके लिये स्थान ही नहीं बचेगा, तब कहां जायेंगे?।।५८-६०।।

बलिरुवाच

एवमस्तु भृगुश्रेष्ठ त्रिपादच्छलदण्डकृत्। तृतीयपादवासार्थं स्थानं स्थास्यति सर्व्वथा।।६१।।

नायं देवोऽखिलात्मा वै मद्भिन्नं किन्नु याचते॥६२॥
किमतः परमस्तीह भाग्य मम महत्तरम्। यदयं वामनो विष्णुर्याचते मां सनातनः॥६३॥
इदं सर्व्वममुष्यैव तच्च यद्यपि याचते। परमोऽनुग्रहो मेऽसौ कृत एतेन नान्यथा॥६४॥
दानं ब्राह्मणभक्तिश्च वर्त्तते मम चेत्ययम्। ज्ञात्वैव ब्राह्मणो भूत्वा याचते मामतोऽस्ति किम्॥६५॥
ज्ञायते ब्राह्मणायास्मै विष्णवे यज्ञरूपिणे। याचकाय स्वयञ्चैत्य ददामीष्टं न संशयः॥६६॥
ददामीति वचः कस्मान्मम मिथ्या भविष्यति॥६७॥

बलि कहता है—हे भृगुप्रवर! त्रिपाद के बहाने मुझे दण्डित करना है, करें। इनके तृतीय पद स्थान हेतु सर्वतोभावेन स्थान रहेगा। ये कभी भी अखिलात्मा विष्णु नहीं हैं अन्यथा ऐसी प्रार्थना क्यों करते? तथापि यदि ये विष्णु ही हैं, तब इसकी अपेक्षा परम सौभाग्य और क्या होगा कि वामनरूप सनातन विष्णु मुझसे याचना कर रहे हैं! ये जो भी याचना करें, मैं वह सब देने को प्रस्तुत रहूंगा। फलतः भगवान् ने यह याचना करके मेरे प्रति परम अनुग्रह किया है। मेरी दान शक्ति तथा ब्राह्मण भक्ति जानकर ये देव ब्राह्मण रूप में मेरे निकट आये। इसकी तुलना में परम सौभाग्य क्या है? ये ब्राह्मण हैं, दूसरे यज्ञपुरुष विष्णु स्वयं याचक हैं, तब इनका अभीष्ट इनको प्रदान करूंगा। इसमें संशय नहीं है। जब मैंने इनको दान हेतु वचन दे दिया है, तब दान न देने से मेरा वाक्य मिथ्या नहीं होगा?।।६१-६७।।

शुक्र उवाच

क्वचिन्मिथ्यापि धर्म्माय सत्यञ्चाधर्म्मकृत् क्वचित्।
यदादिकविना गीतं तच्छृणुष्व महामते॥६८॥
स्त्रीषु नर्म्मविवाहेषु वृत्त्यर्थे प्राणसङ्कटे। गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्॥६९॥
तस्मात् सर्व्वस्वापक्षये मिथ्यावाक्यं समाचर। येन सर्व्वस्वरक्षा स्यात् प्राणरक्षा च शाश्वती॥७०॥

शुक्राचार्य कहते हैं—हे महामते! स्थल विशेष में मिथ्या बोलना ही धर्म हो जाता है तथा सत्य अधर्म हो जाता है। इस विषय में कवियों का कथन सुनें। स्त्री से, परिहास में, विवाह के विषय में, जीविकार्थ, प्राण संकट में, गो-ब्राह्मण रक्षार्थ तथा प्राणीवध (प्राणी को बचाने) के विषय में मिथ्या कहना दूषण नहीं है। जब आपका सर्वस्व जा रहा है, तब मिथ्या कहिये। अन्यथा सर्वस्व रक्षा तथा प्राणरक्षा नहीं होगी।।६८-७०।।

बलिरुवाच

एवं चेन्ननु जानीषे प्रोक्तमेतत् पुरा न किम्। दास्यामीति यदा प्रोक्तं तदैतत् कथितं त्वया॥७१॥
अहो ते मतिराज्ञाता विष्णुकार्य्यानुकूलिनी। चरन्ति ब्राह्मणाः केऽपि कूटभावेन भूतले॥७२॥
भवितव्यं भवत्येव विष्णवे दीयतेऽखिलम्॥७३॥
आहूयतां सती भार्य्या मम विन्ध्यावलिः प्रिया। तया युक्तोऽहमीशानमर्च्चयामि सनातनम्॥७४॥
न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्॥७५॥
अस्माकं कुलदेवोऽयं विष्णुर्नारायणोऽव्ययः। प्रह्लादप्राणरक्षार्थं नरसिंहो बभूव ह॥७६॥

बलि कहते हैं—यदि आप यह जानते थे, तब आपने पहले क्यों नहीं कहा? जब मैंने वचन दे दिया कि दान करूंगा, तब आपने यह बात बतलाई। इससे मैं जान गया कि आपकी बुद्धि भी विष्णु के कार्य के ही अनुकूल है तथा ऐसे ब्राह्मण कूट भाव से पृथिवी पर विचरते हैं! जो भवितव्य है, वह तो होकर रहेगा। मैं भगवान् विष्णु को सर्वस्व प्रदान करूंगा। अब मेरी पत्नी विन्ध्या को बुलायें। मैं सपत्नीक भगवान् की अर्चना करूंगा। देखें। विष्णुभक्तों का अशुभ कभी भी नहीं होता। ये सनातन नारायण विष्णु हमारे कुलदेवता हैं। इन्होंने ही प्रह्लाद की प्राणरक्षा हेतु नृसिंह रूप धारण किया था।।७१-७६।।

इत्युक्त्वा स बलिर्भूपो जग्राह जलभाजनम्। ताम्रपात्रे कुशजलं तिलांश्चादाय वै तदा।।७७।।

ॐ तत् सदित्युदाहृत्य मासपक्षादि चोल्लिखन्।

निष्कामश्च सभार्य्यः सन् ददे एवमुदाहरत्।।७८।।

पदश्रवणमात्रेण वामनोऽभूदवामनः।।७९।।

सात्त्विकं यत् पदं विष्णोरुत्पपात दिवं हि तत्। ब्रह्माण्डं स्फोटयामास तत्पदं दिवमुत्पतत्।।८०।।

ब्रह्मा कमण्डलुजलं गङ्गेति पूर्व्वसञ्चितम्। ददौ पदाय तस्मै च विरराम तदा च तत्।।८१।।

राजसं तत्पदं तस्य तेन व्याप्तं धरातलम्। कायेन खन्तु निचितं ललम्बे तामसं पदम्।।८२।।

शुक कहते हैं—बलिराज ने यह कहकर जलपात्र ग्रहण किया। उन्होंने सपत्नीक कुश-जल लेकर "ॐ तत्सत्" का उच्चारण तथा मास-पक्ष आदि का उच्चारण करके निष्काम रूप से दान किया। तभी वामनदेव की वामन मूर्ति तिरोहित हो गयी।

भगवान् का सात्विक पद द्युलोक जा पहुंचा तथा उसने ब्रह्माण्ड भेद किया। तब ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु में रखे गंगाजल को उस पद पर प्रदान करके उसे रोका। भगवान् के राजस पद से भूतल तथा देह से नभोमण्डल व्याप्त हो गया। अभी भी उनका तामस पद बाकी था। तब भगवान् ने बलि को बद्ध करके कहा—"तृतीय पद हेतु स्थान दो।" अपने पति को वद्ध देखकर विन्ध्यावली कहने लगीं।"।।७७-८२।।

तृतीयपादवासं मे देहीत्येवं बबन्ध तम्। बद्धं दृष्ट्वा पतिं क्लिष्टं विन्ध्यावलिरुवाच ह।।८३।।

प्रभो देव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्त्तन। बन्धं कथमसौ प्राप्तः सेवित्वा त्वां विमुक्तिदम्।।८४।।

(अयं निष्कपटो राजा बलिर्वैरोचनोऽसुरः।

कथमर्हत्यसौ बन्धं सेवित्वा त्वां विमुक्तिदम्)।।८५।।

पदद्वयस्य स्थानं ते दत्तमप्यन्यदस्ति च। शिरो न दत्तं तच्चास्य गृह्यतां चरणार्पणात्।।

मुक्तोऽयमसुरश्चास्तु ख्यातोऽस्तु तव सेवकः।।८६।।

विन्ध्यावली कहती है—हे प्रभो, जगन्नाथ! ये विरोचन पुत्र बलिराज असुर होकर भी कपटरहित होकर आपकी ही सेवा, आपका नाम कीर्त्तन तथा नाम श्रवण करते रहते हैं, तब इनको बद्धावस्था क्यों मिल रही है? इन्होंने तो आपको चरणद्वय के योग्य स्थान प्रदान किया। तब भी एक चरण योग्य स्थान देना बाकी हैं। इनका मस्तक शेष है। अतएव उस पर श्रीचरण को रखकर वह ग्रहण करें। इससे असुर होने पर भी इनको मुक्ति मिले तथा ये आपके सेवकरूपेण प्रख्यात हो जायें।।८३-८६।।

शुक उवाच

एवं विन्ध्यावलीवाक्यं गृहीत्वा स जनार्दनः। तस्य मूर्द्धन्यर्पयामास तृतीयं चरणं हरिः॥८७॥
तदा जयजयध्वानो बभूव किल सर्व्वतः। मोक्षयित्वा बलिं भूपं जगाद मधुराक्षरम्॥८८॥

शुक कहते हैं—भगवान् हरि ने विन्ध्या का यह वाक्य सुनकर तृतीय चरण उसके पति बलिराज के मस्तक पर रखा। चतुर्दिक् जयध्वनि उठने लगी। तब इस प्रकार से बलिराज को मुक्त करके भगवान् मधुर शब्दों में कहने लगे।।८७-८८।।

भगवानुवाच

इन्द्राय राज्यं सकलं न्यर्पितं वर्त्ततां नृप। त्वञ्चापि सुतलं गच्छ पितामहसमन्वितः॥८९॥
अष्टमेऽन्तर आयाते भवितेन्द्रो भवानिति॥९०॥
अहं त्वया परिक्रीतो द्वारि तेऽहं गदाधरः। त्वया सदेक्षितः स्थाता सुतलेऽपि महामते॥९१॥
स्थिता ते विमला कीर्त्तिः सर्व्वस्वदानकारिणः॥९२॥
त्वत्तुल्यो ब्रह्मणः सृष्टौ न सन् भावी न भूतवान्। यः शत्रवे ब्राह्मणाय ददौ सर्व्वस्वमात्मना॥९३॥
त्वदर्थमवतारोऽयं वामनाख्यकृतो मया। प्रह्लादर्थः पुरा यद्वन्नारसिंहो महाद्भुतः॥९४॥
समाप्य कर्म चारब्धं सुतलं प्रविश ध्रुवम्॥९५॥

श्रीभगवान् कहते हैं—अब मैंने इन्द्र को समस्त राज्य अर्पित किया। तुम अपने पितामह प्रह्लाद के साथ पाताल जाओ। अष्टम मन्वन्तर आने पर तुम त्रैलोक्याधिपति इन्द्र पद प्राप्त करोगे। हे महामते! मैं गदापाणि होकर तुम्हारे क्रीत दास के रूप में तुम्हारे द्वारपाल का कार्य करूंगा। (स्थित रहूंगा) सर्वस्वदान रूप तुम्हारी कीर्त्ति चिरस्थायी रहेगी। तुम्हारे समान ब्रह्मा की सृष्टि में कोई नहीं था न होगा। तुमने अपने विपक्ष का होने पर भी मुझे सर्वस्व दान किया है। मैंने जैसे प्रह्लाद की रक्षा हेतु नृसिंह रूप धारण किया था, अब तुम्हारे लिये वामनरूपेण अवतीर्ण हो गया। अब अपना यज्ञ कर्म समाप्त करके पाताल गमन करो।८९-९५।।

शुक उवाच

इत्युक्तस्तेन कृष्णेन वामनेन महात्मना। कर्म्म सन्तानयामास विधिशिष्टञ्च यत् स्थितम्॥९६॥
बलिर्ययौ च सुतलं पितामहसमन्वितः। विष्णुश्चान्दर्दधेऽंशेन तले तस्थौ गदाधरः॥९७॥
इत्येतत् पुण्यमाख्यानं चरितं वामनस्य ते। कथितं जैमिने साधो यथामति तवेच्छया॥९८॥
इदं पठेद्वा शृणुयात् सर्व्वपापैःप्रमुच्यते। धनार्थी चाप्नुते कृत्स्नं धनं धर्म्म यशस्करम्॥९९॥
राज्यार्थी लभते राज्यं पुत्रार्थी लभते सुतम्।
बन्ध्या प्रसवयोग्या स्यात् कुरूपश्च सुरूपताम्॥१००॥
विद्यां धर्म्मं तथारोग्यं प्रदत्ते फलमव्ययम्। दिनेषु खलु पुण्येषु पठेदेतत् समाहितः॥१०१॥
श्राद्धकाले पठेदेतद्देवताराधनषु च। श्रावयेद्वा विष्णुभक्त्या स मुक्तिं परमां लभेत्॥१०२॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे वामनचरितं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः।।

शुक कहते हैं—महात्मा वामनरूपी कृष्ण के यह कहने पर बलिराज शेष कर्म समाप्त करके पितामह प्रह्लाद के साथ पाताल चले गये। भगवान् विष्णु भी वहां से अन्तर्ध्यान होकर पाताल में गदाधर मूर्त्ति रूप से अपने अंश से स्थित हो गये। हे साधु जैमिनि! मैंने वामनदेव का यह अति पुण्य चरित तुमसे कह दिया। इसके पाठ तथा श्रवण करने वाला धनार्थी धन एवं यश का निदान रूप धन पाकर आनन्दित होता है। राजार्थी को राज्य, पुत्रार्थी को पुत्र की प्राप्ति होती है। वन्ध्या का वन्ध्यात्व नष्ट होता है। कुरुप सुरुप हो जाता है। धर्म-विद्या-आरोग्य तथा अक्षय फल इससे मिलता है। पुण्य तिथि पर एकाग्र होकर वामन चरित का पाठ करना चाहिये। जो व्यक्ति श्राद्धकाल में तथा देवपूजाकाल में इसका पाठ अथवा श्रवण कराता है, वह विष्णुभक्ति के कारण परममुक्तिलाभ करता है।।९६-१०२।।

।।सप्तचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

सगरवंश ध्वंस, भगीरथ जन्म

शुक उवाच

सत्त्वरूपो हरेः पादो यदा ब्रह्माण्डमस्तकम्। आस्फोटयत्तदा ब्रह्मा कमण्डलुजलं ददौ।।१।।
तदा पर्य्याप्तवान् पादं हरिः सत्त्वगुणाश्रयः।।२।।
प्रफुल्लकमलाभः स पादः कृष्णस्य दीप्तिमान्। तथैव तस्थौ तत्रैव गङ्गा तत्र यतः स्थिता।।३।।
हरिरन्तर्दधे तस्य पादो गङ्गाश्रयः स्थितः। तस्मादपि समुद्भूता गङ्गायाता धरातलम्।
तथा ते वर्णयिष्यामि तदिहैकमनाः शृणु।।४।।

शुकदेव कहते हैं—जब भगवान् का सत्वरूप चरण ब्रह्माण्ड के ऊर्ध्वभाग का भेद कर गया, तब ब्रह्मा ने उस पर अपने कमण्डलु का जल प्रदान किया। सत्वगुणाश्रय हरि ने वहीं अपने चरण रोक दिया। खिले कमल के तुल्य उज्वल श्रीकृष्ण का चरण वहां पर जैसे गंगा थीं, वैसे ही स्थित रह गया। स्वयं हरि तो वहां से अन्तर्हित हो गये तथापि चरण गंगा के आश्रय में स्थित हो गया। वहां गंगा उत्पन्न होकर पृथिवी पर अवतीर्ण हो गयीं, वही कहता हूं।।१-४।।

पद्मनाभनाभिपद्माद्ब्रह्मा जातश्चतुर्मुखः। ततो मरीचिर्मारीचः कश्यपस्तत्सुतो रविः।।५।।
तस्य पुत्रो मनुर्जातः श्राद्धदेव इति श्रुतः। तस्य पुत्रः पटुर्जज्ञे इक्ष्वाकुरिति विश्रुतः।।६।।
तस्य पुत्रो विकुक्षिश्च विकुक्षेस्तु पुरञ्जयः। पुरञ्जयादनेनाश्च पृथुश्चाभूदनेनमः।।७।।
पृथोर्जातो विश्वगन्धि चन्द्रस्ततोऽभवत्सुतः।
चन्द्राज्जातो युवानाश्वः श्रावस्तस्तत्सुतोऽभवत्।।८।।

श्रावस्ताद्बृहदश्वोऽभूद्धुन्धुमारस्ततः सुतः।
(धुन्धुमाराद्दृढाश्वोऽभूत् हर्य्यश्वस्तत्सुतोऽभवत्॥९॥
(निकुम्भस्तत्सुतो जज्ञे वर्हिणाश्वोऽभवत्ततः। कृताश्वस्तत्सुतो जातस्ततः सेनजिदाख्यकः॥१०॥
युवनाश्वस्ततो जातः मान्धाता तनयस्ततः। मान्धातुः पुरुकुत्सश्च त्रसदश्वस्ततोऽभवत्॥११॥
अनरण्यः सुतस्तस्माद्धर्य्यश्वश्च ततोऽभवत्।) ततस्त्रारुण इत्येव ततो जज्ञे त्रिबन्धनः॥१२॥
त्रिबन्धनात् त्रिशङ्कुश्च हरिश्चन्द्रस्ततः सुतः। हरिश्चन्द्राद्रोहितोऽभूद्रोहिताद्धरितोऽभवत्॥१३॥
हरितस्य सुतश्चापः सुदेवस्तस्य चात्मजः। विजयस्तत्सुतो जज्ञे विजयाद् भरुकस्तथा॥१४॥)
भरुकात्तु वृको जातस्तत्सुतो बाहुकोऽभवत्। बाहुकस्य सुतो जज्ञे सगरो नाम वीर्य्यवान्॥१५॥

विष्णु के नाभि कमल से चतुर्मुख ब्रह्मा का प्रादुर्भाव हुआ। उनके पुत्र मरीचि थे। मरीचि के पुत्र कश्यप तथा कश्यप के पुत्र थे सूर्यदेव। सूर्यपुत्र के रूप में श्राद्धदेव मनु का जन्म हुआ। उनका पुत्र पटु ही इक्ष्वाकु कहलाया। उनका पुत्र था विकुक्षि। विकुक्षि का पुत्र था पुरञ्जय। उसका पुत्र था अनेना। जिसका पुत्र था पृथु। पृथु का पुत्र था विश्वगन्धि। उसका पुत्र था युवनाश्व। उसका पुत्र था श्रावस्त। श्रावस्त का पुत्र था बृहदश्व। उसका पुत्र था दृढाश्व। उसके पुत्र का नाम था हर्यश्व। उसका पुत्र था निकुम्भ। निकुम्भ का पुत्र था हरिणाश्व। उसका पुत्र था कृशाश्व। उसका पुत्र था सेनजित्। सेनजित् का पुत्र था युवनाश्व। जिसका पुत्र था मान्धाता। मान्धाता का पुत्र था पुरुकुत्स। पुरुकुत्स का पुत्र था अनरण्य। उसका पुत्र हुआ त्र्यरुण। उसका पुत्र था त्रिबन्धन, जिसका पुत्र था त्रिशंकु। त्रिशंकु का पुत्र था हरिश्चन्द्र। उसका पुत्र रोहित था। रोहित का पुत्र था हारीत। हारीत का पुत्र था चम्य। चम्य का पुत्र था वसुदेव। वसुदेव का पुत्र था विजय।। विजय का पुत्र था भवक। भवक का पुत्र था वृक। वृक का पुत्र था बाहुक, और बाहुक का पुत्र प्रबल पराक्रमी राजा सगर था।।५-१५।।

द्वे भार्य्ये सगरस्यापि सुमतिः केशिनीति च॥१६॥
और्व्वस्य च प्रसादेन सुमतिः सगरान्नृपात्॥ पुत्रान् षष्टिसहस्राणि केशिनी त्वसमञ्जसम्।
सुषुवे तैस्तु सगरः शुशुभे राज्यसम्पदि॥१७॥
स पुत्रान् बलिनो दृष्ट्वा पृथिवीधारणक्षमान्। स्वयं यष्टुं मनश्चक्रे आहूय ऋषिदेवताः॥१८॥
तस्य यज्ञहयं विप्र जह्नुर्नागा असूयया॥१९॥
हृत्वा तं यज्ञियं सप्तिं महातलनिवासिनः। कपिलस्यान्तिकेऽरक्षत् समाधिस्यस्य सर्व्वदा॥२०॥
अप्राप्तघोटको राजा षष्टिसाहस्रमात्मजान्। न्ययुङ्क्त्वान्वेषणेऽश्वस्य ते तथा चक्रुरेव हि॥२१॥
अन्विष्य नववर्षेषु सप्तद्वीपेषु चैव हि। सप्तस्वर्गेषु चान्विष्य न प्रापुर्यज्ञियं हयम्॥२२॥
ततः कुज्ञाननामाथ शस्त्रं सृष्ट्वा धरातलम्। निचरव्रुर्बहुभिस्तैस्तु प्राविशन् विवरानपि॥२३॥
अतलं वितलञ्चैव सुतलं तलमेव च। रसातलं वभ्रमुस्ते नापश्यन् यज्ञियं हयम्॥२४॥

राजा सगर की भार्याद्वय का नाम था सुमति तथा केशिनी। सुमति ने और्वमुनि के वर द्वारा ६०००० पुत्रों को जन्म दिया। द्वितीय पत्नी से असमञ्जस नामक एक ही पुत्र जन्मा। कालक्रमेण राजा सगर ने अपने पुत्रगण को

सुपुत्र, बली तथा पृथिवी पालन में सक्षम देखकर ऋषि तथा देवताओं का आवाह्न किया तथा स्वयं यज्ञ प्रारंभ किया। जिसमें यज्ञीय अश्व छोड़ा गया। इसी बीच नागगण ने जलन के कारण उनका यज्ञीय अश्व हरकर महातलस्थ सदा समाधियुक्त कपिल मुनि के पास बांध दिया। इधर राजा ने अश्व न मिलने से उसे खोजने हेतु ६००००पुत्रों को नियुक्त किया। वे सप्तद्वीप-सप्तवर्ष तथा सप्तस्वर्ग में खोजने पर भी अश्व प्राप्त न कर सके। तब उन्होंने कुदाल से पृथिवी खनन किया तथा भूमि विवर में प्रवेश किया। उन्होंने अतल, वितल, सुतल, तल, तथा रसातल में खोजा तथापि अश्व नहीं मिला!।।१६-२४।।

महातले वभ्रमुस्ते नागा अन्तर्हितास्तदा। ददृशुस्ते मखहयं मुनेरेकस्य सन्निधौ॥२५॥
तं ते पितुर्हयं ज्ञात्वा तं मुनिं हयचोरकम्। पलायितजने देशे तं दृष्ट्वा ते ह्यताड़यन्॥२६॥
आदौ चक्रुर्महाशब्दान् ढक्काद्यानप्यनादयन्। तदा पादैरप्रहार्य्यं ताड़यामासुरोजसा॥२७॥
ततो भग्नसमाधिश्च कपिलो नाम वै मुनिः। उन्निद्रयित्वा नयने तान्ददर्श स तामसान्॥२८॥
हुङ्कारशब्दसंयुक्तचक्षुर्दर्शनतो मुनिः। तत्क्षणादेव वै भस्म चकार तान् कृतागसः॥२९॥

तदनन्तर उनके महातल में प्रवेश करते ही नागगण अश्व वहीं छोड़कर अन्तर्हित हो गये। तब सगर पुत्रों ने देखा कि एक मुनि के पास ही अश्व स्थित है। उन्होंने पिता का अश्व देखा तथा मुनि को अश्वचोर मानकर वहां निर्जन में ऋषि कपिल को त्रस्त करने लगे। पहले उन्होंने महाशब्द करके अनेक वाद्य बजाये। तदनन्तर उन प्रहार के कदापि अयोग्य मुनि पर पाद प्रहार किया। इससे उनकी समाधि भंग हो गई। तब कपिल मुनि ने नेत्र खोलकर उन तमः प्रकृति दुरात्मागण के प्रति हुंकार के साथ दृष्टि फेरी। वे सभी तत्काल भस्म हो गये।।२५-२९।।

ततश्चिरायितान् दृष्ट्वा सगरः स्वान् सुतान् बहून्।
चिन्तयन्नारदान्देवान्मृतान् शुश्राव तांस्तथा॥३०॥

ततः स पौत्रं सगर आसमञ्जसमुत्तमम्। अंशुमन्तं न्ययुङ्क्तैव दर्शयन् ब्राह्मणाद्भयम्॥३१॥
पितामहेन चाज्ञप्तः सोऽंशुमानासमञ्जसः। तेषां गत्यनुसारेण ययौ साधुर्महातलम्॥३२॥
ददर्श कपिलं तत्र महापुरुषमीश्वरम्। प्रणम्य दण्डवद्देवं प्राञ्जलिः पुनरब्रवीत्॥३३॥

उधर राजा सगर पुत्रों के आने में विलम्ब से चिन्तातुर थे। तभी देवर्षि नारद ने राजा को पुत्रों की मृत्यु का समाचार प्रदान किया। तत्पश्चात् उन्होंने यह जानकर कि ब्रह्मकोप के कारण यह अनर्थ घटित हुआ है अपने पौत्र अंशुमान को नियुक्त किया। असमंजस का पुत्र अंशुमान पितामह का आदेश पाकर पितृव्यगण द्वारा निर्मित मार्ग से महातल गया। वहां महापुरुष ईश्वर कपिल मुनि का दर्शन प्राप्त किया। अंशुमान उनको प्रणाम करके अंजलिबद्ध होकर निवेदन करने लगा।।३०-३३।।

प्रभो विश्वेश विश्वात्मन् भगवन् विश्वसम्भव। नारायण सुरैरीड्य सांख्ययोगप्रवर्त्तक॥३४॥
पितामहो मे सगरश्चक्रवर्त्ती महायशाः। धरण्यां यजते देव हयमेधेन देवताः॥३५॥
हयं तस्य मखस्येमं हृत्वा नागा महाबलाः। बन्धयित्वा समीपे ते नागा अन्तर्हिताः क्वचित्॥३६॥
एतदर्थाः पितृव्या मे आगता इह ते प्रभो। तमोभावेन पूर्णास्ते नष्टास्त्वयि कृतागसः॥३७॥
ब्रह्मदण्डहता एते दुर्गतिं परमां गताः। अनुग्रहस्वभावात्मा मोक्षयामून् कृतागसः॥३८॥

पितामहपशुञ्चामुं दातुमर्हसि मे प्रभो।।३९।।

अंशुमान् कहता है—हे सांख्ययोग प्रवर्त्तक, देवपूज्य, विश्वकारण, विश्वपति, विश्वात्मा, भगवान् नारायण रूप कपिल मुनि! मेरे पितामह महायशस्वी राजा सगर मर्त्यलोक में अश्वमेघ यज्ञ कर रहे थे। तब महाबली नागों ने यह यज्ञीय अश्व हरकर आपके पास बांधा तथा अन्तर्हित हो गये। हे प्रभो! इस अश्व हेतु तमः स्वभाव मेरे पितृव्यगण ने यहां आकर आपके ऊपर ऐसा अत्याचार किया जो पहले कभी नहीं देखा गया था। इससे वे नष्ट हो गये। ब्रह्मदण्ड से उनकी क्या दुर्गति हुई है! हे प्रभो! आप अब कृपापूर्वक उनका उद्धार करें। साथ ही पितामह का अश्व मुझे प्रदान करें।।३४-३९।।

कपिल उवाच

आसमञ्जस ते भद्रं नीयता यज्ञियो हयः। त्वयि तन्तुश्च पिण्डश्च सगरस्य महात्मनः।।४०।।

नष्टा एते पुराह्येव सुमतिस्तु वृथात्मजा।।४१।।

एषां मत्तस्वभावानां न किञ्चित् साधु विद्यते। विना मद्दर्शनं तात नाफलं दर्शनं मम।।४२।।

एतेषां खलु सर्व्वेषामुद्धारायासमञ्जस। गङ्गा यदि समायाति भित्वा ब्रह्माण्डमस्तकम्।

विष्णोः पदात् पुण्यजला तदैतेषां गतिर्भवेत्।।४३।।

सा दुराराधिता देवी पार्व्वती शिववल्लभा। आराधिता चेत् सायाति तदा तेषां गतिर्भवेत्।।४४।।

तस्या आनयनं तात कुरु यत्नेन भूयसा। सा ह्यनन्या गतिर्देवी गङ्गा पापवतां किल।।४५।।

पितामहस्ते सगरस्तदर्थं यत्नवान् भवेत्। ततश्चेत् कार्य्यसिद्धिर्न तदा त्वं यत्नवान् भवेः।।४६।।

त्वत्तोऽपि चेन्न तत्कार्य्ये तदा पुत्रादयस्तव। आराधयेयुर्गङ्गां वै तत्र कोऽप्यानयिष्यति।।४७।।

गच्छ नीत्वा क्रतुहयं सगरस्य समाज्ञया।।४८।।

कपिल कहते हैं—हे असमंजस पुत्र! तुम इस यज्ञीय अश्व को ले जाओ। महात्मा सगर की पिण्डधारा तथा वंश धारा तुमसे ही रक्षित होगी। ये तो पहले ही नष्ट हो गये। रानी सुमति के पुत्र होना न होना बराबर हो गया! इनका तमोगुणी स्वभाव कदापि श्रेयस्कर नहीं था। हे तात! तब भी मेरा दर्शन निष्फल नहीं होगा। यदि पुण्यतोया गंगा ब्रह्माण्ड भेद करके विष्णु के चरणकमल से यहां आगमन करें, तब मोहग्रस्त तुम्हारे पितृव्यों की सद्गति होगी। ये दुराराध्या शिववल्लभा गंगा यदि आराधिता होकर इस लोक में आगमन करें, तभी इनकी सद्गति होगी। अन्यथा नहीं। हे वत्स! उनको लाने का यत्न करो। वे ही पापीगण के उद्धार का एकमात्र उपाय हैं। तुम इस हेतु यत्न करो। यदि सफलता न मिले तब तुम्हारे पुत्रादि में से कोई उनकी आराधना करके उनको ले आये। अब तुम अश्व लेकर यहां से जाओ।।४०-४८।।

शुक उवाच

इत्युक्तः कपिलेनैव नप्ता सगरभूपतेः। अश्वं नीत्वा ययौ यत्र याज्ञिकः सगरो नृपः।।४९।।

मरणञ्च पितृव्याणां दुर्गतिञ्चापि जैमिने। उद्धारहेतुं देवोक्तं भूपतौ संन्यवेदयत्।।५०।।

सगरो ज्ञातसर्व्वार्थः क्रतुं प्रारब्धमार्पयत्। गङ्गामाराधयामास पुत्राणां कुशलाय सः।।५१।।

नाशक्नोत्तां दुराराध्यां गङ्गां विष्णुपदस्थिताम्।

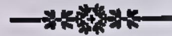
(न्यस्य चांशुमते राज्यं कालस्य वशमीयिवान्।।५२।।

ततश्चैवांशुमान्नाम गङ्गानयनकाम्यया। तपश्चेरे बहून् कालांस्तामानेतुं न चाशकत्॥५३॥

तस्य पुत्रो दिलीपोऽभून्महाराजोऽतिधार्म्मिकः।)
न्यस्य पुत्रे दिलीपे स राज्यं सर्व्वमकण्टकम्।
गङ्गाकथां सुते दत्वा कालस्य वशमीयिवान्॥५४॥

स दिलीपो महाराजो बहुकालांस्तपोऽचरत्। नाशक्नोद् वैष्णवात् पादाद्गङ्गामानयितुं द्विज॥५५॥
पुत्रे भगीरथे न्यस्य सप्तद्वीपेशतां नृपः। कालधर्म्मं गतो ध्यात्वा देवीं गङ्गां परं ययौ॥५६॥
राजा भगीरथश्चासौ सप्तद्वीपेश्वरः कृती। श्रुतवान् पूर्व्ववंश्यानां दुर्गतिं ब्रह्मदण्डतः॥५७॥
चिन्तयामास चोद्धारं तेषां परमचिन्तया। अयमेव समाराध्य गङ्गां देवीं ददर्श वै॥५८॥

॥इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे गङ्गाराधने अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥



शुक कहते हैं—हे जैमिनि! अंशुमान ने कपिल मुनि द्वारा यह कहे जाने पर अश्व को वहां से लिया तथा राजा सगर से अपने पितृव्यगण की मरण दुर्गति का तथा महर्षि कपिल द्वारा कहे गये उनके उद्धार उपाय का निवेदन किया। राजा सगर ने सभी वृत्तान्त ज्ञात करके उस यज्ञ का समापन सविधि किया तथा पुत्रों के उद्धारार्थ अंशुमान को राज्यभार देकर गंगातट पर आराधना करने लगे, तथापि दुराराध्या देवी गंगा प्रसन्न न हो सकीं। कालक्रमेण उनकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात् अंशुमान् ने गंगा के आगमनार्थ दीर्घकाल तक तपःश्चरण किया, तथापि गंगा को पृथिवी पर नहीं ला सका। उसका पुत्र दिलीप अत्यन्त धार्मिक राजा था। वह पुत्र को समस्त निष्कण्टक राज्यभार अर्पित करके कालवश मृत्यु को प्राप्त हो गया। अंशुमान् ने दिलीप को सभी वृत्तान्त सुना दिया था। हे द्विज! राजा दिलीप ने दीर्घकालीन तपःश्चरण किया तथापि गंगा को पृथिवी पर नहीं ला सके। अन्ततः उन्होंने पुत्र भगीरथ को सप्तद्वीप का आधिपत्य प्रदान किया तथा पञ्चत्व को प्राप्त हो गये। जब राजा भगीरथ ने राज्याधिपत्य प्राप्त करके अपने पूर्वजों की दुर्दशा को सुना, तब वे एकाग्रता से उनके उद्धारार्थ चिन्ता करने लगे। तदनन्तर भगीरथ ने गंगा देवी की अर्चना-आराधना करके उनका दर्शन लाभ किया।।४९-५८।।

।।अष्टचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगीरथ की तपस्या

जैमिनिरुवाच

पूर्व्वैरपारितं कर्म्म कथं राजा भगीरथः। अशक्नोत् येन सा गङ्गा धरण्यामवतारिता॥१॥
तद्वदस्व महाभाग श्रोतुं कौतुहलं मम। कीदृशं वा तपश्चेरे तदा राजा भगीरथः॥२॥

जैमिनी कहते हैं—हे महाभाग! पूर्वकाल में राजा भगीरथ ने किस प्रकार से तप करके पूर्वपुरुषगण के प्रयत्न से न आ सकने वाली गंगा का आनयन पृथिवी पर किया। हे प्रभो! इसे सुनने का अत्यन्त कुतुहल है। आप कृपया कहिये।।१-२।।

व्यास उवाच

एवमुक्तो जैमिनिना शुकदेवः प्रहर्षितः। जगाद ननु जाबाले गङ्गावतरणं परम्।।३।।

व्यासदेव कहते हैं—हे जाबाल! जैमिनी द्वारा यह कहे जाने पर शुकदेव ने अत्यन्त आनन्दित होकर उनसे गंगा के पृथिवी पर अवतरण का वर्णन किया।।३।।

शुक उवाच

राजा भगीरथो नाम दिलीपतनयः पुरा। वशिष्ठं परिपप्रच्छ ससन्देहेन चेतसा।।४।।

शुकदेव कहते हैं—पूर्व में एक बार दिलीपनन्दन राजा भगीरथ ने संदिग्ध चित्त से वसिष्ठ से पूछा।।४।।

राजोवाच

कथं वशिष्ठ ब्रह्मर्षे मम पूर्व्वपितामहाः। गङ्गामानयितुं शक्ता नाभवन् कृतपुण्यकाः।।५।।
अहं वा तैर्न शक्तं यत् तत् करिष्यामि वा कथम्। तद्वदस्व महाभाग कथं तेषां गतिर्भवेत्।।६।।

राजा भगीरथ कहते हैं—हे ब्रह्मर्षि! हे वसिष्ठदेव! मेरे पूर्व पितामहगण अत्यन्त पुण्यात्मा थे, तथापि वे गंगा को क्यों धरती पर नहीं ला सके? अब मैं किस प्रकार से साध्यातीत गंगा को ला सकूं तथा पूर्वपुरुषों का उद्धार कर सकूं, आप उसका उपाय कहें।।५-६।।

वशिष्ठ उवाच

गङ्गादेवी दुराराध्या कथमल्पतपस्यया। मनुष्यलोकं धरणीमायास्यति नृपोत्तम।।७।।
तप पूर्व्वैस्तु पुरुषैर्यत्तपः सञ्चितं परम्। तैस्तपोभिः कृतैरुग्रैस्तपसा च तव प्रभो।
चतुर्भिः पुरुषैर्गङ्गाराधिता सागमिष्यति।।८।।
तप जन्म तु तेषां वै तपसां सार्थकार्थकम्। त्वमाराधय तां गङ्गां सर्व्वथैवानयिष्यसि।।९।।

वसिष्ठ कहते हैं—हे नृपश्रेष्ठ! गंगादेवी दुराराध्या हैं। अतः सामान्य तप द्वारा उनको पृथिवी पर लाना कैसे संभव है? तुम्हारे पूर्वतन पुरुषों ने उनको लाने हेतु उग्रतर तप किया। अब तुम्हारे द्वारा तप किये जाने पर तुम्हारी चार पीढ़ी द्वारा आराधिता भगवती निःसंदेह आगमन करेंगी। तुम्हारा जन्म अपने पूर्वतन पूर्वजों के तपः को सार्थक करने हेतु हुआ है। अतएव गंगा की आराधना में प्रवृत्त हो जाओ। तब उनको धरती पर अवश्य ला सकोगे।।७-९।।

राजोवाच

गङ्गा कीदृक् कुत्र चास्ते तदर्थं वा कथन्त्वहम्। करिष्यामि तपो ब्रह्मंस्तन्मे वक्तुमिहार्हसि।।१०।।

राजा कहते हैं—हे ब्रह्मन्! देवी गंगा कैसी हैं? उनकी स्थिति कहां हैं? उनको लाने हेतु कैसी तपस्या करूं? आप यह सब कहने की कृपा करें।।१०।।

वशिष्ठ उवाच

ध्येया गङ्गा श्वेतरूपा त्रिनेत्रा वरदा शुभा। अभया पद्महस्ता च पीयूषघटपाणिका॥११॥
चतुर्भुजा दिव्यरूपा वसन्ती मकरे शुचौ। नानालङ्कारभूषाढ्या स्फुरत्स्मेरमुखाम्बुजा॥१२॥
भ्राजमाना दशदिशो दीपयन्ती महाप्रभा। ज्वलत्कनकहेमाभा वासोयुगपिधायिनी॥१३॥
कलिकल्मषसंहन्त्री पातु पर्व्वतकन्यका। एवं ध्येया त्वया गङ्गा स्मरणीया सुखप्रदा॥१४॥

वसिष्ठ कहते हैं—हे राजन्! ये कलिकलुषनाशिनी सुखप्रदा गंगा त्रिनेत्रा, श्वेताङ्गी हैं। उनके चार हाथों में क्रमशः वर, अभय मुद्रा, पद्म तथा सुधा कलश विद्यमान है। वे दिव्यमूर्त्ति, श्वेत मकर पर आसीना तथा नाना अलंकारों से भूषिता हैं। उनके मुख पर ईषत् हास्य रहता है। उनके देह के ऊर्ध्व एवं अधः भाग पर प्रदीप्त हेमवर्ण वस्त्र विराजित है। उन देवी की देहप्रभा से दसों दिशायें उद्भासित हैं।।११-१४।।

तद्विष्णोः परमं पदं ब्रह्माण्डोपरि राजते। तस्मिन् वसति सा गङ्गा त्यक्त्वा ब्रह्मकमण्डलुम्।
पतिस्तस्या महादेवो मूर्त्तो तत्रापि तिष्ठति॥१५॥
हिमालयस्य निकटे त्वं नु तावत्तपः कुरु। यावन्न लप्स्यसे गङ्गां (देवदेवीभिरर्चिताम्॥१६॥
कुलप्रदीपो हि भवान् गङ्गां परमपावनीम्। दुरबोध्यां महापुण्यां लोकेऽवतारयिष्यति॥१७॥
त्वत्तुल्यो वाऽधिको वापि न भूतो न भविष्यति।
त्रैलोक्यपावनीं गङ्गां) त्वञ्चावतारयिष्यसि॥१८॥
यत्तपो विहितं पूर्व्वैस्तत्तु पिण्डीकृतं हि सत्॥१९॥

(इस प्रकार से उनका ध्यान करें। वे स्मरणीया तथा सुखप्रदा हैं।) जो ब्रह्मा के कमण्डलु से निकल कर ब्रह्माण्ड के ऊपर विराजित विष्णु के परमपद पर स्थित रहती हैं। वे स्वयं पति महादेव के साथ अपनी स्वमूर्त्ति में विराजित रहती हैं। तुम इस प्रकार उनका चिन्तन करो तथा मन ही मन प्रार्थना करो कि वे नगनन्दिनी हमारी रक्षा करें। जब तक उन देव-देवीगण द्वारा वन्दिता गंगा का साक्षात्कार न मिले, तब तक हिमालय के निकट तपस्यारत रहना। तुम कुलदीपक हो। उन परमपावनी, दुराराध्या, महापुण्या भगवती को भूतल पर ला सकोगे। जब तुम्हारे द्वारा त्रैलोक्य पावनी गंगा का अवतरण होगा, तब तुम्हारे समान पुण्यात्मा न तो कोई था, न होगा, न है। हे राजन्! तुम अपने पूर्वजों के तप का पिण्डीभूत रूप हो, क्योंकि जो कोई न कर सका, तुम उन गंगा को धरती पर अवतीर्ण करोगे।।१५-१९।।

भवानेन बभूवेह यदपूर्व्वावतारकृत्। कीर्त्तिस्ते विपुला पुण्या लोके स्थास्यति निश्चला॥२०॥
यद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं नरदृग्गोचरो भवेत्। स्वेषां पूर्व्वभूवां पुंसामुद्धारायावतारिता।
अनायासेन त्रैलोक्ये भवेद्ब्रह्मत्वदायिनी॥२१॥
भागीरथीति ते नाम्ना सा गङ्गा ख्यातिमेष्यति। वत्स साधो चिरं जीव किमपूर्व्वं करिष्यसि॥२२॥
नरेभ्यो दुर्लभां गङ्गां सुलभाञ्च करिष्यसि। गङ्गापूजानुगा राजंस्तव पूजा भविष्यति॥२३॥

तुम्हारी यह पावन कीर्ति जगत् में चिरकाल तक अचल भाव से देदीप्यमान रहेगी। तुम अपने पूर्वजों के उद्धारार्थ

भगवती गंगा को लाओगे, जो परम ब्रह्म तथा परम सूक्ष्म हैं। अभी उनका दर्शन करने में कोई भी समर्थ नहीं है। मानवगण तब उनको अनायास देख सकेंगे। त्रैलोक्य के लोग बिना क्लेश उठाये ब्रह्मत्व प्राप्त कर सकेंगे। देवी गंगा तुम्हारे द्वारा अवतीर्ण होकर तुम्हारे नाम के अनुसार भागीरथी कही जायेंगी। अहो! हे वत्स! साधो! तुम चिरंजीवी हो जाओ। तुम त्रैलोक्यदुर्लभा गंगा को मनुष्यों हेतु सुलभ करोगे। गंगापूजनोंपरान्त लोग तुम्हारा पूजन करेंगे।।२०-२३।।

शुक उवाच

एवं तेन वशिष्ठेन प्रोक्तो राजा भगीरथः। जगाम तपसे धीमान् गङ्गानयनकारिणे॥२४॥
एकपादस्थितश्चोर्द्ध्वं नभोदृष्टिर्निराश्रयः। तपस्तेपेऽशनं त्यक्त्वा दिव्यान् द्वादशवत्सरान्॥२५॥
एवं तपस्यति ह्युग्रे महाराजे भगीरथे। देवाः सर्व्वे निरुच्छ्वासाः शिवं गत्वा न्यवेदयन्॥२६॥
देवदेव महादेव चन्द्रमौले महेश्वर। त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु पञ्चवक्त्र नमोऽस्तु ते॥२७॥
नमस्ते नीलकण्ठाय शितिकण्ठाय ते नमः। नमो वृषाकपे तुभ्यं भैरवाय नमोऽस्तु ते॥२८॥
सर्व्वाय क्षितिमूर्त्ते ते सर्व्वाधाराय शाश्वत। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः॥२९॥

शुक कहते हैं—धीमान् राजा भागीरथ वसिष्ठ का वचन सुनकर गंगा को लाने हेतु तप करने चल पड़े। तदनन्तर उन्होंने आहार त्याग दिया तथा एक पैर पर खड़े होकर ऊर्ध्वदृष्टि रखते निरालम्बावस्था में दिव्य १२वर्ष (देववर्ष के परिमाणानुसार) कठोर तप किया। सुरगण उनके तपःश्चरण से क्लिष्ट होकर शिव के निकट जाकर कहने लगे—हे देवदेव! चन्द्रमौलि, महेश्वर, महादेव, त्रिलोचन, वृषकेतन, नीलकण्ठ, भैरव! आपको पुनः-पुनः प्रणाम! हे शाश्वत्! आप सर्व हैं। आप पृथिवी मूर्त्ति धारण करके सबको धारण करते हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम।।२४-२९।।

भवाय जलमूर्त्ते ते जीवनामृतरूपिणे। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः॥३०॥
रुद्राय चाग्निमूर्त्ते ते सर्व्वदेवमुखाय च। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः॥३१॥
(उग्राय वायुमूर्त्ते ते प्राणापानादिरूपिणे। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः॥३२॥
भीमायाकाशमूर्त्ते ते भूताय विष्णुरूपिणे। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः॥३३॥
पशुपतये यजमानमूर्त्ते साध्याय साधकात्मने। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः॥३४॥
महादेवाय ते सोममूर्त्ते च सुखरूपिणे। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः॥३५॥
ईशानाय सूर्य्यमूर्त्ते तेजोरूपाय भास्वते।(नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः)॥३६॥
अष्टमूर्त्ते नमस्तुभ्यं नमस्ते कालमूर्त्तये। नमो भगवते तुभ्यं प्रपन्नान् पाहि नः प्रभो॥३७॥

हे देव! आप जीवन के अमृतस्वरूप जलमूर्त्ति को धारण करके जगत् का मंगल करते हैं। आप ही रुद्र अग्निमूर्त्ति होकर समस्त देवगण के मुख हो जाते हैं। आप उग्र वायु मूर्त्ति द्वारा प्राणापानादि रूप से जीवों में विचरण करते हैं। हे आकाशमूर्त्ति! आप भीम तथा विष्णु हैं। हे यजमान मूर्त्ति! आप ही साध्य, आप ही साधक, आप ही पशुपति हैं। हे महादेव, हे सोममूर्त्ति! आप महादेव तथा सुखस्वरूप हैं। हे ईशान, हे सूर्यमूर्त्ति! आप अपने तेज से समस्त जगत् को प्रकाशित करते हैं। आप ही कालरूप हैं। हे अष्टमूर्त्ति! हम आपको पुनः-पुनः प्रणाम करते हैं। हम आप की शरण में हैं। हमारी रक्षा करें।।३०-३७।।

भगीरथस्तपस्यन् वै न मन्ये किं करिष्यति। भगीरथस्य तपसो महोग्रात् सभया वयम्।
भवन्तं शरणापन्ना यथोचितमथो कुरु॥३८॥

हे देव! भगीरथ जैसी तपस्या कर रहा है, हमें ज्ञात नहीं क्या करेगा, तथापि हम उसके उग्र तपःश्चरण से शंकित होकर आपकी शरण में आये हैं। जो उचित हो वह करें।।३८।।

भगवानुवाच

मा चिन्तयत वै देवा नायं राजा भगीरथः। युष्माकमपकाराय तपस्यति महामनाः॥३९॥
चिकीर्षुर्यदयं राजा तन्मया पूरयिष्यते। यूयं गच्छत निर्भीताः स्वस्वस्थानानि हर्षिताः॥४०॥

भगवान् कहते हैं—हे देवगण! तुम लोग चिन्ता न करो। महामति राजा भगीरथ तुम लोगों के अपकार हेतु तप नहीं कर रहें हैं। वे जो चाह रहे हैं, वह मैं शीघ्र पूर्ण करूंगा। तुम लोग शंकारहित होकर आनन्दपूर्वक अपने-अपने स्थान जाओ।।३९-४०।।

शुक उवाच

इत्याकर्ण्य तदा देवाः प्रणम्य चन्द्रशेखरम्। ययुः प्रहर्षिताः स्वर्गं गङ्गां सस्मार शङ्करः॥४१॥
स्मृता गङ्गा समागत्य देवदेवं त्रिलोचनम्। प्रणिपत्य स्थिता तत्र शिवो गङ्गामथाब्रवीत्॥४२॥

शुकदेव कहते हैं—देवगण महादेव का यह वाक्य सुनकर निःशंक होकर सानंद शंकर को प्रणाम करके अपने-अपने स्थान चले गये। तब प्रभु शिवशंकर ने गंगा का स्मरण किया। भगवती गंगा ने शिव के पास आकर उनको प्रणाम किया तथा वहां बैठ गयीं।।४१-४२।।

स्वागतन्ते वरारोहे गङ्गे पार्व्वति सुन्दरि। यदर्थं त्वं स्मृता देवि कथयामि शृणुष्व तत्॥४३॥
सूर्य्यवंशोद्भवो राजा धर्म्मचारी भगीरथः। स तपस्यति यत्नेन त्वं कथं दयसे न तम्॥४४॥
दया हि परमो धर्म्मस्तेन शून्यासि मन्यते॥४५॥
त्वां समाराधयामासुः सगरांशुमदादयः। न तेषु दृष्टिपातञ्च कृतवत्यसि पार्व्वति॥४६॥
ते सर्व्वे परमार्थज्ञा जितात्मानो जितेन्द्रियाः। शुचयः पुण्यकर्म्माणो यज्वानो दानशीलिनः॥४७॥
तेषां चतुर्णां भूपानामेक एव तपस्यया। द्रष्टुं त्वां शक्यते किन्तद्यत्र सर्व्वे कृतश्रमाः॥४८॥
यद्गतं तद्गतं देवि दर्शय स्वं भगीरथम्। स तपस्यति धर्म्मात्मा त्वदर्थे त्यक्तजीवितः।
चिराधःपतितांस्तस्य चोद्धर प्रपितामहान्॥४९॥

शिव कहते हैं—हे वरारोहे! गंगे! हे सुंदरी! पार्वती! मैंने जिस लिये तुम्हारा स्मरण किया है, वह सुनो। हे देवी! सूर्यवंशीय परम धार्मिक राजा भगीरथ तुम्हारे लिये तप कर रहें हैं। तथापि तुम किस कारण से उनके प्रति दया नहीं करती हो? दया ही परमधर्म है। अतः मैं तुमको दयाहीना मान रहा हूं। हे पार्वती! देखो! सगर, अंशुमान् आदि ने तुम्हारी सम्यक् आराधना किया था। किन्तु तुमने उनके प्रति दृष्टिपात तक नहीं किया! वे सभी परमार्थज्ञ, इन्द्रियजित्, पवित्र, पुण्यकर्मा, यज्ञपरायण तथा दानी थे। वे सभी चारों राजा तप द्वारा तुम्हारा साक्षात्कार करने योग्य थे, तथापि उनको कठोर तपःक्लेश झेलने पर भी तुम्हारा दर्शन नहीं मिला। हे देवी! अब तक जो होना था, हो गया।

अब भगीरथ को दर्शन प्रदान करो। वह धर्मात्मा तुम्हारे लिये जीवन निरपेक्ष होकर तप कर रहा है। तुम उसके चिरकाल से अधःपतित प्रपितामहगण का उद्धार करो।।४३-४९।।

शुक उवाच

एवमुक्ता तदा गङ्गा विषण्णवदना शिवम्। अभ्यभाषत वै किञ्चिन्मानमन्दाक्षदर्शिनी॥५०॥

शुक कहते हैं—देवी गंगा भगवान् महेश्वर का यह वाक्य श्रवण करके विषण्ण हृदयपूर्व म्लान मन से कहने लगीं।।५०।।

गङ्गोवाच

प्रभो शङ्कर देवेश किं मां त्यक्ष्यसि मन्यते। अहं त्वया परित्यक्ता कुत्र स्थास्यामि ते प्रिया॥५१॥
यत्नेन महता देव त्वां लब्धास्मि पतिं प्रभो। तां मां ज्यजसि कस्मात्त्वं सापराधास्मि मन्यते॥५२॥
मामाराध्यति राजासौ पातालगमनायहि। कथं त्वमीदृशे कार्य्ये करोष्यनुमतिं प्रभो॥५३॥
अन्योपायेन तत्पूर्व्वान् समुद्धर महेश्वर। न मे पातालगमने उपरोधं समाचर॥५४॥
कलौ धरातले मर्त्त्या अवमंस्यन्ति मामिमाम्। कथं पापस्य पीड़ां तां सहिष्यामि महेश्वर॥५५॥

गंगा कहती हैं—हे प्रभु शंकर! हे देवेश! मेरा त्याग क्यों कर रहे हैं? मैं आपकी पत्नी हूं। मैं आप द्वारा त्यागी जाकर कहां स्थित रहूंगी? हे प्रभो! मैंने अनेक यत्न से आपको पतिरूपेण प्राप्त किया। हे देव! मेरा त्याग क्यों कर रहे हैं? लगता है कि मुझसे कोई अपराध हो गया है! हे प्रभो! राजा भगीरथ मुझे पातालतल ले जाने हेतु मेरी आराधना कर रहा है। अतः आप किस कारण से ऐसे कार्य का आदेश मुझे दे रहे हैं? हे महेश्वर! अन्य उपाय से उसके पूर्वपुरुषों का उद्धार करें। मुझे पातालतल जाने को न कहें! हे महादेव! कलिकाल में वहां मेरी अवमानना होगी, अतः वह पाप क्लेश कैसे सहन हो सकेगा?।।५१-५५।।

नराणां पशुधर्म्माणामवमानभयादहम्। सगरादिकभूपानां नैव दर्शनमाययौ॥५६॥
अतः क्षमस्व मे देव नोचितं पतनं मम। परामृश त्वमेवेदं कथमेवं भवेन्मम॥५७॥
भार्य्याहन्ते शिरः प्राप्ता दत्से तस्य फलं मतम्। भार्य्या पतिमतिक्रान्ता चावसीदत्यसंशयम्॥५८॥
याहं गता शिरः पत्युर्लोकनाथस्य शङ्कर। साहं कथं भविष्यामि पातालतलगामिनी॥५९॥

पशुधर्मावलम्बी मनुष्यगण के अवमानना भय से ही मैंने सगर आदि राजागण को दर्शन नहीं दिया। हे देव! मुझे क्षमा करें। मुझे पतित करना आपके लिये उचित नहीं है। आप ही विवेचना करें कि मैं कैसे वह दुर्दशा भोग करूं? मैं आपकी भार्या होकर भी आपके मस्तक पर अधिष्ठित हूं। बोध होता है उसी का प्रतिफल पा रही हूं। वास्तव में जो रमणी पति मर्यादा का लंघन करती हैं, वह पतित होती ही हैं। मैंने पति लोकनाथ के मस्तक पर आरोहण किया है, तब क्यों कर मैं पाताल जाऊं?।।५६-५९।।

यस्या मे वसतिर्देव चतुर्वक्त्रकमण्डलौ। साहं कथं भविष्यामि पातालतलगामिनी॥६०॥
याहं हिमालयसुता पार्व्वतीति मता शुभा। साहं कथं भविष्यामि पातालतलगामिनी॥६१॥
याहं शैलसुता त्यक्त्वा धरां स्वर्गं गता सुरैः। साहं कथं भविष्यामि पातालतलगामिनी॥६२॥

याहं देवैश्च दुर्लभा पूजिता मेरुमूर्द्धनि। साहं कथं गमिष्यामि पातालतलगामिनी॥६३॥
याहं त्यक्त्वा वपुर्दिव्यं त्वां प्राप्तुं तनुमाश्रिता। साहं कथं गमिष्यामि पातालतलगामिनी॥६४॥
याहं गता ब्रह्मलोकं ब्रह्मभाण्डकृतालया। साहं कथं गमिष्यामि पातालतलगामिनी॥६५॥
याहं वैकुण्ठभवनं गता च भवता सह। साहं कथं भविष्यामि पातालतलगामिनी॥६६॥
उच्चैरुच्चैर्गतिर्यस्या ममाभूदुत्तरोत्तरा। साहं कथं गमिष्यामि पातालतलगामिनी॥६७॥

हे देव! मैं ब्रह्मकमण्डलु में रहने वाली कैसे पातालतल में गमन करूंगी? मैंने धरती का त्याग किया। देवगण के साथ देवलोक जाकर रही। वहां मुझे दुर्लभ मानकर देवलोकस्थ देवताओं ने पूजन किया था। मैंने अपने दिव्यदेह को त्यागकर आपको पाने हेतु पुनः देहधारण किया। मैंने ब्रह्मकमण्डलु में रहकर ब्रह्मलोक गमन किया तथा मैं आपके साथ वैकुण्ठ गयी। वहीं मैं अब पाताल जाऊंगी! हे देव! इस प्रकार उच्चतम गति प्राप्त हुई। मैं निराकार होकर भी हरितनुद्रवरूप आकारयुता हो गयी। वह मैं जो सुमेरु की दौहित्री तथा हिमालय की कन्या हूं तथा मैंने ब्रह्माण्ड त्याग कर सत्वमय हरिपद पाया था, वही मैं अब किस प्रकार से पाताल जाऊं?।।६०-६७।।

निराकारापि याकारं प्राप्ता हरितनुद्रवम्। साहं कथं गमिष्यामि पातालतलगामिनी॥६८॥
याहं सुमेरु दौहित्री कन्या हिमगिरेः शिव। साहं कथं गमिष्यामि पातालतलगामिनी॥६९॥
त्यक्त्वा याहं ब्रह्मभाण्डं प्राप्ता सत्त्वं हरेः पदम्। साहं कथं भविष्यामि पातालतलगामिनी॥७०॥
साकारापि निराकारा जलाकारं गता यतः। अतएव नदी भूत्वा पतिष्याम्यहमच्युत॥७१॥
अत्युच्चैःशिरसो देव निपात एव नान्यथा। अत्रोदाहरणेनाहं नियुज्ये भवतैव हि॥७२॥
सह्यं मे पृथिवीयानं सह्योऽधःपात एव च। सह्यश्चोच्चैःपरित्यागो न त्वत्त्यागो हि सह्यते॥७३॥
भवतो यदि मूर्द्धानं लप्स्ये याता धरातलम्। तदा मे हर्षितत्वं स्याद्गन्तुं विवरमच्युत॥७४॥
न मह्यं रोचतेऽत्रापि वैकुण्ठश्च पुरोत्तमः। त्वामेव लब्ध्वा सर्व्वत्र तुल्यभावा स्थिता प्रभो॥७५॥

मैंने साकार होकर भी जब निराकार रूप धारण किया था। मुझे अब नदीरूपेण पतित होना होगा। हे देव! यह मेरे द्वारा आपके मस्तक पर चढ़ने का फल है। इसमें तनिक संदेह नहीं है। जीवगण भी इसी प्रकार अत्यन्त ऊंचे चढ़कर गिरते हैं। इस विषय में आप ही निर्देश प्रदान करें। हे प्रभु! मैं धरातल, गमन, अधःपतन तथा प्रिय का परित्याग तो सह लूंगी। यदि मैं धरातल जाकर भी आपके मस्तकस्थ रह सकूं, तब धरातलगमन अथवा पातालपतन में कुछ भी दुःख नहीं है। हे प्रभु! मैं आपके बिना वैकुण्ठ भी नहीं चाहती, तथापि आपको पाकर सर्वत्र रह सकती हूं।।७१-७५।।

शुक उवाच

एवं करुणवाक्येन क्लिन्नचेता महेश्वरः। मधुरस्निग्धगम्भीरं गङ्गां वचनमब्रवीत्॥७६॥

शुकदेव कहते हैं—भगवान् महेश्वर गंगा के इस कातर वाक्य से दुःखित हो गये तथा गंभीर मधुर स्निग्ध वचन से गंगा से कहने लगे।।७६।।

शङ्कर उवाच

देवि गङ्गे महाभागे जाने त्वां मत्परायणाम्। अहं त्वां शिरसा धास्ये नदीभूताञ्च तत्र हि॥७७॥

यदा भगीरथो राजा पातालं कथयिष्यति॥७८॥
तदा त्वं वक्ष्यसि नृपं शिवश्चेन्मां धरिष्यति।
तदाहं पृथिवीवर्त्म यास्यामि विवरं ध्रुवम्॥७९॥
अनाधारां पतिष्यन्तीं धरा धर्त्तुं न शक्ष्यति। मम पीड़ा धरायाश्च तदा पीड़ा भविष्यति॥८०॥
एवमुक्तो नृपः शैवो मामप्याराधयिष्यति।
अहञ्च त्वां निजे मौलौ धरिष्यामि न चान्यथा॥८१॥
कलौ पापवनश्रेणीदावभूता भविष्यसि। न पापेभ्यो भयं ते स्यात् पापानां भयदा भवेः॥८२॥
कलौ पापाश्रये काले कीर्त्तिस्ते पापनाशिका।
भविष्यति त्रिलोकेषु त्वञ्च व्याप्ता स्थिता भव॥८३॥
अभिशापोऽपि तेऽस्त्येव मेनकादेः सुदुर्व्वरः।
अस्मांस्यक्त्वा गता यस्मात्तस्मात्त्वं तदधःपतेः॥८४॥
अतस्ते भवितव्यं हि नदीत्वं ननु वर्त्तते। तस्मादपरिहार्य्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥८५॥
त्वत्प्रवाहस्थलं सर्व्वं शिरो मम भविष्यति। सर्व्वत्र सकलान्देवान् सदा चालोकयिष्यसि॥८६॥
प्राणत्यागं करिष्यन्ति त्वयि ये कृतसत्क्रियाः।
ते मय्येव विलीनाः स्युः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥८७॥
त्वया चाधिष्ठितं सर्व्वमूर्द्धर्वाञ्चाधः क्षितिस्तथा।
तुल्यप्रभावं विज्ञेयं मा चिन्तय शिवे क्वचित्॥८८॥

प्रभु शिवशंकर कहते हैं—हे देवी गंगे! तुम सदा मेरे प्रति परायण रहती हो। यह मुझे ज्ञात है। हे महाभागे! मैं मर्त्यलोक में तुम्हारे नदी रूप को शिर पर धारण करूंगा। जब राजा भगीरथ तुमको पाताल जाने को कहेंगे, तुम तभी उससे कहना कि "यदि शंकर तुमको मस्तक पर धारण करें तब मैं पातालतल जाऊंगी। क्योंकि जब निरालम्बा भाव से पृथिवी पर गिरूंगी, तब पृथिवी मुझे धारण नहीं कर सकेगी। इससे पृथिवी तथा मुझ गंगा को भी क्लेश होगा।" तुम्हारे यह कहने पर शिवभक्त राजा भगीरथ अवश्य मेरी आराधना करेगा, तब मैं निश्चय तुमको धारण करूंगा। कलि में पापरूप वन के लिये तुम दावानल रूप होगी। तुमको कोई पापभय नहीं होगा। पापराशि उल्टे तुमसे डरेगी। पापपूर्ण कलिकाल में तुम्हारा नाम कीर्त्तन, गुणकीर्त्तन त्रैलोक्य का पापनाश करेगा। तुम असंकुचित चित्त से धरती पर अवस्थान करो। मेनका ने भी तुमको जो उचित निर्देश दिया था कि "हे पुत्री! तुम जब हम लोगों का त्याग करके जा ही रही हो, तब नदीरूपेण तुमको धरातल पर जाना ही होगा" अतएव हे गंगे! नदीरूपा होकर धरातल गमन तुम्हारी अवश्यम्भावी घटना है। जिसमें कुछ भी खण्डित नहीं होना है, उस विषय में शोक न करो। तुम्हारा समस्त प्रवाह मेरे मस्तक से होगा। तुम सदा सर्वत्र देवगण का दर्शन करती रहोगी। यह निश्चित है कि जो सभी पुण्यात्मा तुम्हारे जल में प्राणत्याग करेंगे, वे मुझमें लीन हो जायेंगे। हे शिवे! चिन्ता न करो। ऊर्ध्व, अधः तथा पृथिवी पर सर्वत्र तुम्हारा समान प्रभाव होगा।।७७-८८।।

शुक उवाच

इत्युक्त्वा सा समाश्वस्ता शम्भुना गिरिजा सती। तथेति हर्षिता भूता राजानं द्रष्टुमैच्छत॥८९॥

।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे गङ्गाराधनं नामोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

शुकदेव कहते हैं—गिरिकन्या भगवती गंगा ने शिव द्वारा इस प्रकार आश्वस्त तथा आनन्दित होकर भूपति भगीरथ को दर्शन देने की इच्छा किया।।८९।।

।।उनपञ्चाशोत्तम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगीरथ द्वारा गंगास्तुति, वरप्राप्ति

शुक उवाच

अथ देवी तदा गङ्गा तपस्यन्तं भगीरथम्। आत्मानं दर्शयामास श्वेतं चारुचतुर्भुजम्॥१॥

तां दृष्ट्वा ध्यानमात्रैकलब्धां दृग्भ्याञ्च भूपतिः। अलभ्यलाभबोधेन बहुमेने नृपोत्तमः॥२॥

हर्षाकुलितसर्व्वाङ्गो रोमाञ्चितसुविग्रहः। गद्गदाक्षरया वाचा गङ्गां तुष्टाव भूपतिः।

सहस्त्रनामभिर्दिव्यैः शक्तिं परमदेवताम्॥३॥

शुकदेव कहते हैं—तब देवी गंगा ने तपोनिधि भगीरथ को चतुर्भुज श्वेत मूर्त्ति में दर्शन दिया। भूपति भगीरथ जिनका ध्यानयोग से दर्शन करते थे। अब उन्होंने चर्मचक्षु से उनका दर्शन करके स्वयं को अति भाग्यवान् समझा तथा वे अतिशय आनन्दित तथा रोमांचित भी हो गये। तदनन्तर उन्होंने गद्गद् स्वर से परमदेवता शक्तिरूपा गंगा का दिव्य सहस्त्रनाम से स्तुति करने का उपक्रम किया।।१-३।।

भगीरथ उवाच

अहं भगीरथो राजा दिलीपतनयः शिवे। प्रणमामि पदद्वन्द्वं भवत्या अतिदुर्लभम्॥४॥

पूर्व्वजानां हि पुण्येन तपसा परमेण च। अच्चक्षुर्गोचरीभूता त्वं गङ्गा करुणामयी॥५॥

सार्थकं सूर्य्यवंशे मे जन्म प्राप्तं महेश्वरि।

कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि (कृतार्थोऽस्मि) न संशयः॥६॥

नमो नमो नमस्तेऽस्तु गङ्गे राजीवलोचने। देहोऽयं सार्थको मेऽस्तु सर्व्वाङ्गैः प्रणमाम्यहम्॥७॥

सहस्त्रनामभिः स्तुत्वा वाचं सार्थकयाम्यहम्॥८॥

भगीरथ कहते हैं—हे शिवे! मैं दिलीप का पुत्र हूं। मेरा नाम भगीरथ है। मैं पृथिवी पर राजा हूं। मैं आपके

दुर्लभ चरणकमल में प्रणिपात करता हूं। अपने पूर्वपुरुषगण के परमपुण्य तथा तपोबल से आपका दर्शन प्राप्त हो सका है। हे महेश्वरी! आप अत्यन्त करुणामयी हैं। आज आपका दर्शन पाकर निःसंदेह कृतार्थ हो गया। सूर्यवंश में मेरा जन्म सार्थक हो गया। मैं आपको सर्वाङ्ग द्वारा प्रणाम करता हूं। आपकी स्तुति द्वारा अपनी वाक्शक्ति को सफल करूंगा।।४-८।।

शुक उवाच

गङ्गा सहस्रनाम्नोऽस्य स्तवस्य पुण्यतेजसः। ऋषिर्व्यासस्तथानुष्टुप्छन्दो विप्र प्रकीर्त्तितम्।
सामूलप्रकृतिर्देवी गङ्गा वै देवतेरिता।९॥
अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च। वाजपेयशतस्यापि गयाश्राद्धशतस्य च॥१०॥
ब्रह्महत्यादिपापानां क्षये च परदुष्करे। निर्व्वाणमोक्षलाभे च विनियोगः प्रकीर्त्तितः॥११॥

शुक कहते हैं—हे विप्र! भगीरथकृत गंगासहस्रनाम रूप परमपवित्र स्तवराज के ऋषि व्यास हैं, अनुष्टुप् छन्दः है। मूल प्रकृति देवी गंगा देवता हैं। इस पाठ से सहस्र अश्वमेध, शत राजसूय तथा शत बाजपेय तथा शतगया श्राद्धफल प्राप्त होता है। इसके पाठ से दुष्कर ब्रह्महत्यादि पापों का नाश होता है तथा परिणामतः निर्वाण मोक्षपद की प्राप्ति होती है।।९-११।।

ॐकाररूपिणी देवी श्वेता सत्यस्वरूपिणी। शान्तिः शान्ता क्षमा शक्तिः परा परमदेवता॥१२॥
विष्णुर्नारायणी काम्या कमनीया महाकला। दुर्गा दुर्गतिसंहन्त्रीः गङ्गा गगणवासिनी॥१३॥
शैलेन्द्रवासिनी दुर्गवासिनी दुर्गमप्रिया। निरञ्जना च निर्लेशा निष्कला निरहङ्क्रिया॥१४॥
प्रसन्ना शुक्लदशना परमार्था पुरातनी। निराकारा च शुद्धा च ब्राह्मणी ब्रह्मरूपिणी॥१५॥
दया दयावती दीर्घा दीर्घवक्त्रा दुरोदरा। शैलकन्या शैलराजवासिनी शैलनन्दिनी॥१६॥
शिवा शैवी शाम्भवी च शङ्करी शङ्करप्रिया। मन्दाकिनी महानन्दा स्वर्धुनी स्वर्गवासिनी॥१७॥
मोक्षाख्या मोक्षसरणिर्मुक्तिर्मुक्तिप्रदायिनी। जलरूपा जलमयी जलेशी जलवासिनी॥१८॥
दीर्घजिह्वा करालाक्षी विश्वाख्या विश्वतोमुखी। विश्वकर्णा विश्वदृष्टिर्विश्वेशी विश्ववन्दिता॥१९॥

भगीरथ कहते हैं—हे देवी! आप ऊँकार रूप, श्वेता, सत्यारूपा, शान्ति, शान्ता, क्षमा, शक्ति, परा, परमदेवता, विष्णु, नारायणी, काम्या, कमनीया, महाकला, दुर्गा, दुर्गतिसंहन्त्री, गङ्गा, गगनवासिनी, शैलेन्द्रनिवासिनी, दुर्गवासिनी, दुर्गमप्रिया, निरञ्जना, निर्लेशा, निष्कला, निरहंक्रिया, प्रसन्ना, शुक्लदशना, परमार्था, पुरातनी, निराकारा, शुद्धा, ब्राह्मणी, ब्रह्मरूपा, दया, दयावती, दीर्घा, दीर्घवक्त्रा, दुरोदरा, शैलकन्या, शैलराजवासिनी, शैलनन्दिनी, शिवा, शैवी, शांम्भवी, शंकरी, शंकरप्रिया, मंदाकिनी, महानन्दा, स्वर्धुनी, स्वर्गवासिनी, मोक्षाख्या, मोक्षसरणि, मुक्ति-भुक्ति प्रदा, जलरूपा, जलमयी, जलेशी, जलवासिनी, दीर्घजिह्वा, करालाक्षी, विश्वाख्या, विश्वतोमुखी, विश्वकर्णा, विश्वदृष्टि, विश्वेशी, विश्ववन्दिता।।१२-१९।।

वैष्णवी विष्णुपादाब्जसम्भवा विष्णुवासिनी। विष्णुस्वरूपिणी वन्द्या बाला वाणी वृहत्तरा॥२०॥
पीयूषपूर्णा पीयूषवासिनी मधुरद्रवा। सरस्वती च यमुना गोदा गोदावरी वरी॥२१॥

वरेण्या वरदा वीरा वरकन्या वरेश्वरी। बल्लवी बल्लवप्रेष्ठा वागीश्वरा वारिरूपिणी॥२२॥
वाराही वनसंस्था च वृक्षस्था वृक्षसुन्दरी॥२३॥

वैष्णवी, विष्णुपादाब्जसंभवा, विष्णुवासिनी, विष्णुस्वरूपा, वन्द्या, वाणी, बाला, बृहत्तरा, पीयूषपूर्णा, पीयूषवासिनी, मधुरद्रवा, सरस्वती, यमुना, गोदा, गोदावरी, वरेण्या, वरदा, वीरा, वरकन्या, वरेश्वरी, बलवी, वल्लवप्रेष्ठा, वागीश्वर, वारिरूपिणी, वाराही, वनसंस्था, वृक्षसा, वृक्षसुन्दरी।।२०-२३।।

वारुणी वरुणज्येष्ठा वरा वरुणबल्लभा। वरुणप्रणता दिव्या वरुणानन्दकारिणी॥२४॥
वन्द्या वृन्दावनी वृन्दारकेड्या वृषवाहिनी। दाक्षायणी दक्षकन्या श्यामा परमसुन्दरी॥२५॥
शिवप्रिया शिवाराध्या शिवमस्तकवासिनी। शिवमस्तकमस्ता च विष्णुपादपदा तथा॥२६॥
विपत्तिकासिनी दुर्गतारिणी तारिणीश्वरी। गीता पुण्यचरित्रा च पुण्यनाम्नी शुचिश्रवा॥२७॥
श्रीरामा रामरूपा च रामचन्द्रैकचन्द्रिका। राघवी रघुवंशेशी सूर्य्यवंशप्रतिष्ठिता॥२८॥
सूर्य्या सूर्य्यप्रिया सौरी सूर्य्यमण्डलभेदिनी॥२९॥
भगिनी भाग्यदा भव्या भाग्यप्राप्या भगेश्वरी। भव्योच्चयोपलब्धा च कोटिजन्मतपःफला॥३०॥

वारुणी, वरुणज्येष्ठा, वरा, वरुणवल्लभा, वरुणप्रणता, दिव्या, वरुणानंदकारिणी वन्द्या, वृन्दावनी, वृन्दारकेद्या, वृषवाहिनी, दाक्षायणी, दक्षकन्या, श्यामा, परमसुन्दरी, शिवप्रिया, शिवाराद्या, शिवमस्तकवासिनी, शिवमस्तक, मस्ता, विष्णुपादपदा, विपत्तिकासिनी, दुर्गतारिणी, तारिणीश्वरी, गीता, पुण्यचरिता, पुण्यनाम्नी, शुचिश्रवा, श्रीरामा, रामरूपा, रामचन्द्र, चन्द्रिका, राघवी, रघुवंशेशी, सूर्यवंश प्रतिष्ठिता, सूर्या, सूर्यप्रिया, गौरी, सूर्यमण्डलभेदिनी, भगिनी, भाग्यदा, भव्या, भाग्यप्राप्या, भगेश्वरी, भव्योच्चयोपलभ्या, कोटिजन्म तप का फल है। भव्य उपचय द्वारा लब्धा, कोटिजन्म तप का फल, तपस्विनी, तापसी, तपन्ती, तापहारी, तत्वरूपा, तंत्रमयी, तन्त्रगोप्या महेश्वरी।।२४-३०।।

तपस्विनी तापसी च तपन्ती तापनाशिनी। तन्त्ररूपा मन्त्रमयी तन्त्रगोप्या महेश्वरी॥३१॥
विष्णुदेहद्रवाकारा शिवगानामृतोद्भवा। आनन्दद्रवरूपा च पूर्णानन्दमयी शिवा॥३२॥
कोटिसूर्य्यप्रभा पापध्वान्तसंहारकारिणी। पवित्रा परमा पुण्या तेजोधारा शशिप्रभा।
शशिकोटिप्रकाशा च त्रिजगद्दीप्तिकारिणी॥३३॥
सत्या सत्यस्वरूपा च सत्यज्ञा सत्यसम्भवा। सत्याश्रया सती श्यामा नवीना नरकान्तका॥३४॥
सहस्त्रशीर्षा देवेशी सहस्त्राक्षी सहस्त्रपात्। लक्षवक्त्रा लक्षपादा लक्षहस्ता विलक्षणा॥३५॥
सदा नूतनरूपा च दुर्लभा सुलभा शुभा। रक्तवर्णा च रक्ताक्षी त्रिनेत्रा शिवसुन्दरी॥३६॥
भद्रकाली महाकाली लक्ष्मीर्गगणवासिनी। महाविद्या शुद्धविद्या मन्त्ररूपा सुमन्त्रिता॥३७॥
राजसिंहासनतटा राजराजेश्वरी रमा। राजकन्या राजपूज्या मन्दमारुतचामरा॥३८॥
वेदवन्दिप्रगीता च वेदवन्दिप्रवन्दिता। वेदवन्दिस्तुता दिव्या वेदवन्दिसुवर्णिता॥३९॥
सुवर्णा वर्णनीया च सुवर्णगाननन्दिता। सुवर्णदानलभ्या च गानानन्दप्रियाऽमला॥४०॥

माला मालावती माल्या मालतीकुसुमप्रिया। दिगम्बरी दुष्टहन्त्री सदा दुर्गमवासिनी॥४१॥
अभया पद्महस्ता च पीयूषकरशोभिता। खड्गहस्ता भीमरूपा श्येनी मकरवाहिनी॥४२॥
शुद्धस्त्रोता वेगवती महापाषाणभेदिनी। पापाली रोदनकरी पापसंहारकारिणी॥४३॥
यातनाचयवैधव्यदासयिनी पुण्यवर्द्धिनी। गभीराऽलकनन्दा च मेरुशृङ्गविभेदिनी॥४४॥

विष्णुदेहद्रवाकारा, शिवगानामृतोद्भवा, आनन्दद्रवरूपा, पूर्णानन्दमयी, शिवा, कोटिसूर्यप्रभा, पापध्वान्तसंहारिणी, पवित्रा, परमा, पुण्या, तेजोधरा, शशिप्रभा, शशिकोटि प्रकाशा, त्रिजगत्, दीप्तिकारिणी, सत्या, सत्यस्वरूपा, सत्याज्ञा, सत्यसम्भवा, सत्याश्रया, सती, श्यामा, नवीना, नवकान्तका, सहस्त्रशीर्षा, देवेशि, सहस्राक्षी, सहस्त्रपात, लक्षवक्त्रा, लक्षपादा, लक्षहस्ता, विलक्षणा, सदानूतनरूपा, दुर्लभा, सुलभा, रक्तवर्णा, रक्ताक्षी, त्रिनेत्रा, शिवसुन्दरी, भद्रकाली, महाकाली, गगनवासिनी लक्ष्मी, महाविद्या, शुद्धविद्या, सुमन्त्रिता राजसिंहासनतटा राजराजेश्वरी, रमा, राजकन्या, राजपूज्या, मन्दमारुतचामरा, वेदवन्दिप्रगीता, वेदवन्दिप्रवन्दिता, वेदवन्दिस्तुता, दिव्या, वेदवन्दिसुवर्णिता, सुवर्णा, वर्णनीया, सुवर्णगाननन्दिता, सुवर्णदानलभ्या, गानानन्दप्रिया, अमला, माला, मालावती, माल्या, मालतीकुसुम प्रिया, दिगम्बरी, दुष्टहन्त्री, दुर्गमवासिनी, अभया, पद्महस्ता, पीयूषकरशोभिता, खड्गहस्ता, भीमरूपा, श्येनी, मकरवाहिनी, शुद्धस्त्रोता, वेगवती, महापाषाणभेदिनी, पापाली, रोदनकरी, पापसंहारकारिणी, यातनाचयवैधव्यदायिनी, पुण्यवर्द्धिनी, गंभीरा, अलकनन्दा, मेरुशृंङ्गभेदिनी।।३१-४४।।

स्वर्गलोककृतावासा स्वर्गसोपानरूपिणी। स्वर्गङ्गा पृथिवीगङ्गा नरसेव्या नरेश्वरी॥४५॥
सुबुद्धिश्च कुबुद्धिश्च श्रीर्लक्ष्मीः कमलालया॥४६॥
पार्व्वती मेरुदौहित्री मेनकागर्भसम्भवा। अयोनिसम्भवा सूक्ष्मा परमात्मा परत्त्वदा॥४७॥
विष्णुजा विष्णुजनिका शिवमस्तकवासिनी। देवी विष्णुपदी पद्मा जाह्नवी पद्मवासिनी॥४८॥
पद्मा पद्मावती पद्मधारिणी पद्मलोचना। पद्मपादा पद्ममुखी पद्मनाभा च पद्मिनी॥४९॥
पद्मगर्भा पद्मशया महापद्मगुणाधिका। पद्माक्षी पद्मललिता पद्मवर्णा सुपद्मिनी॥५०॥
सहस्त्रदलपद्मस्था पद्माकरनिवासिनी। (महापद्मपुरस्था च पुरेशी परमेश्वरी॥५१॥
हंसी हंसबिभूषा च हंसराजबिभूषणा। हंसराजसुवर्णा च हंसारूढा च हंसिनी॥५२॥)

स्वर्गलोककृतावासा, स्वर्गसोपानरूपिणी, स्वर्गङ्गा, पृथिवीगङ्गा, नरसेव्या, नरेश्वरी, सुबुद्धि, कुबुद्धि, श्रीलक्ष्मी, कमलालया, पार्वती, मेरुदौहित्री, मेनकागर्भसंभवा, अयोनिसंभवा, सूक्ष्मा, परमात्मा, परत्वदा, विष्णुजा, विष्णुजनिका, शिवमस्तकवासिनी, देवी, विष्णुपदी, पद्मा, जाह्नवी, पद्मवासिनी, पद्मा, पद्मावती, पद्मधारिणी, पद्मलोचना, पद्मपादा, पद्ममुखी, पद्मनाभा, पद्मिनी, पद्मगर्भा, पद्मशया, महापद्मगुणाधिका, पद्माक्षी, पद्मललिता, पद्मवर्णा, सुपद्मिनी, सहस्त्रदलपद्मस्था, पद्माकरनिवासिनी, महापद्मपुरस्था, पुरेशी, परमेश्वरी, हंसी, हंसविभूषा, हंसराजविभूषणा, हंसराज, सुवर्णा, हंसारुढ़ा, हंसिनी।।४५-५२।।

हंसाक्षरस्वरूपा च द्व्यक्षरा मन्त्ररूपिणी। आनन्दजलसंपूर्णा श्वेतवारिप्रपूरिका॥५३॥
अनयाससदामुक्ति र्योग्यायोग्यविचारिणी॥५४॥
तेजोरूपजलापूर्णा तैजसी दीप्तिरूपिणी। प्रदीपकलिकाकारा प्राणायामस्वरूपिणी॥५५॥

प्राणदा प्राणनीया च महौषधस्वरूपिणी। महौषधजला चैव पापरोगचिकित्सिका॥५६॥
कोटिजन्मतपोलक्ष्या प्राणत्यागोत्तरामृता। निःसन्देहा निर्महिमा निर्मला मलनाशिनी॥५७॥
शवारूढा शवस्थानवासिनी शववत्तटी। श्मशानवासिनी केशकीकसाचिततीरिणी॥५८॥
भैरवी भैरवश्रेष्ठसेविता भैरवप्रिया। भैरवप्राणरूपा च वीरसाधनवासिनी॥५९॥
वीरप्रिया वीरपत्नी कुलीना कुलपण्डिता। कुलवृक्षस्थिता कौली कुलकोमलवासिनी॥६०॥
कुलद्रवप्रिया कुल्या कुल्यमालाजपप्रिया। कौलदा कुलरक्षित्री कुलवारिस्वरूपिणी॥६१॥
रणश्रीः रणभू रम्या रणोत्साहप्रिया रणे। नृमुण्डमालाधरणा नृमुण्डकरधारिणी॥६२॥

हंसाक्षरस्वरूपा, द्वयक्षरा, मन्त्ररूपिणी, आनन्दजलसम्पूर्णा, श्वेतवारिप्रपूरिका, अनयाससदामुक्ति, योग्य-अयोग्य विचारिणी, तेजरूप जलापूर्णा, तैजसी, दीप्तिरूपा, प्रदीपकलिकाकारा, प्राणायामस्वरूपा, प्राणदा, प्राणनीया, महौषधस्वरूपा, महौषधजला, पापरोग, चिकित्सिका, कोटिजन्मतपोलक्ष्या, प्राणत्यागोत्तरामृता, निःसंदेहा, निर्महिमा, निर्मला, मलनाशिनी, शवारुढ़ा, शवस्थानवासिनी, शववत् तटी, श्मशानवासिनी, केशकीकसाचित् तारिणी, भैरवी, भैरवश्रेष्ठसेविका, भैरवप्रिया, भैरवप्राणरुपा, वीरसाधनवासिनी, वीरप्रिया, वीरपत्नी, कुलीना, कुलपण्डिता, कुलवृक्षस्थिता, कोली, कुलकोमलवासिनी, कुलद्रवप्रिया, कुल्या, कुल्यमालाजयप्रिया, कौलदा, कुलरक्षित्री, कुलवारिस्वरूपा, रणश्रीः, रणभू, रम्या, रणोत्साहप्रिया, नृमुण्डकरधारिणी, नृमुण्डमालाधारिणी।।५३-६२।।

विवस्त्रा च सवस्त्रा च सूक्ष्मवस्त्रा च योगिनी। रसिका रसरूपा च जिताहारा जितेन्द्रिया॥६३॥
यामिनी चार्द्धरात्रस्था कूर्च्चवीजस्वरूपिणी। लज्जाशक्तिश्च वाग्रूपा नारी नरकहारिणी॥६४॥
तारा तारस्वराढ्या च तारिणीताररूपिणी। अनन्ता चादिरहिता मध्यशून्या स्वरूपिणी॥६५॥
नक्षत्रमालिनी क्षीणा नक्षत्रस्थलवासिनी। तरुणादित्यसंकाशा मातङ्गी मृत्युवर्जिता॥६६॥

विवस्त्रा, सवस्त्रा, सूक्ष्मवस्त्रा, योगिनी, रसिका, रसरूपा, जिताहारा, जितेन्द्रिया, यामिनी, अर्द्धरात्रस्था, कूर्चबीजस्वरूपा, लज्जाशक्ति, वागरूपा, नारी, नरकहारिणी, तारा, तारास्वराड्या, तारिणी,ताररूपा, अनन्ता, आदिरहिता, मध्यशून्या, नक्षत्रमालिनी, क्षीणा, नक्षत्रस्थलवासिनी, तरुणादित्यसंकाशा, मातंगी, मृत्युवर्जिता।।६३-६६।।

अमरामरसंसेव्या उपास्या शक्तिरूपिणी। धूमाकाराग्निसंभूता धूमा धूमावती रतिः॥६७॥
कामाख्या कामरूपा च काशी काशीपुरस्थिता।
वाराणसी वारयोषित् काशीनाथशिरःस्थिता॥६८॥
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका। द्वारका ज्वलदग्निश्च केवला केवलत्वदा॥६९॥
करवीरपुरस्था च कावेरी कवरी शिवा। रक्षिणी च करालाक्षी कङ्काला शङ्करप्रिया॥७०॥
ज्वालामुखी क्षीरिणी च क्षीरग्रामनिवासिनी। रक्षाकरी दीर्घकर्णा सुदन्तदन्तवर्जिता॥७१॥
दैत्यदानवसंहन्त्री दुष्टहन्त्री बलिप्रिया। बलिमांसप्रिया श्यामा व्याघ्रचर्म्मपिधायिनी॥७२॥
जवाकुसुमसङ्काशा सात्त्विकी राजसी तथा। तामसी तरुणी बृद्धा युवती बालिका तथा॥७३॥
यक्षराजसुता जाम्बूमालिनी जम्बुवासिनी। जाम्बूनदविभूषा च ज्वलज्जाम्बूनदप्रभा॥७४॥

रुद्राणी रुद्रदेहस्था रुद्रा रुद्राक्षधारिणी। अणुश्च परमाणुश्च ह्रस्वा दीर्घा चकोरिणी॥७५॥

अमरामरसंसेव्या, उपास्या, शक्तिरूपा, धूमाकारअग्निसंभूता, धूमा, धूमावती, रति, कामाक्षी, कामरूपा, काशी, काशीपुरस्थिता, वाराणसी, वारयोषित्, काशीनाथ, शिरस्था, अयोध्या, मथुरा माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका, द्वारका, ज्वलदग्नि, केवला, केवलत्वदा, करवीरपुरस्था, कावेरी, कवरी, शिवा, रक्षिणी, करालाक्षी, कङ्काला, शंकरप्रिया, ज्वालामुखी, चौरिणी, क्षीरग्रामनिवासी, रक्षाकरी, दीर्घकर्णा, सुदन्ता, दन्तवर्जिता, दैत्यदानवहन्त्री, दुष्टहन्त्री, बलिप्रिया, बलिमांसप्रिया, श्यामा, व्याघ्रचर्मपिधायिनी, जवाकुसुमसंकाशा, सात्विकी, राजसी, तामसी, तरुणी, वृद्धा, युवती, बालिका, यक्षराजसुता, जाम्बुमालिनी, जम्बूवासिनी, जाम्बूनदविभूषा, ज्वलज्जाम्बूनदप्रभा, रुद्राणी, रुद्रदेहस्था, रुद्रा, रुद्राक्षधारिणी, अणु, परमाणु, ह्रस्वा, दीर्घा, चकोरिणी।।६७-७५।।

रुद्रगीता विष्णुगीता महाकाव्यस्वरूपिणी। आदिकाव्यस्वरूपा च महाभारतरूपिणी॥७६॥
अष्टादशपुराणस्था धर्म्ममाता च धर्म्मिणी। माता मान्या स्वसा चैव श्वश्रूश्चैव पितामही॥७७॥
गुरुश्च गुरुपत्नी च कालसर्पभयप्रदा। पितामहसुता सीता शिवसीमन्तिनी शिवा॥७८॥
रुक्मिणी रुक्मवर्णा च भैष्मी भैमी सुरूपिणी। सत्यभामा महालक्ष्मी भद्रा जाम्बवती मही॥७९॥
नन्दा भद्रमुखी रिक्ता जया विजयदा जया। जयित्री पूर्णिमा पूर्णा पूर्णचन्द्रनिभानना॥८०॥
गुरुपूर्णा सौम्यभद्रा विष्टिः संवेशकारिणी। शनिरिक्ता कुजजया सिद्धिरूपिणी॥८१॥
अमृताऽमृतरूपा च श्रीमती च जलामृता॥८२॥

रुद्रगीता, विष्णुगीता, महाकाव्यरूपा, आदिकाव्यरूपा, महाभारतरूपा, अष्टादश पुराणस्था, धर्ममाता, धर्मिणी, माता, मान्या, स्वसा, स्वश्रु, पितामही, गुरु, गुरुपत्नी, कालसर्पभयप्रदा, पितामहसुता, सीता, शिवसीमन्तिनी, शिवा, रुक्मिणी, रुक्मवर्णा, भैष्मी, भैमी, सुरूपा, सत्यभामा, महालक्ष्मी, भद्रा, जाम्बवती, मही, नन्दा, भद्रमुखी, रिक्ता, जया, विजयदा जया, जायित्री, पूर्णिमा, पूर्ण, पूर्णचन्द्रनिभानना, गुरुपूर्णा, सौम्या, भद्रा, विष्टि, संवेशकारिणी, शनिरिक्ता, कुजजया, सिद्धिप्रदा, सिद्धिरूपा, अमृताऽमृतरूपा, श्रीमति, जलामृता।।७६-८२।।

निरातङ्का निरालम्बा निष्प्रपञ्चा विशेषिणी। निषेधशेषरूपा च वरिष्ठा योषितांवरा॥८३॥
यशस्विनी कीर्त्तिमती महाशैलाग्रवासिनी। धरा धरित्री धरणी सिन्धुर्बन्धुः सबान्धवा॥८४॥
सम्पत्तिः सम्पदीशा च विपत्तिपरिमोचिनी। जन्मप्रवाहहरणी जन्मशून्या निरञ्जनी॥८५॥
नागालयालया नीला जटामण्डलधारिणी। सुतरङ्गजटाजूटा जटाधरशिरःस्थिता॥८६॥
पट्टाम्बरधरा धीरा कविः काव्यरसप्रिया। पुण्यक्षेत्रा पापहरा हरिणी हारिणी हरिः॥८७॥
हरिद्रानगरस्था च वैद्यनाथप्रिया बलिः। वक्रेश्वरी वक्रधारा वक्रेश्वरपुरःस्थिता॥८८॥
श्वेतगङ्गा शीतला च उष्मोदकमयी रुचिः। चोलराजप्रियकरी चन्द्रमण्डलवर्त्तिनी॥८९॥
आदित्यमण्डलगता सदादित्या च काश्यपी। दहनाक्षी भयहरा विषज्वालानिवारिणी॥९०॥
हरा दशहरा स्नेहदायिनी कलुषाशनिः। कपालमालिनी कालौ कला कालस्वरूपिणी॥९१॥
इन्द्राणी वारुणी वाणी बलाका बालशङ्करी। गोर्गीर्ह्रीर्धिर्धर्म्मरूपा च धीः श्रीर्धन्या धनञ्जया॥९२॥

निरातङ्का, निरालम्बा, निष्प्रपञ्चा, विशेषिणी, निषेधशेषरूपा, वरिष्ठा, योषितांवरा, यशस्विनी, कीर्त्तिमती, महाशैलाग्रनिवासिनी, धरा, धरित्री, धरणी, सिन्धु, बन्धु, सबांधव, सम्पत्ति, सम्पदीशा, विपत्तिमोचिनी, जन्मप्रवाहहरणी, जन्मशून्या, निरंजनी, नागालया, आलया, नीला, जटामण्डलधारी, सुतरङ्गरूपी, जटाजूटयुक्त, जटाधर शंभु के शिरस्था, पट्टाम्बरधारिणी, धीर, कवि, काव्यरसप्रिया, पुण्यक्षेत्रा, पापहारी, हरिणी, हारिणी, हरि, हरिद्रानगरस्था, वैद्यनाथप्रिया, बलि, वक्रेश्वरी, वक्रधारा, वक्रेश्वरपुर निवासी, श्वेतगंगा, शीतला, उन्मोदकमयी, रुचि, चोलराज का प्रिय करने वाली, चन्द्रमण्डलवासिनी, आदित्यमण्डलगता, सदादित्या, काश्यपी, दहनाक्षी, भयहारी, विषज्वाला नाशिका, हरा, दशहरा, स्नेहदा, कलुषा, शनिः, कपालमालिनी, काली, कला, कालरूपा, इन्द्राणी, वारुणी, वाणी, बलाका, बालशंकरी, गौर्गी, ह्रीं, धर्मरूपा, धीः, श्रीर्धन्या, धनञ्जया।।८३-९२।।

वित् संवित् कुः कुवेरी भूर्भूतिर्भूमिधरा धरा। ईश्वरी ह्रीमती क्रीड़ा क्रीड़ासाया जयप्रदा॥९३॥
जीवन्ती जीवनी जीवा जयाकारा जयेश्वरी। सर्व्वोपद्रवसंशून्या सर्व्वपापविवर्जिता॥९४॥
सावित्री चैव गायत्री गणेशी गणवन्दिता। दुष्प्रेक्षा दुष्प्रवेशा च दुर्द्दर्शा च सुयोगिणी॥९५॥
दुःखहन्त्री दुःखहरा दुर्दान्ता यमदेवता। गृहदेवी भूमिदेवी वनेशी वनदेवता॥९६॥
गुहालया घोररूपा महाघोरनितम्बिनी। स्त्रीचञ्चला चारुमुखी चारुनेत्रा लयात्मिका॥९७॥
कान्तिः काम्या निर्गुणा च रजःसत्त्वतमोमयी। कालरात्रिर्महारात्रिर्जीवरूपा सनातनी॥९८॥
सुखदुःखादिभोक्त्री च सुखदुःखादिवर्जिता। महावृजिनसंहारा वृजिनध्वान्तमोचनी॥९९॥
हलिनी खलहन्त्री च वारुणीपानकारिणी। निद्रायोग्या महानिद्रा योगनिद्रा युगेश्वरी॥१००॥
उद्धारयित्री स्वर्गङ्गा उद्धारणपुरःस्थिता। उद्धृता उद्धृताहारा लोकोद्धारणकारिणी॥१०१॥
शङ्खिनी शङ्खधात्री च शङ्खवादनकारिणी। शङ्खेश्वरी शङ्खहस्ता शङ्खराजविदारिणी॥१०२॥

वित्, संवित्, कुः, कुबेरी, भूर्भति, भूमिधरा, धरा, ईश्वरी, ह्रीमति, क्रीड़ा, क्रीड़ासाया, जयप्रदा, जीवन्ती, जीवनी, जीवा, जयाकारा, जयेश्वरी, सर्वोपद्रवसंशून्या, सर्वपापरहिता, सावित्री, गायत्री, गणेशी, गणवन्दिता, दुष्प्रेक्षा, दुष्प्रवेशा, दुर्द्दशा, सुयोगिनी, दुःखहन्त्री, दुःखहरा, दुर्दान्ता, यमदेवता, गृहदेवी, भूमिदेवी, वनेशी, वनदेवता, गुहालया, घोररूपा, महाघोरनितम्बिनी, स्त्रीचञ्चला, चारुमुखी, चारुनेत्रा, लयात्मिका, कान्तिः, काम्या, निर्गुणा, रजःसत्वमयी, तमोमयी, कालरात्रि, महारात्रि, जीवरूपा, सनातनी, सुख-दुःखादि भोक्त्री, सुख-दुःखादिवर्जिता, महावृजिनसंहारा, वृजृनध्वान्तमोचिनी, हलिनी, खलहन्त्री, वारुणी पान करने वाली, निद्रायोग्या, महानिद्रा, योगनिद्रा, युगेश्वरी, उद्धारयित्री, स्वर्गङ्गा, उद्धारणपुरस्था, उधृता, उद्धृताकारा, लोकोद्धारणकारिणी, शंखिनी, शंखधात्री, शंखवादनकारिणी, शंखेश्वरी, शंखहस्ता, शंखराज विदारिणी।।९३-१०२।।

पश्चिमास्या महास्त्रोता पूर्व्वदक्षिणवाहिनी। सार्द्धयोजनविस्तीर्णा पावन्युत्तरवाहिनी॥१०३॥
पतितोद्धारिणी दोषक्षमिणी दोषवर्जिता। शरण्या शरणा श्रेष्ठा श्रीयुता श्राद्धदेवता॥१०४॥

पश्चिममुखी, महास्रोता, पूर्वदक्षिणवाहिनी, सार्द्धयोजन विस्तार वाली, पावन उत्तरवाहिनी, पतित का उद्धार करने वाली, दोष क्षमा शीला, दोषरहिता, शरण्या, शरणा, श्रेष्ठा, श्रीयुता, श्राद्धदेवता।।१०३-१०४।।

स्वाहा स्वधा स्वरूपाक्षी सुरूपाक्षी शुभानना। कौमुदी कुमुदाकारा कुमुदाम्बरभूषणा॥१०५॥

सौम्या भवानी भूतिस्था भीमरूपा वरानना। वराहकर्णा बर्हिष्ठा बृहच्छ्रोणी बलाहका॥१०६॥
वेशिनौ केशपाशाढ्या नभोमण्डलवासिनी।
मल्लिका मल्लिकापुष्पवर्णा लाङ्गलधारिणी॥१०७॥
तुलसीदलगन्धाढ्या तुलसीदामभूषणा। तुलसीतरुसंस्था च तुलसीरसलेहिनी।
तुलसीरससुस्वादुसलिला विल्ववासिनी॥१०८॥
विल्ववृक्षनिवासा च विल्वपत्ररसद्रवा। मालूरपत्रमालाढ्या वैल्वी शैवार्द्धदेहिनी॥१०९॥
अशोका शोकरहिता शोकदावाग्निहृज्जला। अशोकवृक्षनिलया रम्भा शिवकरस्थिता॥११०॥
दाडिमी दाडिमीवर्णा दाडिमस्तनशोभिता। रक्ताक्षी वीरवृक्षस्था रक्तिनी रक्तदन्तिका॥१११॥
रागिणी रागभार्य्या च सदा रागविवर्जिता। विरागरागसम्मोदा सर्व्वरागस्वरूपिणी॥११२॥
तानस्वरूपिणी तालरूपिणी तारकेश्वरी॥११३॥
वाल्मीकिश्लोकिताष्टेड्या ह्यनन्तमहिमादिमा।
माता उमा सपत्नी च धराहारावलिः शुचिः॥११४॥
स्वर्गारोहपताका च इष्टा भागीरथी इला। स्वर्गभीरामृतजला चारुवीचिस्तरङ्गिणी॥११५॥
ब्रह्मतीरा ब्रह्मजला गिरिदारणकारिणी। गुहाविदारिणी दीर्घा दरीदारणकारिणी।
ब्रह्माण्डभेदिनी घोरनादिनी घोरवेगिनी॥११६॥
ब्रह्मभाण्डवासिनी च स्थिरवायुप्रभेदिनी। शुक्लधारामयी दिव्यशङ्खवाद्यानुसारिणी॥११७॥

स्वाहा, स्वधा, स्वरूपाक्षी, सुरुपाक्षी, शुभानना, कौमुदी, कुमुदाकारा, वेशिनी, कुमुदाम्बरभूषणा, सौम्या, भवानी, भूतिस्था, भीमरूपा, वरानना, वाराहकर्णा, बर्हिष्ठा, बृहच्छ्रोणी, बलाहका, केशपाशाड्या, नभमण्डलनिवासिनी, मल्लिका, मल्लिकापुष्प जैसे वर्णवाली, लाङ्गल (हल)धारिणी, तुलसीदल के गंधवाली, तुलसीदामभूषणा, तुलसीतरु संस्थिता, तुलसीरस लेहिनी, तुलसीरससुस्वादु, सलिला, बिल्ववासिनी, बिल्ववृक्ष में निवासिनी, बिल्वपत्ररसद्रवा, मालूरपत्र की मालाधारिणी, बैल्वी, शिव की अर्द्धदेह में स्थिता, अशोका, शोकरहिता, रम्भा, शिवकरस्थिता, दाड़िमी, दाड़िमी वर्णा, दाड़िमस्तन शोभिता, रक्ताक्षी, वीरवृक्षस्था, रक्तिनी, रक्तदन्तिका, रागिणी, रागभार्या, सदारागरहिता, विराग, रागसम्मोदा, सर्वरागरूपा, तानरूपा, तालरूपा, तारकेश्वरी, वाल्मिकिश्लोकिताष्टेड्या, ह्यनन्तमहिमादिमा, माता, उमा, सपत्नी, धराहारावली, शुचि, स्वर्गारोहपताका, इष्टा, भागीरथी, इला, स्वर्गभीरामृतजला, चारुवीचितरगिंणी, ब्रह्मतीरा, ब्रह्मजल, गिरिदारणकारिणी, गुहाविदारिणी, दीर्घा, दरीदारणकारिणी, ब्रह्माण्डभेदिनी, घोरनादिनी, घोरवेगिनी, ब्रह्माण्डभाण्डवासिनी, स्थिरवायु का भेदन करने वाली, शुक्लधारा वाली, दिव्य शंख-वाद्य का अनुसरण करने वाली।।१०५-११७।।

ऋषिस्तुता शिवस्तुत्या ग्रहवर्गप्रपूजिता। सुमेरुशीर्षनिलया भद्रा सीता महेश्वरी॥११८॥
वङ्क्षुश्चालकनन्दा च शैलसोपानचारिणी। लोकाशापूरणकरी सर्व्वमानसदोहनी॥११९॥
त्रैलोक्यपावनी धन्या पृथ्वीरक्षणकारिणी। धरणी पार्थिवौ पृथ्वी पृथुकीर्त्तिर्निरामया॥१२०॥

ब्रह्मपुत्री ब्रह्मकन्या ब्रह्ममान्या वनाश्रया। ब्रह्मरूपा विष्णुरूपा शिवरूपा हिरण्मयी॥१२१॥

ब्रह्मविष्णुशिवत्वाढ्या ब्रह्मविष्णुशिवत्वदा।
मज्जज्जनोद्धारिणी च स्मरणार्त्तिविनाशिनी॥१२२॥

स्वर्गदायिसुखस्पर्शा मोक्षदर्शनदर्पणा। आरोग्यदायिनी नीरुक् नानातापविनाशिनी॥१२३॥

तापोत्सारणशीला च तपोधामा श्रमापहा। सर्व्वदुःखप्रशमनी सर्व्वशोकविमोचनी॥१२४॥

सर्व्वश्रमहरा सर्व्वसुखदा सुखसेविता। सर्व्वप्रायश्चित्तमयी वासमात्रमहातपाः॥१२५॥

सतनुर्निस्तनुस्तन्वी तनुधारणवारिणी। महापातकदावाग्निः शीतला शशधारिणी॥१२६॥

गेया जप्या चिन्तनीया ध्येया स्मरणलक्षिता। चिदानन्दस्वरूपा च ज्ञानरूपागमेश्वरी॥१२७॥

आगम्या आगमस्था च सर्व्वागमनिरूपिता।
इष्टदेवी महादेवी देवनीया दिविस्थिता॥१२८॥

दन्तावलगृही स्थात्री शङ्कराचार्य्यरूपिणी। शङ्कराचार्य्यप्रणता शङ्कराचार्य्यसंस्तुता॥१२९॥

शङ्कराभरणोपेता सदा शङ्करभूषणा। शङ्कराचारशीला च शङ्क्या च शङ्करेश्वरी॥१३०॥

ऋषिस्तुता, शिवस्तुत्या, ग्रहवर्गपूजिता, सुमेरुशीर्षनिलया, भद्रा, सीता, महेश्वरी, वङ्क्षु, अलकनन्दा, शैलसोपानहारिणी, लोकाशापूरणकरी, सर्वमानसदोहनी, त्रैलोक्यपावनी, धन्या, पृथिवी रक्षा करने वाली, धरिणी, पार्थिवी, पृथ्वी, पृथुकीर्त्तिनिरामया, ब्रह्मपुत्री, ब्रह्मकन्या, ब्रह्ममान्या, वनाश्रया, ब्रह्मरूपा, विष्णुरूपा, शिवरूपा, हिरण्मयी, ब्रह्मविष्णुशिवत्वाढ्या, ब्रह्मविष्णुशिवत्वदा, मज्ज जन उद्धारिणी, स्मरण मात्र से दुःख आर्त्तिनाशिनी, स्वर्गप्रदात्री, सुखस्पर्शा, मोक्षदर्शन हेतु दर्पणा, आरोग्यप्रदा, नीरुक्, नानातापनाशिनी, ताप समाप्त करने में तत्परा, तपोधामा, श्रमापहा, सर्वदुःखशमनी, सर्वशोकनाशिनी, सर्वश्रमहरा, सर्वसुखप्रदा, सुखसेविता, सर्वप्रायश्चित्तमयी, वासमात्रमहातपा, तन्वी, सतनु, निस्तनु, तनुधारिणी, महापातकदावाग्नी रूप, शीतला, शशधारी, गेया, जप्या, चिन्तनीया, ध्येया, स्मरण से लक्षित होने वाली, चिदानन्दरूपा, ज्ञानरूपा, गमेश्वरी, आगम्याः, आगमस्था, सर्वागमनिरूपिता, इष्टदेवी, महादेवी, देवनीया, दिविस्थिता, दन्तावलगृही, स्थात्री, शंकराचार्यरूपा, शंकराचार्यप्रणता, शंकराचार्यस्तुता, शंकराभरणोपेता, सदाशंकरभूषणा, शंकराचारशीला, शंका, शंकरेश्वरी।।११८-१३०।।

शिवस्त्रोताः शम्भुमुखी गौरी गगणगेहिनी। दुर्गमा सुगमा गोप्या गोपिनी गोवल्लभा॥१३१॥

गोमती गोपकन्या च यशोदानन्दनन्दिनी। कृष्णानुजा कंसहन्त्री ब्रह्मराक्षसमोचनी।
शापसंमोचनी लङ्का लङ्केशी च विभीषणा॥१३२॥

विभीषाभरणीभूषा हारावलिरनुत्तमा। तीर्थस्तुता तीर्थवन्द्या महातीर्थञ्च तीर्थसूः॥१३३॥

कन्या कल्पलता केलीः कल्याणी कल्पवासिनी।
कलिकल्मषसंहन्त्री कालकाननवासिनी।
कालसेव्या कालमयी कालिका कामुकोत्तमा।
कामदा कारणाख्या च कामिनी कीर्त्तिधारिणी॥१३४॥

कोकामुखी कोरकाक्षी कुरङ्गनयनी करिः।
कज्जलाक्षी कान्तिरूपा कामाख्या केशरिस्थिता॥१३५॥
खगा खलप्राणहरा (खलदूरकरा खला। खेलन्ती स्ववेगा च स्वकारवर्णवासिनी॥१३६॥
गङ्गा गगणरूपा च गगणाध्वप्रसारिणी। गरिष्ठा गणनीया च गोपाली गोगणस्थिता॥१३७॥
गोपृष्ठवासिनी गम्या गभीरा गुरुपुष्करा। गोविन्दा गोस्वरूपा न गोनाम्नी गतिदायिनी॥१३८॥
घूर्णमाना घर्म्महरा) घूर्णत्स्त्रोता घनोपमा। घूर्णाख्यदोषहरणी घूर्णयन्ती जगत्त्रयं॥१३९॥
घोरा घृतोपमजला घर्घरारवघोषिणी। घोराङ्घघातिनी घुष्या घोषा घोराघहारिणी॥१४०॥

शिवस्रोता, शंभुमुखी, गौरी गगनगेहिनी, दुर्गमा, सुगमा, गोप्या, गोपिनी, गोपवल्लभा, गोमती, गोपकन्या, यशोदानन्दनन्दिनी, कृष्णानुजा, कंसहन्त्री, ब्रह्मराक्षसमोचनी, शापसंमोचनी, लंका, लंकेशी, विभीषणा, विभीषाभरणी, भूषा, हारावलि, अनुत्तमा, तीर्थस्तुता, तीर्थवन्द्या, महातीर्थ, तीर्थ, कन्या, कल्पलता, केलि, कल्याणी, कल्पवासी, कलिकल्मसंषहन्त्री, कालकाननवासी, कालसेव्या, कालमयी, कालिका, कामुकोत्तमा, कामदा, कारणाख्या, कामिनी, कीर्त्तिधारिणी, कोकामुखी, कोरकाक्षी, कुरंगनयनी, करि, कज्जलाक्षी, कान्तिरूपा, कामाख्या, केशरिस्थिता, खगा, खलप्राणहरा, खलदूरकरा, खला, खेलन्तीस्वरवेगा, स्वकारवर्णा निवासी, गंगा, गगनरूपा, गगनाध्वप्रसारिणी, गरिष्ठा, गणनीया, गोपाली, गोगणान्विता, गोपृष्ठवासी, गम्या, गभीरा, गुरुपुष्करा, गोविन्दा, गोस्वरूपा, गोनाम्नी, गतिदायिनी, घूर्णमाना, घर्महरा, घूर्णत्स्रोता, घनोपमा, घूर्णाख्यदोषहरा, जगत्रय में घूर्णनरता, घोरा, घृत ऐसे जल वाली, घर्घर शब्द करने वाली, घोराङ्घघातिनी, घुष्या, घोषा, घोर अघ हरने वाली।।१३१-१४०।।

घोषराजी घोषकन्या घोषनीया घनालया। घण्टाटङ्कारघटिता घाङ्करी घङ्घचारिणी॥१४१॥
ङान्ता ङकारिणी ङेशी ङकारवर्णसंश्रया। चकोरनयनी चारुमुखी चामरधारिणी॥१४२॥
चन्द्रिका शुक्लसलिला चन्द्रमण्डलवासिनी।
चौकारवासिनी चर्च्या चमरी चर्म्मवासिनी॥१४३॥
चर्म्महस्ता चन्द्रमुखी चुचुकद्वयशोभिनी। छत्रिला छत्रिताघाविश्छत्रचामरशोभिता॥१४४॥
छत्रिता छद्मसंहन्त्री दुरित ब्रह्मरूपिणी। छाया च स्थलशून्या च छलयन्ती छलान्विता॥१४५॥

घंटाटंकारघटिता, घाङ्कारी, घंघचारिणी, ङान्ता, ङकारा, ङेशी, ङकारवर्णसंश्रया, चकोरनेत्रा, चारुमुखी, चामरधारी, चन्द्रिका, शुक्लजलवाली, चन्द्रमण्डलवासिनी, चौकारवासिनी, चर्च्या, चामरी, चर्मवासी, चर्महस्ता, चन्द्रमुखी, दो स्तनों से शोभिता, छत्रिला, छत्रिता, घावी, छत्र चामर युता, छत्रिता, छद्मसंहन्त्री, दुरित, ब्रह्मरूपा, छाया, स्थलरहिता, छलयन्ती, छलान्विता।।१४१-१४५।।

च्छिन्नमस्ता छलधरा छवर्णा छुरिता छविः। जीमूतवासिनी जिह्वा जवाकुसुमसुन्दरी॥१४६॥
जराशून्या जया ज्वाला जविनी जीवनेश्वरी। ज्योतीरूपा जन्महरा जनार्दनमनोहरा॥१४७॥
झङ्कारकारिणी झञ्झा झर्झरीवाद्यवादिनी। झणन्नूपुरसंशब्दा झरा ब्रह्मझरा झरा॥१४८॥
ञकारेशी ञकारस्था ञवर्णमध्यनामिका। टङ्कारकारिणी टङ्कधारिणी टुण्टुकाटला॥१४९॥

ठक्कुराणी ठद्वयेशी ठङ्कारी ठक्कुरप्रिया। डामरी डामराधीशा डामरेशशिरःस्थिता॥१५०॥
डमरुध्वनिनृत्यन्ती डाकिनीभयहारिणी। डीना डयित्री डिण्डी च डिण्डीध्वनिसदास्पृहा॥१५१॥
ढक्कारवा च ढक्कारी ढक्कावादनभूषणा। णकारवर्णधवला णकारी यानभाविनी॥१५२॥

छिन्नमस्ता, छलधरा, छवर्णा, छुरिता, छवि, जीमूतवासिनी, जिह्वा, ज्वाकुसुमसुन्दरी, जराशून्या, जया, ज्वाला, जविनी, जीवनेश्वरी, ज्योतिरूपा, जन्महरा, जनार्दनमनोहरा, झंकारकारिणी, झञ्झा, झर्झरी वाद्यवादिनी, झणनुपूरशब्दों वाली, झरा, ब्रह्मझरा, झरा, ञकारेशी, ञकारस्था, ञवर्णमध्यनामिका, टंकाकारिणी, टंकधारिणी, टुण्टुकाटलां; ठक्कुराणी, ठद्वयेशी, ठंकारी, ठक्कुरप्रिया, डामरी, डामराधीशा, डामरेशशिरस्था, डमरुध्वनिनृत्यकारिणी, डाकिनी भयहारी, डीना, डयित्री, डिण्डी, डीण्डीध्वनि से स्पृहा रखने वाली, ढक्कारवा, ढक्कारी, ढक्कावादनभूषणा, णकारवर्णधवला, णकारी, यानभाविनी।।१४६-१५२।।

तृतीया तीव्रपापघ्नी तीव्रा तरणिमण्डला। तुषारकतुलास्या च तुषारकरवासिनी॥१५३॥
थकाराक्षी थवर्णस्था दन्दशूकविभूषणा। दीर्घचक्षुर्दीर्घधारा धनरूपा धनेश्वरी॥१५४॥
दूरदृष्टिर्दूरगमा द्रुतगन्त्री द्रवाश्रया। नारीरूपा नीरजाक्षी नीररूपा नरोत्तमा॥१५५॥
निरञ्जना च निर्ल्लेपा निष्कला निरहंक्रिया। पारा परायणाा पक्षा पारायणपरायणा।
पारयित्री पण्डिता च पण्डा पण्डितसेविता॥१५६॥
परा पवित्रा पुण्याख्या पालिका पीतवासिनी। फुत्कारदूरदुरिता फालयन्ती फणाश्रया॥१५७॥
(फेनिला फेनदशना फेना फेनवती फणा।
फेत्कारिणी फणिधरा फणिलोकनिवासिनी॥१५८॥
फाण्टाकृतालया फुल्ला फुल्लारविन्दलोचना। वेणीधरा बलवती वेगवारिधरावहा॥१५९॥
वन्दारुवन्द्या वृन्देशी वनवासा वनाशया।) भीमराजी भीमपत्नी भवशीर्षकृतालया॥१६०॥
भास्करा भास्करधरा भूषा भास्करवादिनी। भयङ्करी भयहरा भीषणा भूमिभेदिनी॥१६१॥
भगभाग्यवती भव्या भवदुःखनिवारिणी। भेरुण्डा भीमसुगमा भद्रकाली भवस्थिता॥१६२॥
मनोरमा मनोज्ञा च मृतमोक्षा महामतिः। मतिदात्री मतिहरा मठस्था मोक्षरूपिणी॥१६३॥
यमपूज्या यज्ञरूपा यजमाना यमस्वसा। यमदण्डस्वरूपा च यमदण्डहरा यतिः॥१६४॥

तृतीया, तीव्रपापघ्नी, तीव्रा, तरणिमण्डला, तुषारकतुलास्या, तुषाकरवासिनी, थकाराक्षी, थवर्णस्था, दन्दशूकविभूषणा, दीर्घचक्षु, दीर्घधारा, धनरूपा, धनेश्वरी, दूरदृष्टि, दूरगमा, द्रुतगमन करनेवाली, द्रवाश्रवा, नारीरूपा, नीरजाक्षी, नीररूपा, नरोत्तमा, निरंजना, निर्लेपा, निष्कला, निरहंक्रिया, पारा, परायणा, पक्षा, पारायणपरायणा, पारयित्री, पण्डिता, पण्डा, पंडितसेविता, परा, पवित्रा, पुण्याख्या, पालिका, पीतवासिनी, फुत्कारदूरदुरिता, फालयन्ती, फणाश्रया, फेनिला, फेनदशना, फेना, फेनवती, फणा, फेत्कारिणी, फणिधरा, फणिलोकनिवासी, फाण्टाकृतालया, फुल्ला, फुल्लारविन्दलोचनवाली, वेणीधरा, बलवती, वेगवारिधरावहा, वन्दारुवन्द्या, वृन्देशी, वनवासा, वनाशया, भीमराजी, भीमपत्नी, भवशीर्षकृतालया, भास्करा, भास्करधारी, भूषा, भास्करवादिनी, भयंकरी, भयहरा, भीषणा,

भूमिभेदिनी, भगभाग्यवती, भव्या, भवदुःखनिवारिणी, भेरुण्डा, भीमसुगमा, भद्रकाली, भवस्था, मनोरमा, मनोज्ञा, मृतमोक्षा, महामति, मतिप्रदा, मतिहरा, मठस्था, मोक्षरूपा, यमपूज्या, यज्ञरूपा, यजमाना, यमस्वसा, यमदण्डरूपा, यमदण्डहारिणी, यती।।१५३-१६४।।

रक्षिका रात्रिरूपा च रमणीया रमा रतिः। लवङ्गी लेशरूपा च लेशनीया लयप्रदा॥१६५॥
विबुद्धा विषहस्ता च विशिष्टा वेशधारिणी। श्यामरूपा शरत्कन्या शारदी शवला श्रुता॥१६६॥
श्रुतिगम्या श्रुतिस्तुत्या श्रीमुखी शरणप्रदा। षष्ठी षट्कोणनिलया षट्कर्म्मपरिसेविता॥१६७॥
सात्विकी सत्वसरणिः सानन्दा सुखरूपिणी। हरिकन्या हरिजला हरिद्वर्णा हरीश्वरी॥१६८॥
क्षेमङ्करी क्षेमरूपा क्षुरधाराम्बुलेशिनी। अनन्ता इन्दिरा ईशा उमा ऊषा ऋवर्णिका॥१६९॥
ऋस्वरूपा ऌकारस्था ऌकारी एषिता तथा। ऐश्वर्य्यदायिनी ओंकारिणी औमककारिणी॥१७०॥
अन्तशून्या अङ्कधरा अस्पर्शा अस्त्रधारिणी। सर्व्ववर्णमयी वर्णब्रह्मरूपाखिलात्मिका॥१७१॥

शुक उवाच

रक्षिका, रात्रिरूपा, रमणीया, रमा, रति, लवंगी, लेशरूपा, लेशनीया, लयप्रदा, विबुद्धा, विषहस्ता, विशिष्टा, वेशधारिणी, श्यामरूपा, शरत्कन्या, शारदी, शवला, श्रुता, श्रुतिगम्या, श्रुतिस्तुता, श्रीमुखी, शरणप्रदा, षष्ठी, षट्कोणनिलया, षट्कर्म परिसेविता, सात्विकी, सत्वसरणि, सानन्दा, सुखरूपा, हरिकन्या, हरिजला, हरिद्वर्णा, हरीश्वरी, क्षेमंकरी, क्षेमरूपा, क्षुरधाराम्बुलेशिनी, अनन्ता, इन्दिरा, ईशा, उमा, ऊषा, ऋवर्णिका, ऋस्वरूपा, ऌकारस्था, ऌकारी, एषिता, ऐश्वर्यप्रदा, ओंकारिणी, औमकारिणी, अन्तशून्या, अंकधरा, अस्पर्शा, अस्त्रधारिणी, सर्ववर्णमयी, वर्ण, ब्रह्मरूपा, अखिलात्मिका।।१६५-१७१।।

इमं सहस्रनामाख्यं भगीरथकृतं पुरा। भगवत्या हि गङ्गाया महापुण्यं जयप्रदम्॥१७२॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि भक्त्या परमया युतः। तस्य सर्व्वं सुसिद्धं स्याद्विनियुक्तं फलं द्विज॥१७३॥
गङ्गैव वरदा तस्य भवेत् सर्वार्थदायिनी। ज्यैष्ठे दशहरातिथ्यां पूजयित्वा सदाशिवाम्॥१७४॥
दुर्गोत्सवविधानेन विधिनागमिकेन वा। गङ्गासहस्रनामाख्यं स्तवमेनमुदाहरेत्॥१७५॥
तस्य सम्वत्सरं देवी गृहे बद्धैव तिष्ठति। पुत्रोत्सवे विवाहादौ श्राद्धाहे जन्मवासरे॥१७६॥

शुक कहते हैं—हे द्विज! जो व्यक्ति भगीरथ कृत भगवती भागीरथी का महापुण्यप्रद तथा जयप्रद यह सहस्रनामाख्य स्तोत्र भक्तिभाव से पाठ करता है अथवा कराता है उसकी सभी इच्छित कामनायें पूर्ण होती हैं। वह अनायास सर्वार्थसाधिका गंगा का लाभ करता है। ज्येष्ठमास की गंगादशहरा तिथि के दिन दुर्गोत्सव कराये किंवा आगमोक्त विधान से देवी गंगा की पूजा करके यह स्तवपाठ करें। इससे देवी गंगा उस वर्ष पर्यन्त उसके गृह का त्याग नहीं करतीं।।१७२-१७६।।

पठेद्वा शृणुयाद्वापि तत्तत्कर्म्माक्षयं भवेत्। धनार्थी धनमाप्नोति लभेद्भार्य्यामभार्य्यकः॥१७७॥
अपुत्रो लभते पुत्रं चातुवर्ण्यार्थसाधकम्। युगाद्यासु पूर्णिमासु रविसंक्रमणे तथा॥१७८॥
दिनक्षये व्यतीपाते पुष्यायां हरिवासरे। अमावास्यासु सर्व्वासु अतिथौ च समागते॥१७९॥

शुश्रूषौ सति सत्सङ्गे गवां स्थानगतोऽपि वा।
मण्डले ब्राह्मणानाञ्च पठेद्वा शृणुयात् स्तवम्॥१८०॥
स्तवेनानेन सा गङ्गा महाराजे भगीरथे। बभूव परमप्रीता तपोभिः पूर्व्वजैर्यथा॥१८१॥
तस्माद्यो भक्तिभावेन स्तवेनानेन स्तौति च। तस्यापि तादृशी प्रीता सगरादितपो यथा।
स्तवेनानेन सन्तुष्टा देवी राज्ञे वरं ददौ॥१८२॥

जो व्यक्ति पुत्रोत्सव के समय, विवाहादि शुभकृत्य में, श्राद्ध के दिन तथा जन्मदिन पर यह पाठ करता है अथवा सुनता है, उसका वह-वह कार्य अक्षय हो जाता है। यह पाठ करने से धनार्थी धन, भार्याहीन भार्या, अपुत्रक चतुर्वर्ग प्रदायक पुत्र प्राप्ति करता है। युगाद्या तिथि, पूर्णिमा, रविसंक्रान्ति, अमावस्या, व्यतिपात, पुष्य, एकादशी, दिनक्षय तथा पुण्यतिथि पर किसी भी शुश्रूषु के आने पर तथा गोष्ठ में, ब्राह्मण गृह में यह पाठ करे अथवा श्रवण करे। भगवती गंगा जैसे महाराज भगीरथ के कठोर तप से पूर्वकाल में संतुष्ट हो गयीं, वैसे ही इस सहस्रनाम स्तोत्र से प्रसन्न होती हैं। जो व्यक्ति इस स्तोत्र से गंगा की भक्तिपूर्ण स्तुति करता है, जैसे वे सगर आदि की तपस्या से उनसे प्रसन्न हो गयी थीं, वैसे ही स्तोत्र करने वाले के प्रति प्रसन्न हो जाती हैं।।१७७-१८२।।

देव्युवाच

वरम्बरय भूपाल वरदास्मि तवागता। जाने तव हृदिस्थञ्च तथापि वद कथ्यते॥१८३॥

देवी कहती हैं—हे राजन्! मैं तुमको वर प्रदान हेतु आयी हूं। वर प्रार्थना करो। यद्यपि मुझे तुम्हारा हृदगत भाव ज्ञात है, तथापि अपने मुख से कहो।।१८३।।

राजोवाच

देवि विष्णोः पदं त्यक्त्वा गत्वापि विवरस्थलम्।
उद्धारय पितॄण् पूर्व्वान् धरामण्डलवर्त्मना॥१८४॥
अस्तौषं भवतीं यच्च तेन यः स्तौति मानवः।
न त्याज्यः स्यात्त्वया सोऽपि वर एष द्वितीयकः॥१८५॥

राजा भगीरथ कहते है—हे देवी! यदि आप प्रसन्न हैं, तब विष्णुपद त्याग करके पृथिवी से होते पाताल में प्रवेश करके मेरे पूर्वपुरुषगण का उद्धार करिये। दूसरा वर यह चाहिये कि मैंने जो स्तुति की है, जो मनुष्य इससे आपका स्तव करे, आप उसका त्याग न करें।।१८४-१८५।।

देव्युवाच

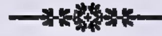
एवमस्तु महाराज कन्यास्मि तव विश्रुता। भागीरथीति गेया स्यां वर एषोऽधिकस्तव॥१८६॥
मां स्तोष्यति जनो यस्तु त्वत्कृतेन स्तवेन हि। तस्याहं वशगा भूयां निर्व्वाणमुक्तिदा नृप।
शिव आराध्यतां राजन् शिरसा मां दधातु सः॥१८७॥
अन्यथाहं निरालम्बा धरां भित्वान्यथा व्रजे। पृथिवी च न मे वेगं सहिष्यति कदाचन॥१८८॥
सुमेरुशिर आरुह्य शङ्खध्वानं करिष्यसि। तेन त्वामनुयास्यामि ब्रह्माण्डकोटिभेदिनी॥१८९॥

देवी कहतीं हैं—हे महाराज! ऐसा ही हो! मैं इसके अतिरिक्त एक वर और प्रदान करती हूं। मैं भागीरथी नाम से तुम्हारी पुत्री होकर प्रसिद्ध रहूंगी। हे नृप! जो तुम्हारे द्वारा कृत स्तोत्र से मेरी स्तुति करेगा, मैं उसके वश में रहूंगी तथा उसे निर्वाण प्रदान करूंगी। हे राजन्! अब तुम शिवाराधन तत्पर हो जाओ, जिससे वे मुझे मस्तक पर धारण करें। अन्यथा मेरे निरालम्ब स्वर्ग से गिरने पर धरातल विदीर्ण होगा तथा मेरा जल स्रोत अन्यत्र जा सकता है। पृथिवी मेरे गिरने के वेग को सहन नहीं कर सकती। तुम सुमेरुशिखर जाकर शंख बजाओ। तब मैं करोड़ों ब्रह्माण्ड भेद द्वारा तुम्हारा अनुगमन करूंगी।।१८६-१८९।।

शुक उवाच

इत्युक्त्वा सा तदा देवी तत्रैवान्तरधीयत॥१९०॥
भगीरथोऽपि राजर्षिरात्मानं बहुमन्यत॥१९१॥

।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे गङ्गास्तवसहस्रनामवर्णने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।



शुक कहते हैं—यह कहकर देवी वहीं अन्तर्हित हो गयीं। भगरीथ भी इससे प्रसन्न हो गये।।१९१।।

।।पञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त।



एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गंगावतरण

शुक उवाच

शृणु विप्र महाश्चर्य्यं गङ्गावतरणं क्षितौ। श्रवणं कीर्त्तनं यस्य महापातकनाशनम्॥१॥
राजा लब्धवरो दिव्यं रथमारुह्य कानकम्। महाजवं महारूपं चतुर्भिर्वाजिभिर्युतम्॥२॥
रराज शङ्खहस्तः स ज्वलत्कनकरूपवान्। नानाभरणभूषाढ्यो मुकुटोज्वलमस्तकः॥३॥
दीर्घवाहुर्दीर्घदृष्टिर्दीर्घदर्शी महातपाः। ललाटफलके दीर्घे सुदीर्घतिलकोज्ज्वलः॥४॥
उत्तुङ्गवक्षा रक्ताक्षः पीतवासा लसत्तरः। हस्ते तस्य शुभः शुक्लो रराज शङ्ख उत्तमः॥५॥
सुमेरुशृङ्गे विपुले सकलश्चन्द्रमा इव। संस्तूयमानो लोकैः स ऋषिभिर्जयवादिभिः॥६॥

शुक कहते हैं—हे विप्र! अब भूमण्डल पर परमाश्चर्यमय गंगावतरण सुनो। उसे सुनने तथा उसका गायन करने से महापातक समूह नष्ट हो जाते हैं। राजा भगीरथ ने शंकर से वर लाभ करके ४ अश्वों वाले महावेगवान् मनोहर दिव्य स्वर्णमय रथ पर आरोहण किया तथा महान् शोभा सम्पन्न हो गये। दीर्घबाहु, दीर्घनेत्र, दीर्घदर्शी, महातपा भगीरथ का समस्त अंग दीप्त स्वर्णवत् समुज्ज्वल तथा नाना आभरणों से विभूषित था। उनके मस्तक पर उज्ज्वल मुकुट था। उनका

ललाट दीर्घ तिलक से शोभित था। उनके हाथों में शुक्लवर्ण का शुभ शंख विद्यमान था। उनके पहने वस्त्र पीतवर्ण थे। दोनों नेत्र भी रक्तवर्ण तथा वक्षःस्थल अतीव उन्नत था। वे इस प्रकार विपुल सुमेरु शृंग पर उगे पूर्ण चन्द्रमा की तरह शोभायमान हो रहे थे। ऋषिगण जय-जयकार से उनकी संवर्द्धना कर रहे थे।।१-६।।

उवाच सारथिं राजा किञ्जल्काह्वयमुत्तमम्। स तेनोक्तो नृपेशेन चालयामास घोटकान्।।७।।
उत्पेतुर्घोटकास्ते च नभश्चत्वार एव च। निस्वनः पवनश्चैव मानसस्तारकस्तथा।।८।।
चतुर्भिर्घोटकैरेतैरारुहन्मेरुमस्तकम्। तत्र तं ददृशुर्देवा महादुष्करकर्म्मिणम्।।९।।
महासत्वं महात्मानं सप्तसप्तिमिवापरम्। सुमेरुपर्व्वते स्थित्वा शङ्खध्वानञ्चकार सः।।१०।।
मधुरं स्निग्धमत्यन्तं विपुलञ्च यथोचितम्। स शब्दो हरिपादाब्जमूर्द्ध्वगत्या जगाम ह।।११।।

तदनन्तर राजा भगीरथ ने अपने किंजल्क नामक सारथी को आदेश दिया, जिसने तत्काल निःस्वन, पवन, मानस एवं तारक नामक रथ के चारों अश्वों को हांक दिया। तदनन्तर भगीरथ मेरु के ऊपर आरूढ़ हो गये। वहां पर देवगण उन दुष्करकर्म करने वाले महासत्त्व सम्पन्न राजा भगीरथ को द्वितीय सूर्य के समान देखने लगे। तदनन्तर भगीरथ ने मेरु के ऊपर ही स्थित होकर वहीं पर मधुर एवं विपुल शंखध्वनि प्रारम्भ कर दिया। वह शब्द श्रीहरि के चरणों तक पहुंचा।।७-११।।

सुस्राव हरिपादाब्जं तेन शब्देन चारुणा। महावेगवती गङ्गा बभूव च निजेच्छया।।१२।।
भित्वा ब्रह्माण्डमूर्द्धानमधः सुस्राव सा नदी।।१३।।
ब्रह्माण्डोपरि यद्वारि वर्त्तते तेन संयुता। वद्धवेगा तदा देवी शब्दयन्ती बभूव ह।।१४।।
ततोथ सा महेश्वरी चचाल चारुरूपिणी। सुनिर्म्मलाम्बुरूपिणी वियद्गता विराजती।।
स्थिरा सुगाध्वभेदिनी (गभीरचारुनादिनी)। सहस्रशङ्खवादिनी वियन्निचित्य यायिनी।।१५।।
सप्तत्रिंशत्तु लक्षानि योजनानां विभिद्य सा। पपात मेरुशिरसि (दीपयन्ती दिशो दश।।१६।।
आगत्य मेरुशिरसि) विरराम महेश्वरी।।१७।।
शङ्खध्वानविरामञ्च चक्रे राजा भगीरथः। तदा सर्व्वे देवगणा देव्यश्चाभरणोज्वलाः।।१८।।
पुष्पचन्दनहस्तास्तां गङ्गां देवीं सिषेविरे। जयशब्दैः शङ्खशब्दैः पुष्पचन्दनसौरभैः।।१९।।
व्याप्ता दशदिशस्तत्र कैवल्यमिव चागतम्। तदा सर्व्वे दिगीशाना भगीरथमथाब्रुवन्।।२०।।
भोभो क्षत्रियशार्दूल गङ्गामानीतवानसि। दिशां चतसृणां लोकान् कृतार्थान् कुरु भूपते।।२१।।
दिशासु चतसृष्वेव कीर्त्तिरस्तु तवामला। तवैव धरणी सर्व्वा गङ्गयास्तु कृतार्थिनी।।२२।।

उस मधुर शब्द से भगवान् श्रीहरि के चरणकमल क्षरित होने लगे। तत्पश्चात् भगवती गंगा अपनी इच्छा से महावेगवती होकर अपने महान् शब्द से ब्रह्माण्ड पर स्थित जल के साथ ब्रह्माण्ड भेदन द्वारा सुनिर्मल सलिलयुता नदी रूप में मधुरूप जल का क्षरण करते-करते अधोगामिनी होने लगीं। इस प्रकार से स्थिराण्डमध्यभेदिनी गम्भीर चारुनादयुता हो सहस्र शंखों के समान शब्द करती, गगन विराजिनी रूपेण परिलक्षित होने लगीं। वे चारुरूपा गंगा दशों दिशाओं को उद्भासित करने लगीं। वे महेश्वरी आकाश मार्ग से गमनोद्यता होकर २७ लाख योजन पार करती

सुमेरु के ऊपरी भाग में आगत होकर विश्रामरता हो गयीं। राजा भगीरथ ने भी शंखवादन रोक दिया। तब विविध भूषण भूषित समस्त देवी-देवता साक्षात् मुक्तिरूपा गंगा को पुष्प-चन्दनादि अर्पित कर रहे थे। उनके अर्चना काल में जय-जयकार, शंखध्वनि तथा पुष्प, चन्दन, सौरभ से दशों दिशाएं व्याप्त हो गयीं। तदनन्तर दिक्पालगण भगीरथ को सम्बोधित करते कहने लगे—"हे नरशार्दूल! क्षत्रियश्रेष्ठ! जब आप यहां तक गंगा ले आये हैं, तब आप चतुर्दिक् स्थित जनगण को भी कृतकृत्य करिये। हे भूपति! इससे आपकी कीर्त्ति चतुर्दिक् चिरकाल व्याप्त रहेगी। साथ ही समग्र धरामण्डल भी कृतकृत्य होगा"।।१२-२२।।

शुक उवाच

एवं श्रुत्वा दिशां वाक्यं तदा राजा भगीरथः। उवाच गङ्गां विनयात् प्रणम्येक्ष्वाकुनन्दनः॥२३॥

शुक कहते हैं—राजा भगीरथ ने दिक्पालगण का यह कथन सुना, जो हितकर था। तब उन्होंने गंगा के प्रति अंजलिबद्ध हो प्रणामोपरान्त कहा।।२३।।

राजोवाच

मातर्गङ्गे नमामि त्वां प्राञ्जलिस्त्वां निवेदये। धाराचतुष्टयी भूत्वा गच्छ देवी चतुर्दिशः॥२४॥

राजा कहते हैं—हे मातः! गंगे! आपको प्रणाम। आपसे कुछ निवेदन है। कृपापूर्वक सुनें। हे देवी! आप अपनी चारों धाराओं का विस्तार करके चतुर्दिक् प्रवाहित हो जायें।।२४।।

देव्युवाच

भव त्वं चतुर्धा भूप शिरश्चत्वार एव च। तदाहञ्च चतुर्धा स्यां गमिष्यामि चतुर्दिशः॥२५॥

देवी कहती हैं—हे भूपति! यदि तुम तथा शंकर भी चार भाग में विभक्त हो जायें, तब मैं भी चार भाग में विभक्त होकर चतुर्दिक् प्रवाहित हो सकूंगी!।।२५।।

राजोवाच

त्वमीशा सर्व्वलोकानां सर्व्वलोकशुभङ्करी। तव सा विद्यते शक्तिर्मनुष्यस्य कथं मम॥२६॥

त्वदग्रे सा न शम्भोश्च नरान् शम्भून् करिष्यसि।
उपायज्ञा स्वयं देवि सृष्ट्वोपायं दिशो व्रज॥२७॥

राजा कहते हैं—हे देवी! आप सर्वलोकेश्वरी हैं। आप हितकारी हैं। मैं सामान्य मानव हूं। सामान्य तपःश्चरण से ऐसी शक्ति कैसे पा सकता हूं कि चार भाग में विभक्त हो सकूं? हे माता! आपसे तो प्रभु शिवशंकर तक बलहीन हैं। आप ही सभी मनुष्यों को शम्भु के समान कर सकती हैं। हे देवी! आप ही उपाय जानने वाली हैं। आप उपाय की विवेचना करके चतुर्दिक् प्रवाहित हों।।२६-२७।।

शुक उवाच

इत्युक्ता सा नरेन्द्रेण देवेन्द्रपरिषेविता। स्वयं गङ्गा चतुर्धाऽभूत् शङ्खपद्मकरा शुभा॥२८॥

वेगेनाल्पेन तास्तिस्त्रो धाराभूताः समुज्वलाः।
ध्वनयित्वा च ताः शङ्खान् मूर्त्तिमत्यः पुरःसराः॥२९॥

शुक कहते हैं—मनुष्य तथा देवेन्द्र परिसेविता देवी भगवती गंगा ने राजा द्वारा यह कहे जाने पर स्वयं को शंख-पद्म धारी तीन मूर्ति में विभक्त कर दिया। तब गंगा अपनी त्रिमूर्ति के आगे-आगे शंखवादन के साथ तथा उज्ज्वल धारा त्रय (३ मूर्ति) के साथ बढ़ने लगीं।।२८-२९।।

सीता पूर्व्वां दिशं याता भद्राख्या चोत्तरां ययौ। वङ्क्षुश्च पश्चिमां याता गिरिसोपानसङ्क्रमाः।।३०।।

भद्राश्वे केतुमाले च कुरौ वर्षे च ता द्विज।
त्यक्त्वा शङ्खान् वेगवत्यो विविशुर्जलधीन् पृथक्।।३१।।

दक्षिणेऽलकनन्दाख्या मेरौ मन्दाकिनी तु या। सा धारा विपुला चारुर्महावेगा महाबला।
दक्षिणाभिमुखी प्रागाद्भगीरथरथानुगा।।३२।।

उनकी सीता नामक धारा पूर्व की ओर, भद्रा नामक धारा उत्तर की ओर, वंक्षुधारा पर्वतों को पार करके पश्चिम की ओर बढ़ने लगी। सीताधारा भद्राश्व की ओर, भद्राधारा केतुमाल की ओर, वंक्षुधारा कुरुवर्ष की ओर आ गईं। गंगा की ये तीनों मूर्त्ति शंख-पद्म का त्याग करके वेगवती धारा त्रय होकर जलधित्रय में प्रविष्ट हो गयीं। जो धारा मेरु मस्तक पर मन्दाकिनी नाम से प्रख्यात थी, वही अलकनन्दा नामक महावेगा, महाबला, उत्तमरूपा विपुल धारा दक्षिणाभिमुखीन होकर भगीरथ के पीछे-पीछे बह रही थी।।३०-३२।।

मेरोश्च दक्षिणे शृङ्गे गुहां दृष्ट्वा भगीरथः। शङ्खध्वनिं परित्यज्य गङ्गां वचनमब्रवीत्।।३३।।

राजोवाच

देवि गङ्गे गुहा ह्येषा दुष्प्रवेशविनिर्गमा। तमोमयी महाघोरा कथमेतां तराम्यहम्।।३४।।

तदनन्तर भगीरथ ने मेरु के दक्षिण शृंग पर एक गुहा देखा, तब शंख बजाना छोड़ कर गंगा से कहा—"हे देवी गंगे! सामने एक दुप्रवेशरूपा तथा निकलना जहां से संभव नहीं है, एक अन्धकारमयी घोर रूप गुहा लक्षित हो रही है। इसे कैसे पार करें?।।३३-३४।।

देव्युवाच

सत्यमेषा दरी घोरा दुष्प्रवेशनिविर्गमा।।३५।।

ऐरावतः शक्रहस्ती गुहामेतां विदारयेत्। तमानय महाभाग यदि त्वं गन्तुमिच्छसि।।३६।।

शुक उवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्या ययावैरावतं नृपः। ऐरावत महाभाग नमस्ते शुक्लभास्वर।।३७।।

देवी कहती हैं—हे महाभाग! तुमने जो कहा, वह सत्य है। यह घोर गुफा है, जहां प्रवेश करके निकल सकना दुर्गम है। अतः यदि तुम मुझे ले जाना चाहते हो, तब इन्द्र के हाथी ऐरावत का स्मरण करो। वह गुफा को विदीर्ण कर देगा। शुक कहते हैं—गंगा का वचन सुन कर राजा भगीरथ ऐरावत के पास जाकर कहने लगे। भगीरथ कहते हैं—हे शुक्ल भास्वर महाभाग ऐरावत! आपको प्रणाम।।३५-३७।।

ऐरावत उवाच

किं करिष्यामि ते कार्य्यं कथं मां त्वं नमस्यसि।
मत्साध्यं किन्नु ते कर्म्म न निष्पन्नं मया विना।।३८।।

ऐरावत कहते हैं—हे राजन्! आप मुझे किस कारण से नमस्कार कर रहे हैं? मुझे क्या कार्य करना है? ऐसा कौन कार्य है, जो मेरे बिना नहीं होगा?।।३८।।

राजोवाच

अहं भगीरथो राजा दिलीपतनयः श्रुतः। गङ्गां नीत्वा व्रजाम्येष उद्दिधीर्षुः पितामहान्॥३९॥
गच्छन्ती तत्र गङ्गेह मेरोर्दक्षिणशृङ्गतः। दृष्टा दरी महाघोरा दुष्प्रवेशविनिर्गमा॥४०॥
त्वया विदीर्णा सा चेत् स्यात्तदा गङ्गा विनिर्व्रजेत्।
त्वया विना दरी सा तु न स्याद्द्वारप्रदा गज॥४१॥

राजा कहते हैं—मैं दिलीप पुत्र भगीरथ हूं। मैं पितामह के उद्धारार्थ गंगा को लेकर मेरु के दक्षिण पृष्ठ पर पहुंचा, जहां एक भयानक अत्यन्त गहरा गह्वर देखकर तुम्हारे पास आया हूं। हे गजराज! यदि तुम कृपा करके उस गुहा को विदीर्ण कर दो, तब वहां से गंगा निकल सकेगी। तुम्हारे अतिरिक्त किसी के द्वारा गंगा को निकलने का मार्ग नहीं मिल सकता।।३९-४१।।

(ऐरावत उवाच

एवमेव करिष्यामि प्रविशामि गुहामहम्। तत्र गङ्गा मया सार्द्धं निशामेकां वसेद्यदि॥४२॥

ऐरावत कहता है—यदि वहां गंगा मेरे साथ रात्रि पर्यन्त वहां रुकें, तब मैं गुहा में प्रवेश करके उसे विदीर्ण करूंगा।।४२।।

राजोवाच

त्वया सार्द्धं वसेद्गङ्गा सहेथाश्चेज्जवं परम्। एवं श्रुत्वा च राजानं सुरगजोऽभ्यभाषत)॥४३॥

राजा कहते हैं—"यदि तुम उनका वेग सह सको, तब वे तुम्हारे साथ रात्रि यापन कर लेंगी।" सुरगज ऐरावत यह सुन कर राजा से कहने लगा।।४३।।

ऐरावत उवाच

यदि तस्या अहं वेगं न सहिष्ये भगीरथ। तदसाध्यं कथं कर्म्म करिष्ये ते तदा वद॥४४॥

ऐरावत कहता है—यदि मैं उनका वेग-सहन नहीं कर सकता, तब मैं कैसे उनका असाध्य कार्य कर सकूंगा?।।४४।।

राजोवाच

यदि तस्या भवान् सोढुं शक्नोति भवता तदा। सङ्गमिष्यति सा सत्यं नात्र कार्य्या विचारणा॥४५॥
दरीविदारं कर्त्तुं सा समर्थेति कियद्वचः। मेरुमेव विदार्य्यैषा गन्तुं शक्नोति शाङ्करी॥४६॥
इन्द्रस्य देवराजस्य देवी सम्मानकारिणी। त्वामाह्वयति तत्कार्य्ये यथोचितमथो कुरु॥४७॥

भगीरथ कहते हैं—यदि तुम उनका वेग सह सको, तब वे तुम्हारे साथ मिलित होंगी। वे इस सामान्य गुहा को विदीर्ण नहीं कर सकीं, यह न सोचो! वे तो इच्छामात्र से मेरु को भी विदीर्ण कर देंगी। तब भी देवराज इन्द्र का सम्मान रखने के लिए उन्होंने तुमको बुलाया है। अब जो अच्छा समझो, करो।।४५-४७।।

ऐरावत उवाच

भद्रं तस्या अहं वेगं सहिष्ये प्रविशे गुहाम्। वसेत् सा च मया सार्द्धं निशामेकामसंशयम्॥४८॥

ऐरावत कहता है—हे भद्र! मैं उनका वेग सहन कर लूंगा। चलो गुहा में चलते हैं। वे निश्चित रूप से एक रात्रि मेरे साथ रहेंगी।।४८।।

शुक उवाच

इत्युक्त्वा शक्रमातङ्ग आगत्य प्राविशद्दरीम्। शङ्खं सस्वान राजापि गङ्गा वेगवती वभौ॥४९॥
दृष्ट्वा वेगवतीं गङ्गां श्रुत्वा घोरं यवस्वनम्। भयविभ्रान्तनयनो गजराजोऽभवत्तदा॥५०॥
प्रतिगन्तुं न चाशक्नोत्प्रवेशद्वारदेशतः। दक्षिणाभिुखो भूत्वा मेरुशृङ्गं विदार्य्यः सः॥५१॥
हूंकारं घोषमुन्नाद्य दुद्राव प्रपलायितः। एतेनैव ह्युपायेन प्राप्य निःसरणं शिवा॥५२॥

शुक कहते हैं—यह कहकर ऐरावत ने गुहा में प्रवेश किया, तब राजा भगीरथ शंखध्वनि करने लगे। भगवती भागीरथी भी परम वेगवती हो उठीं। गंगा को वेगवती तथा भयंकर शब्दकारिणी देखकर भय से गजराज ऐरावत के नयनद्वय उद्भ्रान्त हो उठे! तब वह प्रतिगमन में समर्थ न होने के कारण गुफा के द्वार पर रुका तथा दक्षिणाभिमुखी मेरुशृङ्ग को तोड़कर गम्भीर रूप से चिग्घाड़ कर वहां से भाग गया।।४९-५२।।

भगीरथरथं चानुगताऽगाद्वेगशालिनी। ततोऽतीत्य महादुर्गान् गिरीन् गङ्गा गरीयसी॥५३॥
निषधं हेमकूटञ्च व्यतीयाय महेश्वरी। विलसन्ती तरङ्गैश्च नृत्यन्तीव ततस्ततः॥५४॥
क्वचिदावर्त्तनटना दीर्घस्रोताः क्वचित् क्वचित्। करिकेशरिसंघातैः पार्व्वतैः प्रविलोड़िता॥५५॥
विक्षिप्तान् देवदेवीभिर्वहन्ती पुष्पसञ्चयान्। महेश्वरशिरः प्राप्तुं महावेगवती वभौ॥५६॥
कथं सहेत मे वेगं शिरसा शिव इत्युत। आकूतं मानसं कृत्वा ययौ शङ्खध्वनानुगा॥५७॥

भगवती शंकरी गंगा इस उपाय से उस पहाड़ के बाहर हो गयीं तथा भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे जाने लगीं। उन्होंने हेमकूट आदि को पार कर लिये। तब महेश्वरीगंगा अपनी तरंगमालाओं से शोभित होकर मानो इतःस्ततः नृत्य करते कहीं आवर्त्त रूप से, कहीं दीर्घस्रोता होकर देवताओं द्वारा वर्षाये पुष्पसमूह को बहाती, दुर्गम पर्वतों, निषध तथा हेमकूट का अतिक्रम करके यह चिन्तन करने लगीं कि भगवान् शंकर कैसे शिर पर मेरे वेग को सहन करेंगे?।।५३-५७।।

शिवोऽपि गङ्गां तां धर्त्तुं मौलिं विस्तीर्य्य धूर्जटिः। हिमालयत्ततुर्भागमारुह्य स तथा स्थितः॥५८॥
गङ्गायाः कीदृशो वेगो मया ज्ञेय इतीर्ष्यया। ततो गङ्गा देवनदी वेगफेणवती सती॥५९॥

यह विचार करते उनके मस्तक तक पहुंचने हेतु भगीरथी महावेग से भगीरथ के शंखशब्द के अनुरूप बहती जा रहीं थीं। हाथी-वानर आदि जन्तुगण से पूर्ण सभी पर्वतस्थ प्राणी उनको एकटक देख रहे थे। इधर भगवान् धूर्जटि शिव ने देखा कि गंगा का कितना वेग है, मन ही मन इस ईर्ष्या के कारण हिमालय के चारों ओर चढ़ते हुए गंगा को धारण करने हेतु अपने मस्तक का भी विस्तार करने लगे।।५८-५९।।

यथाविशच्छम्भुशीर्षं सहस्राणि हिमालयात्। योजनानि त्रिपञ्चाशल्लङ्घयित्वा महाबला॥६०॥

एकदैवापतच्छम्भोर्मौलिं बहुजटावनम्। यथेष्टनैव वेगेन पपात शिर ऐश्वरम्॥६१॥
बभ्राम शम्भुशिरसि ईहमाना विनिर्गमम्। यत्र यत्र व्रजत्येषा शिवशीर्षे जटावने॥६२॥
तत्रैव नूतनं स्थानं ददर्श सुरनिम्नगा। एवं बभ्राम शिरसि शिवस्यानन्ततेजसः॥६३॥
श्रान्ता बभूव परमा शङ्खध्वन्युपकर्षिता। आविर्भूय वत्सरान्ते गङ्गा शिवमथाब्रवीत्॥६४॥

तदनन्तर सुरनदी गंगा यथाभिलषित वेगवती तथा फेनपुंज से परिवृता होकर ५३ योजन लांघ कर हिमालय से १०० गुना अधिक विस्तृत हो गये जटाजूट जटिल शंभुशिर पर गिर कर वहां से बहिर्गत होने का मार्ग खोजने लगीं।

उन्होंने शंकर के मस्तकस्थ जटाजूट के वन में जहां-जहां गमन किया, वहां-वहां नवीन स्थान ही देखा। भगवती गंगा अनन्त शक्तिमान शिव के मस्तक में भ्रमण करते हुए थक गयीं तथा इधर भगीरथ उनको शंखध्वनि से बुलाते जा रहे थे।।६०-६४।।

देव्युवाच

अनन्तशक्ते भगवन् देहि निःसरणं मम। शङ्खध्वानाङ्कुशेनैष मामाकर्षति भूपतिः॥६५॥
तेनाहं पीड़िता भूता श्रान्ता तव जटावने। द्वारमप्राप्य निर्वेगा त्वामहं शरणं गता॥६६॥
त्वमनन्तजटारण्ये द्वारं देहि महेश्वर। भूयात् सगरपुत्राणां ब्रह्मदण्डविमोचनम्॥६७॥
कृतापराधां मां देव क्षमस्व परमेश्वर॥६८॥

इस प्रकार १ वर्ष व्यतीत होने पर गंगादेवी शंकर के समक्ष प्रकट हो गयीं। उन्होंने कहा—"हे अनन्तशक्ति प्रभु! भूपति भगीरथी शंखध्वनिरूपी अंकुश द्वारा मुझे आकर्षित कर रहे हैं। अतएव आप मुझे बहिर्गत होने का मार्ग प्रदान करें। मैं आपके अपार जटारूपी वन में भ्रमण करते थक गयी।

हे महेश्वर! इसलिए मैं मार्ग न पाकर आपकी शरणागत हूं। आप द्वार देकर सगर पुत्रों की रक्षा ब्रह्मदण्ड से करें। हे परमेश्वर! मैं आपकी अपराधिनी हूं। मेरी रक्षा करें।।६५-६८।।

भगवानुवाच

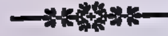
माञ्चापि त्वं तलं नेतुमैच्छो वेगेन भूयसा। स ते वेगः कुतो यातः कथमीदृक् प्रभाषसे।
गतां मां शरणं यस्मादतो व्रज यथेच्छया॥६९॥
इत्युक्त्वा स महादेवो जटामेकान्तु दक्षिणे। स्फारयामास सव्येन पाणिना प्रहसन्मुखः॥७०॥

भगवान् कहते हैं—हे गंगे! तुमने अपने प्रभूत प्रवाहवेग से मुझे भी रसातल में ले जाने का उपक्रम किया था। अब तुम्हारा वह वेग कहां भाग गया? अब ऐसा विनय वाक्य क्यों कह रही हो? जो भी हो! अब तुम मेरी शरणागत हो, अब तुम जहां इच्छा हो, जा सकोगी? भगवान् ने यह कहकर सहास्य स्थिति में अपने बायें हाथ से दाहिनी ओर की एक जटा को हटाया।।६९-७०।।

ततः प्राप्य वरं द्वारं निःससारामरापगा। पक्षिणी लोकवशगा मुक्तद्वारेव पञ्जरात्॥७१॥
अथ ज्यैष्ठे महाभागा दशम्यां शुक्लपक्षतः। हस्तानक्षत्रयोगेन भौमे वारे महामुने॥७२॥

हिमालयं परित्यज्य पपात धरणीतलम्। तदा जयजयस्वानो बभूव भुवि सर्व्वतः॥७३॥
धरा क्षुब्धापि न क्षोभं गङ्गालाभादुपालभत्। गङ्गापि च धरां प्राप्य परमामाप निर्वृतिम्॥७४॥
ज्वलदग्निशिखाकोटिरिव जज्वाल तेजसा। पापसङ्घास्तदा भीतास्दैव परितत्यजुः॥७५॥
इति खलु धरणीतलं महेशी समगमदिन्दुसहस्रशुक्लवर्णा।
अरुणकरसहस्रदीप्तियुक्ताः व्यजयत सुष्ठु सुरैः समीड्या॥७६॥

॥इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे गङ्गावतरणं नाम एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥



जैसे पिंजर में बन्द पक्षी पिंजरे से मुक्त होकर उड़ जाता है, सुरधुनि गंगा भी जटाद्वार से परमानन्दपूर्वक बाहर आ गयीं। हे महामुने! तदनन्तर भगवती गंगा ज्येष्ठमासीय शुक्ला दशमी को जब मंगलवासरी हस्तनक्षत्र योग था, हिमालय से धरतीतल पर गिरीं। वे भूतल पर अवतीर्ण होकर परम प्रसन्न हो गयीं तथा स्वतेज से प्रज्वलित करोड़ों अग्निशिखावत् दीप्तियुक्त होने लगीं। सर्वत्र जयध्वनि होने लगी। पृथिवी क्षुब्ध होने पर भी गंगा की प्राप्ति के आनन्द के कारण अपनी क्षुब्धता को भूल गयीं। सभी पाप भयभीत होकर पृथिवी से भाग चले।।७१-७५।।

सुरगण एवं ऋषियों द्वारा वन्दिता, हजारों चन्द्रमा की तरह शुभ्रवर्णा, हजारों-लाखों सूर्य के समान दीप्ता महेश्वरी भगवती भागीरथी इस प्रकार से पृथिवी पर अवतरित होकर पापों का नाश करके परम शोभित हो गयीं।।७६।।

।।एकपंचाशोत्तम अध्याय समाप्त।।



द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सगरवंशोद्धार, गंगामहिमा

शुक उवाच

अथ गङ्गा तदा देवी दक्षिणास्या धरातलम्। आनन्दसम्पदा चाढ्या (ययौ विपुलधारया।
तरङ्गचारुपत्राढ्या) फेणपुष्पविराजिता॥१॥
गङ्गाख्या मुक्तिलतिका रराज धरणीं गता॥२॥
धारासुवलिता चारु शुक्ला परमशोभना। करिसिंहमहानागमहापक्षिगणाकुला॥३॥
अग्रे भगीरथो राजा शङ्खहस्तो रथोपरि। प्रगच्छन् बाणवेगेन गङ्गा शब्दानुगामिनी॥४॥
वनानि पर्वतानुच्चान् ग्रामांश्च नगराणि च। सरांसि च सुरम्याणि प्लावयित्वा महाजवा॥५॥

शुक कहते हैं—तदनन्तर गंगा भूतल पर अत्यन्त आनन्द से विपुल धारा का शब्द गुंजारित करती दक्षिणाभिमुख चल पड़ीं। तब भूतलगता गंगा मानों साक्षात् मुक्तिलतिका की तरह विराजने लगीं। इस मुक्तिलतिका की

तरंगें ही उसकी (पत्ते) पत्रावली थीं। गंगा का शुभ्र फेन मानो उस मुक्तिलता में पुष्पों की तरह शोभित था। शुभ्रकान्ति धारा सुन्दरी सिंह, पक्षी, हाथी आदि से आकीर्ण होकर अत्यन्त शोभायमान थीं। राजा भगीरथ आगे-आगे रथ के ऊपर शंख ध्वनि करते-करते धनुष से छूटे बाण ऐसे जा रहे थे। भगवती गंगा उस शंखध्वनि का अनुगमन करती उच्चपर्वत, वन, ग्राम, नगर, सुरम्य सरोवर प्लावित करती देवर्षिगण की स्तुति के साथ महावेग से धरती पर अवतीर्ण हो रही थीं।।१-५।।

देवर्षिभिः स्तूयमाना रेजे गङ्गा धरातले। यत्र यत्र ययौ गङ्गा तत्र तत्र महेश्वरः॥६॥
भूमिभागं शिवश्चक्रे अष्टहस्ताधिके तटे। सर्द्धयोजनविस्तीर्णां धारां चक्रे महेश्वरी॥७॥
दीर्घं चक्रे शिवः शुम्भुर्मितं द्विशतयोजनम्। अब्धेः प्रतीरपर्य्यतं किञ्चिन्न्यूनं मुहुश्च तत्॥८॥
व्यतीते योजने सप्तद्वये गङ्गा जवान्विता। हरिद्वार समीपे तु ददर्श सप्त वै मुनीन्॥९॥
ते तु सप्तैव मुनयः सप्तशङ्खध्वनिं दधुः। सप्तधारा तदा भूता सप्तर्षीणां सुखाय ह॥१०॥

जहां-जहां गंगा जा रही थीं, वहां-वहां के आठ हाथ भूमिभाग (तट) पर शंकर शिवश्चक्र स्थापित कर रहे थे। महेश्वरी गंगाधारा आधा योजन चौड़ी थीं, उनकी मौलि आठ हाथ से अधिक तथा मस्तक आधा योजन था। भगवान् शंकर ने उसे समुद्र तक करीब २०० योजन लम्बा किया। भगवती गंगा ने महावेग से १४ योजन अतिक्रम करके हिमालयस्थ सप्तर्षि मण्डल का दर्शन किया। वे सातों ऋषि सात शंख बजा रहे थे। वहां गंगा ने ऋषिगणों की प्रसन्नतार्थ सप्तधारा रूप धारण किया।।६-१०।।

ततः प्राप्य हरिद्वारं धारां संकोच्य वैष्णवी। अभूत् पूर्वमुखी देवी महापाषाणभेदिनी॥११॥
अतः परमशुद्धाभि(र्नदीभिः) सङ्गताभवत्। सखीभिरिव संयाता साववर्द्ध कुतूहलात्॥१२॥
(ततोऽग्निकोणमुखतो ययौ गङ्गा धरातले। यमुना च तथा गुप्ता सङ्गताभूत् सरस्वती॥१३॥
प्रयाग इत्ययं देशः पुण्यः परमतः परम्। ततः पूर्वमुखी गङ्गा पूर्वस्त्रोता व्यराजत॥१४॥
काशीं रामां ततश्चक्रे वामाशक्तिरनुत्तमा। तत्राभूदुत्तरस्त्रोता शिवदर्शनकौतुकात्)॥१५॥
सपादयोजनं तन्तु देशं पृथ्वीबहिष्कृतम्। ततः पूर्वामुखी भूता तत्र राजा भगीरथः॥१६॥
श्रान्ताश्वसारथिर्भूतः शङ्खध्वानं व्यरामयत्। एतस्मिन्नेव काले तु जह्नुर्नाम महामुनिः॥१७॥
चक्रे शङ्खध्वनिं चारुं गङ्गा शुश्राव तं तदा। तमेव शब्दं चान्वेष्य गन्तुं देवी प्रचक्रमे॥१८॥

तत्पश्चात् वे संकुचित हो हरिद्वार पहुंचीं। वहां महापाषाण भेद करके सर्वतोमुखी हो गयीं। तदनन्तर वे सखी की तरह सभी शुद्ध नदियों से मिलकर कौतुकवशात् स्फीत हो गयीं। तत्पश्चात् अग्निकोणमुखी होकर जाते-जाते यमुना तथा अन्तःसलिला सरस्वती के साथ जहां मिलीं, वह प्रयाग नामक अति पुण्य क्षेत्र हो गया। तदनन्तर गंगा का स्रोत पूर्ववाही हो गया, तब भगवती गंगा ने वामाशक्ति को सर्वोत्कृष्ट जानकर काशी में वामा रूप लिया। वहां वे शिवदर्शन रूपी कौतुक के कारण उत्तरवाहिनी हो गयीं। योजन परिमित तथा एक पाद स्थान काशी इस पृथिवी से बहिर्भूत है। तदनन्तर वे पूर्वमुखी होकर चलीं। तब राजा भगीरथ थक गये तथा उन्होंने सारथी एवं अश्वों को थका देखकर शंखवादन रोक दिया। इसी समय महामुनि जह्नु भी कानों को मधुर लगने वाली शङ्खध्वनि करने लगे। वह सुन कर देवी गंगा पुंनः बहने लगीं।।११-१८।।

ततो विश्रम्य राजा च शङ्खशब्दं चकार ह। गङ्गा गत्वा कियद्दूरं श्रुत्वान्यं शङ्खनिस्वनम्॥१९॥
कोऽयमन्यो ध्वनिः शङ्खेस्ततो दध्यौ वुबोध च। कर्म्म जह्नुमुनेस्तत्र रोषस्फुरितहृद्भ्रभौ॥२०॥
मुनेरस्याश्रमं सर्वं प्लावयामीत्यभाषत। गच्छ राजन् महाभाग यत्र जह्न्वाश्रमो ह्ययम्॥२१॥
प्लावयिष्याम्यहं तस्य मुनेराश्रममण्डलम्। स्वाश्रमं नेतुकामो मां योऽन्यं शङ्खमपूरयत्॥२२॥

इधर राजा भगीरथ विश्राम के उपरान्त उठे तथा फिर से शंख वादन करने लगे। तब गंगा ने कुछ दूर बहने के पश्चात् अन्य शंखध्वनि सुना, जिससे वे विस्मित हो गयीं। तब उन्होंने पहली वाली शंखध्वनि को जह्नुमुनि कृत जान लिया। क्रोधित होकर उन्होंने अधीरता से भगीरथ से कहा—"हे महाभाग! जब मुझे अपने आश्रम ले जाने हेतु जह्नुऋषि शंख बजा रहे हैं, तब मैं उनका आश्रम डुबा दूंगी। आप उनके आश्रम की ओर चलें"।।१९-२२।।

शुक उवाच

इत्युक्तः स नृपोऽग्र्योभूद्गङ्गाचानुययौ जवात्। तद्विज्ञाय मुनिर्जह्नुर्ब्रह्मतेजः समस्मरत्॥२३॥
उषित्वा स मुनिवरो भूमौ वै दक्षिणं करम्। अर्पयामास तत्राभूद्गङ्गा लीनाप्यलक्षिता॥२४॥
प्राप्तं गङ्गाजलं सर्वं पाणौ ब्रह्मकरोपमे। गण्डूषीकृत्य तां गङ्गां पपौ जह्नुर्महामुनिः॥२५॥
हाहाकारस्तदा जातो भुवि खे दिक्षु सर्वतः। गङ्गा च मूर्त्तिमासाद्य जगाद मुनिपुङ्गवम्॥२६॥

शुक कहते हैं—गंगा देवी के यह बात कहने पर राजा अग्रसर हो गये। गंगा भी तीव्र वेग से उनके पीछे-पीछे गमन करने लगीं। यह जानकर जह्नुमुनि ने ब्रह्मतेज का स्मरण करके भूतल पर दाहिनी हथेली रखी। वहां पर अलक्षित गंगामाला होने लगी। महामुनि जह्नु ने ब्रह्मा के करकमल के समान अपनी दक्षिण हथेली में आया गंगाजल चुल्लू भरकर पी लिया। इससे भूर्लोक, आकाश तथा चारों ओर हाहाकार होने लगा। अतः गंगादेवी अपना साकार रूप धारण करके उन मुनिप्रवर के सामने स्वयं आईं।।२३-२६।।

देव्युवाच

मुने ब्रह्मन् महाभाग जाने त्वां ब्रह्मतेजसम्। क्षमस्व मम दौरात्म्यं चिकीर्षोर्लोकमङ्गलम्॥२७॥
तव पुत्रीत्वमापन्ना त्यज मां जठरात् स्वकात्। प्राप्नुवन्तु गतिं दिव्यां नयाः सगरस्य वै॥२८॥
भगीरथस्य भूपस्य कुरुष्व सार्थकं तपः।
जाह्नवीत्येव मे नाम लोका गास्यन्ति पावनम्॥२९॥
तवैषा परमा कीर्त्तिर्लोकेषु विमला स्थिता। ब्राह्मणास्तु महात्मानो देवैरपि दुरासदाः॥३०॥
इति जाने क्षमस्व त्वं त्यज मां कार्य्यसिद्धये।

देवी गंगा कहती हैं—हे ब्रह्मन्! महाभाग! मैं आपको ब्रह्मतेज युक्त जानती हूं। मैं लोकों का हित चाहती हूं। मेरा अपराध क्षमा करें। मैं आपकी कन्या हो गई। अब आप अपने उदर से मुझे मुक्त करें। इससे सगरराज के पुत्रों को सद्गति मिलेगी। भगीरथ का तप सार्थक होगा। लोग मेरे जाह्नवी पवित्र नाम का कीर्त्तन करेंगे। आपकी परमविमला कीर्त्ति जाज्वल्यमान होगी। हे मुने! महात्मा ब्राह्मण तो देवताओं को भी दुर्लभ हैं। यह मैं जानती हूं। कार्यसिद्धि हेतु अपने जठर से मेरा त्याग करके मुझे क्षमा करें।।२७-३०।।

शुक उवाच

तस्यास्तु व्याकुलं वाक्यं श्रुत्वा जह्नुर्महातपाः॥३१॥
जानु व्यापादयामास निःससार ततः शिवा। जाह्नवी जयतीत्येवं वभौ पुण्यतरध्वनिः॥३२॥
ततः कियद्गतो दूरं राजासीच्छ्रान्तवाहनः। एतस्मिन्नेव काले तु समयं प्राप्य काचन॥३३॥
नाम्ना पद्मावती कन्या मुनेर्जह्नोर्महात्मनः। शङ्खं सा ध्वानयामास दिदृक्षुर्भगिनीमिति॥३४॥
तमेवानुगता शब्दं ययौ पर्वतनन्दिनी। अग्निकोणमुखी किञ्चिद्दूरं प्राप्ता तथाविधा॥३५॥
दृष्ट्वा भगीरथो राजा अन्यथा व्रजतीं शिवाम्। उत्तिष्ठ सारथे गच्छ गङ्गा याति पथान्तरम्॥३६॥

शुक कहते हैं—महात्मा महातपा जह्नुऋषि ने गंगा की कातर प्रार्थना सुनकर अपना जंघा विदीर्ण किया तथा वहां से गंगा देवी निर्गत हो गयीं। तब चतुर्दिक् लोग जय जाह्नवी, जय जाह्नवी रूप पुण्यध्वनि करने लगे। कुछ दूर जाकर राजा भगीरथ वाहन को विश्राम देने हेतु रुक गये। तभी जह्नुऋषि की कन्या पद्मवती ने अपनी बहन का दर्शन करने का (नयी बहन गंगा के दर्शन हेतु) समय जानकर शंख बजाया। वह सुनते ही पर्वतपुत्री गंगा अग्निकोण की ओर कुछ दूर तक चलीं।

तभी भगीरथ ने उनको अन्य ओर जाते देखकर सारथि से कहा, सारथी चलो! देवी तो दूसरी ओर जा रही हैं।।३१-३६।।

इत्युक्त्वा ध्वानयामास राजा शङ्खं महावरम्। तं श्रुत्वा शङ्खनिनदं जलादुत्थाय वेगिता॥३७॥
ददर्श दूरे राजानं कुर्वन्तं शङ्खनिस्वनम्। चुक्रोध पद्मावत्ये सा सा तत् क्रोधान्नदी वभौ॥३८॥
सा च पद्मावती देवी विस्तीर्णसलिला पुनः। पूर्वामुखं ययौ पूर्वसमुद्रमपि सङ्गता॥३९॥
गङ्गा तु वेलां संक्षिप्य गन्तुं समुपचक्रमे। बभूव दक्षिणस्त्रोता बुद्ध्वाब्धिं निकटादिव॥४०॥
गङ्गायमुनयोः सङ्गं परित्यज्य सुरापगा। राजानं दक्षिणं कृत्वा संविभेद सरित्पतिम्॥४१॥
समुद्रस्तत उत्थाय पुष्पचन्दनसंयुतः। अर्च्चयामास तां गङ्गां वेलया सह भार्य्यया॥४२॥
ततः सा सागरं भित्वा व्यतीत्य विवरानपि। महातले च कपिलं ददर्श सुमहाप्रभम्॥४३॥
तस्मिन् भगीरथो राजा गङ्गां भागीरथीं द्विज। पूजयामास विविधैर्वलिभिर्धूपदीपकैः॥४४॥

यह कहकर राजा उच्च स्वर से शंखवादन करने लगे, जिसे सुनकर विस्मित होकर देवी गंगा जल से उठीं तथा राजा को दूर (अन्य ओर) से शंखवादन करते देखा, तब वे पद्मावती के प्रति क्रोधित हो गयीं। इस कोप से पद्मावती विस्तीर्ण नदी रूप में परिणत होकर पूर्व की ओर बहती समुद्र में मिल गयी। देवी भी किनारे को संक्षिप्त करके गमनार्थ प्रवृत्त हो गयीं। उन्होंने पास में समुद्र होना जानकर दक्षिण स्त्रोता रूप धारण किया, यमुना का साथ छोड़कर राजा को दक्षिण में रखते समुद्र भेदन किया। उस समय साक्षात् समुद्र अपनी पत्नी बेला के साथ आया तथा पुष्प-चन्दन से देवी की अर्चना सम्पन्न किया। तब देवी सागर भेदन करके सुतल आदि का अतिक्रमण करके महातल गईं तथा वहां कपिल मुनि का दर्शन किया। हे द्विज! वहां राजा भगीरथ ने धूप-दीपादि नाना उपचारों से गंगा पूजन सम्पन्न किया।।३७-४४।।

कपिल उवाच

मातर्गङ्गे महेशानि स्वागतं ते महेश्वरि। अतीत्य सुबहून् देशानायातासि महातलम्॥४५॥
इमे सागरयः षष्टिसहस्राणि महावलाः। मत्क्रोधवह्निना दग्धा दुर्गतिं परमां गताः॥४६॥
एतान् (पारय हेमातरनन्या त्वं गतिर्नृणाम्। यान्तु दिव्यां गतिं देवि उत्तीर्णा दुर्गतेरपि॥४७॥
अहञ्च त्वां स्पृशाम्येव कृतार्थः स्यामसंशयम्।

कपिल कहते हैं—हे महेशानी! महेश्वरी, मातः गंगे! आप का शुभागमन अनेक देशों को पार करते हुए महातल में हुआ है। ये महाबली ६०,००० सगरपुत्रगण मेरी क्रोधाग्नि में दग्ध होकर परम दुर्गति में पड़े हैं। हे माता! आप ही जीवों की एकमात्र गति हैं। इनको पावन करें। हे देवी! ये अब दुर्गति से उत्तीर्ण होकर दिव्यगति प्राप्त करें। मैं भी आपका स्पर्श करके कृतार्थ हो सकूंगा।।४५-४७।।

शुक उवाच

इत्युक्ता कपिलेनैषा देवी नागैः सुसेविता। अप्ला) वयत् सागरीणां भस्मानि द्विजनन्दन॥४८॥
तस्याः संस्पर्शमात्रेण तनयाः सगरस्य ते। यमलोके चारुरूपा बभूवुरमितौजसः॥४९॥
पश्यतां यमदूतानां ते वै दिव्यवपुर्धराः। वियत्पथैर्विमानस्था अप्सरोगणसेविता॥५०॥
गीयमानगुणा देवैर्युयुः स्वर्गं त एकदा। विमुक्तबन्धना दैवादिव पक्षिगणाः क्वचित्॥५१॥
राजा भगीरथश्चापि पुरे चक्रे महोत्सवान्। ततो नागालये देवी ख्याता भोगवतीति सा॥५२॥
महातलमतीत्यापि ययौ पातालमेव च। तत्रानन्तं समासाद्य सहस्रशिरसं प्रभुम्॥५३॥
लीनाभूत् सलिले गङ्गा ब्रह्माण्डं यत्र भासते। इत्येवं कथितं तुभ्यं यत् पृष्टं भवता मम॥५४॥

शुक कहते हैं—हे द्विजनन्दन! कपिल के यह कहने पर देवी गंगा ने नागगण से सेविता होकर सगरपुत्रों की भस्म को प्लवित किया। उनके जलस्पर्श मात्र से सगरपुत्रगण यमलोक में अमित कान्ति सुन्दर देह हो गये। यमदूतों के समक्ष उन्होंने दिव्य मूर्त्ति धारण करके विमानारोहण किया। वे बन्धनमुक्त पक्षीगण के समान एक साथ आकाश में उठ गये। उनकी स्वर्गगति हो गयी। अप्सराओं ने उनकी सेवा किया तथा देवगण उनका गुणकीर्त्तन करने लगे। तदनन्तर राजा ने भी अपनी नगरी में महान् महोत्सव किया। देवी गंगा नागलोक में भोगवती नाम से प्रख्यात हो गयीं। गंगा ने भूतल का अतिक्रमण किया। वहां सहस्र शिर वाले अनन्तदेव का दर्शन किया। उनके ऊपर ब्रह्माण्ड स्थित था। वहां गंगादेवी जल में लीन हो गयीं। हे द्विज! यह जो मुझसे पूछा गया था, वह मैंने कह दिया।।४८-५४।।

गङ्गा सुरनदी पुण्या यथायाता धरातलम्। (इदमाख्यानमायुष्यं यशस्यं वंशवर्द्धनम्॥५५॥
धन्यं धर्म्यं शोकहरं दुःखसागरशोषकम्। मङ्गलं परमं दिव्यं गङ्गावतरणं द्विज॥५६॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः इदमाख्यानमुत्तमम्)। पठेयुः श्रवणं कुर्य्युर्लभेरन् परमाङ्गतिम्॥५७॥
स्त्रियः शूद्राश्च शृणुयुर्लभेयुर्गतिमुत्तमाम्। कूपारामतड़ागादिवृक्षमन्दिरकर्म्मसु॥५८॥
अशौचान्ताद्वितीयेऽह्नि सर्व्वेषु शुभकर्म्मसु। पठेच्च शृणुयाच्चैतदाख्यानं पुण्यमुत्तमम्॥५९॥
(प्रायश्चित्तानि पापेषु विपत्तौ धनबन्धवः। सम्पत्तौ धर्म्मरूपञ्च आख्यानमिदमुत्तमम्॥६०॥

तृतीयायान्तु वैशाखे शुक्लायामक्षये दिने॥६१॥
ज्यैष्ठे दशहरातिथ्यां गङ्गां संपूज्य यत्नतः। पठेद्वा शृणुयाद्वापि आख्यानमिदमब्रवीत्॥६२॥
ग्रहपीड़ासु घोराषु जलाग्निपीड़नेषु च। पठेद्वा शृणुयाद्वापि इदमाख्यानमुत्तमम्॥६३॥
(इमे एकादशाध्याया द्वाविंशतिरथापि वा। अगङ्गदेशे विज्ञाय निकटं मरणं जनः॥६४॥
पठेद्वा शृणुयाद्वापि इदमाख्यानमुत्तमम्)। आजन्मगङ्गास्नानस्य फलमाप्य स वै जनः॥६५॥

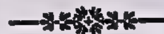
हे द्विज! पवित्र देवनदी गंगा की यह अवतरण कथा शोकहारी, दुःखसागर को सुखा देने वाली, वंशवृद्धि करने वाली, यशप्रद, आयुप्रद, धन्य तथा परममंगलमयी हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इस उपाख्यान का श्रवण तथा पाठ करके परमगति प्राप्त करते हैं। स्त्री तथा शूद्र भी इसका श्रवण करके वैसी ही गति पाते हैं। कूप, तड़ाग, उपवन, वृक्ष, मन्दिरों की प्रतिष्ठा के समय, अन्य शुभ कर्मकाल में, वृषोत्सर्ग के समय, ग्रहों की विपरीत स्थिति में, वृष्टि, अग्नि, उत्पात के समय यह उपाख्यान पढ़े तथा सुने। जो अगंगदेश निवासी मृत्यु आसन्न जानकर एकादशवें अध्याय अथवा २२वें अध्याय का यह उत्तम आख्यान सुनेगा, वह पातक, महापातक युक्त होकर भी आजन्म गंगास्नान का तथा गंगा में मृत्यु का फल पायेगा।।५५-६५।।

गङ्गान्तर्जलमृत्योस्तु फलमाप्नोति मानवः।
श्रुतं त्वया शुचितरचेतसा मुने (सुरापगा चरितमपूर्व्वमुत्तमम्।
सुरासुरैर्दिवि भुवि गेयमर्थदम् मयोदितं मतिपठनानुरूपतः॥६६॥
कृते युगे शुभमति भिर्यदर्ज्यते द्वितीयके किल यजता यदर्ज्यते।
तृतीयके जलकुसुमैर्यदर्च्चनात्) सुरापगाजलकणतः कलौ तु तत्॥६७॥

यह आख्यान पापों का नाशक है। हे मुनिवर! स्वर्ग तथा मृत्यु लोक में सुर-असुर द्वारा गाया अपूर्व उत्तम देवनदी का चरित्र अपनी मति के अनुरूप तुमसे कहा, तुमने भी एकाग्रता से श्रवण किया। अब यह जानों कि सत्ययुग में तप का जो फल है, त्रेता में जो यजन फल है, द्वापर में पुष्प-चन्दन से जनार्दन की अर्चना का जो फल है, वह सभी फल कलिकाल में गंगा के जलकण स्पर्श से मिल जाता है।।६६-६७।।

यदोच्यते गिरिवरकन्यकेत्यसौ शिवं पतिं समगमदित्यसौ तदा।
यदा पुनर्दिवि सुरसंघकन्यका तदोच्यतेऽनलवनिता गुहप्रसूः॥६८॥
यदा पुनर्हरिपदसम्भवा शिवा तदा पतिं खमुपगता व्यराजत।
यदा पुनर्मुनितनयेति कथ्यते तदाऽभवन्नृपवनितैव भीष्मसूः॥६९॥
यदा पुनारविकुलराजन्यका तदा गता जलनिधिमेव सत्पतिम्।
इतीदृशीह्य नियतरूपिणी शिवा शिवं गता बहुतररूपवल्लभम्॥७०॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे सगरपुत्रोद्धारो नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।



जब गंगा को गिरिवर कन्या कहते हैं, तब उनके स्वामी शिव हैं। जब स्वर्ग की देवनन्दिनी कहें, तब ये

अग्निभार्या एवं स्कन्दमाता हैं। जब ये विष्णुपद से उद्भूत कही जायें तब ये अपनी गतिलाभ करती हैं। ये जह्नुकन्या होकर राजपत्नी (शान्तनु की) तथा भीष्मजननी हो जाती हैं।

भागीरथी कही जाने पर समुद्र रूपी सत्पति लाभ करती हैं। ये अनियत मूर्त्तिधारी होकर अनेक मूर्त्तिधारी शिव को ही पति रूप से प्राप्त करती हैं।।६८-७०।।

।।द्विपंचाशत्तम अध्याय समाप्त।।



त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गौरी जन्म, विवाहादि

जैमिनिरुवाच

उक्ता त्वया शिवं प्राप्ता गङ्गा सत्यर्द्धरूपिणी। उमायाश्च शिवप्राप्तिं वद ब्रह्मन् महामते॥१॥

जैमिनी कहते हैं—हे महामते!, ब्रह्मन्! सती की अर्द्धरूपा गंगा ने जैसे शिवप्राप्ति की, वह आपने कहा। अब उमा की शिवप्राप्ति को कहें।।१।।

ऋषिरुवाच

सत्यां गतायां त्रिदिवं सुषुवे मेनका पुनः। अन्यां दुहितरं चारुगुणशीलसमन्विताम्॥२॥
ज्वलत्कनकगौराङ्गीं द्विभुजां चारुलोचनाम्। तस्यां भवन्त्यां मेनाद्याः सर्व्वा गङ्गाशुचं जहुः॥३॥
हिमालयगृहे सा तु रराज किल जैमिने। कलेव शशिनः शुक्ले वर्द्धमाना दिने दिने॥४॥
कदाचिन्नारदो देव स्तत्रान्तःपुरमागतः। निर्ज्जने जगदे सर्व्वां मेनकायै सतीकथाम्॥५॥
तच्छ्रुत्वा मेनका देवी मुनेर्वचनमर्थवत्। मेने शिवां मूलरूपामजां शिवशिवामिति॥६॥
नारदश्च ततो गत्वा शैलराजमथाब्रवीत्।

ऋषि कहते हैं—सती के स्वर्गवास के उपरान्त मेनका ने चारुगुणशीला, तप्त स्वर्णवर्णा, चारुनेत्रा, द्विभुजा अन्य एक कन्या को जन्म दिया। इसका जन्म होने पर मेनका आदि सबने गंगा का शोक विस्मृत कर दिया। हे जैमिनि! क्रमशः यह कन्या हिमालय के गृह में नित्य प्रति बढ़ने लगी, जैसे चन्द्रकला शुक्लपक्ष में नित्य वर्द्धित होती है। एक बार देवर्षि नारद वहां अन्तःपुर में आये। उन्होंने एकान्त में हिमालय की पत्नी मेनका देवी से सती का समस्त वृत्तान्त कहा, मुनिराज की बात सुन कर मेनका ने समझ लिया कि उनकी कन्या भवानी अनादि प्रकृति हैं।।२-६।।

नारद उवाच

कन्या ते शैलराजेन्द्र जाता कमललोचना। दानयोग्यापि भूतैव कस्मै देयेयमिष्यते॥७॥

तदनन्तर नारद ने शैलराज से कहा—"हे शैलराजेन्द्र! आपको कमलोचना कन्या प्राप्त है। ये अब कन्यादान योग्य हो गई हैं। इसे आप किस वर को प्रदान करना चाहते हैं?"।।७।।

हिमालय उवाच

इयं मम सुता देव तपस्यति वनान्तरे। योग्यं पतिं परिप्राप्तुं स्वयमेव गुणान्विता॥८॥
पूर्व्वलब्धपतिर्योऽस्याः स एवेह भविष्यति। किन्नस्तत्रास्ति कर्तृत्वं कन्यावरसमागमे॥९॥

हिमालय कहते हैं—मेरी यह कन्या गुणवान्, अनुरूप पति हेतु वन में तपस्यारत है। पूर्व जन्म में जो पति थे, वे ही इस जन्म में भी इसके पति होंगे। अतएव कन्या-वर मिलन विषय हेतु हमारा प्रयत्न व्यर्थ है।।८-९।।

नारद उवाच

यदुक्तं तत्सत्यमेव तत्रोद्योगी भवेत् पुमान्। अनुद्योगन्तु पुरुषं ग्रसते कार्य्यराक्षसः॥१०॥
भवान् पिता सुता सा ते सत्पतिं लभते यथा। कन्यादानफलं प्राप्तुं तत्रोद्योगी तथा भव॥११॥
यस्तु लब्धव्यलाभेन नोद्युङ्क्ते गृहिणां कूधीः।
तस्य किञ्चित् फलं नास्ति स गृही नापि कथ्यते॥१२॥
अतएव भवान् स्वस्या दुहितुर्वरमेषयः। ब्राह्मणैर्मन्त्रिभिश्चैव तत्परामर्शनं कुरु॥१३॥

हिमालय उवाच

प्रभो त्वमेव तत्वज्ञो दुहितुर्मे वरं वद। कस्मै देया च मे कन्या कं प्राप्ता सुखिनी भवेत्॥१४॥

नारद कहते हैं—हे शैलराज! आपने जो कहा, वह सत्य अवश्य है, तथापि पुरुष के लिए प्रयत्न करना उचित है। उद्यमशून्य पुरुष के कार्य का राक्षस ग्रास कर लेते हैं। जब आप उमा के पिता हैं, तब आपका कर्त्तव्य यह है कि कैसे वह पतिलाभ करे तथा आपको कन्यादान फल मिले, यह प्रयत्न करिये। "जो व्यक्ति यह कहता है कि जो मिलना है, वह मिलेगा" तथा इसी पर निर्भर रहकर प्रयत्न नहीं करता, ऐसी दुर्मति वाला गृहस्थ, जो कोई कर्त्तव्य नहीं करता, नास्तिक है। अतः आप कन्या के वर हेतु ब्राह्मण तथा मन्त्रीगण से परामर्श करें।

हिमालय कहते हैं—हे प्रभो! आप ही एकमात्र तत्वज्ञ हैं। मेरी कन्या के लिए उपयुक्त पात्र बतायें। किसे प्रदान करने पर मेरी कन्या सुखी रहेगी?।।१०-१४।।

नारद उवाच

अस्ति योग्यः पतिः शैल दुहितुस्तव नान्यथा। यं प्राप्तुं यतते पुत्री तव जानाम्यहन्तु तम्॥१५॥
कैलासे वसतिस्तस्य त्वय्यप्येष च तिष्ठति। स महात्मा महावाहुः कुवेरो यस्य किङ्करः॥१६॥
तस्मै देहि सुतां कन्यामर्च्चनीयाय दैवतैः।

नारद कहते हैं—हे शैलराज! जो आपकी कन्या के योग्य हैं, मैं उनको जानता हूं। आपकी पुत्री भी उनको पाने हेतु यत्नतत्पर है। उनका निवास कैलास पर है। वे आपमें भी हैं, वे स्वयं आत्मा हैं। कुबेर उनके किंकर हैं। उन देवपूज्य वर को कन्यादान करें।।१५-१६।।

हिमालय उवाच

तस्मै देया मया कन्या यं त्वं वदसि नान्यथा। तमानय महावाहो शिवं मे कन्ययेप्सितम्॥१७॥

हिमालय कहते हैं—हे महासाधो! मैं उनको ही कन्या प्रदान करूंगा। अब आप पुत्री के संकेतानुसार उन शिव को लाइये।।१७।।

शुक उवाच

तथेत्युक्त्वा ययौ देवो यत्र देवो महेश्वरः। कैलासे तं शिवं नत्वा वचनञ्चेदमब्रवीत्।।१८।।

शुकदेव कहते हैं—देवर्षि नारद ने तथास्तु कहकर जाकर भगवान् महेश्वर को प्रणाम किया तथा उनसे कहने लगे।।१८।।

नारद उवाच

शम्भो तव सती प्राप्ता पूर्णस्तेऽभून्मनोरथः। यत्र गङ्गा सुरैः प्राप्ता तत्रैवेयमुपस्थिता।।१९।।
त्वां प्राप्तुं सा हेमगौरी तपस्यति महावने। तव वार्त्ता महादेव दम्पतीभ्यां न्यवेदयम्।।२०।।
त्वं तत्र कुरु वै वासं गिरिराजे हिमालये।
(त्वान्तु सेविष्यते गौरी तां त्वञ्च लप्स्यसि नान्यथा।।२१।।

नारद कहते हैं—हे शम्भु! आपका मनोरथ पूर्ण हो गया। जहां से देवताओं ने गंगा को प्राप्त किया था। वहीं सती देवी भी हैं। वे हेम-गौराङ्गी आपको पाने हेतु एकान्त वन में तप कर रही हैं। हे महादेव! आपके वृत्तान्त का निवेदन मेनका तथा हिमवान् से मैंने कर दिया। आप पर्वतराज हिमालय में ही निवास करते हैं। गौरी आपकी सेवा करेंगी। आप उनको निःसंदिग्धरूपेण प्राप्त करेंगे।।१९-२१।।

शिव उवाच

गङ्गारूपा सती लब्धा कामन्यां त्वं वदस्युत। यामहं शिरसा धृत्वा बहुमन्ये स्वमेव हि।।२२।।

शिव कहते हैं—हे नारद! मैं जिसे मस्तक पर धारण करके कृतार्थ हूं, मैंने उन सती को पाकर स्वयं को कृतार्थ समझ लिया। तब और किसकी बात कर रहे हैं?।।२२।।

नारद उवाच

सती ते द्विविधा भूता गङ्गोमा च हिमालये।) एका धृता त्वया शीर्षे वामाङ्गेऽमूं धरिष्यसि।।२३।।

नारद कहते हैं—सती द्विधा विभक्त होकर जन्मी हैं। उनका नाम है गंगा तथा उमा। एक को तो आपने मस्तक पर धारण किया है, दूसरी को आप अपने वाम अंग में धारण करेंगे। पूर्वकाल में ये ही आपके वाम अंग में थी। अब इनको आप पुनः वामाङ्ग में स्थापित करिये।।२३।।

पूर्व्वं वामाङ्गगा भार्य्या वामाङ्गेऽद्यापि लभ्यताम्। एवमुक्त्वा ययौ देवो मुनिर्नारदसंज्ञकः।।२४।।
हिमालयं ययौ शम्भुस्तपस्यासक्तमानसः। तपस्यन्तीं सतीं प्राह विप्ररूपेण जैमिने।।२५।।

शुक कहते हैं—हे जैमिनी! देवर्षि नारद यह कहकर चले गये। तब शंभु ने हिमालय पर तपस्या हेतु जाने को कह कर एक छद्म ब्राह्मण का वेष धारण किया तथा तपस्याकारी सती से जाकर उन्होंने कहा।।२४-२५।।

शिव उवाच

कासि कस्यासि रम्भोरु किमर्थं वा तपस्यसि। नायं तपस्याकालस्ते सुकुमार्य्याः सुशोभने।।२६।।

छद्म ब्राह्मण कहते हैं—हे रम्भा के समान उरू वाली! तुम कौन हो? तुम कौन हो? किस निमित्त से तप कर रही हो? तुम तो अत्यन्त सुकुमारी हो। इससे प्रतीत होता है कि यह समय तुम्हारे तपस्यार्थ उचित नहीं है।।२६।।

देव्युवाच

अहं हिमालयसुता शिवमीप्सुस्तपश्चरे। अहं दाक्षायणी पूर्व्वं त्यक्तदेहा द्विजोत्तम॥२७॥

देवी कहती हैं—हे द्विजप्रवर! मैं हिमालय की पुत्री हूं। भगवान् शिव की प्राप्ति हेतु तपश्चरण कर रही हूं। मैं पूर्वजन्म में दक्ष प्रजापति की कन्या थी। तब शिव-निन्दा न सुन सकने के कारण देहत्याग कर दिया।।२७।।

शिव उवाच

कथं शिवं श्मशानस्थं कुरूपं पतिमीहसे। इन्द्रादिं वा वर्जयसि गुणसम्पत्समन्विता॥२८॥
कथमेतत्तपस्ते वा शिवं प्राप्तुं पतिं सती। रूपस्वभाववशगः शिवस्तेऽस्तु पदानतः॥२९॥

विप्र कहते हैं—हे गुण सम्पदा समन्विता! तुम इन्द्रादि देवगण का त्याग करके श्मशानवासी कुरूप शिव को पति हेतु पाने का यत्न क्यों कर रही हो? कठोर तपःश्चरण क्यों कर रही हो? तुम्हारे रूप तथा स्वभाव के वश में होकर शिव तुम्हारे पद में अवश्य झुक जायेंगे।।२८-२९।।

देव्युवाच

मैवं मैवं ब्रह्मचारिन् वद मां शिवनिन्दनम्। तच्छ्रुत्वाहं पुरा देहं जहौ कस्माद् ब्रवीषि तत्॥३०॥
स्तुहि शम्भुं महेशानं प्रायश्चित्तं तदस्तु नौ। शरीरं न त्यजे येन श्रुतया शिवनिन्दया॥३१॥

देवी कहती हैं—हे ब्रह्मचारी! मैंने इसी शिवनिन्दा के कारण पूर्व में देहत्याग किया था। मेरे समक्ष शिवनिन्दा न करें। अब महेश्वर शिव का स्तव करिये। वही हमारे पाप का प्रायश्चित्त होगा, मैं भी शिवनिन्दा सुनने के पाप से देहत्याग करके मुक्त हो जाऊं।।३०-३१।।

शिवरूपब्राह्मण उवाच

शिव हर गिरिशेश त्र्यक्ष विश्वेश देव प्रमथगणविहारिन् सर्व्वदानन्दरूप।
सकलभुवनगोप्ता त्वं भवान् कालरूपी निखिलवृजिनहारिन् देवदेव प्रसीद॥३२॥

विप्र (ब्राह्मण) कहता है—हे त्रिलोचन! आप तो त्रिभुवनपालक हैं। हे शिव, विश्वेश्वर! आप प्रथमगण विहारी, सदा आनन्दरूप, कालरूप तथा पापहारी हैं। हे देवदेव, गिरीश, ईश्वर, हर प्रसन्न हो जायें।।३२।।

देव्युवाच

ब्रह्मचारिन्नमस्तेस्तु शिवज्ञाय शिवाय ते। ब्रह्मचारिस्वरूपेण भवानेव शिवो मतः॥३३॥
प्रसीद देवदेवेश त्वां नमस्यामि भक्तितः॥३४॥

देवी कहती हैं—हे ब्रह्मचारी! मैं तो आपको साक्षात् शिवरूपेण मान रही हूं। आप शिवज्ञ तथा साक्षात् शिव हैं। आपको प्रणाम। हे देवदेवेश्वर! मैं भक्ति के साथ आपको प्रणाम निवेदन करती हूं। मैं भक्तिपूर्वक प्रणति निवेदन कर रही हूं। आप प्रसन्न हो जाइये।।३३-३४।।

शुक उवाच

इत्थं प्रणामयुक्तायामुमायां स महेश्वरः। स्वरूपं जगृहे सद्यो वृषराजविराजितः॥३५॥
मां त्वं प्राप्स्यसि नास्त्यत्र सन्देहस्तु कदाचन। इत्युक्त्वान्तर्दधे शम्भुरुमा पित्रालयं ययौ॥३६॥
शिवोप्यथ महायोगी गङ्गां प्राप्य शिरःस्थिताम्। भार्य्यार्थे निःस्पृहस्तत्र गिरिसानौ समादधे॥३७॥

शुक कहते हैं—भगवती उमा के प्रणाम करते ही महेश्वर देव ने तत्क्षण अपने स्वरूप को धारण किया। वे वृषराजस्थ थे। उन्होंने पार्वती से कहा—हे सुन्दरी! तुम मुझे प्राप्त होगी। इसमें सन्देह नहीं है। यह कहकर प्रभु शिवशंकर वहीं अन्तर्हित हो गये तथा उमा अपने पितृगृह चली गयीं। तत्पश्चात् महायोगी शिव मस्तक पर स्थित गंगा के साथ भार्या प्राप्ति के प्रति निःस्पृह होकर वहां पर्वत शिखर पर विराजमान हो गये।।३५-३७।।

तदा नारदवाक्येन ज्ञात्वा शैलेश्वरः शिवम्। शिवस्य परिचर्य्यायै उमां पुत्रीं दिदेश ह॥३८॥
पित्राज्ञया स्वाभिमतं सिषेवे यत्नतः शिवम्। न च तां कामयाञ्चक्रे महायोगरतः शिवः॥३९॥
पूर्व्वं ब्रह्मा स्वां तनुजां सन्ध्याख्यामुपगम्य ह। तदा शिवेन हसितस्तत एव ह्यसूयया॥४०॥
कन्दर्पं प्रेषयामास शम्भोर्योगविघातकम्। कन्दर्पस्तु समागत्य पुष्पधन्वा स्त्रियान्वितः॥४१॥
सन्दधे पुष्पधनुषि मोहनादीनिषून्मुने। मूर्त्तस्तत्र वसन्तोभूद्विलसत्पुष्पसञ्चयः॥४२॥
तद्दृष्ट्वा तु महादेवश्चाञ्चल्यारम्भमात्मनि। तत्कारणं मृगयमानो मण्डलीकृतकार्म्मुकम्॥४३॥
कामं ददर्श पार्श्वस्थं दृक्पाताद्भस्म चाकरोत्। कन्दर्पे भस्मसाद्भूते देव्या अङ्गेषु गच्छति॥४४॥
अनङ्ग इति विख्यातिं जगाम पञ्चमार्गणः। कामदेहस्य भस्मानि लिलेपाङ्गे महेश्वरः॥४५॥

तब शैलेश्वर हिमालय ने नारद के वाक्य के अनुसार शिव की सेवा हेतु अपनी पुत्री उमा को नियुक्त किया। वे भी पिता के आदेशानुरूप यत्नतः अभीष्ट पतिसेवारत हो गयीं, तथापि उन महायोगी भगवान् ने उनसे पत्नित्व कामना नहीं किया। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने जब सन्ध्या नामक अपनी ही कन्या से रमणरत होना चाहा, तब शिव यह देखकर हंस पड़े थे। अब ब्रह्मा ने अवसर पाकर असूया (ईर्ष्या) के कारण शिव की समाधि को भंग करने हेतु कन्दर्प (काम) को भेजा।

हे जैमिनी! पुष्पधन्वा कन्दर्प अपनी पत्नी रति के साथ वहां आया तथा उसने सम्मोहन बाण का सन्धान शिव के प्रति किया। कुसुम की शोभा के साथ मूर्त्तिमान वसन्त भी वहां प्रकट हो गया। महादेव में किंचित चंचलता आने लगी। महादेव ने इसका अनुभव करके उसका कारण जानने हेतु जब देखा, तब पार्श्व में कन्दर्प को धनुष पर प्रत्यंचा खींचे स्थित पाया। भगवान् ने उसे दृष्टिपात मात्र से भस्मीभूत कर दिया। महेश्वर ने उसकी भस्म को अपने अंगों पर लिप्त कर दिया। तभी देवी ने उनको कामभाव में भरकर देखा, इससे प्रभु शिवशंकर में भी कामभाव का उद्रेक हो गया।।३८-४५।।

देव्या सकामया दृष्टो बभूव कामभाववान्। सकामं वीक्ष्य गिरीशं ब्रह्माद्या जहृषुस्तदा॥४६॥
हिमालयः सुतां तस्मै दातुं समुपचक्रमे। ब्रह्मविष्णवादिदेवानां पुरतः स महेश्वरः॥४७॥
उपयेमे उमां देवीं विधियुक्तेन कर्म्मणा। शिवः प्राप्य स्त्रियं स्फीतां पार्व्वतीं स्वस्थलं ययौ॥४८॥

देवगण तथा ब्रह्मा ने शम्भु को जब सकाम भावयुक्त देखा, तब वे आनन्दित हो गये। उस समय ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं के सामने ही शिव ने उमा से विवाह सम्पन्न किया तथा पत्नी के साथ स्वस्थान चले गये।।४६-४८।।

तारकोपद्रुता देवा योद्धुकामा महेश्वरम्। शिवतेजःसमुद्भूतं सेनापतिमयाचत।।४९।।
स तेषा कार्य्यसिद्ध्यर्थं मेरुमूले इलावृते। उमामुपजगामाथ दिव्यं वर्षशतं ययौ।।५०।।

तदनन्तर जब देवता तारकासुर से त्रस्त हुए, तब वे महेश्वर के पास जाकर उनके वीर्य से उत्पन्न सेनापति हेतु याचना करने लगे। प्रभु भी देवताओं की कामना सिद्धि हेतु सुमेरु पर्वत की घाटी के इलावर्त्त देश में पार्वती के साथ रमण करने लगे। इस प्रकार दिव्य वर्षमान से १०० वर्ष व्यतीत हो गये।।४९-५०।।

तद्दृष्ट्वा दुःसहं कर्म्म भीता ब्रह्मादिदेवताः। अनर्थं चिन्तयामासु स्तयोर्मैथुनकर्म्मणि।।५१।।
यस्य मैथुनकार्य्येषु दिव्यं वर्षशतं गतम्। तस्माज्जातः सुतः कुत्र धारणीयो भविष्यति।।५२।।
इति सञ्चिन्त्य वै देवा तयोस्तां मैथुनक्रियाम्।
दर्शयित्वा द्विजान् कांश्चित् त्याजयामासुरोजसा।।५३।।
विप्रान्दृष्ट्वा तदा देवी व्रीड़िता पिदधेऽशुकम्। देवीप्रीत्यै स्थलं तत्तु शिवशप्तं ततोवधि।।५४।।
पुंसाभगम्यं समभूत् पुंसां स्त्रीत्वकरं द्विज। स्थानभ्रष्टं शिवस्तेजस्तत्याज पृथिवीतले।।५५।।

यह (विलम्ब) देखकर ब्रह्मादि देवता अनर्थ की चिन्ता से व्याकुल तथा भयग्रस्त हो गये। उन्होंने सोचा कि शतवर्षव्यापी उमा-महेश्वर के विहार से जो पुत्र जन्म होगा, उसे कहां धारण किया जा सकेगा? यह देखकर देवगण ने उनकी मैथुन क्रिया को रोकने हेतु वहां कुछ द्विजों को भेजा। इस विप्रदर्शन से लज्जित भगवती ने वस्त्र पहना। हे जैमिनी! तब से वह स्थान भगवान् शिव ने देवी की प्रसन्नता के लिए पुरुषों के लिए अगम्य कर दिया। वहां जाने वाला पुरुष तत्काल स्त्री हो जाता है।।५१-५५।।

तत्सर्व्वव्यापकं भूतमग्निः संजगृहे च तत्। अग्निस्तु सर्व्वदेवानां सम्मतेन च तत्कियत्।।५६।।
गङ्गायै धारयामास सा च गङ्गा सुदुर्द्धरम्। शैवं तेजस्तु तत्याज (कैलासे शरकानने।।५७।।
तस्मात् प्राणी समुत्तस्थौ सेनानीर्दीर्घलोचनः। महावलो महासत्त्वः शिवपुत्रो महाभुजः।।५८।।

तब भगवान् शिव ने अपना स्थान भ्रष्ट वीर्य पृथिवी पर छोड़ा। अग्नि ने उसे धारण तो कर लिया, तथापि उस सर्वव्यापी तेज को धारण करने में दुःसह जानकर देवगण की सम्मति से उसे गंगा को धारण करने हेतु कहा। गंगा भी उसे अधिक धारण न कर सकीं तथा उन्होंने उसे कैलाश पर्वत पर स्थित शिव कानन में छोड़ दिया। वहीं से विशाललोचन, महाबली, महाबाहु, महासत्वसम्पन्न, शिवकुमार देवसेनानी, स्कन्दगुह उत्पन्न हो गये।।५६-५८।।

ज्वलत्कनकगौराङ्गो नानाभरणभूषणः। सेनापतित्वे देवैः स ह्यभिषिक्तो बभूव ह।।५९।।
कृत्तिकादिगवां षणां मातॄणां स पयः पपौ। तेनासौ कार्त्तिकेयादिनामको गूहनाद्गुहः।।६०।।
षड्भिर्वक्त्रैः पपौ दुग्धं तेन षड्वक्त्र उच्यते। ददुः शिवादयस्तस्मै शस्त्रकास्त्रादिवाहनम्।।६१।।
तेन तेषां मृतः शत्रुस्तारकाख्यो महावलः। उमया सह देवोसौ) कैलासशिखरेऽवसत्।।६२।।
तत्र देहार्द्धकं शम्भोर्जहार खलु पार्व्वती। शिवविच्छेदलेशञ्चाप्यसहन्ती द्विजर्षभ।।६३।।

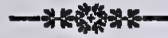
तत्रस्थां पार्व्वतीं देवीं पृच्छतीं स महेश्वरः। जगाद मन्त्रतन्त्राणि सर्व्वदैवतकानि च॥६४॥

देवगण ने उन तप्तचामीकरवर्ण नाना अलंकार शोभित कुमार को सेनापति पद पर अभिषिक्त किया। उन्होंने कृत्तिकादि छः मातागण का स्तनपान शिवकानन में किया था, तभी उनका कार्तिकेय नाम हुआ। निगूहन के कारण वे गुह कहलाये। छः मुखों से छः मातागण का स्तनपान करने के कारण षडानन कहे गये। शिव आदि देवताओं ने उनको अस्त्र-शस्त्र तथा वाहनादि प्रदान किये। कार्त्तिकेय ने देवशत्रु तारकासुर का वध किया, तब देवाधिदेव शिव उमा के साथ कैलास पर निवास करने लगे। हे द्विजवर! पार्वती के लिए शिववियोग असह्य था, अतः उन्होंने शिव के देह के अर्द्धांश का हरण कर लिया। वहीं पर महेश्वर ने प्रश्न करने वाली उमा से सभी मन्त्रों तथा तन्त्रों का वर्णन किया।।५९-६४।।

इत्येवं भवते प्रोक्तं यत् पृष्टोऽहमिह त्वया। येन लेभ उमां देवीं सतीं पूर्व्वप्रियां शिवः॥६५॥

इदमाख्यानमिष्टार्थप्रापकं पुण्यदं शुचि। पाठ्यं श्राव्यञ्च जप्यञ्च किमन्यत् कथ्यते तव॥६६॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे उमालाभस्त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।



हे द्विज! किस प्रकार से प्रभु शिवशंकर ने पुनः सतीदेवी को प्राप्त किया था, वह प्रसंग मैंने कह दिया। जो इस पुण्यप्रद आख्यान का पाठ, श्रवण किंवा जप करता है, उसे उसके अभीष्ट की प्राप्ति होती है। अब क्या सुनना चाहते हो, कहो?।।६५-६६।।

।।त्रिपंचाशत्तम अध्याय समाप्त।।



चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गंगाकृत्य वर्णन

जैमिनिरुवाच

उक्ता त्वया महापुण्या गङ्गा त्रिपथगामिनी। गङ्गायां यत्तु कर्त्तव्यमकर्त्तव्यं वदस्व तत्॥१॥

त्वद्वक्त्रवाक्यपीयूषविरतिर्नोपलभ्यते। सदैव भवतो वाक्यमुद्गिरत्यर्थमच्युतम्॥२॥

जैमिनी कहते हैं—हे गुरुदेव! आपने महापुण्यप्रदा त्रिपथगा गंगावतरण प्रसंग कहा। अब यह कहें कि उसके प्रति कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य क्या है? आपकी वाक्यसुधा के पान से तृप्ति नहीं हो पा रही है। आपका वाक्य अक्षय अर्थ का प्रस्रवण रूप है।।१-२।।

व्यास उवाच

एवं पृष्टो जैमिनिना महाभागवतो मुनिः। हर्षितेनात्मना प्रोचे जैमिनिं शिष्यमात्मनः॥३॥

व्यासजी कहते हैं—जैमिनी द्वारा यह पूछे जाने पर महाभागवत मुनि शुक हर्षित हो गये। उन्होंने प्रसन्न चित्त होकर अपने शिष्य जैमिनि से कहा।।३।।

शुक उवाच

शृणु ब्रह्मन् महापुण्यान् गङ्गाधर्म्मान्मनोरमान्। गङ्गास्नानं फलं येषां श्रवणेनोपजायते॥४॥
हिमालयाच्छैलराजाद्गङ्गासागरसङ्गमः। देशः परमपुण्योऽसौ यत्परो नैव वर्त्तते॥५॥
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका। पुरी द्वारावतीचैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥६॥
अयोध्या रामनगरी मथुरा कृष्णपालिता। माया च कामरूपाख्या काशी शिवपुरी न भूः॥७॥
शिवकाञ्ची विष्णुकाञ्ची काञ्चीयुग्मञ्च सम्मतम्। अवन्ती च समुद्रस्य तीरे श्रीपुरुषोत्तमः॥८॥
द्वारावती समुद्रस्य मध्ये कृष्णकृता पुरी। एतास्तु पृथिवीमध्ये न गण्यन्ते कदाचन॥९॥

शुक कहते हैं—अब महान् पुण्यप्रद गंगाधर्म का श्रवण करो। इसके श्रवण मात्र से गंगास्नान रूपी फल प्राप्त हो जाता है। हिमालय से लेकर गंगासागर पर्यन्त जो देश हैं, उनकी अपेक्षा पवित्र स्थान कोई नहीं है। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्ती तथा द्वारावती मुक्ति स्थल हैं। अयोध्या राम की, मथुरा कृष्ण की नगरी है। माया कामरूप है। काशी शिवपुरी है। काञ्ची दो हैं—यथा शिवकाञ्ची तथा विष्णुकाञ्ची। अवन्तिका समुद्रतीर्थस्थ श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र है। द्वारावती समुद्रमध्यस्थ कृष्णनिर्मित पुरी है। ये सातों पुरीयां पृथिवी में नहीं कही गयी हैं।।४-९।।

श्रीरामधनुरग्रस्था अयोध्या सा महापुरी। मथुरा केशवप्रेष्ठा सुदर्शनविधारिता॥१०॥
माया च शिवलिङ्गस्था ब्रह्मविष्ण्वादिसेविता।
काशी (शिव)त्रिशूलस्था काञ्चौ हरिहरात्मकः॥११॥
वामदक्षिणहस्ताभ्यां दधार द्विजपुङ्गव। अवन्तिका पुरी दिव्या हरेः पद्मोपरिस्थिता॥१२॥
(पुरी द्वारावती विष्णोः पाञ्चजन्योपरिस्थिता।)
(एताः सर्व्वा मुक्तिदात्र्य एकत्र गणिता सुरैः॥१३॥
एकतो वै सुरधुनी शिवशीर्षोपरिस्थिता)। एतां धर्त्तुं महादेवः स्वशिरः सार्द्धयोजनम्॥१४॥
अष्टहस्ताधिकञ्चैव विशालं विदधे स्वयम्। दीर्घञ्च योजनशते किञ्चिन्न्यूने चकार ह॥१५॥

महापुरी अयोध्या तो श्रीरामचन्द्रदेव के धनुषाग्रभागस्थ है। केशवप्रिय मथुरा नगरी सुदर्शन चक्र द्वारा धृत है। ब्रह्मा-विष्णु सेवित मायापुरी शिवलिङ्ग पर स्थित है। काशी शिव के त्रिशूल पर स्थित है। शिवकाञ्ची तथा विष्णुकाञ्ची उनके दक्षिण तथा वाम हस्त पर स्थित है। दिव्यपुरी अवन्तिका हरिपद्म पर स्थित है। द्वारावती पुरी विष्णु के पाञ्चजन्य पर स्थित है। इन समस्त नगरियों को देवगण मोक्षदा मानते हैं, वैसे ही शिवमस्तकस्थ सुरधुनि गंगा भी मोक्षदा हैं। इनको धारण करने हेतु महादेव ने अपने शिर को आधा योजन तथा आठ हाथ विस्तृत किया तथा दीर्घता में अपने शिर को सौ योजन से कुछ ही कम विशाल किया।।१०-१५।।

तस्माद्गङ्गाश्रया देशा नैव पृथ्वी कदाचन। विश्वात्मनो महेशस्य शिर एव हि ते मताः॥१६॥
इयञ्चालकनन्दाख्या गङ्गा दक्षिणवाहिनी। क्वचित्पूर्व्वस्रवा गङ्गा क्वचित् पश्चिमवाहिनी॥१७॥
क्वचिच्चाप्युत्तरस्रोताः क्वचिद्दक्षिणवाहिनी। दक्षिणायाः शतगुणा गङ्गा तु पूर्व्ववाहिनी॥१८॥
ततः शतगुणा प्रोक्ता गङ्गा पश्चिमवाहिनी। तत्सहस्रगुणा प्रोक्ता गङ्गाचोत्तरवाहिनी॥१९॥

गङ्गास्थानस्य सर्व्वस्य तारतम्य विधौ मम। शङ्का हि जायते विप्र सर्वतो मुक्तिदायिनी॥२०॥

इसलिए गंगाश्रित देश कदापि पृथिवी के अंगरूप गण्य नहीं किये जाते। ये सभी विश्वमूर्ति शंकर के मस्तक रूप हैं। अलकनन्दा नाम्नी गंगा तो दक्षिणवाहिनी है। अन्यथा वह कहीं पूर्व, कहीं पश्चिम, कहीं उत्तर तो कहीं दक्षिणवाहिनी हो जाती है। दक्षिणवाहिनी से सौगुणित है पूर्ववाहिनी।

उससे १०० गुणित है पश्चिमवाहिनी। उससे भी सहस्रगुणित फलप्रद पुण्यमयी है उत्तरवाहिनी। हे विप्र! सर्वतोमुक्तिदायिनी गंगा भारत के सभी स्थान के विधान की साक्षीभूता मुक्तिप्रदा है।।१६-२०।।

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं गङ्गा च परदेवता। गङ्गा च वसतिस्थानं गङ्गैव परमा गतिः॥२१॥
गङ्गाकाशवासिनी च गङ्गा च गिरिवासिनी। गङ्गा धरावासिनी च गङ्गा पातालवासिनी॥२२॥

गंगा के समान तीर्थ नहीं है। यह परमदेवता है। यह निवास स्थान हैं। यही परमागतिरूपा हैं। देवी गंगा आकाश, पाताल, पर्वत, पृथिवी-सर्वत्र विराजमान हैं।।२१-२२।।

सर्व एव शुभः कालः सर्वो देशस्तथा शुभः। सर्वो जनस्तथा पात्रं स्नानादौ जाह्नवीजले॥२३॥
अपि कीटपतङ्गाद्या यदि गङ्गाजले मृताः। तेपि त्यक्त्वा कीटतनुं स्वर्गं यान्त्यतिदुर्लभम्॥२४॥
यज्जलस्पर्शमात्रेण सगरस्य सुतास्तु ते। सदापन्नास्तमोभावं सत्कर्म्मरहिताश्च ते॥२५॥
ब्रह्मदण्डहताश्चापि भस्मीभूताङ्गसङ्गतः। चिरकालान्तरश्चापि स्वर्याताः स्फुटदर्शनाः॥२६॥
किं पुनर्ये तु सेवन्ते भक्त्या गङ्गामघापहाम्। गङ्गागङ्गेति यो ब्रूते योजनानां शतैरपि॥२७॥
स मुच्यते सर्वपापैर्विष्णुलोकञ्च गच्छति। आजन्मपापकर्म्माणि यः कुर्य्यात् सर्वदा कुधीः॥२८॥
गङ्गा चेन्मृत्युकालेस्यात्तदा मोक्षस्य किङ्करः। तस्माद्गङ्गा रक्षणीया सर्वयत्नेन जैमिने॥२९॥
गङ्गा चेत्स्यात् परित्यक्ता न त्राणं तस्य वै क्वचित्।

इन गंगा के जल में स्नानादि पुण्य कार्य होते हैं। इसमें देशादेश-कालाकाल-पात्र-कुपात्र का विचार नहीं है। कीट-पतंगादि क्षुद्र जन्तु भी गंगा में मृत होकर सुदुर्लभ स्वर्ग गमन करते हैं। सगर राजा के पुत्र प्रभूत तमःयुक्त थे। पापाचारी थे तथा ब्रह्मशाप से भस्मीभूत होकर भी इनके जलस्पर्श से दीर्घकाल के उपरान्त तत्काल स्वर्ग गमन कर सके। जो भक्तिभाव से इन पापहारी गंगा का सेवन करते हैं, उनकी (सौभाग्य की) बात ही क्या? जो व्यक्ति सौ योजन दूर से भी 'गंगा-गंगा' का उच्चारण करता है, वह सर्वपापरहित होकर मुक्त हो जाता है। उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। जो दुर्मति आजन्म अनेक पाप कर्म करके भी गंगा में मृत होता है, मोक्ष तो उसका दास है। हे जैमिनि! गंगा की रक्षा सर्व प्रयत्न से करनी चाहिए। इनका त्याग कदापि न करे, अन्यथा उसका कहीं ठिकाना नहीं है!।।२३-२९।।

जैमिनिरुवाच

गङ्गाया रक्षणं कीदृक् त्यागस्तस्यास्तु कीदृशः। इति मे संशयं ब्रह्मं श्छेत्तुमर्हसि सर्वथा॥३०॥

जैमिनि कहते हैं—हे ब्रह्मन्! गंगा की रक्षा क्या है, त्याग क्या है? इस सम्बन्ध में मेरे संदेह का निराकरण करिये।।३०।।

शुक उवाच

प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम्। अत्र नारायणः स्वामी नान्यः स्वामी कदाचन॥३१॥

अत्र किञ्चिन्न गृह्णीयात् प्राणैः कण्ठगतैरपि।
तत्र किञ्चिन्न दद्याच्च साक्षात् पात्राय पुण्यवान्॥३२॥
प्रतिग्रहस्याभावे हि दानाभावे हि कल्प्यते। परक्षतिकरं कार्य्यं गङ्गायां नोपयुज्यते॥३३॥
अत्र प्रतिग्रहे राजन् विक्रीता जाह्नवी भवेत्।
विक्रीतायाच्च जाह्नव्यां विक्रीतोऽभूज्जनार्द्दनः॥३४॥
जनार्द्दने च विक्रीते विक्रीतं भुवनत्रयम्। कोऽपि न त्राणकर्त्तास्य निःसम्बन्धप्रसङ्गतः॥३५॥

शुक कहते हैं—गंगा प्रवाह से लेकर (किनारे तक) चार हाथ जो स्थान हैं, उसके स्वामी साक्षात् श्रीहरि हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई स्वामी नहीं है। यह स्थान पुण्यवान् व्यक्ति प्राण जाने की स्थिति हो जाने पर भी न तो ग्रहण करे, किंवा न तो किसी सत्पात्र को दान करे। जैसे लेने वाला जब कोई न हो, तब दान का अभाव स्वयं हो जाता है, वैसे ही गंगा के साथ यह अन्य हेतु क्षतिकर कार्य कदापि संगत नहीं है। हे विप्र! गंगा का प्रतिग्रह अर्थात् उनका विक्रय!। गंगा का विक्रय (यह ४ हाथ भूमि) करते ही जनार्दन भी बिक गये यह समझो। जनार्दन बिके तब समस्त त्रिभुवन बिक गया! ऐसे का त्राणकर्त्ता कोई नहीं है।।३०-३५।।

मिथ्यावाक्यं प्रतिग्राहो दानं साक्षाद्ग्रहीतरि। अपारमार्थिकं वाक्यं जैमिने क्रयविक्रयौ॥३६॥
वस्त्रस्य क्षालनञ्चैव स्वगात्रमलकर्षणम्। कटुवाक्यं शस्त्रपातं परपीड़ाकरं हि यत्॥३७॥
परद्रव्येन पूजाञ्च ग्राम्यधर्म्मञ्च भोजनम्। अशास्त्रकथनञ्चैव अज्ञात्वा कथनं तथा॥३८॥
विना तिलं तर्पणञ्च पादक्षालनमेव च। अपानवायुनिःसारं निष्ठीवनमथापि च॥३९॥
अन्यतीर्थप्रशंसाञ्च जलान्तरप्रशंसनम्। उच्छिष्टक्षेपनञ्चैव दण्डसन्ताड़नं तथा॥४०॥

हे जैमिनि! मिथ्या, कटु, अपारमार्थिक वाक्य कहना, दान, प्रतिग्रह, क्रय-विक्रय, परपीड़ात्मक कार्य, पानी पर शस्त्र से आघात करना, वस्त्र स्फालन (वस्त्र पछाड़ना), अपने शरीर का मल रगड़ कर बहाना, पराये द्रव्य से पूजन, मैथुन, भोजन, अशास्त्रीय वाक्य बोलना, अपान वायु छोड़ना, जूठन फेंकना, दण्ड से पानी पर प्रहार, पैर धोना, थूकना, अभ्यङ्ग भाव से स्नान, अन्य तीर्थ अथवा जल की गंगा के निकट बैठकर प्रशंसा, ये सभी गंगा का त्याग रूप हैं।।३६-४०।।

अभ्यक्तोऽपि न च स्नायाद्गङ्गायां देवमातरि। अभ्यङ्गो द्विविधो वारिसन्तारोथ शिरोऽवधि॥४१॥
तैलावगाहपादान्तः शिरोनिक्षिप्ततैलतः। गङ्गायां शपथं नैव प्राणान्तेपि समाचरेत्॥४२॥

अभ्यङ्ग—दो प्रकार का होता है। पहला है मस्तक को जल से धोना तथा दूसरा है मस्तक से निक्षिप्त पाद पर्यन्त तैल की धारा को धोना। इन दोनों का गंगा में त्याग न करे। गंगा की शपथ न ले, भले ही प्राण चले जायें, उसमें स्वच्छन्द विचरण तथा यह स्थान है, यह उचित स्थान नहीं है, इत्यादि कल्पना न करे।।४१-४२।।

स्वच्छन्दपादनिक्षेप स्थानास्थानविकल्पना। एकवासोऽनेकवासोऽप्यकुशस्वर्णरूप्यकम्॥४३॥
स्नानञ्चापि न वै कुर्य्यादालस्यञ्च तथाविधम्।
शोकं मोहं दुःखचित्तं नास्तिक्यं पापचित्तताम्॥४४॥

लिप्साञ्च विषयादीनां गङ्गातीरेषु नाचरेत्। भाद्रकृष्णचतुर्द्दश्यां यावदाक्रमते जलम्॥४५॥
(तावद्गर्भं विजानीयात्तदूर्द्ध्वं तीरमुच्यते।) सार्द्धहस्तशतं यावद्गङ्गातीरमिति स्मृतम्॥४६॥
तीराद्गव्यूतिमात्रञ्च परितः क्षेत्रमुच्यते)। तीरक्षेत्रमिदं प्रोक्तं सर्वपापविवर्जितम्॥४७॥
शतहस्तं प्रवाहाद्धि गर्भक्षेत्रमिहोच्यते। निरूप्यते तत्र वर्ज्यं सावधानमनाः शृणु॥४८॥

एक वस्त्र, अनेक वस्त्र से स्नान न करे। स्वर्ण तथा चांदी धारण किये बिना स्नान न करे। आलस्य, शोक, मोह, दुःश्चिन्ता, नास्तिकता, विषाद, लिप्सा, पाप चिन्ता का गंगा तट पर परिहार करे। भाद्रमास की कृष्णा चतुर्दशी के दिन जहां तक गंगा का जल जाये, वहां तक गंगा का गर्भ जानना चाहिए। उसके पहले तीर होता है। यह तीर १५० हाथ विस्तृत होता है। तीर से चतुर्दिक् २ कोस स्थान क्षेत्र कहा गया है। यह तीर तथा क्षेत्र सर्वपापशून्य स्थल है। प्रवाह से १०० हाथ तक गंगा का गर्भ क्षेत्र है। वहां क्या-क्या कार्य वर्जित है, यह सुनो।।४३-४८।।

हिंसांद्वेषञ्च कलहं मिथ्यावाक्यं प्रतिग्रहम्। स्थानास्थानविकल्पञ्च अशास्त्रवचनन्तथा॥४९॥
परान्नभोजनञ्चैव परद्रव्योपभोजनम्। शोकं मोहं दुःखचित्तं नास्तिक्यं पापचित्तताम्॥५०॥
भिक्षां लिप्साञ्च चापल्यं परीहासञ्च वर्जयेत्। (जलान्तरस्पर्शनञ्च गर्भक्षेत्रे विवर्जयेत्)॥५१॥

इस गर्भ क्षेत्र में हिंसा, द्वेष, कलह, झूठ बोलना, दान लेना, स्थानास्थान चर्चा, अशास्त्रीय वचन, परान्न भोजन, परिद्रव्योपभोग, शोक, मोह, दुःश्चिन्ता, नास्तिकता, पापभाव, भिक्षा, लिप्सा, चाञ्चल्य तथा परिहास न करे। अशास्त्रीय बातों को कहना, परान्न भोजन आदि न करे।।४९-५१।।

गङ्गातीरे वर्जनीयं कथ्यते द्विजपुङ्गव। मिथ्यावाक्यं शोकमोहनास्तिक्यं पापचित्तताम्॥५२॥
कटुवाक्यं परपीड़ाकरं कार्य्यञ्च वर्जयेत्)। अशास्त्रकथनञ्चैव अज्ञात्वा कथनं तथा॥५३॥
अन्यतीर्थप्रशंसाञ्च जलान्तरप्रशंसनम्। स्थानास्थानविचारञ्च गङ्गातीरे विवर्जयेत्॥५४॥
गङ्गाजलेनोद्धृतेन कुर्य्यात्सर्व्वां जलक्रियाम्। गङ्गातीरस्थितो यस्तु नान्यद्वारि स्पृशेद्यदि॥५५॥
ध्रुवं तेन प्रतिज्ञातं ब्रह्माहमिति नान्यथा। सर्व्वासु देवपूजासु पितृपूजासु चैव हि॥५६॥
महातीर्थे हि गङ्गायां क्षताशौचं न विद्यते। त्यक्तुं मूत्रपुरीषादि गङ्गातीरं विवर्जयेत्॥५७॥
गङ्गाजुष्टदिशश्चैव त्यक्तुं मूत्रमलादिकम्। न व्रजेन्नाचरेच्चैव कदापि द्विजपुङ्गव॥५८॥

या याः सन्निहिता भूम्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः।
पापपुण्यक्रियाणाञ्च तथैव ददते फलम्॥५९॥

हे द्विजपुंगव! गंगातट पर मिथ्या बोलना, शोक करना, मोह, नास्तिकता, पापबुद्धि, कटु वाक्य, अन्य को पीड़ित करना, शास्त्र में जिसे गर्हित कहा गया, ऐसा वाक्य बोलना, बिना जाने किसी बात को बोलना, अन्य तीर्थ प्रशंसा, अन्य जल की बड़ाई तथा स्थानास्थान विचार का वर्जन करे। गंगा से निकाले जल से सभी जलसाध्य कार्य करे। जो गंगा तीर पर अन्य जल स्पर्श नहीं करते, वे वास्तव में ब्रह्म ही हैं। इस गंगा महातीर्थ के सभी देव तथा पितृकार्य में क्षताशौच नहीं होता। गंगा में जिस ओर जल प्रवाह है, उस ओर मल-मूत्रादि न करे। गंगा के साथ के सभी स्थान पवित्र हैं। वहां से कभी अन्यत्र न जाये।।५२-५९।।

नारायणक्षेत्रमध्ये कर्त्तव्यञ्च निरूप्यते। दीक्षाञ्च देवपूजाञ्च जपं गङ्गातटे चरेत्॥६०॥
शुष्कवासः पिधायापि सावित्रीजपमाचरेत्। श्राद्धञ्च तर्पणञ्चैव परोपकारकर्म्म च॥६१॥
द्रव्योत्सर्गमिष्टदेवसंप्रीतिकरणं तथा। पात्रोद्देशञ्च मनसा त्यक्तद्रव्यस्य दापने॥६२॥
स्तवपाठञ्च मौनञ्च नीचालापविवर्जनम्। केवलं वारिपानञ्च कर्त्तव्यं ब्रह्मभावतः॥६३॥
एतानि किल कर्म्माणि क्षेत्रे नारायणे चरेत्॥६४॥

॥इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे गङ्गाधर्म्मेषु चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥



इन सभी स्थानों में पुण्य कार्य का जो फल होता है, उतना ही विकट फल वहां पाप करने से होता है। मन्त्रग्रहण, मन्त्र जप तथा देवार्चन गंगा तट पर विशिष्ट फलप्रद है। यहां नारायण क्षेत्र में जो कुछ करना उचित है, उसका निरूपण करता हूं। शुष्क वस्त्र पहने, तब सावित्री जप, श्राद्ध, तर्पण, परोपकार के कार्य, दानार्थ द्रव्योत्सर्ग, इष्टदेवता हेतु प्रीतिकारी कार्य तथा पूर्व में जो दान संकल्प है, उसका पात्र को दान करे। स्तवपाठ तथा मौन भाव रखे। इस स्थल में नीच व्यक्ति से बातें न करे। केवल ब्रह्मभावना से जल का पान करे। इन सब का वहां नारायण क्षेत्र में आचरण करना चाहिए। (प्रवाह से चार हाथ का क्षेत्र पहले ही नारायण क्षेत्र कहा गया है)।।६०-६४।।

।।चतुःपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त।।



पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गंगा महिमा-गंगायात्रा विधि

ऋषिरुवाच

गङ्गायात्रां चरेन्मर्त्यो मन उत्कण्ठते यदा। स्नात्वा देवानृषींश्चैव पितॄंश्चैव यमर्च्चयेत्॥१॥
पिधाय वाससी शुक्ले प्राणायामं समाचरेत्। मैथुनं कलहं हिंसां वर्जयेद्गाङ्गयात्रया॥२॥
वासश्च मलिनं नैव गृह्णीयाद्गाङ्गयात्रिकः। गुरुं गणेशं विष्णुञ्च शिवं दुर्गां सरस्वतीम्॥३॥
गोब्राह्मणसतीश्चैव प्रणमेद्गाङ्गयात्रिकः। गुरवः पितरो देवा दिक्पालाश्च ग्रहास्तथा॥४॥
ऋषयश्चारणाः सिद्धाः गन्धर्व्वाः किन्नरास्तथा। सर्व्वा देव्यश्च देवानां प्रणम्यन्ते मयाधुना॥५॥
गङ्गास्नानार्थयात्राया भवन्तु मम साधकाः। इत्येवं मन्त्रमुच्चार्य्य गङ्गायात्रां समाचरेत्॥६॥
(गङ्गे देवि लोकमातर्विघ्नोत्सारिणि ते नमः। त्वद्दर्शनाय सद्यात्रां करोम्यत्रानुमोदय॥७॥

ऋषि कहते हैं—जब मानव का मन गंगा के दर्शनार्थ व्याकुल हो जाये, तब वहां जाना चाहिए तथा स्नानोपरान्त देवता, ऋषि तथा पितरों की अर्चना करे। वहां श्वेतवस्त्रधारी होकर प्राणायाम का अभ्यास करे। गंगा गमन काल में

मैथुन, कलह, हिंसा त्याग करे तथा मलिन वस्त्र पहने, इष्टदेव, गणेश, विष्णु, शिव, दुर्गा, सरस्वती, गौ, ब्राह्मण तथा पतिव्रता को उनके अनुरूप वचन कहकर प्रणाम करे। "गुरु, पितर, देवता, दिक्पाल, ग्रह, ऋषि, चारण, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर तथा देवी-देवता को मैं प्रणाम करता हूं। मेरी इस गंगास्नान यात्रा को आप सब सिद्धिप्रद करें।" बेल तथा तुलसीवृक्ष को भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। बिल्वपत्र सूंघ कर गंगा यात्रा करे।।१-७।।

इत्येवं मन्त्रमुच्चार्य्य गङ्गायात्रां समाचरेत्। विल्वञ्च तुलसीञ्चैव प्रणम्य भक्तिसंयुतः॥८॥
विल्वपत्रमुपाघ्राय गङ्गायात्रां समाचरेत्)। शयने भोजने दाने पथि रात्रौ दिवा तथा॥९॥
गङ्गा गङ्गेति संस्मृत्य कालं संयापयेन्नरः। गङ्गायात्रां समासाद्य पथि चेन्म्रियते जनः॥१०॥

गंगा यात्री रात्रि में शयन, दिन में भोजन-दान आदि से पथ व्यतीत करे। सभी कार्य में गंगा का नाम लेना चाहिए। यदि गंगायात्री मार्ग में मृत हो जाता है, तब भी उसे गंगा जाकर मृत होने वाला ही फल मिलेगा। इसमें संशय नहीं है। देवगण नहीं चाहते कि व्यक्ति गंगा स्नान करे। क्योंकि गंगा में स्नात व्यक्ति के समान तो वे देवता भी नहीं हैं।।८-१०।।

गङ्गामृत्युफलं तस्य भवत्येव न संशयः। गङ्गाया दर्शने देवा आचरन्ति विरोधनम्॥११॥
येनासाववगाह्यैनां नास्माभिः समतामियात्। कृतगङ्गार्थयात्रस्य शरीरे पापसञ्चयाः॥१२॥
भवन्ति विकलाः सर्वे तमांसीव क्षपात्यये। ते पि विघ्नानाचरन्ति येनासौ नैव गच्छतु॥१३॥
गङ्गाया वायुसंसर्गं प्राप्य पापैर्विमुच्यते। तदा विरोधं वै देवा आचरन्त्यस्य गच्छतः॥१४॥
गङ्गावायोस्तु संसर्गे पठेत् स्तवमिमं नरः। सर्वदेवेश्वरो येन परितुष्यति केशवः॥१५॥
स्वे महिम्नि स्थितं देवमप्रमेयमजं विमुम्। शोकमोहविनिर्मुक्तं ध्याये विष्णुं सनातनम्॥१६॥
आसनाद्यैरसंस्पृष्टं सेवितं योगिभिः सदा। निर्गुणं सर्वगं शान्तं ध्याये विष्णुं सनातनम्॥१७॥
सर्वदोषविनिर्मुक्तं सुप्रभावं सुनिर्मलम्। निष्कलं शाश्वतं देवं ध्याये विष्णुं सनातनम्॥१८॥
अतुलं सुखधर्म्माणां व्योमदेहं सनातनम्।(धर्म्माधर्म्मसमायुक्तं ध्याये विष्णुं सनातनम्)॥१९॥

जैसे रात व्यतीत होने पर अन्धकार प्रभाहीन हो जाता है, उसी प्रकार जीव देह की पापराशि गंगायात्रा उद्योग से ही सामर्थ्यरहित हो जाती है। तथापि वे पग-पग पर गंगायात्रा में विघ्न करते रहते हैं। गंगा की वायु का स्पर्श होते ही पापों का नाश हो जाता है। तब देवगण विघ्न उत्पन्न करते हैं। अतः गंगा की वायु स्पर्श होते ही यह मन्त्र पाठ करे—"जो विष्णु अपनी महिमा में स्थित होकर अपनी अप्रमेयता प्रकट करते हैं, वे शोक-मोह बहिर्भूत सनातन विष्णु का ध्यान करे। आसनादि से असंस्पृष्ट भगवान् गुणातीत ईश्वर का योगीगण नित्य ध्यान-सेवा करते हैं। वे उन शान्तिमय विश्वरूप सनातन विष्णु का ध्यान करें, जो सनातन व्योमदेह सुख-धर्म के एकमात्र आश्रय हैं, उन धर्म-अधर्म के आलय सनातन विष्णु का ध्यान करे।।११-१९।।

क्षराक्षरविनिर्मुक्तं जन्ममृत्युविवर्जनम्। अभयं सत्यसङ्कल्पं ध्याये विष्णुं सनातनम्।
अमृतं साधनं साध्यं यं पश्यन्ति मनीषिणः॥२०॥
ज्ञेयाख्यं परमात्मानं ध्याये विष्णुं सनातनम्। व्यासाद्यैर्ऋषिभिः सर्वैर्ध्यानयोगपरायणैः॥२१॥
अर्च्चितं भावकुसुमैर्ध्याये विष्णुं सनातनम्। विष्ण्वष्टकमिदं पुण्यं योगिनां हर्षदायकम्॥२२॥

यः पठेत्परया भक्त्या स विष्णुतुल्यतामियात्। विष्णुतुल्यस्तदा भूत्वा गङ्गां पश्येदनन्यथा॥२३॥
दृष्ट्वा गङ्गां महापुण्यां प्रणमेद्दण्डवन्मुदा। गङ्गे देवि जगन्मातः शिवशीर्षकृतालये॥२४॥
जन्मैतत् सफलं मेऽस्तु भवतीं प्रणमाम्यहम्। एतेन खलु मन्त्रेण ह्यष्टाङ्गैः प्रणमेच्छिवाम्॥२५॥
स्मृतासि गङ्गे दृष्टासि स्पृशामि त्वां महेश्वरीम्। विष्णुदेहद्रवाकारे प्रसीद जगदम्बिके॥२६॥
एतेन खलु मन्त्रेण स्पृशेद्देवीं सनातनीम्। ततो द्विवासाः स्नायाच्च इष्टदेवप्रियार्थकः॥२७॥

मज्जन्ति येऽस्मिन् किल देहभाजो न ते निमज्जन्ति पुनर्भवाब्धौ।
सोऽयं पुरस्तात्पयसां प्रभावो गङ्गेति यं गायति वेदवर्गः॥२८॥

जो क्षर-अक्षर से अतीत हैं, जिनका जन्म-मृत्यु आदि विकार ही नहीं हैं, सत्य ही जिनका संकल्प है, उन अभयप्रद विष्णु का ध्यान करे। पण्डितगण जिनको नित्य कारण तथा ज्ञेयरूप तथा कार्यरूप देखते हैं, उन ज्ञेयरूपी परमात्मा विष्णु का ध्यान करे। व्यासादि योगपरायण ऋषि ध्यानतत्पर होकर जिसकी अर्चना भावपुष्प से करते हैं, उन सनातन विष्णु का ध्यान करे। यह योगीगण को आह्लाद देने वाला, पवित्र विष्णु अष्टक जो परम भक्ति के साथ पाठ करते हैं, वे विष्णुवत् हो जाते हैं। इस स्तवपाठ से विष्णुवत् हो गया। मानव गंगा का अवलोकन करे तथा परम पवित्र गंगा का दर्शन करके कहे "हे देवी! जगत्जननी! शिवमस्तकवासिनी! मातर्गङ्गे! आज मेरा जन्म सफलीभूत हो गया। आपको प्रणाम।" यह मन्त्रोच्चार करके भगवती को प्रणाम करे तथा "हे गंगे! आपका स्मरण करता था, आज दर्शन मिल गया। अब स्पर्श करता हूं। हे जगज्जननी! आप विष्णुदेह के द्रव से द्रवमयी हैं, मुझ पर प्रसन्न हो जायें।" तदनन्तर दो वस्त्र धारण करके इष्टदेव की प्रसन्नतार्थ स्नान करे, मन्त्र पढ़े। "जो इनके जलप्रवाह में स्नान करते हैं, वे पुनः संसार समुद्र में मग्न नहीं होते। देवगण इन गंगा का नाम गायन करते हैं। वे ही गंगा मेरे समक्ष हैं"।।२०-२८।।

आवाहनञ्च तीर्थानां नापेक्ष्यं जाह्नवीजले। निःसङ्कल्पोऽपियः स्नायात् स च पापैर्विमुच्यते॥२९॥
देवर्षिपितृलोकानां तर्पणं विधितश्चरेत्। संपूजयेदिष्टदेवं चिन्तान्तरपराङ्मुखः॥३०॥
गङ्गातीरे वसेन्मर्त्यस्त्रिरात्रमपि नान्यथा। यं क्षणं तत्र वसति स एव सार्थकः क्षणः॥३१॥

गंगाजल में तीर्थ आवाहन नहीं करना होता। इसमें संकल्प किये बिना भी स्नान करने का फल मिलता है। मनुष्य निष्पाप हो जाता है। यहां विधिवत् देवता-ऋषि-पितृगण का तर्पण करे तथा अन्य चिन्तन का त्याग करके अपने इष्ट की पूजा करे। गंगा तीर पर तीन रात वास करना चाहिए। इस स्थान में जितने समय निवास होगा, वह सार्थक होगा। गंगा से वापस लौटते समय पुनः यह प्रार्थना करे कि आपके दर्शनार्थ पुनः आऊं। जो क्षण गंगातीर पर बीतता है, वही यथार्थ क्षण है।।२९-३१।।

गमने प्रार्थयेद्देवीं पुनर्दर्शनकाम्यया। मात्रा पित्रा दुहित्रा वा भार्य्यापुत्रधनादिभिः॥३२॥

त्यक्तस्य न तथा दुःखं यथा गङ्गावियोगजम्।
नैव स स्यात् क्षणो ब्रह्मन् यत्र गङ्गा न विद्यते॥३३॥

(न गम्यते च देशोऽसौ यत्र गङ्गा न विद्यते।)। एकपादस्थितो यस्तु तपत्ययुतवत्सरान्॥३४॥
दण्डमात्रन्तु गङ्गायां वसेत्स तु विशिष्यते। एवन्तु दण्डसंख्याभिर्मासपक्षादिवासतः॥३५॥

फलं दत्ते भगवती गङ्गावासिजनाय वै। यान् कालान् स्वर्धूनीतीरे वसेन्मर्त्यः समाहितः॥३६॥
तावदेवास्य पितरो देवाश्च परितोषिताः। तावत्तु ब्रह्मचर्य्येण कालं संयापयेद्द्विज॥३७॥

प्राणी को माता, पिता, स्त्री, पुत्र, कन्या अथवा धनादि के वियोग का उतना दुःख नहीं होना चाहिए, जो दुःख गंगा के वियोग का है। हे ब्रह्मन्! ऐसा कोई क्षण न हो, जिसमें गंगा स्मृति विद्यमान न रहे। ऐसे देश में कभी न जाये, जहां गंगा न हों। जो व्यक्ति एक पैर पर खड़ा होकर १०००० वर्ष तप करता है, उससे कहीं श्रेष्ठ वह है, जिसने दण्डमात्र काल गंगा में व्यतीत किया! जिस व्यक्ति ने एक पक्ष किंवा एक मास गंगा में निवास किया है, उसे भगवती १०००० वर्ष एक पैर पर खड़े रहकर तप करने वाला फल प्रत्येक दण्डकाल में प्रदान करती हैं। जब तक मनुष्य देवनदी गंगातीर पर निवास करता है, तब तक उसके पितृगणों तथा देवताओं को प्रसन्नता बनी रहती है। हे द्विज! इस काल पर्यन्त ब्रह्मचर्य का अवलम्बन करके रहे।।३२-३७।।

तावदेव परस्यान्नं न भुञ्जीत कदाचन। तैर्दत्तञ्च न गृह्णीयात् परनिन्दां न चाचरेत्॥३८॥
गङ्गातीरस्थितो यस्तु परनिन्दां समाचरेत्। सर्वभूतमयो विष्णुस्तस्मै क्रुद्धेऽत् पराङ्मुखः॥३९॥

तब तक भिक्षान्न किंवा परान्न भक्षण नहीं करना चाहिए। अन्य की निन्दा भी उस समय वर्जित है। जो व्यक्ति गंगा तीर पर रहते परायी निन्दा करता है, सर्वभूतमय श्रीहरि उससे कुपित होकर विमुख हो जाते हैं।।३८-३९।।

गङ्गास्नानार्थमागत्य यो गृह्णाति गृहीजनः। तण्डुलं वा सुवर्णं वा वस्त्रादिं वा कदाचन॥४०॥
न तस्य फलसिद्धिः स्यात् सम्यग् गङ्गा प्रयोजनम्।
स पङ्गुः स सदा काणः स एव पापराशिमान्॥४१॥
यो गङ्गानिकटं प्राप्य गङ्गास्नानमुपेक्षते। सायं प्रातश्च मध्याह्ने द्रष्टव्या तीरवासिभिः॥४२॥
गङ्गातीराद्गतो दूरं न स्नात्वा यस्तु जाह्नवीम्। ब्रह्महयादिभिः पापैस्तत्क्षणात् स प्रलिप्यते॥४३॥
गङ्गास्नानरतं मर्त्यं गङ्गातीरनिवासिनम्। पूजयित्वा यथान्यायमश्वमेधफलं लभेत्॥४४॥

यदि कोई व्यक्ति गंगा स्नानार्थ आकर तण्डुल, स्वर्ण-वस्त्रादि किंवा द्रव्य ग्रहण करता है, तब उसे गंगा आगमन की सम्यक् फलसिद्धि नहीं होती। जो व्यक्ति गंगा आकर भी स्नान की उपेक्षा करता है, वह पापात्मा पंगु तथा काना होता है। तीरवासीगण प्रभात, मध्याह्न, सायाह्न गंगा दर्शन करे। जो बिना स्नान किये तट छोड़ कर दूर चला जाता है, ब्रह्महत्यादि पाप उसे पकड़ लेते हैं। नित्य गंगा स्नान करने वाला गंगातीरवासी व्यक्ति जब यथाविधि पूजन सम्पन्न करता है, तब उसे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है।।४०-४४।।

अगङ्गदेशवासी यो भग्नरागो द्विजर्षभ। न गङ्गामाश्रयेद्देवीं परः स विधिवञ्चितः॥४५॥
ग्रामजनपदाः शैला आश्रमाः शुचयो हिते। येषां भागीरथी गङ्गा मध्ये याति सरिद्वरा॥४६॥
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य विद्युत्सम्पातचञ्चलम्। गङ्गां यः सेवते सोऽत्र बुद्धेः पारं परं गतः॥४७॥
कृतपुण्या महात्मानो देवलोकप्रपूजिताः। सहस्रसूर्य्यप्रतिमां गङ्गां पश्यन्ति ते भुवि॥४८॥
साधारणजलापूर्णां साधारणनदीमिव। पश्यन्ति नास्तिका गङ्गां पापोपहतलोचनाः॥४९॥

हे द्विजश्रेष्ठ! जो गंगारहित देशवासी राग भग्न हो जाने पर गंगा का आश्रय नहीं लेता, उसे तो मानो विधाता ने ही शुभ से वंचित कर दिया! वे सब ग्राम, जनपद, पर्वत तथा आश्रम पावन हैं, जहां से नदी प्रवर भागीरथी प्रवहमान

हैं। मनुष्य जन्म उसी प्रकार क्षणस्थायी है, जैसे आकाश में चमक रही विद्युत्। तथापि दुर्लभ मानव देह पाकर भी जो गंगा की सेवा करता है, वही परम बुद्धिमान् व्यक्ति है। जो महात्मा अनेक पुण्यों के कारण देवलोक में भी पूज्य हैं, वे पृथिवी पर स्थित गंगा को सहस्रों सूर्य के समान प्रभावान् देखते हैं। नास्तिक लोग इसे मात्र सामान्य जलपूर्ण नदी की तरह देखते हैं। वे पाप से बन्द नेत्रों वाले पापी ही हैं।।४५-४९।।

अगङ्गवासं सन्त्यज्य यो गङ्गावासमाव्रजेत्। स हि बुद्धिमतां श्रेष्ठो देवैरपि सुदुर्लभः।।५०।।
पैतृकी वसतिर्यस्य गङ्गातीरे द्विजर्षभ। मनुष्यचर्म्मणा नद्धः स शिवो नात्र संशयः।।५१।।

जो व्यक्ति गंगा रहित देश में वास करना छोड़ गंगा तट का आश्रय लेते हैं, वे देवदुर्लभ मानव बुद्धिमानों में प्रधान हैं। हे द्विजप्रवर! जो पिता-पितामह के समय से गंगा तीर पर वास करते हैं, वे व्यक्ति मानव त्वचा से युक्त होकर भी साक्षात् शिव हैं। यह निःसंदिग्ध है।।५०-५१।।

गङ्गातीरनिवासाय कन्यां दत्ते तु यः शुभाम्। प्रत्यहं पितरस्तस्य गयाश्राद्धस्य भोगिनः।।५२।।
गङ्गातीरनिवासाय यो भूमिं प्रददाति वै। स्वर्गराज्यं स भुङ्क्ते वै यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश।।५३।।
कृतापराधञ्च नरं गङ्गातीरनिवासिनम्। यस्ताड़येद्वचोदण्डैस्तस्य पापफलं शृणु।।५४।।
विमुखास्तस्य वै देवाः पितरश्चाप्युपोषिताः। गङ्गा परित्यजेत्तं वै सोऽगतिश्चिरनारकी।।५५।।

जो व्यक्ति गंगातीर वासी को सुलक्षणा कन्या प्रदान करता है, उसके पितृगण नित्य गयाश्राद्ध भोग करते हैं। जो गंगातीर निवासी को भूमि प्रदान करता है, वह चौदह इन्द्र की स्थिति पर्यन्त स्वर्ग भोग करता है। गंगा तीर वासी भले ही अपराधी हों, जो उनकी कठोर भाषा से ताड़ना करते हैं, उसका पापफल यह है। देवता तथा पितृगण की वह चाहे जितनी सेवा करे, वे उससे विमुख हो जाते हैं। गंगा उस व्यक्ति का त्याग कर देती हैं। वह दीर्घकालीन नरकवास करता है।।५२-५५।।

गङ्गातीरालयं मर्त्यं सूर्य्यतुल्यं य ईक्षते। तस्यैव विमलं चक्षुर्देवदर्शनसाधनम्।।५६।।
गङ्गातीरालयान् लोकान् गङ्गलोकान् वदेत यः। स एवानुगृहीतःस्याद्गङ्गया द्विजपुङ्गव।।५७।।

जो गंगातीर वासी व्यक्ति को सूर्यवत् देखता है (मानता है), वही अपने ऐसे निर्मल नेत्रों से देवदर्शन कर पाता है। हे द्विजवर! जो गंगातीरस्थ निवासी को गंगा का व्यक्ति कहते हैं, गंगा देवी ऐसे मनुष्य पर कृपा करती हैं।।५६-५७।।

गङ्गातीरालयान्मर्त्यान् देवैरर्च्यान् कुधीर्जनः। मनुष्यबुद्ध्या पापिन्या जैमिने ह्यवमन्यते।।५८।।
देवा मनुष्यरूपेण गङ्गातीरे चरन्ति वै। तस्मात्तान्नावमन्येत श्रेयोर्थी न कदाचन।।५९।।
गङ्गातीरद्वये विप्र पिशाचाश्च शिवाज्ञया। कोटयः पञ्चलक्षाणि तिष्ठन्ति वायुरूपिणः।।६०।।
शृणु तेषाञ्च कर्म्माणि यदर्थे ते निरूपिताः। ये तत्र पापकर्म्माणो गङ्गातीरे द्विजर्षभ।।६१।।
त्यजन्ति विष्ठामूत्राणि श्लेष्मकेशनखादि च। तत्रैव तांस्ते सर्व्वाणि भोजयन्त्यनुरूपतः।।६२।।

जो मन्दबुद्धि हैं, ऐसे ही व्यक्ति देवपूज्य, गंगातट निवासी मानव को पापी कह कर अपमानित करते हैं। वे यह नहीं जानते कि देवगण ही मनुष्य देहीरूपेण गंगातट पर विचरण करते हैं। जो वास्तव में कुशलता चाहता है, वह कदापि इनका अपमान न करे। हे मुनिवर! असंख्य पिशाचगण शिव की आज्ञा से वायुरूप धारी होकर गंगा के

दोनों तट पर स्थित रहते हैं। हे विप्रवर! इस गंगातीर पर जो पापी विष्ठा-मूत्र-श्लेष्मा-केश-नखादि त्याग करते हैं, पिशाचगण उन कदर्य वस्तु का उसी व्यक्ति को भोजन कराते हैं।।५८-६२।।

ये मिथ्यावादिनो दुष्टा गुरुसेवापराङ्मुखाः। वृथा हिंसारताः क्रूरा विश्वासघातिनस्तथा।।६३।।

तांस्ते गङ्गापिशाचा वै मुमूर्षून् गाङ्गरोधसि। क्षेत्रान्नारायणान्नीत्वा स्थापयन्ति नभःस्थले।।६४।।

शून्ये सन्त्यज्य प्राणांस्ते यान्ति दुर्गतिमुत्तमाम्।

तन्न पश्यन्ति पापिष्ठाः पश्यन्ति दिव्यचक्षुषः।।६५।।

जैमिने वर्णयाम्यस्य लक्षणानि निबोध मे। शनिमङ्गलवारे वा निशीथे लुप्तबोधनः।।६६।।

विष्ठामूत्रं त्यजन् भूरि चिररोगी बहूनपि। (वासरान् लुप्तसङ्गश्च सदाघूर्णितलोचनः)।।६७।।

ऊर्द्ध्वश्वासो हृष्टदेहो गतसर्व्वेन्द्रियाशयः। यो म्रियेत स एवायं पिशाचैर्यस्तु क्षिप्यते।।६८।।

जो मिथ्यावादी, दुष्ट, गुरुसेवा से विमुख, वृथा हिंसक, खल तथा विश्वासघातक हैं, मरणकाल में उसे गंगा के पिशाच गंगा तट से हरण करके आकाश पथ में ले जाते हैं। तदनन्तर वे शून्य में प्राण त्याग करके अत्यन्त दुर्गति के भाजन बनते हैं। तथापि अन्य पापी उसकी यह गति नहीं देख पाते। यह सब केवल ज्ञानी ही देख पाते हैं।

हे जैमिनि! इसका लक्षण कहता हूं। जो गंगा में मल-मूत्र त्याग करते हैं, वे चिररोगी होते हैं। वे उन्मत्त होकर सदा लम्बी सांसे लेते रहते हैं। उनका देह मलिन रहता है। इन्द्रियां शिथिल रहती हैं। वे इसी हालत में मृत होते हैं, इनको ही पिशाच शून्य में ले जाते हैं।।६३-६८।।

गङ्गाभैरवनामनः सन्त्यन्ये शिवकिङ्कराः। ते रक्षन्ति सदा गङ्गां नानारूपविहारिणः।।६९।।

ते तु कुर्वन्ति कर्म्माणि तानि विप्र निबोध मे।

यान्यदत्तानि पुष्पाणि नैवेद्यादीनि यानि च।।७०।।

गङ्गाप्रवाहस्पृष्टानि गृहीत्वा तानि ते शिवाम्। पूजयन्ति महाभाग शिवविष्णवादिकानपि।।७१।।

वस्त्रनिष्पीड़ितं वारि त्यक्तं चाधोऽशुकं जले। गृह्णन्ति शिरमा ते वै गङ्गापाताभिशङ्कया।।७२।।

मदमात्सर्य्यहिंसादियुक्तान् दुष्टधियो जनान्। दूरीकुर्व्वन्ति ते देवा यत्ते स्युरन्यतो मृताः।।७३।।

गंगाभैरव नामक शिव के अन्य सेवक भी हैं। ये सर्वदा नाना रूप में विचरते रहते हैं। ये गंगा की रक्षा करते हैं। उनका जो कार्य है, उसे सुनो। हे महाभाग! जो सब पुष्प-नैवेद्यादि वस्तु बिना देवता को प्रदान किये गंगा में बहती है, इससे ये लोग गंगा, शिव, विष्णु आदि देवगण की पूजा करते हैं। जो कपड़े से निचोड़ा जल तथा परिधान का त्यक्त वस्त्र गंगा में गिरने की स्थिति में रहता है, उसे ये लोग अपने शिर पर रोकते हैं। जो मद, मात्सर्य तथा हिंसा से-आक्रान्त हैं, उन सभी दुष्टों को देवगण गंगा से दूरीभूत कर देते हैं। वे अन्यत्र प्राणत्याग करते हैं।।६९-७३।।

तस्माद् यत्नेन मात्सर्य्यहिंसादि त्याज्यमेव हि। इति ते कथितं विप्र गङ्गाज्ञानं यथामिति।।७४।।

गङ्गामरणकार्य्यस्य फलं विप्र निबोध मे।

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे गङ्गाधर्म्मेषु पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।

हे विप्र! इस कारण सर्वदा हिंसा का त्याग करे। मैंने अपने बोधानुरूप गंगा महिमा का वर्णन किया। अब गंगामरणफल कहता हूं, सुनो।।७४।।

।।पञ्चपञ्चाशोत्तम अध्याय समाप्त।।



षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

काककर्णोपाख्यान

ऋषिरुवाच

यो जन्मकोटिनिष्पापः स गङ्गामरणं लभेत्। प्रवाहमबधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम्।।१।।
अत्र चेत् म्रियते देही न देहं पुनराव्रजेत्। यत्र जन्मनि गङ्गायां मृत्युर्भवति देहिनः।।२।।
तदा पापादि कर्म्मास्य गण्यते न कदाचन। कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तदा तस्यानुमीयते।।३।।
देहिनां मरणं विप्र जन्मना सह जायते। (तच्चेद्गङ्गाजले भूतं जन्मना सह नश्यति)।।४।।
अप्यकार्य्यशतं यस्य गङ्गामरणमेव च। पापं तस्य गुरुत्वेन ह्यधोगच्छति जैमिने।।५।।
पुण्यं वलीयो लाघव्यादूर्द्ध्वं गच्छति सर्वथा। देही तु पुण्यमाश्रित्य चोर्द्ध्वं गच्छति नान्यथा।।६।।
ज्ञानतोऽज्ञानतोवापि तिर्य्यग्वा योगविच्च वा। गङ्गामृत्युमवाप्यैव परं पदमवाप्नुते।।७।।

ऋषि कहते हैं—हे जैमिनि! जो व्यक्ति कोटि जन्म से निष्पाप चला आ रहा है, वही गंगामरण का सौभाग्य पाता है। गंगा के प्रवाह से १४ हाथ तक जो स्थान है, वहां जिस देही का प्राण त्याग होता है, उसे पुनः कभी देह धारण नहीं करना पड़ता। इसी से उसका कोटि जन्म संचित पुण्य प्रकाशित होता है। हे द्विजवर! जीव के जन्म के साथ ही उसका मरण निश्चित हो जाता है। यदि वह मरण गंगाजल में होता है, तब उसे और देहधारण नहीं करना पड़ता। हे जैमिनि! सैकड़ों अकार्यकारी कार्य करने वाला व्यक्ति भी जब गंगा में मरता है तब गुरुता के कारण उसकी पापराशि अधोगत हो जाती है तथा पुण्य लघुतायुक्त होकर ऊर्ध्वस्थ हो जाते हैं। वह प्राणी इसी ऊर्ध्वस्थ पुण्य का आश्रय लेकर ऊर्ध्वगमन करता है। सामान्य पक्षी से लेकर परम योगी पर्यन्त जो जीव ज्ञान तथा अज्ञान पूर्वक गंगा में प्राण त्याग करता है, उसे मुक्ति मिलती है।।१-७।।

जैमिनिरुवाच

मिथ्यावादादिदुष्टांस्तु क्षेत्रान्नारायणाख्यकात्। गङ्गापिशाचा आकाशं नयन्तीति त्वयोदितम्।।८।।
तिर्य्यग्योनिगतानान्तु कथं मुक्तिर्भवेत् प्रभो। कथं वा ब्रह्महत्यादेः प्रायश्चित्तं भवेदिति।।९।।
एतं मे संशयं ब्रह्मं श्छेत्तुमर्हसि मानसम्। अतीन्द्रियञ्च सूक्ष्मञ्च सम्यक् पश्यन्ति योगिनः।।१०।।

जैमिनि कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपने कहा है कि मिथ्या कथनादि पाप से दूषित व्यक्ति को मरणकाल में गंगापिशाच विष्णुक्षेत्र से पकड़कर ऊर्ध्व शून्य में ले जाते हैं। तथापि हे प्रभो! पक्षी तथा कीटादि की कैसे गंगामृत्यु

होती है? गंगा में ब्रह्महत्यादि का प्रायश्चित्त कैसे होता है? यह बतला कर मेरा संशय शीघ्र दूरीभूत करें। क्योंकि इन्द्रियों से अगोचर जो विषय है, उस अतिसूक्ष्म तत्त्व को आप जैसे योगी ही जान पाते हैं।।८-१०।।

ऋषिरुवाच

ये मिथ्यावादिनो दुष्टा गुरुसेवापराङ्मुखाः। वृथाहिंसारताः क्रूरा विश्वासघातकास्तथा॥११॥
तेषान्तु तानि पापानि गङ्गादर्शनकर्म्मणि। भवन्ति प्रतिबन्धीनि यावज्जीवति जैमिने॥१२॥
अतस्ते पापकर्म्माणो नभस्येव त्तजन्त्यसून्। अतस्ते शून्यमरणा दूरविक्षिप्तकीकसाः॥१३॥
दुष्पार (पापा अपिते) पापपाराभिगामिनः।
भुक्त्वा भोगांश्च पापिष्ठान् पुनर्जाताः शुभे कुले॥१४॥
गङ्गायां मरणं प्राप्य लभन्ते मुक्तिमुत्तमाम्। तिर्य्यञ्चस्तु पापभोगशरीरा दैवयोगतः॥१५॥
गङ्गां प्राप्य स्वर्गतास्तु पिशाचा न क्षिपन्ति तान्।
स्वर्गान्ते ते पुनर्जाता निर्व्वाणं प्राप्नुवन्ति वै॥१६॥
ब्रह्महत्यादिपापानि महान्ति द्विजपुङ्गव। गङ्गाजलकणेनैव तानि नश्यन्त्यसंशयम्॥१७॥
ब्रह्महत्यादिपापानि गोस्त्रीहत्यादिकानि च। कृतान्यज्ञानतस्तानि हिंसाविरहचेतसा॥१८॥
सत्यञ्च चेतःस्वाच्छ्यञ्च तेषां नाशकरे उभे। अतो ये ब्रह्महत्यास्त्रीगोहत्यादिकपापिनः॥१९॥
सत्यवादादिपुण्येन गङ्गां प्राप्यन्ति मुक्तिदाम्। अतः कोस्ति संशयस्ते तं मे पृच्छ महामुने॥२०॥

ऋषि (व्यासदेव) कहते हैं—हे जैमिनि! जो मिथ्यावादी हैं, दुष्ट तथा गुरुसेवा विहीन हैं तथा जो व्यर्थ हिंसा करते हैं, खलत्व से भरे हैं और विश्वासघाती हैं, वे जब तक जीवित हैं, ये सभी पाप उसके गंगादर्शन कर्म में विघ्न उत्पन्न करते हैं। अतः ऐसे पापिष्ठगण (पिशाचों द्वारा ले जाये जाकर) शून्य में प्राण त्याग करते हैं। तदनन्तर ये पापी शून्यमरण के कारण भूरि-भूरि पाप से आक्रान्त होकर अनन्त नरक यातना भोग करने पर जब पाप समाप्त हो जाता है, तब सद्वंश में जन्म लेते हैं। तभी गंगा में प्राण त्याग करके मुक्त हो पाते हैं। तिर्यक् योनि में जिनका जन्म हुआ है, उनके पूर्व पाप का फल भोग उसी देह में होगा, तभी उनके गंगामरण में पिशाच बाधा नहीं देते। तदनन्तर वे स्वर्गभोग के उपरान्त निर्वाण मुक्ति प्राप्त करते हैं। ब्रह्महत्या, गोहत्या, स्त्रीहत्या ये सब पाप एकमात्र सत्यपालनरूप पुण्य से नष्ट होते हैं। अतएव महापातकी भी सत्य कथन रूप पुण्य द्वारा मुक्तिप्रदा गंगा को प्राप्त करते हैं। हे महामुने! अब और क्या संशय है?।।११-२०।।

जैमिनिरुवाच

एवन्तु गङ्गामरणं कः कुत्र प्राप्तवानुत। तद्वदस्व महाभाग श्रोतुं वाञ्छा ह्यतीव मे॥२१॥

जैमिनि कहते हैं—हे महामुने! इस प्रकार से गंगा में कहां किसकी मृत्यु हुई है? इसे सुनने की तीव्र इच्छा है। कृपया कहें।।२१।।

ऋषिरुवाच

उक्ता सगरपुत्राणां गतिः परमदुर्लभा। अथान्यदपि वक्ष्यामि शृणु त्वं द्विजपुङ्गव॥२२॥

कीकटे नामदेशे हि काककर्णाख्यको नृपः। प्रजानां हितकृन्नित्यं ब्रह्मद्वेषकरस्तथा॥२३॥
तस्य धर्म्मकथा विप्र कर्णे वज्रायते द्विज। रजसा तमसाविष्टः सततं स नृपेश्वरः॥२४॥
तत्र देशे गया नाम पुण्यदेशोऽस्ति विश्रुतः। नदी च फल्गुदा नाम पितॄणां स्वर्गदायिनी॥२५॥
तद्दिक्पराङ्मुखो राजा न च तत्र प्रयात वै। अथ तत्र वणिक्कवश्चित्तस्य दर्शनमागमत्॥२६॥
गङ्गास्नानरतः साधुर्गङ्गाजलसमन्वितः। स वै बहुधनं तस्मै ददौ भूपाय वै वणिक्॥२७॥
तेन तस्य सह प्रीतिर्गङ्गास्नानविरोधकृत्। वणिक् सोपि नृपप्रीत्या तत्र वासञ्चकार ह॥२८॥

ऋषि कहते हैं—हे द्विजवर! सगर सन्तानगण की अतीव दुर्लभ सद्गति की कथा पूर्व में कही गयी है। अब अन्य एक इतिहास सुनो। पूर्व में कीकट देश में प्रजा हितार्थी काककर्ण राजा था। वह ब्राह्मण द्वेषी था। नित्य रजोगुण तथा तमोगुणक्रान्त रहने के कारण धर्म कथा उसके लिए कानों में वज्र प्रहार ऐसी लगती थी। वहीं पर उसके प्रदेश में गया नामक पुण्य प्रदेश था तथा पितरों को स्वर्ग देने वाली कर्णदा नामक नदी थी। तथापि वहां राजा नहीं जाता था, अतः उसके प्रजाजन भी नहीं जाते थे। कुछ काल के उपरान्त राजा के यहां नित्य गंगा स्नान करने वाला साधु नामक वणिक् आया। उस वणिक् ने राजा को प्रचुर धन प्रदान किया। इससे राजा अत्यन्त प्रसन्न हो गया। वणिक् भी राजा के अनुरोध से वहीं रह गया। इससे उस गंगा स्नान विरोधी राजा तथा वणिक् के बीच अत्यन्त प्रीति बढ़ गयी।।२२-२८।।

तद्वर्षाभ्यन्तरे तस्य काककर्णस्य भूपतेः। महादाहज्वरार्त्तस्य मृत्युकालोह्युपस्थितः॥२९॥
तदा स वणिजं दृष्ट्वा राजा परमनास्तिकः। रुरोद तस्य विच्छेददुःखान्यन्युभवन् बहु॥३०॥

उसी वर्ष में काककर्ण राजा को प्रबल दाह ज्वर हो गया, उस पीड़ा से राजा का मृत्यु काल उपस्थित हो गया। तब वह परम नास्तिक राजा अपने बन्धु वणिक् का अवलोकन करके विच्छेद हो जाने से दुःख का अनुभव करके रोने लगा।।२९-३०।।

काककर्ण उवाच

सखे वणिङ्महाभाग म्रियेऽहं नात्र संशयः। त्वं मे सुताञ्छिशून्राज्यं समृद्धवलवत्तरम्॥३१॥
पालयेथास्त्वया त्यक्तो याम्यहं मरणं प्रभो। त्वं मे सुहृत्सखा बन्धुर्विश्वास्यः सर्व्वकर्म्मसु॥३२॥

काककर्ण कहता है—हे सखे! महाभाग! मैं मर रहा हूं। हे सखे! तुम मेरे कर्म के विश्वासी, सुहृद, सखा तथा बन्धु हो। हे वणिक्वर! मेरे इन शिशु सन्तानगण की तथा इस समृद्ध राज्य की तुम रक्षा करना।।३१-३२।।

वणिगुवाच

राजन् मरणमस्त्येव सर्व्वेषामेव जन्मिनाम्। ईश्वरः सुखदुःखानां कर्त्ता नान्यः कदाचन॥३३॥
आत्मैव शोच्यः सर्वेषां नापरो हि कदाचन। सर्व्वः स्वोपार्जितं भुङ्क्ते न परोपार्जितं क्वचित्॥३४॥
देह एवात्मनो नैव किमन्ये पुत्रबान्धवाः। अतएव महाराज स्मर गङ्गां हरिं शिवम्॥३५॥
येन त्वं देहबन्धेन मुक्तो यास्यसि सद्गतिम्। तव तेनैव धर्म्मेण पुत्राद्याः सुखमाप्नुयुः॥३६॥

वणिक् कहता है—हे महाराज! देही मात्र का मरण होना ध्रुव रूप से निश्चित है। एकमात्र ईश्वर ही सुख तथा

दुःख के कर्त्ता हैं। आत्मा सबका शोकस्थान है। अन्य कोई नहीं। सभी आत्मसंचित कर्मफल भोग करते हैं। हे महाराज! जब देह ही अपना नहीं है, तब अन्य पूजा का क्या प्रयोजन? अब आप विष्णु, शिव, गंगा का स्मरण करें। इनका स्मरण करने से चिरकाल का देह बन्धन छिन्न हो जाता है। आप सद्गति प्राप्त करेंगे। आपके पुत्र स्वजनों का भी कल्याण होगा।।३३-३६।।

काककर्ण उवाच

सखे नैतत् सखिवचो विपत्काले ममाधुना। पुत्रमानय मे वालं तञ्च तुभ्यं समर्पये॥३७॥
वलिनोऽन्ये यथा भूपा न पुत्रं पीड़यन्ति वै। यदुक्तं भवता किञ्चिन्मया त्वाजन्मनः श्रुतम्॥३८॥

काककर्ण कहता है—हे सखे! मेरी इस विपत्ति के समय ऐसा वचन बन्धु के लिए कहना उचित नहीं है। मेरे बालक पुत्र को लाओ। मैं उसे तुम्हारे हाथों में अर्पण करूं। अन्य बली राजा मेरे पुत्र का उत्पीड़न न कर सकें। और तुमने जो कहा है, वह तो जीवन भर मैंने किसी से नहीं सुना!।।३७-३८।।

वणिगुवाच

त्वं न म्रियस्व हे राजन् पुत्रादीनपि पालय। अहञ्चापि मरिष्यामि पुत्रन्ते पालये कथम्॥३९॥

वणिक् कहता है—हे महाराज! शोक न करें। स्त्री-पुत्र का पालन करें। मैं भी करूंगा। तब आपके पुत्र की रक्षा कैसे होगी?।।३९।।

काककर्ण उवाच

अहं पश्यामि वै वीरौ भीमौ सरभसेक्षणौ। एताभ्यां नीयमानोऽहं वलादेव वणिग्वर॥४०॥
स्थातुमिच्छामि न स्थातुं प्राप्यते रक्ष तर्हि माम्।

काककर्ण कहता है—हे सखे! अपने सामने मैं दो भीमाकृति रक्त नेत्र दो वीर पुरुषों को देखता हूं। अब तुम्हारे वाक्य नहीं सुन पाता। तुम मेरे स्वजनों की रक्षा करना।।४०।।

शुक उवाच

एवमुक्त्वैव राजसौ काककर्णो ह्यधार्म्मिकः। लुप्तसर्व्वेन्द्रियज्ञानः पश्यन् यमभटद्वयम्॥४१॥
अतीव कृच्छ्रात् स प्राणांस्तत्याज चिरकालतः। तं नीयमानं दूताभ्यां यमस्य द्विजपुङ्गव॥४२॥
दूत एकः समागत्य वारयामास वै वलात्। गङ्गादूतवरः सोऽसौ गङ्गाभैरवनामकः॥४३॥
शुक्लः परमतेजस्वी त्रिनेत्रो दोश्चतुष्टयी। जटामण्डलसंशोभिमुकुटोज्वलमस्तकः॥४४॥
पीतकौषेयवसनो नूपुरध्वनिताङ्घ्रिकः। दीपयंश्च दिशः सर्व्वाः शूलपद्माक्षपाणिकः॥४५॥
अभयञ्च ददत्साधुरद्भुतः स्मितशोभितः।

शुक कहते हैं—अधार्मिक राजा यह कहकर यमपुरी स्थित नदी के तटद्वय को देखने लगा। उसका इन्द्रियज्ञान लुप्त हो गया। कुछ क्षणोपरान्त उसने अत्यन्त कष्ट से प्राण त्याग किया। हे द्विजवर! तब उसे यमदूत द्वय ले जा रहे थे, तभी अन्य गंगाभैरव नामक गंगातीर निवासीगण ने वहां आकर बलपूर्वक यमदूतों को रोका, उसके तीन नेत्र, ४ भुजायें थीं। जटामण्डल मण्डित उसके शिर पर मुकुट शोभित था। उसने पीतवस्त्र धारण किया था। चरणों में धारण

किये नूपुर बज रहे थे। हाथों में शूल तथा अक्षमाला शोभायमान थी। उसके तेज से दिशायें दीप्त हो उठीं। उस अद्भुद् तेजस्वी सुन्दर साधु ने हंसते हुए काककर्ण को अभय प्रदान किया तथा कहने लगा।।४१-४५।।

गङ्गाभैरव उवाच

रे दूतौ तिष्ठतं कुत्र गच्छतं वा मयेक्षितौ। को वा युवां किन्नामानौ मामुक्त्वा व्रजतं तथा॥४६॥

गंगाभैरव कहता है—हे दूतद्वय! एक क्षण रुको। कहां जा रहे हो? तुम कौन हो? क्या तुम्हारा मस्तक नहीं है? यह सब उत्तर दिये बिना कैसे जा रहे हो?।।४६।।

ऋषिरुउवाच

इत्युक्तौ तेन तौ दूतौ भयाविष्टौ बभूवतुः। तदद्भुतं महारूपं दृष्ट्वा जगदतुर्वचः॥४७॥

दूतावूचतुः

आवां वै धर्म्मराजस्य दूतौ तस्याज्ञया चरौ। काककर्णममुं भूपं नीत्वा यामो यमालयम्॥४८॥

ऋषि कहते हैं—उन दूतद्वय ने गंगाभैरव का यह वाक्य सुन कर तथा उसका अत्यद्भुत रूप देख कर कहा—हम धर्मराज के दूत हैं। उनके आदेश से हम विचरण करते रहते हैं। इस राजा काककर्ण को यमलोक ले जा रहे हैं।।४७-४८।।

भैरव उवाच

कथं वै धर्म्मराजस्य युवां दूतौ भविष्यथः। गतपापमिमं यस्मान्नीत्वा यास्यथ यातनाम्॥४९॥
नाहं प्रत्येमि युष्माकं यमदूतत्वमेव हि। न यमो यमदूता वा धर्म्मातीतक्रियापराः॥५०॥

भैरव कहते हैं—तुम दोनों कैसे स्वयं को यम का अनुचर कह रहे हो? मैं तुम लोगों को यमदूत रूप मान ही नहीं सकता, क्योंकि तुम लोग इस निष्पाप राजा को यातनामय स्थान में ले जा रहे हो! स्वयं यम तथा उनके दूत धर्म लंघन नहीं करते।।४९-५०।।

दूतावूचतुः

सत्यमावां यमभटौ पापीयानप्ययं नृपः। कीकटे च मृतोऽप्येष पापभूमौ न संशयः॥५१॥
अयं किं यमदण्डार्हो न भवेत् त्वन्निवारितः। को भवानद्भुतं रूपं दधानो वदतीदृशम्॥५२॥

दूत कहते हैं—हम यम के दूत हैं। इसमें सन्देह नहीं है। यह राजा अति पापी तथा गंगा रहित है। तभी पापभूमि कीकट देश में यह मृत हुआ। अब आप यमदण्ड के भागी इस पापी को न रोकें। ऐसा अद्भुद् रूप धारण करने वाले आप कौन हैं?।।५१-५२।।

भैरव उवाच

गङ्गाभैरवनामाहं गङ्गाज्ञानुचरः सदा। गङ्गावासिजनस्पृष्टं त्यजतं भूपमप्यमुम्॥५३॥
नास्मिन् यमाधिकारोऽस्ति वणिक्संसर्गकारिणि।
भवद्भ्यां नेक्षितः किं स गङ्गास्नायी वणिग्वरः॥५४॥

गङ्गावासिजनैः सार्द्धं कृत्वा सम्बन्धवन्धनम्। न मर्त्याः क्लेशमर्हन्ति गङ्गागङ्गाश्रयौ समौ।।५५।।
तस्मात्त्यक्त्वा नृपं ह्येनं व्रजतं चेज्जिजीविषू। न चेद् यमाधिकारं वो लोपये भूनिदेशतः।।५६।।

भैरव कहते हैं—मैं गंगाभैरव नामक गंगादूत हूं। गंगावासी व्यक्ति द्वारा स्पर्श किये गये इस राजा को छोड़ो, क्योंकि वणिक् के साथ संसर्ग होने के कारण यह राजा यम के प्रभुत्व से परे है। क्या तुम लोगों ने उस गंगा में स्नान करने वाले वणिक् को देखा है? गंगावासी व्यक्ति के साथ धर्मबन्धन करने पर मनुष्य किसी क्लेश को नहीं भोगता, क्योंकि गंगा तथा गंगातट वासी में कोई भेद ही नहीं है। यदि तुम सबको बचने की आशा है, तब राजा को छोड़ कर यहां से चले जाओ। नहीं तो शिव की आज्ञा के कारण मैं तुम लोगों को यम के अधिकार से लुप्त कर दूंगा।।५३-५६।।

ऋषिरुवाच

इत्युक्तौ भयवित्रस्तौ यमदूतावुभौ तु तौ। महापाश-महादण्ड-नामानौ तं प्रणेमतुः।।५७।।
जग्मतुश्च धर्म्मराजं भैरवोऽन्तर्दधेऽपि सः। राजापि काककर्णोऽसौ विमानं दिव्यमारुहन्।।५८।।
वीजितो देवकन्याभिः प्रययौ विमलं पदम्। यत्संसर्गिजनस्येदं कथितं सङ्गजं फलम्।।५९।।

तस्याः साक्षात् फलं विप्र ज्ञेयमात्मधियैव हि।
वणिक् च भूपपुत्रं तं नीत्वा गङ्गाश्रयं ययौ।।६०।।

ऋषि कहते हैं—यह कहते ही महापाश तथा महादण्ड नामक यमदूतद्वय भय से भीत होकर उस भैरव को प्रणाम करके यमालय चले गये तथा गंगाभैरव भी अन्तर्ध्यान हो गया। इधर राजा काककर्ण दिव्य विमान पर बैठ कर देवकन्याओं से आवेष्ठित होकर मोक्ष धाम चला गया। हे द्विज! गंगावासी के साथ संसर्ग का यह फल होता है। तब तो जो साक्षात् स्वयं गंगावासी है, उसका कैसा फल होगा, यह तो तुम स्वयं अपनी बुद्धि से जान सकते हो। तत्पश्चात् उस वणिक् ने भी राजपुत्र के साथ गंगातीर पर निवास हेतु आश्रय लिया।।५७-६०।।

तस्माद्गङ्गामृतिर्विप्र जायते पूर्वभाग्यतः। नैकपादञ्च सन्त्यज्य गङ्गां गन्तुं प्रयुज्यते।।६१।।
सर्व्वस्वमपि चेद् यातु न च गङ्गा विहीयते। गङ्गात्यागात् परा नास्ति विपत्तिः पृथिवीतले।।६२।।

हे द्विजवर! इस कारण गंगा में मृत्यु पूर्व भाग्यानुसार ही होती है। गंगा का त्याग करके कहीं एक पैर भी जाना अनुचित है। सर्वत्र भले ही जाये, तथापि गंगा त्याग कदापि न करे। इस पृथिवी पर गंगा त्याग से बड़ी विपत्ति है ही नहीं।।६१-६२।।

गङ्गानारायणक्षेत्रे पिवन् गङ्गाजलं नरः। रामनारायणादीनि स्मरन् नामानि वा पठन्।।६३।।
गङ्गागङ्गेति शृण्वंश्च मृतो वा किं न साधयेत्। राम नारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन।।६४।।
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन। गोविन्द वासुदेवेश विष्णो श्रीपुरुषोत्तम।।६५।।
पुण्डरीकाक्ष भगवन् पद्मनाभाच्युत स्वभूः। एवं शृण्वन् पठन् मर्त्यो मृतः किं नहि साधयेत्।।६६।।

यदि मानव उस नारायण क्षेत्र में गंगा से गंगाजल पान करता राम-नारायण आदि तारक ब्रह्म का नाम जप करता तथा गंगा-गंगा कहता प्राणत्याग करता है, तब उसे सब कुछ सिद्ध हो जाता है। हे राम! नारायण! अनन्त! मुकुन्द! मधुसूदन! कृष्ण! केशव! कंसारि! हरि!, हे वैकुण्ठ!, वामन! गोविन्द! वासुदेव! ईश! विष्णु! पुरुषोत्तम!

हे भगवान्! पुण्डरीकाक्ष! पद्मनाभ! अच्युत! प्रभु! इन नामों का पाठ करते-करते प्राणत्याग करने वाला सम्यक् सिद्धि प्राप्त करता है।।६३-६६।।

शिव शङ्कर पञ्चास्य महारुद्र त्रिलोचन।।६७।।
हरेशानेश देवीश नीलकण्ठाब्जलोचन। पार्वतीनाथ गङ्गेश गङ्गाधर सतीपते।।६८।।
मृड भीम गुरो नाथ शम्भो भूतपते पर। एवं शृण्वन् पठन्मर्त्यो मृतः किं नहि साधयेत्।।६९।।
गङ्गा नारायणी माता मोक्षसेवितपादुका। संसारबन्धनादस्मात् त्वन्नस्तारय तारिणि।।७०।।
एवं शृण्वन् पठन्मर्त्यो मृतः किं नहि साधयेत्।
चाण्डालेनापि यस्यास्ये न्यस्येद्गङ्गाजलं परम्।।७१।।
सोऽपिमुक्तिं लभेन्मर्त्यः किमु पुत्रादिना द्विज। नीचोत्तमविचारन्तु कालाकालविचारणाम्।।७२।।

हे शिव! शंकर! पंचमुख! महारुद्र! त्रिलोचन! हर! ईशान! ईश! देवीश! नीलकण्ठ! पद्मलोचन! पार्वतीपति! गंगानाथ! गंगाधर! हे सतीपति! मृड्! भीम! हे गुरुदेव! हे नाथ! शम्भो! भूतनाथ! इन नामों का पाठ करते हुए जो मृत होता है, उसे तो सभी सिद्धि करतलगत हैं। "हे माता! तारिणि गंगे! मुक्ति तो आपके चरण कमल की नित्य सेवा करती रहती है। हे नारायणी! अब मुझे संसार बन्धन से मुक्त करो।" गंगा यह सब करती हैं। हे द्विजवर! यदि अन्त्यज तथा चाण्डाल भी किसी के मुख में गंगाजल निःक्षेप करता है, वह मरने वाला व्यक्ति भी मुक्त हो जाता है। जब पुत्रादि किंवा द्विज मुमूर्षु के मुख में गंगाजल प्रदान करते हैं, तब बात ही क्या? क्योंकि गंगाजल में उच्च-नीच, काल-अकाल, स्थान-अस्थान का विचार नहीं होता।।६७-७२।।

देशादेशविचारञ्च न गङ्गासलिले चरेत्। प्राप्तमात्रस्तु गङ्गान्तु प्रणमेत् संग्रहेत् पिवेत्।।७३।।
गङ्गानारायणक्षेत्रे ब्राह्मणानाञ्च सन्निधौ। गायतां हरिनामानि मरणं मुक्तिलक्षणम्।।७४।।
रुद्राक्षतुलसीविल्वदलयुक्ताङ्गता तथा। गङ्गामृल्लिप्तगात्रञ्च मरणं मुक्तिलक्षणम्।।७५।।
शिवः स्वयं समागत्य गङ्गायां हि मुमूर्षतः। कर्णे जपति विमलं ज्ञानं परमदर्शनम्।।७६।।
अत एव न सन्देहो गङ्गामरणमोक्षणे। रात्रौ दिवा वा सन्ध्यायां प्रातर्मध्याह्न एव वा।।७७।।
अयने दक्षिणे चैवोत्तरे वा द्विजपुङ्गव। गङ्गा नारायण ब्रह्मेत्युक्त्वा गङ्गाजलान्तरे।।७८।।
निर्व्वाणमोक्षं दुष्प्रापं नरो याति न संशयः। गङ्गामरणमाहात्म्यं वक्तुंवर्षशतैरपि।।७९।।

गंगाजल के सम्बन्ध में देश-अदेश आदि का विचार न करे। गंगाजल प्राप्त होते ही पहले उसे प्रणाम करे। तदनन्तर संग्रह करके तब पान करे। नारायण क्षेत्र में (गंगा प्रवाह से ४ हाथ तक) जो ब्राह्मण की उपस्थिति में हरिगुण गायन करते प्राणत्याग करता है, वह मुक्ति का ही निदर्शन है। जो सर्वाङ्ग में गंगामृत्ति का लेप करता है तथा रुद्राक्ष, तुलसी तथा बिल्वदल के सान्निध्य में मृत होता है, उसकी मृत्यु भी मोक्षरूपा ही है। गंगा के पास मुमूर्षु व्यक्ति के निकट स्वयं महादेव उपस्थित रहते हैं तथा उसके कानों में मुक्तिप्रद विमल ज्ञानोपदेश प्रदान करते हैं। अतः गंगामरण ही मुक्ति है। यह निःसंदिग्ध है। जो रात्रि, दिन, प्रातः सायं, मध्याह्न में कभी भी गंगा नारायण कहता गंगा जल में प्राण त्यागता है, उसकी मुक्ति निःसंदिग्ध है। गंगामरण की महिमा का वर्णन १०० वर्ष लगातार कहने पर भी समाप्त नहीं होगा!।।७३-७९।।

न शक्यते विधात्रापि किमु मर्त्येन जैमिने। गङ्गा दाक्षायणी त्यक्त्वा देहं दक्षक्रतौ पुरा॥८०॥
जन्ममृत्युव्यथां ज्ञात्वा प्रपन्नान् मोचेयत्ततः। इति ते कथितं ब्रह्मन् यत् पृष्टोऽहं यथामति॥८१॥
गङ्गायां देवपूजादेर्माहात्म्यं शृणु कथ्यते॥

॥इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे गङ्गाधर्म्मेषु षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥



इसकी महिमा का वर्णन विधाता भी कर सकने में समर्थ नहीं हैं। हे जैमिनि! तब मरणधर्मा मनुष्य इनकी महिमा का वर्णन कैसे कर सकता है? दक्षकन्या सती ने दक्षयज्ञ में देहत्याग करके जन्म-मृत्यु की यातना को जानकर शरणागत व्यक्ति की मुक्ति हेतु गंगाजल को प्रवाहित किया। हे ब्राह्मण! तुमने जो पूछा था, वह मैं जहां तक जानता था, कह दिया। अब गंगा के देवपूजादि कार्य माहात्म्य को सुनो॥८०-८२॥

॥षट्पञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त॥



सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गंगा का शिवपूजा विधान

ऋषिरुवाच

योजनाभ्यन्तरस्था हि लिप्सवः फलमक्षयम्। नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कुर्य्युर्हि त्रिविधं विधिम्॥१॥
गङ्गातीरं समागत्य सर्वं तत्राक्षयं भवेत्। कालाशुद्धौ च यत्कार्य्यं मलमासेऽथवा च यत्॥२॥
निषिध्यते तद्धि कार्य्यं गङ्गातीरमुपागतैः। कालपात्रविचारस्तु गङ्गातीरे न विद्यते॥३॥
प्रायश्चित्तञ्च तत्रैव यत्र गङ्गा न विद्यते। गङ्गाप्रवाहे शालग्रामशिलायाञ्च सुरार्च्चने॥४॥
द्विजपुङ्गव नापेक्ष्ये आवाहनविसर्ज्जने। विष्णुं सूर्य्यं गणेशञ्च दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम्॥५॥
षष्ठीञ्च मनसादेवीं दिक्पालांश्च ग्रहानपि। शिवं भूतेश्वरं देवं मुनीनपि यथाविधि॥६॥
भूतान् प्रेतान् पिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा। पितॄन् सर्वान् पूजयेच्च द्विज गङ्गाजले शुचौ॥७॥

ऋषि (व्यासदेव) कहते हैं—हे मुनिवर! जो गंगा से १ योजन के अन्तर्गत निवास करते हैं, वे नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य कर्म गंगातट पर आकर करें। मलमास-आदि अशुद्ध काल में जो निषिद्ध है, उसे भी गंगातट पर सम्पन्न किया जा सकता है। क्योंकि गंगातट पर काल-पात्र का विचार नहीं किया जाता। जहां गंगा नहीं हैं, वहीं प्रायश्चित्त का विधान है। हे विप्रवर! गंगा प्रवाह में तथा शालग्राम शिला में किसी भी देवता की पूजा हेतु आवाहन-विसर्जन प्रयोज्य नहीं है। हे जैमिनि! अति पवित्र गंगाजल में विष्णु, सूर्य, गणेश, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, षष्ठी, मनसा, दिक्पाल, ग्रह, भूतपति शिव, मुनिगण, भूत, प्रेत, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा तथा सभी पितृगण की पूजा हो सकती है॥१-७॥

शुक्ले शुष्के च वसने परिधायासने स्थितः। पूजयेन्निखिलान् देवान् पूर्वास्यो वोत्तरामुखः॥८॥
आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। गन्धं पुष्पं धूपदीपौ वस्त्रालङ्कारमेव च॥९॥
मधुपर्कं तथा माल्यं नैवेद्यं विविधं तथा। ताम्बूलमाचमनीयञ्च पुनर्यत्परिकल्प्यते॥१०॥
उपचारैरमीभिस्तु पूजयेत् सर्वदेवताः। आसनं स्वर्णरूप्यादेः कुशकाशादिकं यथा॥११॥
स्वागतप्रश्नवचनं पाद्यं पादार्थिकं जलम्। अर्घ्यन्तु कथ्यते ब्रह्मंस्तदिहैकमनाः शृणु॥१२॥

मनुष्य गंगातीर पर श्वेत तथा पवित्र वस्त्र पहन कर पूर्वमुखीन किंवा उत्तरमुखीन हो आसन पर आसीन हो जाये। तदनन्तर आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, अलंकार, मधुपर्क, माला तथा विविध नैवेद्य, ताम्बूल तथा पुनः आचमनीय उपचार से समस्त देवगण की पूजा करे। पूर्वोक्त उपचार के अन्तर्गत जो आसन है, उसे स्वर्ण, रौप्य, किंवा कुश अथवा काश से निर्मित करना चाहिए। देवता से प्रश्न करना ही स्वागत है। पैर को धोने हेतु जो जल है, उसे ही पाद्य कहते हैं। अब अर्घ्य का वर्णन करता हूं। उसे एकाग्रता से सुनें।।८-१२।।

त्रिकोणमण्डले वामे तत्र पात्रं निधाय ह। त्रिभागपूर्णसलिलं तत्र शङ्खं निधापयेत्॥१३॥
शुक्लतण्डुलदूर्वादि तत्र दद्यादतन्द्रितः। धेनुमुद्रां योनिमुद्रां दर्शयेच्चाङ्कुशेन च॥१४॥
आवाहयेच्च तीर्थानि यदि गङ्गाजलं न हि। अग्निसूर्य्येन्दुनामभ्यस्तत्र पुष्पाणि निःक्षिपेत्॥१५॥
त्रिकोणपात्रशङ्खेषु क्रमेण द्विजपुङ्गव। अष्टधा मूलमन्त्रञ्च जपेत्तत्र यथातथम्॥१६॥
मन्त्ररूपमिदं वारि अर्घ्यमित्युच्यते बुधैः। तज्जलस्पर्शनात्सर्वं कुर्य्यान्मन्त्रमयं कृती॥१७॥

अपने वामभाग में प्रथमतः त्रिकोण तदनन्तर वृत्तांकन करके शंखाधार रखे। (शंख रखने की तिपाई शंखाधार है)। उस पर शंख स्थापित करके उसका ३/४ जल पूर्ण करे। तदनन्तर श्वेत पुष्प, तण्डुल तथा दूर्वा प्रभृति प्रदान करके धेनुमुद्रा तथा योनिमुद्रा प्रदर्शन करके अंकुशमुद्रा द्वारा तीर्थावाहन करना चाहिए। तथापि यदि गंगाजल है, तब उसमें तीर्थावाहन नहीं करे। हे विप्रवर! इस अंकित त्रिकोण पात्र में तथा शंख में क्रमशः अग्नि, सूर्य, चन्द्र हेतु इनका नाम ले-लेकर यथाक्रमेण पुष्पार्पण करे। इसमें ८ बार मूलमन्त्र का जप करना चाहिए। इस मन्त्रात्मक जल को ही विद्वान् लोग अर्घ्य कहते हैं। पूजक इस मन्त्ररूप जल का स्पर्श करके सर्व कार्य सम्पन्न करे।।१३-१७।।

जलमाचमनीयञ्च गन्धास्तु बहुधा मताः। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमादि प्रभेदतः॥१८॥
पुन्देवेभ्यो गौरशुक्लवसने उचिते मते। देवीभ्यो रक्तगौराणि सूर्य्ये रक्तं विशिष्यते॥१९॥
नीलञ्च मनसादेव्यै कृष्णाय च कदाचन। देवानां यादृशो वर्णस्तद्वस्त्रं तस्य तुष्टिदम्॥२०॥
अलङ्कारास्तस्य देयाः स्वर्णरूप्यविशेषतः। कांश्यपात्रे मधुसितादधीनि घृतमिश्रणात्॥२१॥
मधुपर्को ह्ययं ज्ञेयः सर्वदेवसुतुष्टिदः। धूपस्तु षोड़शाङ्गः स्याद्दशाङ्गश्च क्वचिन्मते॥२२॥
दीपश्च घृतदीपः स्यात् तैलदीपोऽन्ततः किल। माल्यं पुष्पैः सूत्र बद्धैः सुगन्धैर्विविधैरपि॥२३॥

आचमन हेतु जल प्रदान करे। चन्दन-अगुरु-कस्तूरी आदि गन्ध के नाना भेद होते हैं। पुरुष देवगण को गौर तथा शुक्ल वस्त्र प्रदान करे तथा स्त्री देवता को गौर अथवा रक्त वस्त्र प्रदान करे। सूर्य को रक्तवर्ण वस्त्र प्रदान करे। मनसादेवी को नीला वस्त्र देना चाहिए। जिस देवता का जो वर्ण है, उनके लिए उसी वर्ण की वस्तु सन्तोषप्रद होती

है, लेकिन श्रीकृष्ण हेतु यह नियम नहीं है। भले ही वे नील वर्ण हैं, तथापि उनको नीला वस्त्र प्रदान करना वर्जित है। उनको स्वर्ण तथा चांदी का अलंकार देना चाहिए। मधु-शर्करा-दधि-घृत मिला कर कांस्यपात्र प्रदान करे। यही सब देवगण हेतु तुष्टिकर होता है। यही मधुपर्क है। १६ द्रव्य मिश्रित धूप प्रशस्त है। तथापि दशांग धूप भी प्रदान किया जा सकता है। दीपक घृत का ही देना चाहिए। अभाव होने पर तैलदीप भी विहित है। सूत से ग्रथित सुगन्धित नाना पुष्पों की माला प्रदान करे।।१८-२३।।

नैवेद्यं फलदुग्धादि घृतपिष्टं विशेषयेत्। शर्कराद्यैस्तु मधुरमर्घ्यमुद्रा प्रदर्शिता॥२४॥
निवेदयेन्मन्त्रितं तु पुनराचामयेत्ततः। ताम्बूलं कथ्यते ब्रह्मं स्तदिहैकमनाः शृणु॥२५॥
गुवाकपर्णचूर्णैश्च लवङ्गादिविशेषितम्। ताम्बूलमुच्यते देवतुष्टिदं मुखशोभनम्॥२६॥
एतादृशैस्तूपहारैर्गङ्गायां देवमर्च्चयेत्। परभाषां नीचकथामशुचिस्पर्शनं तथा॥२७॥
पूजासनपरित्यागमसमाप्ते सुरार्च्चने। क्रोधं हिंसाञ्च पैशुन्यं चित्तचाञ्चल्यमेव च॥२८॥
अहं त्वञ्च ममेत्यादि बुद्धिं शोकं भयं तथा। त्वराञ्च विषये चिन्तां वर्जयेत् पूजको जनः॥२९॥
पूजाकाले गुरुं प्राप्य पूजामेव परित्यजेत्। गुरुपुत्रञ्च पौत्रञ्च दृष्ट्वापि च तथाचरेत्॥३०॥

फल-दुग्ध के नैवेद्यों को घृत मिलाकर प्रदान करना चाहिए। इस नैवेद्य दानोपरान्त पुनराचमनीय देना चाहिए। इसमें पूर्वोक्त शंखस्थ अर्घ्यजल देना उचित है। हे द्विजप्रवर! ताम्बूल प्रसंग कहता हूं। एकाग्र मन से श्रवण करो। सुपारी मिला, चूर्ण किया, उत्तम लवंग आदि द्रव्य ताम्बूल में रखकर प्रदान करे। इससे देवगण तुष्ट होते हैं तथा मुख में उत्तम गन्ध होती है। इन उपचारों से गंगाजल द्वारा पूजन करना चाहिए। जब तक पूजा सम्पन्न नहीं हो जाती, तब तक अन्य की भाषा में वार्त्ता, नीच के साथ आलाप, अपवित्र वस्तु, व्यक्ति का स्पर्श न करे। जिस आसन पर आसीन हो पूजा की जाये, उसे न छोड़े। अर्थात् पूजा सम्पन्न न होने तक आसन से न हटे। पूजाकाल में पूजक व्यक्ति क्रोध, हिंसा, चित्त चंचलता, अहंकार, ममत्व, शोक, भय न करे। यदि पूजाकाल में गुरु आयें तभी केवल पूजा त्याग करे, आसन न छोड़े। गुरुपुत्र अथवा गुरुपौत्र आते हैं, तब भी यही आचरण करना चाहिए। उनकी पूजा से समान फल होता है। मनुष्य को ऐसे ही इष्ट देवता का पूजन सम्पन्न करना चाहिए।।२४-३०।।

तानेव पूजयेत्तत्र तेनैव ह्यधिकं फलम्। इष्टं संपूजयेन्मर्त्य एवमेवविधानतः॥३१॥
नैवेद्यादीनि द्रव्याणि ब्राह्मणाय समर्पयेत्। शिवपूजाविधिं विप्र तदिहैकमनाः शृणु॥३२॥
निर्म्माय शिवलिङ्गन्तु देवीसहितमादधत्। स्वर्णरूप्यादिना ग्रावमृत्तिकाकृतमेव वा॥३३॥
अङ्गुष्ठपरिमाणन्तु लिङ्गं कुर्य्यात्ततो द्विज। कुर्य्याच्च वेदिकां दिव्यां सोमसूत्रेण संयुताम्॥३४॥
तदधश्चासनं कुर्य्याद् वृषरूपन्तु तन्मतम्। वेदीं कुर्य्याद् योनिरूपां सैव देवी प्रकीर्त्तिता॥३५॥
दण्डाकरञ्च लिङ्गं स्यात् स च साक्षान्महेश्वरः। अङ्गुष्ठपरिमाणन्तु न्यूनत्वावधिरीरितः॥३६॥
ततोऽधिकं यथावत्स्यात् तादृगेव फलं लभेत्। शैलाकारकपर्य्यन्तं रचयेच्छिवलिङ्गकम्॥३७॥

नैवेद्यादि जो कुछ द्रव्य है, उसे देवता को निवेदित करके ब्राह्मण को प्रदान करे। हे विप्र! अब शिवपूजा विधान स्थिर मन से सुनो। स्वर्ण-चांदी, पत्थर किंवा मृत्तिका द्वारा दुर्गा प्रतिमा के साथ अंगुष्ठ माप के शिवलिंग का निर्माण करे। यह लिंग सोमसूत्र बनी प्रशस्त वेदी पर रखना होगा। इस वेदी को वृषभरूपी आसन पर स्थापित करे। देवी

प्रतिमा योनि की आकृति की बनाये। इस योनि को ही देवी कहते हैं। दण्डाकृति लिंग साक्षात् महादेव हैं, इसमें सन्देह नहीं है। लिंग का जो माप कहा गया, वह सबसे न्यून परिमाण बतलाया गया है, अर्थात् उससे लिंग छोटा न हो। लिंग जितना बड़ा होगा, उसका उतना ही फल होता है। यहां तक कि त्रैलोक्याकार शिवलिंग (अत्यन्त विशाल) बनाये।।३१-३७।।

अविदीर्णमशिथिलमव्यङ्गं नापि कारयेत्। यावन्न पूजयेल्लिङ्गं तावच्छून्यं न रक्षयेत्॥३८॥
स्वाङ्गतण्डुलदूर्व्वाद्यैरशून्यं लिङ्गमीक्षयेत्। लिङ्गनिर्म्माणकार्य्यार्थं मृदं नास्नात आहरेत्॥३९॥
उपचारैस्तु तैरेव पूजनीयो महेश्वरः। शिवार्थे मृत्तिकादानं खनित्वा मितमाहरेत्॥४०॥
गङ्गागर्भविदारस्य न दोषस्तत्र कश्चन। विल्वपत्रञ्च शम्भोर्हि परमप्रीतिदायकम्॥४१॥
केवलं गाङ्गतोयं वा शिवप्रीतिकरं परम्। गङ्गातटे शम्भुपूजां यश्चिकीर्षति चेतसा॥४२॥
वक्तुं तस्य फलं विप्र सहस्रास्यो जड़ायते। विल्वपत्रं गाङ्गतोयं यः प्रयच्छति शम्भवे॥४३॥
तयोरन्यतरद्वापि किं न दत्तं शिवाय तत्। शिवाय खलु नैवेद्यं लिङ्गोपरि विनिर्द्दिशेत्॥४४॥

लिंग कहीं से भग्न अथवा चिटका न हो। जब तक उसकी पूजा न हो, तब तक उसे तण्डुल तथा दूर्वा प्रदान करके अलग रखे। लिंग निर्माणार्थ मिट्टी को शिव नाम उच्चारण करते निकाले तथा उसकी पूजा षोडश उपचारों से सम्पन्न करे। इस कार्य हेतु खोद कर मृतिका लाना अथवा गंगागर्भ से लाना दोषपूर्ण नहीं है। बिल्वपत्र महादेव को अत्यन्त प्रिय है, तथापि वे मात्र गंगाजल से भी पूजित होकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। हे विप्र! जो गंगातट पर शिवपूजा करता है, उसके फल को देवता भी नहीं कह पाते! जो व्यक्ति महादेव को गंगाजल तथा बिल्वपत्र प्रदान करते हैं, किंवा दोनों में से मात्र एक से ही पूजा करते हैं, मानो उसने शिव को सब कुछ दे दिया। शिव के लिंग के ऊपर नैवेद्य चढ़ाना चाहिए।।३८-४४।।

षष्ठवक्त्रेण तच्छम्भुरग्निरूपेण तद्ग्रहेत्। तदेव भस्मसाद्भूतं तन्नाश्नीत कदाचन॥४५॥
अग्राह्यं शिवनिर्म्माल्यं पत्रपुष्पफलादिकम्। गृह्णन्नरकमाप्नोति शिवद्वेषकरः परः॥४६॥
तान्त्रिकेन विधानेन शिवं संपूज्य साधकः। लिङ्गोपरि ह्यनिक्षिप्तं नैवेद्यं यद्ददाति वै॥४७॥

तस्य किञ्चित्तु भुञ्जीत न चेद्देवो न खादति।
सर्व्वन्तद् ब्राह्मणे दद्याद् गृह्णीयात् ब्राह्मणोऽपि तत्॥४८॥
सिद्धान्नं शम्भवे दत्तमश्नाति पञ्चभिर्मुखैः।
तच्च दद्याद् ब्राह्मणाय गृह्णीयाद् ब्राह्मणोऽपि तत्॥४९॥

पुष्पचन्दनकादीनि न कदाप्याददेज्जनः। पुरा ब्रह्मा चतुर्वक्त्रः शिवपूजां समाचरन्॥५०॥
चकार शिवनैवेद्यं बहुमिष्टफलान्वितम्। अद्य मे शम्भुरागत्य स्वयमद्यान्निवेदितम्॥५१॥

महादेव उस नैवेद्य को अपने अग्निरूपी छठे मुख से ग्रहण करते हैं। अतः वह तत्क्षण भस्मसात् हो जाता है। अतः लिंग पर चढ़ा द्रव्य कदापि भक्षण न करे। वहां से पत्र-पुष्प-फल आदि कुछ भी ग्रहण करना वर्जित है। इससे व्यक्ति शिव का द्वेष भाजन होकर नरकगामी होता है। साधक तन्त्रोक्त विधि से शिवपूजा करके उस नैवेद्य को यदि लिंग के ऊपरी भाग में न प्रदान करे, तब कुछ अंश भक्षण कर सकता है। तथापि महादेव उसे ग्रहण नहीं करते।

इन सब (लिंग के ऊपरी भाग पर चढ़ाये) नैवेद्यादि को ब्राह्मण को प्रदान करे। ब्राह्मण ही वह ले सकते हैं। जो महादेव को सिद्धान्न देता है, वह अन्न भगवान् पंचम मुख से भक्षण करते हैं। तथापि शिव के उद्देश्य से अर्पित पुष्प-चन्दनादि कदापि ग्रहण न करे। पूर्वकाल में चतुर्मुख ब्रह्मा ने शिवपूजा का संकल्प लेकर नाना मिष्ठान तथा फल तैयार किया तथा ऐसी विवेचना करके पूजार्थ बैठे कि यदि आज महादेव आकर यह अन्न ग्रहण करें, तब पूजा सफल होगी।।४५-५१।।

विधाय मानसन्त्वेवमर्च्चयामास शङ्करम्। तदा कुक्कुररूपेण शम्भुरागत्य तद्विज।।५२।।
खादयामास नैवेद्यं ज्ञातुं ज्ञानन्तु वेधसः। शिवकर्म्मानभिज्ञः स ब्रह्मा दृष्ट्वा श्वभक्षितम्।।५३।।
तं श्वानं ताड़यामास हा हेति सम्भ्रमाद्वदन्। शिवः स्वरूपं जगृहे ब्रह्माणमभ्यभाषत।।५४।।

तब महादेव ने ब्रह्मा के ज्ञान की परीक्षा लेने हेतु कुत्ते का रूप धारण किया तथा वहां रखा नैवेद्य भक्षण कर लिया।! हे द्विज! तब ब्रह्मा कुत्ते को नैवेद्य खाते देख कर बारम्बार हाय-हाय करते हुए कुत्ते को ताड़ित करने लगे, क्योंकि उनको शिव की यह लीला ज्ञात ही नहीं थी। तब महादेव अपने रूप में प्रकट हो गये।।५२-५४।।

शिव उवाच

कथं कुक्कुरबुद्ध्या मां विधे ताड़ितवानसि। त्वद्वाञ्छापूरणार्थाय नैवेद्यं भोक्तुमागतम्।।५५।।
तस्मात् कलङ्की त्वं भूया यन्मां सर्वमताड़यः।

शिव कहते हैं—हे विधाता! तुम मुझे कुत्ता समझ कर क्यों ताड़ित किये जा रहे हो? तुमने कुत्ते के रूप वाले मुझे ताड़ित किया है, अतः तुम कलंकी हो जाओगे।।५५।।

ब्रह्मोवाच

अगृहीत्वा स्वकं रूपं यत्त्वमत्र समागतः। अकृथास्त्वं परीहासं शठरूपधरस्ततः।।५६।।
तव नैवेद्यभोजी स्यात् कुक्कुरो नात्र संशयः।

ब्रह्मा कहते हैं—हे महादेव! आपने अपने रूप का त्याग करके कृत्रिम रूप धारण करके मेरे साथ परिहास किया। इस अपराध के कारण जो आपका नैवेद्य भक्षण करेगा, वह श्वान हो जायेगा। इसमें सन्देह नहीं है।।५६।।

ऋषिरुवाच

एवं शिवोऽभिशप्तोऽगाद् ब्रह्मणा द्विजपुङ्गव। स्वनैवेद्याभोजनाय देवादींश्च न्यषेधयत्।।५७।।
अतो हि शिवनैवेद्यमग्राह्यं द्विजपुङ्गव। एवमादिविधानेन पूजयेच्च त्रिलोचनम्।।५८।।
अष्टमूर्त्तीरथाभ्यर्च्चय क्षमस्वेति विसर्ज्जयेत्। शिवलिङ्गेऽपि सर्वेषां देवानां पूजनं भवेत्।।५९।।
सर्वलोकमये यस्माच्छिवशक्ती विभुप्रभुः। वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वापि कर्त्तनम्।।६०।।
न त्वसंपूज्य भुञ्जीत भगवन्तं त्रिलोचनम्। प्रत्यहं खलु कुर्व्वीत शिवलिङ्गप्रपूजनम्।।६१।।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः स्त्री चान्त्यजोऽपि च।
पराङ्मुखः शिवार्च्चायां योऽर्च्चयेद्देवतागणम्।।६२।।
विफलं तस्य तत्सर्वं यथौषधममन्त्रितम्। पराङ्मुखः शिवार्च्चायां यो भुङ्क्तेऽन्नजलादिकम्।।६३।।

अन्नं विष्ठा पयो मूत्रं मुखं तस्य न दृश्यते। गुरुः स्वयं शिवः साक्षात् गुरुपत्नी च पार्व्वती॥६४॥

ऋषि कहते हैं—हे जैमिनि! महादेव ने विधाता से अभिशप्त होकर गायन किया तथा देवगण को भी अपना नैवेद्य खाने से मना कर दिया। हे द्विजवर! इसी कारण से शिव (लिंग) नैवेद्य अग्राह्य है। इस विधि से शिवपूजनोपरान्त अष्ट मूर्त्ति पूजन करने के पश्चात् 'क्षमस्व' कहकर विसर्जन करे। शिवलिंग में सभी देवगण की पूजा सम्पन्न हो सकती है। शिव तथा शक्ति सर्वलोकमय हैं तथा प्रभुओं के भी प्रभु हैं। यदि इस पूजा में प्राण चला जाये, मस्तक छिन्न हो जाये, तथापि भगवान् शिव के पूजन बिना आहार ग्रहण न करे। नित्यप्रति शिवलिंग की पूजा करनी चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री किंवा अन्य अन्त्यज भी यदि शिवपूजा विमुख हो अन्य की पूजा करते हैं, तब वह सब मन्त्रपूत न किये गये औषध के समान नष्ट हो जाता है। जो शिवपूजा किये बिना जल भी पी लेता है, तब वह जल मूत्रतुल्य, अन्न मलतुल्य है। उसका मुख नहीं देखना चाहिए। गुरु साक्षात् शिव हैं। गुरुपत्नी साक्षात् पार्वती हैं।।५७-६४।।

तौ नापूज्य तु यो भुङ्क्ते मुखं तस्य न दृश्यते।
शिवः साक्षात्पिता देवः पार्व्वती जननी शिवा॥६५॥
तौ न पूज्य तु यो भुङ्क्ते मुखं तस्य न दृश्यते।
शिवं नाभ्यर्च्च्य यस्यास्ति रुचिर्भोजनकर्म्मणि॥६६॥

स एव शूकरः श्वा च मनुष्यरूपतां गतः। सूतके मृतकेऽशौचे न त्यजेच्छिवपूजनम्॥६७॥
वर्जयित्वा दशाहन्तु महागुरुनिपातने। पूर्वस्यां दिशि वै शम्भोः क्षितिमूर्त्तिर्द्विजर्षभ॥६८॥

इन दोनों का पूजन किये बिना जो अन्नभक्षण करता है, उसका मुखदर्शन न करे। शिव साक्षात् पिता हैं, पार्वती जननी हैं। उनकी पूजा किये बिना जो भोजन करता है, उसका मुख न देखे। जो बिना शिवपूजा किये दोनों समय का भोजन ग्रहण करता है, वह मनुष्य रूप में साक्षात् शूकर अथवा श्वान है। शुभाशौच तथा मृताशौच में भी शिवपूजा न छोड़ें, तथापि महागुरु की मृत्यु होने पर १० दिन पूजा वर्जित रहती है। हे द्विजवर! पूर्व दिशा में महादेव की पृथिवी मूर्त्ति विराजित रहती है।।६५-६८।।

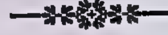
दक्षिणस्यां वह्निमूर्त्तिर्नभोमूर्त्तिस्तु पश्चिमे। उत्तरे सोमसूत्रश्च सोममूर्त्तिः प्रकीर्त्तिता॥६९॥
जलाग्नियजमानार्क्का अग्निनैर्ऋतकादिषु। सर्वो भवो रुद्र उग्रो भीम नामा पशोः पतिः॥७०॥
महादेवस्तथेशानः पूर्व्वाग्न्यादिषु संज्ञिताः। मध्ये शिवश्च संपूज्यो वेद्यां शक्तिश्च पूज्यते॥७१॥

दक्षिण की ओर अग्निमयी मूर्त्ति, पश्चिम में व्योममूर्त्ति, उत्तर में सोममूर्त्ति तथा सोमसूत्र विराजित है। अग्नि, नैर्ऋत्य, वायु तथा ईशानकोण में यथाक्रमेण जल, अग्नि, वायु तथा सूर्यमूर्त्ति रहती है। पूर्वादिदिक् में दक्षिणावर्त्त क्रमेण सर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव तथा ईशान का नामोल्लेख करके पूजा करे। ये सभी मूर्त्ति इसी नाम से विख्यात हैं। मध्य में शिव नाम का उल्लेख करके पूजा करनी चाहिए। वेदी पर शक्तिपूजा की जाती है।।६९-७१।।

ततो जप्त्वा नृत्यगीतवाद्यैः स्तुत्वा प्रणम्य च। सर्वदेवमयं शम्भुं विहरेत्तु यथासुखम्॥७२॥
अर्द्धचन्द्राकृतिः शम्भुप्रदक्षिणे नतिः स्मृता। यत उत्तरतो गत्वा सोमसूत्रं न लङ्घयेत्॥७३॥

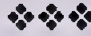
नातः परतरं कर्म्म त्रिषु लोकेषु विद्यते। गङ्गायामन्यतो वापि तवोक्तं शिवपूजनम्॥७४॥
गङ्गातीरे शम्भूपूजाफलं वक्तुं शिवो जड़ः॥७५॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे गङ्गाधर्म्मेषु सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।



पूजा सम्पन्न होने पर जपोपरान्त नृत्य, गीत, वाद्य से स्तव के पश्चात् सर्वदेवमय शिव को प्रणाम करके यथेच्छ विचरण करे। महादेव की प्रदक्षिणा तथा नमस्कार अर्द्धचन्द्राकार होता है। तदनन्तर उत्तरदिक् में सोमसूत्र लंघन न करे। शिवपूजा के समान तीनों लोक में कोई (उत्तम) कर्म नहीं है। गंगा पर शिवपूजा के विषय में अन्यत्र तुमसे कहा था। यहां शिवपूजा का क्या फल है, उसे बतलाने की वाक् शक्ति शिव की भी नहीं है।।७२-७५।।

।।सप्तपंचाशत्तम अध्याय समाप्त।।



अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गंगा श्राद्धविधि, अष्टमुख-षोडशमुख ब्रह्मा के साथ चतुर्मुख ब्रह्मा का संवाद

ऋषिरुवाच

श्राद्धं कुर्य्यात्तु गङ्गायां पार्व्वणेन विधानतः। तीर्थश्राद्धं हि तत्प्रोक्तं पितॄणां परितोषणम्॥१॥
यस्तु गङ्गां समासाद्य श्राद्धं सांवत्सरं चरेत्। गयाश्राद्धमकृत्वापि पितॄणां निर्ऋणस्तु सः॥२॥
गङ्गायाञ्च गयायाञ्च पिण्डदानं समं मतम्। विशेषतः कलियुगे गङ्गापिण्डः प्रशस्यते॥३॥
अपमृत्युमृताश्चापि गङ्गायां पिण्डदानतः। यान्ति दुर्गतिमुत्सार्य्य क्रियार्हाः परमां गतिम्॥४॥

ऋषि (व्यासदेव) कहते हैं—गंगा तट पर पार्वण विधि के अनुसार श्राद्ध करे। इसे तीर्थश्राद्ध कहते हैं, जिससे पितृलोक सन्तुष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति गंगातट पर सांवत्सरिक श्राद्ध करता है, गया श्राद्ध न करने पर भी वह पितृऋण से मुक्त हो जाता है। गंगा एवं गया, दोनों जगह पिण्ड का समान फल है। विशेषतः कलिकाल में गंगा पर पिण्डदान प्रशस्त है। जिसकी अपमृत्यु हुई है, गंगा में पिण्डदान से वह दुर्गति त्याग करके परमगति प्राप्त करता है।।१-४।।

अमावास्यासु गङ्गायां श्राद्धं-तर्पणमेव च। कुर्य्यात् सह तिलैर्विप्र तुलसीकुशसंयुतैः॥५॥
तर्पणे तिलनिषेधस्तु वारे भास्करकाव्ययोः। सोऽन्यत्र न तु गङ्गायां जैमिने नात्र संशयः॥६॥
श्राद्धपूर्व्वदिने यानि वर्जयेत्तानि मे शृणु। तैलञ्चैवामिषं मांसं मसूरञ्च द्विभोजनम्॥७॥
तिक्तद्रव्यं मैथुनञ्च रोषं शोकञ्च पैशुनम्। क्रोशोर्द्ध्वगमनञ्चैव कलहं हिंसनन्तथा॥८॥
रोदनं रक्तपातञ्च शस्त्रास्त्रधारणं तथा। परान्नभोजनञ्चैव श्राद्धपूर्वदिने त्यजेत्॥९॥

नद्यादिपारगमनं व्यायामं क्रयविक्रयौ। श्राद्धाहेऽपि परित्यज्यान्येतान्यन्यानि मे शृणु॥१०॥
अध्यापनञ्चाध्ययनं सायंसन्ध्यां तथैव च। धान्यमुद्गमसूरादेराघातञ्च विवर्जयेत्॥११॥
तन्तुनिर्म्माणमस्वास्थ्यं याच्ञाञ्च परवेश्मनि। स्नानदानाद्यकृत्वा तु यो गङ्गां लङ्घयेज्जनः॥१२॥
तस्य तद्विफलं कर्म्म पूर्वकर्म्म च नश्यति। तस्मात् स्नानादि कृत्वैव गङ्गापारं व्रजेद् गृही॥१३॥

अमावस्या के दिन तिल, तुलसीपत्र तथा पुष्पादि से गंगा में श्राद्ध तथा तर्पण करे। हे जैमिनि! रविवार तथा सोमवार को तिल तर्पण निषिद्ध है, तथापि गंगा में निषिद्ध नहीं है। श्राद्ध के पूर्व दिन जो निषिद्ध है, उसे सुनो। तैल, आमिष, मांस, मसूर, द्विभोजन (दो बार भोजन), त्यक्त द्रव्य भोजन, मैथुन, क्रोध, शोक, पैशुन्य (चुगली), एक कोस से ज्यादा चलना, कलह, हिंसा, रोना; रक्तपात, शस्त्रधारण, अस्त्रधारण तथा परान्न भोजन त्याज्य है। नदी पार जाना, व्यायाम, क्रय-विक्रय, अध्यापन, अध्ययन, सायं-सन्ध्या, धान्य-मूंग, मसूर आदि सूंघना, तन्तु निर्माण, अस्वास्थ्य, पराये गृह में याचना श्राद्ध के दिन त्याज्य है। जो व्यक्ति स्नान-दान किये बिना गंगा को पार करता है, उसके वांछित कर्म तथा पूर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं। अतः गृही व्यक्ति स्नान आदि सम्पन्न करके ही गंगा पार जाये।।५-१३।।

वृथा न लङ्घयेद्गङ्गां विना कार्य्यं कदाचन। गङ्गातटद्वये पुण्ये दृश्यते ब्राह्मणो यदि॥१४॥
तदा तं प्रणमेद्भक्त्या ब्रह्माणमिव चागतम्। गङ्गातटे गवाञ्चैव दर्शनं स्यान्महाफलम्॥१५॥
शुष्कवस्त्रं पुष्पवनं सुन्दरीं तुलसीतरुम्। दृष्ट्वा गङ्गातटे विप्र प्रणमेत् परया मुदा॥१६॥
हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्राह्वसारसानपि। राजानं हस्तिनं पद्मं खञ्जनं शुकमेव च॥१७॥
प्रणमेन्मनसा भक्त्या शङ्खचिल्लं तथैव च। ब्राह्मणस्थापनञ्चैव शिवस्थापनमेव च॥१८॥
दुर्गाविष्ण्वालयान् दत्त्वा पुनर्जन्म न विद्यते। पाषाणैरिष्टकाभिर्वा मृदा वा भक्तिसंयुतः॥१९॥
शोभयेत्तटमीशायाः स पुनर्जन्मवञ्चितः। सायं प्रातश्च मध्याह्ने गङ्गायास्तटमार्जनात्॥२०॥
कोटिजन्मार्जितं पापं तस्य मार्जयते शिवा। गङ्गातटं समागत्य प्रसन्नं यस्य नो मनः॥२१॥
निगृहीतः सर्व्वदेवैः स एव क्रूर उत्तमः। गङ्गातटं समासाद्य अश्रुपातान् करोति यः॥२२॥
तस्याग्निसागरे वासो यावद्ब्रह्मसहस्रकम्। गङ्गातरङ्गरङ्गाभं सानन्दं यस्य मानसम्॥२३॥
तस्य वै पितरो देवाः सदानन्दानुरङ्गिणः। गङ्गावासं परित्यज्य योऽन्यत्र वासमिच्छति॥२४॥
स गङ्गां लभते नैव परित्यक्तश्च गङ्गया। कीकटादिषु देशेषु जायते स नराधमः॥२५॥
म्रियते च पुनस्तत्र विष्ठाशूकरमारितः। ततश्चाकाशगो भूत्वा रोदमानो भ्रमत्ययम्॥२६॥
चिचीकुचीतिशब्देन लोकानुद्वेजयत्यसौ। कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च॥२७॥
कृत्वा भोगानिमान् भूयो जायते शूकरादिषु। पुनः पुनस्तथावस्थां तैलयन्त्रवृषो यथा॥२८॥
भुङ्क्ते विप्रगुरुद्वेषब्रह्मद्वेषकरोऽपिच। यस्तु त्यक्त्वा सुखस्थानं गङ्गामायाति सन्मतिः॥२९॥
जीवन्मुक्तः स एवोक्तः किन्तस्य परमा कथा। इति ते कथिता विप्र गङ्गाधर्म्मा यथामति॥३०॥

गंगा को व्यर्थ पार न करे। गंगा के दोनों तटों पर ब्राह्मण दृष्ट होने पर उसे भक्ति भाव से प्रणाम करके ब्रह्मा

की तरह माने। गंगातट पर गौदर्शन महाफलदायक है। गंगातट पर श्वेत वस्त्र, वनपुष्प, सुन्दरी तथा तुलसी का पौधा देखने पर उसे परम आदर के साथ प्रणाम करना चाहिए। हंस, कारण्डव, क्रौञ्च, चक्रवाक्, सारस, राजा, हाथी, पद्म, खञ्जन पक्षी, शुक तथा शंख चील दृष्ट होने पर उनको भक्ति के साथ प्रणाम करे। गंगा तट पर ब्राह्मण स्थापना, शिव स्थापना, शिव-दुर्गा-विष्णु मन्दिर दान करने से पुनर्जन्म नहीं होता। पाषाण, ईंट किंवा मृत्तिका से जो भक्तिपूर्वक निवास बनाकर गंगातट पर निवास करता है, उसे पुनर्जन्म रूपी यातना नहीं मिलती। सायं, प्रातः, मध्याह्न काल में जो व्यक्ति गंगा का तट साफ करता है, गंगादेवी उसके करोड़ों जन्मकृत पापों को नष्ट कर देती हैं। गंगातट आने पर जिसका मन प्रसन्न नहीं होता, सभी देवता उसे त्याग देते हैं। वह क्रूर कहा गया है। जो गंगातट पर आकर अश्रुपात करता है। वह व्यक्ति ब्रह्मा के वर्षमान के अनुसार १००० वर्ष पर्यन्त अग्नि सागर में निवास करता है। जिसका मन गंगातरंगवत् सदा प्रफुल्लित है, उसके पितृलोग उस पर सदा आनन्दित तथा प्रसन्न रहते हैं। जो गंगावास त्याग कर अन्यत्र निवास करना चाहता है, गंगा उसे त्याग देती हैं। वह नराधम कीकट आदि देशों में जन्म लेकर विष्ठाशूकर द्वारा मारा जाकर आकाश में रोदन करता है तथा चीं-चीं शब्द से लोगों को उद्वेलित करता है। इस प्रकार वह करोड़ों कल्प भोग भोगने के उपरान्त शूकरादि योनि प्राप्त करता है तथा कोल्हू के बैल की तरह पुनः पुनः इसी अवस्था का भोग करता है। वह गुरुद्वेषी तथा ब्रह्मद्वेषी रहता है। जो सद्बुद्धि वाला मनुष्य सुखमय स्थान का भी त्याग करके गंगातट पर रहता है, वह जीवन्मुक्त है। उसकी क्या बात कहें। हे विप्र! मैंने यथामति गंगाधर्म का वर्णन कर दिया।।१४-३०।।

गङ्गाधर्म्मान् हि सकलान् वक्तुं ब्रह्माप्यपण्डितः।
विष्णुस्तु मूकतां याति सत्यमेव न संशयः।।३१।।
शिवो भवति निर्वाक्यो मनुष्यः किं वदिष्यति। अत्रेतिहासं शृणु भो जैमिने परमाद्भुतम्।।३२।।
पुरा ब्रह्माणमृषयः पप्रच्छुः परिहर्षिताः। वद ब्रह्मन् महावाहो गङ्गामाहात्म्यमेव नः।।३३।।

हे विप्र! समस्त गंगाधर्म वर्णन करने में तो ब्रह्मा का भी पाण्डित्य लुप्त होता है। विष्णु मूक हो जाते हैं। महेश्वर भी निर्वाक् हो जाते हैं। अतः इस धर्म वर्णन में मनुष्य कैसे समर्थ होगा? हे जैमिनि! इस प्रसंग में एक पुरातन परम विस्मयात्मक प्रसंग सुनो। पूर्वकाल में ऋषिगणों ने आनन्दित होकर ब्रह्मा से कहा—हे ब्रह्मन्! महाबाहो! गंगा माहात्म्य कहिये।।३१-३३।।

ब्रह्मोवाच

नास्मि वै गङ्गामाहात्म्यस्वरूपवचनक्षमः। जानीत शिवविष्णू चेत्तौ गत्वा परिपृच्छत।।३४।।

ब्रह्मा कहते हैं—गंगा माहात्म्य स्वरूप कथन में मैं असमर्थ हूं। यह महेश्वर तथा विष्णु को कुछ परिमाण में ज्ञात है। उनके पास जाकर जिज्ञासा करो।।३४।।

ऋषय ऊचुः

त्वमेव गत्वा ज्ञात्वैति त्वत्तः श्रोष्यामहे वयम्। शिवविष्णुसभां गन्तुं वयं नैव हि शक्नुमः।।३५।।

ऋषिगण कहते हैं—तब आप ही जाकर इसे ज्ञात करें। तदनन्तर हम आपके मुख से सुनेंगे। हम लोग शिव तथा विष्णु के यहां जाने में समर्थ नहीं हैं।।३५।।

ऋषिरुवाच

इत्युक्त ऋषिभिर्ब्रह्मा गन्तुं समुपचक्रमे। कैलासं प्रययौ चादौ तत्रापश्यन् महेश्वरम्।।३६।।
कोटिचन्द्ररुचिं कान्तं पिहितं व्याघ्रचर्म च। दधानंशिरसा गङ्गां तरङ्गैः सुमनोहराम्।।३७।।
तज्जातैः परमानन्दैर्महानृत्यरसस्थितम्। रोमाञ्चिताङ्गञ्च मुहुस्तरङ्गध्वनिकर्णनात्।।३८।।
पुनः पुनश्च हृष्यन्तं बहिर्ज्ञानविवर्जितम्। तं गङ्गानन्दिनं दृष्ट्वा विस्मितोऽभूच्चतुर्म्मुखः।।३९।।
अप्राप्य प्रश्नसमयं वैकुण्ठं प्रययौ विधिः। तत्र जातो महान् वायुस्तेन विक्षेपितो विधिः।।४०।।
ब्रह्माण्डान्तरमापन्नो यत्राष्टास्यो विधिः परः। तं दृष्ट्वाष्टमुखं धाताभ्यभाषत चतुर्म्मुखः।।४१।।

ऋषि व्यासदेव कहते हैं—यह कहकर ब्रह्मा जाने लगे। वे कैलास जाकर देखते हैं कि महादेव ने व्याघ्रचर्म धारण किया है तथा कोटि चन्द्रवत् मूर्त्ति धारण करके गंगा देवी का आनंद वर्द्धित कर रहे हैं। उनके शिर पर स्थित गंगा अपनी तरंगों से सुमनोहर प्रतिभात हो रहीं थीं। वे प्रभु शिव वहां परमानन्द में मग्न महानृत्य रस से सराबोर थे। उनके अंग रोमांचित थे। उनके कर्ण इस तरंग ध्वनि से मुह्यमान थे। वे बाह्यज्ञान रहित हो पुनः पुनः हर्षित हो रहे थे। चतुर्मुख ब्रह्मा ने यह देखा, तब विस्मित हो गये। उन्होंने इसे प्रश्न करने लायक उचित समय नहीं समझा, क्योंकि भगवान् शिव गंगा के आनन्दवर्द्धन में व्यस्त थे। तब वे वैकुण्ठ जाने लगे, तथापि मार्ग में प्रबल वायु द्वारा उड़ाये जाकर अन्य ब्रह्माण्ड में जा पहुंचे। वहां उन्होंने आठ मुख वाले ब्रह्मा को देखा तथा उनसे पूछने लगे।।३६-४१।।

चतुर्म्मुख उवाच

कस्त्वं केनाप्यधिकृतः किंनामासि मुखाष्टधृक्। अहं चतुर्म्मुखो ब्रह्मा प्रणिपत्य नमामि ते।।४२।।

चतुर्मुख ब्रह्मा कहते हैं—आप अष्टमुख का नाम क्या है? मैं चतुर्मुख ब्रह्मा आपको प्रणाम करता हूं।।४२।।

अष्टमुख उवाच

पुराहमुन्दुरुः कश्चिन्मर्त्यलोकगृहस्थितः। मार्जारस्य भयाद्गङ्गाजले प्राणानहं जहौ।।४३।।
स एवाहमष्टमुखो ब्रह्माण्डेस्मिन्नधिष्ठितः। त्वञ्च गङ्गार्थजिज्ञासु वैकुण्ठं याहि सत्वरम्।।४४।।

अष्टमुख ब्रह्मा कहते हैं—पूर्वकाल में मैं मर्त्यलोक के किसी गृहस्थ के घर मूषक योनि में था। वहां बिड़ाल के पीछा करने पर भयवशात् गंगा में गिरा तथा मृत हो गया। तभी से मैं अष्टमुख ब्रह्मा होकर इस ब्रह्माण्ड में विद्यमान हूं। आपने गंगा महिमा जानना चाहा है, तब आप शीघ्र वैकुण्ठ गमन करें।।४३-४४।।

चतुर्म्मुख उवाच

नाहं जाने क्व वैकुण्ठो वायुविक्षेप आगतः। मह्यं दर्शय पन्थानं येन वैकुण्ठमाप्नुयाम्।।४५।।

चतुर्मुख ब्रह्मा कहते हैं—मैं प्रबल वायु से फेंका जाकर यहां पहुंचा। मैं वैकुण्ठ का पथ नहीं जानता। आप मुझे वैकुण्ठ का पथदर्शन करायें, जिससे मैं वैकुण्ठधाम जा सकूं।।४५।।

शुक उवाच

इत्त्युक्तोऽष्टमुखो ब्रह्मा समभ्यच्चर्य चतुर्म्मुखम्।
पन्थानं दर्शयामास तेन सोऽपि ययौ विधिः।।४६।।

वैकुण्ठं पुनरागत्य पुनः क्षिप्तः स वायुना। ब्रह्माण्डान्तरमापन्नो यत्रास्यषोड़शो विधिः॥४७॥
सोऽपि विस्मितचित्तेन पृष्टः षोड़शवक्त्रकः। ऊचे निजसमाचारं शृणुत द्विजपुङ्गव॥४८॥

शुक कहते हैं—तदनन्तर अष्टमुख ब्रह्मा ने चतुर्मुख ब्रह्मा का यथायोग्य सम्मान किया तथा उनको मार्ग बतला दिया, तब चारमुख वाले ब्रह्मा पुनः जाने लगे। लेकिन पुनः प्रबल वायु ने उनको उड़ा कर अन्य ब्रह्माण्ड में फेंक दिया। वहां उन्होंने एक १६ मुख वाले ब्रह्मा को देखा तथा विस्मय में पड़ गये। उन्होंने विस्मयपूर्वक उनसे पूछा, तब षोडश मुख ब्रह्मा अपना समाचार व्यक्त करने लगे।।४६-४८।।

षोड़शमुख उवाच

अहमासं पुरा कश्चित् कुक्कुरो नरमांसभुक्। गङ्गायां कण्ठलग्नास्थिर्मृतः सोऽहं चतुर्म्मुख॥४९॥

षोडशमुख ब्रह्मा कहते हैं—मैं पूर्व में नरमांस भोजी श्वान था। गले में हड्डी फंस जाने के कारण मेरी मृत्यु गंगातट पर हो गयी। तदनन्तर मैं षोडशमुख ब्रह्मा होकर यहां स्थित हूं।।४९।।

शुक उवाच

श्रुत्वैतद्भुतं भूयो ब्रह्मा देवश्चतुर्मुखः। अध्वना तेन दिष्टेन वैकुण्ठं पुनरागतः॥५०॥
आगत्य ददृशे तत्र चतुरः सूर्य्यवर्च्चसः। विष्णुरूपधरा श्यामाः पीतवस्त्राश्चतुर्भुजा॥५१॥

शुकदेव कहते हैं—यह विचित्र प्रसंग सुनकर चतुर्मुख ब्रह्मा उन षोडशमुख ब्रह्मा के बताये मार्ग से वैकुण्ठ पहुंचे। वहां उन्होंने चार विष्णुरूप धारी चतुर्भुज पुरुषों को देखा। उनका वस्त्र पीतवर्ण था तथा वे सूर्यवत् तेजस्वी थे। तब ब्रह्मा ने उनसे पूछा।।५०-५१।।

ब्रह्मोवाच

के यूयं विष्णवो ह्येते विष्णुरेकः श्रुतो मया। विष्णुरन्यो वर्त्तते वा वैकुण्ठेऽत्र हरेः पुरे॥५२॥

ब्रह्मा कहते हैं—आप सभी विष्णु के समान हैं। आप कौन हैं? जहां तक मैं जानता हूं, विष्णु एक हैं। क्या अब वैकुण्ठ में अन्य विष्णु भी हैं?।।५२।।

वैष्णवा ऊचुः

अन्योऽस्ति विष्णुरनघो वयं वै विष्णुकिङ्कराः। अस्माकं पूर्व्ववृत्तान्तं शृणु ब्रह्मंश्चतुर्म्मुख॥५३॥
गङ्गाजले शवे केचित् कृमयो बहवः स्थिताः। चत्वारस्तत्र च मृताः स्त्रोतोवेगेन ते वयम्॥५४॥

वैष्णवगण कहते हैं—हम विष्णु नहीं हैं। उनके किंकर हैं। हे चतुर्मुख! हमारा पूर्वप्रसंग सुनें। गंगाजल में पड़े एक शव में कुछ कृमि थे। उनमें से चार कृमि मृत हो गये। अब उन चारों की यह अवस्था है, जो आप देख रहे हैं!।।५३-५४।।

ऋषिरुवाच

श्रुत्वैवं वचनं तेषां ब्रह्मासौ चतुराननः। तस्मान्निववृते देवीमनन्तामव बुद्धवान्।
आगत्य ऋषिमण्डल्यां वृत्तान्तं सर्व्वमब्रवीत्॥५५॥

ऋषि कहते हैं—चतुरानन् ने यह वाक्य सुना तब उनके समझ में देवी गंगा की अनन्त महिमा आने लगी। तत्क्षण वे वहां से वापस लौट पड़े। तदनन्तर उन्होंने ऋषिमण्डली में आकर कहा।।५५।।

ब्रह्मोवाच

दृष्टौ मया तु ब्रह्माणौ अष्टास्यषोड़शास्यकौ। उन्दुरुकुक्कुरौ गङ्गाजले त्यक्ततनू उभौ।।५६।।
द्वौ ब्रह्माण्डपती द्वौ च दिव्यरूपौ मुनीश्वराः। ततश्च कृमयो दृष्टाः पूर्व्वं गङ्गाजले मृताः।।५७।।
वैकुण्ठे नीरदश्यामाः सुन्दरा वनमालिनः। शङ्खचक्रगदापद्मधारिणः पीतवाससः।।५८।।
चत्वारश्चारुरूपास्ते विष्णुरूपधराः पराः। तान् ज्ञात्वा च निवृत्तोऽहं गङ्गानन्तगुणेत्यपि।।५९।।
ज्ञातं यां शिरसा धृत्वा शिवोऽन्यज्ञानवर्जितः। तस्या अहन्तु गङ्गाया गुणान् ज्ञातुमशेषतः।।६०।।
मौर्ख्याद्भ्रान्तो बहून् देशान् प्राप्तञ्च तादृशं फलम्।
अहञ्च तस्या गङ्गाया मशकादिषु कोऽप्यहम्।।६१।।
केऽन्ये वराका इन्द्राद्या मानुषा वा द्विजोत्तमाः। तस्माद्गङ्गेव परमा यया ब्रह्मादि सृज्यते।।६२।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! मैंने दो ब्रह्मा देखे। एक अष्टमुख थे, दूसरे षोडशमुख थे। पूर्व जन्म में वे क्रमशः मूषक तथा श्वान थे। गंगाजल में देह त्याग करने से वे दिव्य देहधारी ब्रह्माण्डाधिपति हो गये। तदनन्तर वैकुण्ठ धाम में मैंने चार शंख-चक्र-गदा-पद्म धारी, पीत वस्त्र से शोभित विष्णुरूपी पुरुषों को देखा, जिनका रूप अतीव मनोरम था। उनके गले में वनमाला शोभायमान थी। वे समुज्वल श्यामवर्ण थे। उनका श्यामवर्ण रूप नवीन नीरदावालि को भी लज्जित कर रहा था। वे पूर्व जन्म में शवदेह खाने वाले कीट थे। गंगाजल में देहत्याग द्वारा उनका यह रूपान्तरण हो गया। मैंने सब देख कर यह समझा कि गंगा महिमा अनन्त है। यह भी समझ लिया कि जिनको मस्तक पर धारण करने से महेश्वर देव अन्य ज्ञानशून्य हो गये हैं, उन गंगा के समक्ष मनुष्य तथा देवगण की क्या गिनती! उनके सामने मैं भी मशक तुल्य हूं। अतः जिनसे ब्रह्मादि की उत्पत्ति होती है, वे गंगा ही त्रैलोक्य में परमाराध्या हैं।।५६-६२।।

शुक उवाच

इत्युक्ता मुनयः सर्व्वे गङ्गानामपरायणाः। गायन्तश्च गृणन्तश्च शृन्वन्तश्चापि बभ्रमुः।।६३।।
इति ते कथितं किञ्चिद्गङ्गाया मतिरूपतः। किमन्यत् कथयामीह वद शुश्रूषतस्तव।।६४।।

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे गङ्गाधर्म्मेषु अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।



शुक कहते हैं—मुनिगण ने ब्रह्मा का वाक्य सुना तथा गंगानाम परायण हो गये। कोई गंगा नामोच्चार करता, कोई नाम गाता, कोई उनका नाम सुनते-सुनते चलने लगता। इस प्रकार यथाबुद्धि गंगा की महिमा कुछ अंश में मैंने कहा। अब क्या सुनने की इच्छा है?।।६३-६४।।

।।अष्टपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त।।



ऊनषष्टितमोऽध्यायः

वंश-मन्वन्तर कथन

जैमिनिरुवाच

पूर्वमुक्तास्त्वया ये तु ब्रह्मन्मन्वन्तरा इति। तेषां नामानि मे ब्रूहि राजवंशांश्च सर्व्वशः॥१॥

जैमिनि कहते हैं—हे ब्रह्मन्! पहले आपने जो मन्वन्तर कथा कही है, अब उसका नाम तथा समस्त राजवंश कहें।।१।।

ऋषिरुवाच

देवानां स्यादहोरात्रो नरवर्षेण कथ्यते। शतत्रयत्रिषष्ठ्यब्दैर्दिव्यो वत्सर उच्यते॥२॥
तैश्च द्वादशसाहस्त्रवत्सरैश्च चतुर्युगम्। तत् सहस्त्रं ब्रह्मदिनं ततो रात्रिस्तथा मता॥३॥
मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः। इन्द्रस्यैकस्य कालोऽयं स्वर्गराज्याधिकारिणः॥४॥
इन्द्राश्चतुर्दश ह्येवं म्रियन्ते ब्रह्मणो दिने। तेषां नामानि ते ब्रह्मन् श्रुतं व्यासमुखान्मया॥५॥
आद्यः स्वायम्भुवः प्रोक्तो मनुर्ब्रह्मशरीरभूः। द्वितीयस्तु मनुः प्रोक्तो नाम्ना स्वारोचिषो मुने॥६॥
उत्तमाख्यस्तृतीयस्तु चतुर्थस्तामसः स्मृतः। पञ्चमो रैवतो नाम षष्ठश्चाक्षुष उच्यते॥७॥
सप्तमः श्राद्धदेवाख्यः सावर्णिरष्टमः स्मृतः। नवमो ब्रह्मसावर्णिर्विष्णुसावर्णिरप्यतः॥८॥
एकादशस्तथा प्रोक्तो रुद्रसावर्णिरीश्वरः। (द्वादशो धर्म्मसावर्णिर्वेदसावर्णिरप्यतः)॥९॥
इन्द्रसावर्णिनामा च भविष्यति चतुर्दश। मन्वन्तराः सप्त विप्र व्यतीता भाविनोऽपरे॥१०॥

ऋषि कहते हैं—मनुष्यों का एक वर्ष देवगण का एक अहोरात्र होता है। अतएव ३६० वर्ष का एक दिव्य वर्ष होता है। ऐसे १२००० वर्ष (दिव्य वर्ष) का एक चतुर्युग होता है। १००० चतुर्युग का ब्रह्मा का एक अहोरात्र होता है। इसमें से २८ युग सन्ध्या तथा सन्ध्यांश कहे गये हैं। ७१ दिव्ययुग का एक मन्वन्तर होता है। एक मन्वन्तर ही एक इन्द्र का राज्यत्व काल है। इस प्रकार ब्रह्मा के एक दिन में १४ इन्द्र बदल जाते हैं। अब मैंने व्यासदेव से जो सुना है, तदनुसार उनके नाम कहता हूं। प्रथम स्वायम्भुव मनु ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न हुए। द्वितीय थे स्वारोचिष मनु, तृतीय उत्तम मनु, चतुर्थ तामस मनु, पंचम रैवत मनु, षष्ठ चाक्षुष मनु, सप्तम श्रद्धदेव मनु, अष्टम सावर्णि मनु, नवम ब्रह्मसावर्णि, दशम विष्णु सावर्णि, एकादश रुद्र सावर्णि, द्वादश धर्मसावर्णि, त्रयोदश वेदसावर्णि, चतुर्दश इन्द्रसावर्णि। ये मिलाकर १४ मनु हैं। हे विप्र! सात मन्वन्तर बीत गये। सात इसके पश्चात् होंगे।।२-१०।।

मन्वन्तरे स्युर्विप्रेन्द्र युगानि चैकसप्ततिः। हृत्यं त्रेता द्वापरञ्च कलिरित्येवमाख्यया॥११॥
युगस्य भागाश्चत्वारो मानं तस्य च मे शृणु। दिव्याब्दानां सहस्त्रेण कलिरेष निरूप्यते॥१२॥
सन्ध्या तावच्छती तस्य सन्ध्यांशश्च तथोदितः। अस्य द्विगुणभावेन द्वापराख्य उदाहृतः॥१३॥
अस्य द्विगुणभावेन कलिमानेन चैव हि। त्रेताकालः समाख्यातः शेषः सत्ययुगं स्मृतम्॥१४॥
प्रतिमन्वन्तरे देवो ह्यवतारी जनार्दनः। धर्म्मं पालयते विष्णुर्दैत्यहा देवपालकः॥१५॥

हे विप्रेन्द्र! सत्य-त्रेता-द्वापर तथा कलि ये चार युग हैं। इनके ७१ युग में मन्वन्तर होता है। अब युग परिमाण सुनो। १००० दिव्य वर्ष का कलि कहा गया है। उसकी सन्ध्या-सन्ध्यांश १०० वत्सर का कहा गया है। कलि परिमाण का द्विगुण द्वापर का परिमाण है। कलि परिमाण का तथा द्वापर परिमाण का दूना त्रेताकाल है। शेष सत्ययुग है। प्रत्येक मन्वन्तर में जनार्दन का अवतार होता है। विष्णु दैत्यनाशक तथा देवपालक हैं। वे धर्म का पालन (वर्द्धन) करते हैं।।११-१५।।

राजवंशा निरूप्यन्ते शुचयः पुण्यकीर्त्तनाः। वंशौ द्वावेव विख्यातौ सूर्य्याचन्द्रमसोर्द्विज॥१६॥
स्वायम्भुवस्तथा वंशो विख्यातः पुण्यकर्म्मणा। तत्रादौ कथ्यते वंशः सूर्य्यस्य द्विजपुङ्गव॥१७॥
नाभिपद्मोद्भवो ब्रह्मा हरेरद्भुतकर्म्मणः। ततो मरीचिस्तस्यापि कश्यपः समजायत॥१८॥
तस्य पुत्रः स्वयं सूर्य्यो देवानां स सहोदरः। श्राद्धदेवस्तस्य पुत्रस्तस्येक्ष्वाकुनृगादयः॥१९॥
इक्ष्वाकुतनयो जज्ञे शशाद इति विश्रुतः। युगन्धरस्तस्य पुत्रो ह्यनेनास्तस्य वै सुतः॥२०॥
तस्य पुत्रो विश्वगन्धिर्दृढ़ाश्वस्तस्य चात्मजः। तस्य पुत्रोऽम्बरीषोऽभूदम्बरीषस्य भूवलः॥२१॥
ककूत्स्थस्तस्य पुत्रोऽभूत्तत्सुतः कपिलाश्वकः।
देवमीढ़स्तस्य सुतः काम्पिल्लस्तत्मुतः स्मृतः॥२२॥
तस्य पुत्रोऽनरण्योभूत्तस्य पुत्रो महावलः। युवनाश्वस्तस्य पुत्रो मान्धाता तनयस्ततः॥२३॥

अब मैं पुण्यकर्मा राजाओं का वंश वर्णन करता हूं। सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश पृथिवी पर प्रसिद्ध हैं तथा स्वायम्भुव वंश भी प्रसिद्ध है। पहले सूर्यवंश कहता हूं। श्रवण करें। हे द्विजपुंगव! अद्‌भुत् कर्मा हरि के नाभिकमल से ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ। उनसे मरीच तथा कश्यप का जन्म हुआ। कश्यप के पुत्र हैं, देवगण के सहोदर सूर्य। सूर्य के पुत्र हैं श्राद्धदेव मनु। उनके पुत्र हैं इक्ष्वाकु नृग आदि। इक्ष्वाकु का पुत्र शशाद प्रसिद्ध था। उसका पुत्र था युगन्धर। उसका पुत्र था अनेना। उसका पुत्र विश्वगन्धि। उसका पुत्र था दृढाश्व। दृढाश्व का पुत्र था अम्बरीष। उसका पुत्र था भुवल। उसका पुत्र था ककूत। उसका पुत्र था कपिलाश्वक। उसका पुत्र था देवमीढ़। उसका पुत्र काम्पिल। उसका पुत्र था अनरण्य। अनरण्य का पुत्र था महाबल। उसका पुत्र था युवनाश्व। उसका पुत्र था मान्धाता।।१६-२३।।

मान्धातुरम्बरीषोऽभूत्तस्य पुत्रो हि धुन्धुहा। युवनाश्वस्तस्य पुत्रो निषधस्तस्य चात्मजः॥२४॥
निषधाद्वाहुको जज्ञे वाहुकात् सगरोऽभवत्। ततोऽसमञ्जास्तत्पुत्रो ह्यंशुमानित्यजायत॥२५॥
तस्य पुत्रो दिलीपोऽभूत्ततो जातो भगीरथः। भगीरथभवो भीमः सत्योऽभूत्तस्य चात्मजः॥२६॥
ततो दिलीपः पुत्रोऽभूद्रघुस्तस्याभवत्सुतः। तस्याजः पुत्र एवास्य राजा दशरथोऽभवत्॥२७॥

मान्धाता का पुत्र था अम्बरीष। अम्बरीष का पुत्र था धुन्धुहा। उसका पुत्र था युवनाश्व। उसका पुत्र था निषध। निषध का पुत्र था बाहुक। बाहुक का पुत्र था सगर। सगर का पुत्र था असमञ्जस। उसका पुत्र था अंशुमान। अंशुमान का पुत्र था दिलीप। दिलीप का पुत्र था भगीरथ। उसका पुत्र था भीम। उसका पुत्र था सत्य। उसका पुत्र था दिलीप। दिलीप का पुत्र था रघु। उसका पुत्र था अज। अज का पुत्र था राजा दशरथ।।२४-२७।।

तस्य पुत्रोऽभवच्छ्रीमान् भगवान् विष्णुरव्ययः। रामो भरतशत्रुघ्नौ लक्षणश्च महावलः॥२८॥
यस्य कीर्त्तिः पुण्यतरा रावणादिविनाशनम्। ज्येष्ठं ज्येष्ठमिमे प्रोक्ताः संक्षेपेण द्विजोत्तम॥२९॥

दशरथ के पुत्र थे श्रीमान भगवान् अव्यय विष्णु राम, भरत, शत्रुघ्न तथा महाबली लक्ष्मण। रावणादि विनाशक, इनकी कीर्त्ति पुण्यप्रदा है। हे द्विजोत्तम! संक्षेप में ज्येष्ठ सन्तानों के सम्बन्ध में कहा गया।।२८-२९।।

चन्द्रवंशमथो वक्ष्ये शृण्वनन्यमना द्विज। अत्रिर्वै ब्रह्मणः पुत्रस्तस्य चन्द्रस्ततो बुधः।।३०।।
श्राद्धदेवस्य दौहित्रस्ततोजातः पुरूरवाः। तस्यायुस्तनयो जातो रन्तिनावस्ततोऽभवत्।।३१।।

चन्द्रवंश का अब वर्णन करता हूं। हे द्विज! उसे अनन्य चित्त से श्रवण करें। ब्रह्मा के पुत्र थे अत्रि। उसके पुत्र थे चन्द्र। उसके पुत्र थे बुध। उनसे श्राद्धदेव का दौहित्र पुरुरवा जन्मा। उसका पुत्र था आयु। आयु का पुत्र था रन्तिनाव।।३०-३१।।

रन्तिनावस्य वियतिः कृतिस्तस्याभवत्सुतः। ततोऽभून्नहुषो राजा ययाति स्तस्य चात्मजः।।३२।।
ययातेः पञ्च वै पुत्रा यदुपुरुमुखा द्विज। पुरुपुत्रो जनमेजयः प्रचिन्वां स्तस्य चात्मजः।।३३।।
मनुस्यु स्तस्य तस्माच्च सुतश्चारुपदोऽभवत्। सुद्यु स्तस्य सुतश्चाभून्नाम्ना बहुगवस्ततः।।३४।।
ययाति स्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्य पिताऽभवत्। मृतेयो रन्तिनारोभूद्रौद्राश्वतनयस्य ह।।३५।।
तस्य पुत्रस्तु सुमतिस्तस्य मेधातिथिः सुतः। तस्य दुष्यन्तनामाभूद्भरतस्य पिता द्विज।।३६।।
तत्पुत्रो रन्तिदेवोऽभूदजमीढस्ततो भवत्। तस्य शान्तिस्ततोऽभूच्च दिवोदासो महायशाः।।३७।।

रन्तिनाव का पुत्र था विवति। उसका पुत्र था कृति। कृति का पुत्र था नहुष। उसका पुत्र था ययाति। ययाति के ५ पुत्र थे। उनमें मुख्य थे यदु तथा पुरु। पुरु पुत्र था जनमेजय। उसका पुत्र था प्रचि। उसका पुत्र था मनुस्यु। उसका पुत्र था चारुपद। उसका पुत्र था सुद्यु। सुद्यु का पुत्र था बहुगव। उसका पुत्र था संयाति। संयाति का पुत्र था अहंयाति। उसका पुत्र था रौद्राश्व। उसका पुत्र था ऋतायु। उसका पुत्र था रन्तिनार। उसका पुत्र था सुमति। उसका पुत्र था मेधातिथि। उसका पुत्र था दुष्यन्त। उसका पुत्र था भरत। उसका पुत्र था रन्तिदेव। उसका पुत्र था अजामीढ़। उसका पुत्र था शान्ति। शान्ति का पुत्र था महायशस्वी दिवोदास।।३२-३७।।

शतानन्दस्तस्य पुत्रो मित्रयुश्चापरस्तथा। द्रुपदस्तस्य पुत्रोऽभूद्धृष्टद्युम्नस्ततोऽभवत्।।३८।।
तस्य ऋक्षः सुतस्तस्य नाम्ना सम्बरणः सुतः। तस्माज्जातः कुरुर्न्नाम प्रतीपस्तस्य चात्मजः।।३९।।

ततो विचित्रवीर्य्याख्यो राजा पाण्डुस्ततोऽभवत्।
तस्याभवन् पञ्च पुत्रा धर्म्मवाय्विन्द्रसम्भवाः।।४०।।

कुन्त्यां माद्र्याञ्च नासत्यदस्त्रजौ द्वौ तथासुतौ। ते पुण्यकीर्त्तनाः सर्व्वे तेषां नामानि वर्णये।।४१।।

उसका पुत्र था शतानन्द। उसका पुत्र था मित्रयु। उसका पुत्र था द्रुपद। उसका पुत्र था धृष्टद्युम्न। अजमीढ का जो द्वितीय ऋक्ष नामक पुत्र था, उसका पुत्र था सम्बरण। उसका पुत्र था कुरु। उसका पुत्र था प्रतीप। उसका पुत्र था विचित्रवीर्य, जिसका पुत्र था राजा पाण्डु। उसके ५ पुत्र थे, जो धर्मराज, वायु तथा इन्द्र से उसकी रानी कुन्ति से उत्पन्न हुए। माद्री से अश्विनीकुमार द्वय द्वारा दो पुत्र थे। ये सभी पुण्यकीर्त्ति थे। इनके नाम कहता हूं।।३८-४१।।

युधिष्ठिरश्च भीमश्च अर्जुनो नर एव यः। नकुलः सहदेवश्च तत्रार्जुनसुतोऽभवत्।।४२।।
अभिमन्युस्ततो राजा परीक्षिदितिनामकः। तस्यात्मजोऽभवन्नाम्ना जनमेजय इत्युत।।४३।।

उनके नाम थे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन (जो ऋषि नर थे), नकुल, सहदेव। अर्जुन का पुत्र था अभिमन्यु। उसका पुत्र था परीक्षित नामक राजा। उसका पुत्र था जनमेजय।।४२-४३।।

ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशे हरिः स्वयम्। (यदोः पुत्रो नलो नाम कृतवीर्य्यस्ततोऽभवत्॥४४॥

तस्य पुत्रोऽर्ज्जुनोऽन्योऽयं राजा बाहुसहस्त्रभृत्। यस्य संस्मरणादेव नष्टं द्रव्यं प्रलभ्यते॥४५॥

ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु के यदुवंश में हरि ने स्वयं जन्म लिया। यदु पुत्र था नल। उसका पुत्र था कृतवीर्य। उसका पुत्र था अर्जुन, जो राजा सहस्रबाहु था। उसके स्मरण मात्र से नष्ट द्रव्य प्राप्त हो जाता है।।४४-४५।।

लब्ध्वा द्रव्यं प्रीतयेऽस्य विप्राय लवणं स्पृशेत्। तस्य पुत्रो विष्टिरभूच्छशविन्दुपिता द्विज॥४६॥

शशविन्दो र्जामघश्च वभ्रुस्तस्य सुतो महान्।)

यदोः पुत्रोऽभवद्भोजः सुमित्रस्यस्स्य चात्मजः॥४७॥

शिनिस्तस्य सुतस्तस्मान्निम्बनामा सुतोऽभवत्। सत्राजिच्च प्रसेनश्च तस्य पुत्रावुभौ मतौ॥४८॥

तस्य वंशेऽभवच्छूरस्ततोऽभूद्वसुदेवकः। तस्य पुत्रोऽभवत्कृष्णो द्वापरान्ते द्विजोत्तम॥४९॥

अयमुक्तश्चन्द्रवंशः पश्चाद्वक्ष्यामि मानवम्। एवं ते कथिता वंशाः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥५०॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डे मन्वन्तरवंशकथनं नामोनषष्टितमोऽध्यायः।।



इनकी प्रसन्नता हेतु उत्तम ब्राह्मण को लवण दान करे। कार्त्तिवीर्य से वृष्णि, वृष्णि से शशबिन्दु का जन्म हुआ। शशबिन्दु का पुत्र था ज्यामघ। उसका पुत्र था महात्मा वभ्रु। वभ्रु का पुत्र था भोज, उसका पुत्र था सुमित्र। उसका पुत्र शिनि, उसका पुत्र निघ्न। इसके पुत्रद्वय थे सत्राजित तथा प्रसेन। इनके वंश में राजा शूर का जन्म हुआ। इन शूर से वसुदेव ने जन्म लिया। हे द्विजवर! वसुदेव के औरस से भगवान् कृष्ण ने द्वापरान्त में जन्म लिया। इन महात्माओं के वंश का यथाबुद्धि अल्प परिमाण में वर्णन किया। अब क्या सुनना चाहते हो?।।४६-५०।।

।।उनषष्टितम अध्याय समाप्त।।



षष्टितमोऽध्यायः

गणेश जन्म वर्णन

जैमिनिरुवाच

ब्रह्मन् जगदिदं सर्व्वं ब्रह्मवंशैः समन्ततः। विष्णुवंशैश्च विततं शिववंशः प्रकथ्यताम्॥१॥

जैमिनि कहते हैं—हे ब्रह्मन्! यह समस्त जगत् ब्रह्मवंश तथा विष्णुवंश से चतुर्दिक् व्याप्त है। उसका वर्णन करें।।१।।

ऋषिरुवाच

शिवः पुमान् पार्व्वती च स्त्री सृष्टिकारकाविमौ।
शिवात्मकाश्च पुरुषाः स्त्रियः सर्व्वास्तु पार्व्वती॥२॥

शिवः पुंलिङ्गरूपस्तु देवी स्त्रीलिङ्गरूपिणी। शिवदेवी लिङ्गरूपं जगत् स्थावरजङ्गमम्॥३॥
तस्मादिदं जगत्सर्व्वं शिववंशः शिवात्मकम्। न पृथक् शिववशोऽस्ति यं त्वं पृच्छसि जैमिने॥४॥
शिवशक्तिपारित्यक्तं यत्तत्सन्नेति कथ्यते। शिवशक्तियुतं सर्वं सत्त्वेन परिगण्यते॥५॥
शिवशक्तियुतो विष्णुः शिवशक्तियुतो विधिः। शिवशक्तियुता देवाः शिवशक्तिमयं जगत्॥६॥
पुरा पप्रच्छ गिरिजा शङ्करं लोकशङ्करम्। अपत्यमिच्छती देवी सापत्ये निखिले स्थिता॥७॥
निर्वंशस्य क्रिया नास्ति तस्माद्वंशान्वितो भव। अद्यैव मयि सङ्गम्य औरसं जनयात्मजम्॥८॥

ऋषि कहते हैं—शिव पुरुष हैं। पार्वती स्त्री हैं। ये दोनों ही सृष्टिकर्त्ता हैं। अतः समस्त पुरुष हैं शिवरूप तथा स्त्रीगण हैं पार्वतीरूप। शिव पुल्लिङ्ग रूप हैं। पार्वती स्त्रीलिङ्ग रूप हैं। इस कारण यह स्थावर जंगमात्मक जगत् शिव-देवी लिङ्गरूप है। हे जैमिनि! यह समस्त जगत् शिववंश तथा शिव स्वरूप है। तुम्हारे द्वारा पूछा गया शिववंश यही है। अन्य कुछ नहीं है। शिव-शक्ति रहित कोई भी वस्तु कहीं विद्यमान नहीं है। शिव-शक्ति संयुक्त होने के कारण समस्त सत्व परिगणित होता है। (अर्थात् सब व्यक्त होता है) भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, देवता, समस्त जगत् शिव-शक्ति युक्त है। पूर्व काल में देवी गिरिजा ने पुत्र कामनार्थ लोक कल्याण करने वाले शंकर से कहा था—हे भगवान्! पुत्रयुक्त को ही सभी कार्य का अधिकार है। निःसन्तान को किसी क्रिया का अधिकार ही नहीं है। अतः आप सात्विक भाव का वरण करके मुझसे संगत होकर औरस पुत्र उत्पन्न करें।।२-८।।

ऋषिरुवाच

एवमुक्तो गिरिजया शङ्करो लोकशङ्करः। जगाद मधुरं वाक्यं शैलराजतनूभवाम्॥९॥

ऋषि कहते हैं—तब भगवान् शंकर ने पार्वती का यह वाक्य सुनकर उनसे मधुर स्वर में कहा।।९।।

शंकर उवाच

नाहं गृहस्थो गिरिजे न मे पुत्रे प्रयोजनम्। देवानान्तु कुचक्रेण त्वं मे भार्य्योपपादिता॥१०॥
भार्य्यैव परमो बन्धः पुरुषस्य विरागिणः। भद्रे भवेदपत्यं वै पाशशङ्कुर्निरूप्यते॥११॥
अस्त्येव गृहिणां कार्य्यं पुत्रेण च धनेन च। पुत्रप्रयोजना भार्य्या पुत्राः पिण्डप्रयोजनाः॥१२॥
न मेऽस्ति मरणं देवि न मे पुत्रे प्रयोजनम्। व्याधिर्न विद्यते यर्हि किं तर्हि कार्य्यमौषधैः॥१३॥
त्वमहञ्च स्त्रीपुमांश्च स्त्रीषु पुंसु सदारती। आनन्दयावहे देवि हेतू चापत्यसम्भवे॥१४॥
अनपत्यौ सदैवावां आत्मारामौ रमावहे।

शङ्कर कहते हैं—"हे गिरिजे! मैं गृहस्थ नहीं हूं। मुझे पुत्र की क्या आवश्यकता? देवगण के कुचक्र के कारण तुम मेरी भार्या रूप से प्रतिपादित हो। हे भद्रे! विरागी पुरुष की भार्या तो उसकी परम बन्धु है, तथापि पुत्र पाश शंकु रूप से प्रतीत होता है। हे देवी! मेरी मृत्यु ही नहीं है। अतः पुत्र का क्या प्रयोजन? जिसे व्याधि नहीं है, वह औषधि

क्या करेगा? हे देवी! मैं तथा तुम स्त्री तथा पुरुषरूपेण जगत् के स्त्री-पुरुष रूप में रत होकर सदा आनन्दानुभव करते हैं। इसी से हम पुत्रोत्पत्ति के कारण हैं। हम स्वयं पुत्ररहित तो हैं, तथापि हम दोनों सदा आत्माराम रूप से रमण करते हैं।।१०-१४।।

पार्व्वत्युवाच

देवदेवेश भगवन् नीलकण्ठ त्रिलोचन। यदुक्तं सत्यमेवैतत्तथापीच्छाम्यपत्यकम्॥१५॥
अपत्यं जनयित्वा त्वं योगं कुरु महेश्वर। पालयिष्याम्यहं पुत्रं त्वञ्च योगी यथातथम्॥१६॥
अतीव मे स्पृहा जाता पुत्रस्य मुखचुम्बने। त्वया कृताहञ्चेद्भार्य्या तर्ह्यपत्यं च भावय॥१७॥

पार्वती कहती हैं—हे देवदेव! भगवान् नीलकण्ठ! त्रिलोचन! आपने यथार्थ तो कहा है, तथापि मुझे पुत्रेच्छा है। हे महेश्वर! पुत्रोत्पत्ति करके आप योगानुष्ठान करें। मैं पुत्र पालन करूंगी। आपके योग में विघ्न नहीं होगा। मुझे पुत्र मुख चुम्बनार्थ बलवती स्पृहा हो रही है। आपने जब मुझे भार्या माना है, तब पुत्र उत्पन्न करें।।१५-१७।।

वरं विवाहविमुखः स ते पुत्रो भविष्यति। येन त्वं पुत्रपौत्रादिवंशवान्न भविष्यसि॥१८॥

शिव कहते हैं—मैं पुत्र उत्पन्न तो कर दूंगा, तथापि वह विवाह से विमुख होगा, इससे तुम्हारे वंश में पुत्र-पौत्रादि क्रम नहीं रहेगा।।१८।।

ऋषिरुवाच

इत्युक्तो भगवान् क्रुद्धो ययावुत्थाय चासनात्।
देवी च विमना भूत्वा दुष्खं दध्यौ धिया चिरम्॥१९॥
जया च विजया चापि सख्यौ तस्याः पुरः स्थिते।
शिवस्य रोषभङ्गाय गत्वा तञ्चानिनीयतुः॥२०॥
देवीं विमनसं दृष्ट्वा शंकरः पुनरब्रवीत्।

ऋषि कहते हैं—यह कहकर भगवान् कुपित भाव से आसन से उठ कर चले गये। देवी भी विमना तथा चिन्तान्वित हो गयीं। तब उन्होंने अपनी सखी जया-विजया को भगवान् के पास क्रोधभंग करने भेजा तथा उन दोनों ने अनुनय-विनय भी किया। देवी को विमना देखकर शिव पुनः कहने लगे।।१९-२०।।

शङ्कर उवाच

कथं त्वं विमना देवि पुत्राभावेन सुन्दरि। यदि वाञ्छसि पुत्रस्य वदनं परिचुम्बितुम्॥२१॥
पुत्रन्ते कल्पयिष्यामि तं चुम्ब यदि ते स्पृहा। इत्युक्त्वा गिरिनन्दिन्या आकृष्य वसनं शिवः॥२२॥
वसनेनैव तेनैष पुत्रं निर्म्माय शङ्करः। गृह्यतां गिरिजे पुत्रश्चुम्बताञ्च निजेच्छया॥२३॥

शंकर कहते हैं—हे सुन्दरी! पुत्र के अभाव से तुम क्यों विमना हो रही हो? यदि पुत्र के मुख चुम्बन की इच्छा है तब तुम्हारे पुत्र की कल्पना कर देता हूं। तब शंकर ने गिरिपुत्री पार्वती का वस्त्र खींच कर उनको देकर कहा "यह पुत्र ग्रहण करके यथा इच्छा उसका मुख चुम्बन करो"।।२१-२३।।

पार्व्वत्युवाच

एतद्वस्त्रं कथं पुत्रकार्य्यमत्र भवेन्मम। मदीयं वसनञ्चेदं रक्तवर्णं महेश्वर॥२४॥

त्यज्यताञ्च परीहासो नाहं पशुमतिः शिव। वस्त्रेण मे कथं पुत्रलाभानन्दो भविष्यति॥२५॥

पार्वती कहती हैं—हे महेश्वर! यह तो मेरा रक्तवर्ण वस्त्र है। यह कैसे पुत्र का कार्य करेगा? हे शिव! परिहास त्याग दीजिए। मैं पशुमति नहीं हूं। वस्त्र से मुझे कैसे पुत्र लाभ का आनन्द होगा।।२४-२५।।

इत्युक्त्वा गिरिजा देवी तद्वस्त्रं पुत्रवत्कृतम्। क्रोड़े चकार ध्यायन्ती परीहासवचः प्रभोः॥२६॥
पुत्राकारञ्च तद्वस्त्रं देव्याः क्रोड़गतं द्विज। जीवं प्राप्यापतत् क्रोड़ात् पस्पन्द च पुनः पुनः॥२७॥
तं दृष्ट्वा स्पन्दमानं वै जीवजीवेति पार्वती। आकृष्य पाणिपद्माभ्यां शिवस्याग्रेऽभ्यभाषत॥२८॥
तदा स जीवितो बालः प्राणान् प्राप्य च तत्क्षणात्। पार्वतीं हर्षयामास माँमैंत्यव्यक्तरोदनः॥२९॥
तं प्राप्य वालकं देवी क्रोड़े कृत्वा च वत्सला। स्तनौ चापाययद्दुग्धं स्तनाभ्याञ्च प्रसुस्त्रुवे॥३०॥
बालश्चापि पयः पीत्वा स्मितस्फुर्जन्मुखाम्बुजः। मातुर्वदनमुद्वीक्ष्य मात्रा च परिचुम्बितः॥३१॥

ऋषि कहते हैं—यह कह कर देवी गिरिजा ने प्रभु का परिहास वाक्य समझ कर उस वस्त्र को पुत्र की तरह गोद में ले लिया। हे द्विज! तब देवी का क्रोड़गत वस्त्र जीवन्त होकर क्रोड़ से नीचे गिर गया तथा पुनः-पुनः स्पन्दित होने लगा। पार्वती ने उसे स्पन्दित होते देखकर हाथ पकड़ कर शिव के पास कहा जीव जीवित हो। इससे वह बालक जीवित होकर प्राणलाभ होने से मां-मां कहता रुदन करने लगा। इससे पार्वती हर्षित हो गयीं। स्नेहमयी देवी ने उस बालक को गोद में लेकर स्तनपान कराया। भगवती के स्तनों से दुग्ध निकलने लगा। वह बालक भी स्तनपान करता मां के मुख को देख रहा था, तब माता ने उसका मुख चुम्बन किया।।२६-३१।।

मुहूर्त्तं बालमालिङ्गय सुन्दरं तञ्च वालकम्। ददौ पत्ये महेशाय प्रभो पुत्रं गृहाण मे॥३२॥
त्वया दत्तस्त्वयं पुत्रो दयार्द्रहृदयेन ह। पुत्रलाभसुखं कीदृक् त्वञ्च जानीहि शङ्कर॥३३॥
तच्छ्रुत्वा शङ्करो देव्या वचनं द्विजपुङ्गव। उवाच प्रहसन् किञ्चित् प्रेयसीं गिरिजां प्रति॥३४॥

सुन्दरी गिरिकन्या ने मुहूर्त्त पर्यन्त बालक का आलिंगन करके कहा—"हे प्रभो! पुत्र ग्रहण करें। आपने दयापूर्वक इसे प्रदान किया। अब पुत्रलाभ के सुख की उपलब्धि करें।" यह कह कर भगवती पुत्र को महेश्वर के क्रोड़ में देने लगीं। हे द्विजश्रेष्ठ! यह सुन कर प्रभु शिवशंकर कहने लगे।।३२-३४।।

शङ्कर उवाच

परीहासेन ते देवि दत्तं वस्त्रकृतं सुतम्। त्वद्भाग्यात् पुत्र एवासौ जातः किमिदमद्भुतम्॥३५॥
देहि मे दृश्यते किन्तु सत्यं पुत्रत्वमागतम्। वस्त्रेण निर्म्मितो देहो जीवं कस्मादुपागमत्॥३६॥

शंकर कहते हैं—हे देवी! मैंने परिहास में तुमको वस्त्र से बनाया पुत्र प्रदान किया, वह तुम्हारे भाग्य के कारण पुत्र हो गया, इसमें विचित्रता क्या? हे देवी! पुत्र प्रदान करो। यह देखूं कि वस्त्र निर्मित देह को जीवात्मा कैसे प्राप्त हो गया?।।३५-३६।।

इत्युक्त्वा पुत्रमादाय पाणिभ्याञ्च निधाय ह। ददर्श महा शम्भुर्यत्नेन निपुणेन च॥३७॥
सर्व्वाण्यङ्गानि गिरिशो दृष्ट्वा निपुणया दृशा। उवाच पार्वतीं देवीं जन्मदोषमनुस्मरन्॥३८॥

ऋषिगण कहते हैं—यह कहकर शम्भु ने पुत्र को अत्यन्त यत्न से हाथों पर रखा तथा उसे देखने लगे।

प्रभु शिवशंकर ने बालक के सभी अंगों को अत्यन्त निपुणता से देखकर और उसका जन्मदोष पार्वती से कहने लगे।।३७-३८।।

शङ्कर उवाच

पुत्रस्तवायमुत्पन्न आत्मघ्नग्रहरिष्टतः। अतएव बहून् कालान्न जीविष्यति ते सुतः।।३९।।
अल्पायुषो हि पुत्रस्य स्वल्पकाले मृतिः शुभा। उपार्जितगुणो भूत्वा मृतस्तापप्रदः परः।।४०।।

शंकर कहते हैं—हे देवी! तुम्हारे इस पुत्र को ग्रह का अरिष्ट है। देखता हूं कि यह पुत्र दीर्घकाल जीवित नहीं रहेगा। यदि पुत्र अल्पायु ही मृत हो, तब श्रेयस्कर है। अन्यथा बड़ा तथा गुणवान् होकर मृत होने पर अत्यन्त कष्ट होता है।।३९-४०।।

एवं तस्य प्रवदतः शम्भोः शिशुकरस्य च। पाणेर्वालशिरः स्त्रस्तमुत्तराग्रं शिरः स्थितम्।।४१।।
भूमौ च पतिते शीर्षे वालकस्य प्रभोः करात्। जग्राह पार्व्वती वालं छिन्नमस्तं शुचाकुला।।४२।।
रुरोद बहुधा देवी वत्स वत्सेति भूरिशः। शिवश्च विस्मयं प्राप्य कृत्वा पुत्रशिरः करे।।४३।।

ऋषि कहते हैं—शम्भु यह कह ही रहे थे कि शिशु का मस्तक देह से भूतल पर गिर गया। यह देख भगवती व्याकुलतापूर्वक छिन्नमस्तक पुत्र को देख कर हा वत्स! हा वत्स! कह कर रोने लगी।।४१-४३।।

उवाच पार्व्वतीं देवीं वाचा मधुरया तदा।

शङ्कर उवाच

मारोदीः पार्व्वति शुभे प्राप्तपुत्रशुचाप्यसि। पुत्रशोकात्परं नास्ति आत्मशोषणमात्मना।।४४।।
तस्मात्त्यज पुत्रशोकं पुत्रं ते जीवयाम्यहम्। एतदेव शिरो देवि स्कन्धेऽस्मिन्ननु योजय।।४५।।

भगवान् ने विस्मित होकर पुत्र के मस्तक को उठाया तथा मधुर वाक्यों से पार्वती से कहने लगे। "हे कल्याणी! पुत्र शोक से रुदन मत करो, क्योंकि इस शोक से अधिक आत्मशोषक कोई दुःख नहीं होता। अतः शोक त्याग करो। मैं तुम्हारे पुत्र को जीवन प्रदान करता हूं। इस छिन्न मस्तक को कंधे से जोड़ो"।।४४-४५।।

ऋषिरुवाच

इत्युक्ता पार्व्वती देवी योजयामास तच्छिरः।
(न च तत्राभवद्युक्तं चिन्तयामास तच्छिवः)।।४६।।

एतस्मिन्नेव काले तु खे वागाहाशरीरिणी। शम्भो तवास्य वालस्य रिष्ट दृष्टं शिरोऽभवत्।।४७।।
अतो नैतेन शिरसा जीवेत तव वालकः। अन्यस्य शिर आनीय स्कन्धे योजय जीवय।।४८।।
पाणौ तवोत्तरशिरा वाल एष स्थितो यतः। अत उत्तरशीर्षस्य शीर्षं नीत्वात्र योजय।।४९।।
इत्याकाशवचः श्रुत्वा देवीमाश्वास्य शङ्करः। आहूय नन्दिनं तत्र प्रेषयामास कर्म्मणि।।५०।।
नन्दी तु त्रिजगद्भ्रान्त्वा गत्वा चाप्यमरावतीम्। ददर्शोत्तरशीर्षाणमिन्द्रस्यैरावतं गजम्।।५१।।
तं दृष्ट्वैरावतं नन्दी उदक्शीर्षं महावलः। छेत्तुं प्रचक्रमे तस्य शयानस्योत्तरस्थितम्।।५२।।

स चुक्रोश वृंहितेन शक्राद्यास्तेन चागमन्।

ऋषिगण कहते हैं—भगवान् का यह वचन सुनकर भगवती पार्वती मस्तक जोड़ने लगीं। तथापि वह संयुक्त नहीं हो सका, तब शिव चिन्तामग्न हो गये। तभी वहां आकाशवाणी सुनाई पड़ी। "हे शम्भु! तुम्हारे पुत्र का मस्तक रिष्टि से दृष्ट हो गया, अतः इस मस्तक को जोड़ने से वह जीवित नहीं होगा। अन्य मस्तक जोड़कर इसे जीवन प्रदान करो। यह बालक तुम्हारे हाथों पर उत्तर की ओर शिर किये स्थित है, अतः उत्तर शिर स्थित किसी जीव का मस्तक लाकर जोड़ना होगा।" यह आकाशवाणी सुनकर शंभु ने देवी को आश्वस्त किया तथा नन्दीश्वर को इस कार्य हेतु भेजा। नन्दी तीनों लोकों का भ्रमण करते अमरावती पहुंचे। वहां उन्होंने उत्तर की ओर शायित ऐरावत को देखकर उसके मस्तक को काटना चाहा। तभी हाथी का गर्जन सुनकर वहां इन्द्रादि देवता आ गये।।४६-५२।।

शक्र उवाच

को भवानद्भुताकारो गजं हन्तुं समागतः। केन वा प्रेषितोऽसि त्वं खड्गपाणिः कथं भवान्॥५३॥

इन्द्र कहते हैं—तुम कौन अद्भुद् आकृति वाले हो, जो मेरे हाथी का वध कर रहे हो? तुमको किसने भेजा है? तुम्हारे हाथों में खड्ग क्यों है?।।५३।।

नन्द्युवाच

शिवदासोऽस्म्यहं नन्दी समायातः शिवाज्ञया। ऐरावतशिरो नीत्वा दास्याम्येव हि शम्भवे॥५४॥
वालस्योत्तरशीर्षस्य शिरश्च शिवपाणितः। रिष्टिकालोद्भवं स्रस्तं तेनाकाशवचोवशात्॥५५॥
यः शेत उत्तरशिरास्तस्य शीर्षनियोजनात्। शीर्षवन्तं करिष्यामि जीवितञ्च शिवात्मजम्॥५६॥
अतस्ते गजराजस्य शीर्षं च्छेत्स्याम्यसंशयम्। ऐरावताशां संत्यज्य व्रज प्राणपरीप्सया।
शिवपुत्रप्राणदानात्तव नैरावतो वरः॥५७॥

नन्दी कहते हैं—मैं शिवकिंकर नन्दी हूं। प्रभु के आदेश से आया हूं। मैं ऐरावत का शिर ले जाकर भगवान् शंभु को प्रदान करूंगा। वह बालक शिव के हाथों पर उत्तर की ओर शिर करके स्थित था। तब रिष्टि काल के अरिष्ट से उस बालक का शिर छिन्न हो गया। तब वहां आकाशवाणी सुनी गई कि जो प्राणी उत्तर की ओर शिर करके सोया हो, उसका शिर उस बालक को लगाया जाये। शिर ले जाकर उस शिव पुत्र को जीवित करना है। इसलिए मैं तुम्हारे गजराज का शिर अवश्य काटकर ले जाऊंगा। यह निःसंशय है। यदि तुम बचना चाहो, तब ऐरावत का संग छोड़ कर चले जाओ। प्रभु के बालक की प्राणरक्षा हेतु तुम्हारे हाथी का वध आवश्यक है।।५४-५७।।

ऋषिरुवाच

श्रुत्वैवं नन्दिवचनं महेन्द्रो रुषितोऽभवत्। देवानाहूय सकलान् नन्दिनञ्चाभ्यभाषत॥५८॥

ऋषि कहते हैं—इन्द्र ने नन्दी का यह वाक्य सुना, जिससे वे अतीव क्रोधित हो गये। उन्होंने सभी देवताओं को बुलाया तथा नन्दी से कहने लगे।।५८।।

इन्द्र उवाच

शम्भोः काननवासस्य किङ्करेण त्वया कथं। देवेन्द्रे जीवति मयि किं वलाच्छेत्स्यसे गजम्॥५९॥

इन्द्र कहते हैं—हे वनचर! मैं देवराज हूं। मेरे जीवित रहते तुम शंभुकिंकर वनचर कभी भी हाथी का वध नहीं कर सकते।।५९।।

इत्युक्त्वा शूलमुद्यम्य शक्रो नन्दिवधेच्छया। दुद्राव नन्दी हूङ्काराच्छूलं भस्म चकार ह॥६०॥
पुनर्गदां स जग्राह चिक्षेप च बलादिव। नन्दी ताञ्च गदां वामे पाणौ जग्राह लीलया॥६१॥
स्वा गदा नीयतामिन्द्रेत्युक्त्वा तस्मै व्यसर्जयत्। इन्द्रस्य वक्षसि गदा सा पपात रुजाकरी॥६२॥
इन्द्रस्तु व्यथितः कञ्चिच्छूलं जग्राह चापरम्। चिक्षेप नन्दिने नन्दी तत् खड्गेन त्रिधाकरोत्॥६३॥

ऋषि कहते हैं—यह सुनकर देवराज नन्दी का वध करने के लिए शूल लेकर दौड़े। तब नन्दी ने हुंकार मात्र से शूल भस्म कर दिया। तब इन्द्र ने गदा उठा कर नन्दी पर फेंका, लेकिन जोर से आती उस गदा को लीलामात्र से नन्दी ने बायें हाथ से पकड़ लिया तथा वे इन्द्र से कहने लगे—"हे इन्द्र! यह अपनी गदा ग्रहण करो।" साथ ही वह गदा इन्द्र पर फेंका। उस गदा ने इन्द्र के वक्षस्थल पर तीव्र आघात किया। इन्द्र गदाघात से किंचित व्यथिंत हो गये तथा एक अन्य शूल का प्रहार नन्दी पर किया, तथापि नन्दी ने उस शूल को खड्ग से तीन टुकड़े कर दिया।।६०-६३।।

पुनश्च वज्रमुद्यम्य इन्द्रो दुद्राव वायुवत्। महाघोरतरो नन्दी बभूवातिभयङ्करः॥६४॥
एतस्मिन्नेव काले तु शक्रहस्तिपको बली। इन्द्राय योजयामास मत्तमैरावतं गजम्॥६५॥
इन्द्रो गजसमारूढो वज्रहस्तो महाबलः। मरुद्गणसहायः सन् युयुधे नन्दिना सह॥६६॥
सर्व्वे देवगणास्तत्र मिलिताश्चापपाणयः। ववृषुः शरवर्षेण नन्दिनं घोररूपिणम्॥६७॥
वर्षाकाले महाघोरे घना इव महागिरिम्। तेषां स शरवर्षाणि नन्दी घोरमहातनुः॥६८॥
पाषाणकठिनाकारः सेहे चाद्भुतदर्शनः। वामपाणिपरीसारैः खड्गेन सुशितेन च॥६९॥
सहूङ्कारैश्च निःश्वासैः शरवर्षाण्यवारयत्। मोहयन् घोरया तन्वा देवानां पश्यतामपि॥७०॥

पुनः इन्द्र ने वज्र उठाया तथा वायुवेग से नन्दी के प्रति दौड़े। तब नन्दी ने अत्यन्त भीषण रूप धारण कर लिया। तभी महावत इन्द्र हेतु ऐरावत को ले आया। तब महाबली इन्द्र ऐरावत पर आरुढ़ हो, हाथ में वज्र धारण किये हुए तथा देवगण की सहायता से नन्दी से युद्धरत हो गये। सभी देवता धनुष उठा कर नन्दी के ऊपर बाणवर्षा इस प्रकार करने लगे, मानों वर्षा में महापर्वत के ऊपर मेघ छा गया हो। अद्भुद् दर्शन महाभीमतनु नन्दीश्वर ने पाषाणवत् कठिनाकृति होकर उस बाण वर्षा को सहन किया तथा बायें हाथ से खड्ग घुमा कर, हुंकार से तथा निश्वास वायु से शरवृष्टि का निवारण करके ऐरावत का मस्तक काट दिया। उन्होंने अपने हुंकार से देवगण को मतिहीन कर दिया था।।६४-७०।।

(ऐरावतशिरश्छित्त्वा ययौ नीत्वा विहायसा।) ऐरावतश्छिन्नशिराः पपात नन्दिना हतः॥७१॥
देवास्तदद्भुता मुग्धा हाहेत्यूचुर्नचाचलन्। शिवश्च तत्स्माकर्ण्य नन्दिनः सत्पराक्रमम्॥७२॥
आलिङ्ग्य नन्दिनं प्रीत्या स्कन्धे गजशिरोऽर्पयत्। शिरोयोजनमात्रेण बालोऽभूदतिसुन्दरः॥७३॥
खर्व्वस्थूलतरो देवो गजेन्द्रवदनाम्बुजः। जवाकुसुमसङ्काशो मृगाङ्कधवलाननः॥७४॥
चतुर्बाहुः स्रवद्दानगन्धलुब्धालिशोभितः। रेजे शिवसमीपस्थो महाद्भुतविलोचनः॥७५॥

सर्व्वे देवास्तदागत्य ददृशुः शिवनन्दनम्। शम्भोः क्रोड़गतं वालं कुञ्जरेन्द्रशुभाननम्॥७६॥
तत्राभिषिषिचुस्तञ्च ब्रह्माद्या देवतागणाः। नामानि च ददौ ब्रह्मा लम्बोदरमिति ब्रुवन्॥७७॥
रराजैष सर्व्वदेवगणमध्ये महाद्भुतः। तेनायं देवराजोऽस्तु सर्वदेवाग्रपूजनः॥७८॥
सरस्वती ददौ तस्मै लेखनीं वर्णलोचनाम्। जपमालां ददौ ब्रह्मा इन्द्रो गजरदं ददौ॥७९॥
पद्मं पद्मावती चादाद्व्याघ्रचर्म्म ददौ शिवः। वृहस्पतिर्यज्ञसूत्रं पृथ्वी मूषिकवाहनम्॥८०॥
तुष्टुवुर्मुनयः सर्वे रक्तवर्णं शिवात्मजम्।

ऐरावत हाथी घोर नाद से सबको मोहित करता देवताओं के समक्ष धरती पर गिर पड़ा। नन्दीश्वर के इस अद्‌भुद् कार्य से मुग्ध देवता हाहाकार करते निःस्पन्द हो गये। इधर शिव ने नन्दी के इस अतुल विक्रम को सुनकर नन्दी का आलिंगन किया तथा बालक के कन्धे पर गजमस्तक जोड़ दिया। मस्तक जोड़ते ही वह बालक अति सुन्दर, खर्व-स्थूल, गजेन्द्र वदनाम्बुज, जवाकुसुमवत् वर्ण वाले, मृगाङ्क धवलानन, चतुर्बाहु, गण्डस्थल से स्रवित मदगन्ध से लुब्धायमान भ्रमरों से शोभित, महान् अद्‌भुद् लोचन रूप वह कुमार शिव के निकट विराजित हो गया था। तब सभी देवताओं ने आकर भगवान् शम्भु की गोद में स्थित गजेन्द्रानन बालक शिवनन्दन का दर्शन प्राप्त किया। ब्रह्मादि देवगण ने वहां आकर बालक को गाणपत्य पद पर अभिषिक्त किया। ब्रह्मा ने उसका नाम लम्बोदर रखा। वह बालक सभी देवताओं में अग्रपूज्य, अत्यन्त अद्‌भुद् देवराज रूप में शोभित था। वर्णलोचना सरस्वती ने उसे लेखनी, ब्रह्मा ने जयमाला, इन्द्र ने गजदन्त, लक्ष्मी ने पद्म,.शिव ने व्याघ्रचर्म, बृहस्पति ने यज्ञसूत्र तथा पृथिवी ने मूषक वाहन प्रदान किया। मुनिगण तथा देवगण उन शिवनन्दन की स्तुति करने लगे, जो रक्तवर्ण थे।।७१-८०।।

ब्रह्मोवाच

शम्भो तवायं तनयस्त्वमेवायं न संशयः। सर्वदेवाग्रपूज्योऽयं शेषे त्वञ्च महेश्वरः॥८१॥
आदावन्ते भवानेव पूज्यो देवो महेश्वरः। सर्वदेवगणस्यायमधिपोऽभून्महाभुजः॥८२॥
भवतोऽपि गणा ये तु तेषामप्यधिपोऽभवत्। तस्माद्गणाधिपोऽस्त्वेष गजास्यत्वाद्गजाननः॥८३॥
इन्द्रं जित्वा गजं हत्वा भग्नदन्तं शिरो यतः। नन्दी चाद्भुतकर्म्मासौ ददौ तेनैकदन्तकः॥८४॥
हेरम्ब इति नामास्य बीजरूपं सदास्तु ह। लम्बोदरस्तुन्दिलत्वान्नाम्ना पुत्रोऽस्तु ते शिव॥८५॥
अस्य स्मरणमात्रेण सर्वे विघ्ना भयं ययुः। विघ्नेशोऽयमतो नाम्ना तव पुत्रोऽस्तु शङ्कर॥८६॥
यात्रायां सत्क्रियारम्भे यः स्मरेच्च गणाधिपम्।
तस्य यात्राफलं सिद्ध्येदारब्धस्यान्तदर्शनम्॥८७॥
सर्व्वमङ्गलकार्य्येषु पूजनीयो गणाधिपः। गणेशे पूजिते देवाः पूजिताः कार्य्यसाधकाः॥८८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे प्रभो! आपका पुत्र आपसे अभिन्न है। हे महेश्वर! समस्त देवगण से पहले इसकी पूजा होगी, तब आप पूजे जायेंगे। यह सभी देवताओं तथा आपके प्रमथगणों का अधिपति होगा। गजमुख होने के कारण गजानन कहलायेगा। नन्दी ने इन्द्र पर विजय पाकर ऐरावत का वध करके उसका मस्तक लाकर दिया। अतः यह एकदन्त कहलायेगा।

हे शंकर! इसका बीजरूप नाम हेरम्ब होगा। नन्दनीय भावयुक्त लम्बोदर नाम भी रहेगा। इसके स्मरण मात्र से विघ्नराशि नष्ट होने के कारण इस पुत्र का नाम विघ्नेश होगा। जो व्यक्ति यात्राकाल तथा पुण्य कार्यारम्भ में इन

गणपति को स्मरण करेगा, उसकी यात्रा सफल होगी। सभी मांगलिक कृत्यों में गणाधिप की पूजा करे। इससे सभी देवता पूजित होते हैं तथा कार्य सिद्धि होती है।।८१-८८।।

एवमुक्त्वा तदा ब्रह्मा विरराम द्विजर्षभ। ऐरावताभावदुःखी शिवमिन्द्रोऽभ्यभाषत।।८९।।

ऋषि कहते हैं—हे द्विजवर! ब्रह्मा यह कह कर विरत हो गये, तब ऐरावत के दुःख से दुःखी इन्द्र ने शिव से कहा।।८९।।

इन्द्र उवाच

देवोत्तम महादेव पार्व्वतीश त्रिलोचन। त्वामहं प्रणमाम्येष प्रभो त्रिजगदीश्वर।।९०।।
दासेन ते वलवता नन्दिना मे गजो हतः। अज्ञानेन मयायोधि स वै देव क्षमस्व माम्।।९१।।
यस्मै याचिष्णावे देयं स्वशिरोऽपि महेश ते। तस्मै गजशिरो दातुं नैच्छं तत्र क्षमस्व मे।।९२।।

इन्द्र कहते हैं—हे देवोत्तम! त्रिभुवनपति पार्वती प्रिय त्रिलोचन महादेव! आपको प्रणाम! आपके पराक्रमी किंकर नन्दी ने मेरे हाथी का वध कर दिया। तब मैंने अज्ञानतावश उनसे युद्ध किया था। मेरा अपराध क्षमा करें। हे महेश्वर! जिसे बिना प्रार्थना किये ही अपना मस्तक प्रदान करना कर्त्तव्य था, उसे मैंने गजमस्तक भी देने की इच्छा नहीं की, इसलिए मुझे क्षमा करें।।९०-९२।।

भगवानुवाच

ऐरावतं छिन्नशीर्षं क्षिप सागरपाथसि। पुनः प्राप्स्यसि नागेन्द्रं समुद्रमथनोद्भवम्।।९३।।
यथा त्वं मम पुत्राय दत्तमैरावतं शिरः। तथाहञ्चापि युष्मभ्यं दास्ये वृषभमक्षयम्।।९४।।

भगवान् कहते हैं—हे इन्द्र! छिन्नमस्तक ऐरावत को तुम सागर जल में फेंक दो। इससे समुद्र मन्थन के समय उस गजराज को पुनः प्राप्त करोगे। तुमने जिस प्रकार मेरे पुत्र हेतु ऐरावत का मस्तक दिया है, उसी प्रकार मैं भी तुमको अक्षय विषय प्रदान करता हूं।।९३-९४।।

ऋषिरुवाच

एवमुक्तो ययौ देवो दिवं कश्यपनन्दनः। ब्रह्मादयोऽपि प्राप्तार्हाः स्वस्थानानि ययुर्द्विज।।९५।।
गणेशं पार्व्वती देवी पालयामास हर्षिता। गणेशः परमो योगी संसारविमुखोऽभवत्।।९६।।
ऋषयस्तं सदागत्यगणेशं परितुष्टुवुः।

ऋषि कहते हैं—हे द्विज! भगवान् के यह कहने पर कश्यपनन्दन इन्द्र स्वर्ग चले गये। ब्रह्मादि देवता भी अपने-अपने स्थान चले गये। देवी पार्वती-गणेश का पालन करने लगीं। गणेश संसार विमुख परम योगी हो गये। ऋषिगण भी वहां आकर स्तव द्वारा उनको प्रसन्न करते रहते।।९५-९६।।

ऋषय ऊचुः

गणेशो गणनाथश्च हेरम्बो गिरिशात्मजः। पार्व्वतीनन्दनो वीरो देवराजो गजाननः।।९७।।
लम्बोदरो विघ्नराजो योगी सद्योगलक्षणः। अग्रपूज्यश्चतुर्वाहुरेकदन्तो लिपीश्वरः।।९८।।
व्याघ्रचर्म्माम्बरो धीरः सदामङ्गलरूपवान्। शुक्लास्यो मूषिकारोही केवलो मोक्षदायकः।।९९।।
पद्मी दन्तकरो दन्ती वैष्णवः परमार्थदृक्। पञ्चपाणिः पञ्चवक्त्रः शिवः शङ्कर ईश्वरः।।१००।।
हरिगाता नृत्यकारी शिवपुत्रः स्रवन्मदः। आनन्दान्दोलितमनाः शैवो धर्म्मो धनेश्वरः।।१०१।।

अनन्तो जगदाधारः शशिसूर्य्यविलोचनः। समुद्रपाता सामुद्रः समुद्रजठरो यमः॥१०२॥
दिव्यरूपो वारिनाथो जयश्च विजयस्तथा। नामान्येतानि पञ्चाशद्गणेशस्य पठेन्नरः॥१०३॥
यात्रायां पूजने दाने श्राद्धे गङ्गावगाहने। पुत्रादिमङ्गले कार्य्ये प्रत्यहञ्च त्रिसन्ध्यकम्॥१०४॥
शृणुयाद्यः भक्तियुक्तो विघ्नास्तस्य विमूर्च्छिताः। प्रत्यहं मङ्गलं तस्य धनपुत्रादिसम्भवम्॥१०५॥

ऋषिगण कहते हैं—हे गणेश, गणनाथ, हेरम्ब, गिरिजात्मज, पार्वतीनन्दन, वीर, देवराज, गजानन, लम्बोदर, विघ्नराज, योगी, सद्‌योगलक्षण, अग्रपूज्य, चतुर्बाहु, एकदन्त, लिपीश्वर, व्याघ्र चर्माम्बर, धीर, मंगलरूप, शुक्लास्य, मूषिक वाहन, मोक्षप्रद, दन्तकर, दन्ती, वैष्णव, परमार्थदृक्, पञ्चपाणि, पञ्चवक्त्र, शिव, शंकर, ईश्वर, हरिगाता, नृत्यकारी, शिवपुत्र, स्रवन्मद, अनन्दानन्द, अतिमना, शैव, धर्म, धनेश्वर, अनन्त, जगदाधर, शशिसूर्य लोचन, समुद्रपाता, सामुद्र जठर, अजय, दिव्यरूप, वारिनाथ, जय, विजय आपको प्रणाम। श्री गणेश के ये ५० नाम को जो व्यक्ति यात्रा, पूजा, दान, श्राद्ध, गंगास्नान अथवा पुत्र आदि के मंगल कार्य में अथवा नित्य त्रिसन्ध्या में श्रवण किंवा पाठ करता है, उसके विघ्न दूर हो जाते हैं। उसका धन-पुत्रादि सम्बन्धित मंगल होता है। उसे इष्ट की भक्ति तथा इच्छित धनलाभ होता है।।९७-१०५।।

इष्टदेव महाभक्तिदायकं वाञ्छितार्थदम्। एवं स्तुत्वा ऋषिगणा जग्मुः सर्व्वे यथागतम्॥१०६॥
जैमिने कथितञ्चैतद्गणेशजन्म पुण्यदम्। न वंशो वर्त्तते शम्भोरन्ते संहाररूपिणः॥१०७॥
पुत्रोऽन्यः कथितः पूर्व्वं कार्त्तिकेयः कुमारकः। तस्यापि न विवाहोऽभूत् कौमारव्रतचारिणः॥१०८॥
इति ते कथितं सर्व्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया। जैमिने तपसे गच्छ याम्यहञ्च यथातथम्॥१०९॥

शुक कहते हैं—इस प्रकार से स्तुति करके ऋषिगण जहां से आये थे, वहां चले गये। हे जैमिनि! पुण्यप्रद गणपति की जन्म कथा का मैंने वर्णन कर दिया। संहारकारी शंभु का वंश वर्त्तमान नहीं है। (?) शंभु के अन्य पुत्र कार्त्तिकेय का वर्णन करता हूं। वे कौमार व्रती थे, अतः उन्होंने विवाह नहीं किया। हे जैमिनि! तुमने जो कुछ पूछा था, वह मैंने वर्णन कर दिया। अब तुम तपस्या हेतु जाओ। मैं भी यथास्थान जाता हूं।।१०६-१०९।।

व्यास उवाच

इत्युक्तो जैमिनिस्तत्र प्रणम्य गुरुमीश्वरम्। जगाम तपसेऽन्यत्र शुकोऽपि योगवित्तमः॥११०॥
शिवस्यांशो महाभागो जावाले गतवान् यथा। श्रोतुमिच्छसि जावाले मिमन्यत् कथयामि ते॥१११॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे षष्टितमोऽध्यायः समाप्तः।।

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे मध्यखण्डः समाप्तः।।

व्यासदेव कहते हैं—हे जाबालि! तब जैमिनि ने अपने गुरु शुक को प्रणाम किया तथा तपः हेतु चले गये। शिव के अंशावतार महाभाग महायोगी शुक भी अन्यत्र चले गये। हे जाबालि! अब तुम और क्या सुनना चाहते हो? कहो!।।११०-१११।।

।।षष्टितम अध्याय समाप्त।।

।।मध्य खण्ड समाप्त।।

❖❖❖

उत्तरखण्डः

उत्तरखण्डः

प्रथमोऽध्यायः

विविध धर्म कथन, प्रणामोपदेश

शौनक उवाच

मध्यखण्डकथा दिव्याः श्रुत्वा स गुरवे मुनिः।
जावालिः किंनु पप्रच्छ तन्नः सूत वदस्व भोः॥१॥

शौनक कहते हैं—हे प्रभो! सूत! मुनिवर जाबालि ने देवी प्रमुख मध्यखण्ड श्रवण करने के पश्चात् गुरु वेदव्यास से किस विषय को पूछा, कृपया वह कहिए।।१।।

सूत उवाच

श्रुत्वा दिव्याः कथाः पुण्या मध्यखण्डस्य शौनक।
जावालिः परिपप्रच्छ वेदव्यासं गुरुं ततः॥२॥

सूत कहते हैं—हे शौनक! जाबालि ने मध्यखण्ड की पुण्य कथा सुनकर गुरु से कहा।।२।।

जावालिरुवाच

श्रुता दिव्याः कथा ब्रह्मन् वर्णाश्रमसमाहितान्। धर्म्मान् वद महावाहो शृन्वतो मम चादरात्॥३॥

जाबालि कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपके श्रीमुख से समस्त दिव्य कथा सुनी। अब वर्णाश्रम धर्म श्रवणार्थ विशेष इच्छा है। अतएव कृपापूर्वक उसका वर्णन करिये।।३।।

व्यास उवाच

मूलप्रकृतिसम्भूता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। तेषु वै मध्यमो विष्णुः सत्वदेहः सनातनः॥४॥
तस्याभवन्मुखाद्विप्राः सर्व्ववेदसमाश्रयाः। वाहोश्च क्षत्रिया जाताः प्रजापालनहेतवे॥५॥
ऊरूतो वणिजो जाताः धनरक्षणहेतवे। त्रयाणां सेवनार्थाय शूद्रो जातस्तु पादतः॥६॥
वर्णानेतान् समुत्पाद्य तद्धर्म्मानुदपादयत्। आगमो निगमश्चेति धर्म्माध्वानावुभौ मतौ॥७॥
द्वाभ्यामेव जगत् सर्व्वं ध्रियते स चराचरं। निगमो वेदमार्गः स्यात् तत्वमार्गस्तथागमः॥८॥
वेदमार्गः कर्म्मरूपस्तत्वमार्गस्तु यौगिकः। योगः कर्म्मविशेषश्च तत्वं तेनैव लभ्यते॥९॥
वेदमार्गात् कर्म्मरूपाद्योगकर्म्म प्रलभ्यते। नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म्मकृत्॥१०॥

जीवः सदा कर्म्मवशो यावत्तत्वं न गच्छति।
तस्मात्तत्वार्थिना विप्र सदा जीवने कर्म्म वै॥११॥

कर्त्तव्यं न तु तत्त्यक्त्वा दूरतत्वो ह्यधः पतेत्। अद्वैतभावस्तत्वं स्यात्तत्तु वाचा न गम्यते॥१२॥

व्यासदेव कहते हैं—ब्रह्मा-विष्णु-शिव मूल प्रकृति से समुत्पन्न हैं। उनमें सत्वदेह सनातन विष्णु तीनों के मध्य स्थित हैं। उनके मुख से सर्वकालाश्रय ब्राह्मण, प्रजापालक क्षत्रिय बाहु से, धनरक्षक वैश्य उनके उरु से तथा तीनों वर्ण की सेवा हेतु शूद्र पादद्वय से उत्पन्न हैं। भगवान् विष्णु ने इस प्रकार से चारों वर्ण का सृजन किया तथा उनको धर्मोपदेश प्रदान किया। आगम तथा निगम रूप धर्म पथ कहा गया है। इन दो धर्ममार्ग से ही सचराचर जगत् रक्षित होता है। इनमें निगम है वेदमार्ग, तथा आगम है तत्त्वमार्ग। वेदमार्ग कर्मरूप है तथा तत्त्वमार्ग योगरूप है। कर्मविशेष को ही योग कहते हैं। योगबल से ही तत्त्वलाभ होता है तथा कर्मरूप वेदमार्ग से योगप्राप्ति होती है। कोई भी व्यक्ति बिना कर्म किये एक क्षण भी स्थित नहीं रह सकता। जब तक तत्त्वलाभ न हो जाये, तब तक सभी प्राणी कर्म के अधीन रहते हैं। हे विप्र! इसीलिए तत्त्वज्ञान चाहने वाला कभी भी विहित कर्म का त्याग न करे। तत्त्वप्राप्ति के पहले ही जो कर्मरहित हो जाता है, वह निःसन्देह अधःपतित ही होगा। तत्त्व शब्द का अर्थ है अद्वैतभाव। वह केवल वाक्य द्वारा प्राप्त नहीं होता।।४-१२।।

कर्म्मणा जायते देहो भूयस्तत्र च कर्म्मणा। स्वर्गो वा नरको वापि लभ्यते विप्र सर्व्वथा॥१३॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चेति चतुष्टयम्। वर्णाः स्वधर्म्मनिरताः प्राप्यन्ते विप्रतां द्विज॥१४॥
ब्रह्मधर्म्मरता भूत्वा लभन्ते तत्त्वमुत्तमम्। शौद्रान् धर्म्मानशेषेण कुर्व्वन् शूद्रो यथाविधि॥१५॥
वैश्यत्वमेति वैश्यश्च क्षत्रियत्वं स्वकर्म्मकृत्। विप्रत्वं क्षत्रियः सम्यक् निजधर्म्मपरो द्विज॥१६॥
विप्रश्च मुक्तिलाभेन युज्यते सत्क्रियापरः। सर्व्वएते हि वर्णा वै ज्येष्ठवर्णक्रियाकृतः॥१७॥
पतन्ति नरके घोरे तस्माद्यो यः स वै तथा। तेषाञ्च ब्राह्मणादीनां वर्णधर्म्माननुक्रमात्॥१८॥
कथयामि शुभान् ब्रह्मन् गदतो मे निशामय। अनसूया दया कान्तिः शौर्य्यमार्ज्जवमस्पृहा॥१९॥
अकार्पण्यमनायस्तन्तथान्यत् सार्व्ववर्णिकम्। अष्टावेव गुणाः पुंसां परत्रेह च भूतये॥२०॥

हे विप्र! प्राणीगण कर्म द्वारा ही देहधारी होते हैं। कर्म से ही उनको स्वर्ग अथवा नरक भोग मिलता है। हे द्विज! ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र रूप चारों वर्ण स्वधर्मरत होने पर विप्रत्व प्राप्त करते हैं। जो ब्राह्मण होकर यथोचित ब्राह्मणधर्म का पालन करता है, उसे तत्त्वलाभ होकर रहेगा। जो शूद्र यथाविधि शूद्रधर्म पालन करता है, उसे वैश्यत्व मिलेगा। जो वैश्य विहित वैश्यधर्म पालन करेगा, उसे क्षत्रियत्व मिलेगा। जो क्षत्रिय यथाविधान शास्त्रोक्त क्षत्रियधर्म पालन करेगा, उसे विप्रत्व मिल कर रहेगा। जो विप्र सदाचारी रहकर नियम पालन करेगा, उसे मुक्ति अवश्य मिलेगी। तथा उक्त वर्णों वाले यदि स्वधर्म त्याग कर अपने से उच्च वर्ण के धर्म का पालन करते हैं, तब उनको घोर नरक मिलना निश्चित है। अतएव अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करना कर्त्तव्य रूप है। हे ब्रह्मन्! अब यथा-क्रमेण ब्राह्मणादि चारों वर्ण के लिए शुभप्रदायक धर्म का वर्णन करता हूं। सभी वर्णों वाले असूया, दया, क्षमा, शौर्य, सरलता, अलोभ, अकार्पण्य, आलस्य विहीनता तथा सभी सद्गुणों का वरण करें। इन आठ सद्गुणों के द्वारा इहलोक-इहकाल, परलोक-परकाल में मंगल होगा। अब अलग-अलग धर्मनिर्देश करता हूं। श्रवण करो।।१३-२०।।

पृथग्धर्म्मांश्च तेषां वै गदतो मे निशामय। यज्ञाध्ययनदानानि ब्रह्मक्षत्रविशां द्विज॥२१॥

शूद्रस्य केवलं सेवा ब्रह्मक्षत्रविशामिति। क्षत्रियः सेवते विप्रं विप्रक्षत्रौ च वैश्यकः॥२२॥
शूद्रस्तु कुर्य्यात् सेवां वै ब्रह्मक्षत्रविशामिति। शूद्रस्य भरणं कुर्य्युर्ब्राह्मणाद्या द्विजोत्तम॥२३॥
ब्राह्मणे देवशर्म्माणौ रायोवर्म्मा च क्षत्रिये। धनो वैश्ये तथा शूद्रे दासशब्दः प्रयुज्यते॥२४॥
स्त्रीषु देवीति विप्राणां क्षत्रियाणाञ्च कथ्यते। दासीति वैश्या शूद्रासु कथ्यते द्विजपुङ्गव॥२५॥
ब्राह्मणं संमुखं दृष्ट्वा प्रणमेयुस्त्रयः परे। अप्रणम्य ब्रह्महत्यापापं ते प्राप्नुयुर्द्विज॥२६॥
ब्राह्मणः संस्कृतोक्त्या तु वाचं दद्यात् सुखान्वितः॥२७॥
ब्राह्मणो ब्राह्मणं दृष्ट्वा प्रणमेत्तु परस्परम्। पितापि पुत्रं संनम्य न दोषं प्रतिपादयेत्॥२८॥
जलहस्तं वह्निहस्तं पठन्तं भोजनान्वितम्। जपन्तं वा पठन्तं वा प्रणमेन्न कदाचन॥२९॥
पुष्पहस्तं ध्यानयुक्तं निद्रायुक्तमथापि वा। धावन्तं क्रोधयुक्तं वा नावधानं न वै नमेत्॥३०॥
आर्द्रवस्त्रं शस्त्रहस्तं पतितं मत्ततायुतम्। नीचस्थलस्थितञ्चैव विमनस्कं तथैव च॥३१॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हेतु यज्ञ, अध्ययन तथा दान देना कर्त्तव्य है। क्षत्रिय ब्राह्मण की, वैश्य ब्राह्मण-क्षत्रिय की तथा शूद्र इन तीनों की सेवा करे। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य का कर्त्तव्य है कि शूद्र का भरण (पालन) करें। ब्राह्मण के नाम के अन्त में देव अथवा शर्मा, क्षत्रिय के नाम के अन्त में वर्मा, वैश्य के नाम के अन्त में धन तथा शूद्र के नाम के अन्त में दास शब्द-व्यवहार करे। हे द्विजप्रवर! ब्राह्मण तथा क्षत्रिय स्त्री के नाम के अन्त में देवी शब्द लगाये। वैश्य तथा शूद्रा स्त्री के नाम के अन्त में दासी शब्द लगाये। क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र वर्ण वाले ब्राह्मण को सम्मुख आया देखकर प्रणाम करें, अन्यथा ब्रह्महत्या दोष लगता है। उक्त वर्णत्रय द्वारा प्रणाम किये जाने पर ब्राह्मण को चाहिए कि सन्तुष्ट मन से संस्कृत वाक्यों में आशीर्वाद प्रदान करे। ब्राह्मण से जब ब्राह्मण मिले, तब परस्पर को प्रणाम करे। ऐसी स्थिति में पिता भी पुत्र को प्रणाम कर सकता है। हाथो में जल-अग्नि लिये, पढ़ते हुए, भोजन करते, जप करते, अन्नादि पाक में नियुक्त होने पर, हाथ में पुष्प लिये, ध्यानावस्था में, निद्रायुक्त स्थिति में, जोरों से दौड़ते, क्रोध में, बंधन में, गीले वस्त्र से, हाथ में शस्त्र लिये, गिरे हुए, उन्मादग्रस्तता में, नीच स्थान में स्थित होने पर, अन्यमनस्क व्यक्ति को प्रणाम न करे।।२१-३१।।

न नमेत् पृष्ठतश्चैव स्नानं कुर्व्वन्तमेव च। (परैश्च पीड्यमानञ्च प्रणमेन्न कदाचन॥३२॥
स्वयं शुचिरतैलोऽपि पिवन् खादन्नचानमेत्। उच्चैःस्थलगतो वापि प्रणमेन्न कदाचन॥३३॥
उच्छिष्टश्च विवस्त्रश्च आर्द्रवासाश्च नानमेत्। ब्राह्मणः प्रणतायैव कुर्य्यादाशीर्व्वचो द्विज॥३४॥
प्रणामपूर्व्वे नाशीश्च कर्त्तव्या हि कदाचन। शूद्रन्त्वप्रणतं नैव सम्भाषेत कदाचन॥
उभौ तो नरकं यातौ ब्राह्मणः शूद्र एव च॥३५॥

किसी को पीछे से प्रणाम न करे। जो अन्य द्वारा पीड़ित किया जा रहा हो, उसे प्रणाम न करे। स्वयं पवित्र होकर किसी अपवित्र स्थिति वाले को, जल पीते-पीते, ऊंचे स्थान पर स्थित होकर, स्वयं अपवित्र-विवस्त्र किंवा आर्द्रवस्त्र स्थिति में प्रणाम न करे। हे द्विज! कहीं भी कोई नमस्कार करता है, तब उसे आशीर्वाद करना चाहिए। लेकिन प्रणाम प्राप्त होने के पूर्व कदापि आशीर्वाद न प्रदान करे। इससे ब्राह्मण तथा शूद्रादि सभी नरक जाते हैं।।३२-३५।।

गुणवृद्धः प्रणन्तव्यो विप्रो विप्रैर्वयोधिकैः। गुरवस्तु प्रणन्तव्या गुणैश्चेदधमा अपि।
गुरवः पूर्व्वमेवोक्ताः क्रमेण चोत्तमा हि ते॥३६॥
तेषां नामग्रहाह्वानं निन्दां धिक्कारमेव च)। परोक्षदोषवादञ्च त्यजेदविनयन्तथा॥३७॥
मातुलाद्या वयोनीचाः प्रणन्तव्याः सदैव हि।
अन्ये तत्सम्बन्धसम्बन्धा अपादस्पर्शना मताः॥३८॥
प्रणमेयुर्ज्येष्ठवंश्याः स्पृशेयुर्न च वै पदे। कनिष्ठवंश्या गुरवो ज्येष्ठवंश्यांस्तु मानयेत्॥३९॥
गुरुसम्बन्धपर्य्याया ये तु स्युर्वयसाल्पकाः। ते भवन्ति नमस्कार्य्यास्तन्नमस्कारपूर्व्वतः॥४०॥
गुरुभ्योऽन्याः स्त्रियो नैव प्रणन्तव्याः द्विजन्मभिः। पादस्पर्शप्रणामन्तु कनिष्ठेषु न चाचरेत्॥४१॥
वर्जयित्वा मातुलादीन् गुरुपौत्रादिकानपि। युवतीं गुरुभार्य्याञ्च प्रणमेन्न पदे स्पृशन्॥४२॥
कनिष्ठभ्रातृपत्न्यास्तु स्नुषायाः शिष्ययोषितः। श्वश्र्वाश्च संमुखीभूयान्न कदाचितद्विशेषतः॥४३॥
त्वङ्कारमङ्गस्पर्शञ्च रहःसन्दर्शनस्थितिम्। उच्छिष्टदापनञ्चैव नासां कुर्य्यात् कदाचन॥४४॥
एता अपि तथाचारं कुर्य्युस्तेषु च तेषु च। जननी गुरुपत्नी च श्वश्रूर्ज्येष्ठसहोदरा॥४५॥
मातृष्वसा मातुलानी सप्तमी तु पितृष्वसा। एता हि मातृपर्य्याया लघुत्वं चोत्तरोत्तरम्॥४६॥
एता मान्याश्च पूज्याश्च अगम्याश्चैव सर्व्वशः।
भार्य्याया मातुलाद्याश्च प्रणन्तव्याः समादरैः॥४७॥
भार्य्याभ्राता वयोज्येष्ठो नापादस्पर्शनो मतः। ब्राह्मणः सर्व्ववर्णानां गुरुः शिष्या परेः मताः॥४८॥
इत्येवमुक्तो जावाले प्रणामविधिरुत्तमः। योऽन्यथा कुरुते ह्येवं स वै दण्ड्यस्तु पण्डितैः॥४९॥

।।इति श्रीबृहद्धर्मपुराणे उत्तरखण्डे प्रणामविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः।।



यदि ब्राह्मण आयु में छोटा होकर भी गुणों में श्रेष्ठ हो, तब वह अधिक आयु वाले ब्राह्मणों द्वारा भी प्रणाम योग्य है। गुरुजन यदि असत् गुणयुक्त हैं, तब भी उनको प्रणाम करे। क्रम से उच्च वर्ण वाला अपने से निम्न वर्ण का गुरु है। यह इतिपूर्व कहा गया है। गुरुजन का नाम लेना, उनकी निन्दा, पीठ पीछे दोष कथन तथा उनका नाम लेकर बुलाना वर्जित है। उनके सामने उद्दण्डता न करे। मामा प्रभृति यदि आयु में छोटे भी हैं, तब भी उनको प्रणाम करे। अन्य सम्बन्धी स्वजनों को बिना पैर छूये नमस्कार करे। अपने से कनिष्ठ का पैर छूकर प्रणाम करना निषिद्ध है। यदि कनिष्ठ वंशीय व्यक्ति ज्येष्ठ वंश वाले का शिक्षादान आदि द्वारा गुरु हो गया है, तब वह कनिष्ठ वंश वाला गुरु ज्येष्ठ वंश वाले को चरण छूकर प्रणाम न करे। गुरुतर सम्बन्ध वाला (उच्च रिश्ते वाला) यदि आयु में छोटा भी है, तब उसके द्वारा नमस्कार किये जाने के पहले ही उसे नमस्कार कर देना चाहिए। गुरुपुत्र तथा मातुल के अतिरिक्त गुरुपत्नी को भी द्विजगण प्रणाम करें। अन्य स्त्रियों को ब्राह्मण प्रणाम न करे। यदि गुरुपत्नी युवा हो तब उसका पैर स्पर्श किये बिना दूर से ही प्रणाम करे। कनिष्ठ भातृपत्नी, पुत्रवधू, शिष्य पत्नी तथा सास के सामने आना कदापि उचित नहीं है। इनका समादर, अंगस्पर्श, इनको बहिःसन्दर्शनार्थ अवस्थिति न करे। इनको कदापि जूठा प्रदान न

करे। विमाता, गुरुपत्नी, सास, ज्येष्ठ बहन, मातृष्वसा, मातुलानी, पितृष्वसा, मातृ स्थानीय हैं। ये उत्तरोत्तर परम माननीया हैं। ये पूज्या तथा अगम्या हैं। मातुलादि को सादर प्रणाम करे। भार्या का भ्राता आयु में बड़ा हो तब उसे प्रणाम करे। तथापि उसका चरण न छूए। ब्राह्मण सर्ववर्ण का गुरु है। क्षत्रियादि तीनों वर्ण उसके शिष्य हैं। हे जाबाल! मैंने तुमसे प्रणाम विधान कहा। जो इसके विपरीत आचरण करता है, वह पण्डितों द्वारा दण्ड का पात्र है।।३६-४९।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।



द्वितीयोऽध्यायः

ब्राह्मण धर्म वर्णन

व्यास उवाच

यथामति ब्राह्मणानां धर्म्मान् वक्ष्यामि शाश्वतान्। पावनान् ब्रह्मणागीतान् ब्राह्मणैश्चरितानपि॥१॥
सत्यं क्षान्तिः क्षमा हिंसा वैधहिंसाल्पतोषिता। दया दानञ्च भिक्षा च परानुद्वेगकारिणी॥२॥
सौशील्यं विनयश्चैव यजनं याजनं तथा। प्रतिग्रहश्चाध्ययनाध्यापने स्वल्पभोजनम्॥३॥
अनामिषासनञ्चैव (तपस्या देवपूजनम्। धैर्य्यञ्चानशनञ्चैव) व्रतं सूर्य्यस्य सेवनम्॥४॥
अग्निसेवा गुरोः सेवा गोसेवा नीचतोऽर्थना। अशुचिस्पर्शनञ्चैव अशुचिस्थानसङ्गमः॥५॥
नीचालापो नीचगेहगमनं नीचवासना। स्नानालस्यजपालस्यवर्जनं दुःखमर्षणम्॥६॥
शूद्राह्वानभोजनस्य त्यागः शास्त्रज्ञता तथा। धर्म्मज्ञानं धर्म्मकथा शास्त्रार्थकथनं तथा॥७॥
अशस्त्रधारणञ्चैव वाणिज्यवर्जनं तथा। गोवाहनं चारणञ्च गवां गोविक्रयं तथा॥८॥
न कुर्य्याद् ब्राह्मणः क्वापि कुर्व्वाणे गोवधी भवेत्। प्राणिनां तेजसाञ्चैव वसानां वाससामपि॥९॥
विक्रयं सन्त्यजेद्विप्रस्तथा वेतनभोजिताम्। चर्म्मवाद्यानुनृत्यञ्च चर्म्मवाद्योपजीवनम्॥१०॥

व्यासदेव कहते हैं—अब यथाज्ञान ब्राह्मणों का सनातन धर्म कहता हूं। सुनें। पूर्व में इसका उपदेश ब्रह्मा ने दिया था। ब्राह्मणगण भी इसे आचरित करते हैं। सत्य, शान्ति, क्षमा, अहिंसा, वैध हिंसा, अल्प में संतोष, दया, दान तथा इस प्रकार की भिक्षा जिसे देने में अन्य को क्लेश न हो, सौजन्य, विनय, यजन-याजन, दान लेना, अध्ययन-अध्यापन, नियत आहार, निरामिष भोजन, उपवास-व्रत रखना, सूर्याराधन, अग्नि सेवा, गुरु सेवा, गो सेवा ब्राह्मण का आवश्यक कर्म है। ब्राह्मणगण नीच से प्रार्थना, अशुचिस्पर्श, अपवित्र स्थान निवास, नीच वासना, स्नान-जप में आलस्य, चित्त क्षोभ तथा शूद्र के यहां भोजन, इन सब का त्याग करे।

धर्मज्ञान, धर्मविषयक वार्त्ता, शास्त्र का आलाप यह ब्राह्मण का कर्त्तव्य है। ब्राह्मणगण शस्त्रधारण, वाणिज्य, बैल पर भार लादना, गाय चराना तथा गाय विक्रय कदापि न करें। जो इन सब नियम के विपरीत कार्य करता है, उसे गोवध पाप लगता है। किसी भी जीव, तैजसपात्र, वसा, वस्त्र का विक्रय न करे। चमड़े का वाद्य बजाना, नृत्य, चर्मवाद्य बजाकर जीविका चलाना, चर्मछेदनादि कार्य करना ब्राह्मण का कर्त्तव्य कदापि नहीं है।।१-१०।।

चर्म्मच्छेदादिकञ्चापि न कुर्य्याद्ब्राह्मणः सदा।
त्रिसन्ध्योपासनं कुर्य्यात् सावित्रीजपमेव च॥११॥
देवर्षिपितृलोकानां तर्पणं शुचिराचरेत्। प्रातर्मध्याह्नसायञ्च गायत्रीं त्रिविधां स्मरेत्॥१२॥
रक्तां श्यामाञ्च शुक्लाञ्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
एतत् सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यदधिष्ठितम्॥१३॥
यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते। सन्ध्यात्रयमकुर्व्वाणः सूर्य्यं हन्ति च पापकृत्॥१४॥
अस्नायी च मलं भुङ्क्ते अजपी पूयशोणितम्। अकृत्वा तर्पणं नित्यं पितृहा चोपजायते॥१५॥
उदयन्तं हि मार्त्तण्डं मन्देहा नाम राक्षसाः। नित्यं ग्रसितुमायान्ति महाघोरतराननाः॥१६॥
प्रातः सन्ध्याकृतां तत्र ब्राह्मणानाञ्च ते द्विज। जलाञ्जलिभिरुद्धूताः पलायन्ते सुदूरतः॥१७॥
ये पुनर्नाचरन्त्येवं ब्राह्मणास्तेऽर्क्कघातिनः। रक्तपाते पूयपाते धूमोद्गारे ज्वरे तथा॥१८॥
सूतके मृतकेऽशौचे वैदिकं कर्म्म नाचरेत्। प्रातः सन्ध्यामकृत्वा तु तदहश्चाशुचिर्भवेत्॥१९॥
सर्व्ववैदिककार्य्येषु प्रयात्यनधिकारिताम्। राजद्वारे बन्धनस्थो दूराध्वनि त्वरान्वितः॥२०॥
कुर्य्याच्च मानसीं सन्ध्यां नैव दोषेण गृह्यते। प्रमादोन्मादसम्मादशोकमोहादिना पुमान्॥२१॥

ब्राह्मण नित्य पवित्र होकर तीनों सन्ध्याकाल में उपासना, गायत्री जप तथा देवता-ऋषि-पितृगण का तर्पण अवश्य करे। उक्त गायत्री प्रातः मध्याह्न-सन्ध्या भेदानुसार त्रिविध है। यह प्रातः रक्तवर्णा ब्रह्मस्वरूपा, मध्याह्न में श्यामवर्णा विष्णुस्वरूपा, सायंकाल में शुक्लवर्णा शिवस्वरूपा होती हैं। इस प्रकार उनका ध्यान करे। उक्त संध्यात्रय ब्राह्मण में अधिष्ठित हैं। जो त्रिसन्ध्या नहीं करता, वह ब्राह्मण नहीं है। जो पापी त्रिसन्ध्यारहित है, उसने तो सूर्य की हत्या ही कर दिया। स्नान न करने वाला, मलिन, जपरहित व्यक्ति मानो मवाद तथा रक्तभोजन करता है। जो नित्य पितृतर्पण नहीं करता, वह पितृहत्यारा है। सूर्य के उदित होते ही मन्देह नामक महाविकटमुख राक्षस प्रतिदिन उनका ग्रास करने दौड़ते हैं। प्रातः संध्या प्रदत्त जलांजलि से वे ताड़ित होकर दूर भाग जाते हैं। जो ब्राह्मणगण ऐसा आचरण नहीं करते, उनको आत्महत्या पातक लगता है। (रक्त निकलते) रक्तपात, मवाद निकालते, डकार लेते, ज्वर रोग में तथा जनना-मरणा शौच काल में वैदिक कृत्य न करे। जिस दिन ब्राह्मण प्रातः सन्ध्या नहीं करता, तब वह उस दिन अपवित्र है। वह समस्त वैदिक कार्य का अधिकार खो देता है। ब्राह्मण इन अवसरों पर मानसिक सन्ध्या कर सकता है। यथा—राजद्वार जाने पर, बन्धनग्रंस्त होने पर, दूर जाने के लिए त्वरा होने पर। इससे दोष नहीं लगता। मनुष्य प्रमादग्रस्तता में तथा शोक-मोहादि की स्थिति में अशुद्ध रहता है। तब मानस सन्ध्या ही उचित है।।११-२१।।

प्रयात्यशुचितां तत्र सन्ध्यां कुर्य्यात्तु मानसीम्।
द्वादश्यां पूर्णिमावास्योः संक्रान्त्यां श्राद्धवासरे॥२२॥
सायं सन्ध्यां न कुर्व्वीत कुर्व्वाणः पितृहा भवेत्। जपेत् सहस्रं सावित्रीं ब्राह्मणोऽहरहर्द्विज॥२३॥
तदशक्त्या जपेद्देवीं गायत्रीं शतधापि च। चालयेन्नाधरञ्चौष्ठं न द्रुतं नातिमन्दकम्॥२४॥
उत्थाय शुष्कवस्त्रेण युतो युग्मेन तां जपेत्। आद्यन्ते प्रणवौ देयौ सावित्रीजपकर्म्मणि॥२५॥

मध्यमापर्व्वयुगलं त्यक्त्वा च दशपर्व्वभिः। सव्येन पाणिना जप्या घनीभूताङ्गुलेन वै॥२६॥
सावित्रीं प्रजपेद्विप्रः प्रातर्मध्याह्न उत्थितः। उषित्वा प्रजपेत्सायं पश्चिमाभिमुखस्तथा॥२७॥
सावित्रीजपशीलस्य ब्रह्महत्यादिपातकम्। उपेतं दैवयोगेन नश्यत्यग्नौ पतङ्गवत्॥२८॥
शतं जप्ता तु सा देवी दिनपापप्रनाशिनी। जप्त्वा तु देवी गायत्रीं सूर्य्य एव समर्पयेत्॥२९॥
महेशमुखसम्भूता विष्णोर्वक्षसि संस्थिता। ब्रह्मणा समनुज्ञाता गच्छ देवि यथेच्छया॥३०॥
मन्त्रेणानेन गायत्रीं सूर्य्ये खलु समर्पयैत्। गायत्र्या वर्णरूपादि आदित्याख्यपुराणके॥३१॥
ज्ञेयं तेनार्थमाज्ञाय गायत्रीं प्रजपेत् कृती। गायन्तं त्रायते यस्माद् गायत्रीयं तदुच्यते॥३२॥

द्वादशी, अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति तथा श्राद्ध के दिन सायं सन्ध्या न करे, अन्यथा पितृहत्या दोष लगता है। हे द्विज! ब्राह्मणों को नित्य १००० अथवा अशक्त होने पर १०० बार गायत्री जप करना ही चाहिए। उंगलियों को सटाकर मध्यमा के दो पर्व को छोड़कर दाहिने हाथ के अन्य १० पर्वों से गायत्री जपे। विप्रगण प्रातः तथा मध्याह्न में उठे रहकर तथा सायंकाल बैठ कर गायत्री जपें। जैसे प्रज्वलित अग्नि में पतंगे दग्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार गायत्री जप परायण से दैवात् हो गये ब्रह्महत्यादि पातक भी नष्ट हो जाते हैं। १०० गायत्री जप से दिन के पाप तथा १००० जप द्वारा निखिल पापराशि क्षयीभूत हो जाती है। द्विजगण गायत्री जप करके इस मन्त्रोच्चार से भगवान् भास्कर को जप समर्पित करें— "हे देवी! तुम महेश्वर के मुख से उद्भूत होकर विष्णु के वक्ष पर स्थित हो। अब ब्रह्म द्वारा अनुज्ञात होकर यथेच्छ गमन करो।" आदित्य पुराण में गायत्री का वर्ण तथा रूपादि वर्णित है। सुकृती व्यक्ति इस पुराण से सम्यक् ज्ञान पाकर जप करे। जो गायत्री गायन (जप) करता है, वह उसका त्राण करती हैं। इसीलिए ये गायत्री कही गयी हैं।।२२-३२।।

तर्पणं पितृलोकानां ब्राह्मणोऽवश्यमाचरेत्। सतिलैर्व्वारिभिः स्वच्छैरफेणैर्दक्षिणामुखः॥३३॥
दक्षिणाग्रेण पात्रेण जलमादाय निक्षिपेत्। तथैव न तु वामेन पश्चिमाग्रेण वा क्वचित्॥३४॥
तिलांस्तु वामतो नीत्वा ह्यस्पृष्टान् गात्रलोमभिः।
दशान्यूनान् क्षिपेत्तोये स्वधेति च विनिर्दिशेत्॥३५॥
एवं कृत्वा तर्पणादि ब्राह्मणानुमतो गृहम्। आगच्छेद्ब्राह्मणाभावे जलं नीत्वा गृहं व्रजेत्॥३६॥
स्नात्वा च न स्पृशेल्लौहं रात्रिवासश्च ब्राह्मणः। वस्त्रञ्च तदहर्धौतं परिदध्यात् प्रयत्नतः॥३७॥
त्यक्तं वस्त्रमशुद्धं स्यादत्यक्तञ्च क्षपांशुकम्। रतिवस्त्रं विशेषेण शतधौतेन शुद्ध्यति॥३८॥
तिलकं यज्ञसूत्रञ्च वस्त्रयुग्मं रदानपि। शुक्लान् सदेव कुर्व्वीत शुद्धात्मा ब्राह्मणः सदा॥३९॥
सदोपवीतिना भाव्यं सदा वद्धशिखेन च। सदा तिलकिना चैव द्विजेनाचारिणा तथा॥४०॥

ब्राह्मणगण नित्य फेनरहित निर्मल जल से पितृतर्पण करें। द्विजगण दक्षिणमुखी होकर दक्षिणाग्र कुश से जल लेकर वामदिक् से जिस तिल पर भूसी न हो, ऐसे १० तिल लेकर इस मन्त्रोच्चार से उसमें जल मिलाकर उससे तर्पण करें। (मन्त्र मूल में नहीं लिखा है)। वाम हाथ से किंवा पश्चिमाग्र दर्भ से (कुश से) कभी जल ग्रहण न करे। इस प्रकार तर्पणादि का समापन करके ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर अथवा यदि ब्राह्मण वहां न हो, तब जलपात्र से किंचित

जल लेकर अपने गृह जाये। ब्राह्मण स्नानोपरान्त लौह तथा रात का पहना कपड़ा स्पर्श न करे। उस दिन का धुला वस्त्र धारण करे। रतिकालीन परित्यक्त वस्त्र तथा अपरित्यक्त वस्त्र भी अपवित्र होता है। विशेषतः वह १०० बार धुले बिना पवित्र नहीं होता। पवित्रात्मा द्विज सदा शुक्लवर्ण तिलक, शुक्ल यज्ञोपवीत, शुक्ल वर्ण दो वस्त्र धारण करे। दांत साफ रखें। निष्ठा वाला ब्राह्मण सदा यज्ञोपवीत धारण करे। शिखा बन्धन करे एवं तिलक युक्त हो।।३३-४०।।

मलमूत्रादिकत्यागे नोपवीती भवेद्विजः। शिर आच्छाद्य कर्णे वा स्कन्धे शिरसि वा तथा।।४१।।

उपवीतं समारोप्य मुक्तकच्छो मलं त्यजेत्।
तैलाभ्यक्तो न ब्राह्मणः स्यान्मार्ष्टि कुर्य्यात्तु ब्राह्मणः।।४२।।

मार्ष्टि कृत्वापि न त्याज्यं मलमूत्रं कदाचन। मलमूत्रपरित्यागे मैथुने स्नानभोजने।।४३।।
दन्तस्य धावने चैव षट्सु मौनं समाचरेत्। ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं न सुखाय कदाचन।।४४।।
तपःक्लेशाय धर्म्माय प्रेत्य मोक्षाय सर्व्वदा। ब्राह्मणे कल्मषं नास्ति सन्ध्योपासनकारिणि।।४५।।
यथा सूर्य्ये तमो नास्ति तमोवारणकारिणि। ब्राह्मणा भूसुराः प्रोक्ता ब्राह्मणा ब्रह्मवर्च्चसः।।४६।।
न मौर्ख्यं ब्राह्मणे युक्तं प्रभाहानी रवौ यथा। नाल्पेन तपसा जीवो जायते ब्राह्मणे कुले।।४७।।

ब्राह्मण मलमूत्र के समय यज्ञोपवीत न रखे। वस्त्र से मस्तक आवरित करके कान, कंधा किंवा मस्तक पर यज्ञोपवीत करके मूत्र त्याग करे। द्विजगण परिमित तैल मर्दन के अतिरिक्त तैल न लगाये। देह में तैल लगाकर मलमूत्र त्याग ब्राह्मण का कर्त्तव्य नहीं है। मल-मूत्र त्याग, मैथुन, स्नान, भोजन, दन्तधावन के समय मौनी रहे। ब्राह्मण का देह सुखभोगार्थ नहीं है। वह तपःक्लेश, धर्म तथा मुक्ति हेतु ही उत्पन्न है। जैसे सूर्य में अन्धकार स्थित नहीं रह सकता, वैसे ही जो व्यक्ति त्रैकालिक सन्ध्या वन्दना करता है, उसके देह में कोई पातक स्थित नहीं रह सकता। ब्राह्मण ही भूदेवता हैं। वे ही ब्रह्मतेज युक्त हैं। अतः जैसे सूर्य में प्रभाहीनता संभव नहीं है, उसी प्रकार ब्राह्मण में क्रूरता उचित नहीं है। जीवगण जब तक महत् पुण्ययुक्त नहीं होते, तब तक उनका जन्म ब्राह्मण कुल में नहीं होता।।४१-४७।।

स चेन्नीचक्रियाकारी ह्यात्महा कोऽपरस्ततः।
स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च।।४८।।

तस्यैवानुग्रहेनान्नं भुञ्जते क्षत्रियादयः। ब्राह्मणस्य धरा सर्व्वा धर्म्माश्च निखिला अपि।।४९।।
यद्ब्राह्मणो हि गृह्णाति तच्छेषं क्षत्रियादयः। ब्राह्मणा लोकपितरो ब्राह्मण्यो लोकमातरः।।५०।।

ब्राह्मण गण अपनी समग्र वस्तु तथा भोजन अन्य को प्रदान कर देते हैं। उनके अनुग्रह से ही क्षत्रियादि भोजन प्राप्त करते हैं, क्योंकि समस्त पृथिवी तथा निखिल धर्म ब्राह्मण के ही हैं। क्षत्रियादि सभी ब्राह्मण का बचा ग्रहण करते हैं। ब्राह्मण सबका पिता तथा ब्राह्मणी सबकी माता हैं। समस्त तीर्थ ब्राह्मण के चरणों से सम्भूत हैं।।४८-५०।।

येषां पादप्रसूतानि सर्व्वतीर्थानि नित्यशः। आदिराजो मनुः पूर्व्वं मर्य्यादां समकारयत्।।५१।।
ब्राह्मणानां सतीनाञ्च गवाञ्च रक्षणाय ह। ब्राह्मणांश्च स्त्रियो गाश्च पुष्पेणापि न ताड़येत्।।५२।।
यदि नैतांस्ताडयेत तद्दिष्टदेवताड़नम्। न ताड़येन्नावगुरेन्न च ताः कटु भाषयेत्।।५३।।
न प्रेषयेन्नातिचरेद्दण्ड्या अपि न दण्डयेत्। वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा।।५४।।

एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः। यावद्गोब्राह्मणाः सन्ति तावत् पृथ्वी च सुस्थिरा॥५५॥
तस्मात् पृथ्वीरक्षणार्थे पूजयेद्विजगोसतीः। स्त्रियो गावो ब्राह्मणाश्च पृथिव्यां मङ्गलत्रयम्॥५६॥
एतेषां द्वेषकृद्यस्तु स मङ्गलपरिच्युतः। ब्राह्मणानान्तु गायत्री स्त्रियान्तु रज आर्त्तवम्॥५७॥
गवां स्वभावः पापानां महताञ्च विनाशकम्। विप्राणां चरणौ तीर्थं गवां पृष्ठं तथा शुचि॥५८॥

राजाओं के आदि प्रभु भगवान् मनु ने ब्राह्मण, गौ, सती स्त्री की रक्षा हेतु नियम स्थापित किया था कि ब्राह्मण, सती तथा गौ को पुष्प से भी ताड़ित न करे। इनको केशमुण्डन, सर्वस्व छीनना तथा परदेश निष्कासित करने के अतिरिक्त कुकंर्मी ब्राह्मण को अन्य दैहिक दण्ड प्रदान न करे। जब तक गौ-ब्राह्मण की स्थिति है, तभी तक वसुमति (पृथिवी) स्थिर रहेगी। अतः पृथिवी रक्षणार्थ द्विज, गौं तथा सती स्त्री का पूजन कर्त्तव्य है। ये तीनों पृथिवी हेतु मंगलकारी हैं। जो इन तीनों से द्वेष करता है, वह मंगल रहित हो जाता है। ब्राह्मण की गायत्री, गौओं का स्वभाव तथा सती स्त्री का आर्त्तव उनके महत् पापनाशक है। विप्र का चरण तीर्थ है। गाय की पीठ परम पवित्र है।।५१-५८।।

स्त्रीणां सर्व्वाणि चाङ्गानि तीर्थान्युक्तानि सूरिभिः।
इत्यादिराजमर्य्यादां योऽन्यथा कुरुते जनः॥५९॥
स याति नरकं घोरं कथ्यते जीवितो मृतः। प्राणायामी सदा विप्रो दहेत् पापानि भूरिशः॥६०॥
प्राणायामं विना पापक्षालने नास्ति कारणम्। इत्याद्या ब्राह्मणस्योक्ता धर्म्मा ब्राह्मणसत्तम॥६१॥
राज्ञाञ्च शृणु जावाले धर्म्मान् परमपावनान्॥६२॥

।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे उत्तरखण्डे ब्राह्मणधर्म्मकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।।



ज्ञानियों द्वारा स्त्रीगण का सर्वाङ्ग तीर्थ कहा गया है। जो व्यक्ति इन अंग मर्यादा का अतिक्रम करता है, वह घोर नरकगामी होता है। वह जीवन्मृत है। ब्राह्मण प्राणायाम बल से प्रभूत पापराशि दग्ध कर देते हैं। वास्तव में प्राणायाम के अतिरिक्त ऐसा पापनाशक उपाय नहीं है। हे द्विजप्रवर! ब्राह्मण का धर्म इत्यादि कहा। अब क्षत्रियों का पवित्र धर्म सुनें।।५९-६२।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।



तृतीयोऽध्यायः

राजधर्म वर्णन

व्यास उवाच

राजा क्षत्रिय इत्युक्तः प्रजापालनतत्परः। सत्यं दानं विष्णुभक्तिस्तथा ब्राह्मणसेवनम्॥१॥
दर्पो विरोधो नियतं युद्धसामग्र्यसंग्रहः। परिखाकरणञ्चैव चारेण राज्यदर्शनम्॥२॥

मन्त्रिभिर्मन्त्रनञ्चैव शीघ्रकर्म्मत्वमेव च। बहुभिर्मन्त्रणात्यागो न चैकेनापि मन्त्रणा॥३॥
सदावधानं दण्ड्यस्य दण्ड्योपरक्षणं तथा। शास्त्रादरो विप्रभक्तिर्ब्राह्मणान्यकरग्रहः॥४॥
शोको विषादो मोहश्च व्ययशङ्का च मूर्खता। त्याज्या राज्ञा इमे दोषाः प्रजासु सुप्रसन्नता॥५॥
पञ्चरूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः। अग्नेरीशस्य सोमस्य यमस्य वरुणस्य च॥६॥
तान्न हिंस्येन्न चाक्रोशेन्नाक्षिपेन्नाप्रियं वदेत्। देवा नृपतिरूपेण चरन्ति पृथिवीमिमां॥७॥

इन्द्रात् प्रभुत्वं वह्नेः प्रतापं यमात् क्रौर्य्यं श्रियं विधोः।
धनं कुवेरात् सत्वञ्च नीत्वा रामजनार्दनात्॥८॥

राज्ञः शरीरं क्रियते विधात्रा धरणीतले। राजानमिन्द्रं जानीत नान्य इन्द्राद्धरामरात्॥९॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिवर! प्रजापालन में लगा क्षत्रिय ही राजा कहलाता है। सत्य, दान, विष्णुभक्ति, विप्रसेवा, दर्प-विरोध, युद्ध की सामग्री का संग्रह, खाई खोदना, गूढ़ दूत (गुप्तचर) द्वारा राज्य की व्यवस्था जानना, मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा, सत्वरता, अनेक लोगों तथा केवल एक के साथ मन्त्रणा न करना, दण्डविधि में सावधानी, दण्डितों से सबकी रक्षा, शास्त्र का आदर, ब्राह्मण भक्ति, ब्राह्मण को छोड़ कर अन्य से कर लेना, राजधर्म है। राजा शोक, विषाद, मोह, व्ययशंका तथा मूर्खता त्याग करके प्रजागण के प्रति प्रसन्न रहे। अमित तेजस्वी राजागण अग्नि-ईश-चन्द्र-यम तथा वरुण के मूर्त्त रूप हैं। अतः वे ब्राह्मण के प्रति हिंसा, आक्रोश, तिरस्कार वाक्य का व्यवहार न करें। देवता ही राजा के रूप में पृथिवी पर विचरण करते हैं। विधाता, इन्द्र से प्रभुत्व, अग्नि से प्रताप, यम से क्रोध, चन्द्र से सुन्दरता, कुबेर से धन तथा भगवान् विष्णु से मधुर सत्वगुण ग्रहण करके राजा का शरीर निर्मित होता है। भूमण्डल में राजा को इन्द्र कहा गया है।।१-९।।

राज्ञां प्रजापालनन्तु हयमेधसहस्त्रवत्। स्वाधिकारस्थलोकानां कर्म्मणः सुकृतस्य च॥१०॥
लभते पृष्ठभागन्तु धर्म्मेण पालयन् प्रजाः। राजा दण्डकरो भूयाद्यद्भयान्नापकृज्जनः॥११॥
हन्ता शक्रश्च रुद्रश्च हन्ता वैश्रवणो यमः। वरुणो वायुरादित्यः पर्जन्योऽग्निर्वृहस्पतिः॥१२॥
दण्डग्रस्तं जगसर्व्वं वश्यत्वमुपगच्छति। नायं क्लीवस्य लोकोऽस्ति नापरो द्विजसत्तम॥१३॥

न हि पश्यामि जीवन्तं राजन् किञ्चिन्न हिंसया।
उदके जन्तवो नित्यं पृथिव्याञ्च जलेषु च॥१४॥

न हत्वा लिप्यते राजा प्रजा धर्म्मेण पालयन्। यदि दण्डो न विद्येत दुर्विनीतास्तदा नराः॥१५॥

जो राजा यथानियम प्रजापालन का कार्य करते हैं, उनको सहस्र अश्वमेध यज्ञों का फल मिलता है। धर्मानुसार प्रजापालकगण अपने राज्य के मनुष्यों के कृत पुण्य कर्म का १/६ भाग प्राप्त कर लेते हैं। राजागण दण्ड के भागी लोगों को दण्ड प्रदान करे। इससे दण्डभय के कारण कोई कुपथगामी नहीं होगा। राजा ही प्रजागण के लिए हन्ता (यम), वही इन्द्र, रुद्र तथा कुबेर, वरुण, वसु, आदित्य, जलद, अग्नि तथा बृहस्पति है। हे द्विजसत्तम! जो राजा दण्ड देने में हिचकिचाता है, उसका इन्द्रलोक, परलोक में कहीं भी मंगल नहीं है। वास्तव में जगत् के सभी जीवमात्र ही दण्ड के भय से वशीभूत होते हैं। जलचर तथा स्थलचर में ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जो कोई न कोई हिंसा न करता हो। भूपति धर्मानुरूप दण्डविधानादि के द्वारा प्रजागण का पालन करते हैं। इसमें वे अधःपतित नहीं होते। दण्डविधान के बिना मनुष्य दुर्विनीत हो जाता है।।१०-१५।।

हन्युः पशून् मनुष्यांश्च यज्ञीयानि हवींषि च। काकाद्याश्च पुरोडाशं श्वा चैवावलिहेद्धविः॥१६॥
स्वाम्यञ्च न स्यात् कस्मिंश्चित् प्रवर्त्तेताधरोत्तमम्। चातुर्वर्ण्यविमोक्षाय दुर्विनीतभयाय च॥१७॥
दण्डेन नियतं लोके धर्म्मस्थानञ्च रक्ष्यते। सर्व्वो दण्डजितो लोके दुर्लभो हि शुचिर्नरः॥१८॥
दण्डस्य हि भयाद्भीता नरास्तिष्ठन्ति शासने। कुकर्म्मणां निवृत्तिस्तु न स्याच्च सुमहाफला॥१९॥
स्यात्तस्माद्राजदण्डेन प्रायश्चित्तफलं हि तत्। शिष्ये गुरुमतिक्रान्ते पुत्रे पितरमेव च॥२०॥
स्वामिनञ्च स्त्रियां राजा दण्डकर्त्ता भवेद्द्विज। ब्राह्मण्यं दुस्तरं ज्ञात्वा तत्र दण्डं न कारयेत्॥२१॥

मनुष्यगण समस्त पशु का वध करते हैं तथा काकादि पक्षी तथा श्वान आदि यज्ञीय हवि एवं पुरोडाश को जूठा करते हैं। समता कहीं भी संभव नहीं है। इससे धरा पर विप्लव हो जाता है। चातुर्वर्ण विभाग की व्यवस्था हेतु तथा दुर्विनीतों में भय हेतु राजागण ने धर्माधिकरण स्थापित किया। जगत् में पवित्रात्मा अत्यन्त विरल होते हैं। इसी के कारण राजदण्ड पापों का प्रायश्चित्त है। हे द्विज! शिष्य गुरु की, पुत्र पिता की तथा रमणी यदि पति की अवज्ञा करती है, तब राजा उनको दण्ड प्रदान करे। तथापि किसी ब्राह्मण को कुकर्मी जान कर उसे दैहिक दण्ड प्रदान न करें।।१६-२१।।

न वध्यो ब्राह्मणो विप्रः स्त्री वृद्धो वाल एव च। यश्चरेदशुभं कर्म्म पापं विप्रविगर्हितम्॥२२॥
पातकेषु निवर्त्तेत निग्रहस्तस्य कारणात्। शिरसो मुण्डनं कृत्वा गोमयेनोपलेपयेत्॥२३॥
नगरं खरयानेन भ्रामयेद्दण्ड एष च। ब्रह्मन्निर्दिष्टदण्डस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते॥२४॥
क्षत्रियस्य तु यो दण्डस्तं वक्ष्याम्यनुपूर्वशः। परद्रव्याभिहरणे परदाराभिमर्षणे॥२५॥
छेदयेद्धस्तपादौ च कर्णनासावकर्त्तनम्। सर्वस्वहरणं कृत्वा परराष्ट्रं विवर्जयेत्॥२६॥
राज्यं काङ्क्षेत यो राज्ञो राजपत्नीमथापि वा। शरैस्तु राजा विध्येत शक्तिचक्रगदादिभिः॥२७॥
क्षत्रियस्य हि दुष्टस्य दण्ड एष विधीयते। वैश्यस्यापि च यो दण्डस्तं प्रवक्ष्यामि मे शृणु॥२८॥

ब्राह्मण, स्त्री, वृद्ध, बालक वध्य नहीं हैं। हे विप्र! जो शुभकर्म क्या है, विगर्हित पापकर्म क्या है, वह नहीं जानता, ऐसा व्यक्ति केवल राजदण्ड के भय से ही पापकर्म से दूर रहता है। यदि ब्राह्मण कोई वध योग्य कार्य करता है, तब उसका मस्तक मुण्डित करके सर्वाङ्ग पर गोबर लपेट कर उसे गदहे पर समस्त नगर का परिभ्रमण कराये। यही ब्राह्मण हेतु दण्ड है। अब पूर्वोक्त क्षत्रियधर्म निरूपित करता हूं। यदि क्षत्रिय पराया द्रव्य हरण करे किंवा परस्त्रीगमन करे, तब उससे हाथ-पैर-नाक-कान काट कर उसका सर्वस्व हरण करके अपने राज्य से निकाल बाहर करे। जो कोई राजा अथवा रानी राज्य में विघ्नोत्पादन करता है, देश के राजा को चाहिए कि उसे बाणों से बेध दे, तथा शक्ति-चक्र-गदा से ताड़ित करे। दुष्टात्मा क्षत्रिय के लिए यही दण्ड है। अब वैश्य हेतु दण्ड कहता हूं। उसे श्रवण करो।।२२-२८।।

क्रूरेषु पातकेष्वेव यस्तु वैश्यः प्रवर्त्तते। परदारे परस्वे च तस्य निग्रहमादिशेत्॥२९॥
शूलेन भेदनन्तस्य वृक्षशाखावलम्बनम्। एष वैश्यस्य दण्डः स्यात् शूद्रस्य शृणु वर्ण्यते॥३०॥
कुले शूद्रस्य यो दुष्टस्तथैवास्य वधः स्मृतः। कुञ्जरेणापि मर्देत मूषायामपि पाचयेत्॥३१॥
नैकस्यार्थे कुलं हन्यान्न राष्ट्र ग्रामकं तथा। एवं सुशासितं कृत्वा शेषं कोषेषु योजयेत्॥३२॥

एतान् धर्म्मान् हि यो राजा जानाति स हि धर्म्मवित्।
श्रेयोऽर्थी सततं राजा ब्रह्मवृत्तिं न लङ्घयेत्॥३३॥
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत यः। षष्टिवर्षसहस्राणि स विष्ठासु कृमिर्भवेत्॥३४॥

जो वैश्य पराई स्त्री, परद्रव्य का हरण करता है तथा ऐसे घोर पापों में लिप्त है, उसकी हथेली शूल से छेदे। अथवा उसे वृक्ष की शाखा से लटका कर उसका वध करे। यही वैश्य हेतु दण्ड है। सम्प्रति शूद्र हेतु दण्ड को सुनो। शूद्रों में जो पापी हो, उसे हाथी के पैरों तले दबवा दे। किंवा लौह कड़ाही में उसे भूंजे। यह शास्त्र सम्मत है। एक व्यक्ति के लिए समस्त कुल अथवा ग्राम किंवा राष्ट्रनाश उचित नहीं है। राजा इस विधान से समस्त राज्य को सुशासित करके कोषागार में धन रक्षा करे। जो राजा इस धर्म विधान से अवगत हैं, वे ही वास्तविक धर्मज्ञ हैं। अपना कुशल चाहने वाला राजा कदापि ब्रह्मवृत्ति का हरण न करे। स्वदत्ता हो अथवा परदत्ता वृत्ति हो, ब्रह्मवृत्ति हरण करने वाला ६०००० वर्ष पर्यन्त मल में क्रिमिरूपेण स्थित रहता है।।२९-३४।।

ब्राह्मणस्य तुषञ्चापि हर्त्तारं पातयत्यधः। ब्राह्मणस्थापनादन्यत् कर्म्म राज्ञो न चोत्तमम्॥३५॥
ब्रह्मस्वहरणान्नान्यत् पापं राज्ञश्च वर्त्तते। चतुर्णामेव वर्णानां पापं ब्रह्मस्वहारणम्॥३६॥
विषस्याग्नेश्च साधर्म्मं ब्रह्मस्वे वर्त्तते सदा। विषाग्नी एकदेशस्थौ सर्व्वाङ्गव्यापकं यथा॥३७॥
तथा ब्रह्मस्वापहारे एकस्मिंश्च कुलं दहेत्। यदाहुर्द्रविणादानं दण्डो विप्रे कृतागसि॥३८॥
नीत्वा च तद्धनं सर्व्वं ब्राह्मणेभ्यः प्रदापयेत्। शास्त्रज्ञसङ्गं नृपतिः कुर्य्यान्नित्यं न चान्यथा॥३९॥
वेदागमपुराणज्ञान् ब्राह्मणानथ भैषजान्। ज्योतिर्विदोऽपि नृपतिर्न कदापि परित्यजेत्॥४०॥

किम्बहुना, जो व्यक्ति ब्राह्मण का तृण पर्यन्त भी हरण करता है, वह निःसन्देह अधःपतित होता है। ब्राह्मण की स्थापना की तुलना में राजा के लिए ऐसा पुण्यप्रद कार्य अन्य कोई भी नहीं है। इसी प्रकार ब्रह्मस्व का अपहरण करने की अपेक्षा पापकृत्य अन्य कोई नहीं है। ब्राह्मण का द्रव्य अग्नि तथा विषवत् है। अतः चारों वर्ण वाले कदापि ब्रह्मस्व का अपहरण न करें। जैसे विष तथा अग्नि एकदेशीय कार्य करते हैं, तथापि ब्रह्मस्वापहरण रूपी विष सर्वाङ्ग व्यापी होता है। ब्रह्मस्वापहरण तो सम्पूर्ण कुल को दग्ध कर देता है। ब्राह्मण अपराधी हो तब उसका सर्वस्व अपहरण की दण्डविधि निश्चित है। वह धन लेकर अन्य ब्राह्मणों को वितरित करे। सर्वदा पण्डितों का साथ करे तथा वेदज्ञ, आगमज्ञ, पुराणज्ञ, ज्योतिर्विद् ब्राह्मण गण तथा वैद्यगण का त्याग करके राजा कभी भी अपना कर्त्तव्य पूर्ण नहीं कर सकता।।३५-४०।।

एतैस्त्यक्तस्य नृपतेर्विपदस्तु पदे पदे। वर्त्तेत युद्धसामग्र्या प्रस्तुतो नृपतिः सदा॥४१॥
धान्यतण्डुलवस्त्रादेः कोषान् कुर्य्यात् पृथक् पृथक्।
(कुर्य्याच्च तेषामध्यक्षान् वेतनेन पृथक् पृथक्)॥४२॥
सैन्यानां भरणं कुर्य्यात् सेनाङ्गं स्याच्चतुष्टयम्। रथो हस्ती घोटकश्च पदातिश्च द्विजोत्तम॥४३॥
एको हस्ती रथश्चैकस्त्रयोऽश्वाः पञ्च पत्तयः। पत्तिरेषा समुद्दिष्टा ततस्त्रिगुणकाः परे॥४४॥
सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः। अनीकिनी च दशभिस्ताभिरक्षौहिणी मता॥४५॥
सप्ततिश्च शतान्यष्टो सहस्राण्येकविंशतिः। अक्षौहिण्यां रथा प्रोक्ता इभास्तावन्त एव हि॥४६॥
रथानां त्रिगुणा अश्वा नराः पञ्चगुणा द्विज। एवमक्षौहिणीबद्धं सैन्यं रक्षेत सर्व्वदा॥४७॥

व्ययशङ्कां युद्धशङ्कां सत्यजेन्नृपतिः सदा। राज्ञां हि युद्धमरणं स्वर्गदं परमं मतम्।।४८।।

जो राजा इन सबसे रहित होता है, उसे पग-पग पर विपत्ति का सामना करना होगा। राजा युद्ध सामग्री से सदा सज्जित रहे। नृपतिगण धान्य, चावल, वस्त्रादि का पृथक्-पृथक् कोष बनाये। प्रत्येक कोष का एक कोषाध्यक्ष हो। सेनापति का भरण-पोषण राजा का नितान्त कर्त्तव्य है। सैन्य चतुर्विध होती है। यथा— रथ, हाथी, अश्व, पैदल। हे द्विजोत्तम! एक रथ, एक हाथी, तीन अश्व तथा ५ पैदल का नाम पत्ति है। तीन पत्ति का एक सेनामुख, ३ सेनामुख का एक युग्म, तीन युग्म का एक गण, तीन गण की एक वाहिनी, तीन वाहिनी का एक पृतना, तीन पृतना का एक चमू, ३ चमू का एक अनीकिनी तथा १० अनीकिनी की एक अक्षौहिणी सेना होती है। इस प्रकार एक अक्षौहिणी में २१८७७ रथ, इतने ही हाथी तथा रथ के तिगुने अश्व और रथ से ५ गुणित पैदल होते हैं। राजागण इस प्रकार १ अक्षौहिणी सैन्य सदा सज्जित रखे तथा व्यय शंका एवं युद्ध शंका का सदा त्याग करे। राजा की यदि युद्धभूमि में मृत्यु होती है, तब उसे अक्षय स्वर्ग प्राप्त होता है।।४१-४८।।

धर्म्मार्थञ्च गृहार्थञ्च विप्रत्राणार्थमेव च। त्रिधैव विभजेद्वित्तं नैव दोषैः प्रलिप्यते।।४९।।
साधवो मन्त्रिणः कार्य्या ज्ञातशीलकुला नृपैः। बहुच्छलाश्चरन्त्येव राजानो बहुशत्रवः।।५०।।
चिरं न स्थापयेदेकं मन्त्रिणञ्चाधिकारणात्। मन्त्री च चिरमीशो हि राजानञ्चातिशीयते।।५१।।
बहुभिर्न वसेद्राजा वियुक्तो नापि शस्त्रकैः। अल्पां निद्रान्तु सेवेत भोजञ्च मितं चरेत्।।५२।।
स्त्रीसङ्गं बहुधा नेच्छेन्न दद्यात् परप्रश्रयम्। स्वबुद्ध्या कर्म्म कुर्व्वीत शास्त्रबुद्ध्या विशेषतः।।५३।।
सदा स्वस्त्ययनी तिष्ठेद्विप्रपूजारतः सदा। भ्रातरं पुत्रवर्गञ्च दद्यान्न प्रश्रयं क्वचित्।।५४।।
गुणवन्तं सुतं राज्ये समर्प्य धर्म्मदर्शनात्। प्रकल्प्य वृत्तिमन्येषां त्यजेद्राज्यं नरेश्वरः।।५५।।
पुरुषे पुरुषे कीर्त्तिः स्थापनीया स्वकर्म्मतः। इत्याद्या राजधर्म्मास्ते कथिता हि समासतः।
अथातः शृणु वक्ष्यामि धर्म्मांश्च वैश्यशूद्रयोः।।५६।।

।।इति श्रीबृहद्धर्मपुराणे उत्तरखण्डे राजधर्म्मकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः।।



राजागण धर्मार्थ, गृहार्थ, विप्रत्राणार्थ अर्थ को भागत्रय में विभक्त करें। इससे उनको कोई दोष नहीं होगा। जिनका कुल-शील ज्ञात हो, ऐसे साधु चरित्र व्यक्ति को मंत्रीपद देना चाहिए, क्योंकि अनेक छलयुक्त लोग राजा के शत्रु होते हैं। एक ही व्यक्ति को दीर्घकाल तक मन्त्री पद पर न रखे। ऐसा करने से दीर्घकालीन मंत्री राजा का भी अतिक्रमण करते हैं। नाना लोगों के साथ निवास, अस्त्र रहित रहना, राजा के लिए उचित नहीं है। अल्प निद्रा तथा परिमित भोजन कर्त्तव्य रूप है। राजागण बहुतायत से परस्त्री कामना तथा स्त्रीसंग की अभिलाषा रखते हैं। इसका त्याग करे। स्त्री बुद्धि तथा शास्त्र बुद्धि से नियमतः कार्य करना राजा का कर्त्तव्य है। राजागण सदैव स्वस्तिपाठ तथा विप्रपूजा परायण रहें। भाई तथा पुत्रगण को बढ़ावा देना अकर्त्तव्य है। राजा को चाहिए कि साधुवृत्ति पुत्र का राज्य पर अभिषेक करें। अन्य पुत्रों को भी यथाविधि जीवनोपाय प्रदान करें। वृद्धावस्था में राज्य त्याग करके पीढ़ी-दर-पीढ़ी सत्कर्म से कीर्त्ति वृद्धि करें।

मैंने तुमसे सनातन राजधर्म कहा। अब वैश्य एवं शूद्रधर्म का वर्णन सुनो।।४९-५६।।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।



चतुर्थोऽध्यायः

वैश्य-शूद्र धर्म वर्णन

व्यास उवाच

कृषि वाणिज्यगोरक्षाकुसीदबृद्धजीविकाः। धनस्य रक्षणं कुर्य्याद्राज्ञश्च परितोषणम्॥१॥
धान्यतण्डुलवस्त्रादिमणिमुक्तादिकं तथा। घृततैलादि स्वर्णादि सर्व्वद्रव्याणि संग्रहेत्॥२॥
क्रयञ्च विक्रयञ्चैव कुर्य्याद्वैश्यो ह्यतन्द्रितः। वाणिज्यार्थे गृहार्थे च धर्म्मार्थे चापदर्थके॥३॥
चतुर्धा विभजेद्वित्तं वैश्यस्तु द्विजसत्तम। धर्म्मं कुर्य्यात् प्रयत्नेन धनरक्षार्थमेव हि॥४॥
अन्यथा स्याद्वृथा सर्व्वं राज चौराग्निवारिभिः। सदा स्वस्त्ययनी तिष्ठेद्द्विजभूपतिपूजकः॥५॥
शूद्रस्य पालकश्च स्यात् सदा धर्म्मपरायणः। हस्त्यश्वस्वर्णधान्यादिभूमिगोमेषवाससाम्॥६॥
सर्व्वेषां गन्धद्रव्याणां मूल्यतत्त्वज्ञतां चरेत्। क्रीणीत येन मूल्येन तस्य षोड़शमंशकम्॥७॥
विक्रीतलभ्यं कुर्य्यात्तु ह्यधिके धर्म्महानिकृत्। ऋणं दत्त्वा मासि मासि दत्तषोड़शपादकम्॥८॥

गृह्णीयाद्वृद्धिमित्येवं विंशादौ तु पृथक् पृथक्।
इतोऽधिकञ्चेद् गह्णीयात् तदा भोगाय नैति तत्॥९॥

शोध्यते तु ऋणं यत्र मासे तत्राधिकं त्यजेत्। ब्राह्मणेभ्य ऋणं दद्याद् गृह्णीयान्नाधिकं ततः॥१०॥
न प्रत्याख्यापयेच्चापि ब्राह्मणस्य वचो गुरु। द्रोणाढकाङ्गुलीहस्तकुडवादि तथैव च॥११॥

माषतोलकबुद्ध्यर्थं मानं कुर्य्यात् पृथक् पृथक्।
कुर्य्यात्ताम्रैः सेरकञ्च त्रिंशता षड्भिरेव च॥१२॥

तदर्द्धं तोलकं ज्ञेयमेतेन क्रयविक्रयौ। कुर्य्याद्वैश्यो धर्म्मबुद्ध्या नान्यथा ह्याचरेत् क्वचित्॥१३॥
इत्याद्याः कथिता विप्र वैश्यधर्म्माः पृथग्विधाः। शूद्रस्तु ब्राह्मणादीनां पूजां कुर्य्यादतन्द्रितः॥१४॥

व्यासदेव कहते हैं— कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा, कुशीद, वृत्तिग्रहण, नृपति को सन्तुष्ट करना, धान्य, तण्डुल, वस्त्र, मणि, मुक्ता, स्वर्ण, घृत, तैलादि संचय, क्रय-विक्रय वैश्य धर्म है। ये सभी कार्य आलस्य रहित होकर करे। इनमें आलस्य वैश्य का कर्त्तव्य नहीं है। हे द्विजश्रेष्ठ! वैश्यगण वाणिज्य हेतु, गृह हेतु, धर्म तथा आपदा से उद्धारार्थ आत्मधन ४ भाग में विभक्त करते हैं। धर्मरक्षार्थ धर्मकार्य का अनुष्ठान वैश्य का कर्त्तव्य है। यह न होने पर राजा, तस्कर, अग्नि तथा जल से धन नाश हो जाता है। सतत् स्वस्त्यायन, विप्रपूजा, राजा की आराधना तथा शूद्रपालन करे। वैश्यगण हाथी, अश्व, स्वर्ण, धान्य, भूमि, गौ, मेष, वस्त्रादि तथा समस्त गन्धद्रव्य के मूल्य का ज्ञान रखे। जो वस्तु जिस मूल्य से खरीदी जाये, उस पर षोडशांष लाभ करे। अतिरिक्त लाभ से धर्म हानि होती है।

किसी को ऋण देने पर शास्त्रोक्त प्रतिमास १६वां हिस्सा ब्याज ले। जो व्यक्ति इससे अधिक लेता है, वह उस धन का भोग नहीं कर सकता। जो व्यक्ति ऋण लेकर उसी माह में चुका देता है, उससे तथा ब्राह्मण से ब्याज नहीं लेना चाहिए। ब्राह्मण तो प्रत्यक्ष देवता है। उसका आशीर्वाद मिलना ही परम धन है। दोण तथा आढ़क आदि

पृथक्-पृथक् परिमाण (नाप-तौल) से वस्तु प्रस्तुत करे। मासा, तोला आदि भी परिमाण हैं। इनसे वस्तु को प्रस्तुत (तौल कर दे) करे। ३६ ताम्र का एक सेटक होता है। उसके आधे को तोला कहा गया है। वैश्य लोग धर्मबुद्धि के साथ इन परिमापक वस्तु द्वारा क्रय-विक्रय करें। कदापि इसके विपरीत न करें। हे विप्र! यह वैश्यधर्म पृथक् रूप से कहा गया। शूद्रगण ब्राह्मण प्रभृति की पूजा आलस्य रहित होकर करें।।१-१४।।

आज्ञां न लङ्घयेच्चापि न च तानवधीरयेत्। न तेषामाचरेद्धर्म्मं वैदिकं लौकिकं तथा॥१५॥
पुराणपठनं वेदपठनं नापि चाचरेत्। शास्त्रार्थकथनञ्चैव न शूद्रः क्वचिदाचरेत्॥१६॥
विप्रं क्षत्रं विशञ्चापि पाठयेन्न कदाचन।
(वर्णान् व्याकरणादीन्वा श्लोकं श्लोकार्द्धमेव वा॥१७॥
शूद्राद्विद्याग्रहीतारं ब्राह्मणं पातयेदधः)। ब्राह्मणोऽपि पठन् शूद्रादात्मानमेव घातयेत्॥१८॥
(घृतं मतिं जलं पाद्यमासनञ्च निमन्त्रणम्।
भुक्तोच्छिष्टञ्च नो दद्याच्छूद्राय ब्राह्मणः क्वचित्॥१९॥
वेदं न शृणुयाच्छूद्रः शृणुयाच्च पुराणतः। आगमन्तु पठेच्छूद्रो गुरुणा दीयते तु यत्॥२०॥

वे कभी ब्राह्मण की आज्ञा की अवहेलना न करें। वे ब्राह्मणों द्वारा आचरणीय वैदिक-लौकिक क्रियाकलाप का अनुष्ठान, पुराण पाठ, वेद पाठ तथा शास्त्रार्थ न करें। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य को व्याकरणादि शास्त्र, श्लोक-श्लोकार्थ पढ़ाना शूद्र का कर्त्तव्य नहीं है। जो शूद्र को पढ़ाते हैं, वे ब्राह्मण भी अधःपतित हो जाते हैं। जो ब्राह्मण शूद्र से शिक्षा लेते हैं, वे आत्मघाती हैं। ब्राह्मण, शूद्र को घृत-मधु-पादप्रक्षालनार्थ जल, आसन तथा जूठा बचा अन्न कदापि प्रदान न करे। शूद्र को निमन्त्रित करना भी ब्राह्मण हेतु वर्जित है। शूद्र को वेदाध्ययनाधिकार कदापि नहीं है। गुरु जहां तक बताये, शूद्र केवल वहीं तक का अंश पढ़ सकता है।।१५-२०।।

स्वाहाप्रणवसंयुक्तं शूद्रो मन्त्रं विवर्जयेत्)। दद्याच्छूद्राय विप्रस्तु सस्वाहाप्रणवान्यतः॥२१॥
ब्राह्मणस्य मुखाच्छूद्रः श्रुत्वा पौराणमक्षरम्। विप्राणां पाठजं पुण्यं संप्राप्नोति न संशयः॥२२॥
शूद्रेभ्यो मन्त्रदानञ्च पुराणश्रावणन्तथा। आपद्धर्म्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य न चान्यथा॥२३॥
न चान्यो ब्राह्मणाद्दद्याच्चतुर्वर्णेभ्य एव च। मन्त्रं तन्त्रं शुभं ज्ञानं तस्माच्छूद्राय दापयेत्॥२४॥
दद्यान्न देवनैवेद्यं शूद्राय ब्राह्मणः क्वचित्। पादोदकं ब्राह्मणस्य पिबेच्छूद्रः प्रयत्नतः॥२५॥
ब्राह्मणे भक्तिमासाद्य शूद्रस्तरति दुर्गतिम्। नोपदेशैर्न मन्त्रैश्च न स्तवैः कवचैरपि॥२६॥
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्व्वङ्गनागमः। महान्ति पातकान्याहुस्तत्संसर्गी च पञ्चमः॥२७॥
ब्रह्मक्षत्रविशामेतन्महापातकमुच्यते। शूद्रस्य तु सुरापाने ब्राह्मणीगमनं मतम्॥२८॥
त्रयाणामेव वर्णानां माता ब्राह्मणभाविनी। क्षत्रविट्शूद्रकन्यास्तु विप्राणां कन्यकाः समाः॥२९॥
क्षत्रविट्शूद्रकन्यानां तैर्दत्तानां द्विजातयः। ग्रहीतारो भवन्त्येव नानापत्यकराः पुनः॥३०॥

स्वाहा तथा प्रणवयुक्त मन्त्र शूद्र ग्रहण न करे। अतः द्विजगण शूद्र को स्वाहा तथा प्रणवरहित मन्त्र प्रदान करें। यदि शूद्र ब्राह्मण से पुराण सुनता है, तब ब्राह्मण के पुराण पाठ का जो फल निर्दिष्ट है, वह प्राप्त करता है। शूद्र

को मन्त्रदान तथा पुराण सुनाना ब्राह्मण का आपद्धर्म है। इसमें संशय नहीं है। ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी को भी चारों वर्ण को मन्त्र-तन्त्र तथा शुभ ज्ञानोपदेश देने का अधिकार नहीं है।

शूद्र को मन्त्रदान करना ब्राह्मण हेतु अवैध नहीं है। (तथापि मन्त्र प्रणव तथा स्वाहा आदि से रहित हो)। ब्राह्मण कभी भी शूद्र को देव नैवेद्य प्रदान न करे। प्रतिदिन विप्र पादोदक पान करना शूद्र का कर्त्तव्य है। ब्राह्मण के प्रति भक्ति के अभाव में मन्त्र-स्तव-कवच आदि किसी से भी लेने पर शूद्र का कल्याण नहीं होगा। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य हेतु ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्ण चोरी, गुरुपत्नी गमन महापातक हैं। उसी प्रकार यही शूद्र के लिये है। तथापि शूद्र के लिए केवल सुरापान की जगह ब्राह्मणी गमन को भी महापातक कहा है। ब्राह्मणी स्त्री क्षत्रियादि सभी वर्ण हेतु माता के समान है। जबकि ब्राह्मण हेतु क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रकन्या पुत्री के समान हैं। ब्राह्मणगण क्षत्रियादि वर्णत्रय की कन्या से विवाह कर सकते हैं। तथा सन्तानोत्पत्ति कर सकते हैं। तथापि क्षत्रिय आदि कन्या ब्राह्मणपत्नी होने पर उनके प्रति मात्रादि शब्द व्यवहृत नहीं होता।।२१-३०।।

किन्तु मात्रादिशब्दांस्तु त्यजेयुस्तत्र सर्व्वदा। ब्राह्मणान्नाशनः शूद्रो जलपुष्पादि चाहरेत्।।३१।।
ब्राह्मणस्तेन पूजादि कुर्य्याच्छूद्रान्तरस्य न। ब्राह्मणान्नं विषं शूद्रे ह्यसेवां कुर्व्वतो द्विज।।३२।।
सेवित्वा ब्राह्मणान्नन्तु भुञ्जीत नान्यथा क्वचित्। ब्राह्मणस्यासने शूद्रो न वसेच्च कदाचन।।३३।।
न ब्राह्मणासनादुच्चैर्वसेच्छूद्रः कदाचन। ब्राह्मणाग्रे पृथक् पूजां कदाचिदपि नाचरेत्।।३४।।
अङ्गुल्यग्रजलकणैः शूद्रस्याचमनं स्मृतम्। सर्व्वासामपि च स्त्रीणामपि चाचमनं तथा।।३५।।
शूद्रवस्त्रं वारिपात्रं तथा भोजनपात्रकम्। न ब्राह्मणो व्यवहरेत् पापी व्यवहरन् भवेत्।।३६।।
मलमूत्रं परित्यज्य मृद्भिः शूद्रो मृजेत् करौ। यावत्तु पूतिगन्धैस्तु परित्यागो न लक्ष्यते।।३७।।
सर्व्वासामपि च स्त्रीणां विधिरेवम्बिधो मतः। ब्राह्मणस्य तु मृत्शुद्धिः कथ्यते ह्यवधारय।।३८।।
एका लिङ्गे गुदो तिस्त्रो दश वामकरे तथा। करक्रोड़े तथा सप्त उभयोस्तिस्त्र एव च।।३९।।
त्रिधा त्रिधा पादयोश्च नेतव्या मृद एव हि। नखशुद्धिं त्रिधा कुर्य्यात्तत आचमनं चरेत्।।४०।।

विप्रान्न भोजी शूद्र जल-पुष्प ले आये तब उसके पुष्प-जलादि से वह ब्राह्मण पूजा कर सकता है। तथापि अन्य शूद्र द्वारा लाया जलपुष्प व्यवहार न करे। जो शूद्र विप्रसेवा नहीं करता, उसके लिये विप्र का अन्न विष ही है। अतः ब्राह्मण की सेवा करके ही शूद्र ब्राह्मणान्न का भोजन करे। शूद्र कदापि ब्राह्मण के आसन की अपेक्षा ऊंचे स्थान पर न बैठे। तथा ब्राह्मण के सामने पृथक् पूजा करना भी कर्त्तव्य नहीं है। शूद्र तथा सभी वर्ण की स्त्रियों द्वारा अंगुलि के अग्रभाग से जलकण से आचमन करना विहित है। शूद्र का वस्त्र, जलपात्र तथा भोजन पात्र व्यवहृत होने पर ब्राह्मण पातकी हो जाता है। शूद्र मल-मूत्र त्याग करके, जब तक हाथों से दुर्गन्ध न हट जाये, तब तक मृत्तिका से हाथ मांजे। सभी वर्णों की स्त्रियों हेतु भी यही नियम है। ब्राह्मणों हेतु जैसे मृत्तिका द्वारा शुद्धि का विधान है, वह सुनो। वे लिंग को एक बार, मल द्वार तीन बार, वाम कर १० बार, करक्रोड़ ७ बार, दोनों हथेली ३ बार, पादद्वय ३-३ बार मृत्तिका लेप से शुद्ध करे। तब ३ बार नख शुद्धि करनी चाहिए। तब आचमन ब्राह्मण का कर्त्तव्य है।।३१-४०।।

प्रक्षाल्य पाणी पादौ च त्रिः पिवेदम्बु वीक्षितम्। संमृज्याङ्गुष्ठमूलेन त्रिः प्रमृज्यात्ततो मुखम्।।४१।।
अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरम्। अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः।।४२।।

नाभिं कनिष्ठाङ्गुष्ठेन हृदयन्तु तलेन वै। सर्व्वाभिश्च शिरः पश्चाद्बाहू चाग्रेण संस्पृशेत्॥४३॥
एवमाचमनं कुर्व्वन् साक्षान्नारायणो भवेत्। एवं हि ब्राह्मणस्योक्तं जावाले चमनं शुभम्॥४४॥
शूद्राश्च सर्व्ववर्णानां स्त्रियो नो कुर्य्युरीदृशम्। तिलकं विन्दुमात्रन्तु ललाटे शूद्र आचरेत्॥४५॥
ब्राह्मणश्चोर्द्ध्वतिलकमाशिखान्तं सदा धरेत्। द्विफालं मध्यशून्यन्तु तिलकं मृत्तिकादिभिः॥४६॥
वाह्वोश्च हृदये चैव ग्रीवायां पार्श्वयोरपि। ब्राह्मणस्तिलकान्येवं कुर्य्याद्वै सर्व्वकर्म्मसु॥४७॥

न वाह्वोस्तिलकं कुर्य्याज्जीवन् यस्य पिता स्थितः।
तथा ज्येष्ठः सोदरश्च यस्य जीवति स तथा॥४८॥

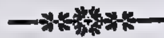
ब्राह्मण सर्वप्रथम हाथ-पैर धोकर जल को देख कर ३ बार जल पीये। तदनन्तर अंगुष्ठ मूल से ओष्ठ का सम्मार्जन करके ३ बार मुख मार्जन करे। तत्पश्चात् अंगूठा एवं तर्जनी से नासारन्ध्रों को स्पर्श करके अंगुष्ठ तथा अनामिका द्वारा पुनः-पुनः चक्षु-कर्ण का, कनिष्ठा एवं अंगुष्ठ मूल से पुनः नाभि का, करतल से हृदय का, सर्वाङ्गुलियों से मस्तक का तथा तदनन्तर अंगुलियों के अग्रभाग से बाहुद्वय का स्पर्श करे।

हे जाबालि! इस प्रकार का आचमन ब्राह्मण हेतु कल्याणदायक है। इस प्रकार का आचमन करके ब्राह्मण साक्षात् नारायणतुल्य हो जाता है। सभी वर्ण की स्त्रियां तथा शूद्र को ऐसे आचमन की आवश्यकता नहीं है। शूद्र ललाट पर बिन्दुमात्र का तिलक लगाये। द्विजगण मृत्तिकादि द्वारा (अथवा चन्दनादि से) ललाट को मध्य में शून्य रख कर द्विभाग में विभक्त करके तिलक लगाये। इसी तरह से दोनों बाहु, हृदय, ग्रीवा तथा दोनों पार्श्व पर तिलक लगाये। तथापि जिसके पिता अथवा ज्येष्ठ भ्राता जीवित हैं, वह बाहुद्वय पर तिलक न लगाये।।४१-४८।।

उच्छिष्टहस्तं शूद्रं हि स्पृष्ट्वा विप्रः स्वयं तथा। उपवासं प्रकुर्व्वीत शुना संस्पृष्ट एव च॥४९॥
अस्नातो ब्राह्मणं नैव स्पृशेच्छूद्रः कदाचन। परीहासं न कुर्य्याच्च वृषलो ब्राह्मणाय हि॥५०॥
पितामहपितृव्यादिभ्रातुष्पुत्रादिशब्दतः। शूद्रश्च ब्राह्मणश्चैव न भाषेतां परस्परम्॥५१॥

इत्याद्याः कथिता धर्म्माः वर्णानां द्विजपुङ्गव।
अथाश्रमाणां सामान्यकार्य्याकार्य्यं निरूप्यते॥५२॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे उत्तरखण्डे चतुर्थोऽध्यायः।।



ब्राह्मण के उच्छिष्ट हाथों से स्वयं अथवा शूद्र का, किंवा श्वान का स्पर्श यदि हो जाये तब एक दिन उपवास करे। शूद्र बिना स्नान किये ब्राह्मण का स्पर्श न करे। वह ब्राह्मण से परिहास भी न करे। शूद्र तथा ब्राह्मण परस्पर कदापि एक-दूसरे को पितामह, पितृव्य, भ्राता के पुत्र आदि शब्द से सम्बोधित न करें। हे द्विजप्रवर! ब्राह्मणादि चारों वर्णों के धर्म को कहा। अब आश्रम धर्म निरूपित करता हूं।।।४९-५२।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।



पञ्चमोऽध्यायः

आश्रमधर्म वर्णन

व्यास उवाच

अहिंसा सत्यास्तेयादि पूर्व्वमुक्तं श्रुतं त्वया। अतिथेः सेवनं दानं तीर्थपर्य्यटनन्तथा॥१॥
गुरुसेवा शास्त्रमतिरास्तिकत्वं सलज्जता। स्नानञ्च तर्पणञ्चैव ब्रह्मचारी समाचरेत्॥२॥
भिक्षां कुर्य्याद्भिक्षितञ्च गुरवे सन्निवेदयेत्। गुरुवासे युवतिभिर्न सम्भाषेत सर्व्वदा॥३॥
नन्वग्निः प्रमदा नाम घृतकुम्भमयः पुमान्। सुतामपि रहो जह्यात् प्रलिप्सुः श्रेयसां पदम्॥४॥
अङ्गसेवां चन्दनादिग्रहणं दुर्जनैषणाम्। ब्रह्मचारी न कुर्य्याद्वै त्रिसन्ध्यस्नानमाचरेत्॥५॥
अभ्यस्येत ध्रुवं वेदानर्थज्ञोऽपि ततो भवेत्। आवृत्तिः सर्व्वशास्त्राणां बोधादपि गरीयसी॥६॥
गुरुद्रव्यं न भुञ्जीत दद्याच्च गुरवे सदा। मसूरमामिषं तैलं ताम्बूलमपि वर्ज्जयेत्॥७॥
खट्वायां शयनञ्चैव ब्रह्मचारी विवर्ज्जयेत्। हविष्याण्यथ वक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु॥८॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिवर! अहिंसा तथा अस्तेय आदि के सम्बन्ध में पहले ही उल्लेख किया था। तुमने श्रवण किया है। यह सब तथा अतिथिसेवा, दान, तीर्थाटन, गुरुसेवा करे। शास्त्रज्ञान प्राप्त करे। आस्तिकता, सलज्जता रखे, प्रतिदिन स्नान-तर्पण, ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य का पालन करे। ब्रह्मचारी भिक्षाटन करके भिक्षालब्ध द्रव्य गुरु को अर्पित करे तथा गुरुगृह में स्थितिकाल में युवतियों के साथ कभी कथनोपकथन न करे। क्योंकि युवतियां अग्नि हैं तथा पुरुष घृत का घड़ा है। अतः निर्जन में कन्या के साथ भी न रहे। ऐसा करने वाला मानव परम मंगल लाभ करता है। अंगसेवा, चन्दनादिलेपन तथा दुर्जन सहवास ब्रह्मचारी का कर्त्तव्य नहीं है। ब्रह्मचारी त्रिसन्ध्या स्नान करे। नित्य वेदाभ्यास करे। इससे उसे क्रमशः वेदार्थज्ञान होगा। तभी कहा है कि शास्त्र का अर्थबोध करने की अपेक्षा उसे दुहराना उत्तम है। ब्रह्मचारी गुरुद्रव्य का भक्षण न करे। सतत् गुरु को भक्ष्य द्रव्य प्रदान करे। मसूर, आमिष, तैल, ताम्बूल तथा खाट पर सोना ब्रह्मचारी हेतु निषिद्ध है।।१-८।।

हैमन्तिकं सिता स्विन्नं धान्यं मुद्गास्तिला यवाः। कलाय-कङ्गु-नीवारा वास्तूकं हिलमोचिका॥९॥
कलायं कालशाकञ्च मूलकं केमुकेतरत्। कन्दं सैन्धवसामुद्रे लवणे मधुसर्पिषी।
पयोऽनुद्धृतसारञ्च पनसाम्रहरीतकी॥१०॥
पिप्पली जीरकञ्चैव नागरङ्गञ्च तिन्तिडी। कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम्।
अतैलपक्वं मुनयो हविष्यान्नं प्रचक्षते॥११॥
विधवानाञ्च नारीणां हविष्यान्नमिदं स्मृतम्। तासां पतिव्रतमिदं मृते भर्त्तरि सर्व्वथा॥१२॥

अब हविष्य द्रव्य का नामोल्लेख करता हूं। एकाग्र होकर श्रवण करो। अस्विन्न श्वेत हैमन्तिक धान्य, मूंग, तिल, यव, कलाय, कंगु, निवार, वास्तुक, हिलमोचिका, कालशाक, केमूक को छोड़ कर अन्य मूलक, सेंधा तथा समुद्री नमक, गौदधि एवं गौघृत, ऐसा दूध, जिससे मलाई-मक्खन न निकाला गया हो, पनस (कटहल), आम,

हरीतकी, पिप्पली, जीरा, नागरंग, तिन्तिड़ी, कदली, लवली, धात्रीफल, गुड़ के अतिरिक्त खांड़ आदि इक्षुविकार, अतैल पक्व द्रव्य इन सब को ऋषियों ने हविष्यान्न कहा है। ब्रह्मचारी तथा विधवा रमणीगण इसी का भोजन करे। पति के मृत होने पर विधवा के लिए सतत् ब्रह्मचर्य रखना कहा गया है।।९-१२।।

इत्याद्याः कथिता धर्म्मा जावाले व्रतचारिणाम्। उच्यतेऽथ गृहस्थानां धर्म्मो यः परमो मतः॥१३॥
ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय प्रणमेद्गुरुदैवतम्। ततो मलं त्यजेद्दूरे बहिर्गत्वा धनुर्गृहात्॥१४॥
जनस्य सम्मुखे नैव न च वृक्षतले क्वचित्। हलकृष्टं तथा सूर्य्यसाम्मुख्यं वायुपश्चिमम्॥१५॥
लिङ्गस्पर्शं त्यजेच्चैव संत्यागे मलमूत्रयोः। ताम्रकाले तु सम्प्राप्ते शौचं कृत्वा यथाविधि॥१६॥
ततः स्नानं प्रकुर्व्वीत दन्तधावनपूर्व्वकम्। मुखे पर्य्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः॥१७॥
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन भक्षयेद्दन्तधावनम्। दक्षिणां पश्चिमां काष्ठां त्यजेद्वै दन्तधावने॥१८॥
प्रातःस्नानं प्रकुर्व्वीत दृष्ट्वा प्राचीमथारुणाम्। ततः कुर्य्याद्दिवास्नानं उदिते सति भास्करे॥१९॥

अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वप्नं दुर्व्विचिन्तितम्।
अस्मात्रेणाभिषिक्तस्य नश्यन्त इति धारणा॥२०॥

हे जाबालि! मैंने तुमसे ब्रह्मचर्याव्रतावलम्बन धर्म कहा। अब गृहस्थों का परम धर्म सुनो। गृहस्थ नित्यप्रति ब्राह्ममुहूर्त्त में उठे तथा गुरु एवं इष्ट को प्रणाम करके इतनी दूर जाये जहां तक धनुष का बाण जाता है। वहां मल-मूत्र त्याग करे। जल के सामने, वृक्षतल में, सूर्य की ओर तथा सूर्य के पश्चात् भाग में मलत्याग तथा लिंग स्पर्श निषिद्ध है। प्रातः इस विधान से शौचकार्य सम्पन्न करके दन्तधावन एवं प्रातः स्नान करे। यदि व्यक्ति मुख नहीं धोता, तब सभी कार्य अशुद्ध रहते हैं। दक्षिण अथवा पश्चिम की ओर मुख करके दन्तधावन न करे। जब पूर्व दिशा अरुण वर्ण हो जाये तब प्रातः स्नान करे। जब सूर्य उग जायें, तब पुनः दिवास्नान करे। ऐसा स्नान करने पर मानव को दुःख तथा दुश्चिन्ता देने वाली अलक्ष्मी तथा कालकर्णी शान्त हो जाती हैं। यह निःसन्दिग्ध है।।१३-२०।।

एवं स्नात्वा सुसङ्कल्प्य शुष्कवासा जपेत् कृती।
पञ्चयज्ञान् प्रकुर्व्वीत तांस्ते वक्ष्यामि तच्छृणु॥२१॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो देवबलिः प्रोक्तो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥२२॥
श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात् पित्र्योर्बलिरथापि वा। स्वर्गापवर्गयोः सिद्धिं पञ्चयज्ञात् प्रचक्षते॥२३॥
अभावे त्वतिथिः पूज्यो नरमात्रमथापि वा। दद्यादहरहर्विप्र ब्राह्मणायान्नमुत्तमम्॥२४॥
वैश्वदेवविधिश्चात्र शृणुष्व द्विजसत्तम। कुशण्डिकासंस्कृताग्नौ जुहुयात् साग्निको द्विजः॥२५॥
निरग्निर्लौकिकाग्नौ हि मुनीनां मतमुत्तमम्। तदभावे जले पृथ्व्यां विना संस्कारमाहुनेत्॥२६॥
अक्षारलवणं यत्तु हविष्यान्नं घृताचितम्। जुहुयाद्विप्र शुक्लान्नं वैश्वदेवविधिस्त्वयम्॥२७॥
ब्राह्मणाद्यैः प्रकर्त्तव्यः पञ्चसूनापनुत्तये। नवग्रहान् पूजयित्वा दिक्पालांश्च प्रपूजयेत्।
सूर्य्याय सूर्य्यपुरुषेभ्य इत्यादिकमपि क्रमात्॥२८॥
सर्व्वेभ्यश्च बलिन्दद्यात् ततः कीटपिपीलिकाः। अन्यैः प्रपूजयेद्गाश्च पूजयेत् परमादरात्।
कृत्वा चैवं विधिं विप्रः परान्नं परिवर्ज्जयेत्॥२९॥

इस प्रकार से संकल्प युक्त स्नान करके श्वेत वस्त्र पहने। तत्पश्चात् जपादि समापनान्त पञ्चयज्ञ करे। अब पञ्चयज्ञ का विवरण कहता हूं। श्रवण करो। अध्यापन ब्रह्मयज्ञ है, तर्पण पितृयज्ञ हैं, होम देवयज्ञ है, बलिदान (बलिदान का अर्थ पशु बलि नहीं है) भूतयज्ञ है। अतिथि सेवा मनुष्य यज्ञ है। अथवा श्राद्ध, पितृ-मातृपूजा पितृयज्ञ है। मुनिगण इस पञ्चयज्ञ को स्वर्ग-अपवर्ग का कारण कहते हैं। उक्त प्रकार के पाकयज्ञ के अभाव में नित्य अतिथि सेवा किंवा ब्राह्मण को उत्तम अन्नदान करना सबका कर्त्तव्य है। हे द्विजसत्तम! अब वैश्वदेव विधान सुनो। साग्निक ब्राह्मण कुशण्डिका विधानानुसार संस्कृत अग्नि में तथा निरग्नि ब्राह्मण लौकिक अग्नि में किंवा जल अथवा पृथिवी पर अक्षार लवणयुक्त घृताक्त हविष्यान्न की आहुति प्रदान करे। यही वैश्वदेव है। पञ्चसूना जनित दोष शान्ति हेतु ब्राह्मणादि सभी का यही कर्त्तव्य है। तदनन्तर नवग्रह, दसों दिक्पाल, सूर्य, सूर्य पुरुष की पूजा करके सभी को यथाक्रमेण बलि प्रदान करके कीट पिपीलिका तक को बलि देकर सादर अन्नादि देकर गौओं का पूजन करे। इस विधि से अनुष्ठान करना तथा परान्न त्याग करना ब्राह्मण का कर्त्तव्य कर्म है।२१-२९।।

नित्यश्राद्धन्तु क्रियते यत्तत् प्रतिदिनं कृतम्। दद्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन च।।३०।।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमाहरन्। गोग्रासन्तु ततो दद्यान्मन्त्रेणानेन भूसुर।।३१।।
ॐसौरभेय्यः सर्व्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः। प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः।।३२।।
ततोऽतिथींश्च सेवेत यथाशक्ति निबोध तत्। स्वाध्यायेनाग्निहोत्रेण यज्ञेन तपसापि वा।।३३।।
न प्राप्नोति गृही लोकान् यथात्वतिथिपूजनात्। न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न पूजयेत्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यञ्चातिथिपूजनम्।।३४।।
ततो भुञ्जीत गार्हस्थी कृतमौनो यथाविधि। अन्नं विलोक्य हृष्येत तेजोसीति स्पृशन्नमेत्।।३५।।
चतुष्कोणमण्डलेन पञ्चभागांश्च निर्व्वपेत्। भूर्भुवो भुवनपतये (भूतानां पतये) तथा।।३६।।
पञ्चभूतात्मने मध्ये स्वाहान्तं मन्त्रपञ्चकम्। उत्सृजेदथ गण्डूषं पिवेदुच्चारयन्निति।।३७।।
अमृतोपस्तरणमसि स्वाहेति तत्त्वमुद्रया। पञ्चग्रासांस्ततः कुर्य्यात् प्राणापानादिना द्विज।।३८।।
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं स्वाहाशेषेण वै शुचिः।
आयुष्कामः प्राङ्मुखः सन् सत्यकाम उदङ्मुखः।।३९।।
श्रीकामः पश्चिमास्यश्च दक्षिणास्यो यशोऽर्थकः।
माता पिता वा यस्यास्ति नाश्नीयाद्दक्षिणामुखः।।४०।।

पितृगण की प्रसन्नता हेतु अन्न तथा जल से किंवा फलमूल तथा दुग्ध से ब्राह्मण नित्य श्राद्ध करे। तदनन्तर "हे सौरभेय! (श्लोक ३१ से) इत्यादि मन्त्र से गोग्रास प्रदान करके यथाशक्ति अतिथि सेवा आवश्यक है। गृहस्थगण स्वाध्याय, अग्निहोत्र, यज्ञ, तप से अतिथि सेवा के समान स्वर्गादि प्राप्त नहीं कर सकते। जो द्रव्य अतिथि को न खिलाया जा सके, उसका उपयोग स्वयं भी न करे। किम्बहुना जगत् में मात्र अतिथि सेवा से यश, आयु तथा स्वर्ग मिलता है। गृहस्थ व्यक्ति अतिथि सेवारत होकर उसे तृप्त करे, तब यथाविधि स्वयं भोजन ग्रहण करे। पहले अन्न की ओर दृष्टि करके 'तेजोऽसि' इत्यादि मन्त्र से करस्पर्श करके अन्न को प्रणाम करे, तदनन्तर चतुष्कोण मण्डल बनाकर उस पर पंचभोग स्थापित करके चतुष्कोण में 'भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, भुवनपतये स्वाहा तथा भूतपतये स्वाहा,

पञ्चभूतात्मने स्वाहा' मन्त्र से (एक मन्त्र से एक-एक भाग) पंचभोग को उत्सर्ग करे। 'अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' का उच्चारण करके तत्वमुद्रा द्वारा एक चुल्लू जल पीये। तदनन्तर 'प्राणाय स्वाहा' इत्यादि पांच प्राण मन्त्र का पाठ करके पंचग्रास ग्रहण करे। आयु चाहने वाला पूर्वाभिमुख, सत्यप्रार्थी उत्तरमुख, श्रीप्रार्थी पश्चिममुख तथा यशः प्रार्थी दक्षिणाभिमुख होकर भोजन करे। लेकिन जिसके माता-पिता जीवित नहीं हैं, उसी के लिए यह नियम है।।३०-४०।।

पीठे पादं समारोप्य जलपात्रञ्च वामतः।
नाश्नीयात् पङ्क्तिमध्यस्थो न त्यजेत् पङ्क्तिमेव हि॥४१॥
अमावास्यापौर्णमासीचतुर्द्दश्यष्टमीषु च। रविवारे तथा भानुसंक्रान्तौ द्वादशीतिथौ॥४२॥
पुण्याहेषु च सर्व्वेषु मत्स्यं मांसं न भक्षयेत्। मत्स्यं मांसं मसूरञ्च माषं निम्बं तथार्द्रकम्॥४३॥
तैलञ्च रविवारेषु न गृह्णीत कदाचन। रोहितं शकुलञ्चैव शफरं शफराधिपम्॥४४॥
शुक्लवर्णं सशल्कञ्च मत्स्यं भुञ्जीत ब्राह्मणः।
सर्व्वाङ्गुलीभिरश्नीयात् कम्पयेन्न करौ क्वचित्॥४५॥
निःशब्दं भोजनं कुर्य्यान्नाङ्गुलीपृष्ठमालिहेत्। आदौ घृतान्नमाहार्य्यं व्यञ्जनं शाकमादितः॥४६॥
ततः सूपादि भुञ्जीत क्षीरान्तं भोजनञ्चरेत्। न क्षीरे लवणं दद्यान्नाम्लेषु गुडमेव च॥४७॥
क्षीरं तथामिषं भुक्त्वा न भुञ्जीत कदाचन। पाषाणपात्रे पत्रे वा सर्व्वेषां भोजनं शुभम्॥४८॥
गृहस्थश्चाभग्नकांस्ये ताम्रपात्रे न चैव हि। जलञ्च ताम्रपात्रेण न भुञ्जीत गृही क्वचित्॥४९॥

पीठ पर चरण रख कर तथा बायीं ओर जल रख कर तथा पंक्ति मध्य में भोजन करना निषिद्ध है। तथापि पंक्ति त्याग भी अनुचित है। अमावस्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी, रविवार, रविसंक्रान्ति, द्वादशी तथा अन्य पुण्य तिथियों पर मत्स्य-मांस भक्षण वर्जित है। रविवार को मत्स्य, मांस, मसूर, उर्द, नीम का पत्ता, अदरख न खाये। रोहित, शकुल, तथा शफर प्रभृति शुक्लवर्ण मत्स्य ब्राह्मण हेतु भक्ष्य हैं। सभी उंगलियों से भोजन करे तथापि दोनों हाथों से भोजन न करे। भोजनकाल में मौन रहे। अंगुलि के पिछले भाग से भोजन करना गर्हित है। पहले घृतान्न खाये, तब शाकादि व्यञ्जन खाकर सूप आदि तथा अन्त में क्षीरान्न भोजन करे। क्षीर में लवण तथा अम्ल में गुड़ मिलाना उचित नहीं है। पहले मांसादि खाकर तब क्षीरभक्षण न करे। पाषाण पात्र किंवा पत्ते में भोजन सबसे शुभ है। गृही व्यक्ति भग्न कांस्य पात्र अथवा ताम्र पात्र में अन्नादि भोजन तथा ताम्रपात्र में जल कभी न पीये।।४१-४९।।

मलमूत्रत्यागशौचं न कुर्य्यात्ताम्रवारिणा। विलम्बभोजनं पापं पुण्यदं शीघ्रभोजनम्॥५०॥
विप्राणामुपरोधेन नियमन्तु त्यजेत् सकृत्। बहूनां भुञ्जतां मध्ये नैकोऽश्नीयात्त्वरान्वितः॥५१॥
वृथा न विकिरेदन्नं नोच्छिष्टः कुत्रचिद्व्रजेत्। श्लोकपाठं पुराणार्थं शास्त्रार्थकथनन्तथा॥५२॥
उच्छिष्टवदनो नैव कुर्य्यान्मन्त्रं न चोच्चरेत्। क्षत्रियादिस्पृष्टमन्नं स्त्रीस्पृष्टञ्च विवर्ज्जयेत्॥५३॥

ताम्रपात्रस्थ जल से मल-मूत्रादि शौचकार्य निषिद्ध है। देर तक भोजन करते रहने से पातक तथा शीघ्रता से भोजन करने से पुण्य मिलता है, लेकिन विप्रगण के अनुरोध पर उक्त सभी नियम का त्याग हो सकता है। जब अनेक के साथ भोजनार्थ बैठे, तब शीघ्रता से भोजन करना, व्यर्थ अन्न बिखेरना, जूठे मुंह अन्यत्र जाना, श्लोक पाठ, पुराणार्थ व्याख्या, शास्त्रार्थ कथन, मन्त्रोच्चारण तथा मल-मूत्र त्याग वर्जित है।।५०-५३।।

शुना स्पृष्टञ्च दृष्टञ्च वर्ज्जयेत् भोजनं द्विजः। मार्ज्जारो न स्वयं स्पृश्यो न तेन स्पृष्टमुज्झयेत्॥५४॥
हस्तपात्रे वस्त्रपात्रे भूपात्रे नापि भुज्यते। मृत्पात्रेण नाम्बु पेयं पीतशेषञ्च वर्ज्जयेत्॥५५॥
नोच्छिष्टे घृतमादद्यान्न भुञ्जीतानिवेदितम्। आर्द्रवासा नैकवासा न भग्नासनगस्तथा॥५६॥
शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम्। पिबेन्नाञ्जलिना तोयं न तोये मुखमर्पयन्॥५७॥
न च प्रातर्न सन्ध्यायां सार्द्धयामाधिके तथा। रात्रिकाले न भोक्तव्यं सुखरात्रिं विना नरैः॥५८॥
अनावृते स्थले नैव भुञ्जीत वै कदाचन। अर्द्धस्विन्नं प्रेतभक्ष्यं सुस्विन्नं देवसम्मतम्॥५९॥
द्विःस्विन्नन्तु नरैर्भक्ष्यं त्रिस्विन्नं ब्रह्मगर्हितम्। एकस्विन्नं भानुशुद्धं पुनः स्विन्नं भवेद् यदि॥६०॥

तद्द्विःस्विन्नन्तु भक्ष्यं स्यादन्यथा गर्हितं हि तत्।
दग्धं दुष्कृमिदुष्टञ्च दत्तञ्चावज्ञया च यत्॥६१॥

न भोक्तव्यं पर्य्युषितं दृग्जिह्वाप्रीतिवर्ज्जितम्। इत्यादि भोजने धर्म्माः कथितास्ते द्विजोत्तम॥६२॥
अन्ते गण्डूषमाहृत्य माधुर्य्यान्तं समापयेत्। ततो मृद्भिर्हस्तवक्त्रादन्तान् संशोध्य यत्नतः॥६३॥
मुखशुद्धिं ततः कुर्य्यात् (ताम्बूलतुलसीदलैः। श्रीहरिस्मरणेनापि द्विराचम्य तथापि वा॥६४॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे उत्तरखण्डे पञ्चमोऽध्यायः।।



द्विजगण क्षत्रियादि का स्पर्श किया, स्त्री का स्पर्श किया, कुत्ते का स्पर्श किया तथा अन्य किसी कारण से दुष्ट हो गये अन्य को त्यागें। स्वयं बिड़ाल स्पर्श निषिद्ध है तथापि मार्जार (बिड़ाल) की स्पर्श की गयी वस्तु त्याज्य नहीं है। खाली हाथ में, कपड़े पर तथा भूमि पर अन्न रख कर भोजन न करे। मिट्टी के पात्र में (जूठा) पी कर बचा जल पुनः पीना निषिद्ध है। जूठे पात्र में घृत न रखे। बिना देवता को निवेदन किये घृत खाना वर्जित है। गीला वस्त्र अथवा मात्र एक वस्त्र पहन कर, टूटे-फटे आसन पर बैठकर, सोये हुए, पैर फैला कर, शय्या से संलग्न वस्त्र पर भोजन न करे। अंजलि द्वारा जल पीना किंवा जल को मुख पर अर्पित करना निषिद्ध है। (चुल्लू से पी सकते हैं, अंजलि से नहीं)। प्रातः, सन्ध्या, आधा प्रहर रात्रि व्यतीत होते समय तथा बिना ढके स्थान पर भोजन न करे। अधपका अन्न प्रेतगण का भक्ष्य है। पूर्ण पका अन्न देवगण को प्रिय है। दो बार पका अन्न मनुष्य को प्रिय है। तीन बार पका अन्न ब्रह्म गर्हित (त्याज्य) कहा गया है। एक बार पके चावल को सूर्य ताप में शुष्क करके पुनः पकाये। वह मानव का भक्ष्य होता है। अन्यथा वह अग्राह्य है। दग्ध, कृमि पड़ा, अवज्ञा से दिया गया, बासी, नेत्र एवं जिह्वा को जो प्रिय न हो, ऐसा भोजन निषिद्ध है। मधुर रस से भोजन सम्पन्न करके चुल्लू भर जल ग्रहण करे। हे द्विजप्रवर! मैंने तुमसे भोजन विधान वर्णित किया। मानवगण एवंविध भोजनोपरान्त सयत्नतः मिट्टी द्वारा हाथ, मुंह, दान्त मार्जित करे। तदनन्तर २ बार आचमन तथा हरिस्मरण करके ताम्बूल एवं तुलसी पत्र से मुख को शुद्ध करे।।५४-६४।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।



षष्ठोऽध्यायः

गृहस्थ धर्म वर्णन

व्यास उवाच

अथ भुक्त्वा सुखीभूय पुराणश्रवणादिकम्। राज्ञश्च दर्शनं कुर्य्या) त्ततः सन्ध्यां समाचरेत्॥१॥
सन्ध्याप्रदीपं प्रज्ज्वाल्य प्रणमेत्तदनन्तरम्। एकदा जलवह्नी चनाहरेद्वै कदाचन॥२॥
शास्त्रचिन्तां भोजनञ्च शयनं गमनन्तथा। मैथुनञ्च तथा क्रीडां सन्ध्याकाले विवर्ज्जयेत्॥३॥
कृतपादादिशौचन्तु भुक्त्वा सायं ततो गृही। गच्छेच्च शय्यां स्फुटितामपि दारुमयीं शुभाम्॥४॥
न विशालांन वा भग्नां नाममां मलिनां न च। न च जन्तुमयीं शय्यामवतिष्ठेदनावृताम्॥५॥
प्राच्यां दिशि शिरः शस्तं यास्यायामथवा द्विज। सदैव स्वपतः शस्तं विपरीन्तु रोगदम्॥६॥
नमो नन्दीश्वरायेति यश्चोक्त्वा सुप्यते नरः। तस्य कुष्माण्डराजेभ्यो न भविष्यति वै भयम्॥७॥
पद्मनाभं नमस्कृत्य नागदेवीं तथोरगान्। गृहदेवं तथा नत्वा गृही शयनमाचरेत्॥८॥
न तैलाक्तो नार्द्रवासा नार्द्रपादो न चर्म्मणि। नैवोत्तरशिराः सुप्येन्न नग्नोऽपि शयीत च॥९॥
गृहमूर्द्धण्यकाष्ठस्य दैर्घ्यं नानुशयीत च। न कुर्य्यात् शयनात्पूर्व्वमनिष्टचिन्तनं नरः॥१०॥

व्यासदेव कहते हैं—अब गृहस्थ व्यक्ति भोजनोपरान्त विश्राम करके राजदर्शन तथा पुराणादि श्रवण करे। तदनन्तर सायं सन्ध्या कृत्य सम्पन्न करे। सन्ध्याकालीन दीप जला कर उसे प्रणाम करे। तथापि एक ही समय अग्नि तथा जल का आहरण नहीं करना होगा। शास्त्रचिन्तन, भोजन, शयन, क्रीड़ा, मैथुन तथा यात्रा सायंकाल में न करे। तदनन्तर भोजन करके पैर आदि को शुद्ध करके काठ की शुभ शय्या पर शयन करे। कम चौड़ी लम्बी, भग्न, विषम, मलिन, अनावृत्त (बिना चादर बिछी), कीड़े (दीमक-खटमल) पड़ी जो शय्या हो, उस पर शयन न करे। हे द्विज! शयन काल के समय पूर्व की ओर किंवा दक्षिण की ओर शिर करे। इसके विपरीत सोने से रोग होता है। जो नन्दीश्वर को प्रणाम करके शयन करता है, उसे कूष्माण्डराज (प्रेत) का भय नहीं रहता। गृही व्यक्ति पद्मनाभ, मनसा देवी, नागगण तथा कुलदेवता को प्रणाम करके शयन करे। तैलाक्त, गीले वस्त्र, आर्द्र पैर, उत्तर की ओर शिर करके अथवा नग्न अवस्था में, चर्म के ऊपर शयन न करे। गृह के प्रधान कमरे की लम्बाई की ओर सोना तथा शयन के पूर्व अनिष्ट चिन्तन सर्वतोभावेन वर्जित है।।१-१०।।

दारोपगमनं कुर्य्यात् सकामत्र्ऋतुसङ्गतौ॥११॥
चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्याथ पूर्णिमा। पर्व्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च॥१२॥
स्त्रीतैलमांससम्भोगी पर्व्वस्वेतेषु वै पुमान्। विन्मूत्रभोजनन्नाम प्रयाति नरकं मृतः॥१३॥
अभ्यङ्गक्षौरमांसानि योषित्सङ्गं तथाखिलम्। नन्दारिक्ताजयापूर्णभद्रासु नाचरेत् क्रमात्॥१४॥
अभ्यङ्गं योषित्सङ्गञ्च क्षौरं मांसञ्च वर्जयेत्। अर्के बुधे कुजे शुक्रवारयोश्च क्रमान्नरः॥१५॥
तैलं हस्तासु चित्रासु श्रवणासु च वर्जयेत्। क्षौरं वर्ज्यं विशाखायां मूले भाद्रपदे मृगे॥१६॥

मांसं वर्ज्यं योषितश्च मघावह्न्युत्तरेषु च। अनृतौ तु स्त्रियं गच्छेत् सकामां कामभाववान्॥१७॥
षोडशर्त्तुर्निशा नारी पृथ्वीशब्देन कथ्यते। तत्र युग्मासु पुंसङ्गात् पुत्रं सूते द्विजोत्तम्॥१८॥
एवं तुभ्यं निगदितं गृहिणां दारसेवनम्। सामान्यधर्म्मान् गृहिणां निबोध कथयामि ते॥१९॥
उच्छिष्टञ्च मलं मूत्रं श्लेष्मानं पादताडनम्। जलेषु वर्जनीयानि वह्नावपि शमिच्छुभिः॥२०॥

ऋतुकाल में सकाम होकर पत्नीगमन करे। तथापि चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति के दिन स्त्री भोग, तैल-मांस भोग करने से देहान्त के पश्चात् मलमूत्र भोजन वाला नरक प्राप्त होता है। नन्दा, रिक्ता, जया, पूर्णा, भद्रा तिथि के दिन तैल मर्दन, क्षौर कर्म, मांस भोजन, स्त्री प्रसंग का यथाक्रम त्याग करे अर्थात् नन्दा को तैलमर्दन, रिक्ता को क्षौर, जया को मांस भोजन, भद्रा को स्त्री संग त्याज्य है। रविवार को तैल मालिश, बुध को क्षौर, मंगल को मांस भोजन, शुक्र को स्त्री संग त्याग दे। हस्ता, चित्रा तथा श्रवणा में तैल, विशाखा, मूला, पूर्व भाद्रपद, उत्तर भाद्रपद, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में मांस तथा स्त्री संग त्याग दे। ऋतुकाल के अतिरिक्त काल में भी सकामा स्त्री से कामभाव में गमन करे। स्त्रियों का ऋतुकाल १६ रात्रि पर्यन्त होता है। उनमें भी हे द्विजोत्तम! युग्म तिथि में पुरुष संग से नारी पुत्र जन्म देती है। गृहस्थगण का इस प्रकार का धर्म तुमसे कहा। अब उनके साधारण धर्म को सुनो। कल्याणकामी व्यक्ति जल-अग्नि में जूठन, मल-मूत्र तथा श्लेष्मा न फेंके। अग्नि को पैर से न छूये। जूठन, मल-मूत्र तथा श्लेष्मा को पैर से न हटाये। इन सबके समक्ष मल-मूत्र तक न करे।।११-२०।।

जलाग्निसम्मुखे नापि मलं मूत्रञ्च सत्यजेत्। परिदध्यान्नरो वस्त्रं दशा नाभौ प्रयोजयेत्॥२१॥
पूर्व्वधौतं स्त्रिया धौतं यद्धौतं रजकैरपि। तदधौतं विजानीयाद्दशा दक्षिणपश्चिमे॥२२॥
विचित्रवर्णसूत्रञ्च पूजायां वसनं त्यजेत्। पूर्व्वास्य उत्तरास्यो वा पूजां कुर्य्याद् यथाविधि॥२३॥
यवनान्त्यजकाकश्वालोकितं दूष्यते द्विज। पूजाश्राद्धादिकं द्रव्यं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥२४॥
मलिने च तथा भग्ने शूद्रव्यवहृते तथा। वस्त्रपात्रादिपूजा च वृथास्यूते च वाससि॥२५॥
(सन्यासिनि ब्राह्मणे च समायातेऽतिथौ गृही। पूजां श्राद्धं तथारब्धं तत्पूजानन्तरं चेरत्॥२६॥
आसनं वसनं शय्या दाराः पुत्रः कमण्डलुः। आत्मनः शुचीन्येतानि न परेषां कदाचन॥२७॥
तस्मात् परासनादौ तु नैव देवान् प्रपूजयेत्।) पूजयंस्तु गुरुं दृष्ट्वा त्यजेत् पूजां मुदान्वितः॥२८॥
त्यागाय पीडयत्येव मलं नाभेरधोगतम्। तत्त्यागाय वहिर्देशं पूजां कुर्व्वन्नपि व्रजेत्॥२९॥
ततः पुनः शुचीभूयाचम्य कृत्वात्मशोधनम्।
अवशिष्टक्रियां कुर्य्यात् स्नायात् स्पृष्टोऽन्त्यजादिभिः॥३०॥
गवां सेवा तु कर्त्तव्या गृहस्थैः पुण्यलिप्सुभिः। गवां सेवापरो यस्तु तस्य श्रीर्वर्द्धतेऽचिरात्॥३१॥

गृही व्यक्ति वस्त्र धारण करे तथा वस्त्र को नाभि से पहने। नारी द्वारा धुला, पहले का धुला, धोबी का धुला तथा जिस वस्त्र की दशा दक्षिण-पश्चिम जैसी (?) हो, उसे बिना धुला जाने। पूजा काल में रंगबिरंगे सूतों वाले वस्त्र न पहने। पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख हो पूजा करनी चाहिए। पूजा तथा श्राद्ध के समय मैला, फटा, शूद्र व्यवहृत वस्त्र-पात्र आदि द्रव्योपयोग का कोई फल नहीं होता। अतः ऐसी पूजा तथा श्राद्ध आदि फलहीन हो जाता है। सन्ध्या तथा रात में यदि अतिथि आता है, तब गृही व्यक्ति पूजादि प्रारम्भ करके भी पहले अतिथि सत्कार करके, तब पूजा आदि

करे। अपना आसन, वस्त्र, शय्या, पत्नी, पुत्र तथा कमण्डलु पवित्र होते हैं। अन्य के पवित्र नहीं होते। अतएव परायी (ये सब) वस्तु देवपूजा में अविहित हैं। यदि पूजाकाल में गुरु आ जाये, तब आनन्द से पूजा त्याग करे। यदि पूजा काल में मल-मूत्र त्याग का आवेग अनुभूत हो, तबं पूजा त्याग करे। तदनन्तर पवित्र होकर वस्त्र बदल कर आचमन एवं आत्मशोधन के उपरान्त शेष पूजा सम्पन्न करे। अन्त्यज का स्पर्श हो जाने पर स्नान करे। पुण्यलाभ की आशा में तो गृहस्थ को गो सेवा करनी ही चाहिए। जो गौ सेवा में तत्पर है, उसकी चिरकालीन लक्ष्मी वृद्धि होती है।।२१-३१।।

ब्राह्मणानां तथाग्नीनां गुरूणाञ्च गवान्तथा।
स्त्रियाञ्च देवलिङ्गानां न गच्छेन्मध्यतः क्वचित्॥३२॥
युध्यतां वदताञ्चैव सर्व्वेषामपि सर्व्वदा। मध्येन नैव गन्तव्यं तृणाभ्यन्तरतो व्रजेत्॥३३॥
गुरुर्गङ्गा च माता च पिता सूर्य्येन्दुवह्नयः। प्रत्यक्षदेवता एताः पतिः स्त्रीणां तथा स्मृतः॥३४॥
ब्राह्मणाश्च स्त्रियो गावो विरक्तश्च तथातिथिः। गावो यत्र तु तिष्ठन्ति तत्स्थानं नियतं शुचि॥३५॥
गवां स्पर्शेन सर्व्वाणि संशुद्ध्यन्त्येव सर्व्वथा। गवां मूत्रं पुरीषञ्च पवित्रं परमं मतम्॥३६॥
क्षीरं दधि घृतञ्चैव भोजने ह्यमृतोपमम्। एतैर्विना भोजनञ्च वृथाभोजनमिष्यते॥३७॥
विशेषतो ब्राह्मणस्तु नागव्यं भोजनञ्चरेत्। उपेक्ष्यं सर्व्वमेव स्यान्न तु गव्यं कदाचन॥३८॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिस्तथोत्तमम्। पञ्चगव्यमिदं प्रोक्तं स्नानीयं सर्व्वदैवतैः॥३९॥
भूसुरा ब्राह्मणाः प्रोक्ता गव्यञ्चापि धरामृतम्। गव्यभोजी सदा विप्रो ह्यमरत्वमवाप्नुयात्॥४०॥
ताडनं म्रियतां वाक्यं स्पर्शनं तालपत्रतः। पादाघातं भक्षरोधं वर्ज्जयेद्गोषु मानवः॥४१॥
गोगृहे तुषधूमञ्च क्षौरञ्चामिषभोजनम्। पीठासनं प्राणिदाहं व्यायामं मैथुनन्तथा॥४२॥
मिथ्यावाक्यं प्राणिहिंसां भृष्टद्रव्यस्य भोजनम्। परान्नभोजनञ्चैव द्वादशैव विवर्जयेत्॥४३॥
गवापराधदण्डञ्च गृहस्थानां न कारयेत्। एतान् द्विजेन्द्र गोधर्म्मान् गृही कुर्य्यात् सुखं लभेत्॥४४॥

गौ, ब्राह्मण, गुरु, अग्नि तथा दैवलिंग धारिणी नारी के मध्य से आगमन न करे। इनके बीच से होकर भी न जाये। तथापि तिनके की आड़ लेकर जा सकते हैं। गुरु-गंगा-माता-पिता-सूर्य-चन्द्र-अग्नि-ब्राह्मण-गौ-परिव्राजक-अतिथि देवरूप हैं। स्त्री के लिए पति प्रत्यक्ष देवता है। जहां गौ का वास है, वहां सर्वदा पवित्रता रहती है। गौ स्पर्श से सभी द्रव्य सर्वतोभावेन शुद्ध हो जाते हैं। गोमूत्र तथा गोमय परम पावन है। दुग्ध-दधि-घृत तो अमृत है। इनसे रहित भोजन वृथा है। विशेषतः ब्राह्मण को इनसे रहित भोजन न कराये। अन्य द्रव्य की उपेक्षा भले करे, तथापि इन तीन की उपेक्षा न करे। गोमूत्र-गोमय-दुग्ध-दधि-घृत को पंचगव्य कहा गया है। यह सब देवगण का स्नानीय द्रव्य है। ब्राह्मण को भूदेव तथा दुग्ध-दधि-घृत को इस लोक का अमृत कहते हैं। तभी समस्त ब्राह्मण गव्यभोजन परायण होकर अमरत्व लाभ करते हैं। ताड़न, मारो कहना, ताड़ पत्र द्वारा स्पर्श, पैर से आघात, खाते हुए रोकना, यह सब गौ के साथ न करे। गोशाला में धुआं, क्षौर, मांस भोजन, पीठ पर बैठना, प्राणिदाह, व्यायाम, मैथुन, झूठ बोलना, प्राणी हिंसा, भ्रष्ट (भूजे) द्रव्य भोजन, परान्न भोजन न करे। गौ कोई भी अपराध करे, गृहस्थ उसे दण्डित न करे। हे द्विजप्रवर! गृहस्थ इन सब गोधर्म का पालन करके सुखी होता है।।३२-४४।।

कृषकस्तु वाहयेद्गाः सार्द्धं प्रहरमेव हि। ततोऽधिकं वाहयन् गा गोवध्यापातकी भवेत्।।४५।।
उच्छिष्टान्नं तथा गोभ्यो न दद्यान्मानवः क्वचित्।
यात्राकाले सवत्साञ्च धेनुं दृष्ट्वा सुखं व्रजेत्।।४६।।
दधि शुक्लञ्च कुसुमं सुन्दरीं हस्तिनं हयम्। दुर्व्वाञ्च शुक्लधान्यञ्च जलपूर्णं घटन्तथा।।४७।।
शिवां विप्रं शङ्खचिल्लं खञ्जनं सज्जनन्तथा। परार्थञ्च परेणोक्तं मङ्गलं वचन्तु यत्।।४८।।
विल्ववृक्षं मौक्तिकञ्च खड्गं जिगमिषुः स्मरेत्। दूरदेशं न चैकाकी त्रितयी च न हि व्रजेत्।।४९।।
भद्राञ्च वारवेलाञ्च रिक्तां पापदिनानि च। तिथिवारेषु दिग्दोषान् वर्जयित्वा सुखं व्रजेत्।।५०।।
आषाढीकार्त्तिकीमाघीवैशाखीषु द्विजोत्तम। रविसंक्रमणेऽमायां युगाद्यास्वन्तरासु च।।५१।।
व्यतीपाते च पुष्यायां ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः। माघे मासि च सप्तम्यां भाद्रकृष्णाष्टमीदिने।।५२।।
शिवरात्रिचतुर्दश्यां महापूजादिनेषु च। अमावास्या भौमतुर्य्या गुर्व्वष्टम्यर्क्कसप्तमी।।५३।।
श्राद्धाहे जन्मदिवसे एकादश्यां दिनक्षये। अर्द्धोदये च वारुण्यां कुर्य्याद्दानं मनःप्रियम्।।५४।।

कृषि करने वाला मात्र डेढ़ प्रहर ही बैल से हल का कार्य कराये। अन्यथा वह पातकी होगा। गृही व्यक्ति कभी भी गौ को जूठन न दे। यात्राकाल में वत्सयुक्त गौ, दधि, श्वेत पुष्प, सुन्दरी स्त्री, हाथी, घोड़ा, दूर्वा, शुक्लधान्य, जलपूर्ण घट, शृगाली, ब्राह्मण, श्वेत चील, खंजन पक्षी तथा सज्जन का दर्शन होने पर सुख से गमन करे। विदेश जाने वाला व्यक्ति मंगल वाक्य, बेल वृक्ष, मुक्ता तथा शंख का स्मरण करे। एकाकी अथवा ३ लोग साथ में दूर देश न जायें। भद्रा, वारवेला, रिक्ता, पापदिन तथा तिथि, दिशाशूल को छोड़ कर सुख से गमन करे। हे द्विजश्रेष्ठ! आषाढ़-कार्तिक-माघ-वैशाख की पूर्णिमा, चन्द्र-सूर्य ग्रहण, माघी सप्तमी, भाद्र की कृष्णाष्टमी, शिवरात्रि चतुर्दशी, महापूजा तिथि, सोमवती अमावस्या, मंगलवासरी चतुर्थी, शुक्रवासरी अष्टमी, रविवासरी सप्तमी, श्राद्धतिथि, जन्मदिन, एकादशी, अर्द्धोदय तथा वारुणी योग के दिन पवित्र मन से दान करे।।४५-५४।।

तीर्थस्नानं साधुसङ्गं देवताराधनन्तथा। पुराणश्रवणञ्चैव (मिष्टं भुञ्जीत भोजयेत्।।५५।।
राजसन्दर्शनञ्चैव) कलहादिविवर्जनम्। कुर्य्याच्च मैथुनत्यागं नदीलङ्घनवर्जनम्।।५६।।
आमिषञ्च त्यजेत् पृथ्वीखननं वाहनं गवाम्। वस्त्रस्य क्षारसंयोगं दन्तधावनमेव च।।५७।।
त्यजेद्गृही च जावाले ह्यन्यथा नारकी भवेत्। गृहस्थस्तु स्वयं राजा नावमन्येत तं परः।।५८।।
स दण्डकर्त्ता गार्हस्थ्ये भृत्यपुत्रादिकेष्वपि। कालसन्धौ तु सूर्य्यस्य न भुञ्जीरन् द्विजातयः।
वृथाचेष्टां वृथावाक्यं न गृहस्थः समाचरेत्।।५९।।
विवस्त्रां न स्त्रियं पश्येज्जरतीं युवतीन्तथा। अविरक्तस्य पुंसस्तु न लिङ्गमवलोकयेत्।।६०।।
न स्त्रियो दर्शयेल्लिङ्गं पशुवत्ता न कामयेत्। वैतालव्रतिको न स्यान्न वकव्रतिकोऽपि च।।६१।।
धर्म्मध्वजी च्छद्महिंसी शठोऽधोदृष्टिकश्च वा। नृत्यं गीतञ्च वाद्यञ्च न कुर्य्याद् यशसे द्विज।।६२।।
चिकित्सकस्य भिक्षोश्च तथा वार्द्धुषिकस्य च।
पाषण्डस्य च नैवान्नं भुञ्जीत नास्तिकस्य च।।६३।।

नैकः सुप्याच्छून्यगेहे सुप्तं नैव प्रबोधयेत्।।६४।।

तब तीर्थस्नान, साधुसंग, देवाराधन, पुराण श्रवण करे, तथा मिष्टान्न भोजन अन्य को कराये तथा स्वयं भी करे। राजदर्शन, कलह न करना, मैथुन न करना, नदी पार करना तथा आमिष भोजन त्याग करे। पृथिवी खोदना वर्जित है। वस्त्र किंवा क्षार से दान्तों को न धोये। गौ (बैल) को दिन में न (मध्याह्न में) जोते। हे जाबाल! इसके विपरीत करने से व्यक्ति नारकीय होगा। गृहस्थ घर का राजा है, तथापि वह अन्य का अपमान न करे। क्योंकि गृहस्थ ही गृहस्थाश्रमस्थ नौकर, पुत्र आदि का दण्डविधायक है। द्विजगण सूर्य की काल सन्ध्या के समय भोजन न करे। (त्रिसन्ध्या के समय भोजन न करें)। वे कदापि व्यर्थ चेष्टा तथा व्यर्थ बातें न कहें। वृद्धा तथा युवती को भी वस्त्ररहित न देखे। जो विरक्त नहीं है, ऐसे व्यक्ति का लिंग न देखे। स्त्रियों को भी लिंग न दिखाये। स्त्री के प्रति पशुवत् व्यवहार न करे। वेताल प्रतीक तथा कर प्रतीक न बने। धर्मध्वजी, छद्म वेषधारी साधु, शठ तथा वार्द्धुषिक[1] न बने। ब्राह्मण केवल यश प्राप्ति हेतु कदापि नृत्य-गीत-वाद्यवादन न करे। चिकित्सक, भिक्षुक, व्याज से जीविका चलाने वाला, पाखण्डी तथा नास्तिक का अन्न न खाये। एकाकी निर्जन में शयन न करे। सोये व्यक्ति को न जगाये।।५५-६४।।

यस्या योनिर्व्यावृत्ता स्यात्तथा वाश्वखुराकृतिः। तां नोपगच्छेद्वनितां पर्णाकृतिभगां व्रजेत्।।६५।।

तस्यां पुत्रः समुत्पन्नो धर्म्मकामार्थ कृद्भवेत्। सुलक्षणेन पुत्रेण हेतुना भाग्यवान् पुमान्।।६६।।

औरसः क्षेत्रजो दत्तः कृत्रिमो गूढसम्भवः। अपविद्धश्च कानीनः सहोढः क्रीत एव च।।६७।।

पौनर्भवः स्वयं दत्तः शौद्रो द्वादश पुत्रकाः। दायादा आदिमाः षट् स्युर्लघुत्वञ्चोत्तरोत्तरम्।।६८।।

विधिसंस्कारलब्धायां भार्य्यायां जात औरसः। स्वक्षेत्रे परशुक्रेण जनितः क्षेत्रजः सुतः।।६९।।

आपत्काले पितृभ्यान्तु दत्तोऽद्भिर्दत्त उच्यते। परपुत्रः स्वपुत्रत्वे कल्प्यते स तु कृत्रिमः।।७०।।

अज्ञातजन्मा स्वगृहे उत्पन्नो गूढजोऽस्य सः। मात्रा पित्राथवोत्सृष्टो गृह्यते सोऽपविद्धकः।।७१।।

कन्यया जनितः पुत्रः कानीनः पितृवेश्मनि। पुत्रार्थदत्तकन्यायाः सुतः कन्यापितुः स च।।७२।।

गर्भिण्या दैवलब्धायाः संस्कर्त्तुः स्यात् सहोढकः।
मूल्यक्रीतस्त्वपत्यार्थे पुत्रः स क्रीत उच्यते।।७३।।

नार्य्या पत्यन्तरं कृत्वा कृतः पौनर्भवः सुतः। स्वयं यः पुत्रतामेति स्वयं दत्तः परस्य सः।।७४।।

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः शौद्रः पारशबः स्मृतः।
कल्प्यापविद्धक्रीताद्याः पञ्चवर्षाधिकाः कृताः।।७५।।

न भवन्ति हि ते पुत्रा भरणार्थास्तु केवलम्। संस्कारेणापि चैकेन स्वयं दत्तस्य पुत्रता।।७६।।

जिस स्त्री की योनि अधोदिक् से आवृत्त है, अथवा नेत्र जैसी है, जिसका भग पत्राकृति है, ऐसी नारी से भोग न करे। ऐसी नारी के गर्भ से उत्पन्न सन्तान धर्म-काम का हरण कर लेता है। सुलक्षणता पुत्र कामी पुरुष का पुण्य ही (पुत्ररूपेण) प्रकाशित होता है। पुत्र १२ प्रकार के कहे गये हैं। यथा—औरस, क्षेत्रज, दत्त, कृत्रिम, गूढ़संभव, अपविद्ध, कानीन, सहोढ़, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त, शौद्र। इनमें प्रथम छः पुत्र पैत्रिक धन के अधिकारी हैं। क्रमशः

१. वार्द्धुषिक—जो कम मूल्य में धन लेकर अधिक मूल्य में बेचता है।

प्रथम का बाद वाले से लघुत्व है। जैसे **औरस** से क्षेत्रज लघु है। उससे दत्त लघु है। इत्यादि! यथाविधि विवाह संस्कार से प्राप्त भार्या से उत्पन्न पुत्र **औरस** है। स्वक्षेत्र (स्वपत्नी से) में अन्य के शुक्र से उत्पादित पुत्र **क्षेत्रज** है। आपात्काल में माता-पिता द्वारा संकल्प से दिया पुत्र **दत्त** है। परपुत्र को अपना पुत्र मान लेना **कृत्रिम** पुत्र है। जिसका जन्म अज्ञात हो, ऐसा अपने घर में पैदा पुत्र **गूढ़ज** है। माता-पिता द्वारा दत्तक के रूप में गृहीत पुत्र **अपविद्ध** है। पिता के घर में अविवाहित कन्या का उत्पन्न पुत्र **कानीन** है। (ऐसे पुत्र का पिता रूप कन्या का पिता ही माना गया है)। दैव से प्राप्त गर्भिणी के संस्कर्त्ता का पुत्र **सहोढ़** कहा गया है। धन देकर खरीदा पुत्र **क्रीत** कहा जाता है। जो नारी पति के रहते अन्य को पति बनाकर पुत्र उत्पन्न करती है, वह **पौनर्भव** है। जो बालक स्वयं को किसी का पुत्र मान ले, वह **स्वयंदत्त** है। ब्राह्मण पुरुष द्वारा शूद्रागर्भोत्पन्न पुत्र को **शौद्र** (पारशव) कहा गया। कल्पनीय पुत्र यदि ५ वर्ष से अधिक आयु के समय लिया गया हो, वह प्रकृत पुत्र नहीं कहा जायेगा। एकमात्र संस्कार बल से स्वयंदत्त में पुत्रत्व होता है।।६५-७६।।

सोदराणान्तु भ्रातृणां पुत्रिणैकतरेण वै। पुत्रवन्तस्तु सर्व्वे स्युरेकपत्न्यस्तथा स्त्रियः।।७७।।
पुत्रेष्वेतेषु यः प्रोक्त औरसः पितृदायभाक्। शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम्।।७८।।
शुक्रं ब्रह्महबिः प्रोक्तं कामाग्निगलितं भवेत्। विवाहसंस्कृतायान्तु नार्य्यां कामानले क्षिपेत्।।७९।।
फलन्तस्य सुतोत्पत्तिः पावनी पुनरिष्टिदा। अयोनौ परयोनौ च तस्मात् शुक्रं न निक्षिपेत्।।८०।।
शुक्रव्यंय वाग्व्ययञ्च नैव कुर्य्याद्वृथा क्वचित्। भगलिङ्गादिशब्दञ्च नोच्चरेत् परगोचरम्।।८१।।
उच्चरेदाश्विने मासि महापूजादिनेषु हि। मातृणाञ्च सुतानाञ्च समीपे न तदापि च।।८२।।
अशक्तिदीक्षितायाश्च शिष्यायांः सन्निधौ न च। देवी हि भगरूपैव भगलिङ्गरसप्रिया।।८३।।
तस्मात्तत्प्रियकाम्यायै तत्पूजार्हस्तथा वदेत्।।८४।।
जननी गुरुपत्नी च ज्येष्ठसोदरपत्निका। श्वश्रूर्ज्येष्ठसोदरा च पितृव्यस्त्री च मातुली।
मातुः पितुः स्वसारौ च नवेमामातरः स्मृताः।।८५।।

जहां सहोदर भ्राता में एक को ही पुत्र हो, अथवा किसी की अनेक पत्नियों में एक को ही पुत्र हो, तब उस एक से ही सभी भ्राता पुत्रवान होंगे तथा अनेक पत्नियां पुत्रवती मानी जायेंगी। इन १२ प्रकार के पुत्रों में केवल औरस पुत्र ही पैतृक धन का भागी होगा। बाकी पुत्रगण आनृशंस्यार्थ जीवनवृत्ति प्राप्त करें। शुक्र ही ब्रह्म है, जो कामरूपी अग्नि के संयोग से गलित होता है। विवाह संस्कार संस्कृत नारी के उस कामरूप अनल (अग्नि) में शुक्र छोड़े। इससे पवित्र अभीष्टप्रदा पुत्रोत्पत्ति होती है। अतः परयोनि तथा योनिरहित स्थान में शुक्र निःक्षेप न करे। वृथा शुक्र व्यय तथा वृथा वाणी व्यय कभी न करे। भग-लिङ्गादि शब्दों का उच्चारण न करे। माता-कन्या तथा जो शिष्या शक्तिमन्त्र से दीक्षित नहीं है, उनके समक्ष भी इन शब्दों का उच्चारण नहीं करना चाहिए। देवी भगवती स्वयं भगलिंग रसप्रिया हैं। अतः उनकी प्रसन्नता हेतु उनके पूजाकाल में ही इन भग-लिङ्ग शब्द का उच्चारण किया जा सकता है। जननी-गुरुपत्नी-ज्येष्ठ भाई की पत्नी-सास-बड़ी बहन, ताई-मामी-मातृष्वसा-पितृष्वसा को माता कहते हैं।।७७-८५।।

पुत्री कनिष्ठसोदर्य्या पुत्रभार्य्या तथैव च। कनिष्ठसोदरस्त्री च शिष्या पुत्रबधूस्तथा।।८६।।
भ्रातुष्पुत्री भागिनेयी नवमी शरणागता। सुताः पर्य्यायतस्त्वेताः स्नेहशासनभाजनम्।।८७।।

अष्टादशस्त्रियश्चैता याश्च तच्छब्दभाषिताः। अकामसम्मताश्चापि पतेदुपगतः क्षणात्॥८८॥
म्लेच्छाश्च यवनीश्चैव गत्वा जात्याः परिच्यवेत्। कौलोप्येतासु सङ्गम्य देवताशापमाप्नुयात्॥८९॥
दुरूहं शक्त्यनुष्ठानं तत्र मुह्यन्ति शूरयः। अलङ्घ्यं शिववाक्यञ्च योगपन्थानमुत्तमम्॥९०॥
तस्माद्योगप्रियां देवीं भजन् कुर्व्वन्नदोषभाक्। त्रिषु भावेषु यो भावो वैष्णवक्रम इष्यते॥९१॥
भावः पापक्षयायासौ प्रथमः परिकल्प्यते। कल्प्यते मध्यमो भाव स्तत्रानुष्ठानभूतयः॥९२॥
भजतां यत्नसम्पन्ना भवन्तीष्टप्रपूर्त्तये। दिव्यस्तृतीयो भावो यस्तत्रानुष्ठानभूतयः॥९३॥
भवन्त्ययत्नसम्पन्ना देवतालाभकारणम्। तस्माद्धर्म्मं परं सूक्ष्मं बुध्यमानोहि सर्व्वदा॥९४॥
कर्म्म देवपराणां हि न प्रशंसेन्नगर्हयेत्। अधर्म्मवत् प्रकाशन्तो न लङ्घयेरंस्तु सत्पथाः॥९५॥

कन्या, छोटी बहन, पुत्रवधू, भाई की कन्या, भांजी, कनिष्ठ भ्राता की पत्नी, शिष्या, पुत्र की असवर्ण जातीय पत्नी, शरणापन्न नारी को कन्या कहते हैं। इनके प्रति स्नेह तथा शासन करे। ये ९ प्रकार की कन्या तथा माता एवं जिन-जिन को माता एवं कन्या शब्द से पुकारा जाये, इन सबसे जो इनकी इच्छा से भी भोग करेगा, वह तत्क्षण पतित होगा। म्लेच्छ नारी तथा यवन नारी से भोग करने वाला जाति से बहिष्कृत माना जाता है। इस घोर कलियुग में भी इनके साथ भोग करना दैवशाप से शापित होना है। शक्तिपूजा अत्यन्त दुरूह है। वीराचारी भी इस विषय में मुग्धवत् हो जाते हैं। शिववाक्य कदापि लंघनीय नहीं है। योगमार्ग सर्वोत्तम है। अतः जो योगप्रिय भगवती की उपासना करता है, वह यदि उक्त सभी विहित कार्य करे, तब दोषी नहीं होता। इस संसार में भावत्रय कहे गये हैं। इनमें वैष्णव क्रमरूप भाव पापक्षय कारक हैं। मध्यम भाव का आश्रय लेने पर अनुष्ठान प्रचुर यत्नसाध्य है तथा उससे इष्ट एवं पूर्त्ति दोनों प्राप्त होते हैं।

तृतीय है दिव्य भाव। यह अयत्न साध्य अनुष्ठान वाला है। यह देवता प्राप्ति का कारण रूप है, अतः धर्म परम सूक्ष्म है। यह संसार वध्यमान है। अतएव सूक्ष्म परधर्म की निन्दा किंवा प्रशंसा न करे। अधर्म को व्यक्त करते हुए कदापि सत्पथ का अतिक्रमण न करे।।८६-९५।।

यथारुचि भवेत्सर्व्वा देवता फलतः समाः। भजन्नेकां परां निन्दन् भजते नरकाय तत्॥९६॥
विप्रः स्वरक्तैर्मद्यैश्च मनुष्यवलिना शिवाम्। नार्च्चयेन्मत्स्यमांसाभ्यां काले शास्त्रनिषेधिते॥९७॥
न रात्रौ दधि भुञ्जीत तिक्तशक्तुतिलांस्तथा। न कुर्य्यान्मन्त्रणां दानं प्रणामञ्चाशिषां वचः॥९८॥
कर्णनासिकयोः काष्ठं कण्डूतिं नापि चाचरेत्। उच्चैःशब्देन चाह्वानं परनिन्दनमेव च॥९९॥
एतानि किल कर्म्माणि रात्रौ नैवाचरेद्बुधः। शयनं मैथुनं स्त्रीभिः परिहासं दिनेषु च॥१००॥
न कुर्य्याद्वारुपादाभ्यां रक्ताभ्यामथ निर्गमम्। कुर्य्यात् गृहस्थः सर्व्वेषां देवानामुत्सवक्रियाम्॥१०१॥
प्रत्यहं सर्व्वदेवानां पूजा कार्य्या यथामति। सर्व्वं देवार्पणं कुर्य्याद् गृहस्थः सर्वगैहिकम्॥१०२॥
एवं ते कथिता धर्म्मा गृहस्थानां द्विजोत्तम। वानप्रस्थभिक्षुकयोः शृण्वाचारान् यथामति॥१०३॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे उत्तरखण्डे गृहधर्म्मकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः।।



जिसकी जिधर रुचि बने, वह उसी देवता का आश्रय ग्रहण करे। सभी देवता समान रूपेण फलद होते हैं। जो व्यक्ति एक देवता का आश्रय लेता है, वह कदापि अन्य देवता की निन्दा न करे। वह ऐसा करके नरकगामी होता है। जब शास्त्र ने निषेध किया हो, उस तिथि तथा समय पर विषयासक्त मानव मद्य-मांस-मत्स्य, नरबलि द्वारा शक्ति उपासना न करे। रात्रि में दधि-तिक्त खाद्य-सत्तू-तिल भक्षण न करे। नति-प्रणति-दान-आशीर्वाद न प्रदान करे। कान-नासिका को रात्रि में खुजलाना अथवा लकड़ी से खोदना वर्जित है। ऊंचे शब्द से किसी को न पुकारे न पराई निन्दा करे। रात में धीमान् व्यक्ति यह सब त्यागे। दिन में स्त्रियों से परिहास, शयन, मैथुन न करे तथा रक्तपाद से (?) बाहर न जाये। गृहस्थ व्यक्ति सभी देव-देवी का उत्सव मनाये। नित्य सभी देवगण की पूजा-उत्सव करे तथा सभी ऐहिक कर्मों का फल देवता को अर्पित करे। हे द्विजोत्तम! यह गृहस्थ धर्म है, जिसका वर्णन मैंने कर दिया। अब मैं वानप्रस्थ तथा भिक्षुक का आचार कहता हूं। सुनो।।९६-१०३।।

।।षष्ठ अध्याय समाप्त।।



सप्तमोऽध्यायः

वानप्रस्थ एवं यतिधर्म वर्णन

व्यास उवाच

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः। अपत्यस्यैवचापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।।१।।
मार्कण्डेयपुराणस्थं चण्डीसप्तशतीस्तवम्। गीताशास्त्रं भारतीयं विप्रः सर्व्वाश्रमे पठेत्।।२।।
अकुर्वन्नीदृशं कर्म्म वृथाजन्मत्वमाप्नुयात्। चण्डीं गीतां हरेर्न्नाम गङ्गास्नानं तथाद्रियन्।।३।।

विरक्तो ग्राम्यमाहारं त्यक्त्वा चैव परिच्छदम्।
पुत्रेशु भार्य्यां निःक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा।।४।।

मुन्यन्नैर्व्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन च। एतानेव महायज्ञान्निर्व्वपेद्विधिपूर्व्वकम्।।५।।

प्रातःस्नायी क्षीरवासा जटाश्मश्रुनखान्वितः।
स्वाध्यायैर्नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः।।६।।

वैतानिकञ्च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि। दर्शमस्कन्दयन् पर्व्व पौर्णमासञ्च योगतः।।७।।
ऋक्षेष्ट्याग्रयणञ्चैव चातुर्म्मास्यानि चाहरेत्। उप्त्वा चरु पुरोडाशान् हुत्वा देवेभ्य एव च।।८।।
शेषमात्मनि युञ्जीत लवणञ्च स्वयं कृतम्। नक्तञ्चान्नं समश्नीयाद्दिवा वाहृत्य चासकृत्।।९।।

व्यास कहते हैं—जब गृहस्थ स्वयं को बाल श्वेत होते, शरीर में झुर्री पड़ते देखे तथा पुत्र का भी पुत्र उत्पन्न देख ले, तब वह अरण्याश्रम ग्रहण करे। ब्राह्मण वहां रह कर (सभी आश्रमों में) मार्कण्डेय पुराणोक्त दुर्गा सप्तशती, श्रीमद्भगवद्गीता, महाभारत पाठ करे। सप्तशती, गीता पाठ, गंगास्नान तथा हरिनाम से जो रहित है, उसका जन्म

व्यर्थ हो गया! ग्राम्य आहार तथा परिच्छद त्याग कर वीतराग होकर पुत्र पर अपनी पत्नी का भार अर्पित करके अथवा पत्नी के साथ वन चला जाये। नाना प्रकार के मुनिजन योग्य आहार तथा शाक-मूल-फल से जीवनयापन करे तथा यथाविधि यज्ञानुष्ठान करे। प्रातःस्नान, जटा-वल्कल धारण, नख-दाढ़ी बढ़ाना, सर्वभूत समूह से मैत्री, शीतोष्ण दुःख सहना, चित्त की एकाग्रता करके वेदाध्ययन तत्पर रहे। यथाविधान वैतानिक अग्नि में आहुति प्रदान करे। दर्शपौर्णमास याग, नक्षत्रयज्ञ, नवशस्येष्टि, चातुर्मास याग अनुष्ठान करे। चरु तथा पुरोडाश देवता हेतु प्रदान करे। अन्त में स्वयं बनाया लवण भक्षण करे। दिन में एकत्र करके रात में मात्र एक बार आहार करे।।१-९।।

अप्रयत्नसुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः। शयनेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः॥१०॥
गृहमेधिषु विप्रेषु तापसारण्यवासिषु। ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान् वने वसन्॥११॥
अपराजिताञ्चास्थाय दिशं गच्छेदजिह्मगः। आनिपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्य्यनिलाशनः॥१२॥
तृतीयमायुषो भागं विहृत्यैवं वनेषु तु। चतुर्थमायुषो भागं स्नात्वा सङ्गं परित्यजेत्॥१३॥
आश्रमादाश्रमं गच्छेद्धुतहोमो जितेन्द्रियः। ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्॥१४॥
अधीत्य वेदानुत्पाद्य पुत्रान् कृतवनाश्रमः। दृष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्॥१५॥
अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य सुतानपि। अनिष्टा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन् व्रजत्यधः॥१६॥

सुख पाने का यत्न न करे। स्त्री सम्भोग से दूर रहे। भूमि पर शयन करे। गृह से ममतारहित रहे। वृक्षमूलाश्रय ले। फल-मूल का अभाव होने पर तापस ब्राह्मण से मांगे। वे न हों, तब वनवासीगण, गृहस्थ ब्राह्मण से भिक्षा ग्रहण करे। वन में मात्र आठ ग्रास भोजन करे। असाध्य रोग से आक्रान्त स्थिति में ईशान कोण में जाकर योगतत्पर हो जाये तथा जब तक मृत्यु न हो, तब तक मात्र जल एवं वायु भक्षण द्वारा देहपात करे। इस प्रकार परमायु (१००) वर्ष के तृतीय भाग (७५ वर्ष) आयु तक वन में व्यतीत करके चौथे भाग में समस्त संग का त्याग करके सन्यासाश्रम वरण करे। तब अग्निहोत्र का समापन करके ऋणत्रय शोधन करके मोक्षसाधन परिव्रजाश्रम में मनोनिवेश करे। ब्रह्मचर्याश्रम में वेदाध्ययन, गृहस्थाश्रम में पुत्रोत्पादन तथा वानप्रस्थ में यज्ञानुष्ठान करके वानप्रस्थाश्रमोपरान्त इस चतुर्थाश्रम में निरत हो जाये। द्विजगण वेदाध्ययन, पुत्रोत्पादन तथा यज्ञानुष्ठान किये बिना मोक्ष चाहने पर सीधे नरक जाते हैं।।१०-१६।।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्। आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात्॥१७॥
एक एव चरेन्नित्यं सिद्धिमेकस्य लक्षयन्। कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता॥१८॥
समता चैव सर्वत्र एतन्मुक्तस्य लक्षणम्। मृत्युं वा जीवितं वापि नाभिनन्देत् कदाचन॥१९॥

सर्वस्व दक्षिणा के साथ प्रजापति याग करके ब्राह्मण गृह से प्रवज्या ग्रहण करे। सर्व संग रहित होने से मोक्ष मिलता है। अतः मोक्षार्थ एकाकी विचरण करना चाहिए। मिट्टी का भिक्षापात्र, वृक्ष के नीचे निवास, कौपीनादि वस्त्र, संगत्याग तथा शत्रु-मित्र में समानता आदि मुक्त व्यक्ति के लक्षण हैं। जीवन की तथा मृत्यु की कामना भी न करे।।१७-१९।।

सत्यपूतां वदेद्वाचं दृष्टिपूतं न्यसेत्पदम्। वस्त्रपूतं पिवेदम्भो मनःपूतं समाचरेत्॥२०॥
अभिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन। न चैनं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित्॥२१॥

अतजसानि पात्राणि तस्य स्युरव्रणानि च। अलावुं दारुपात्रञ्च मृण्मयं वैदलन्तथा॥२२॥
एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥२३॥
एककालञ्चरेत् भैक्ष्यं न प्रसज्येत विस्तरे। भैक्ष्ये प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जते॥२४॥
विधूमे वरमूषले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने। वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत्॥२५॥
अतिपूजां तथालाभं गौरवं निन्दनन्तथा। इच्छन् यतिर्याति पापमिन्द्रियाणां सुखस्पृहाम्॥२६॥
निमन्त्रितो ब्राह्मणेन भिक्षां कुर्वीत वै यतिः। अनिमन्त्रणतो वापि गृहस्थैः पूजितो भवेत्॥२७॥

सत्यपूत वाक्य कहे, सावधानी से पैरों को रखे। मन से पवित्र होकर रहे। अपमान सहन करे। किसी की अवज्ञा न करे। इस नश्वर देह के रहते किसी से विवाद न करे। वह भिक्षापात्र को छिद्ररहित रखे। तैजस पात्र न रहे। अलाबू (लकड़ी) दारु, मृत्तिका तथा बांस निर्मित पात्र को अतिथियों का भिक्षापात्र मनु ने कहा है। एक ही बार भिक्षा करे। अनेक बार न करे। प्रचुर भिक्षा ग्रहण न करे। प्रचुर भिक्षा से विषयासक्ति होती है। जब घर से अन्न पकाने हेतु जला चूल्हा बुझ जाय, ऊखल-मूसल की ध्वनि बन्द हो जाये, घर से पाकशाला का धुआं न उठे, तब जब कि गृहस्थों के सभी सदस्य भोजन कर लें तथा उच्छिष्ट पात्रादि हटाये जाने लगें, तभी भिक्षा मांगने जाना चाहिए। आदर, लाभ, गौरव, निन्दा, सुखेच्छा से यति व्यक्ति पापी हो जाता है। यदि ब्राह्मण द्वारा निमंत्रित होकर भिक्षा करे अथवा अनिमन्त्रित गृह से भिक्षा ले, सभी जगह गृहस्थ यति की पूजा करते हैं।।२०-२७।।

प्राणायामैर्ददहेद्देहं धारणाभिश्च किल्विषम्। प्रत्याहारेण संस्पर्शान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥२८॥
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम्। रजस्वलमनित्यञ्च भूतावासमिमं त्यजेत्॥२९॥
प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम्। विमृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम्॥३०॥

प्राणायाम द्वारा सभी दोष दग्ध करे। धारणादि से पाप नष्ट करे। विषयों से इन्द्रियों को निवृत्त करे। "सोऽहमस्मि" चिन्तन द्वारा षड्रिपुदमन करे। जरा-शोक से आक्रान्त, व्याधिगृह, क्षुधा-पिपासा से कातर रजः युक्त अनित्य पाञ्चभौतिक देह का त्याग करे। ब्रह्मज्ञानी अपना सुकृत स्वजनों में तथा दुष्कृत्य शत्रुओं में निःक्षेप करके ध्यान योग द्वारा ब्रह्मलीन हो जाते हैं।।२८-३०।।

गृहस्थस्य गृहे तिष्ठेद्गोदोहमात्रकालतः। तेन दत्तञ्च भुञ्जीत मधुमांसविवर्जितम्॥३१॥
त्यजेदसत्कथां नित्यं क्रीड़ाञ्च परनिन्दनम्। तीर्थसेवा देवपूजा दिवाकालं प्रयापयेत्॥३२॥
अयं भिक्षुविधिं प्रोक्तो जावाले तुभ्यमुत्तमः। ध्यानिकं सर्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दितम्॥३३॥
गृहस्थप्रभवद्वारा आश्रमाः सर्व एव हि। सर्वेषामाश्रमाणां हि गृहस्थः श्रेष्ठ उच्यते।
तेषां हि सेवया गेही तद्गतिं समवाप्नुयात्॥३४॥
यथा नद्यो नदाश्चापि सागरं यान्ति संस्थितिम्।
एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थं यान्ति संस्थितिम्॥३५॥
यथा समुद्रमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति भिक्षुकाः॥३६॥

यती व्यक्ति मात्र गोदोहन काल पर्यन्त ही गृहस्थ गृह में रुके। मधुमास रहित ईंगुरी फलादि उत्पन्न स्नेह भोजन

करे। असत् वार्त्ता, क्रीड़ा, परनिन्दा का त्याग करे। दिन में तीर्थ सेवा तथा देवपूजा करे। हे जाबालि! तुमसे भिक्षुक का यह उत्तम विधान कहा। पुत्रादि का ममत्व त्याग कर और जो करणीय है, वह सब कहा। यह सब आत्मा-परमात्मा के अभेद चिन्तन से ही होता है। ब्रह्मचर्य आदि चतुराश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित है। अतः वही सर्वोत्तम है। गृहस्थ व्यक्ति उनकी सेवा से (तीनों आश्रमों की सेवा से) सद्गति पाता है। जैसे नद-नदी सभी समुद्र में जाकर स्थित होते हैं, वैसे सभी आश्रम वाले गृहस्थों की सहायता से स्थित हैं। जैसे जल-जन्तुगण समुद्राश्रय लेकर जीते हैं, वैसे ही भिक्षुक वर्ग गृहस्थ का आश्रय लेकर जीवन धारण करते हैं।।३१-३६।।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। ह्रीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म्मलक्षणं।।३७।।
एवं सन्न्यस्य कर्म्माणि स्वकार्य्यपरमोऽस्पृहः। सन्न्यासे नापहत्येनः प्राप्नोति परमां गतिम्।।३८।।
न सन्न्यासात् परो धर्म्मो वर्त्तते मुक्तिकारणम्। ब्रह्मक्षत्रविशाञ्चैव सन्न्यासधर्म्म इष्यते।।३९।।
विशेषतः कलौ धर्म्मः सन्न्यासाख्यो हि दुर्घटः।।४०।।
एष ते कथितो धर्म्मो यतीनां द्विजपुङ्गव। श्रोतुमिच्छसि जावाले किमन्यद्वदतो मम।।४१।।

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे उत्तरखण्डे वानप्रस्थयतिधर्म्मकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः।।



सन्तोष, क्षमा, शीतोष्णादिद्वन्द्व में सहिष्णुता, अस्तेय, इन्द्रियनिग्रह, शास्त्र तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान, सत्यकथन, क्रोधत्याग—ये १० धर्म लक्षण हैं। जब भिक्षु (सन्यासी) कर्मफल त्याग करके निःस्पृह होकर आत्मसाक्षात्कार निरत हो जाता है, तब उसके पाप नष्ट होते हैं। उसे मोक्ष मिलता है। मुहूर्त्तपर्यन्त के सन्यास द्वारा जब परम प्राप्ति होती है, तब सन्यास की अपेक्षा मुक्ति का कारण अन्य कोई नहीं है। यह सन्यास ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य का भी धर्म है, तथापि कलिकाल में अति दुर्घट है। हे द्विजप्रवर जाबालि! यतिगण का धर्म कह दिया। अब और क्या सुनने की इच्छा है? कहो।।३७-४१।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।



अष्टमोऽध्यायः

स्त्री धर्म वर्णन

जावालिरुवाच

स्त्रीधर्म्मान् वद मे ब्रह्मन् वेदव्यास जगद्गुरो। यद्यच्चरित्रं तासां हि स्त्रीणां भवति तद्वद।।१।।

जाबालि कहते हैं—हे ब्रह्मन्! जगद्गुरु वेदव्यास! अब स्त्रियों का धर्म तथा चरित्र विषयक प्रसंग सुनने की इच्छा है। कृपया कहें।।१।।

व्यास उवाच

अस्वतन्त्रा भवेन्नारी सलज्जा स्मितभाषिणी। अनालस्या सदा स्निग्धा मितवाग्लोभवर्जिता॥२॥
नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्। पतिं शुश्रुषते या तु सैव स्वर्गे महीयते॥३॥
मृते भर्त्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता। स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥४॥
अपत्यलोभाद्या स्त्री तु भर्त्तारमतिवर्त्तते। सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते॥५॥
एक एव हि नारीणां पतिर्विप्रोपदृश्यते। उत्कृष्टमपकृष्टम्बा नैव नारी पतिं त्यजेत्॥६॥
सधवानां हि नारीणां नोपवासादिकं व्रतम्। पत्याज्ञया चरेद् यत्तु तत्तु तासां व्रतं परम्॥७॥
मृतं पतिञ्चानुमृतिं कुर्य्यान्नारी पतिव्रता। महद्भ्योपि च पापेभ्यः पतिमुत्तारयेत्तु सा॥८॥

व्यासदेव कहते हैं—स्त्री कभी स्वाधीन न रहे। लज्जालु, स्मितभाषिणी, आलस्यहीना, शान्त प्रकृति, परिमित बोलने वाली तथा लोभरहित रहे। स्त्री के लिये अलग से यज्ञ-उपवास-व्रत विहित नहीं है। उसके लिए पति सेवा परम धर्म है। यही स्वर्ग फलप्रद है। पति मृत होने पर जो नारी ब्रह्मचारी रहती है, पुत्र-सन्तान का असद्भाव होने पर भी उसे ब्रह्मचारी की तरह स्वर्गलाभ होता है। जो सन्तान लाभ होने पर पति का अतिक्रमण करती है, वह इहलोक में निन्दित होकर पतिलोकच्युत होती हैं। नारीगण की एकमात्र गति है पति। अतः पति के उत्कृष्ट किंवा अपकृष्ट होने पर भी उसका त्याग न करे। सधवा स्त्री लोक हेतु उपवासादि व्रत नहीं है। वह पति के आदेश से जो करेगी, वही परम व्रत है। पतिव्रंता नारी मृत पति के साथ ही देहत्याग करके महापातकों से पति को मुक्त कर देती है।।२-८।।

नातः परतरं कर्म्म योषितां विद्यते द्विज। यतो मन्वन्तरं कालं मोदते पतिना दिवि॥९॥
पत्युश्चिरमृतस्यापि प्रियद्रव्येण तन्मनाः। प्रविश्याग्निञ्चानुमृता तथागतिमवाप्नुयात्॥१०॥
विधवानां हि नारीणां ब्रह्मचर्य्यं सदैव हि। न गृह्णीयाद्रक्तवर्णं न खट्वां मैथुनं न च॥११॥
पतिपुत्रविहीना तु नार्य्यवीरा हि कथ्यते। अवीरा च द्विधा प्रोक्ता दत्तादत्ता च भेदतः॥१२॥
अदत्तायास्तु नान्नादि गृह्णीयान्मानवः क्वचित्। दत्तायास्तु हि गृह्णीयात् सम्बन्धगौरवं यदि॥१३॥
दन्तुरा विरलाङ्गा च भालोच्चा विरलस्तना। दीर्घा च त्यक्तलज्जा च स्त्रीयं वैधव्यलक्षणा॥१४॥
कौटिल्यञ्चापि मौखर्य्यं ज्ञेयं स्त्रीषु च तासु हि। इमे धर्म्माश्च कथिताः स्त्रीणां हि द्विजसत्तम॥१५॥
ब्रह्मविष्णवादिदेवानां पूजाधर्म्मान् शृणुष्व ह॥१६॥

।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे उत्तरखण्डे वानप्रस्थयतिधर्म्मकथनं नाम अष्टमोऽध्यायः।।



हे द्विज! अनुमरण (पति के साथ सहमरण) की अपेक्षा स्त्री हेतु उत्तम कोई कर्म नहीं है। ऐसी स्त्री एक मन्वन्तर पर्यन्त पति के साथ स्वर्ग में मुदित होती रहती है।

पति के चिरकाल पहले मृत हो जाने पर भी जो पति की प्रिय वस्तु के साथ अग्नि प्रवेश करती है, उसकी भी पूर्ववर्णित गति होती है। विधवा नारी सदा ब्रह्मचर्य पालन करे। वह लाल वस्त्र न पहने। खाट पर शयन करना

तथा मैथुन त्याग करे। जो नारी पति-पुत्र दोनों से रहित है, वह अवीरा है। दत्ता तथा अदत्ता भेद से अवीरा दो प्रकार की होती है। मानव कभी भी अदत्ता का अन्न न खाये। सम्बन्ध गौरव रहने पर दत्ता अवीरा का अन्न ग्रहण कर सकते हैं। दांत तथा कपाल की उच्चता, अंगविकलता, स्तन विरलता (स्तन का न होना), दैन्य-लज्जा का अभाव नारी का वैधव्य लक्षण है। यह जिसमें रहता है, वे स्त्रियां प्रायः कुटिल एवं मुखरा होती हैं। हे द्विजप्रवर! स्त्रीगण का धर्म कहा। अब ब्रह्मा-विष्णु आदि देवगण का धर्म सुनो।।९-१६।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।



नवमोऽध्यायः

पूजा विधान

व्यास उवाच

सर्व्वमङ्गलकार्य्येषु गणे (शार्क्कार्च्युताम्बिकाः। शिवञ्च पञ्चदेवान् वै पूजयेयुर्यथाविधि।।१।।
इन्द्रमग्निं यमञ्चैव नैर्ऋतं वरुणं तथा। वायुं कुबेरमीशानं ब्रह्मानन्तौ च पूजयेत्।।२।।
सूर्य्यं सोमं कुजं सौम्यं गुरुं शुक्रं शनैश्चरम्। राहुं केतुञ्च संपूज्य ततः) कर्म्म समारभेत्।।३।।
अवश्यमेते पूज्या वै सर्वकर्म्मसु सर्वशः। यदा यस्य व्रतविधौ पूजा भवति कारिता।
तदामीषां विधायाच्चर्चां पुनस्तत्पूजनं चरेत्।।४।।
अथाविघ्नव्रतं देव कथयामि शृणुष्व तत्। गणेशव्रतमाश्चर्य्यं चतुर्थ्यां मासि फाल्गुने।।५।।
नक्ताहारेण राजेन्द्र तिलान्नपारणं स्मृतम्। तेनैवाष्टाहुतीः कुर्य्यात्तान् दद्याद् ब्राह्मणाय च।।६।।
चतुर्म्मासं व्रतञ्चैतत् कृत्वा तु मासि पञ्चमे। हैमं गणेशं कृत्वा तु ब्राह्मणाय प्रदापयेत्।।७।।
आयसैः पञ्चभिः पात्रैरुपेतं सतिलैस्तथा। एवं कृत्वा व्रतं विप्र विघ्नसंघैः प्रहीयते।।८।।

व्यास कहते हैं—मानव सभी मंगल कार्यों में गणेश, सूर्य, विष्णु, अम्बिका, शिव रूप पंचदेवता की विधिवत् पूजा करें। इन्द्र-अग्नि-यम-नैर्ऋत-वरुण-वायु-कुबेर-ईशान-ब्रह्मा-अनन्त इन १० दिक्पाल की पूजा करें। सूर्य-सोम-मंगल-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनि-राहु-केतु की पूजा करके तब प्रधान कार्य प्रारम्भ करे। सभी कार्य में इनकी पूजा की जाये। जब जिस व्रत में जिस देवता की पूजा करनी हो, तब उनकी पूजा के पश्चात् तब उस देवता की पूजा करे। तंदनन्तर अविघ्न व्रत की कथा कहता हूं, सुनें। इस गणेश व्रत (अविघ्न व्रत) को फाल्गुन चतुर्थी के दिन किया जाता है। इसमें रात्रिभोजन, तिलान्न पारण, तिल की अष्टाहुति तथा ब्राह्मण को तिलान्न दान प्रदान करे। यह व्रत करने वाला ४ मास की चतुर्थी को ऐसे विधान से कार्य करके पञ्चम मास में गणेश की स्वर्ण प्रतिमा बनाकर तिल-पायस को पञ्चपात्र के साथ ब्राह्मण को प्रदान करे। हे विप्र! जो व्यक्ति ऐसा व्रत करता है, उसके सभी विघ्न दूरीभूत हो जाते हैं।।१-८।।

दिव्याय शूराय गजाननाय लम्बोदरायैकरदायुधाय।
नगोत्मजादेहसमुद्भवाय कुठारहस्ताय नमो वराय।।९।।

एवं संपूज्य स्तुतिभिः स्तुत्वा निर्विघ्नतां व्रजेत्। आषाढ़ेऽपि चतुर्थ्याम्बै पूजयेद्वै गणेश्वरम्॥१०॥
वर्षद्वयव्रतमिदं तिलदानाशनान्वितम्। एतेन तुष्टो हेरम्बो ददाति फलमीहितम्॥११॥
तिलोदकं तिलान्वापि भुक्त्वैतद् व्रतमाचरेत्। अथ सूर्य्यव्रतं वक्ष्ये शृणुष्व द्विजसत्तम॥१२॥
व्रतमारोग्यदं तत्तु सप्तम्यां मर्त्य आचरेत्। षष्ठ्यां संयतभोजी च सप्तम्यामुपवासकृत्॥१३॥
अष्टम्यामुपभुञ्जीत एष एव विधिः स्मृतः। एतेन विधिना पूर्णं वत्सरं योऽर्च्चयेद्रविम्॥१४॥
तस्यारोग्यं धनं धान्यमिह जन्मनि जायते। परत्र स्थानममलं यद्गत्वा न निवर्त्तते॥१५॥
एवमन्यच्च कुर्य्याच्च व्रतमादित्यतोषणम्। रविवारेषु मार्त्तण्डं पूजयेद्भक्तिमान्नरः॥१६॥
नक्तञ्च भोजनं कुर्य्यात् स याति सुरलोकताम्।
व्रतमन्यच्च सूर्यस्य कथयामि निबोध तत्॥१७॥
रविवारे रवेर्या तु संक्रान्तिस्तत्र भास्करम्। पूजयेन्नक्तमशनं आदित्यहृदयं जपेत्॥१८॥
अथ वास्तमयं यावद्भास्करं चिन्तयेद्धृदि। ब्राह्मणान् भोजयेन्मिष्टं स्वयं पायसमात्रभुक्॥१९॥
योऽत्र संपूजयेद्भानुं भक्तिश्रद्धासमन्वितः। स कामाल्लभते दिव्यानादित्यहृदयस्थितान्॥२०॥

"हे पार्वती नन्दन! आप दिव्य शूर, लम्बोदर, गजानन, एकदन्त, कुठारपाणि, श्रेष्ठ! आपको प्रणाम।" यह स्तव करके पूजा करने पर विघ्न नहीं रह जाते। आषाढ़ीय चतुर्थी को गणेश-पूजन का विधान है। तिलदान तथा तिलभोजन के साथ २ वर्ष यह व्रत करे। इससे प्रभु हेरम्ब प्रसन्न होकर वांछित फल देते हैं। तिलोदक तथा तिलान्नादि भक्षण ही इस व्रत का प्रमुख अंग है। हे द्विजप्रवर! तदनन्तर सूर्य व्रत सुनें।

यह सूर्यव्रत सप्तमी को अनुष्ठित करे। इससे आरोग्य मिलता है। षष्ठी को संयत रहकर सप्तमी को उपवासी रहे। अष्टमी को भोजन करे। यही विधि कही गयी है। जो व्यक्ति पूर्वोक्त विधान से सूर्यार्चना करता है, उसे इस जन्म में आरोग्य, धन तथा धान्यलाभ होता है तथा वह देहान्त में पवित्र अक्षयपद की प्राप्ति करता है। इस प्रकार से अन्य प्रकार के व्रत को भगवान् आदित्य की प्रसन्नता हेतु करे। रविवार को संक्रान्ति हो, तब सूर्यपूजा, रात्रिभोजन, आदित्य हृदय पाठ करे अथवा अस्तकाल पर्यन्त सूर्यदेव की हृदय में चिन्तना करे। ब्राह्मणों को मिष्टान्न भोजन कराये। स्वयं मात्र पायस भक्षण करे। जो भक्ति-श्रद्धापूर्वक इस दिन सूर्य पूजा करता है, वह आदित्य हृदयस्थ समस्त कामना पूर्त्ति कर लेता है।।९-२०।।

आदित्यहृदयं नाम मन्त्रं वक्ष्यामि ते शृणु॥२१॥
आद्यो घृणिं स्ततः सूर्य्य आदित्यः प्रणवान्तकः। आदित्यहृदयो नाम मन्त्रोऽयं कथितस्तव॥२२॥
व्रतमन्यच्च सूर्य्यस्य कथयामि निबोध तत्। माघमासस्य सप्तम्यां पूजयेद्भास्करं प्रभुम्॥२३॥
हस्तायुक्ते रविदिने पूजयेद्भास्करं तथा। सप्तम्यां सूर्य्यवारश्चेज्जावाले लभ्यते क्वचित्॥२४॥
स्नानं दानं तपो होम उपवासस्तथैव च। सर्वं विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम्॥२५॥
सप्तम्यां शुक्लपक्षे तु यदा संक्रमते रविः। महाजयाख्या सा प्रोक्ता सप्तमी रवितुष्टिदा॥२६॥
स्नानदानादि कुर्वीत तत्र निर्विणमानसः। घृतेन पयसा वापि स्नापयित्वा दिवाकरम्॥२७॥

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो याति सूर्य्यसलोकताम्। संवत्सरव्रतमिदं सूर्य्यप्रीतीकरं परम्॥२८॥
सर्व्वे वर्णाः कुर्य्युरेतद्व्रतं भास्करतोषणम्। अष्टाङ्गार्घ्यं रवेर्वक्ष्ये जावाले शृणु सादरः॥२९॥
आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं दधि तथा मधु। रक्तानि करवीराणि रक्तचन्दनमित्यपि॥३०॥

अब आदित्य हृदय मन्त्र सुनो। घृणि, सूर्य, आदित्य अन्त में तथा प्रणव यही आदित्य हृदय मन्त्र है। (ॐ घृणि सूर्य आदित्याय नमः)। अब सूर्य का अन्य व्रत सुनो। माघमासीय सप्तमी को सूर्य पूजा करे। हे जाबाल! यदि रविवासरी सप्तमी हो तब वह विजय सप्तमी होती है। इसमें स्नान-दान-होम-तप-उपवास सभी महापातक ध्वस्त कर देता है। यदि शुक्लपक्षीय सप्तमी को संक्रान्ति हो, तब यह तिथि सूर्य प्रीतिकारी है। इसमें स्नान-दानादि से चित्त-सुख मिलता है। घृत-दुग्ध से भगवान् सूर्य को स्नान कराने से सर्व पापमुक्ति तथा सूर्यलोक में गति होती है। यह व्रत वर्षपर्यन्त करने से सूर्य अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। ब्राह्मणादि सर्व वर्ण भास्कर को तुष्ट करने वाला व्रत करें। हे जाबाल! सूर्य के लिए अष्टाङ्ग अर्घ्य सुनो। जल, दुग्ध, कुशाग्र, घृत, मधु, दधि, रक्त कनेर पुष्प, रक्तचन्दन एक पल के साथ लकड़ी के पात्र किंवा मिट्टी के पात्र अथवा सुवर्णादि धातु पात्र में रखे। यही अष्टाङ्ग अर्घ्य है।।२१-३०।।

दारुमृत्पात्रहैमादिपात्रे फलमथोत्तरम्। शिवव्रतमथो वक्ष्ये शृणुष्वैकमना द्विज॥३१॥
शुक्लपक्षे फाल्गुनस्य आरभ्यं व्रतमुत्तमम्। संवत्सरं शिवः पूज्यः शुक्लकृष्णाचतुर्दशी॥३२॥
रात्रौ फलाशनं कुर्य्यात् ब्राह्मणान् भोजयेत्परे। ग्रीष्मे पञ्चतपाः सायं हेमधेनुप्रदो दिवम्॥३३॥
कृष्णाष्टमीचतुर्दश्योर्याति रुद्रं सनातनम्। कार्त्तिक्याञ्च वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत्॥३४॥
शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं परम्। कृष्णाष्टम्यां मार्गशीर्षे नक्तंभोजी समर्च्चयेत्॥३५॥
अत्र गोमूत्रभोजी च अचिरात् समखद्वयम्। लभते पुण्यमतुलं व्रतमन्यच्च कथ्यते॥३६॥
पौषे मासि च संपूज्य शम्भुनामानमीश्वरम्। कृष्णाष्टम्यां (घृतं) प्राश्य वाजपेयफलं लभेत्॥३७॥
माघे महेश्वरं विप्र कृष्णाष्टम्यां प्रपूजयेत्। निशि पीत्वा च गोक्षीरं गोमेधफलमाप्नुयात्॥३८॥
फाल्गुने शिवमभ्यर्च्च्य प्राशयेद्वै तिलान्नरः। राजसूयस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत्॥३९॥

स्थाणुनामानमीशानं चैत्राष्टम्यां प्रपूजयेत्।
यवान् वै भर्ज्जितान् प्राश्य सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥४०॥

हे द्विज! तदनन्तर शिव व्रत एकाग्रता से सुनो। यह उत्तम व्रत फाल्गुन शुक्लपक्ष से आरम्भ करके वर्षपर्यन्त शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को शिवार्चना करके ब्राह्मण भोजन कराये। स्वयं फल भोजन करे। ग्रीष्मकाल के कृष्णपक्ष की अष्टमी तथा चतुर्दशी को ग्रीष्म में पंचतपा होकर सायं होमधेनु प्रदान करे। इससे स्वर्ग तथा अक्षय शिवत्व प्राप्ति होती है। कार्त्तिक मासीय अष्टमी को वृष उत्सर्ग करके रात्रिव्रत करने से शिवत्वपद प्राप्त होता है। यही उत्तम शिव व्रत है। अग्रहायण मास की कृष्णाष्टमी के दिन रात्रिभोजी हो कर शिवार्चन करे। यदि इसमें मात्र गोमूत्र का भोजन कर सके, तब अतिरात्र यज्ञ के दो यज्ञ से अधिक फल मिलता है।

अब अन्य शिवव्रत सुनो। पौषमासीय कृष्णाष्टमी को शम्भु नामक ईश्वर की पूजा करके घृत भोजन करने से वाजपेय यज्ञ फल प्राप्त होता है। हे विप्र! माघमासीय कृष्णाष्टमी को महेश्वर पूजन करे। रात्रि में गोदुग्ध पान करे। इससे गोमेध यज्ञ फल मिलेगा। जो व्यक्ति फाल्गुन मास में शिवपूजनोपरान्त तिलभक्षण करता है, उसे राजसूय यज्ञ

का आठ गुना फल मिलता है। जो व्यक्ति चैत्र मास की अष्टमी के दिन स्थाणु नामक ईश्वर की पूजा करता है तथा भूंजे जौ का प्राशन करता है, उसे अश्वमेध यज्ञ फल की प्राप्ति होती है।।३१-४०।।

चैत्रे शिवोत्सवं कुर्य्यान्नृत्यगीतमहोत्सवैः।
स्नात्वा त्रिसन्ध्यं रात्रौ च हविष्याशी जितेन्द्रियः।।४१।।
शिवस्वरूपतां याति शिवप्रीतिकरः परः। क्षत्रियादिषु यो मर्त्यो देहं संपीड्य भक्तितः।।४२।।
अश्वमेधफलं तस्य जायते च पदे पदे। सर्वकर्म्मपरित्यागी शिवोत्सवपरायणः।।४३।।
भक्तैर्जागरणं कुर्य्याद्रात्रौ नृत्यकुतूहलैः। नानाविधैर्महावाद्यैर्नृत्यैश्च विविधैरपि।।४४।।
नानावेशधरैर्नृत्यैः प्रीयते शंकरः प्रभुः। किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने नीललोहते।।४५।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तोषणीयो महेश्वरः। शङ्खवाद्यं शङ्खतोयं वर्ज्जयेच्छिवसन्निधौ।।४६।।
आमाद्बहिरिमं शम्भोरुत्सवं कारयेन्मुदा। उपोष्य हुत्वा संक्रान्त्यां व्रतमेतत् समापयेत्।।४७।।

चैत्र मास में क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी जितेन्द्रिय होकर तीनों सन्ध्या में स्नान करें। रात्रि में हविष्य भोजन करे। इस प्रकार देह को कष्ट देकर नृत्यगीतादि महोत्सव युक्त होकर भक्तिभाव के साथ शिवोत्सव मनाये। यह देवदेव को अत्यन्त प्रिय है। इससे शिवत्व लाभ होता है तथा पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ फल मिलता है। सर्व कार्य त्याग करके शिवोत्सव तत्पर होकर भक्ति के साथ नृत्योन्मादपूर्वक रात्रि अतिवाहित करना चाहिए। नाना वाद्य, नाना अंगभंगी तथा नृत्य से भगवान् शंकर सन्तुष्ट होते हैं। इनके प्रसन्न होने पर जगत् में कुछ भी अप्राप्य नहीं रहता। अतः सर्वतोभावेन भगवान् शंकर को सन्तुष्ट करे। इस शिवोत्सव में शिव के समीप शंखजल रखना तथा शंख वादन वर्जित है। उत्सव को ग्राम के बाहर आनन्दपूर्वक करे। उपवास तथा होम के साथ संक्रान्ति के दिन व्रत का उद्यापन विहित है।।४१-४७।।

वैशाखे शिवनामानं पूजयित्वा प्रयत्नतः। रात्रौ कुशोदकं पीत्वा सर्व्वमेधफलं लभेत्।।४८।।
ज्यैष्ठे पशुपतिं पूज्य गवां शृङ्गोदकं पिबेत्। गवां कोटिप्रदानस्य यत्फलं तदवाप्नुयात्।।४९।।
उग्रनामानमाषाढे केवलं प्राश्य गोमयम्। वर्षाणान्तु शतं साग्रं शिवलोके महीयते।।५०।।
श्रावणे शर्व्वनामानं भुञ्जीतार्करसं निशि। गोसवस्य तु यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः।।५१।।
भाद्रे मासि त्र्यम्बकाख्यं कृष्णाष्टम्यां प्रपूजयेत्। विल्वपत्ररसं भुक्त्वा वाजपेयफलं लभेत्।।५२।।
आश्विने कुशनामानं भुक्त्वा च तण्डुलोदकम्। पूजयेत् परया भक्त्या पौण्डरीकफलं लभेत्।।५३।।
कार्त्तिके मासि चाष्टम्यामीशानाख्यं प्रपूजयेत्। निशायां गोमयं भुक्त्वा पञ्चयज्ञफलं लभेत्।।५४।।
संवत्सरव्रतं कृत्वा विप्रान्मिष्टानि भोजयेत्। पायसं घृतसंयुक्तं घृतेन संपरिप्लुतम्।।५५।।
निवेदयेत रुद्राय गां कृष्णाञ्च पयस्विनीम्। कृष्णाष्टमीव्रतमिदं कृत्वा दद्यात् सुदक्षिणाम्।।५६।।
शिवव्रतमिदं प्रोक्तं सर्व्वाभीष्टप्रदं शुचि। अथातः शृणु वक्ष्यामि वैष्णवानि व्रतानि च।।५७।।

।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे उत्तरखण्डे वानप्रस्थयतिधर्म्मकथनं नाम नवमोऽध्यायः।।

वैशाख में यत्नतः शिवपूजा करके रात्रि में कुश जल पान द्वारा समस्त कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। ज्येष्ठ मास में पशुपति देव की पूजा करके गोश्रृंग का जलपान करना करोड़ों गोदान के तुल्य फलप्रद है। आषाढ़ मास में उग्र नामक शिव की अर्चना करके केवल गोबर का प्राशन करने वाला १०० वर्ष शिवलोक में निवास करता है। श्रावण मास में मानव शर्व्व नाम वाले शिव की पूजा करे। रात्रि में दुग्धाहार करे। उसे गोमेघ यज्ञफल प्राप्त होगा। भाद्रमास में कृष्णाष्टमी के दिन त्र्यम्बक का पूजन करे। तब बिल्वपत्र रस का भक्षण करे। वह व्यक्ति वाजपेय यज्ञफल प्राप्त करता है। आश्विन मास में सभक्ति युक्त हो ईश नामक शिवार्चन करे। तब तण्डुलोदक पान करे। उसे पौण्डरीक फल मिलता है। कार्तिक मास की अष्टमी तिथि के दिन ईशान नामक शिव की पूजा करे। रात्रि में गोमय प्राशन करे। उसे पञ्चयज्ञ फल मिलेगा। इस प्रकार वर्ष पर्यन्त व्रत करे तथा ब्राह्मणगण को मिष्ठान्न भोजन कराये। घृत-पायस एवं दुग्धवती कृष्णा गौ रुद्रदेव को निवेदित करे। यह कृष्णाष्टमी के दिन सम्पन्न करके ब्राह्मण को पर्याप्त दक्षिणा प्रदान करे। मैंने यह सर्वाभीष्टप्रद पवित्र शिवव्रत तुमसे कहा। अब वैष्णव व्रत कहता हूं। सुनो।।४८-५७।।

।।नवम अध्याय समाप्त।।



दशमोऽध्यायः

विविध व्रत वर्णन

व्यास उवाच

एकादशी तिथिः पुण्या वैष्णवी पापनाशिनी।
शुक्ला वा यदि वा कृष्णा तत्रोपोष्य हरिं व्रजेत्।।१।।
एकादश्यां निराहारो द्वादश्यां पारणं चरेत्। एकादशीव्रतश्चैतत् द्वादशीव्रतमप्युत।।२।।
विष्णुर्हि दैवतं तस्यास्तस्याश्च द्विजसत्तम। नातः परतरं कर्म्म त्रिषु लोकेषु विद्यते।।३।।
एकादश्यां भोजनाच्च नान्यत् पापतरं परम्।
यानि यानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।।४।।
अन्नमाश्रित्य तान्येव तिष्ठन्ति हरिवासरे। सर्व्वे वर्णाश्रमा याश्च स्त्रियश्चैकादशीपराः।।५।।
प्राप्नुवन्ति गतिं दिव्यामन्यथा पापमाप्नुयुः। सधवानान्तु नारीणां रात्रौ पेयं जलं मतम्।।६।।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि। वनस्थयतिधर्म्मोऽयं शुक्लामेव सदा गृही।।७।।
एकादश्यां समभ्यर्च्च्य केशवं देवकीसुतम्। धूपदीपादिनैवेद्यैः परमं पदमाप्नुयात्।।८।।
माससंवत्सरादौ तु व्रतमेतत् पृथक् फलम्। एवमन्यासु तिथिषु पूजयेद्विष्णुमव्ययम्।।९।।
उत्सवांश्च प्रकुर्व्वीत नृत्यगीतमहोत्सवैः। अग्नौ विप्रे जले चैव शालग्रामे गुरौ तथा।।१०।।

व्यासदेव कहते हैं—शुक्ला एकादशी किंवा कृष्णपक्षीय एकादशी पुण्या, पापहारिणी, वैष्णवी तिथि है। इस

तिथि में जो उपवासी रहता है, उसे हरि मिलते हैं। एकादशी के दिन उपवासी रहे, द्वादशी को पारण करे। यह दोनों एकादशी तथा द्वादशी व्रत है। हे द्विजप्रवर! साक्षात् भगवान् विष्णु उक्त दोनों तिथि के अधिष्ठातृ देवता हैं। इन व्रतद्वय की अपेक्षा त्रिभुवन में अन्य उत्तम कार्य नहीं है, क्योंकि इस दिन ब्रह्महत्या आदि पाप अन्न का आश्रय लिये रहते हैं। ब्राह्मणादि चारों वर्ण वाले, ब्रह्मचारी आदि चारों आश्रमी लोग तथा स्त्री लोग एकादशी व्रत परायण होकर दिव्य गति प्राप्त करते हैं। अन्यथा पाप होता है। सधवा नारीगण उपवासी रहकर रात्रि में मात्र जल पीये। शुक्ल तथा कृष्णपक्ष की एकादशी के दिन भोजन न करना ही वानप्रस्थ तथा सन्यासी का धर्म है। तथापि गृहस्थ व्यक्ति उपवासी रहकर देवकीनन्दन कृष्ण की धूप-दीप नैवेद्य से पूजा करे। इसी से उसे परम पद मिलता है। मास तथा वर्ष में इस व्रत का अनुष्ठान करने से परम पद मिलता है। इसी प्रकार अन्य तिथि पर सनातन विष्णु की पूजा तथा नृत्यगीत का महोत्सव अवश्य करे।।१-१०।।

प्रतिमासु च संपूज्यः कृष्णः कमललोचनः। मासि मासि च नैवेद्य (विशेषैर्विष्णुमर्च्चयेत्।।११।।
मार्गशीर्षे महाभाग नवान्नैः पूजयेद्धरिम्। पायसं शर्क्करा दुग्धं) दद्यात् कृष्णाय भक्तितः।।१२।।
पौषे तु बालसूर्य्यस्य किरणैरर्च्चयेद्धरिम्। उष्णोदकैश्च स्नापयेत् स्नेहेन च सुगन्धिना।।१३।।
दद्याच्च सुघृतं चारु समुद्गमाषपाचितम्। शाल्यन्नं हिङ्गुपत्रादिविशेषसुरभीकृतम्।।१४।।
सर्पिषा भर्जितं शाकं वास्तूकाख्यं तथा दधि। एवञ्च मासि माघे च संपूज्यः पुरुषोत्तमः।।१५।।
फाल्गुने मासि माषाणां पूपं दद्यादघारये। गुडश्च विमलो देयो मुदा परमया युतः।।१६।।
शाकं सचणकं पक्वं हिङ्ग्वादिसुरभीकृतम्। घृतञ्च गव्यं हरये दद्याद्दधि सशर्क्करम्।।१७।।
फाल्गुन्यां पौर्णमास्याञ्च दोलयात्रा हरेः कृता। वने कुञ्जकुटीस्थाभिः सुन्दरीभिर्द्विजोत्तम।।१८।।

गोप्यो विमलकान्त्याढ्या वासोभूषणभूषिताः।
हसन्त्यो हासयन्त्यश्च (स्मरव्याघूर्णितेक्षणाः।।१९।।
गायन्त्यो वादयन्त्यश्च) नृत्यन्त्यश्च महामुदः।
पुष्पालङ्कारभूषाढ्याः क्षिपन्त्यः पुष्पसञ्चयान्।।२०।।

कौतुकाक्षिप्तमनसो गोविन्दलसितान्तराः। गोविन्दं दोलयामासुः सन्धौ पक्षतिपूर्णयोः।।२१।।

हे द्विज! जल, अग्नि, शालग्राम शिला अथवा प्रतिमा पर कमललोचन कृष्ण का पूजन विहित है। प्रतिमास विशेष-विशेष नैवेद्य द्वारा विष्णुपूजा करे। हे महाभाग! अग्रहायण मास में नवान्न द्वारा हरि पूजा करे तथा उनके भक्तिपूर्वक दुग्ध, शर्करा, पायस निवेदन करे। पौष मास में सूर्य किरण द्वारा हरि पूजा करे। उनको सुगन्धित तैल मल कर उष्ण जल से स्नान कराये। हिंगु पत्रादि मिला सुरभित उत्तम मूंग-उर्द मिश्रित, प्रचुर घृत युक्त उत्तम शालिधान्य का अन्न, घृतपक्व, रास्तुक शाक तथा दधि अर्पित करे। इस प्रकार माघ मास में पुरुषोत्तम कृष्ण की पूजा करके फाल्गुन मास में उर्द का पिष्टक, निर्मल गुड़, चना के साथ पका हींग प्रभृति से सुवासित शाक, गोघृत तथा शर्करा युक्त दधि परमानन्द से आप्लुत होकर उनको अर्पित करे। हे द्विजोत्तम! फाल्गुन मास की पूर्णिमा के दिन व्रजसुन्दरीगण कुञ्ज कुटीरस्थ होकर वन में श्रीकृष्ण की दोलायात्रा करती थीं। रूपलावण्यवती, वस्त्रालंकारभूषिता गोपस्त्रीगण पुष्पालङ्कार

सज्जिता तथा तद्गतचित्त होकर कामवेग से घूर्णित नेत्रों से हास्य-नृत्य-गीत तथा वाद्य द्वारा महानन्दपूर्वक परम कौतुक से पुष्पराशि छोड़ते हुए पूर्णिमा तथा प्रतिपदा के सन्धिकाल में गोविन्द को दोलायित करती थीं।।११-२१।।

चैत्रे च पूजयेद्विष्णुं सुगन्धकुसुमैः शुभैः। चन्दनैर्विविधैश्चैव कुङ्कुमाद्यनुलेपनैः॥२२॥
आर्द्रकं चारुनैवेद्यं दद्यात्कृष्णाय भक्तितः। अनिष्पन्नाष्ठिकं विप्र दद्यादास्त्रं सशर्क्करम्॥२३॥
वैशाखे मासि गोविन्दं चारुशीतलवारिणा। स्नपयेच्चाभिषिक्तञ्च तुलसीदलमिश्रिणा॥२४॥
मुद्गविदलनैवेद्यं दद्यात्ताम्बूलमेव च। दद्याच्च कारवेल्लान्नं सघृतं विष्णवे नरः॥२५॥
जलञ्च शीतलं दद्यात् सकर्पूरञ्च विष्णवे। ज्यैष्ठे मासि च पक्वान्नं शर्क्करा दुग्धमेव च॥२६॥
ताम्बूलञ्च तथा दिव्यं छत्रञ्चोपानहं तथा। शुष्कवस्त्रकृतां शय्यां चामरं चारु विष्णवे॥२७॥
दद्याद्भक्तियुतो मर्त्यो लिप्सुर्मुक्तिं सुदुर्लभाम्। आषाढे पद्मकुसुमैर्विलसत्तुलसीदलैः॥२८॥
पूजयेत् केशवं भक्त्या भक्तिवश्यं सनातनम्। दद्यात्सदधि नैवेद्यं पनसञ्च पयोऽन्वितम्॥२९॥
सघृतं नवसञ्चापि दद्यात्कृष्णाय मानवः। रथोत्सवञ्च कृष्णस्य कुर्य्यादष्टाहमङ्गलम्॥३०॥
कौतुकेर्नृत्यगीताद्यैर्विप्रभोजनकौतुकैः। श्रावणे मासि लाजांश्च दद्यात् वासः सुसूक्ष्मकम्॥३१॥
भाद्रे तालफलं दद्यात् घृतयुक्तं च कारयेत्। आश्विने शूरणान्नञ्च सघृतं विष्णवेऽर्पयेत्॥३२॥
परमान्नं तथा नानामिष्टनैवेद्यमेव च। (नारिकेलफलञ्चैव दद्यात् कृष्णाय शीतलम्॥३३॥

चैत्र मास में सुन्दर सुगन्धित पुष्प तथा चन्दन कुंकुम से नाना प्रकार के अनुलेपन द्वारा पूजा करके अदरख, नैवेद्य तथा शर्करायुक्त उत्तम कच्चे आम्र का नैवेद्य भगवान् को अर्पित करे। वैशाख मास में तुलसी मिश्रित निर्मल जल से गोविन्द को स्नान कराये। मूंग दाल का नैवेद्य, कपूर मिला शीतल जल तथा ताम्बूल प्रदान करे। लेकिन घृतयुक्त अन्न नहीं देना चाहिए। ज्येष्ठ मास में पका आम, शर्करा, दुग्ध, ताम्बूल, दिव्य छाता, पादुका, सूक्ष्म वस्त्र युक्त शय्या विष्णु को प्रदान करने से मनुष्य अति दुर्लभ मुक्ति लाभ करता है। आषाढ़ मास में कमल पुष्प तथा तुलसी दल से भक्तिपूर्वक पूजा करके दधि, नैवेद्य, दुग्ध तथा घृत युक्त कटहल भक्त वत्सल सनातन देव विष्णु को निवेदित करके ब्राह्मण भोजन के अनन्तर नृत्य-गीतादि कौतूहल के साथ आठ दिवस श्रीकृष्ण का उत्सव करे। श्रावण मास में अति सूक्ष्म वस्त्र तथा लावा प्रदान करे। भाद्रमास में घृतयुक्त तालफल प्रदान करे।।२२-३३।।

पाषाणपात्रे विमले शाल्यन्नञ्च द्विजोत्तम। इन्दीवरैश्च रुचिरैः पूजयेत् श्यामसुन्दरम्॥३४॥
शाकञ्च दद्यात् कृष्णाय जम्बीरवरवासितम्। ताम्बूलञ्च लवङ्गादिसुरसीकृतमेव च॥३५॥

न दद्यात् खदिरं क्वापि विष्णवे परमात्मने।
ब्राह्मणोऽपि न भुञ्जीत निर्यासं खदिरस्य च॥३६॥

कार्त्तिके शूरणान्नञ्च दद्यात् सघृतमेव हि। घनीकृतं तथा क्षीरं शर्क्करामरीचान्वितम्॥३७॥
चन्द्रातपञ्च कृष्णाय दद्याच्चित्रांशुकैः कृतम्। एवं कालोचितैर्द्रव्यैर्भक्ष्यभूषणरूपिभिः॥३८॥
पूजयित्वाच्युतं देवं सर्व्वं सार्थं लभेन्नरः। सर्व्वत्र तुलसीपत्रं प्रियं विष्णोर्महात्मनः॥३९॥
गायेत विष्णुनामानि विमलेनान्तरात्मना। गङ्गा गीता च गायत्री त्रयमेव परं हरेः॥४०॥
संप्राप्तसाधनं विप्र गुरुर्मन्त्रस्तथोत्तमौ। श्रवणं कीर्त्तनञ्चैव स्मरणं पादसेवनम्॥४१॥

अर्च्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्। नवलक्षणया भक्त्या स्वेष्टदेवं समर्च्चयेत्॥४२॥
संक्षेपादियमुक्ता ते विष्णुपूजा द्विजोत्तम। दुर्गापूजामहं वक्ष्ये शृणुष्वैकमना मुने॥४३॥

आश्विन मास में घृतयुक्त सूरण विष्णु को प्रदान करे तथा परमान्न, नाना मिष्ठान्न, नारियल निर्मित पाषाण पात्र में रखा शालिधान्य का शीतल अन्न, जम्बीर रस से सुगन्धित शाक, लवंग आदि से सुरसीकृत ताम्बूल प्रदान करे। मनोज्ञ नील पद्म से पूजा करे। परमात्मा विष्णु को कभी भी खदिर प्रदान न करे। ब्राह्मण भी खदिर निर्यास न खाये। कार्त्तिक मास में घृत सहित सूरण, मिर्च (काली) शर्करा मिश्रित धनक्षीर तथा विचित्र सूत्र से बना चन्द्रातप श्रीकृष्ण को प्रदान करे। इस प्रकार कालोचित द्रव्य (ऋतुजनित द्रव्य), भक्ष्य तथा भूषण से भगवान् अच्युत की अर्चना द्वारा मानव सभी कामना प्राप्त करते हैं। भगवान् विष्णु को तुलसी सदा प्रिय है। निर्मल मन से विष्णु नाम का कीर्त्तन करे। हे विप्रेन्द्र! गंगा-गीता-गायत्री हरि को अति प्रिय हैं। यदि ये गुरु द्वारा मन्त्ररूपेण प्राप्त हों, तब तो अत्युत्तम बात है। श्रवण-कीर्त्तन, स्मरण-पादसेवा, अर्चना, वन्दना, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन, ये भक्ति के ९ लक्षण हैं। भक्ति से अपने इष्टदेव की अर्चना करे।।३४-४३।।

अग्निहोत्राणि कर्म्माणि वेदयज्ञाः सदक्षिणाः।
चण्डिकार्च्चनकार्य्यस्य कोट्यंशेनापि नो समाः॥४४॥
पूजयेत् प्रणमेद्वापि यो दुर्गां जगदम्बिकाम्। स योगी स मुनिर्मुक्तः स च बुद्धिमतांवरः॥४५॥
मासि चाश्वयुजे विप्र शुक्लपक्षे त्रिशूलिनीम्। नवम्यां पूजयेद्यस्तु सोऽश्वमेधादिपुण्यभाक्॥४६॥
सेमेरुगिरितुल्योपि राशिः पापस्य कर्म्मणः। चण्डीपूजां समासाद्य नश्यत्वर्च्चिः पतङ्गवत्॥४७॥
दुर्गार्च्चनरतो नित्यं महापातकसम्भवैः। दोषैर्न लिप्यते विप्र पद्मपत्रमिवाम्भसा॥४८॥
अकृत्वा पार्व्वतीपूजां वार्षिकीं कुमतिर्नरः। पूजान्तु सर्व्वदेवानां तत्क्षणादेव नाशयेत्॥४९॥
इति संक्षेपतः प्रोक्ता दुर्गापूजा द्विजोत्तम। नागव्रतोमथो वक्ष्ये तदिहैकमनाः शृणु॥५०॥
श्रावणे शुक्लपक्षे या पञ्चमी तत्र मानवः। यः पूजयति नागान्वै तस्य नाहिभयं भवेत्॥५१॥
पूजयेद्विधिवद्वारिदधिदूर्वाङ्कुरैः कुशैः। (गन्धपुष्पोपहारैश्च ब्राह्मणानाञ्च तर्पणैः॥५२॥
तथा भाद्रेऽपि पञ्चम्यां सर्पिःपायसगुग्गुलैः। आलिख्य पूजयेन्नागान् कृष्णवर्णादिवर्णकैः॥५३॥
आलिख्यपञ्चमीत्येषा नागाभयकरी परा॥५४॥
एषा संक्षेपतः प्रोक्ता नागपूजा द्विजोत्तम। अतस्ते किं नु वक्ष्यामि जावाले तद्वदस्व मे॥५५॥

हे द्विजोत्तम! संक्षेप में मैंने विष्णुपूजा कहा। अब दुर्गापूजा सुनो। एकाग्रता से श्रवण करो। अग्निहोत्र तथा दक्षिणायुक्त यज्ञ दुर्गापूजा के करोड़वें भाग जितना भी नहीं है। जो जगदम्बिका दुर्गा की पूजा तथा प्रणाम करते हैं, वे योगी-मुनि तथा बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं। हे विप्र! जो आश्विन मासीय शुक्ला नवमी के दिन त्रिशूलिनी की अर्चना करते हैं, वे अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त करते हैं। जिनकी पापराशि सुमेरु पर्वततुल्य है, वह समस्त पापराशि उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जैसे अग्नि में पतंगे नष्ट हो जाते हैं। हे विप्र! जो नित्य दुर्गार्चन करते हैं, उसी प्रकार महापातक लिप्त नहीं होते, जैसे जल में पद्मपत्र जल से लिप्त नहीं होता। जो मन्दबुद्धि वार्षिक दुर्गापूजा न करके अन्य देवता की पूजा करते हैं, उनकी वह-वह पूजा तत्क्षण विफल हो जाती है। हे द्विजोत्तम! मैंने दुर्गापूजा का संक्षिप्त वर्णन किया, अब नागपूजा सुनो। श्रावण मास की शुक्ला पंचमी

तिथि के दिन जो नागपूजा करते हैं, उनको नागभय नहीं होता। उस दिन मानव दधि-दुग्ध-कुश-जल नाना पुष्पोपहार तथा ब्राह्मण भोजनयुक्त नागपूजा करे। भाद्रमासीय पंचमी के दिन घृत, पायस तथा गुग्गुलु से पूजा करे। यह नागपंचमी है। हे द्विजोत्तम! मैंने संक्षेप में नागपूजा का वर्णन कर दिया। भाद्रमासीय पञ्चमी के दिन घृत-पायस-गुग्गुलु से पूजा करे। यही नागपंचमी है। हे द्विजोत्तम! नागपूजा कही गयी। अब क्या कहना है?।।४४-५५।।

जावालिरुवाच

ग्रहाः सूर्य्यादयः केन तुष्यन्ति तद्वदस्व मे। को वा कुत्र ग्रहस्तिष्ठेज्ज्योतिषामग्रतः प्रभो॥५६॥

जाबालि कहते हैं—हे प्रभो! सूर्यादिग्रह किस कर्म से प्रसन्न होते हैं? उनमें कौन कहां रहता है? कहिए।।५६।।

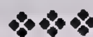
व्यास उवाच

वसिन्त वै ग्रहाः सर्व्वे स्थिरवायौ द्विजोत्तम। पृथ्वीतो योजनानान्तु सहस्रषोडशोपरि॥५७॥
वायुरेष स्थिरो भूत्वा देवान् दधात्यसौ। तत्र मेघा अधिष्ठाय वर्षन्त्यम्बूनि सर्व्वतः॥५८॥
ततो योजनसाहस्रदशकोपरि चोदयन्। तस्मात् षोडशसाहस्रं राहुरूर्द्धे प्रतिष्ठति॥५९॥
राहुश्चन्द्रञ्च सूर्य्यञ्च ग्रसनायाभिधावति। तत्रैव हि चरन्त्येव केतवो नवमा ग्रहाः॥६०॥
ततश्च भास्करो भाति द्विःसप्ततियोजनोपरि। सूर्य्योपरिष्टाच्चन्द्रोपि लक्षयोजनकोपरि॥६१॥
तस्याप्युपरि लक्षेण विभान्ति तारकागणाः। ततो लक्षोपरि श्रीमानाचार्य्यः शुक्रनामकः॥६२॥
लक्षद्वयोपरि ततो भूमिपुत्रो विभाति वै। लक्षद्वयोपरि ततो बुधो वसति सोमजः॥६३॥
लक्षद्वयोपरि ततो देवाचार्य्यो बृहस्पतिः। लक्षद्वयोपरि ततो भाति नाम्ना शनैश्चरः॥६४॥
एते ग्रहा महाभागाः शुभाशुभफलप्रदाः। एते यस्य प्रसन्नाःस्युस्तस्य नामङ्गलं क्वचित्॥६५॥
ग्रहविप्रास्तु गणकास्तत्तत्प्रीतयस्त्विमे। स्तवेनैते च तुष्यन्ति स्तवानेषां शृणुष्व च॥६६॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे उत्तरखण्डे वानप्रस्थयतिधर्म्मकथनं नाम दशमोऽध्यायः।।

व्यास कहते हैं—हे द्विजोत्तम! ग्रहगण पृथिवी से १६००० योजन ऊर्ध्व में वायु में स्थित हैं। यह वायु स्थिर हो देवगण को धारण करता है। वही जलदजाल स्थित रहकर सर्वत्र जलवर्षण करता है। उससे १००० योजन ऊर्ध्वस्थ राहु ही चन्द्र-सूर्य को ग्रसता है। नवग्रह केतु भी वहीं विचरण करता है। सूर्य वहां से एक लाख योजन ऊर्ध्व स्थित है। सूर्य से एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा है। चन्द्रमा से एक लाख योजन ऊपर तारकमण्डल स्थित है। उनसे भी एक लाख योजन ऊपर शुक्राचार्य स्थित हैं। वहां से २ लाख योजन ऊपर मंगल ग्रह की स्थिति है। मंगल ग्रह से २ लाख योजन ऊपर सोमपुत्र बुध की स्थिति है। बुध के दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति स्थित है। बृहस्पति के दो लाख योजन ऊर्ध्व में शनि प्रकाशित है। हे ब्रह्मन्! ये सभी ग्रह शुभाशुभ फल देते हैं। जिस पर ये अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं, उसे कदापि विपत्ति में नहीं पड़ना होता। गणक विप्रगण ग्रहों की पूजा करते हैं, तब ये प्रसन्न होकर शुभ हो जाते हैं। ये जिस स्तव से प्रसन्न होते हैं, वह कहता हूं।।५७-६६।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।



एकादशोऽध्यायः

नवग्रह विवरण, नवग्रह स्तव

व्यास उवाच

शृणुष्व द्विजशार्द्दूल सूर्य्यस्तोत्रं महाफलम्। यच्छ्रुत्वा च पठित्वा च सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥१॥
ॐकाररूपो गवान् भास्करश्च विकर्त्तनः। सूर्य्यो रविः काश्यपेयो भानुर्दिनकरः प्रभुः॥२॥
लोकप्रकाशकः साक्षी श्रीमांल्लोकदिगीश्वरः। गभस्तिमाली सप्ताश्च स्त्रिगुणः कमलासनः॥३॥
ग्रहेश्वरो गुणाधारो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः। ज्योतिष्मान् ज्योतिषां नाथो ब्रह्मा ब्राह्मणदैवतः॥४॥
त्रैगुण्यनायको दिव्यो लोकबन्धुर्भयापहः। तिमिरारी रश्मिमाली सहस्त्रकिरणः करी॥५॥
शूरः करीन्द्रो मैत्रेयः केवलात्मार्य्यमामलः। पद्मप्रकाशको धाता विष्णुस्त्वष्टांशुरेव च॥६॥
वेदात्मा वेदवेद्यश्च यमकर्त्ताश्विनीपतिः। नासत्यदस्त्रजनको ज्ञानज्योतिः सनातनः॥७॥
पूषा विवस्वानादित्यो द्वादशात्मा दिवाकरः। अहस्करः प्रभाराशी रोगहा रुक्चिकित्सकः॥८॥
महौषधस्मृतिः पुण्यः परमार्थः स्मृतार्त्तिहा। ऋषिस्तुत्यो जपप्रीतो गायत्रीजनकोऽव्ययः॥९॥
गायत्रीजपसुप्रीतस्त्रिसन्ध्यपरसुप्रियः। शिवपूजकसुप्रीतो विष्णुपूजकसुप्रियः॥१०॥

व्यास कहते हैं—हे द्विजश्रेष्ठ! महाफल दायक सूर्यस्तव सुनो। यह श्रवण तथा पाठ करने पर सर्व पाप रहित स्थिति मिलती है। यह स्तव इस प्रकार है—ओंकार रूप, भगवान् भास्कर, विकर्त्तन, सूर्य, हरि, काश्यपेय, भानु, दिनकर, प्रभु, लोकप्रकाशक, साक्षी, श्रीमान्, लोकदिगीश्वर, गमस्तिमाली, सप्ताश्व, त्रिगुण, कमलासन, ग्रहेश्वर, गुणाधार, ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूप, ज्योतिष्मान्, ज्योतिषां नाथ, ब्रह्मा, ब्राह्मण दैवत, त्रैगुण्यनायक, दिव्य, लोकबन्धु, भयापह, तिमिरारि, रश्मिमाला, सहस्त्रकिरण, करि, सुर, कवीन्द्र, मैत्रेय, केवलात्मा, अर्घ्यमा, अमल, पद्मप्रकाशक, धाता, विष्णु, उष्णांशु, वेदात्मा, वेदवेद्य, यमकर्त्ता, अश्विनीपति, नासत्य-दस्त्र जनक (अश्विनी कुमारों के पिता) ज्ञानज्योति, सनातन, पूषा, विवस्वान्, आदित्य, द्वादशात्मा, दिवाकर, अहङ्कार, प्रभाराशि, रोगहा, रोगचिकित्सक, महौषधि, स्मृति, पुण्य, परमार्थ, स्मृतार्त्तिहा (जो स्मृत होकर पीड़ा हारी होते हैं), ऋषिस्तुत्य, जप, प्रीत, गायत्री जनक, अव्यय, गायत्री जप सुप्रीत, त्रिसन्ध्या जप सुप्रिये, शिवपूजक, सुप्रिय।।१-१०।।

गङ्गास्नानप्रियप्रीतो दुर्गाजपसुहृद्धरः। पितृमातृभक्तिभक्तो धर्म्मो धर्म्मात्मदण्डकृत्॥११॥
रक्तवर्णः श्यामवर्णो धवलः कालभेदतः। स्वयम्भूरन्नदो वारिप्रदो ह्यरुणसारथिः॥१२॥
पिता पितामहो देवो दक्षिणाशापतिः सुरुक्। आकाशरत्नं तरणिश्चित्रभानुर्व्विरोचनः॥१३॥

मार्त्तण्डोऽर्क्को वायुकर्त्ता सम्यक्ज्ञाता कृपामयः।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने सन्ध्यावन्दनकृत्प्रियः॥१४॥

प्रातर्ब्राह्मणहस्ताब्जजलाञ्जलिसुखी सदा। तपनस्तापनो विश्वस्तीर्थोदय उदारधीः॥१५॥
भूरसग्राहकश्चेति सूर्य्यनामशतं परम्। साष्टकं कथितं तुभ्यं पापरोगहरं परम्॥१६॥

सर्व्वज्वरप्रशमनं सर्व्वव्याधिमहौषधम्। पवित्रं पुण्यदं पुण्यं यः पठेत् सुसमाहितः॥१७॥
तस्य सर्व्वार्थसिद्धिः स्याद् यद्यन्मनसि वर्त्तते। उत्पन्नेषु ह्यरिष्टेषु सङ्कल्प्येदं पठेत् शुभम्॥१८॥
तदा तस्यारिष्टशान्तिर्भवत्येव न संशयः। रविप्रियदिने पुण्ये रविं संपूज्य यः पठेत्॥१९॥

गंगास्नान प्रियप्रीत, दुर्गापूजा सुहृद्, वर, पितृ-मातृ-भक्ति भक्त, धर्म, धर्मात्मदन्तकृत् (धर्मात्मा द्वारा दी वस्तु, जो ग्रहण करते हैं), रक्तवर्ण, श्यामवर्ण, धवल, कालभेदकर्त्ता, स्वयम्भु, अरुणदेव, प्रदाही, अरुण सारथि, पिता, पितामह, देव, दक्षिणाशापति, सुरुक (उत्तम शोभा वाले), आकाशरत्न, तरणि, चित्रभानु, विरोचन, मार्त्तण्ड, वारिकर्त्ता, सम्पद्दाता, कृपामय, प्रातः-मध्याह्न-सायं सन्ध्या वन्दन कृत् प्रिय (त्रिकाल में सन्ध्यावन्दन करने वाले के प्रति प्रीतियुक्त), प्रातःकाल ब्राह्मण प्रदत्त जलाञ्जलिलाभ से सुखी, तपन, तापन, विश्व, तीर्थोदय, उदारधी, भूरस ग्राहक। सूर्य के १०८ नाम अति उत्तम हैं। यह सर्वज्वर प्रशमनकारी, सर्वव्याधि की महान् औषधि हैं। यह पवित्र, पुण्यप्रद तथा पुण्य हैं। जो व्यक्ति समाहित होकर यह पाठ करता है, उसकी इच्छानुरूप अभीष्ट सिद्धि होती है। जब अमङ्गलिक उत्पात हो, तब संकल्प के साथ इस स्तव पाठ से अशुभ दूर होते हैं। इसमें संदेह नहीं है। सूर्य का प्रिय यह स्तव सूर्य पूजा करके जो व्यक्ति पाठ करता है, वह सूर्यमण्डल भेदन द्वारा ब्रह्मप्राप्ति करता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।।११-१९।।

स रवेर्मण्डलं भित्वा याति ब्रह्म ह्यनागतिं)। अथ वक्ष्ये शशिस्तोत्रं तच्छृणुष्व मुदान्वितः॥२०॥
चन्द्रोऽमृतमयः श्वेतो विधुर्विमलरूपवान्। विशालमण्डलः श्रीमान् पीयूषकिरणः करी॥२१॥
द्विजराजः शशधरः शशी शिवशिरोगृहः। क्षीराब्धितनयो दिब्यो महात्माऽमृतवर्षणः॥२२॥
रात्रिनाथो ध्वान्तहर्त्ता निर्म्मलो लोकलोचनः। चक्षुराह्लादजनकस्तारापतिरखण्डितः॥२३॥
षोडशात्मा कलानाथो मदनः कामवल्लभः। हंसःस्वामी क्षीणबृद्धो गौरः सततसुन्दरः॥२४॥
मनोहरो देवभोग्यो ब्रह्मकर्म्मविवर्द्धनः। वेदप्रियो वेदकर्म्मकर्त्ता हर्त्ता हरो हरिः॥२५॥
उर्द्धवासी निशानाथः शृङ्गारभावकर्षणः। मुक्तिद्वारं शिवात्मा च तिथिकर्त्ता कलानिधिः॥२६॥
ओषधीपतिरब्जश्च सोमो जैवातृकः शुचिः। मृगाङ्को ग्लौः पुण्यनामा चित्रकर्म्मा सुरार्च्चितः॥२७॥
रोहिणीशो बुधपिता आत्रेयः पुण्यकीर्त्तकः। निरामयो मन्त्ररूपः सत्यो राजा धनप्रदः॥२८॥
सौन्दर्य्यदायको दाता राहुग्रासपराङ्मुखः। शरण्यः पार्व्वतीभालभूषणं भगवानपि॥२९॥
पुण्यारण्यप्रियः पूर्णः पूर्णमण्डलमण्डितः। हास्यरूपो हास्यकर्त्ता शुद्धः शुद्धस्वरूपकः॥३०॥

तदनन्तर चन्द्रस्तव कहता हूं। प्रसन्न चित्त से सुनो। चन्द्र, अमृतमय, श्वेत, विधु, विमल रूपवान्, विशाल मण्डल, श्रीमान्, पीयूष किरण, करि, द्विजराज, शशधर, शशि, शिवशिर निवासी, क्षीरसागर पुत्र, दिव्य, महात्मा, अमृतवर्षी, रात्रिनाथ, धरान्तहर्त्ता, निर्मल, लोकलोचन, क्षुधाहा, नादजनक, सतत् सुन्दर, मनोरह, देवभोग्य, ब्रह्मकर्म विवर्द्धन, वेदप्रिय, वेदकर्मकर्त्ता, हर्त्ता, हर, हरि, उर्ध्ववासी, निशानाथ, शृङ्गारभावकर्ष मुक्तिद्वार, शिवात्मा, तिथिकर्त्ता, कलानिधि, औषधीपति, अज, सोम, जैवातृक, शुचि, मृगाङ्क, ग्लौ, पुण्यनामा, सुरों द्वारा अर्चित, रोहिणीपति, बुध के पिता, आत्रेय, पुण्यकीर्त्तन, निरामय, मन्त्र रूपा, सत्य, राजा धनप्रद, सौन्दर्यदायक, दाता, राहु-ग्रास पराङ्ग मुख (राहु ग्रास से परे), शरण्य, पार्वती के मस्तक के भूषण भगवान्, पुण्यारण्यप्रिय, पूर्णमण्डलमण्डित, हास्यरूप, हास्यकर्त्ता, शुद्ध, शुद्धस्वरूप, शरत्काल परिप्रीत, शारद, कुसुम प्रिय।।२०-३०।।

शरत्कालपरिप्रीतः शारदः कुमुदप्रियः। द्युमणिर्दक्षजामाता यक्ष्मारिः पापमोचनः॥३१॥
इन्दुः कलङ्कनाशी च सूर्य्यसङ्गमपण्डितः। सूर्य्योद्भूतः सूर्य्यगतः सूर्य्यप्रियपरःपरः॥३२॥
स्निग्धरूपः प्रसन्नश्च मुक्ताकर्पूरसुन्दरः। जगदाह्लादसन्दर्शो ज्योतिःशास्त्रप्रमाणकः॥३३॥
सूर्य्याभावदुःखहर्त्ता वनस्पतिगतः कृती। यज्ञरूपो यज्ञभागी वैद्यो विद्याविशारदः॥३४॥
रश्मिकोटिर्दीप्तिकारी गौरभानुरिति द्विज। नाम्नामष्टोत्तरशतं चन्द्रस्य पापनाशनम्॥३५॥
चन्द्रोदये पठेद्यस्तु स तु सौन्दर्य्यवान् भवेत्। पौर्णमास्यां पठेदेतं स्तवं दिव्यं विशेषतः॥३६॥
स्तवस्यास्य प्रसादेन त्रिसन्ध्यापठितस्य च। सदाप्रसादास्तिष्ठन्ति ब्राह्मणाश्च द्विजोत्तम॥३७॥
श्राद्धे चापि पठेदेतं स्तवं पीयूषरूपिणम्। तत्तु श्राद्धमनन्तञ्च कलानाथप्रसादतः॥३८॥
दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं दाहज्वरविनाशनम्। ब्राह्मणाद्याः पठेयुस्तु स्त्रीशूद्राः शृणुयुस्तथा॥३९॥

द्युमणि, दक्षजामाता, यक्ष्मारोग शत्रु, शापमोचन, इन्दु, कलंकनाशी, सूर्यसंगम पण्डित, सूर्योद्भूत, सूर्यगत, सूर्यप्रियपर (सूर्य प्रिय के प्रति अनुरक्त), पर, स्निग्धरूप, प्रसन्न, मुक्ता-कर्पूर-सुन्दर, जगदाह्लादयसुन्दर, जगदाह्लाद-सन्दर्श (जिनके दर्शन से जगत् प्रसन्न होता है) ज्योति शास्त्र प्रमाणक, सूर्यभाव, दुःखहर्त्ता, वनस्पतिगत, कृती, यज्ञरूप, यज्ञभागी, वैद्य, विद्याविशारद, रश्मिकोटि, दीप्ति करने वाले, सौरभानु। हे द्विज! चन्द्र के यह १०८ नाम पापहारी हैं। जो चन्द्रोदय काल में इसका पाठ करेगा, वह सौन्दर्य युक्त होगा। विशेषतः पूर्णिमा को यह दिव्य स्तव पाठ करे। हे द्विजप्रवर! इस स्तव की कृपा से ब्राह्मणादि वर्ण वाले सदा प्रसन्न रहते हैं। यह अमृतस्तव श्राद्धकाल में भी पढ़े। चन्द्र की कृपा से वह श्राद्ध अनन्तफलप्रद हो जाता है। यह पावन स्तव दुःखनाशक तथा दाहज्वरनाशक है। ब्राह्मणादि इस स्तव का पाठ करें, स्त्री-शूद्रादि श्रवण करें। ब्राह्मण भी श्रवण करें। सभी को समान फल की प्राप्ति होगी।।३१-३९।।

ब्राह्मणाः शृणुयुश्चापि लभेयुश्च समं फलम्। अथान्येषान्तु नामानि स्तोत्ररूपाणि मे शृणु॥४०॥
मङ्गलस्य स्तवं वक्ष्ये सर्व्वमङ्गलदायकम्। मङ्गलो भूमिपुत्रश्च रक्ताङ्गोऽरुणलोचनः॥४१॥
अङ्गारको दीप्तआरः शस्त्रपाणिः ऋणापहा। मेषराश्यधिपो रक्तो रक्ताम्बरधरस्तथा॥४२॥
शूकराश्यधिपो देवो यात्रामङ्गलवृत्तिदः। समुद्रशोषकश्चैव वह्निनेत्रः प्रतापवान्॥४३॥
धनदः प्रीतवदनः प्रलयात्मा प्रमोददः। इत्येकविंशतिं नाम्नां मङ्गलस्य तु यः पठेत्॥४४॥
स एव निर्ऋणो भूत्वा धार्म्मिकश्च धनी भवेत्। संपूज्य रक्तपुष्पेण मङ्गलाहे च मङ्गलम्॥४५॥

अन्य ग्रहों के नाम स्तोत्र को सुनो। सर्वमंगलप्रद मंगलस्तव कहता हूं। मंगल, भूमिपुत्र, रक्तांग, अरुणनयन, अंगारक, दीप्तघोर, शस्त्रपाणि, धनापह, मेषराशिपति, रक्त रक्ताम्बरधारी, वृश्चिक राशीपति, जो देव यात्रा में मंगल प्रद हैं, समुद्रशोषक, अग्निनेत्र, प्रतापी, धनप्रद, पीतवदन, प्रलयात्मा, प्रमोददाता। जो मंगल के २१ नामों का पाठ करता है, वह ऋणरहित, धार्मिक तथा धनी होगा। मंगलवार को मंगल ग्रह की पूजा रक्तपुष्प से करे। तब यह स्तव पाठ करे। वह ऋणहीन तथा धनी होगा।।४०-४५।।

स्तवमेतं पठित्वा तु निर्ऋणः सन् धनी भवेत्। अथ वक्ष्ये बुधस्यापि स्तोत्रं बुद्धिविवर्द्धनम्॥४६॥
बुधो गौरतनुः सौम्यो मानवीशः शुभाननः। शुभग्रहः पुण्यकीर्त्तिस्तारेयश्च इलापतिः॥४७॥

पुरूरवपिता धीरः कुमारो राजवल्ल्भः। राजपुत्रो राज्यदाता ब्रह्मराज उषर्व्वुधः॥४८॥
द्वन्द्वराश्यधिपश्चैव सिंहराश्यधिपस्तथा। नवग्रहप्रियश्चेति नाम्नामेवैकविंशतिम्॥४९॥
बुधस्य यः पठेदेतां स यात्रायां सुखं लभेत्।
ग्रहास्तस्य प्रसन्नाः स्युः पुत्रवान् धनवान् भवेत्॥५०॥

तदनन्तर बुद्धि-वृद्धिकारी बुधस्तव कहता हूं। अगौरतनु, सौम्य, इलापति, शुभानन, मानवीश, शुभग्रह, पुण्यकीर्त्ति, तोरय, 'ज्ञ', राजपुत्र, राज्यदाता, ब्रह्मराज, ऊषर्बुध, मिथुन राशीपति, कन्याराशीपति, नवग्रह प्रिय। बुध के इन २१ नामस्तव को जो पढ़ता है, उसे यात्रासुख मिलता है। वह ग्रहों की प्रसन्नता, पुत्र तथा धन प्राप्त करता है। उसे पाण्डित्य, धर्मज्ञान सम्पूर्णतः प्राप्त होता है।।४६-५०।।

धर्म्मज्ञानञ्च पाण्डित्यं जायते तस्य सर्व्वशः। अथ वक्ष्ये गुरुस्तोत्रं जावाले शृणु कथ्यते॥५१॥
देवाचार्य्यो गुरुर्जीवः कमनीयः सुरेश्वरः। वाचस्पतिः पण्डितश्च सर्व्वशास्त्रवरः सुरः॥५२॥
धिषणो गीस्पतिर्ब्रह्मा ब्राह्मणश्च बृहस्पतिः। श्रीमानाङ्गिरस स्तारावल्लभो जीवनप्रदः॥५३॥
ज्येष्ठो ज्येष्ठग्रहो विज्ञो धनुर्मीनाधिपो जयः। शुभग्रहो यज्ञकर्त्ता कृती चित्रशिखण्डिजः॥५४॥
नामान्येतानि जीवस्य पाद्यानि सप्तविंशतिः। बुद्धिवृद्धिकराण्याहुः प्रसादेन बृहस्पतेः॥५५॥

हे जाबालि! अब बृहस्पति स्तव सुनो। देवाचार्य, गुरु, देव, कमनीय, सुरेश्वर, वाचस्पति, पण्डित, सर्वशास्त्रकर, सुर, धिषणा, गीस्पति, ब्रह्मा, ब्राह्मण, बृहस्पति, श्रीमान् आंगीरस, तारावल्लभ, जीवनप्रद, ज्येष्ठ, ज्येष्ठग्रह, विज्ञ, धनु-मीन राशि के स्वामी, शुभग्रह, यज्ञकर्त्ता, कृति, चित्रशिखंडिज। ये २७ नाम बृहस्पति के कहे गये हैं। इन नाममाला का पाठ करने से बुद्धि बढ़ती है। बृहस्पति की कृपा से ब्राह्मण को वेदज्ञान होता है। अपरापर वर्ण वालों को भी यथायोग्य फल मिलता है। यात्रा भी शुभप्रदा होती है।५१-५५।।

ब्राह्मणो वेदविज्ञः स्यादन्येषां स्वोचितं फलम्। यात्रायां मङ्गलश्चापि स्तवराजो बृहस्पतेः॥५६॥
शृणुष्व द्विजशार्दूल शुक्रनामानि सम्प्रति। शिवावताररूपस्य दैत्याचार्य्यस्य धीमतः॥५७॥
शुक्रो दैत्यगुरुः श्रीमान् कविः काव्यश्च भार्गवः।
सितः शुक्लः शुचिर्विप्रो महात्मा शङ्करः प्रभुः॥५८॥
उशना उत्तमौजाश्च उदयी उज्वलत्प्रभः। ऊर्ज्जस्वी वृषराशीशस्तुलाराश्यधिपस्तथा॥५९॥
मृतसञ्जीवको ज्ञाता विद्याविनयपण्डितः। सद्ग्रहः साधुशीलश्च ययातिश्वशुरो वशी॥६०॥
एतानि कविनामानि प्रोक्तानि सप्तविंशतिः। पठ शृणुष्व जावाले पाठय श्रावयापि च॥६१॥
शुक्राचार्य्यस्तवं यस्तु पठेत् शुक्रदिनेषु च। तस्य प्रीतो भवेत् शुक्रः श्वेतपुष्पैश्च पूजितः॥६२॥
शतावृत्तिं पठन्नस्य कविर्भवति नान्यथा। प्रत्यहं भक्तिभावेन यः पठेत् सुसमाहितः॥६३॥
तस्य धर्म्मे शुभा बुद्धिर्भवत्येव न संशयः। इत्येतत् कथितं स्तोत्रं शुक्राचार्य्यस्य भास्वतः॥६४॥

हे द्विजप्रवर! शिव के अवतार रूप दैत्यगुरु शुक्र का नाम कहता हूं। सुनें! शुक्र, दैत्यगुरु, कवि, काव्य, भार्गव, सित, शुक्ल, शुचि, शंकर प्रभु, उशना, उत्तमौजाः, उदयी, उज्वलत् प्रभु, तेजस्वी, वृषराशीश, तुलाराशि

के अधिपति, मृतसंजीवक ज्ञाता, विद्याविनय पण्डित, सद्ग्रह, साधुशील, ययाति के श्वशुर। ये २१ नाम शुक्र के हैं। हे जाबालि! पठन-पाठन तथा श्रवण का फल सुनो। जो श्वेत पुष्प से शुक्रवार के दिन इनकी पूजा करके यह स्तवराज पढ़ते हैं, उनसे शुक्राचार्य प्रसन्न होते हैं। जो इसे १०० बार पाठ करेगा, वह निःसन्देह कवि होगा। जो समाहित होकर भक्तिपूर्वक नित्य यह स्तवपाठ करेगा, उसकी धर्म में शुभ मति होगी, इसमें सन्देह नहीं है। यह शुक्र स्तव कहा गया।।५६-६४।।

अथ वक्ष्ये शृणु स्तोत्रं शनेः सूरसुतस्य ह। शनिग्रहो भवद् येन तुष्टः शुभवरप्रदः॥६५॥

सूर्य्यपुत्रः शनिः श्यामो मन्दोऽमन्दः शनैश्चरः।
छायागर्भोद्भवो वीरो दीर्घवक्त्रः प्रतापवान्॥६६॥

एकाक्षः सर्व्वसञ्चारी दीर्घवासी शुभाक्षरः। एतानि शनिनामानि यः पठेत् प्रयतो नरः॥६७॥
तस्याष्टमगतोऽप्येष भवेदेकादशस्थवत्। शनिवारे तु संपूज्य शनिं सूर्य्यसुतं नरः॥६८॥
लभते वाञ्छितं सर्व्वं ग्रहारिष्टविनाशजम्। प्रत्यहं प्रातरुत्थाय यः पठेत्तु शनेः स्तवम्॥६९॥
तस्य सर्व्वे ग्रहाः साधो भवन्ति सुखदायकाः। इति ते कथितं विप्र शनिस्तोत्रं महद्गुणम्॥७०॥

अब सूर्यपुत्र शनि का स्तव कहता हूं। इससे शनि प्रसन्न होकर शुभ वर देते हैं। सूर्यपुत्र, शनि, श्याम, मन्द, अमन्द, शनैश्चर, छायागर्भ से उत्पन्न, वीर, दीर्घवक्त्र, प्रसादवान, एकाक्ष, सर्व संचारी, दीर्घवासी, शुभाक्षर। ये शनि के नाम हैं। जो नित्य प्रति पाठ करता है, भले ही शनि उसकी कुण्डली में अष्टम गृह स्थित हों, तब भी शुभ भाव का एकादशस्थ का प्रभाव देते हैं। जो शनिवार के दिन सूर्यपुत्र शनि का पूजन करता है, उसकी समस्त शनिकृत ग्रहदोष समाप्ति हो जाती है तथा सभी अभीष्ट प्राप्त होता है। नित्य प्रातः उठ कर शनिस्तव पढ़ें। सभी ग्रह शुभप्रद हो जाते हैं। हे ब्रह्मन्! मैंने अशेष फलदायक शनिस्तोत्र कहा।।६५-७०।।

राहुनामान्यथो वक्ष्ये (राहुप्रीतिकराणि च। पीयुषपायी मस्ताख्यो राहुर्भिन्नगतिस्तमः॥७१॥
उपरागग्रहः पुण्यचरित्रः पुत्रवद्भयः। राहुनामाष्टकमिदं राहुप्रीतिकरं परम्॥७२॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि राहुदोषैर्न सोऽन्वितः। केतुनामान्यथो वक्ष्ये) जावाले शृणु भक्तितः॥७३॥

अब राहु के प्रीतिकारी नाम सुनो। पीयूषपायी, मस्तारण्य, राहु, भिन्नमति, तम, उपवासग्रह, पुण्य चरित्र, पुष्पवंद्मय। यह राहु के परम प्रीतिप्रद नामाष्टक का जो पाठ करता है, किंवा श्रवण करता है, उसे राहुदोष नहीं होता।।७१-७३।।

सैंहिकेयो धूमनामा दीर्घाङ्गो बहुरूपवान्। स्कन्धरूपतनुः केतुर्महाभीमग्रहो ग्रहः॥७४॥
शेषग्रहाख्यो नवमग्रहश्चेति द्विजोत्तम। केतूनाञ्चारुनामानि कथितानि मया तव॥७५॥
केतुप्रीतिकराण्याहुः पुत्रसम्पतप्रदानि च। नवग्रहाणामेते वै स्तवाः सर्व्वे निरूपिताः॥७६॥

हे जाबालि! अब केतु के नाम भक्तिपूर्वक सुनो। सैंहिकेय, धूमनाभा, दीर्घाङ्ग, बहुरूपी, स्कन्धरूपतनु, केतु, महाभीमग्रह, शेषग्रह, नवम ग्रह। केतु के ये नाम हैं। हे द्विजप्रवर! यह मैंने तुमसे कहा। इसे पाठ करने से केतु की प्रीति तथा शुभ सम्पदा मिलती है।।७४-७६।।

पुण्याः पापहराः सर्व्वे श्राव्याः पाद्याः प्रयत्नतः। नवग्रहस्तवाध्यायं यः पठेत् प्रातरुत्थितः॥७७॥

प्रदक्षिणाः ग्रहास्तस्य सूर्य्यचन्द्रादयो द्विज। धनं धान्यं धरां धर्म्मं कीर्त्तिमायुर्यशः श्रियम्॥७८॥
पुत्रान् पौत्रान् शुभां भार्य्यां गोविन्दे नतिमुत्तमाम्। अन्तकाले च गङ्गायां मरणं ददते ध्रुवम्॥७९॥
दुःस्वप्ननाशनाः सर्व्वे ज्ञातिश्रैष्ठ्यप्रसाधकाः। पितॄणां प्रीतिदा एते नवग्रहमहास्तवाः॥८०॥
सर्वग्रहाधिपः सूर्य्यः परमेशक्रमेण तु। मासेशु द्वादशस्वेव चरति द्वादशात्मकः॥८१॥
उदिते भगवत्यर्क्के उदयन्ति ग्रहाः समे। वारप्रवृत्तिः सर्वेषां ग्रहाणामुदिते रवौ॥८२॥
सूर्य्या वै द्वादश प्रोक्ता मासेषु द्वादशसु च। अतो द्वादशमासा हि सम्वत्सर इति स्मृतः॥८३॥

त्रयोदशापि मासा हि क्वचित् सम्वत्सरो मतः।
तदाधिको हि मासः स्याच्चान्द्रो नामा मल्लिम्लुचः॥८४॥
शुक्लप्रतिपदारम्भाद्दर्शान्तश्चान्द्र एव चेत्।
रविसंक्रान्तिशून्यः स्यात् स हि मासो मलिम्लुचः॥८५॥

रविणा लङ्घितो मासश्चान्द्रश्चातो मलिम्लुचः। तत्र यद्विहितं कर्म्म द्वितीये मासि कारयेत्॥८६॥
इन्द्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः स तु कीर्त्तितः। अग्नीषोमौ स्मृतौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकौ॥८७॥
तमतिक्रम्य तु यदा रविर्गच्छेत् कदाचन। मलिम्लुचः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्म्मसु॥८८॥

एवं ते कथितं विप्र ज्योतिषां वर्णनं समम्।
श्रोतुमिच्छसि जावाले किमन्यत् कथयामि ते॥८९॥

॥इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे उत्तरखण्डे गृहधर्म्मकथनं नाम एकादशोऽध्यायः॥



नवग्रह के ये सभी स्तव पुण्यप्रद तथा पापनाशक हैं। इनका यत्नतः पाठ अथवा श्रवण करे। जो रात्रि अथवा प्रातः इस नवग्रह स्तवाध्याय का पाठ करता है, उसके प्रति सभी ग्रह प्रसन्न होकर धन-धान्य-धरा-धर्म-कीर्त्ति-आयु-यश-स्त्री-पुत्र-पौत्र-शुभ भार्या-गोविन्द की भक्ति तथा अन्त में गंगा मृत्यु प्रदान करते हैं। इस महास्तव पाठ से दुःस्वप्न दूर होते हैं। नर अपने समुदाय में श्रेष्ठ होता है तथा पितरों की प्रसन्नता मिलती है। सर्वग्रहाधीश्वर हैं रवि। ये १२ मास में १२ स्वरूप में उदित होते हैं। उनकी वार प्रवृत्ति होती है। द्वादश मास में द्वादश सूर्य होते हैं। अतः १२ मास का एक वर्ष होता है। कभी-कभी १३ मासीय वर्ष भी होता है। तब एक चान्द्रमास अधिक होता है। यही मलमास है। शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक जो चान्द्रमास है, वह रविसंक्रान्ति रहित होने से मल मास कहा गया है। रवि उक्त चान्द्रमास का लंघन करके मलिम्लुच कहलाते हैं। इस मास का विहित कार्य द्वितीय मास में किया जाता है। जब मास के आदि में इन्द्रादि देवगण को, मध्य में अग्निषोम देवगण को तथा अन्त में पितृसोम देवता को आहुति दी जाती है, उस काल का अतिक्रमण करके जब सूर्य गमन करते हैं, तब वह मलिम्लुच मास सभी कर्म हेतु वर्जित है। हे विप्र जाबालि! मैंने तुमसे ग्रह-नक्षत्रादि का वर्णन किया। अब और क्या सुनना है?॥७७-८९॥

॥एकादश अध्याय समाप्त॥



द्वादशोऽध्यायः

हिंसा निवारण-ज्वर-मृत्यु वर्णन

जावालिरुवाच

भवता कथिता ब्रह्मन्नवग्रहमहास्तवाः। मया श्रुताः प्रभो पुण्या युगधर्म्मानथो वद॥१॥

व्यास उवाच

कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम्। चतुस्त्रिद्व्येकसाहस्त्रदिव्यवर्षैः क्रमादिति॥२॥
तथा शतैश्च सन्ध्यांशाः सन्ध्या अपि शतैस्तथा। एवं द्वादशसाहस्त्रदिव्यवर्षैश्चतुर्युगम्॥३॥
मानुषेण प्रमाणेन यथा स्याद्बुध्यतां स्वयम्। षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्त्रैर्म्मानुषाब्दैर्द्विजोत्तम॥४॥
दिव्यं वर्षशतं बोध्यमङ्कज्ञानविशारदैः। तत्रादौ तु कृतयुगं यत्सत्ययुगमुच्यते॥५॥
धर्म्मश्चतुष्पात् सम्पूर्णो वृषरूपधरस्तदा। वर्णानामाश्रमाणाञ्च तदा धर्म्मोह्यखण्डितः॥६॥
कृतमेव तदा सर्वं क्रियमाणादिकं न च। तस्मिन् काले शोकमोहजरादुःखानि न क्वचित्॥७॥
न च व्याधिर्नोपतापो नोद्वेगो वा कदाचन। न हिंसाकलहद्वेषदुर्भिक्षदुर्ग्रहार्दनाः॥८॥
न क्रयो विक्रयश्चापि न पीड़ा विविधापि च। इज्याध्ययनदानादि तदा सम्पूर्णमेव हि॥९॥
बह्वायुषो जनाः सर्वे वलीपलितवर्जिताः। तदा नारायणः शुक्लः शुक्लवासाश्चतुर्भुजः॥१०॥

जाबालि कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपके मुख से नवग्रहों का महास्तव सुना। हे प्रभो! अब पुण्यप्रद युगधर्म कहें। व्यासदेव कहते हैं—कृत, त्रेता, द्वापर तथा कलि नामक चार युग होते हैं। इनका परिमाण क्रमशः कृतयुग का ४००० दिव्य वर्ष, त्रेता का ३००० दिव्य वर्ष, द्वापर का २००० दिव्य वर्ष तथा कलि का १००० दिव्य वर्ष कहा गया है। सन्धि तथा सन्ध्यांश १०० वर्ष का होता है। इस प्रकार १२००० दिव्य वर्ष में चारों युग बीत जाते हैं। हे द्विजप्रवर! १०० दिव्य वर्ष हैं ३६००० मनुष्य वर्ष के बराबर। यह अंक विद्या पारंगत से जाने कि ४ युग का क्या परिमाण होता है। कृतयुग आदि युग है। उसे ही सत्ययुग कहते हैं। इस सत्ययुग में चतुष्पाद सम्पूर्ण धर्म की स्थिति रहती है। अतः वर्णाश्रम धर्म की अखण्डता से विद्यमान रहता है। इस समय कुछ भी अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं होती। तब शोक-मोह-जरा-व्याधि-सन्ताप-उद्वेग-हिंसा-कलह-द्वेष-दुर्भिक्ष-दुःख, क्रय-विक्रय तथा पीड़ा देना, यह नहीं था। तब अध्ययन, याग, दान आदि सत्कार्य चतुर्दिक् था। सभी लोग बली, बुढ़ापा रहित, दीर्घायु थे। शुक्लाम्बर धारी, ब्रह्मचारी, शुक्लवर्ण, चतुर्भुज हंस नारायण भगवान् सबके लिये ध्यानगम्य थे।।१-१०।।

ब्रह्मचारी हंसनामा ध्यानगम्यो विभुः प्रभुः। ध्यानमेव तदा धर्म्मः परोमोक्षस्य साधनः॥११॥
एते धर्म्माः सत्ययुगे धर्म्मांस्त्रेता युगे शृणु॥१२॥
पादेन ह्रसते धर्म्मो नरा धर्म्मपरायणाः।(ततो यज्ञाः प्रवर्त्तन्ते धर्म्माश्च विविधाः क्रियाः॥१३॥
सत्यप्रवृत्ताश्च नराः क्रियाधर्म्मपरायणाः)। प्रचरन्ति ततो वर्णास्तपोदानपरायणाः॥१४॥
स्वधर्म्मस्थाः क्रियावन्तः समन्ताद्रजसान्विताः। अश्वमेधादयो यज्ञा राजसूयस्तथोत्तमः॥१५॥

अग्निष्टोमो वाजपेयो ह्यतिरात्रादयो मखाः। सङ्कल्पाश्च तदा जाता विप्र त्रेतायुगे परे॥१६॥
तत्रावतीर्णो भगवान्रक्तवर्णो युगाकृतिः। उपेन्द्रो वामनश्चैव पृश्निगर्भश्च नामतः॥१७॥
द्वापरेऽपि युगे धर्म्मो द्विभागोनः प्रवर्त्तते। हिंसा द्वेषश्च मात्सर्य्यं कलहः पैशुनं तथा॥१८॥
मिथ्यामोहः शोकरोषपापव्याधिदुरुक्तयः। जरा च लोभ ईर्ष्या च जाता वै द्वापरे युगे॥१९॥
धर्म्मालस्यञ्च चातुर्य्यं जातिसाङ्कर्य्यमेव च। अयन्तु तामसः कालो हरिः श्यामस्तदाभवत्॥२०॥
पीताम्बरधरत्वाच्च पीत इत्यपि कथ्यते। अग्रजः शुक्लवर्णोऽस्य धर्म्मार्द्धादर्शलक्षणम्॥२१॥
हरिश्चतुर्भुजः शङ्खचक्रपद्मगदाधरः। किरीटी कुण्डलधरो वनमालाविभूषितः॥२२॥
सुनन्दनन्दप्रमुखैः पार्षदैरभिषेवितः। द्वापरे तु युगे त्वेष युगावतार ईश्वरः॥२३॥

तब ध्यान ही मुक्तिसाधन रूप परम धर्म था। अब त्रेताधर्म सुनो। हे ब्रह्मन्! त्रेता में धर्म के एक पाद का ह्रास होता है। मनुष्य स्वधर्मस्थ, धर्मतत्पर, तपोदानरत, रजोगुणान्वित तथा क्रियाशील थे। यज्ञों में अश्वमेधादि होता था। उनमें राजसूय सर्वोत्कृष्ट था। अग्निष्टोम, वाजपेय तथा अतिरात्रादि मुख्य था तथा तब संकल्प प्रवर्त्तित होता था। तब भगवान् युगानुरूप रक्तवर्ण होकर उत्पन्न थे। उनका नाम था उपेन्द्र-वामन। तदनन्तर द्वापर की प्रवृत्ति हुई। इसमें धर्म के दो पैरों का ह्रास हो गया। भगवान् विष्णु श्यामल तथा पीतवर्ण हो अवतीर्ण हुए। उन्होंने नाना वर्ण धारण किये। चतुर्व्यूह अवतार में दो थे श्यामवर्ण, दो थे पीतवर्ण, हिंसा, द्वेष, मात्सर्य, कलह, पैशुन्य, मिथ्या, मोह, शोक, दोष, पाप, व्याधि, आधि, जरा, लोभ, ईर्ष्या, धर्म में आलस्य, चातुर्य तथा जातिसङ्कर, इन सबकी प्रवृत्ति द्वापर की कही गयी है। यह युग तामस युग था। तभी हरि श्यामवर्ण हो गये। वे पीताम्बरधारी थे। तभी पीत कहे गये। इनके बड़े भाई बलराम शुक्ल वर्ण थे। ये धर्म के आदर्श अर्द्धरूप थे। शंख, चक्र, गदा, पद्म, किरीट, कुण्डलधारी-वनमाला विभूषित चतुर्भुज भगवान् हरि सुनन्द-नन्द आदि पार्षदों से घिरे रहते थे। ये ही द्वापर के युगावतार हैं।।११-२३।।

जावालिरुवाच

हिंसाद्वेषादयो धर्म्मा व्याधिमृत्युजरादयः। कुतो जाताः कथं जाताः धर्म्मो वा ह्रसते कथम्॥२४॥

जाबालि कहते हैं—हे प्रभो! हिंसा-द्वेष-जरा-मृत्यु प्रभृति अधर्म कहां से किस प्रकार उत्पन्न होते हैं? धर्म का ह्रास क्यों होता है? कृपा करके कहिये।।२४।।

व्यास उवाच

पुरा ब्रह्मक्रोधजाता रुद्रा एकादशैव तु। जगन्नाशकरा भीमा ईर्ष्यावन्तो हि हिंसकाः॥२५॥
तत्कालानुचितां स्तांस्तु दृष्ट्वा ब्रह्मा प्रजापतिः। दक्षमाज्ञापयामास तेषां सम्बरणक्षमम्॥२६॥
दक्षस्तान् प्राप्य कुमतिं प्राप सङ्गप्रसङ्गतः। ततो हि भगवान् शम्भुः स्वयमागत्य तत्क्षणात्॥२७॥
सर्व्वं संशमयामास क्रोधहिंसाजरादिकान्। तत आरभ्यते सर्व्वे हिंसाक्रोधजरादयः॥२८॥
महेश्वरवलाद्भीता निष्प्रकाशाः स्थिता द्विज। ततोऽभिभूते रजसि तमसि प्रवले सति॥२९॥
द्वापराख्ये युगे विप्र हिंसाद्यास्तु प्रकाशिताः। शम्भुमभ्यद्रवन् सर्व्वे महाभीमतराः समे॥३०॥
तथाभूतांस्तु तान् दृष्ट्वा स्वरक्षार्थं समुद्यतः। शूलं दधार भगवान् भीत एव यथा तथा॥३१॥

शूलहस्तं शिवं दृष्ट्वा ते च भीतास्तदाभवन्। शिवमेवावनं याताः प्रोचुरेतद्द्विजोत्तम॥३२॥

व्यास कहते हैं—हे ब्रह्मन्! पूर्व काल में जगत् नाशार्थ उद्यत ईर्ष्यावान् अतिहिंसक भीषणाकृति एकादश रुद्र ने क्रोध से जन्म लिया था। तदनन्तर प्रजापति ने अनुचित हिंसा को देख कर उसके संवरण में सक्षम दक्ष को इस सम्बन्ध में आदेश दिया। कुमति दक्ष ने पापसंग प्रसंग में उनको अधिकार में किया। तब शंभु ने स्वयं आकर क्रोध, हिंसा, जरा प्रभृति का शमन किया। हे द्विज! हिंसा-क्रोध-जरा आदि शिव के बल से भयभीत होकर निष्प्रभ हो गये। हे विप्र! तब रजोगुण अभिभूत हो गया तथा तमोगुण उद्रिक्त हो उठा। द्वापर में हिंसा आदि का प्रभाव प्रकाशित होता है। तब सभी महाभीषण हिंसा आदि शिव की ओर दौड़ पड़े। तब उनको देख कर भगवान् ने भयभीत होकर अपनी रक्षा के लिये शूल धारण किया। शिव को शूलपाणि देख हिंसा आदि भी भीत हो गये। हे द्विजोत्तम! तब हिंसा आदि शिव की शरण में जाकर कहने लगे।।२५-३२।।

हिंसाद्या ऊचुः

भगवन् भूतभव्येश त्रिगुणेश त्रिलोचन। ब्रह्मपुत्रा वयं सर्व्वे त्वद्भीतिवशगाः स्थिताः।
अप्राप्तस्थितयः सर्वे स्थितिं प्राप्ता इवाधुना॥३३॥
अस्माकं कल्पयस्थानं कर्म्माणि च यथातथम्।
न चेत् करिष्यस्येवं त्वं त्वाञ्च भोक्ष्यामहे वयम्॥३४॥

हिंसा आदि कहते हैं—हे भूत-भविष्य के स्वामी भगवान्! त्रिगुणेश, त्रिलोचन! हम ब्रह्मा के पुत्र हैं। आपके भय से त्रस्त हैं। पहले हमें कहीं स्थान नहीं मिला। अब मानों स्थान मिल रहा है। आप हमारे स्थान तथा कार्य का प्रबन्ध कर दें। यदि आप ऐसा नहीं करते, तब हम आपका ही भक्षण कर लेंगे।।३३-३४।।

व्यास उवाच

तेषान्तद्वचनं श्रुत्वा विकृताकारशालिनाम्। जगाद भगवान् वाक्यं शिवः परमपूरुषः॥३५॥

व्यासदेव कहते हैं—विकृत वदन वाले हिंसा आदि का यह कथन सुनकर परम पुरुष शिव ने कहा।।३५।।

भगवानुवाच

उचितं भवतां वाक्यं मया समवधारितम्। यूयं गच्छत ब्रह्माणं स वो वृत्तिं विधास्यति॥३६॥
स सृष्टिकर्त्ता भगवान् ब्रह्मा देवश्चतुर्मुखः। तेनैव यूयं विहिताः स वो वृत्तिं विधास्यति॥३७॥

शिव कहते हैं—तुम लोगों की प्रार्थना को मैंने मन से सुना। तुम ब्रह्मा के पास जाओ। वे ही तुम लोगों की वृत्ति का विधान करेंगे। भगवान् चतुर्मुख ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता हैं। तुमसब उनके द्वारा रचित हो। वे ही तुम लोगों का वृत्ति विधान करेंगे।।३६-३७।।

व्यास उवाच

इत्युक्तास्ते तदा सर्व्वे शम्भुना मुखरूपिणा। शम्भुं त्यक्त्वा ययुः सर्व्वे ब्रह्मा यत्र चतुर्मुखः॥३८॥
तांस्तु दृष्ट्वा तदा ब्रह्मा सर्व्वलोकपितामहः। उवाच प्रणतान् सर्व्वान् हिंसादीन् द्विजपुङ्गव॥३९॥

ब्रह्मोवाच

किमर्थमागता यूयं के यूयं वद तदद्भुतम्। सर्वे भीमरवा यूयं कस्य पुत्राः कुतो गृहाः॥४०॥

व्यासदेव कहते हैं—सुरेश्वर शम्भु का यह वचन सुन कर उन सबने शम्भु का पीछा छोड़ा तथा ब्रह्मा के पास पहुंचे। हे द्विजपुंगवर हिंसा प्रभृति ने वहां जाकर ब्रह्मदेव को प्रणाम किया। तब सर्वलोक पितामह ने पूछा— "तुम कौन हो? यहां क्यों आये? तुम सभी भयानक भीमरूप तथा भीम शब्द करने वाले हो। तुम किसके पुत्र हो, तुम्हारा गृह कहां है? शीघ्र कहो!।"।।३८-४०।।

हिंसाद्या ऊचुः

वयं हिंसादिनामानस्तव पुत्राः महात्मनः। रुद्रभीताः स्थिता गुप्ता अप्राप्तावसरास्तथा।।
इदानीं ह्रसिते धर्म्मे प्राप्ता ह्यवसरं वयम्।।४१।।
स्थानकर्मर्थिनो भूतास्त्वां शिवोद्दिष्टमागताः।
स्थानानि चाथ कर्म्माणि कल्पयास्माकमीश्वर।।४२।।

हिंसा आदि कहते हैं—हे महात्मन्! हम सब आपके ही सन्तान हैं। हमारा नाम हिंसा आदि है। हम रुद्र भय से भयभीत होकर तथा स्थानशून्य होकर आये हैं। इस समय धर्म की हानि हो रही है। हमें भी स्थान मिल रहा है। वह वहां वास करें। (हम नारायण-पारायण व्यक्ति को देख कर वहां से चले जाते हैं। उसके पास नहीं ठहरते)। हम विशेष रूप से स्थान तथा कार्य के प्रार्थी होकर आये हैं।।४०-४२।।

ब्रह्मोवाच

कामनामा सुतो मेऽस्ति स समादिश्यते हि वः। तेन सर्वे सहायेन कर्म्माणि च करिष्यथ।।४३।।
शरीरं कामसम्भूत क्रोधश्चाकर्म्मसम्भवः। क्रोधाद्भवतु सम्मोह आशा तस्माद्भविष्यति।।४४।।
ततो भवेत्तु व्यामोहो व्यामोहाल्लोभ उद्भवेत्। लोभाद्भवेत्तथा चिन्ता चिन्तया जायते जरा।।
जराया जायते व्याधिर्व्याधितो मरणं भवेत्।।४५।।
मृतो जीवस्तु कामेन पुनः प्रप्नोति देहिताम्। चक्रवत्परिवर्त्तन्ते मृत्यन्ते चाहितादयः।।४६।।
धर्म्मे मतिस्तु येषां वै तान्दृष्ट्वा तु निवर्त्स्यथ। दशा देहादिमृत्व्यन्ता भजन्ते नैव धर्म्मिणः।।४७।।
अधर्म्मोऽप्यपरो मेऽस्ति पुत्रो धर्म्मनिवर्त्तकः। तद्भीते हि स्थिते धर्म्मे यूयं शूराश्चरिष्यथ।।४८।।
(धर्म्मेश्वरं हरिं ये तु भजन्तस्तान् विहास्यथ)।
अधर्म्मोऽपि विभेत्यस्माद्धरेर्नारायणात् प्रभोः।।४९।।

ब्रह्मदेव कहते हैं—काम नामक जो मेरा पुत्र है, उसने मेरे आदेश से व्रत धारण किया है। तुम सब उसके सहायक होकर कार्य करो। काम से शरीर उत्पन्न होता है। अधर्म से क्रोध, क्रोध से सम्मोह, सम्मोह से आशा उत्पन्न होती है। आशा से व्यामोह, व्यामोह से लोभ, लोभ से चिन्ता तथा चिन्ता से जरा उत्पन्न हो जाती है। जरा से व्याधि का तथा व्याधि से मृत्यु की उत्पत्ति कही गयी है। जीव मृत होकर पुनः देहान्तर प्राप्त करता है। काम आदि का यह चक्र परिवर्त्तन में भी चक्रीय गतिरूप है। धार्मिक लोग मृत्यु से नहीं डरते। मेरा अधर्म नामक पुत्र भी है, वह धर्म को हटांने वाला है। जब धर्म अधर्म से भयभीत होगा, तब तुम सब प्रबलता से विचरना। जो धर्मेश्वर हरि का भजन करते हैं, तुम सब उसका त्यागं कर देना। प्रभु नारायण से अधर्म भी डरता है।।४३-४९।।

व्यास उवाच

इत्युक्तास्ते तदा दृष्ट्वा ह्यधर्म्मं ब्रह्मसम्भवम्। कामसाहाय्यमाश्रित्य ह्यवातिष्ठन् द्विजोत्तम॥५०॥
अधर्म्मपुत्रो ह्यवभन्मृत्युर्नाम भयङ्करः। तमादिदेश मर्त्यानां मरणाख्याय कर्म्मणे॥५१॥
तदा स लोकहिंसार्थे नियुक्तस्तातमब्रवीत्॥५२॥

व्यासदेव कहते हैं—ब्रह्मा का यह वचन सुनकर सभी ने अधर्म का अवलोकन किया तथा सभी ने काम का आश्रय ग्रहण किया। हे द्विजोत्तम! भीषण स्वभाव मृत्यु भी अधर्म का पुत्र है। अधर्म ने मृत्युलोक वासीगण की मृत्यु सम्पन्न करने का उसे आदेश दिया। मृत्यु ने लोक पितामह हेतु नियुक्त होकर अधर्म से कहा।।५०-५२।।

मृत्युरुवाच

कथं मां लोकहिंसायै नियोजयसि हे पितः। कथं वाहं करिष्यामि पापं कर्म्म विहिंसनम्॥५३॥

मृत्यु कहता है— हे पिता! आप मुझे लोकहिंसार्थ क्यों नियुक्त कर रहे हैं? मैं हिंसारूप पाप कैसे करूं?।।५३।।

अधर्म्म उवाच

न त्वं लोकस्य हिंसायां पातकी तु भविष्यसि। जरां व्याधिं ज्वरादिञ्च मा सृष्टं प्रलप्स्यसि॥५४॥
तेनैव लोका नंक्ष्यन्ति तत्र नाशात्मको भवान्। अतस्त्वं सर्वदेहेषु कुरुष्वाधिष्ठितं शुभम्॥५५॥
मृतञ्चानुगतो भूया जातञ्चानुजनिष्यसि। यत्राहन्तु निवत्स्यामि तत्र त्वन्तु निवत्स्यसि॥५६॥
अहं नारायणपरं जनं दृष्ट्वा पराङ्मुखः॥५७॥

अधर्म कहता है—इस कार्य से तुमको पाप नहीं होगा। जरा-रोग-ज्वर आदि मेरी ही सृष्टि है। तुम इस कार्य हेतु उनकी सहायता करो। लोग उनके प्रभाव से नष्ट होंगे। उनमें तुम मारात्मक रहोगे। अतः तुम सबल देह में निवास करो। तुम मृत व्यक्ति-प्राणी का अनुगमन करो। उनके जन्म के साथ-साथ तुम भी उत्पन्न हो जाओगे। मैं जहां रहूंगा, वहीं तुम भी रहोगे। मैं नारायण भक्त को देखते ही भाग जाता हूं।।५४-५७।।

व्यास उवाच

एवमुक्तौ ह्यधर्म्मेण मृत्युर्लोकभयङ्करः। हिंसाकलहशाठ्यादिसेनां नीत्वा सहायवान्॥५८॥
विचचार तदा लोके आजन्ममृतिमुक्तितः। ततोऽधर्म्मात् समुद्भूता व्याधयो विविधा अपि॥५९॥
तत्र ज्वरोऽभवज्ज्येष्ठस्त्रिशिरा नवलोचनः। षड्भुजो ह्यष्टदन्तश्च भस्मवर्णः कुचेलकः॥
तिर्य्यक्तारकलोलाक्ष ऊर्द्ध्वश्वासकनासिकः६०॥
एवं प्रवाहिकाशोथशूलगुल्मोदराह्वयाः। वातश्लेष्मकफस्थानविकाराद्रोगनामकाः॥६१॥
ततो जरा कालकन्या ह्यपत्यार्थं पतीच्छया। उवाच मृत्युं वचनं पतिर्म्मम भवेति वै॥६२॥

व्यासदेव कहते हैं—अधर्म की बात सुन कर लोकभयंकर मृत्यु हिंसा-कलह-गर्व आदि सैनिकों को साथ लेकर जन्म-मृत्यु युक्त लोगों के बीच विचरण करने लगा। वहां अधर्म से उत्पन्न अनेक व्याधियां प्रादुर्भूत हो गयीं। ज्वर के ३ शिर, ९ नेत्र, ६ हाथ, आठ दांत थे तथा उसका वर्ण भस्म के समान था। उसके वस्त्र कुत्सित थे। उसके नेत्र

रक्तवर्ण, चंचल तथा वक्ररूप थे। उसकी नासिका से श्वास ऊर्ध्व में उठती थी। इसी तरह प्रवाहिका, शोथ, शूल, गुल्म, उदरी, वातश्लेष्मा, किंवा श्लेष्मा से ही नाना रोग उत्पन्न हो गये। तदनन्तर अधर्म की कन्या जरा की उत्पत्ति हो गयी। जरा ने पुत्रेच्छा से भ्राता मृत्यु से कहा कि तुम मेरे पति हो जाओ।।५८-६२।।

मृत्युरुवाच

जरे नाहं पतिस्तुभ्यं पतिस्ते विधिकल्पितः। अस्ति प्रज्वारनामा हि व्याधिराजः सुवीर्य्यवान्।।६३।।
स मे भ्राता सुहृद्बन्धुस्तस्य भार्य्या भविष्यसि। पत्नी त्वमनुजभ्रातुर्म्मम भग्नीव सर्वथा।।६४।।

मृत्यु कहता है—हे जरा! मैं तुम्हारा पति नहीं हूं। तुम्हारा ब्रह्मा द्वारा नियत पति है प्रज्वार। यह पराक्रमी तथा व्याधिराज है। वही मेरा भाई, बन्धु, मित्र है। तुम मेरे कनिष्ठ भ्राता की पत्नी हो जाओ। अतः सर्वतोभावेन मेरी भगिनी हो गईं।।६३-६४।।

जरोवाच

असम्मताहं लोकेषु मा वदिष्यन्ति मां जनाः। देहि मे पृतनां वीर प्रज्वारं येन याम्यहम्।।६५।।

जरा कहती है—मैं लोक में अप्रिय हूं। बाहर होते ही लोग मेरे प्रति विडम्बना करने लगेंगे! हे वीर! मुझे सेना प्रदान करो। मैं प्रज्वार के पास जाऊंगी।।६५।।

व्यास उवाच

इत्युक्तः स तया तस्यै ददौ सेनां महाद्भूताम्। सा तया सेनया युक्ता ययौ प्रज्वारमीश्वरम्।।६६।।
प्रज्वारस्तु प्रलभ्यैतां जरां पत्नीं स्वसम्मताम्।
सेनाञ्चात्यद्भूतां लब्ध्वा हर्षितोऽभूद्द्विजोत्तम।।
जरामुवाच विनयात् प्रज्वारः सुभगः पतिः।।६७।।

व्यासदेव कहते हैं—जरा की बात सुन कर मृत्यु ने उसके लिए विचित्र सैन्य प्रस्तुत किया। जरा सैन्य के साथ प्रज्वार के पास गयी। हे द्विजप्रवर! प्रज्वार ने प्रिय पत्नी जरा को देखा तथा विचित्र सैन्य प्राप्त करके सहर्ष, सविनय जरा से कहने लगा।।६६-६७।।

प्रज्वार उवाच

जरे गच्छ मया सार्द्धं ससैन्या कलहादिभिः। सम्मर्द्दय नरान् सर्वान् विधिनाभिमतं यथा।।६८।।
एते वै व्याधयः सर्वे मम सैन्या महाबलाः। तवापि क्रोधहिंसेर्ष्यालोभमोहादयो मताः।।
एतैर्व्यापादयिष्यावो जगत् स्थावरजङ्गमम्।।६९।।

प्रज्वार कहता है—हे जरे! मेरे साथ सेना लेकर तथा कलह आदि के साथ चलो तथा लोगों को मर्दित करो। यह ब्रह्मा का भी मत है। यह सभी महाबली, पराक्रमी, व्याधि सैन्य तथा लोभ-हिंसा-ईर्ष्या-क्रोध-मोह भी तुम्हारी प्रधान सेना है। हम सब इनकी सहायता से स्थावर-जंगमात्मक जगत् का नाश करें।।६८-६९।।

व्यास उवाच

इति निर्णीय प्रज्वारो जरा च दम्पती तदा। लोकानां मर्दनार्थाय जग्मतुः सेनयान्वितौ।।७०।।

तदा वै सकला लोकाः स्थावरा अपि सर्वशः। युयुधुः सह ताभ्याञ्च वलवन्तो महौजसः॥७१॥
वलवद्भिः सर्वलौकैः प्रज्वारस्तु प्रपीडितः। शिवं शरणमापन्नः स च तं समपालयत्॥७२॥
जराञ्च जगृहुः सर्वे लोकाः केशेषु दुर्मतिम्॥७३॥
केशाकर्षणधृष्टा सा जरा लोकैः पराजिता। उवाच सर्वान् लोकान् वै भूत्वा परमसुन्दरी॥७४॥

व्यासदेव कहते हैं—नवदम्पति प्रज्वार-जरा ने यह निर्णय लेकर लोकमर्दनार्थ सैन्य के साथ प्रस्थान किया। तब बलवान् महातेजस्वी सभी लोग एवं स्थावर समूह उनके साथ युद्धरत हो गया। तब महाबली पराक्रमी प्रज्वार सबसे पीड़ित होकर शिव की शरण में गया। शिव ने उसकी रक्षा किया। तब लोगों ने दुर्मति जरा को पकड़ा। उसके केश पकड़ कर घसीटा। इससे अवमानना प्राप्त कर जरा लोगों से पराजित हो गयी। उसने सबसे कहा।।७०-७४।।

जरोवाच

हे लोका नरवृक्षाद्याः शरणं वो गताह्यहम्। मां पालयत वै सर्वे भार्य्या युष्माकमप्यहम्॥७५॥
पतिर्मे यस्तु प्रज्वारः स युष्मत्पीडितो गतः। अतो मे विधवाया हि यूयं भवत वै धवाः॥७६॥

जरा कहती है—हे मानव! वृक्ष आदि लोकवासीगण! मैं तुम सबकी शरण में हूं। मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हारी भार्या हूं। अब विधवा हो गयी।।७५-७६।।

व्यास उवाच

इत्युक्तास्ते तदा लोका धर्म्म्यां मतिमुपागताः। तां स्वीचक्रुस्तदा दुष्टां जरां तन्मुग्धबुद्धयः॥७७॥
सा जरा तांस्तदा प्राप्य हिंसेर्ष्यादिभिरन्विता।
लोकान् जीर्णांश्चकारैव भूयः प्रज्वारमाप च॥७८॥
प्रज्वारस्तु तदा भूतः शैवनामा सुभक्तिमान्। येन सस्त्रीसैन्यकेन देहाख्यं पुरमर्दितम्॥७९॥
देहं पुरमिदं जीवो जनयित्वा पुरञ्जनः। (हेतुर्हि कामजातस्य बुद्धिर्नाम पुरञ्जनी॥८०॥
नवद्वारे पुरे देहे एतावेव ह्यधिष्ठितौ। पञ्चप्राणात्मको वायुः पुरपालक उच्यते॥८१॥
प्रज्वारकालकन्याभ्यां मर्दितन्तु पुरं वलात्। त्यक्त्वा पुरञ्जनः) शीघ्रं पुरञ्जन्या पलायते॥८२॥
स्थित्वा देहे हरौ भक्तिं कुरुते चेत् पुरञ्जनः। तदा मृत्युवशं नैति न चेत् पतति मूढधीः॥८३॥
तस्मात् पुरञ्जनीं शुद्धां कृत्वा सुरपतिर्भवेत्। जराप्रज्वारव्याध्याद्यैः सुभीमैर्नानुबध्यते॥८४॥
इति ते कथितं विप्र यत् पृष्टोऽहमिति त्वया। हिंसादीनां जन्मकर्म्मधर्म्महासप्रयोजनम्॥८५॥

।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे उत्तरखण्डे द्वादशोऽध्यायः।।



व्यासदेव कहते हैं—जरा का वचन सुन कर लोग मुग्ध हो गये। कामभाव ने जब जरा को जीर्ण किया। तब वह पुनः प्रज्वार के पास पहुंची। तब प्रज्वार उत्तम शैव एवं भक्त हो गया था। प्रज्वार ने स्त्री सैन्य की सहायता से सभी के देह नामक नगर को जीर्ण कर दिया। जीवगण देह रूपी पुरी का उत्पादन करते हैं। तभी वे पुरञ्जन कहे गये

हैं। इस पुर का अनन्य कारण है, काम से उत्पन्न बुद्धि। तभी बुद्धि पुरञ्जनी कही जाती है। यह ९ द्वार वाले देह की अधिष्ठाता है। पञ्च प्राण ही वसु रूप देहपुर पालक हैं। इस पुर को मर्दित करके पुरंजन तथा पुरंजनी इसमें से भाग जाते हैं। यदि देह में रहते पुरंजन हरिभक्ति करता है, तब मृत्यु वशीभूत हो जाती है, अन्यथा वह मूढ़बुद्धि पुरंजन अधःगामी होता है। जब पुरंजनी शुद्ध होती है, तब उसे अमर पति प्राप्त होता है। तब ज्वरा, प्रज्वार, व्याधि आदि उसे पकड़ नहीं पाते। हे विप्र! मैंने तुम्हारे जिज्ञासित विषयक हिंसादि का कर्म, उनका ह्रास आदि कह दिया।।७७-८५।।

।।द्वादश अध्याय समाप्त।।



त्रयोदशोऽध्यायः

जाति निरूपण

अद्भुतं भवता प्रोक्तं श्रुतञ्चैवाद्भुतं मया। कीदृशं जातिसाङ्कर्य्यं कथं जातं वदस्व तत्।।१।।

जाबालि कहते हैं—आपने पूर्व में अद्‌भुद् कथा कही तथा मैंने भी उस उद्‌भुद् कथा का श्रवण किया। अब संकर जाति कैसी है, उसकी सृष्टि कैसे हुई, यह कहें।।१।।

व्यास उवाच

पुरा वेणो धर्म्मपथं त्यक्त्वैश्वर्य्यमकारयत्। तस्याधिकारकाले तु जातीनां सङ्करोऽभवत्।।२।।

व्यासदेव कहते हैं—पूर्वकाल में वेण राजा ने धर्ममार्ग का त्याग करके राज्य किया। उसके अधिकार बल से संकर जाति का जन्म हुआ।।२।।

(जावालिरुवाच

कोऽसौ वेणः कस्य पुत्रः किंकर्म्मा किं कुलोद्भवः।
धर्म्मातिक्रमणं वापि कीदृशं तस्य तद्वद।।३।।

जाबालि कहते हैं—यह वेन कौन था? किसका पुत्र था? उनका धर्म क्या था? किस वंश में उसका जन्म हुआ? उसने धर्मत्याग क्यों किया?।।३।।

व्यास उवाच

ब्रह्मणस्तनयः पूर्वं नाम्ना स्वायम्भुवोऽभवत्)। तस्य पुत्रद्वयं जज्ञे तत्र ज्येष्ठ प्रियव्रतः।।४।।
कनिष्ठो मानवः पुत्रो उत्तानपादनामकः। तस्य पुत्रो ध्रुवो नाम त्रैलोक्याद्भुतकीर्त्तिमान्।।५।।
यः पञ्चवर्षस्तपसा सुनीतिगर्भसम्भवः। आराध्य कृष्णं शरणं प्राप दृष्ट्वा स्वचक्षुषा।।६।।
पदञ्च विमलं प्राप सर्वोपरि सुविश्रुतम्।।७।।
वत्सरस्तस्य पुत्रोऽभूद्भूमिगर्भोद्भवो वली। पुष्पार्णस्तस्य पुत्रोऽभूत् सुनीथागर्भसम्भवः।।८।।

(पुष्पार्णस्य प्रभायास्तु व्युष्टः पुत्रो वभूव ह। व्युष्टपुत्रः सर्वतेजाः पुष्करिण्यां वभूव ह॥९॥

व्यासदेव कहते हैं—पूर्वकाल में ब्रह्मा के पुत्र स्वायम्भुव मनु के दो पुत्र थे। ज्येष्ठ था प्रियव्रत, कनिष्ठ था उत्तानपाद। उत्तानपाद का पुत्र था ध्रुव। त्रैलोक्य में ध्रुव की कीर्त्ति आश्चर्यजनक है। सुनीति के गर्भ से उत्पन्न ध्रुव ५ वर्ष की आयु में श्रीकृष्ण की आराधना हेतु तपश्चरण करने गये तथा अपने नेत्रों से उनका दर्शन करके शरणापन्न हो गये। उन्होंने सर्वोपरि विख्यात विमल पद प्राप्त किया। उनके औरस से तथा उनकी भूमि नामक पत्नी के गर्भ से बली वत्सर जन्मा। उसका पुत्र था पुष्पार्ण। पुष्पार्ण की माता का नाम भी सुनीथा था। पुष्पार्ण को प्रभा के गर्भ से व्युष्ट नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके औरस से तथा उसकी पत्नी पुष्करिणी के गर्भ से सर्वतेजा जन्मा।।४-९।।

तस्य पुत्रो मनुर्नाम आकूत्यामुदपादयत्। उन्मुकश्चमनोः पुत्रो लड्वलागर्भसम्भवः)॥१०॥

तस्य पुत्रः पुष्करिण्या मङ्गनामा वभूव ह। अङ्गपुत्रोऽभवद्वेणः सुनीथागर्भसम्भवः॥११॥

शृणु तस्य चरित्रञ्च वेणस्याधर्म्मशीलिनः। सुनीथा मृत्युकन्यासीत् पत्नीह्यङ्गस्य सुन्दरी॥१२॥

सर्वतेजा की पत्नी आकूति के गर्भ से मनु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र था उन्मूक, जिसकी माता का नाम था लड्वला। उन्मूक (उलूक) का पुत्र था अंग। अंग की माता थी पुष्करिणी। अंग की पत्नी सुनीथा के गर्भ से वेण राजा उत्पन्न हुआ। अब उस अधर्मी अंगपुत्र वेण का चरित्र सुनो। उसकी माता अंगराज की पत्नी सुनीथा मृत्यु की सुन्दरी कन्या थी।।१०-१२।।

तत्राङ्गो जनयामास पुत्रेष्ट्या वेणनामकम्। वेणे जाते सुस्थचित्तो बभूवाङ्गो नृपोत्तमः॥१३॥

वेणो राजकुमारोऽसौ सदा दर्पसमन्वितः। प्राणैः प्रपीड़यामास सर्वजन्तून् स्वभावतः॥१४॥

गृहे गृहे गृहस्थानां वालानाकृष्य सम्भ्रमात्। बहून् वालान् गुणैर्बद्ध्वा चिक्षेपागाधपाथसि॥१५॥

इत्यादिदुःखदं कर्म्म करोत्यहरहस्तदा। लोकाश्चपुत्रशोकादितप्ता राजानमब्रुवन्॥१६॥

तेन पुत्रेण तप्तोऽसौ राजा चाङ्गो वनङ्गतः। अराजके तदा राज्ये मुनयो वेणमुल्वणम्॥१७॥

स्थापयामासुरत्युग्रं रहितं धर्म्मबुद्धितः। स्वभावपीड़को वेणो लब्ध्वा सिंहासनं पुनः॥१८॥

धर्म्मान्निषेधयामास वर्णाश्रमकुलोचितान्। न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित्।
इति न्यवारयद्धर्म्मान् भेरीघोषेण सर्व्वतः॥१९॥

धर्म्मलोपभयाद्विप्रास्तं वेणं नास्तिकोत्तमम्। राजत्वानुचितं गत्वा भीता इव तदाब्रुवन्॥२०॥

राजा अंग ने पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न करके वेण राजा की उत्पत्ति की थी। वेण का जन्म होने पर राजा अंग स्वस्थ मन हो गये। राजकुमार वेण सर्वदा गर्व में भरा रहता था। वह स्वभावतः सभी प्राणीगण को पीड़ित करता तथा हिंसा करता था। वह घर-घर से गृहस्थों के बालकों को खींच कर रस्सी बांध कर अगाध जल में फेंकता रहता। अन्य को दुःख देने वाले कर्म का ही अनुष्ठान करता रहता। तब प्रजागण अपने-अपने पुत्रशोक में पड़कर राजा अंग के पास आये तथा समस्त वृत्तान्त उनसे कहा। पुत्र की करनी से दुःखी राजा अंग (राज त्याग करके) वन में चले गये। राज्य को राजाहीन तथा अराजकता ग्रस्त देख कर मुनिगण ने धर्मबुद्धिरहित अत्युग्र स्वभाव वेण को राजा पद पर बैठाया। स्वभाव पीड़क राजा वेण ने सिंहासन पाकर वर्ण-आश्रम तथा वंश परम्परागत धर्म का निवारण प्रारम्भ किया। वेण ने कहा—हे द्विजगण! यज्ञ-दान-होम कर्त्तव्य नहीं है। इस प्रकार उसने डुग्गी पिटवा कर इस प्रकार से धर्म निवारण

की आज्ञा का प्रचार किया। ब्राह्मण गण धर्म लोप करने वाले नास्तिकों में प्रमुख वेण राजा के पास आकर कहने लगे।।१३-२०।।

मुनय ऊचुः

राजन् वेण महाभाग ध्रुववंशसमुद्भव। राजा सिंहासनगतो धर्म्मान् कस्माज्जिहासससि॥२१॥
नास्ति धर्मात् परो बन्धुः सर्व्ववर्णाश्रमस्य ह।
त्यक्तधर्म्मो जनोऽल्पायुः सद्यो भवति नान्यथा॥२२॥
त्यक्तधर्म्मान्नृपात् कोऽपि न विभेति कदाचन। त्यक्तधर्म्मे हि भूपे तु प्रजा धर्म्मं परित्यजेत्॥२३॥
त्यक्तधर्म्मे जने भूते धनं यस्य न तस्य तत्।
यस्य स्त्री तस्य न स्त्री च गृहं यस्य न तद्गृहम्॥२४॥
अधर्म्मराजको देशोऽराजकश्चोभयं समः। विष्णुर्न पूज्यते यत्र स हि देशो ह्यराजकः।
अराजके परस्त्रीभी रमते तु बलात् परः॥२५॥
ब्राह्मणः क्षत्रियां गच्छेत् क्षत्रियो ब्राह्मणीमपि। एवमादिविरुद्धेन धर्म्मेण सङ्करो भवेत्॥२६॥
सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च। एवं धर्म्मस्य वैषम्यं दुष्टराज्ये भवत्युत॥२७॥

मुनिगण कहते हैं—हे ध्रुव कुलोत्पन्न महाभाग राजा वेण! आप सिंहासन पर आरूढ़ होकर, राजा होकर भी धर्मत्याग क्यों कर रहे हैं? सभी के लिए वर्णाश्रम धर्म से बड़ा बन्धु अन्य कोई नहीं है। धर्मत्याग से लोग अल्पायु होते हैं। यह अन्यथा वाक्य नहीं है। धर्मत्यागी राजा से कोई भयभीत नहीं होता। राजा जब धर्मत्यागी है, तब प्रजा भी धर्मत्याग कर देती है। तब जिसका धन है, उसका नहीं रह जाता। जिसका घर है, वह उसका नहीं रह जाता। देश में अधर्म का राजत्व हो जाता है। तब अराजकता भयप्रद होती है। जहां विष्णु पूजा नहीं होती, वह देश अराजक है। अराजक देश में परपुरुष परस्त्री के साथ बलात् संसर्ग करता है। ब्राह्मण क्षत्रिय स्त्री से गमन करने लगता है। कुल संकर हो जाता है। जहां संकर कारी कुलघाती होते हैं, वह वंश संकर हो जाता है। उस वंश के कारण नरक हेतु दुष्ट राजा के धर्म का अधःपात होता है।।२१-२७।।

वेण उवाच

श्रुतं वो नरकार्थो हि सङ्करो भवति ध्रुवम्। तस्मादत्र करिष्यामि सङ्करानेव सर्व्वथा॥२८॥

वेण कहता है—आपकी बात सुनी कि संकरदोष नरक का कारण है। यह निश्चय है। तब मैं संकरदोष हर तरह से प्रवर्त्तित करूंगा। देखूंगा कि इससे कैसा अधर्म होता है।।२८।।

कीदृशो दृश्यते धर्म्मो भवत्येव हि सङ्करात्। इत्युक्त्वान्तःपुरं राजा प्रविवेश त्वरान्वितः॥२९॥
विप्रा विमनसो भुत्वा जग्मुस्ते हि यथागतम्। बलात्कारेण ब्राह्मण्यां सङ्गमय्य तु क्षत्रियम्॥३०॥
पुत्रमुत्पादयामास वेणो नास्तिक उत्तमः। द्विजं क्षत्रियपत्न्याञ्च वैश्यपत्न्याञ्च क्षत्रियम्॥३१॥
द्विजं वैश्यस्त्रियाञ्चापि ब्राह्मण्यां वैश्यमप्युत। एवमन्यं तथान्यस्यां सङ्गमय्य स भूपतिः॥३२॥
पुत्रान् वै जनयामास वर्णसङ्करकारकः। सङ्कीर्णायाञ्च सङ्कीर्णं सङ्गमय्य ततो नृपः॥३३॥

चकार सङ्करानन्यान् दौराज्येन स भूपतिः। शूद्रायां वैश्यतो जज्ञे करणो नाम सङ्करः॥३४॥

वैश्यायां ब्राह्मणाज्जातोऽम्बष्ठो गान्धिको वणिक्।
कंसकार शङ्खकारौ ब्राह्मणात् संबभूवतुः॥३५॥

उग्रश्च राजपुत्रश्च तस्यां क्षत्राद्बभूवतुः। कुम्भकारतन्त्रवायौ क्षत्रपत्न्यां बभूवतुः॥३६॥

कर्म्मकारश्च दासश्च शूद्रात्तस्यां बभूवतुः। वैश्याद्बभूवतू राज्ञ्यां मागधो गोप एव च॥३७॥

क्षत्रियात् शूद्रकन्यायां जातौ नापितमोदकौ। ब्राह्मणात् शूद्रकन्यायां वारजीवी बभूव ह॥३८॥

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात् सूतो मालाकारस्तथा मुने।
वैश्यात्तु द्विजकन्यायां जातौ ताम्बूलितौलिकौ॥३९॥

विंशतिः सङ्करा एते जावाले कथिता स्तव। उत्तमाः सङ्करा एते मध्यमानथ मे शृणु॥४०॥

व्यासदेव कहते हैं—राजा ने यह कहा तथा शीघ्रता से अन्तःपुर में गया। ब्राह्मणगण अनमने होकर अपने गृह चले गये। नास्तिक वेण ने बलात् ब्राह्मणी का संभोग क्षत्रिय से कराकर पुत्रोत्पादन किया तथा क्षत्रिया के साथ ब्राह्मण पुरुष का, ब्राह्मणी के साथ वैश्य का समागम कराकर पुत्रोत्पत्ति कराने लगा। एवंविध वह अन्य जाति के पुरुष के साथ अन्य जाति की स्त्री को संगत करा कर वर्णसंकर सन्तान की उत्पत्ति कराने लगा। संकीर्ण जाति के साथ अन्य संकीर्ण जाति को संगत कराकर वह राजा अपने दौरात्म्य के कारण अन्य संकर जाति की उत्पत्ति करने लगा। शूद्रा स्त्री तथा वैश्य पुरुष द्वारा उत्पन्न सन्तान से अम्बष्ट जन्मे। ब्राह्मण पति तथा वणिक स्त्री के गर्भ से गन्धवणिक् तथा कांस्यवणिक् जन्मे। उपक्षत्रिय तथा 'रजपूत' क्षत्रिय का जन्म कहते हैं। क्षत्रिय पुरुष तथा शूद्रा के संयोग से उपक्षत्रिय जन्मे तथा क्षत्रिय पुरुष तथा वणिक् स्त्री के संयोग से 'रजपूत' जन्मे। क्षत्रिय पत्नी तथा ब्राह्मण पुरुष के संयोग से कुंभकार तथा जुलहे का जन्म हुआ। कर्मकार एवं दास की उत्पत्ति शूद्र पत्नी तथा ब्राह्मण पुरुष के संयोग से कही गयी है। वैश्य पुरुष तथा क्षत्रिय स्त्री के संयोग से मागध जाति का तथा गोप जाति का जन्म हुआ। शूद्र पुरुष तथा ब्राह्मण कन्या के संयोग से नाई तथा मोदक जन्मे। ब्राह्मण पुरुष तथा शूद्र कन्या के संयोग से वारजीवी जाति की उत्पत्ति कही गयी। हे मुनिवर! ब्राह्मणी स्त्री तथा क्षत्रिय के संयोग से सूत जाति की उत्पत्ति हुई। वैश्य पुरुष तथा शूद्र कन्या के संयोग से माली, पनवाड़ी, तैली जन्मे। हे जाबाल! इस २० प्रकार की संकर जाति का वर्णन तुमसे किया। ये उत्तम संकर हैं। अब मुझसे मध्यम संकर जाति का वर्णन सुनो।।२९-४०।।

वैश्यायां करणाज्जातौ तक्षा रजक एव च। स्वर्णकारः स्वर्णवणिक् तस्याममम्बष्ठसम्भवौ॥४१॥

वैश्यायां गोपतो जातावाभीरतैलकारकौ। गोपात् शूद्रागर्भजातौ तथा धीवरशौण्डिकौ॥४२॥

मालाकारात्तु सम्भूतौ नटः शावाक एव च। मागधादपि शूद्रायां जातौ शेखरजालिकौ॥४३॥

. करण पुरुष तथा वणिक स्त्री के संयोग से तक्षा तथा धोबी जन्मे। सोनार तथा स्वर्णवणिक की उत्पत्ति अम्बष्ट पुरुष तथा वणिक स्त्री के संयोग से तथा वणिक स्त्री एवं गोप पुरुष के संयोग से तेली की उत्पत्ति हुई। धीवर तथा शौण्डिक का जन्म गोप पुरुष तथा शूद्रा के संयोग से हुआ। माली पुरुष तथा शूद्रा के संयोग से नट जाति तथा शावक जाति जन्मी। मागध पुरुष तथा शूद्रा स्त्री के द्वारा शेखर तथा जालिक जाति वाले जन्मे।।४१-४३।।

एते वै मध्यमाः प्रोक्ता अन्त्यजानपि मे शृणु। वैद्यपत्न्यां स्वर्णकारान्मलेगहिरजायत॥४४॥

कुड़वः स्वर्णवणिजो वैद्यपत्न्यां बभूव ह। शूद्राच्च ब्राह्मणीगर्भाच्चाण्डालस्य च सम्भवः॥४५॥
आभीराद्गोपकन्यायां वरुड़ः समजायत। तक्षोऽभूद्वैश्यकन्यायां चर्म्मकारश्च शिल्पवित्॥४६॥
घण्टजीवी तु रजकाद्वैश्यायां संबभूव ह। वैश्यायाञ्च तैलकाराद्दोलावाही बभूव ह॥४७॥
धीवरादपि शूद्रायां मल्लजातिर्बभूव ह। इत्यादयोऽन्त्यजाः प्रोक्ता वर्णाश्रमवहिष्कृताः॥४८॥
षट्त्रिंशज्जातकर्म्माणि साधिकाः कथितास्तव। एतेषु विंशतीनान्तु पुरोधाः श्रोत्रियो द्विजः॥४९॥
चतुर्भ्य एव वर्णेभ्यो ये जातास्ते किलोत्तमाः। तत्र येऽम्बासङ्गमेन सङ्करान्तरकारकाः॥५०॥
ते प्रोक्ता मध्यमा विप्र अधमाः सङ्करान्तराः। सङ्करान्तरसम्भूताः सचाण्डालमलादयः॥५१॥

यह मैंने मध्यम संकर जाति का वर्णन किया है। अब अन्त्यज संकर जाति का वर्णन सुनो। हे मुने! स्वर्णकार पुरुष तथा वैद्य स्त्री संयोग जनित गर्भ से गृही जनते का, कुड़व जाति- स्वर्ण वणिक पुरुष वैद्यपत्नी के संयोग से जन्मी। शूद्र पुरुष तथा ब्राह्मण स्त्री के मिलन से चाण्डाल जाति का जन्म हुआ। आभीर पुरुष तथा गोप स्त्री के संयोग से बडुर जाति का जन्म कहा गया। तक्ष जाति के पुरुष का वैश्य कन्या से योग होने पर शिल्पवृत्ति चर्मकार जन्मे। वर जाति के पुरुष तथा वैश्य कन्या के संयोग से घट्टजीवी जाति जन्मी। तेली पुरुष तथा वैश्य कन्या के संयोग से दोलावाही जाति जन्मी। धीवर पुरुष तथा शूद्रा के संयोग से मत्त जाति की उत्पत्ति कही गयी है। इत्यादि। अन्त्यज संकर जाति वर्णधर्म तथा आश्रम धर्म रहित होती है। इत्यादि मैंने ३६ जाति का वर्णन तुमसे किया है। इनमें २० जाति के पुरोहित श्रोत्रिय ब्राह्मण हो सकते हैं।

चारों वर्णों से संकर जातिं की उत्पत्ति कही गयी। उत्तम संकर जाति के अपर संसर्ग से जो संकर जाति उत्पन्न होती है, वह मध्यम संकर जनते हैं। अन्य प्रकार संकर चाण्डालादि जाति तथा प्रतिलोम सम्बन्ध जनित संभूत जाति अधम है।।४४-५१।।

शाकद्वीपात् सुपर्णेन चानीतो यः स देवलः। शाकद्वीपी द्विजः सोऽभूद्विश्रुतो धरणीतले।
देवलाद्गणको जातो वैश्यायां वादकोऽपि च॥५२॥
वेणस्य स्वाङ्गात् सम्भूतो म्लेच्छो नाम सुतो वरः। पुलिन्दः पुक्कशश्चैव खशो वै यवनस्तथा॥५३॥
सुह्मकम्बोजशवराः खरश्चेत्यादयः सुताः। म्लेच्छस्य संबभूवुश्च म्लेच्छभेदास्त एव हि॥५४॥
एतान् दृष्ट्वा मुनिगणा धर्म्मव्यतिक्रियोद्भवान्। तन्तु हन्तुं दुरात्मानं सर्व्वे ते ऋषयो ययुः॥५५॥
ते गत्वा तत्र दृष्ट्वा च क्रोधाविष्टा मुनीश्वराः। आधावन्तं वाक्यवज्राद्धूङ्कारेणाहनच्च तम्॥५६॥
तस्य हूङ्कारनष्टस्य मथित्वा पाणियुग्मकम्। पृथुमाद्यं क्षितीशानां सपत्नीकमभावयन्॥५७॥
जगत् स्वास्थ्यं ततः प्राप जाते नारायणात्मनि। धर्म्माः पुनः प्रवृत्ताश्च देवगोब्राह्मणा अपि॥५८॥
प्रातिकूल्यविहीने हि मरुतीव नदीगणाः। सर्व्वे विषिषिचुर्भूपं तमेव पृथुनामकम्॥५९॥
ततो जग्मुर्मुनिश्रेष्ठाः पृथुना विहितार्हणाः॥६०॥

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे उत्तरखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः।।

गरुड़ शाकद्वीप से जिन ब्राह्मणों को लाये थे, वे यहां शाकद्वीपी ब्राह्मण कहे गये हैं। इन ब्राह्मणों से होम-पूजा परायण गणक जाति उत्पन्न हो गई। वेण राजा के शरीर से म्लेच्छ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुलिन्द, पुक्कश, खस, यवन, सौक्ष्म, काम्बोज, शबर, क्षर इत्यादि पुत्र इस म्लेच्छ वेणपुत्र से उत्पन्न हुए। ये ही म्लेच्छ हैं। ऋषियों ने इन अधर्म कर्म से उत्पन्न म्लेच्छों को देख कर दुरात्मा वेण का वध करने उसके पास गये। मुनियों ने वहां जाकर क्रोधावेश में उसकी ओर दृष्टिपात किया तथा सामने आये राजा को हुङ्कार से तत्काल मृत कर दिया। तदनन्तर हुंकार से नष्ट वेण की दोनों बाहु का मन्थन करके आदिराज पृथु तथा उनकी पत्नी का आविर्भाव सम्पन्न कराया। नारायण रूपी पृथु ने जन्म लेकर जगत् को स्वस्थ किया। सभी धर्म तत्पर हो गये। देवता, गौ, ब्राह्मण अनुकूल वायु बहने के कारण बहते नदी स्रोत की तरह यथानियम चलने लगे। सबने पृथु को उसके पिता के राज्य पर अभिषिक्त किया। पृथु ने उनकी पूजा किया। तब मुनिगण यथास्थान चले गये।।५२-६०।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।



चतुर्दशोऽध्यायः

संकर जाति व्यवस्था

जावालिरुवाच

ततः किमकरोद्राजा पृथुर्नारायणात्मकः। सङ्कराणाञ्च जातीनां किं बभूव पृथौ नृपे॥१॥

जाबालि कहते हैं—हे मुनिवर! तदनन्तर विष्णु रूप से अवतीर्ण राजा पृथु ने क्या किया? संकर जाति वालों की क्या व्यवस्था की गई? कृपया कहें।।१।।

व्यास उवाच

अभिषिक्तः पृथू राज्ये धर्म्मेण पालयन् प्रजाः। मनःस्वास्थ्यं न च प्राप पप्रच्छाहूय भूसुरान्॥२॥

व्यासदेव कहते हैं—हे विप्रप्रवर! पृथु राजा ने अभिषिक्त होकर धर्मानुसार प्रजा पालन प्रारम्भ किया, तथापि चित्तशान्ति नहीं पा सके। तब उन्होंने ब्राह्मणों को बुला कर पूछा।।२।।

पृथुरुवाच

कथं मे मनसोऽस्वास्थ्यं राज्ये पालयतः प्रजाः।
(निरन्ना वा प्रजाः) कस्मान्निर्वृतिं यान्ति भूसुराः॥३॥

पृथु कहते हैं—हे द्विजगण! मैं प्रजा वर्ग का पालन करता हूं, तथापि मेरे मन में अशान्ति भरी है। प्रजागण अन्न के अभाव से क्यों मृत हो रहे हैं?।।३।।

ब्राह्मणा ऊचुः

राजंस्तव पिता बेणः प्रक्षिप्तधर्म्मसञ्चयः। वर्णानां सङ्करांश्चक्रे बलादेव निवारितः॥४॥

अधर्म्मसम्भवास्ते वै सङ्कराः पृथिवीतले। वर्त्तन्त इति दुःखेन आत्मा ते कलुषीकृतः॥५॥
पृथ्वी तद्धारणक्षामा प्रजाभ्यो नान्नदायिनी। एतत्ते कथितं सर्व्वं यत् पृष्टा भवता वयम्॥६॥

ब्राह्मण गण कहते हैं—हे महाराज! तुम्हारे पिता वेण ने धर्म की उपेक्षा करके लोकमर्यादा को न मानकर सभी वर्णों को संकर कर दिया। इस प्रकार अधर्म से उत्पन्न संकर जाति भूतल पर स्थित है। इस दुःख से तुम्हारी आत्मा कलुषित है। पृथिवी भी उनका भार उठाने में असमर्थ हो रही है। अतः उनको अन्न नहीं दे रही है। तुमने हमसे जो कुछ पूछा था, उसका उत्तर दे दिया।।४-६।।

पृथुरुवाच

सङ्कराणां विधेयं किं केवलाधर्म्मजन्मनाम्। हन्तव्या रक्षणीया वा केन भद्रं भवेदिह॥७॥
किमर्थं विधिसृष्टास्ते हन्तव्याः स्युः कथं नु ते। स्थितेषु तेषु सर्व्वेषु पृथ्वी नान्नप्रदा मम॥८॥
किं कर्त्तव्यं किं नु पथ्यं वेणकल्मषसम्भवे। केन शान्तिर्भवेन्नॄणां ब्रूत मे विप्रसत्तमाः॥९॥

पृथु कहते हैं—हे महाशयगण! इन अधर्मोत्पादित जाति का विनाश साधन क्या है अथवा ब्रह्मा ने इनके लिए क्या कर्त्तव्य कहा है? क्या करने पर यहां मंगल हो सकेगा? विधाता ने इनका सृजन ही क्यों किया? कैसे इनका विनाश हो, अन्यथा अन्य प्राणीगण की रक्षा नहीं होगी। हे विप्रों! इस वेणपापोत्पन्न अशान्ति से बचने का क्या मार्ग है। कैसे भी अन्य प्राणी शान्त पा सकें, वह कहिए।।७-९।।

व्यास उवाच

इत्युक्तास्ते मुनिगणाः पृथोर्वचनमुत्तमम्। परमानन्दसम्पन्नाः पृथुं वचनमब्रुवन्॥१०॥

व्यासदेव कहते हैं—मुनियों ने पृथुराज का यह सद्वाक्य सुन कर आनन्दाप्लुत होकर कहा।।१०।।

ब्राह्मणा ऊचुः

राजंस्त्वं प्रभुरेकोऽद्य तवाज्ञावशगाः समे। अतःपरन्तु साङ्कर्य्यं निवर्त्तय न चान्यथा॥११॥
यथान्यजातिः पुरुषो नान्यजातिसुतागताः। अन्यांश्च सङ्करान् कुर्य्युस्तन्निवर्त्तय सर्व्वथा॥१२॥
ये तु जाता हि सङ्कीर्णास्तेषां वृत्तीश्च कल्पय। तानाहूय कुरुत च निर्णयं धर्म्मसंग्रहम्॥१३॥
तवाज्ञामनुयास्यन्ति धर्म्मज्ञस्य महात्मनः। ये त्वत्कृतान्तु मर्य्यादां लङ्घयिष्यन्ति भूपते॥१४॥
ते तु दण्ड्या भवन्त्येव वध्या अपि न संशयः।
एष एव विधिर्योग्यो न तु तेषां वधो मतः॥१५॥
विधात्रा सर्ज्जितास्ते तु वध्या नैवोचिता हि ते। एतन्नो रोचते राजन् यथोचितमथो कुरु॥१६॥

ब्राह्मण कहते हैं— हे राजन्! तुम हमारे प्रभु हो। हम सब तुम्हारे आज्ञापालक हैं। अतएव तुम ही सांकर्य निवरित करो, अन्यथा राजविप्लव होगा। जीवगण विभिन्न जाति से समागम करके वर्णसंकर उत्पादित करते हैं। वह तुम सर्वतोभावेन निवारित करो तथा जो संकर उत्पन्न हो गये, उनकी जीविका का उपाय करो। उनको बुलवाकर उनकी जाति तथा उनके धर्म का निरूपण करो। हे राजन्! जो निश्चित मर्यादा का उल्लंघन करें, उनको दण्डित करो। हे भूपाल! वर्णसंकरों हेतु यह नियम उचित है। उनका वध न करें। कोई विधाता ने ही उनकी वृद्धि की है। अतः वे वधयोग्य नहीं हैं। यह हमारा मत है। अन्यथा जो चाहो करो।।१०-१६।।

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां पृथुः पृथुपराक्रमः। सर्व्वांस्तु सङ्करगणानाहूयेदं तदाब्रवीत्॥१७॥

पृथुरुवाच

कथं वै विकृताकाराः कुचेला मलिनाननाः। शीर्णा सुदुर्व्वला यूयं कथं वेदं शृणोमि वः॥१८॥

व्यासदेव कहते हैं—परम पराक्रमी पृथु ने ब्राह्मणों का यह कथन सुनकर सभी वर्णसंकरों को बुलाया तथा कहा—तुम ऐसे विकृत मुख, दुर्बल, मलिनदेह, फटे वस्त्र वाले शीर्ण क्यों हो? कारण कहो।।१७-१८।।

सङ्करा ऊचुः

वयं सर्व्वे शुभाकाराः सुचेला विमलाननाः। शुभाङ्गा सुबलाः सर्व्वे दृष्टिहीनः कथं भवान्॥१९॥

वयं वेणसमाः सर्व्वे वेणेन प्रतिपालिताः। वेणेन जनिताश्चापि स चासीद्राजसत्तमः॥२०॥

ब्रह्मविष्ण्वादयो देवा नास्मत्तो ह्यधिकाः क्वचित्॥२१॥

संकरगण कहते हैं—हे राजन्! हम सभी सुन्दर, बली, विमल देह तथा सुगठित शरीर हैं तथा हमारे वस्त्र भी फटे नहीं हैं। आप दृष्टि न होने के कारण हमको नहीं देख पा रहे हैं। हम वेण से उत्पन्न तथा पाले गये हैं। हमको वेण ऐसा जानें। ब्रह्मा-विष्णु आदि देवता भी हमसे अधिक नहीं हैं!।।१९-२१।।

व्यास उवाच

श्रुत्वैवं वचनं सर्व्वे जहसुर्ब्राह्मणादयः। राजा तु क्रोधमाविष्टस्तान् बबन्ध कृतागसः॥२२॥

तदा ते पीड़िता बद्धा म्लानवक्त्राः कुचेलकाः। रक्ष रक्ष महाबाहो इति भाषाकुलाननाः॥२३॥

व्यास कहते हैं—वहां उपस्थित ब्राह्मण संकरों का वाक्य सुन कर हंसने लगे। राजा ने क्रोधित होकर उनको बंदी बनवाया। तब बन्धन पीड़ित, म्लानमुख, मलिन वस्त्र धारी संकरगण रक्षा करो-रक्षा करो कह कर चिल्लाने लगे तथा उन्होंने राजा से कहा।।२२-२३।।

सङ्करा ऊचुः

राजंस्तवाज्ञावशगाः वयं सर्व्वे यथायथम्।
सर्व्वान्नो विकृताकारान् शुभाकारान् कुरुष्व च॥२४॥

धर्म्मात्मन् कल्पयास्माकं वर्णं वृत्तिञ्च नाम च। मूर्खाणां वेणबुद्धीनामपराधं क्षमस्व नः॥२५॥

संकरगण कहते हैं—हे महाराज! अब हम सभी आपके आज्ञापालक हैं। हमारा विकृत रूप दूर करके सुन्दर रूप प्रदान करें। हे धार्मिक! हम वेण की तरह मूर्ख तथा दुर्बुद्धि हैं। हमारा अपराध क्षमा करके जाति निर्णय तथा जीविका का विधान करें।।२४-२५।।

पृथुरुवाच

अहो विप्रा महाभागा यूयं धर्म्मनिरूपकाः। अमीषां वर्णवृत्त्यादि कल्पयध्वं यथोचितम्॥२६॥

राजा पृथु कहते हैं—अहो! महाभाग द्विजगण! आप लोग धर्मनिरूपण करते हैं। अतएव आप इनके लिये यथायोग्य जाति तथा जीविका का निश्चय करिए।।२६।।

व्यास उवाच

इत्युक्ता ऋषयः सर्व्वे पृथो राज्ञो महात्मनः। तेषां वृत्त्यादिकल्पार्थं तानूचुर्विनयान्वितान्॥२७॥

व्यासदेव कहते हैं—ऋषिगण ने पृथु द्वारा यह कहे जाने पर तत्काल उन विनीत हो गये संकरगण की जीविका निर्वहण हेतु संकरगण का निरीक्षण किया।।२७।।

(ब्राह्मणा ऊचुः

षड्त्रिंशज्जातयः शूद्रा यूयं भूतास्तु सङ्करा॥२८॥

कः किं करिष्यते कर्म्म स तद्ब्रूतां स्वशक्तितः। कर्म्मानुरूपनामानो यूयं सर्व्वे भविष्यथ॥२९॥

ब्राह्मणगण कहते हैं—हे संकरगण! तुम लोग ३६ प्रकार के शूद्र जाति हो गये हो। अब तुम लोग अपनी-अपनी रुचि के आधार पर क्या कर्म करना चाहते हो, वह कहो। तुम लोगों को अपने-अपने कर्म के अनुरूप नाम मिलेगा।।२८-२९।।

व्यास उवाच

इत्युक्तास्ते तदा सर्व्वे ब्राह्मणैः शास्त्रदर्शनैः। वक्तुमारेभिरे विप्रांस्तत्रादौ करणोऽब्रवीत्॥३०॥

व्यासदेव कहते हैं—शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों द्वारा यह कहे जाने पर संकरगण ने उत्तर देना प्रारम्भ किया। सबसे पहले करण जाति वाला कहने लगा।।३०।।

करण उवाच

वयं मूर्खा जातिहीनाः प्रज्ञाशून्या विशेषतः। भवद्विधास्तु सर्व्वज्ञाः कुरुध्वं नो यथोचितान्॥३१॥

करण कहता है—हे महामुने! हम सब जातिहीन-बुद्धिहीन हैं। मूर्ख हैं। आप सर्वज्ञ हैं। हमारे कर्त्तव्य हेतु जो उचित हो, वह करें।।३१।।

व्यास उवाच

एवं श्रुत्वा तु वचनं तेषां ते मुनिसत्तमाः। प्रहृष्टवदना भूत्वा राजानमिदमब्रुवन्॥३२॥

व्यास कहते हैं—मुनिगण ने ऐसा वाक्य सुन कर प्रफुल्ल होकर राजा से कहना प्रारम्भ किया।।३२।।

ब्राह्मणा ऊचुः

अयन्तु करणो नाम श्रीयुक्तो वर्त्ततां सदा। विनयाचारसम्पन्नो वचनं सुष्ठु चोक्तवान्॥३३॥

राजकार्य्यं करोत्वेष नीतिज्ञो दृश्यते ह्ययम्। ब्राह्मणे भक्तिमांश्चैव देवेष्वपि भवत्वपि॥३४॥

एष एव हि सत्शूद्रो भवत्येव न संशयः॥३५॥

ब्राह्मणे भक्तिमत्त्वन्तु देवताराधने मतिः। अमात्सर्य्यं सुशीलत्वमेतत् सत्शूद्रलक्षणम्॥३६॥

ब्राह्मण कहते हैं—इनमें यह करण श्रीमान् हों। इसने विनय तथा आचार युक्त होकर जो उत्तम वाक्य कहा है, उससे यह नीतिवान् प्रतीत होता है। यह राजकार्य करे। ब्राह्मण तथा देवता के प्रति इसकी भक्ति रहे। यह संसार में सच्छूद्र कहा जायेगा। ब्राह्मण भक्ति-देवाराधन तत्परता तथा मात्सर्यहीन उत्तम स्वभाव, यही सच्छूद्र का परिचायक होगा।।३३-३६।।

व्यास उवाच

इत्युक्तवत्सु विप्रेषु करणो नाम सङ्करः। प्रणनाम ह विप्राणां चरणान् भक्तिसन्नतः॥३७॥
ब्राह्मणाश्च तमूचुर्वै वत्स तिष्ठेह भूतले। राजकार्य्येषु कुशलो लिपिकर्म्मविशारदः॥३८॥
कर्त्तव्या ब्राह्मणे भक्तिस्त्याज्यं मात्सर्य्यमेव च।
सर्व्वदा स्वच्छचित्तत्वं कृत्वा त्वं कुशली भवेः॥
भव त्वं वंशवान् भूयान् त्वद्वंशास्त्वत्समा इह॥३९॥

व्यासदेव कहते हैं—ब्राह्मणों के यह कहने पर अन्य ब्राह्मण भी उसे आशीर्वाद देकर कहने लगे कि "हे वत्स! तुम राजकार्य ज्ञाता तथा लिखने में पटु होकर स्थित रहो। तुम्हारी ब्राह्मण के प्रति भक्ति रहे, मात्सर्य त्यागो, सर्वदा स्वच्छन्दतापूर्वक कुशलता से समय व्यतीत करो। तुम्हारा वंश लुप्त न हो"।।३७-३९।।

व्यास उवाच

एवमुक्तः स वै विप्रैश्चारुरूपोऽभवत्तदा। विप्रा राजानमाभाष्य इदं वचनमब्रुवन्॥४०॥)

व्यासदेव कहते हैं—तब ब्राह्मणों के ऐसे आशीर्वाद से ब्राह्मणों की कृपा से करण का रूप अत्यन्त सुरूप हो गया। तब विप्रगण राजा से कहने लगे।।४०।।

ब्राह्मणा ऊचुः

अयमन्यः सङ्करो हि वेणस्य वशगः पुरा। वैश्यां समुपसङ्गम्य चक्रेऽन्यमपि सङ्करम्॥४१॥
तस्मादम्बष्ठनामास्तु सङ्करोऽयं धरापते। पादमेव महच्चक्रे निन्द्यत्वं गतमव्ययम्॥४२॥
अस्माभिरस्य संस्कारः कर्त्तव्यो विप्रजन्मनः। येनासौ संस्कृतो भूत्वा पुनर्जात इवास्तु च॥४३॥

ब्राह्मणगण कहते हैं— यह संकर व्यक्ति पहले वेण राजा के राज्य में वैश्य था। इसने एक अन्य संकर को जन्म दिया। हे महाराज! तभी इसका नाम अम्बष्ट है। हम इस अम्बष्ट का संस्कार करेंगे। जिससे यह पुनः पवित्र होकर पुनः उत्पन्न जैसा हो जाये।।४१-४३।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा ते द्विजगणाः स्मृत्वा नासत्यदस्त्रकौ। तयोरनुग्रहाद्विप्र दयावन्तो द्विजातयः॥४४॥
आयुर्वेदं ददुस्तस्मै वैद्यनाम च पुष्कलम्। तेनासौ पापशून्योऽभूदम्बष्ठख्यातिसंयुतः॥४५॥
चारुरूपधरो भूत्वा विप्राज्ञां शिरसाकरोत्। प्रणम्य भक्तितो विप्रान् सोऽम्बष्ठो विप्रसत्तम।
कृताञ्जलिपुटस्तस्थौ ब्राह्मणास्तं तदाब्रुवन्॥४६॥

व्यास कहते हैं—हे द्विजवर! कृपालु ब्राह्मणों ने यह कह कर सुरवैद्य अश्विनीकुमार द्वय को याद किया। उनकी कृपा से इस अम्बष्ट ने विशुद्ध आयुर्वेद प्राप्त किया। इससे अम्बष्ट ने निष्पाप होकर संसार में प्रतिपत्ति लाभ किया तथा सुन्दर रूप पाकर भक्ति के साथ ब्राह्मणों को अंजलिबद्ध होकर प्रणाम किया तथा उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके अवस्थित हो गया। तब ब्राह्मणगण उससे कहने लगे।।४४-४६।।

ब्राह्मणा ऊचुः

अस्माभिर्यानि शास्त्राणि कृतानि सङ्करोत्तम। तानि तुभ्यञ्च दत्तानि न प्रमाद्येः कदाचन॥४७॥
चिकित्साकुशलो भूत्वा कुशली तिष्ठ भूतले। शूद्रधर्म्मान् समाश्रित्य वैदिकानि करिष्यसि॥४८॥

ब्राह्मण कहते हैं—हे संकरप्रवर! हमने जो शास्त्र प्रदान किया है तथा जो प्रणयन करके दिया है, उसको पाकर प्रमत्त न होना। चिकित्साशास्त्र में निपुण होकर संसार में कुशलपूर्वक रहो। तथा शूद्रों के धर्म का आश्रय लेकर संसार में कुशलता से निवास करो तथा तदनुरूप वैदिक कृत्य करो।।४७-४८।।

आयुर्वेदस्तु यो दत्तस्तुभ्यमम्बष्ठ भूसुरैः। तेन प्रमत्तो नैवान्यत् पुराणादि वदिष्यसि॥४९॥
आयुर्वेदात् परं नान्यद्युष्माकं वाच्यमर्हति। वैश्यवृत्त्या भेषजानि कृत्वा दास्यथ सर्व्वतः॥५०॥
त्वज्जातिवृत्तिरेषैवं वंशे वंशे भविष्यति॥५१॥
शुक्रन्तु पुरुषः साक्षाज्जातिभेदविवर्ज्जितम्। जायते योनिसम्बन्धात् सङ्करा मातृजातयः॥५२॥

व्यास उवाच

इत्युक्तस्तैस्तदाम्बष्ठस्तथेति कृतिमानभूत्। अश्विनौ च गतौ राज्ञा पूजितौ स्थानमुत्तमम्॥५३॥
राजानं पृथुनामानं ब्राह्मणास्ते तमब्रुवन्॥५४॥

ब्राह्मणा ऊचुः

अयमुग्राभिधोऽप्यस्तु बलवान् साहसान्वितः। युद्धे कुशलताऽस्यास्तु क्षत्रवृत्तेर्महामतेः।
अयञ्च मागधो नाम तथा भवितुमर्हति॥५५॥

ब्राह्मणों ने जो आयुर्वेद तुमको प्रदान किया, उसी में तुम आसक्त रहो। अन्य पुराणादि पाठ न करो। क्योंकि आयुर्वेद के अतिरिक्त अन्य वाक्य तुम्हारे लिये उचित नहीं हैं। औषधि आदि का निर्माण करके सबको प्रदान करो। तुम्हारी जाति इसी वंश-परम्परा से इसी वृत्ति से जीवन यापन करेगी। जातिभेद वर्जित शुक्ररूपी पुरुष योनिसम्बन्ध से उत्पन्न होता है। उसकी जाति जननी के अनुसार संकर होती है। व्यास जी कहते हैं—यह कहने पर अम्बष्ट वही करने लगे। तब अश्विनीकुमारगण भी राजा से सम्मानित होकर स्वस्थान चले गये। तब ब्राह्मणों ने पृथु राजा से कहा—हे पृथुराज! महामति! अन्य बलवान साहसी संकरगण उग्र नाम से प्रख्यात होकर क्षत्रियवत् युद्ध में कुशल होकर संसार में मागध कहे जायेंगे।।४९-५५।।

मागध उवाच

नमोऽस्तु विप्रपादेभ्यो युद्धवृत्तिं न मां कुरु। न व हिंसा साधुधर्म्मस्ततोऽन्यराजकर्म्मसु॥५६॥
नियोजयत मां देवा भूपालस्य पुरोऽधुना। युद्धान्यक्षत्रधर्म्मेण मम जातिस्तु जीवतु॥५७॥

मागध कहते हैं—हे द्विजगण! आपके चरणों में प्रणाम करता हूं। हमारी युद्धवृत्ति न करें। हम उसे नहीं जानते। हमें राजकार्य आता है। आप हमें राजा के पास रहने दीजिए। युद्ध के अतिरिक्त क्षत्रिय जातीय धर्म ही हमारी जाति की जीविका रहे।।५६-५७।।

ब्राह्मणाः ऊचुः

ब्रह्मक्षत्रवर्णयोस्त्वं वन्दीभव महामते। स्तुतिपाठी चाग्रवक्ता सर्व्वसद्गुणवर्णकः॥५८॥

लिपिपत्रस्य वोढ़ा च भविष्यसि तयोरपि। क्षत्रवेदाधिकारी च भव त्वं सङ्करोत्तम॥५९॥
एषा ते विहिता वृत्तिर्ब्राह्मणैर्धर्म्मदर्शिभिः। पालयिष्यन्ति राजानो भवज्जातिं सुशीलिनीम्॥६०॥
अनतिक्रम्य वचनमिदमस्माकमुत्तमम्। सुखी त्वं भूतले तिष्ठ त्वद्वंशोऽस्त्वेवमेव हि॥६१॥

ब्राह्मणगण कहते हैं—हे महामति! तुम ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनों के गुणों का वर्णन करके स्तुतिपाठक बन्दी का कार्य करो तथा यह अन्य संकरश्रेष्ठ तुम क्षत्रिय वेदाधिकारी होकर उन दोनों (ब्राह्मण-क्षत्रिय) के लिपिपत्रों को वहन करो। धर्मज्ञ ब्राह्मणों ने तुम्हारी यही वृत्ति कहा है।

इस प्रकार ब्राह्मणों ने इस तीसरी संकर जाति के लिए कहा कि "मागधों की रक्षा राजा करें। तुम हमारे वचन की अवहेलना न करके उसका पालन करके रहो"।।५८-६१।।

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा मागधो हि तथेत्युक्त्वा सुखं स्थितः।
कल्पयामास चान्येषां वृत्तीः स विप्रसञ्चयः॥६२॥

तन्त्रवाये वस्त्रसृष्टिं वणिजां गन्धविक्रयम्। नापिते क्षौरकर्म्मादाद्गोपे लिखनमेव च॥६३॥
लौहकर्म्म कर्म्मकारे आजीव्यं समकल्पयत्। तैलिके ह्यकरोदाज्ञां गुवाकविक्रये खलु॥६४॥
कुम्भकारे मृदां शिल्पं ताम्रकांस्यादिकर्म्मणि। अयोजयत् कंसकारं शङ्खभूषाञ्च शाङ्खिके॥६५॥
दासे तु कृषिकर्म्माणि सुते तदुपयोगिताम्। मोदके गुड़कर्म्माणि मालाकारे ततः परम्॥६६॥
सर्व्वेषां देवपूजार्थं पुष्पाहरणकर्म्मणि। स्वर्णकारे स्वर्णरूप्यभूषणादिनिरूपणम्॥६७॥
तेषां तत्त्वपरीक्षायै कल्पितः कानको वणिक्। इत्यादिजातिभेदेन वृत्तिभेदानकल्पयत्॥६८॥
तेनैवैते बभूवुर्हि चारुरूपाः सुबुद्धयः। ब्राह्मणानां शुभाज्ञाभिर्यथा वृत्तिमुपस्थिताः॥६९॥
पृथोराज्ञामुपाश्रित्य धर्म्माध्वनि सुनिष्ठिताः। पुनः सङ्करधर्म्मेषु निवृत्ता अभवन् किल॥७०॥
गणकाय ददुस्तेषु ज्योतिःशास्त्राणि सर्व्वशः। ग्रहविप्रमकुर्व्वंस्ते सर्व्वे ब्राह्मणपुङ्गवाः॥७१॥
एवं वृत्ते सङ्कराणां वृत्त्यादि परिकल्पने। कृताञ्जलिपुटा भूत्वा सङ्करा वाक्यमब्रुवन्॥७२॥

व्यासदेव कहते हैं—यह कहने पर मागध सुस्थिर हो गये। अब अन्य संकरगण की वृत्ति का निर्द्धारण ब्राह्मण करने लगे। तन्तुवाय जाति को वस्त्र बनाना, वणियों को गन्ध विक्रेता का कार्य, नापित को क्षौरकर्म, गोपजाति को लिखना (कला), कर्मकार को लौहकार्य जीविका रूपेण प्रदान किया। तेली को गुवाकु बेचने का कार्य, कुंभकार को मिट्टी का कार्य तथा कांस्यकार (कसेरा) को ताम्र-कांस्य आदि का कार्य प्रदान किया। शांखिक को शंख का कार्य, दास को कृषि कार्य, सूत को उसके अनुसार कर्म, मोदक को गुड़ कर्म तथा मालाकार को देवपूजा के लिए पुष्पादि का कार्यभार वृत्ति हेतु दिया। स्वर्णकार को स्वर्ण-चांदी के अलंकार का निर्माण कार्य, कलिक वणिक् को इन भूषणों की जांच का कार्य दिया। इस प्रकार संकरगण हेतु जाति भेद से विभिन्न वृत्ति दी गयी। इससे वे सुरूपवान् तथा सुबुद्धिवान् हो गये। तथा ब्राह्मणादि चारों वर्णों को उनकी-उनकी वृत्ति की व्यवस्था किया। राजा की आज्ञा से सभी धर्मपथ पर चलने लगे। इस प्रकार संकर धर्म व्यवस्था से निवृत्त होकर राजा ने समस्त ज्योतिष शास्त्र गणकों को

प्रदान किया। ग्रहविप्रगण को ग्रहगण की पूजा तथा होम ही वृत्तिरूप से प्रदान किया।।६२-७२।।

सङ्करा ऊचुः

अस्माकं वैदिकं स्मार्त्तं तथागमिकमेव च। कारयिष्यति को विप्रः कथं नो निर्वृतिर्भवेत्।।७३।।

अंजलिबद्ध संकरगण कहते हैं—हे महाशयगण! कौन ब्राह्मण हमारी स्मार्त्त-वैदिक-आगमिक क्रिया करायेंगे? कैसे यह सब निष्पन्न होगा?।।७३।।

ब्राह्मणा ऊचुः

विंशतीनान्तु जातीनां पुरोधाः श्रोत्रिया वयम्।।७४।।
अन्येषां षोड़शानान्तु पुरोधाः पतितो द्विजः। तज्जातितुल्यतां यायाद्ब्रह्मबन्धुर्भवेदपि।।७५।।

ब्राह्मणगण कहते हैं—हम सभी श्रोत्रिय उत्तम संकर जाति के पुरोहित हो गये। ब्राह्मण अन्य जाति का पौरोहित्य करने से पतित होता है। साथ ही उस जाति से भोजन प्रभृति गुरुतर संसर्ग होने के कारण उस जाति के तुल्य हो जाता है।।७४-७५।।

व्यास उवाच

इत्येवं स्थापयामासुरलङ्घ्यशासना द्विजाः। समाचरन् सङ्कराश्च ब्राह्मणैरुदितं यथा।।७६।।
राजा स्वस्थमना भूत्वा ब्राह्मणान् समपूजयत्।
पूजितास्तु गता विप्रा यथास्थानं मुदान्विताः।।७७।।
राजा च पृथुनामा स हीनशस्यां धरां तदा। दुदोह येन शस्यादि वत्सदोहकभेदतः।।७८।।
सर्व्वे प्रलेभिरे सर्व्वं व्रीहिछन्दोविषादिकम्। एतत्ते कथितं विप्र यत्पृष्टोऽहमिह त्वया।।७९।।
सङ्कराणामुपाख्यानं पृथुकीर्त्तिः सुपुष्कला। एतच्छ्रवणपाठस्य फलं पुण्यकरं मतम्।।८०।।

।।इति श्रीबृहद्धर्म्मपुराणे उत्तरखण्डे जातिसाङ्कर्य्यं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।



व्यास कहते हैं—अलंध्य शासन ब्राह्मणगण संकरगण को स्थापित करके चले गये। संकरगण ब्राह्मणों द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलने लगे। इससे राजा पृथु को मानसिक शान्ति मिली। उन्होंने ब्राह्मणों की पूजा किया। ब्राह्मण भी पूजित होकर आनन्द के साथ स्वस्थान चले गये। हे विप्र! पृथु ने वत्स तथा दुहने वाला निश्चित करके शस्य रहित धरती से शस्यादि का दोहन किया। उससे सभी धान्य आदि वस्तुएँ प्रजावर्ग को मिलीं। जो तुमने पूछा था, वह सब मैंने कहा। यह संकर उपाख्यान तथा पृथुराज की निर्मल कीर्ति जो व्यक्ति सुनता अथवा पढ़ता है, वह पुण्य प्राप्त करता है।।७६-८०।।

।।चतुर्दश अध्याय समाप्त।।



पञ्चदशोऽध्यायः

दानधर्म कथन

व्यास उवाच

द्वापरे वेदभागोऽयं जाबाले विहितो मया। एकवेदिद्विवेदादिभेदाद्विप्रास्तथाभवन्॥१॥
एवं शास्त्रेषु भिन्नेषु बहुधानीयते क्रिया। तपोदान प्रवृत्ता च राजसी भवति प्रजा॥२॥
अल्पायुषो नराः सर्वे मन्दभाग्या उपद्रुताः। वेदाचारविहीनाश्च हिंसाशीला अधर्मिणः॥३॥
तेनाक्रान्ता च धरणी पीड़िता भाररूपिणी। तस्य भारस्य शान्त्यर्थं भगवान् विष्णुरव्ययः॥४॥
वासुदेव इति ख्यातो ह्यवतीर्णो बभूव ह। देवक्या अष्टमे गर्भे सङ्कर्षणसहायवान्॥५॥
चतुर्भुजः शङ्खचक्रगदाराजीवशोभितः। सङ्कर्षणो वासुदेव इति भागद्वयेन ह॥
अवतीर्णो वभुवैव भूभारक्षयकारणः॥६॥

व्यास जी कहते हैं—हे जाबालि! द्वापर युग में मैंने वेदविभाग किया। तब से ब्राह्मणगण ने एकवेदी, द्विवेदी प्रभृति भेदों को प्राप्त किया। वेद के इस विभाग के कारण प्रजावर्ग में क्रिया जनित आधिक्य हो गया तथा उनकी प्रवृत्ति तप एवं दान में हो गयी। तब प्रजा रजोगुण प्रधाना थी। क्रमशः मानवगण अल्पायु, अधार्मिक, मन्दभाग्य, उपद्रवग्रस्त, वेदाचार रहित तथा हिंसक हो गये। पृथिवी भी इस प्रकार की प्रजा के भार से पीड़ित हो गयी। तब भगवान् अच्युत विष्णु ने इस भार के हरणार्थ देवकी के अष्टम गर्भ से चतुर्भुज शंख, चक्र, गदा, पद्म से शोभित होकर अवतार लिया। वे इस अवतार में वासुदेव नाम से प्रसिद्ध हो गये। संकर्षण उनके सहचर अवतार हैं। भूतगण की रक्षा के लिए श्रीहरि ही वासुदेव एवं संकर्षण रूप भागद्वय में विभक्त हो गये।।१-६।।

भागद्वयेन पूर्णस्य ब्राह्मणोऽर्द्धं प्रकथ्यते। प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च कलौ भागद्वयेन ह॥७॥
पूर्णस्य ब्रह्मणोहर्द्धञ्चाप्यपरं परिशिष्यते। चतुर्व्यूहावतारोऽयं पूर्णस्य ब्रह्मणो मतः॥८॥
तत्र कृष्णो वासुदेवः सङ्कर्षणसहायवान्। कलौ तु द्विभुजो भूत्वा नन्द गेहे वराज ह॥९॥
पूतनादिवधं कृत्वा पश्चात् कंसं जघान ह। भूभारं क्षपयामास संहृत्य स्वकुलं तथा॥१०॥
स एव भगवान् देवो धर्मरक्षाकरो हरिः। अधर्म वृद्धौ भूतायामवतीर्णोऽभवत् किल।
इति ते कथितं ब्रह्मन् किमन्यात् श्रोतुमिच्छसि॥११॥

इन दो भागों में पूर्ण ब्रह्म का बाकी बचा अर्द्धांश प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध रूप भागद्वय में कलियुग में अवतीर्ण हुआ। पूर्ण ब्रह्म का यह चतुर्व्यूह अवतार है। इनमें वासुदेव श्रीकृष्णदेव संकर्षण के साथ कलियुग में द्विभुज मूर्ति में नन्दगृह में विराजमान हुए। पहले पूतना आदि का वध करके उन्होंने तब कंस का वध किया। सर्वान्त में उन्होंने अपने यदुकुल का भी संहार करके भूभार का हरण किया। वे देवप्रधान धर्मरक्षक भगवान् हरि अधर्मवृद्धि काल में अवतार लेते हैं। हे ब्रह्मन्! यह तुम्हारे द्वारा जिज्ञासित विषय मैंने कह दिया। अब क्या सुनना चाहते हो?।।७-११।।

जाबालिरुवाच

किं कृष्णतोषणं दानं तन्मे वद महाप्रभो। दाता वा कीदृशस्तस्य पात्रं वा तत्र कीदृशम्॥१२॥

जाबालि कहते हैं—हे महाप्रभो! कैसा दान देने से श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं? वह कहिये। कृष्ण को सन्तुष्ट करने वाला दान किस प्रकार का होता है? दान का पात्र कैसा हो?।।१२।।

व्यास उवाच

सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा। धार्यं हस्ते सुवर्णञ्च ब्राह्मणैस्तु विशेषतः॥१३॥
एतत् पवित्रं परमं तस्य स्वस्त्यायनं परम्। दशपूर्वान् परांश्चापि दश वंस्यान् महात्मना।
अपि पापशतं कृत्वा दत्त्वा विप्रेषु तारयेत्॥१४॥
स्वच्छन्दचेतसा वस्तु स्वर्ण विप्रे प्रयच्छति। देवत्वं लभ्यते तेन मोदते स सुरैः सह॥१५॥
अग्निर्हि देवता तस्य सुवर्णस्य द्विजोत्तम। तद्दत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवतिनान्यथा॥१६॥
नष्टे सुवर्णे पापं स्यात् स्वर्णदानं ततः शुभम्। गोदानञ्च परं दानं दातारं तारयेद्धि गौः॥१७॥
पुरा स्वयम्भुर्भगवान् सृजन् लोकान् स्वशक्तितः। प्रीत्यर्थं सर्वभूतानां गाव सृष्टा द्विजोत्तम॥१८॥
गवां जातिन्तु वक्ष्यामि शृणु चैकमना द्विज॥१९॥
प्रथमा गौरकपिला द्वितीया गौरपिङ्गला। तृतीया कृष्णकपिला चतुर्थी नीलपिङ्गला॥२०॥
पञ्चमा शुक्लपिङ्गाक्षी षष्ठी तु शुक्लपिङ्गला। सप्तमी चित्रपिङ्गाक्षी अष्टमी वभ्रुरोहिणी॥२१॥
नवमी रक्तपिङ्गाक्षी दशमी रक्तपिङ्गला। तादृशास्तेऽप्यनड़ाहः कपिलास्ते च कीर्त्तिताः॥२२॥
ब्राह्मणो वाहयेत् तांस्तु नान्ये वर्णा कदाचन॥२३॥

व्यासजी कहते हैं—स्वर्णदान परम दान है। स्वर्ण दक्षिणा परम-दक्षिणा है। ब्राह्मण विशेषतः स्वर्ण धारण करे। स्वर्ण को हाथ में धारण करना कर्त्तव्यरूप है। यह परम पवित्र वस्तु है। स्वर्ण धारण परम स्वस्त्यायन स्वरूप है। सैकड़ों पाप करने वाला भी स्वर्ण ब्राह्मण को दान करे। इससे पूर्व की १० पीढ़ी, आगामी १० पीढ़ी तथा स्वयं का उद्धार हो जाता है। जो पुरुष ब्राह्मण को स्वच्छन्द चित्त से (बिना ऊहापोह के) स्वर्ण प्रदान करता है, उसे देवत्व प्राप्ति हो जाती है। वह देवताओं के साथ आमोद-प्रमोद करने में सक्षम हो जाता है। स्वर्ण के देवता हैं अग्निदेव। स्वर्णदान द्वारा सर्वपाप से मुक्ति प्राप्त होती है। यह अन्यथा वाक्य नहीं है। स्वर्ण नष्ट होने से पाप होता है, अतः स्वर्णदान परम मंगलमय है।

गोदान भी परम दानस्वरूप है। दान की गयी गौ दान देने वाले का उद्धार कर देती है। हे द्विजोत्तम! पूर्व में भगवान् स्वयम्भु ब्रह्मा ने अपनी शक्ति द्वारा लोक सृजन करके सर्वभूत समूह की प्रसन्नता हेतु गोगण की सृष्टि किया था। मैं गौ प्रसङ्ग कहता हूं। एकाग्रता पूर्वक सुनो—गौरकपिला, गौरपिङ्गला, कृष्णकपिला, नीलपिङ्गला, शुक्लपिङ्गाक्षी, चित्रपिङ्गाक्षी, वभ्रुरोहिणी, रक्तपिङ्गाक्षी तथा रक्तपिङ्गला– ये १० प्रकार की कपिला गौ होती हैं। ऐसे ही कृष्णकपिल वृष होते है। केवल ब्राह्मण ही कपिल वृष से हल चलवा सकते हैं। अन्य कार्य गाड़ी खींचना आदि कर सकते हैं, तथापि अन्य वर्ण कपिल वृष से कार्य न कराये।।१३-२३।।

सवत्साञ्च सवस्त्राञ्च दत्त्वा धेनुमलङ्कृताम्। तद्रोमसंख्यकान् वर्षान् स्वर्गलोको महीयते॥२४॥
प्रतिगृह्य तु यो दद्याद्गाञ्च शुद्धेन चेतसा। सगत्वा दुर्गमं स्थानममरैः सह मोदत॥२५॥
अन्नदानात् परं दानां त्रिलोकेषु न विद्यते। अन्नस्य क्षुधितः प्रात्रं तत्र दानं महाफलम्॥२६॥
अन्नदः सत्यवादी च तुल्यस्थानाविभौ मतौ। अन्ने हि प्राणिनां प्राणास्तद्दानं प्राणदानवत्॥२७॥
अन्नयाचक आयाते न दत्त्वा ये तु भुङ्क्षते। ते मृत्वा कुक्कुरीविष्ठां भुङ्क्षते शाश्वती समाः॥२८॥
अन्नदानं हरेर्नाम गङ्गास्नानं जपस्तथा। अनायासाज्जना एते न यस्य सन्ति ते मृताः॥२९॥

वस्त्र तथा अलंकार से सज्जित बछड़े के साथ गोदान करने से, उस धेनु के शरीर में जितने रोम हैं, उतने वर्ष तक दानदाता सम्मानित हो स्वर्ग में निवास करता है। जो व्यक्ति अन्य किसी से गौदान पाकर उसे विशुद्ध चित्त से अन्य को प्रदान करता है, वह परलोक में दुर्लभ स्थान पाकर देवगण के साथ आनन्दित होता है। त्रैलोक्य में अन्नदानवत् अन्य दान नहीं है। समस्त भूखे व्यक्ति (अथवा प्राणी भी) अन्नदान के पात्र हैं। भूखे को अन्नदान करना महाफलप्रद है। अन्नदाता तथा सत्यवक्ता—इन दोनों को परलोक में समान स्थान मिलता है। अन्न तो प्राणीमात्र का प्राण है। जब अन्नभिक्षा मांगने वाला आ जाय, तब उसको प्रदान किये बिना जो भोजन करता है, वह मरणोपरान्त अनन्त काल पर्यन्त कुत्ते का मल खाता रहता है। अन्नदान, हरिनाम, गंगास्नान, गायत्रीजप, अनायास धनोपार्जन जो नहीं करते, वे जीवनमृत ही हैं।।२४-२९।।

स्वार्थमात्रं पचन्नन्नं जनः स्यात् कृमिभोजनः। अवश्यं तत् परार्थन्तु वियच्चापि पचेन्नरः॥३०॥
भूमिदानं परं दानमिति धर्मविदो विदुः। षष्टिं वर्षसहस्राणि स्वर्ग वसति भूमिदः॥३१॥
अदातु मनुमन्ता वा तान्येव नरके वसेत्। अतिदानन्तु सर्वेषां भूमिदानमिहोच्यते॥३२॥
अक्षरा ह्यचला भूमिः सर्वान् कामान् प्रयच्छति। भूमिदः स्वर्गमारुह्य शाश्वती रमते समाः॥३३॥
पुनश्च जन्म सम्प्राप्य भवेद्भूमिपतिर्ध्रुवम्॥३४॥

जो केवल अपने भोजनार्थ अन्न पाक करता है, उसका अन्न भोजन तो कीट भोजनतुल्य है। हे मानव! कुछ दूसरों के लिए भी पकाओ! धर्मविद् कहते हैं कि भूमिदान परम दान है। ऐसा भूमिदाता ६०००० वर्ष स्वर्ग में स्थित रहता है। जो अन्य से कहता है कि भूमिदान न करो, वह तो ६०००० वर्ष नरक में ही रह जाता है। भूमिदान सबके लिए ही अत्यधिक उत्तम दान है। भूमि अक्षया तथा अचला होती है। यह सर्वकामफलप्रदा है। भूमिदाता स्वर्ग में जाकर वहां अनन्तकाल आनन्दभोग के उपरान्त पुनः पृथिवी पर जन्म लेकर राजा होता है।।३०-३४।।

नाम वै प्रियदत्तास्याः पूज्यते तत् सनातनम्। तदस्याः सततं प्रीत्या कीर्त्तनीयं प्रयच्छता॥३५॥
सुवर्णं रजतं ताम्रं मणिमुक्तावसूनि च। सर्वमेतन्महाप्राज्ञ ददाति वसुधां ददत्॥३६॥
तपोयज्ञश्रुतं शीलमलोभः सत्यवादिता। गुरुदैवतपूजा च नातिक्रामेति भूमिदम्॥३७॥
सोदकाञ्च सशस्याञ्च यो ददाति भुवं नरः। ब्राह्मणाय विशुद्धाय स याति परमं पदम्॥३८॥
भूदाता भूग्रहीता च उभौ तौ स्वर्गगामिनौ। न भूमिदो लभेद्भूमिमदत्त्वान्नं न तल्पयेत्॥३९॥
अदत्त्वा चापि वस्त्रादि वस्त्रादि न लभेन्नरः॥४०॥
दानं देवाः प्रशंसन्ति दानं दुर्गतिनाशनम्। दानेन लभते स्वर्गो दानान्मोक्षोऽपि साध्यते॥४१॥

पृथिवी का एक नाम है प्रियदत्ता। यह नाम नित्य पूज्य है। भूमिदान के समय यह नाम सभी कहें। हे महाप्राज्ञ! जो व्यक्ति पृथिवी दान करता है, उसने तो मानो स्वर्ण, रजत, मणि, मुक्ता सभी का दान कर दिया। तप, यज्ञ, शास्त्रज्ञान, सत्स्वभाव, अलोभ, सत्यवादिता, गुरुपूजा, देवपूजा—ये सभी भूमिदाता का अनुगमन करते हैं। जो मानव शुद्ध फलप्रदात्री भूमि का दान करते हैं, उनको परमपद प्राप्ति होती है। भूमि का दान करने वाले तथा यह दान ग्रहण करने वाले, ये दोनों स्वर्गगामी होते हैं। जो पूर्वजन्म में भूमिदान नहीं करता, उसे भूमि नहीं मिलता। जो अन्नदान नहीं करता, उसे अन्न नहीं मिलता। जो वस्त्र दान नहीं करता, वह परजन्म में वस्त्र प्राप्ति नहीं करता। देवतागण दान की स्तुति करते हैं। दान समस्त दुर्गति का नाश करता है। दान से स्वर्ग मिलता है। दान से मोक्षपर्यन्त की प्राप्ति हो जाती है।।३५-४१।।

दरिद्रो धरणीं यापि दानं दद्याद्द्विजातये। दरिद्रस्याल्पदानेन धनिना भूरि वै समम्॥४२॥
अदाता यत् परद्रव्यग्रहणार्थी सदा व्रजेत्। सोऽन्यजन्मनि शार्गालीदोनौ भूत्वा क्रवन् व्रजेत्॥४३॥
ब्राह्मणो दानपात्रं हि नान्यत्तस्मात् परं क्वचित्॥४४॥
इति ते कथितं ब्रह्मन् दानं पृष्ठं त्वया त यत्। किं ते श्रोतव्यमस्तन्यत् पृच्छ तत् कथयामि ते॥४५॥

।।इति वृहद्धर्मपुराणे उत्तरखण्डे दानकथनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः।।



दरिद्र तथा धनी, दोनों प्रकार के लोग ब्राह्मण को दान करें। दरिद्र का अल्प दान तथा धनी का प्रचुर दान, ये दोनों समान हैं। जो दान नहीं करता, तथा पराये धन हेतु यहां-वहां जाता है, उसे जन्मान्तर में शृगाल योनि मिलती है। वह तो सदा चीत्कार करता यत्र-तत्र घूमता रहता है। ब्राह्मण दान का पात्र है। ब्राह्मण की अपेक्षा श्रेष्ठ कोई नहीं है। उससे बढ़ कर दानपात्र कौन है? हे ब्रह्मन्! तुमने जो पूछा था, वह मैंने कह दिया। अब और क्या जानना है? बतलाओ। मैं उत्तर दूंगा।।४२-४५।।

।।इस प्रकार वृहद्धर्मपुराण में उत्तरखण्ड में दानकथन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।।



षोडशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण जन्म कथन

जाबालिरुवाच

कलौ जगत्पतिर्विष्णुर्विजहार यथा क्षितौ। तन्मे वद महाभाग कलेधर्मांश्च सर्वशः॥१॥

जाबालि कहते हैं—कलिकाल में जगत्पति विष्णु ने जिस रूप में धरती पर विहार किया था, हे महाभाग! आप उसका तथा समस्त कलिधर्म का वर्णन करें।।१।।

सूत उवाच

एवमुक्तस्तदा व्यासो जाबालिमुनिना द्विजाः। परमं हर्षमापन्नो वक्तुं समुपचक्रमे॥२॥

सूत कहते हैं—हे द्विजगण! जाबालि ने जब वेदव्यास से यह प्रश्न किया, तब वेदव्यास ने अत्यन्त हर्ष के साथ कहना आरम्भ किया।।२।।

व्यास उवाच

पुरा गौरशरीरेण शत्रुघ्नाख्येन विष्णुना। मधुनामासुरं हत्वा निर्ममे मथुरा पुरी॥३॥
तत्रोग्रसेननामाभूद्राजा परमधार्मिकः। तस्यानुजश्च भ्रातासीद्देवकारण्यो महामना।
तस्यासन् सप्त तनया रूपवत्यः सुलोचनाः॥४॥
शूरसेनस्य पुत्राय वसुदेवाय देवकः। ताः सप्त कन्याः प्रददौ क्रमाच्च मुदितान्तरः॥५॥
तत्रान्तिमा च या कन्या सूर्यानाम्नी तु देवकी। वसुदेवाय तां कन्या प्रददौ च कुतूहले॥६॥
वसुदेवो देवकीन्तु परिणीय मुदान्वितः। स्वगृहं गन्तुमारेभे सौवर्णं रथमारुहन्॥७॥

व्यासजी कहते हैं—पूर्वकाल में शत्रुघ्न नामक गौरवर्ण विष्णुअंश राजा ने मधु नामक असुर का वध करने मथुरापुरी का निर्माण किया था। इस मथुरा के परम धार्मिक राजा थे उग्रसेन। उनका कनिष्ठ भ्राता था महामना देवक। देवक की रूपवती सुलोचना ७ कन्या थीं। देवक ने शूरसेन के पुत्र वसुदेव को ये सातों कन्या क्रमशः अत्यन्त प्रसन्नता से प्रदान किया। इनमें सबसे छोटी सूर्या देवकी नामक देवकनन्दिनी को विविध कुतूहल के साथ वसुदेव को देवक ने प्रदान किया। वसुदेव ने देवकी से विवाह करके आनन्द के साथ स्वर्ण रथ पर आसीन होकर अपने गृह गमन किया।।४-७।।

भेरीमृदङ्गपणवढक्कादुन्दुभिनिस्वनैः। सुघण्टाघननिस्वः मङ्गलध्वनिभिस्तदा॥८॥
नृत्यगीतादिकोत्साहैः सर्वास्तेऽनन्दयद्दिशः। सपताकै रथैर्हेमैस्तथा हस्त्यश्वमानुषै॥९॥
दासीभिः सुकुमारीभिर्युक्तो विमलकान्तिभिः॥१०॥
उग्रसेनसुतः कंसः सारथिस्तद्रथेभवत्। गच्छन् मुदा रथे यत्नात् कंसः परममोदितः।
शुश्राव च नभोवाणीं सर्वेषामपि शृण्वताम्॥११॥
अहो कंसं मूढबुद्धे किञ्चिन्न बुध्यते भवान्। अस्यास्त्वामष्टमः पुत्रो हन्ता यन्तासि यद्रथे॥१२॥

उस समय उनके जाते समय भेरी, मृदङ्ग, पणव, ढक्का, दुन्दुभि की मंगलध्वनि के साथ घंटा, झांझ, ताल आदि भी बज रहे थे। नृत्य-गीत के उत्सव से समस्त दिशायें आनन्दित हो उठीं। ध्वज-पताका युक्त स्वर्णरथ समूह, हाथी, अश्व, पैदल लोग तथा सुकुमारी विमलकान्ति दासी समूह भी वसुदेव के अनुवर्त्ती थे। उग्रसेन का पुत्र कंस वसुदेव के रथ का सारथी होकर प्रेम के कारण उस रथ को चला रहा था। परमनिन्दित कंस ने यत्नपूर्वक मार्ग पर जाते-जाते सबके सामने एक आकाशवाणी सुनी—"हे मूढ़बुद्धि कंस! तुमको कुछ भी ज्ञात नहीं है। जिस बहन के रथ के तुम सारथी बने हो, इसी का आठवां पुत्र तुम्हारा वध करेगा"।।८-१२।।

इत्युक्तं रवेन वचनं श्रुत्वा कंसः सुदुर्मनाः। दुर्बुद्धिं प्राप्तवान् सद्यः स्वसुर्हननमैच्छत॥१३॥
ससारासिं विनिष्क्राम्य दन्तैरधरमादशन्। निहन्तुं देवकीं कंसः केशान् हस्ते परामृषत्॥१४॥
हाहाकारस्तदा जात उत्साहभङ्ग एव च। सर्वे कंसभयापन्ना नैव वक्तुं तदाशकन्॥१५॥

देवक्या विपदं दृष्ट्वा कंसहस्ते द्विजोत्तम। जगाद विनयाद्वाक्यं वसुदेवो महात्मनाः॥१६॥

यह आकाशवाणी सुनकर कंस अत्यन्त दुर्मना हो गया। वह तत्क्षण दुर्बुद्धि के प्रकोप के कारण अपनी बहन का वध करने के लिए तत्पर हो गया। कंस ने क्रोध में दांतों से अधर चबाते हुए तलवार निकाली तथा देवकी का वध करने की इच्छा से देवकी के केश को अपनी मुट्ठी में पकड़ा। तब यह देखकर चतुर्दिक् हाहाकार ध्वनि गुंजरित हो उठी। सभी का उत्साह भंग हो गया, लेकिन कंस के भय से किसी में भी कुछ कहने का सामर्थ्य नहीं था। हे द्विजोत्तम! महामना वसुदेव कंस द्वारा देवकी पर आई विपत्ति को देखकर विनयपूर्वक उस कंस से कहने लगे।।१३-१६।।

वसुदेव उवाच

अहो कंस महाभाग शास्त्रधर्मार्थभूषण। न युक्तमेतत् ते कर्म भगिन्या हननं क्वाचित्॥१७॥

इयं तवानुजा पाल्या नैव त्वद्वधमर्हति। न चास्यां वर्त्तते दोषो बालबुद्धौ कदाचन॥१८॥

इयं किं ननु जानाति दोषादोषविचारणाम्। पश्यास्या विमलं वक्त्रं म्लामं त्वत्पाणिमीक्षते॥१९॥

किं ते शौर्यं स्त्रियं हत्वा ख्यातशौर्यस्य चाह्वे। यस्त्वस्या भविता पुत्रस्तव नाशाय शक्तिमान्।
तदा तेनैव संग्रामे तवाश्रेया भविष्यति॥२०॥

यच्च प्रोक्तं रवेन वाक्यं तत् परामृष्यतां स्वयम्। जन्मान्तरेवा एवं स्याद्देवक्यास्तव वाहितम्॥२१॥

यदि जन्मान्तरे चैषा त्वच्छत्रुं जनयिष्यति। तदा किं हनने चास्याः फलमस्ति तव प्रभो॥२२॥

तत्रैव जन्मनि यदि त्वच्छत्रुं प्रसविष्यति। तदा देववचः सत्यं कथमन्यत् करिष्यसि॥२३॥

जातस्य भवतो मृत्युः सर्वसैव न चान्यथा। इति ज्ञात्वापि कस्मात् त्वं घोरं चरसि दुर्मते॥२४॥

शत्रुर्मित्रं गुरुर्बन्धुरेक एष हरिः प्रभुः। तमेकं गच्छ शरणं किं मिथ्यास्वनुधावसि॥२५॥

त्यजास्याः केशपाशञ्च जिघांसाञ्च महामते। वरमस्याः सुतान् सर्वानर्पयिष्यामि तत्क्षणात्॥२६॥

वसुदेव कहते हैं—हे शास्त्र-धर्म तथा अर्थ के भूषण! महाभाग कंस! बहन की हत्या रूप यह गर्हित कार्य आपके लिए कदापि उपयुक्त नहीं है। इसका वधरूप अधर्म आपके लिए उचित नहीं है। विशेषतः इस सुकुमार बालिका का कोई दोष नहीं है। हे कंस! यह दोषादोष विचार कुछ भी नहीं जानती। देखिए! इसका यह निर्मल मुखमण्डल म्लान हो गया है। यह आपके हाथों की ओर ही ताक रहीं हैं। आपका युद्धशौर्य प्रसिद्ध है। अबला वध से आपकी शूरता कैसे प्रकट होगी? इसके गर्भ से जो-जो पुत्र होगा, आप उसका वध कर सकने में क्षमता युक्त हैं। उसके साथ युद्ध होने से ही आपका अशुभ हो सकता है। इसमें आपकी बहन का क्या दोष? अब आप आकाशवाणी की विवेचना करें। हो सकता है कि वह अन्य जन्म में घटित हो। देवकी से आपका अहित इस जन्म में तो होना नहीं है, पुनर्जन्म में भले हो! यदि जन्मान्तर में देवकी आपके शत्रु को जन्म देंगी, तब हे प्रभो! इसका अभी वध करने से क्या मिलेगा? यदि इसी जन्म में आपके शत्रु को जन्म देती हैं, यह तो दैववाणी है। दैववाणी तो सत्य ही होती है। आप उसे अन्यथा कैसे करेंगे? जन्म लेने वाले की मृत्यु स्वाभाविक है। इस नियम में कहीं भी व्यतिक्रम नहीं होता। आपकी भी कभी न कभी मृत्यु होकर रहेगी। तब आप दुर्बुद्धि के वश में आकर यह घोरतर कार्य क्यों कर रहे हैं? एकमात्र प्रभु हरि ही शत्रु, मित्र, गुरु तथा बन्धु हैं। एकमात्र उनकी ही शरण ग्रहण करिये। मिथ्या अनुधावन

क्यों कर रहे हैं? हे महामति! मारने की इच्छा तथा इसका केशपाश छोड़ दीजिए। इसके गर्भ से पुत्र उत्पन्न होते ही मैं उसे आपको अर्पित कर दूंगा।।१७-२६।।

व्यास उवाच

एवन्ते नोदितं श्रुत्वा कंसस्तच्छीलवित्तदा। निववर्त्त वधात्तस्याः साक्षीकृत्य जनानपि॥२७॥
ततो यथातथं सर्वे चक्रुस्तत् कर्म मङ्गलम्। वसुदेवस्तु देवक्या सहागाद् भवनं स्वकम्॥२८॥
ततः काले गते क्वापि देवकी सुषुवे सुतम्। तं कंसाय महाभागो वसुदेवः समर्पयेत्॥२९॥
तत्राभूद्विस्मितः कंसस्तस्य सत्यव्यवस्थया॥३०॥
गच्छ गच्छ समुत्रस्त्वं न ह्यस्मादस्ति मे भयम्। युवयोरष्टमात् पुत्रान्मरणं मे निरूपितम्॥३१॥
एवं कंसवचः श्रुत्वा वसुदेव प्रयच्छति। नारदः स्वयमागत्य कंसायाथाम्यभाषत॥३२॥

व्यासजी कहते हैं—वसुदेव के स्वभाव को जानने वाला कंस वसुदेव की यह बात सुनकर सभी को साक्षी बनाकर देवकी वध से निवृत्त हो गया। तब सबने मिलकर उस समयानुसार जो मंगल कार्य था, उसे सम्पन्न किया। इसके कुछ काल के उपरान्त देवकी ने एक पुत्र को जन्म दिया। तदनन्तर महाभाग वसुदेव ने उस पुत्र को ले जाकर कंस को अर्पित कर दिया। इस कार्य से कंस ने वसुदेव के सत्यपालन से विस्मित होकर उनसे कहा—"हे वसुदेव! पुत्र को लेकर वापस जायें। इस पुत्र से मुझे भय नहीं है। आपके अष्टम पुत्र से मेरी मृत्यु का निर्धारण हुआ है। यह सुनकर वसुदेव पुत्र लेकर वापस चले गये। तभी नारद स्वयं आकर कंस से कहने लगे।।२७-३२।।

नारद उवाच

अहो कंस राजसूनो नोपयुक्ता मतिस्तव। वसुदेवस्य तनयं किं प्रत्याख्यात वानसि॥३३॥
वसुदेवसुतान् सर्वान् मारयावीर सर्वथा। निःसहायो यथा त्वां नो नाशयेदष्टमः सुतः॥३४॥

नारद कहते हैं—हे राजपुत्र कंस! तुम्हारा यह निर्णय उचित नहीं है। वसुदेव के पुत्र को छोड़ देना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है। वसुदेव के जितने पुत्र हों, सभी को शत्रु की तरह मृत करो। इस प्रकार वसुदेव का अष्टम पुत्र निःसहाय होकर तुमको मार नहीं सकेगा।।२३-३४।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा प्रययौ देवः कंसश्चापि तथाकरोत्। उग्रसेनसुतस्तञ्च जघान तु मुदान्वितः॥३५॥
हतेष्वेवं षट्सु तेषु कंसेन सुदुरात्मना। रक्षायै सप्तमस्याथ विष्णुः परमपूरुषः।
उपतस्थे कामरूपे देवीमसुरनाशिनीम्॥३६॥

व्यासजी कहते हैं—देवर्षि नारद यह कहकर चले गये। तब उग्रसेन के पुत्र कंस ने उसे स्वीकार किया तथा वसुदेव के प्रथम पुत्र का सहर्ष वध कर दिया। इसी प्रकार अत्यन्त दुरात्मा कंस ने वासुदेव के छः पुत्रों का वध कर दिया। तब वसुदेव के सप्त पुत्र के रक्षार्थ विष्णु कामरूप पीठ पर देवी की स्तुति करने लगे।।३५-३६।।

विष्णुरुवाच

देवीं नवीनघननीलसुचारुरूपां, हेमज्वलद्रुचिरनूपुर शिञ्जिताङ्घ्रीम्।
प्रत्यङ्गुलीदलनखच्छलरूपचन्द्रे, संसेविते विजयदे भवतीं नमामि॥३७॥

द्राधिष्ठनागविधिबद्धविशाल चारु, शार्दूलचर्मपरिधायिनि दक्षकन्ये।
कादम्बिनी रुचिरदीर्घविमुक्तकेश, पाशोरुशोभि जघनां भवतीं स्मरामि॥३८॥
हस्तैश्चतुर्भिरमलैर्घृतखड्गपाशैः, प्रोद्यत् सुधाधररुचिर्नृकपालयुक्तैः।
दुष्प्रेक्षणीयभवरूपधरां सुरारि, दैत्यादिभिर्विजयदे भवतीं स्मरामि॥३९॥

विष्णु कहते हैं—हे नव-नील जलधर-रुचिर कान्ति देवी! आपके चरणयुगल में स्वर्णमय उज्ज्वल सुचारु नूपुर ध्वनित हो रहा है। चन्द्र आपकी पादाङ्गुलि के नख के रूप में आकर आपकी सेवा में रत रहता है। हे विजयप्रदे! आपको मेरा प्रणाम! हे दक्षकन्ये! दीर्घतम सर्प से विशेषतया वद्ध विशाल शार्दूलचर्म आपका वस्त्र है। मेघ के घन जाल के समान नीलता लिये सुरुचिपूर्ण लहरा रहे केश आपके जघन तक पहुंचते हैं। इनसे महान् शोभा सम्पादित हो रही है। मैं आपके इस स्वरूप का स्मरण करता हूं। हे अमले! आप चतुर्भुजा हैं। खड्ग तथा मुण्ड आपके हस्तद्वय में है। एक हाथ में नरकपाल उगते हुए चन्द्रमा के समान शोभित हो रहा है। दैत्य-दानव रूप देवशत्रुगण के लिए आप अत्यन्त दुर्द्धर्ष हैं। हे विजयप्रदे! मैं आपका स्मरण करता हूं।।३७-३९।।

व्यादीप्यमाननयनत्रयदृष्टिरूपे, पीयूषवर्षिणि सुरादिषु दैत्यहंत्री।
स्वच्छप्रसन्नविमलाम्बर मण्डलाभ, भालेन्दुखण्ड तिलका भवतीं स्मरामि॥४०॥
किरीटकोटिकमनीयलसत्पताका, पीयूषभातुलसित्कण्ठमणिः सदैव।
जाज्वल्यमानरविकोट्यधिक प्रभाड्यां, सर्वार्चिते विजयदे भवतीं स्मरामि॥४१॥
एतादृशीं रुचिररूपधरासि भक्त, चिन्तानुरूपकरणासि निसर्गसूक्ष्मा।
ज्ञानस्वरूपिणि विभो नयनाद्याधिष्ठा, निश्चक्षुरादिमसितां भवतीं स्मरामि॥४२॥

हे दैत्यघातिनी! आप देवता तथा भक्त लोगों को अपने उज्ज्वल तीन नेत्र से अवलोकन करके अमृतवर्षा करती हैं। आपके निर्मल नभमण्डल के समान स्वच्छ सुप्रसन्न ललाट पर चन्द्रकला विराजित है, मानों वह आपका तिलक है। मैं आपको स्मरण करता हूं। आप पर उन्नत किरीट रूप कमनीय पताका शोभित है। आप चन्द्रशेखर की सतत् कण्ठरत्न हैं। हे सर्वपूजिते! आपकी प्रभा तो अत्युज्ज्वल कोटि-कोटि सूर्य की अपेक्षा भी अधिक है। हे विजयप्रदे! मैं आपका स्मरण करता हूं।

हे निसर्गसूक्ष्मे! आप इस प्रकार से सुचारु रूप सम्पन्ना हैं तथा भक्त के चिन्तन के अनुरूप वैसा ही रूप धारण कर सकने में समर्थ हैं। हे ज्ञानस्वरूपिणी! प्रभो! आप नयन आदि इन्द्रियों की अधिष्ठात्री होकर भी चक्षु आदि इन्द्रियों से विवर्जिता हैं। मैं आपका स्मरण करता हूं।।४०-४२।।

नारायणी विधि शिवाच्युतवन्दिताङ्घ्रिः, काली जया विजयदा जननी जनानाम्।
दुर्गाभया भगवती गिरिजा भवानी, त्वं वैष्णवी निखिलदेवमयी प्रसीद॥४३॥
नारायणाच्युत जनार्दनपद्मनाभ, दैत्यारिविष्णुभगवत् कमलाननेति।
नामानि देवि कमलानि तवैव शब्द, लिङ्गैकभेदकलितानि विहीनलिङ्गे॥४४॥
त्वं कालकेतुवरदाच्छलगोधिकासि, यत्वं शुभा भवसि मङ्गलचण्डिकारण्या।
श्रीशालवाहननृपाद् वणिजः स सूनो, रक्षेऽम्बुजे करि चयं ग्रसती वसन्ती॥४५॥

आप नारायणी हैं, आपके चरणकमल की वन्दना हरि, हर, ब्रह्मा करते हैं। आप काली, जया, विजयप्रदा तथा जगदम्बा हैं। आप दुर्गा, अभया, भगवती, गिरिजा, भवानी तथा वैष्णवी हैं। हे सर्वदेवमयी! प्रसन्न हो जायें! हे लिङ्गविहीने! नारायण, अच्युत, जनार्दन, पद्मनाभ, दैत्यारि, विष्णु, भगवान्, कमलासन—ये सभी आपके ही नाम हैं। केवल शब्द तथा लिङ्ग का ही भेद है। आपने लीला से स्वर्णगोधिका मूर्त्ति ग्रहण किया था। आप शुभा, मंगलचण्डिका हैं। आप मातङ्गभोजन तथा उद्गीरण करके कमले कामिनी रूप से श्रीमन्त सौदागर तथा उसके पिता की श्री शालवाहन राजा से रक्षा किया था।।४३-४५।।

व्यास उवाच

एवं स्तुता भगवती विष्णुना प्रभविष्णुना। ददौ सा दर्शनं देवी काली कल्याणप्रदा हरेः॥४६॥

व्यासजी कहते हैं—प्रभु विष्णु के द्वारा इस प्रकार से स्तव किये जाने पर कल्याणप्रदा देवी काली ने श्रीहरि को दर्शन देकर कहा।।४६।।

भगवत्युवाच

कथं स्तुवीषि मां देव किं ते कार्यमुपस्थितम्। तदहं ते करिष्यामि तन्मे वद न चान्यथा॥४७॥

भगवती कहती हैं—हे देव! आप मेरी स्तुति क्यों कर रहे हैं? क्या कार्य है कहिए। अन्यथा न करें। मैं कार्य सम्पादित करूंगी।।४७।।

भगवानुवाच

अहञ्चावतरिष्यामि भूभारक्षयहेतवे। तत्र साहाय्यमिच्छामि भवत्या भुवनेश्वरी॥४८॥

भगवान् कहते हैं—हे भुवनेश्वरी! मैं भूभारहरणार्थ भूतल पर अवतीर्ण रहूंगा। इस सम्बन्ध में आपकी सहायता चाहिए।।४८।।

भगवत्युवाच

त्वं याहि देवकीगर्भमष्टमं भगवन् हरे। गोकुले तु यशोदायां गोपिन्यां सम्भवाम्यहम्॥४९॥
नन्दस्य वासनापूर्त्तिं त्वं करिष्यसि गोकुले। अहञ्च मथुरामेत्य च्छलयिष्यामि ते रिपुम्॥५०॥
अहं ते भ्रातरं ज्येष्ठं देवक्या गर्भतो हरे। आकृष्य रोहिणीगर्भे स्थापयिष्यामि गोकुले॥५१॥
एवमेव करिष्यामि संस्मृता संस्मृता त्वया। तव स्थास्यति संकीर्त्तिर्ब्रह्मसृष्टो मलापहा॥५२॥

भगवती कहती हैं—हे हरि! तुम देवकी के अष्टम गर्भ में प्रवेश करो। मैं गोकुल में यशोदा गोपिनी के गर्भ में आविर्भूत होती हूं। तुम गोकुल में नन्द की लालसा पूर्ण करो। मैं मथुरा आकर तुम्हारे शत्रु कंस से छलना करूंगी। हे हरि! मैं तुम्हारे बड़े भाई को देवकी के गर्भ से आकर्षित करके रोहिणी के गर्भ में गोकुल ग्राम में स्थापित करूंगी। जब-जब तुम मेरा स्मरण करोगे, तब मैं तुम्हारे कार्य को सम्पन्न करूंगी। ब्रह्मा की सृष्टि में तुम्हारी पापनाशिनी कीर्त्ति सदा स्थित रहेगी।।४९-५२।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सा तदादेवी तत्रैवान्तरधीयत। संकर्ष्य देवकीगर्भं रोहिणीञ्च प्रवेशयेत्॥५३॥

देवकी च्युतगर्भाभूदिति लोकरवो भवत्। इह नन्दालये विप्र रोहिणी गर्भिणी वभौ॥५४॥
नन्दालये ततो जाते बले लोकमनोरमे। विवेश देवकीगर्भं केशव! पुरुषोत्तमः॥५५॥
विष्णुना जगदीशेन गर्भेण देवकात्मजा। विप्रराज यथा प्राची ब्रह्मकालेऽरुणप्रदा॥५६॥
देवाः सर्वे तदा कृष्णं गर्भस्थं परितुष्टुवुः॥५७॥

व्यासजी कहते हैं—यह कहकर भगवती वहां से अन्तर्हित हो गयीं। तदनन्तर भगवती ने देवकी के गर्भ का आकर्षण करके उसे रोहिणी के गर्भ में प्रविष्ट किया। तब जनता में यह बात फैली कि देवकी को गर्भस्राव हो गया। इधर रोहिणी ने नन्दगृह में गर्भवती हो गयीं। लोकमनोरम बलभद्र ने नन्दगृह में प्रवेश किया। जगदीश्वर विष्णु के देवकी के गर्भ में प्रवेश करते ही देवकी ब्राह्ममुहूर्त्त में अरुणोज्वला पूर्व दिशा की भांति शोभित हो गयीं। तब देवगण आकर गर्भस्थ श्रीकृष्ण का स्तव करने लगे।।५३-५७।।

देवा ऊचुः

एवं पुराणपुरुषं भगवन्तमाद्यं, वैकुण्ठनाथमखिलेश्वरमप्रमेयम्।
ज्ञानस्वरूपममलं भुवनैकनाथं, त्वां सत्यरूपमपि पूर्णमनन्तनीडे॥५८॥
यस्मिन् प्रसीदति हरौ श्रुतिभिः समीड्ये, त्रैलोक्यमेव सुरभर्चमयं प्रसन्नम्।
तं त्वां सुरासुरनरोरगकिन्नरादि, तुभ्यं भजामि करुणामयमेकमीश्वरम्॥५९॥
यः स्वेच्छया सृजसि पासि हरस्यथान्ते, देहाश्च धारयसि जीवनिकायमात्र।
सत्वं स्वयञ्च पुरुषोत्तममेव धर्तुं, प्राप्तोऽसि देवकसुता जठरं नमस्ते॥६०॥

देवगण कहते हैं—हे पुराणपुरुष! आद्यप्रभु! वैकुण्ठनाथ! हे अप्रमेय ज्ञानस्वरूप निर्मल जगदीश्वर! आप सत्यस्वरूप, पूर्ण, अनन्त एवं त्रिभुवन के एकमात्र अधीश्वर हैं। मैं आपकी स्तुति करता हूं।

वेदवन्दित हरि आपके प्रसन्न होने पर समस्त त्रैलोक्य प्रसन्न हो जाता है। आप ही सुर-असुर-नर-किन्नर-सर्पादि के वन्दनीय करुणामय एकमात्र ईश्वर हैं। मैं आपका भजन करता हूं।

हे निखिल प्राणीमय! आप स्वेच्छा से ही सृष्टि-स्थिति का सम्पादन करके प्रलयकाल में जगत् का संहार करते हैं। समय-समय पर विविध देह धारण करते हैं। आप स्वयं विष्णु पुरुषोत्तम होकर भी देह धारणार्थ देवकी के गर्भ में प्रविष्ट हैं। आपको प्रणाम।।५८-६०।।

यं त्वां हरिं स्मरत एव न गर्भवास, पीड़ोग्रदुःखमपुनर्भवदं भवेद् वै।
सत्वं न देवकसुता जठरं प्रविष्टः, कस्य प्रतीति विषयो भवतीति साधोः॥६१॥
मनो भवान् निजजनस्य कृपावलात्मा, धत्से तनुं भजनकारणमात्मतन्त्र।
न ह्न्यथा कृमिपतङ्गसमाः कथन्तु, कंसादयो दधति जीवनमिष्टिनाशाः॥६२॥
किं चित्रमत्र धरया वसुदेवपत्न्या, शूरात्मजेन सह नन्दयशोदया वा।
संसेवितोऽसि सुरभूसुरयज्ञरूपी, यस्मात् त्वमत्र भगवन् विहरिष्यसीति॥६३॥
त्वां धर्मकारणमकारणमच्युतारण्यं, पृथ्व्यां हरे विविधचारुतरोः सुशीलाः।
कुर्वन्तमादिपुरुषं पुरुषार्थसार, मीक्षामहे समवतीर्य तव प्रियार्थम्॥६४॥

हे हरि! आपको स्मरण करने से गर्भवास पीड़ात्मक उग्रदुःख भोग नहीं करना पड़ता, प्रत्युत पुनर्जन्म ही नहीं होता, वे आप देवकी के गर्भ में प्रविष्ट हो गये, यह कथा सुनकर कोई साधु व्यक्ति विश्वास ही नहीं करेगा। हे स्वाधीन! हम यह विवेचना इस सम्बन्ध में करते हैं कि आपने अपने भक्तों के प्रति कृपा परवश होकर ही हम लोगों की उपासना के योग्य-देह को धारण किया है। आपने शत्रुवधार्थ तथा अन्य कार्य के लिए कदापि देह धारण नहीं किया। यदि कंस प्रभृति असुर आपके द्वेषभाजन होते, तब वे कितने क्षण जीवित रह सकते थे? वे तो आपके समक्ष कीट-पतंगों की तरह तुच्छ हैं। हे भगवान्! आप यहां विहार करेंगे, इसीलिए देवरूपी, भूदेवरूपी तथा यज्ञरूपी आपकी पृथिवी-वसुदेव-देवकी तथा नन्द-यशोदा सेवा करेंगे, इसमें क्या आश्चर्य! हे हरि! आप धर्मनिदान हैं। आपका कोई कारण नहीं है। आपका नाम है अच्युत। आपकी प्रसन्नता हेतु हम भी अवतीर्ण होकर पृथिवी पर आपकी चारुतर प्रकाशपरायण, पुरुषार्थ सार लीला को देखेंगे। आप आदिपुरुष का अवलोकन करेंगे।।६१-६४।।

व्यास उवाच

एवं संस्तुत्य ते सर्वे देवाः शत्रुपुरोगमाः। स्वं स्वं वासं ययुः सर्वे भूयोभूयः समागताः॥६५॥
कंसस्तु देवकीं दृष्ट्वा परमाद्भुतरूपिणीम्। तदैव हन्तुमैच्छत् तां परामृश्य न्यवर्त्तते॥६६॥
ववन्ध निगड़ेनैव वसुदेवञ्च देवकीम्। रक्षकैः स्थापिते नेह रुद्धद्वारे ररक्ष च॥६७॥
अथ भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यर्द्धरात्रके। वभूव कृष्णः कृष्णात्मा कान्तश्चारु चतुर्भुजः॥६८॥
आलोकयन् गृहं सर्वं शङ्खचक्रगदाब्जधृक्। पीताम्बरधरः स्रग्वी कौस्तुभाभरणोज्वलः॥६९॥
किरीटी कुण्डलधरः स्मेरोद्भासित मुखाम्बुजः। नवनीरधरश्याम इन्द्रनीलमणिप्रभः।
सुनन्दनन्द प्रमुखैः पार्षदैरभिपूजितः॥७०॥
तं दृष्ट्वा दम्पती तत्र कृष्णं कमललोचनम्। प्रणम्य जगतीनाथं देवं जगतुर्मुदा॥७१॥

व्यासजी कहते हैं—वे सभी इन्द्रादि देवता इस प्रकार स्तव करके अपने-अपने स्थान पर चले गये। देवगण इस प्रकार पुनः पुनः आते थे। कंस ने जब देवकी को परम अद्भुद् रूपा देखा, तब उसके वध के लिये उद्यत होने लगा, तथापि बाद में परामर्श करके इस कार्य से हट गया। कंस ने वासुदेव तथा देवकी को जंजीर से बांध दिया। रक्षकों से रक्षित बन्द द्वार वाले कारागृह में उनको रखा, तदनन्तर भाद्रमासीय कृष्णाष्टमी की अर्द्धरात्रि में चतुर्भुज, कमनीय देह, कृष्णकान्ति श्रीकृष्ण आविर्भूत हो गये। उनके हाथों में शंख-चक्र-गदा-पद्म था। उनका वस्त्र था पीताम्बर। गले में माला तथा कौस्तुभ रूपी आभूषण था। उनकी प्रभा से वे समस्त कक्ष आलोकित हो गये। उनके मस्तक पर मुकुट, कर्ण में कुण्डल, मुखमण्डल प्रफुल्ल था। उनका देहवर्ण था नवघनश्यामल, ज्योति थी इन्द्रनीलमणि के समान। सुनन्द, नन्द आदि पार्षद उनकी पूजा कर रहे थे। दम्पति वसुदेव-देवकी ने जगदीश्वर कमलनयन देवश्रेष्ठ कृष्ण को देखा, तब उनको हर्षपूर्वक प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे।।६५-७१।।

दम्पति उचतुः

जातोऽसि तो रमानाथ माधव श्रीधर प्रभो। पूर्णस्त्वं भगवान् विष्णुः कमनीयः कलानिधिः॥७२॥
यस्य भ्रूभङ्गमात्रेण त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम्। नश्यत्युत्पद्यते भूयः सत्वं नारायणः प्रभुः॥७३॥
सत्वं देवोऽखिलाधारः सत्वमूर्त्तिः सनातनः। पृथिवीभारहाराय ह्यवतीर्णोऽसि लक्ष्यसे॥७४॥

त्रैलोक्यसमुदायस्य कान्तिं धृत्वा समागतः। नैतस्य तव रूपस्य चक्षुर्नो धारणक्षमम्॥७५॥
विनाप्येतेन रूपेण त्रैलोक्याभ्यधिकेन ह। भूभारान् नाशितुं शक्तस्तस्माद्रूपमिदं तव॥७६॥
भक्तानामनुकम्पार्थमधिकं ननु केशव। गरुड़ध्वज गोविन्द नाथ श्रीपुरुषोत्तम॥७७॥
उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्। किं कर्त्तव्यमिहास्माभिर्दीनबन्धो जनार्दन॥७८॥

दम्पति कहते हैं—हे रमानाथ, प्रभो, माधव, श्रीधर! हमने जान लिया है कि आप कमनीय कलानिधि भगवान्, पूर्ण तथा विष्णु हैं। जिनकी भ्रूभङ्गीमात्र से भूर्भुवः प्रभृति त्रैलोक्य नष्ट हो जाता है तथा उत्पन्न होता है, आपही वे प्रभु नारायण हैं। आप ही वह अखिलाधार सनातन सत्वमूर्त्ति हैं। आप पृथिवी के भार ग्रहणार्थ अवतीर्ण हुए हैं। यह हम समझ गये हैं। आप समस्त त्रैलोक्य की कान्ति के साथ यहां उपस्थित हैं। यह आपका ज्योतिर्मय रूप हम नेत्र से देख ही नहीं पा रहे हैं। आप इस त्रैलोक्यातिशायी रूप के बिना भी भूभार हरण कर सकने में समर्थ हैं। अतः आप इस रूप को समेट लीजिए। हे केशव! हे गरुड़ध्वज! गोविन्द! हे नाथ! हे श्रीपुरुषोत्तम! विश्वरूप! आप भक्तों पर कृपा करके इस अलौकिक रूप का उपसंहार कर लीजिए। हे दीनबन्धु, जनार्दन! अब हमारा क्या कर्त्तव्य है?॥७२-७८॥

भगवानुवाच

एवमेव यथाज्ञानं भवद्भ्यां तन्न संशयः। भवतां प्राकृतो बालो नय मां नन्दगोकुलम्॥७९॥
मज्जन्मतुल्यकालो हि यशोदा नन्दगेहिनी। असूत् कन्यां रुचिरां मम प्रतिनिधिं शुभम्॥८०॥
आनयिष्यसि सा त्वत्र कंसाय च्छलयिष्यति। विहरिष्यामि तत्राहं नाना दुष्टान् विनाशनम्॥८१॥
मध्येऽस्ति यमुना देवी जलपूर्णतरङ्गिणी। सा तुभ्यं दास्यते पारं सर्वञ्च निद्रितं जगत्॥८२॥
न भेतव्यं कंस तस्त्वं नान्यलोकेभ्य एव च। युवां विमुक्तनिगड़ौ मुक्तद्वारञ्च मन्दिरम्॥८३॥
अत्रापि गोकुले चापि सर्व निद्रायिता जनाः। क्वापि किञ्चिन्न वक्तव्यं वसुदेव महामते।
तव नाम्ना वासुदेव इति मे नाम विश्रुतम्॥८४॥

भगवान् कहते हैं—तुमने जो जाना है, वही यथार्थ हैं। इसमें सन्देह नहीं है। मैं तुम्हारे स्वाभाविक बालक के रूप में हो जाता हूं। मुझे तुम नन्दराज के गोकुल में ले जाओ। जिस समय मेरा जन्म हुआ है, ठीक उसी समय में नन्दपत्नी यशोदा ने एक सुन्दर आकृति की कन्या को जन्म दिया है। वह कल्याणी नन्दपुत्री ही मेरी प्रतिनिधि होगी। उसे यहां ले आओ। वह कन्या ही कंस को छलेगी। मैं नाना दुष्टों का संहार करके गोकुल में विहार करूँगा। मथुरा तथा गोकुल के बीच जलपूर्ण तथा तरंगों से भरी यमुना नदी विद्यमान है। नदी तुमको पार जाने का मार्ग दे देगी। अभी जगत सोया हुआ है। कंस अथवा अन्य किसी का भय नहीं करो। अब मैं दोनों को जंजीर के बन्धन से मुक्त करता हूं तथा द्वार खोल देता हूं। हे महामते! वसुदेव! किसी से कुछ भी नहीं कहना। तुम्हारे वसुदेव नाम से ही मेरा नाम वासुदेव प्रसिद्ध होगा।।७९-८४।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तत्क्षणात् कृष्णो बभूव प्राकृतः शिशुः। वसुदेवस्तथा चक्रे यदुक्तं विष्णुना द्विजा॥८५॥

यशोदा प्रसवश्रान्ता विलोक्य शूरनन्दनः। तत्र पुत्रं स्थापयित्वा नीत्वा पुत्रीञ्च तत्क्षणा॥८६॥
आनीय स्वगृहं प्राप्तो वसुदेवो महात्मनाः। पूर्ववन्निगड़स्थोऽभूद् गृहञ्च बन्धनिर्गलम्॥८७॥
कन्या रुवाव रुदती जातिमात्रेण तत्र सा। तेन प्रबुद्धाश्च जनाः कंसचागत्य सत्वरम्॥८८॥
मुक्तकेशोऽसिहस्तश्च रुषा घूर्णितलोचनः। पादेनाहत्य च बलात् कवाटं शौरिमब्रवीत्॥८९॥
जातस्ते बालकः शौरे देहित्वं ह्यस्य मृत्यवे। विधाता लिखितं ह्यस्य मरणं जन्ममात्रतः॥९०॥

व्यासजी कहते हैं— श्रीकृष्ण यह कहकर तत्क्षण सामान्य बालकवत् हो गये। हे द्विज! श्रीकृष्ण ने जो कहा था, तदनुरूप कार्य वसुदेव ने किया। महात्मा शूरनन्दन वसुदेव ने गोकुल जाकर यशोदा को प्रसवविमुग्धा देखकर वहां अपना पुत्र रखा तथा उस कन्या को अपने यहां ले आकर पूर्ववत् जंजीर से वद्ध हो गये। द्वार भी अर्गलाबद्ध हो गया। लाई गयी कन्या का मानों तभी जन्म हुआ है, वह उस प्रकार रुदन करने लगी। इससे रक्षक जाग गये। कंस भी जैसा था, उसी प्रकार से खुले बालों को बिखेरे ही चला आया। उसने हाथ में तलवार धारण किया था। वह क्रोध से घूर्णित हो रहे नेत्रों से वहां आया तथा बलपूर्वक पैर के प्रहार से दरवाजा खोलकर वसुदेव से बोला—"हे शूरनन्दन! तुम्हारा बालक पैदा हो गया है। विधाता ने इसको जन्म लेते ही मृत्यु का विधान लिखा है"।।८५-९०।।

व्यास उवाच

देवकी व्याकुलापाङ्गी कंसवक्त्रं निरीक्षती। कन्येयमिति भाषन्ती हस्ताभ्यां सहसा वृणोत्॥९१॥
अश्रृण्वन् वचनं तस्या हस्तादाच्छिद्य बालिकाम्।
हसन् नृत्यन्निवानन्दाद् ययौ यत्र परैर्मृता॥९२॥
तत्र तां बालिकां देवीं धृत्वा पादाम्बुजद्वये। क्षेप्तं पाषाणपृष्ठे वै उच्चिक्षेप मुदान्वितः॥९३॥
सा तत्करस्था नभसि तत्कराद्गलिता क्षणात्। वभूव भीषणाकारा साट्टहासा वियद्गता॥९४॥
अष्टहस्ता खड्गचर्मशूलासिबाणपाशकैः। परशुयष्टिसंयुक्तै र्देवदेवीमिरर्चिता॥९५॥
घण्टाशङ्खधनुर्नादैः शब्दयन्ती दिशोदश। अट्टहासेन तं प्रोचे कंसं विस्मितचेतनम्॥९६॥
किं मां जिघांससे मूर्ख न मिथ्याकाश भारती। तदर्थं वै पूर्वशत्रुः कापि जातन्त वानघः।
इत्युक्ता सा भगवती तत्रैवान्तर धीयत॥९७॥
कंसश्च विमना भूत्वा सन्दिग्धश्च परं तदा। देवकीं वसुदेवञ्चाप्यनुनीय विमुच्य च॥९८॥

व्यास कहते हैं—देवकी व्याकुल नेत्रों से कंस के मुख की ओर देखती "यह कन्या है" कहते हुए कन्या को अपने हाथों से ढकने लगी। कंस ने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया तथा बालिका को उठा लिया। वह आनन्द से मानों हंसते तथा नृत्य करते उस कन्या को वहां ले गया, जहां उसने वसुदेव की पूर्व-पूर्व सन्तानों का वध किया था। वहां कंस ने बालिकारूपा देवी के चरणद्वय को पकड़ कर पत्थर पर उसे पटकने के लिए प्रसन्नतापूर्वक ऊपर उठाया। कंस के द्वारा हाथों से पकड़ी गयी बालिकारूपा भगवती क्षणकाल में ही उसके हाथों से छूट कर आकाश में चली गयीं। तब उनकी भीषण आकृति हो गयी। वे आकाश में अट्टहास करने लगीं। उन्होंने अपनी आठ भुजाओं में क्रमशः खड्ग, ढाल, शूल, छूरिका, बाण, नागपाश, परशु तथा यष्टि धारण किया था। तब देवगण उनकी पूजा करने लगे।

घंटा, शंख तथा धनुष की टंकार से दसों दिशायें गूंज उठीं। तब भगवती उस विस्मयचित्त कंस से अट्टहास पूर्वक कहने लगीं—"हे मूर्ख! मुझे मारने की इच्छा किया था। अरे! दैववाणी मिथ्या नहीं होती। तुम्हारा वह पूर्व शत्रु निष्पाप व्यक्ति तुम्हारे विनाशार्थ कहीं जन्म ले चुका है।" यह कहकर भगवती वहीं अन्तर्हित हो गयीं। तब मूर्ख कंस ने विमना होकर संदिग्ध चित्त से वसुदेव तथा देवकी से अनुनय-विनय करके उनको कारागार से मुक्त कर दिया।।९१-९८।।

स्वगृहं प्राविशन्मन्दो मन्त्रिभिः सममन्त्रयत्। नियुक्त मन्त्रिणस्तस्य गोब्रह्मामरहिंसने।।९९।।
यतः स्वस्त्ययनं काम्यं तस्य हिंसाधियोववो। जिघांसको निर्दिशन्तु बालकान् दुष्टबुद्धयः।।१००।।

।।इति वृहद्धर्मपुराणे उत्तरखण्डे षोडशोऽध्यायः।।



तदनन्तर वह स्वगृह जाकर मन्त्रिगण से मन्त्रणा करने लगा कि गौ, ब्राह्मण तथा देवहिंसा करना है। लोक जिससे स्वस्त्यायन पाठ कराते हैं, उनकी भी हिंसा निश्चित की गयी। साथ ही यह तय हो गया दुष्टबुद्धि किंकर लोग हिंसक होकर बालकों को खोज कर उनका वध करें।।९९-१००।।

।।षोडश अध्याय समाप्त।।



सप्तदशोऽध्यायः

श्रीकृष्णलीला वर्णन

व्यास उवाच

प्रातर्गोपिश्वरोनन्दः आकर्ण्य पुत्रसम्भवम्। बहून् स उत्सवांश्चक्रे चन्द्र बुद्धौ यथोदधिः।।१।।
गृहे गृहे गोकुले च यशोदापुत्रसम्भवः। वाक्यरूपेण बलवान् व्याचरन् मङ्गलोदयः।।२।।
सर्व एव जनास्तत्र पुत्रोत्सवसुखं गताः। दिदृक्षवः समायाता नन्दपुत्रं मुदान्विताः।।३।।
गोप्यो भूषणवासःस्रङ्माल्यचन्दनशोभिताः। धान्यतण्डूलदूर्वाद्य दधिपात्रकराः शुभाः।
आगत्य ददृशुः कृष्णं स्मेरोत्फुल्लदृगाननम्।।४।।
तद्दृष्टिस्मितलावण्यविशेषपरितोषिताः। अदृष्टाश्रुतलाभेन गता वाह्यात्मपूर्णताम्।।५।।
सर्वास्ता धान्यदूर्वाद्यैराशिषो युयुजुः स्त्रियः। चिरंजीव चरंजीव चिरंजीवेति बालकः।।६।।

प्रातःकाल गोपराज नन्द पुत्रजन्म का समाचार सुन उसी प्रकार से आनन्दित हो गये, जैसे चन्द्रोदय से समुद्र आनंदित होकर तरंगायित होने लगता है। गोकुल के घर-घर में यशोदा के शुभ पुत्रजन्म का संवाद प्रचारित हो गया। तब नन्दगोप ने अनेक उत्सव किये। सभी लोग नन्द के पुत्रजन्म के कारण हो रहे पुत्र जन्मोत्सव से सुखी हो गये। गोपियां वस्त्र, अलंकार, माला, चन्दन से शोभित होकर धान्य, तण्डुल, दूर्वा तथा दधिपात्र हाथ में लेकर शुभ वेश में सहर्ष नन्दपुत्र को देखने के लिए नन्दगृह में आईं। उन्होंने वहां आकर उत्फुल्ल नेत्र, किंचित मुस्कान ने विकसित

मुख से शोभित श्रीकृष्ण को देखा। उनकी इस मुस्कान भरी दृष्टि तथा लावण्य देखकर गोपीगण को अदृष्ट तथा अश्रुत लाभ बाह्याभ्यन्तर में व्याप्त हो गया। सभी गोपीगण ने धान्य दूर्वादि से बालक को चरंजीवी हो, चिरंजीवी हो, कहकर आशीर्वाद दिया।।१-६।।

इत्याशिषः प्रयुञ्जानाः सर्वाः कृष्णमयो इव। कृष्णाश्रेयधियो गोप्यः समाश्लिष्यन् परस्परम्॥७॥
एवं गोपाश्च मुदिता दधिभारं वहास्तदा। मङ्गलादधिसिद्धौ ते सन्तेरुः परमाशिषा॥८॥
गावो वृषा वत्सतर्या हरिद्रा तैलरुषिताः। उत्क्षिप्य पुच्छान् मुदिता नृत्यलावण्यतश्चरन्॥९॥
एवन्तु गोकुले तत्र सदानन्द समाकुले। दधिजम्बालसम्पूर्णे सदा कृष्णोत्सवो वभौ॥१०॥
अयमेवोत्सवोस्तत्र गोकुले तद्दिनोद्भवः। दिने दिने पल्लवितो विभूव कृष्णबुद्धिवत्॥११॥

वे कृष्णप्रेम के कारण स्वयं को कृष्णरूपी मानती हुई कृष्णस्पृष्ट हृदय द्वारा एक-दूसरे का आलिंगन कर रही थीं। एवंविध गोपजन आनंदित होकर दधिभार वहन करते हुए उत्सवरूप दधिसमुद्र में सन्तरण करते भासित हो रहे थे। वे भी बालक को आशीर्वाद दे रहे थे। गौ, वृष, बछड़ियां, तेल-हल्दी से रञ्जित किये जाकर पूंछ हिलाते सहर्ष मनोहर नृत्य करते विचरण कर रहे थे। दधि जम्बाल पूर्ण सदानन्दमय गोकुल में इस प्रकार से कृष्णोत्सव सम्पन्न हो रहा था। उस दिन से गोकुल में जो उत्सव प्रारम्भ हुआ था, वह कृष्ण की वृद्धि के तारतम्य से दिनों-दिन बढ़ता गया।।७-११।।

श्रुत्वा तं कंसनृपतिः पूतनामभ्यचोदयेत्। प्राणाधिक्यमिव प्राप्तः पूतनाप्राणपोऽभवत्॥१२॥
सा मुक्तदेहा बालघ्नी पपात निजमूर्त्तितः।
गोपाद्या विस्मितास्तस्य चक्रुः स्वस्त्यायनादिकम्॥१३॥
एवमन्यांश्च दृष्टान् स तृणावर्त्तादिकान् हरिः। हत्वा वै शैशवं निन्ये सह रामेण वै तदा॥१४॥
ततस्तौ प्राप्तनामानौ रामकृष्णौ शुभविति। गोपानां मन्त्रणादेव वृन्दारण्यं प्रजग्मतुः॥१५॥
यत्र गोवर्द्धनो नाम गिरिर्यमुनयान्वितः। कृष्णस्य ब्रह्मरूपस्य रमणीयतरं वभौ॥१६॥
अत्र गोपचरित्रेण दीव्यन् वृन्दावने हरिः। गोपान् गोपीश्च बालांश्च तोषयामास सर्वदा॥१७॥
सर्वे स्वस्वानुभावेनं कामयामासुरेष तम्। स च तान् स्नेहभावेन भेजे भक्तजनप्रियः॥१८॥
चारयन्तौ ततो वत्सास्तत्र रामजनार्दनौ। बकवत्सादिकान् शत्रून वध्यात् कंस किङ्करान्॥१९॥
ततः काले वयस्थोऽभूद्धराचारणपण्डितः। वनेऽघनात्मकं जत्मे महाहिमचलं द्विज॥२०॥

कंसराज ने यह सुनकर कृष्णवधार्थ पूतना को वहां भेजा। कृष्ण ने अत्यन्त बलपूर्वक पूतना का स्तनपान किया। बालकों का वध करने वाली पूतना तब अपने वास्तविक रूप में होकर भूतल पर गिरी और मृत हो गयी। तब गोप-गोपी सभी ने विस्मित होकर कृष्ण के लिए स्वस्तिवाचनादि कराया। तदनन्तर कृष्ण ने तृणावर्त्त आदि दुष्टों का वध किया तथा बलराम के साथ अपना शैशव व्यतीत किया। रोहिणीनन्दन का नाम था बलराम तथा नन्दनन्दन का नाम हुआ कृष्ण। ये शुभ बालकद्वय गोपगण की मन्त्रणा से वृन्दावन आये। वहां यमुना तथा गोवर्द्धन पर्वत विद्यमान है। ब्रह्मरूपी श्रीकृष्ण का अधिष्ठान स्थल वृन्दावन अत्यन्त रमणीय हो गया। श्रीकृष्ण यहां गोपभाव से क्रीड़ारत रहकर गोप-गोपी तथा गोपबालकगण को सदा प्रसन्न रखते थे। सभी कृष्ण की कामना अपने-अपने भावानुरूप करते थे।

भक्तवत्सल कृष्ण भी उनके साथ स्नेह व्यवहार करते रहते। तदनन्तर जब वहां कृष्ण-बलराम बछड़ों को चरा रहे थे, तब बकासुर-वत्सासुरादि का उन्होंने वध किया। वे सभी कंसासुर के ही अनुचर थे। हे द्विज! क्रमशः श्रीकृष्ण की आयु वृद्धि हो गयी। वे गोचारण में निपुण हो गये। उस समय उन्होंने वन में एक दिन अघ नामक पर्वताकार महासर्प का वध किया था।।१२-२०।।

तद्द्रष्टुंश्च समायातो ब्रह्मा देवगणैः सह। भुञ्जानान् बालकान् जह्रे गामन्वेष्टुं गते हरौ॥२१॥
हरावण्वेषणं याते जह्रे गा अखिला अपि। तज्ज्ञात्वा ब्रह्मण कर्म हरिश्छद्ममनुष्यकः।
स्वयं सर्वमभूत् तत्र सर्वेषां प्रीतये नृणाम्॥२२॥
एवं वर्षे गते ब्रह्मा कृतापराधकोऽभवत्। स्तुत्वा नत्वा तं प्रसन्न वभूव विगतज्वरः॥२३॥
ततो दमित्वा सर्पेन्द्रं कालियं दूषिते ह्रदे। चक्रे गोपकुमारीणां प्रसादं वस्त्रमाहरन्॥२४॥
अतोऽपि यज्ञिपत्नीनां प्रसादार्थी यदुत्तमः। वनेऽन्नं भोजयाभास सर्वान् गोपगणान् हरिः॥२५॥
तत इन्द्रमदं मत्वा गोवर्द्धनधरः प्रभुः। ररक्ष गोकुलं सर्वं वातवर्षमहाभयात्॥२६॥
गोविन्दो ऽभिषिक्तोऽभूत् सुरभेः पयसा तदा। स्तुत इन्द्रेण द्वादश्यां मासि भाद्रपदे द्विजः॥२७॥
ततो रासोत्सवं चके गोपीनां प्रीतिहेतुकम्। नन्दश्च वारुणां पाशान्मुमोचाहिभयादपि॥२८॥
एवमादिः शुभालीलाश्चके रामोऽपि तत्क्षमः। एवं तौ रेजतुस्तत्र सर्वालोकमनोहरौ।
रामकृष्णौ महोदारौ श्वेतश्यामौ सहोदरौ॥२९॥

ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण की परीक्षा हेतु देवगण के साथ आकर श्रीकृष्ण के अनुचर जो गोपबालक भोजन कर रहे थे, उनका हरण कर लिया। उस समय श्रीकृष्ण गौओं को खोजने दूर गये थे। श्रीकृष्ण जब लौटकर बालकों को खोजने आगे गये, तब ब्रह्मा ने अवसर देखकर कृष्ण की समस्त गौओं का भी हरण कर लिया। माया से नररूप धारण करने वाले श्रीकृष्ण ने जान लिया कि यह सब ब्रह्मा का कृत्य है। तब सबका उद्वेग दूर करने के लिए भगवान् कृष्ण ने स्वयं ही गोप बालकों तथा गौओं का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया। यह देखकर ब्रह्मा ने स्वयं को अपराधी मानकर स्तुति तथा प्रणाम द्वारा प्रभु श्रीकृष्ण को प्रसन्न किया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने सर्पराज कालिय का दमन करके दूषित जलह्रद को निर्मल बना दिया। तत्पश्चात् उन्होंने गोपकुमारीगण का वस्त्र हरण करके उनके प्रति अनुग्रह भी किया था। तदनन्तर यदुकुलश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने याज्ञिक ब्राह्मणों की पत्नियों के प्रति कृपा करते हुए समस्त गोपबालकों को उन याज्ञिकपत्नियों द्वारा प्रदत्त भोजन कराया। तत्पश्चात् प्रभु श्रीकृष्ण ने इन्द्र के मद को दूर करते हुए गोवर्द्धन पर्वत को उठा कर उसके नीचे समस्त गोकुलवासीगण को पशुओं के साथ रक्षित करके वात एवं वृष्टि को निष्प्रभावी बनाकर इन्द्र का घमण्ड चूर कर दिया। तब इन्द्र द्वारा गोविन्द को सुरभि के दुग्ध द्वारा अभिषिक्त किया गया। हे द्विज! भाद्रमासीय द्वादशी के दिन इन्द्र ने श्रीकृष्ण की स्तुति की थी। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने गोपियों की प्रीति हेतु रासोत्सव भी किया।

भगवान् श्रीकृष्ण ने नंदराज को सर्पभय तथा वरुण पाश से मुक्त किया था। श्रीकृष्ण इस प्रकार अनेक उत्तम लीला करते रहते। नानालीला समर्थ बलराम ने भी अनेक लीला सम्पन्न किया था। सर्वलोक मनोहर शुक्लवर्ण (बलराम) तथा कृष्णवर्ण (कृष्ण) भ्राताद्वय वृन्दावन में शोभित हो रहे थे।।२१-२९।।

तच्छ्रुत्वा नरदात् कंसो विशेषेण द्विजोत्तम। अक्रूरः प्रेरयामास राजमन्त्रिणमुत्तमम्॥३०॥
तेनाज्ञप्तस्तदाक्रूरः सरथो मन्त्रिसत्तमः। गन्तुं प्रचक्रमे द्रष्टुं रामं कृष्णञ्च गोकुलेः॥३१॥
अत्रान्तरे केशिनञ्चाप्रेषयत् खररूपिणम्। सकेशी खररूपेण जगाम् रामकेशवौ॥३२॥
जघान केशिनं कृष्णो येन केशव उच्यते। हते केशिनि कृष्णेन नारदः कृष्णमागमत्।
जगाद सकलां वार्त्तां कंसेन निजसङ्कथाः॥३३॥
गते च नारदे तस्मां सोऽक्रूरः प्रीतिमोदितः। कृष्णस्य जगदीशस्य दर्शनाकाङ्क्षया सुधीः॥३४॥

हे द्विजोत्तम! कंस ने नारद के द्वारा इन सब कथाओं को विशेष रूप से सुना। उसने तब अपने श्रेष्ठ राजमन्त्री अक्रूर को वृन्दावन भेजा। मन्त्रिप्रवर अक्रूर कंस के आदेशानुरूप कृष्ण तथा बलराम को देखने के लिए रथ लेकर गोकुल के लिए चल पड़े। इसी बीच कंस ने केशी नामक गर्दभ रूपी असुर को वहां भेजा। केशी असुर गर्दभरूप में बलराम तथा कृष्ण के पास आया। कृष्ण ने केशी का वध किया, तभी से वे केशव कहलाये। जब कृष्ण ने केशी का वध किया, तब नारद वहां उपस्थित हुए। कंस के साथ नारद की जो गुप्त वार्त्ता हुई थी, वह सब नारद ने कृष्ण से कहा। नारद के प्रस्थान करने पर जगदीश्वर श्रीकृष्ण के दर्शन की आशा से अक्रूर प्रफुल्लित हो उठे।।३०-३४।।

आत्मानञ्च तथा कंसं तुल्यभाग्यौ विचिन्तयन्।
अनिच्छन्नपि कंसो यत्कराब्जं प्राप्यमोक्षितः॥३५॥
तस्यायमिच्छन् पादाब्जं किं प्राप्स्यति इति स्मरन्।
जन्मापि फलवद् बुध्यन्नक्रूरोऽगात्स गोकुलम्।
प्रणम्य राम कृष्णञ्च महात्मानञ्च सार्थकम्॥३६॥
परिष्वक्तः पूजितश्च ताभ्यां तत्र द्विजोत्तम। जगाद सर्ववृत्तान्तं स्वच्छभाग्यवतां वर॥३७॥
नन्दश्च तत्समाकर्ण्य कंसेनाकृतमेव च। गन्तुं समुपचक्राम कंसयज्ञ मुदान्वितः।
नानोपायनसामग्र्या नन्दः कंसनिमन्त्रितः॥३८॥

अक्रूर ने तब अपना एवं कंस का भाग्य समान मान लिया। क्योंकि भले ही कंस अनिच्छापूर्वक भगवान् कृष्ण के करकमल से मुक्तिलाभ करेगा तथा अक्रूर उनके चरणकमल को प्राप्त करके भी वही फल प्राप्त करेंगे। इससे अधिक और क्या फल मिल सकता है? मेरा जन्म सफल हो गया, यह विवेचना करके अक्रूर गोकुल चले गये। महात्मा राम-कृष्ण को प्रणाम करके अक्रूर ने अपना जन्म सार्थक किया। हे द्विजोत्तम! राम-कृष्ण ने अक्रूर का आलिङ्गन करके अत्यन्त आदर किया। तब निर्मल भागवत प्रधान अक्रूर ने समस्त वृत्तान्त बलराम तथा कृष्ण से कहा। गोपराज नन्द ने कंस के कार्य को सुना तथा वे सहर्ष कंसयज्ञ में जाने के लिए तैयार हो गये। कंस द्वारा निमन्त्रित नन्द ने नाना सामग्री उपहार रूप में साथ में ले लिया था।।३५-३८।।

कृष्णस्य गमनं श्रुत्वा गोप्यः कृष्ण स्थितासवः। परिम्लानमुखाः सर्वाः प्रयाणेनाकुला इव॥३९॥

कृष्णप्राणा गोपियां कृष्ण के गमन-संवाद को सुनकर म्लानमुखी हो गयीं। मानों सभी आकुल भाव से अपने मरण को उपस्थित जैसा देखने लगीं।।३९।।

मिथस्ता मन्तयामासुः कुललज्जाभयाकुलाः। कृष्णप्रीतिकरं सर्वं गोपनाथस्य चिन्तयन्॥४०॥

कथं वा ननु जीवेम बिना कृष्णं हृदीश्वरम्।
किन्नो हास्यति कृष्णोवा न जानीमोऽस्य मानसम्॥४१॥
एकमेव हि सर्वासां मृत्युरेष निरूपितः। एवमस्तु वयं सर्वाः कृष्णं ध्यात्वा म्रियामहे॥४२॥
त्रैलोक्यशरणं कृष्णो ह्यस्माकञ्च गतिर्भवेत्। इत्यादि मनसा ध्यात्वां न च धैर्यमुपागताः॥४३॥
कृष्णप्रयाणकाले हि त्यक्त्वा धैर्यं यदीप्सितम्।
आकस्मिकात् कृष्णभावात् प्राणनाथेतिहोजगुः॥४४॥
क्व यासि कृष्ण हे नाथ त्यक्त्वास्माणबलाः प्रभो।
मोचितं तव नैष्ठुर्यं जगत्प्राणस्वरूपिणः॥४५॥
अमृता हि वयं सर्वा भवतैव कृताः पुरा। कथमद्य तु ताः सर्वा विधीयन्ते मृताइव॥४६॥
एवं ता रुदतीः सर्वाः कृष्णः कमललोचनः। ददर्श दीर्घया दृष्ट्या प्रीणयन्निव वै चिरम्॥४७॥
तास्तु दृष्टास्तदैवेह तृप्ता एव हि मेनिरे। कृष्णो ह्यस्माकमेवेति भगवच्चेष्ठिताश्रयाः॥४८॥
कृष्णस्य चरितं विप्र दुर्ज्ञेयमपि योगिनाम्। येन गोप्यः सुहृद्दृष्ट्या चिरं सुप्रणीताः कृताः॥४९॥
भक्तामृता इव प्राणान् स्वच्छन्दं धारयन्ति हि। एवं प्रीणष्य ताः कृष्णः सह रामेण सत्तमः।
अक्रूररथमारुह्य मथुरां सयमाप्तवान्॥५०॥

कुललज्जा के कारण आकुल गोपीगण परस्पर बातें करने लगीं कि क्या कृष्ण नहीं आयेंगे? गोपराज्य में जो कुछ है, वह सभी कृष्ण के लिए प्रसन्नताप्रद है। तब भी क्या कृष्ण वापस नहीं आयेंगे? हृदयेश्वर कृष्ण के बिना हमारा प्राणधारण कैसे होगा? कृष्ण क्या हमारा त्याग कर देंगे? नहीं पता कि उनके मन में क्या है? हम सबकी एक साथ मृत्यु के लिए ही विधाता ने उनको उत्पन्न किया है। जो भी हो, हम सभी कृष्ण का ध्यान करते-करते मरण मुख में चली जायेंगी! त्रिलोकशरण्य कृष्ण ही हमारे उपायरूप हैं। गोपियां मन ही मन यही चिन्तना कर रही थीं, तथापि उनको धैर्य नहीं हो रहा था। अन्ततः कृष्ण के जाते समय तो उन्होंने धैर्य का सर्वथा त्याग कर दिया तथा तात्कालिक कृष्ण भाव में विभोर होकर "प्राणनाथ" की चीत्कार करने लगीं। हे नाथ, हे कृष्ण! हम सभी अबला हैं। हमारा त्याग मत करो। हमें छोड़ कर तुम कहां जा रहे हो? हे प्रभो! तुम जगत् के प्राण हो। तुम्हारे लिए यह निष्ठुरता उचित नहीं है। तुमने ही पूर्वकाल में हमें अमृतरूपा किया था। आज हमें क्यों मृत्युरूपा किये जा रहे हो? गोपियां ऐसा ही रुदन करने लगीं। तब कमललोचन कृष्ण ने मानों उनको चिरकालार्थ प्रीतियुक्त करने के लिए उनकी ओर देर तक देखा। भगवत् चेष्टा की अनुवर्त्तिनी गोपियों ने श्रीकृष्ण के इस अवलोकन को ही अपनी तृप्ति मान लिया। उन्होंने यह माना कि कृष्ण तो हमारे हैं। हे विप्र! कृष्ण के चरित्र को योगीगण भी नहीं जान सकते। कृष्ण के सप्रेम देखने मात्र से गोपीगण चिरकाल के लिए प्रसन्न हो गयीं। गोपीगण तबसे स्वच्छन्दतापूर्वक प्राण धारण करने लगीं, मानों वे अमर हों। श्रेष्ठ कृष्ण ने गोपीजन के हृदय में इस प्रकार प्रीति स्थायी किया तथा बलराम के साथ रथ पर बैठकर अक्रूर के साथ मथुरा पहुंच गये।।४०-५०।।

नन्दाद्या गोपपुरुषास्तस्थुश्चोपवने द्विज। अक्रूरो भवनं प्रायात् कृष्णारामौ ततः परम्॥५१॥
राजवर्त्मनि गच्छन्तौ निहत्य रजकं प्रभुः। परिधाय सुवासांसि कुब्जानुग्रहकृत् तदा॥५२॥

गन्धानुलिप्तसर्वाङ्गौ सुदामस्त्रग्विभूषितौ। कंसस्य मन्त्रितं चापं पौरदर्शितमारुजत्॥५३॥

ततस्तौ चापखण्डाभ्यां निहत्य चापरक्षकान्।
प्रणेमतुः समागत्य मल्लादीन् द्विजसत्तम॥५४॥

कंसोऽक्रूरात् कृष्णरामौ श्रुत्वा यातौ न्यचिन्तयत्।
प्राप्तः सर्वान् समाहूय बद्धा शौरीञ्च देवकीम्॥५५॥

मल्लादीन् स्थापयामास मल्लरङ्गो महाबलान्। मञ्चं सुतुङ्गमारुत्थ सासिचर्मकरः स्थितः॥५६॥

कृष्णरामौ बलोत्कृष्टौ रङ्गद्वारि समाहिते। हत्वा कुवलयापीडं मल्लं चारुर्णनामकम्।
जघान कृष्णो रामस्तु मुष्टिकं मल्लमुत्तमम्॥५७॥

तौ मल्लघातकौ देवौ मल्लरक्ताचितौ शुभौ। नृत्यन्तौ च हसन्तौ च ददृशे उग्रसेनजः॥५८॥

कृष्णस्तु मञ्चमारुह्य नीत्वा कंसकराद सिम्। वामेन पाणिना केशं घृत्वा च यदुनन्दनः।
कंसासिनैव कंसस्य सकिरीटं शिरोऽहनत्॥५९॥

कंसस्कन्धाच्छिरः पेते नालं त्यक्तेव पंकजम्।
कंसस्य तेजः कृष्णोऽगात्सर्वे मुमुदिरे तथा॥६०॥

हे द्विज! नन्द आदि गोपगण मथुरा आकर उपवन में ठहरे। अक्रूर अपने गृह चले गये। तदनन्तर बलराम तथा कृष्ण राजरथ पर जाने लगे। प्रभु कृष्ण ने मार्ग में धोबी का वध किया तथा दोनों भ्राता ने उत्तम वस्त्र पहने। कृष्ण ने कुब्जा पर कृपा की। बलराम तथा कृष्ण ने सर्वाङ्ग गन्ध से चर्चित किया तथा उत्तम माला से विभूषित होकर पुरवासियों के निर्देश के अनुसार कंस द्वारा रक्षित सभागृह में आये। तदनन्तर उन्होंने धनुष तोड़ा तथा उसके दोनों टुकड़ों से रक्षकों को मार गिराया। हे द्विजोत्तम! ये दोनों वीर पहलवानों के पास आये तथा उनको प्रणाम किया। उधर कंस ने अक्रूर से कृष्ण-बलराम के आगमन का संवाद सुनकर मन्त्रीगण के साथ आकर परामर्श किया तथा वसुदेव एवं देवकी को बन्दी बना लिया। उसने मल्लों के रंगस्थान पर महाबली पराक्रमी मल्लों को बुलाया तथा स्वयं उच्चतम मंच पर खड्ग तथा ढाल लेकर जा बैठा। महाबली बलराम-कृष्ण रंगस्थल के द्वार पर आये। द्वार पर कृष्ण ने मदमत्त कुवलयापीड़ हाथी का वध किया तथा चारुण मल्ल का वध किया। बलराम ने भी श्रेष्ठ मल्ल मुष्टिक का प्राणभंग कर दिया। उग्रसेननन्दन कंस ने देखा कि मल्लघाती मल्लों के रक्त से लिपटे मंगलमय प्रभु बलराम-कृष्ण नृत्य तथा हास्य कर रहे हैं। तब यदुनन्दन कृष्ण ने कंस के मंच पर चढ़ कर दाहिने हाथ से उसके हाथों से तलवार खींची तथा बायें हाथ से कंस के बाल पकड़ कर कंस के ही खड्ग से उसके मस्तक को काट फेंका। जैसे नाल से कमल तोड़ा जाये, उसी प्रकार कंस के धड़ से मस्तक अलग हो गिर गया। कंस का तेज कृष्ण में समाहित हो गया। तब त्रैलोक्य भी आनन्दित हो उठा।।५१-६०।।

पितरौ मोक्षयामास पूर्वं कंस प्रपीड़ितौ। नन्दाद्या ज्ञातसर्वार्था वसुदेवेन पूजिताः॥६१॥

ययुः स्वं स्वं स्थलं सर्वे कृष्णरामौ च संस्तुतौ। शांस्त्राण्यपठतां कालेनाल्पेनैवाखिलानि तौ॥६२॥

ततः कंसस्य स्वशुरो जरासन्धो महाबलः। मथुरामागमद् योद्धुं कृष्णरामौ महाबलौ॥६३॥

प्राप्यस्वर्गगतौ दिव्यौ रथौ रामजनार्दनौ। युयुधाते जरासन्धबलेन भूरिभूरिणा॥६४॥
नाशयामासतुः सेना भूयो भूयो बलाच्युतौ। आयातः कालयवनो मागधस्य प्रियार्थकः॥६५॥
सिन्धुमध्ये तदा कृष्णो द्वारिकां निर्ममे पुरीम्।
तत्र सर्वान् यादवादीन् स्थापयित्वा बलान्वितान्॥६६॥
मथुराया विनिर्गता पलाया निमिषेण तु। सुगम्यमानः कालोऽसौ पूर्यां क्वापि हयनीयत।
तत्रासीन्मुचुकुन्दाख्या राजा सूर्य कुलोद्भवः॥६७॥
देवदत्तवरस्वायो यवनेन प्रबोधितः। यवनं भस्म विदधे दर्शनादेव तत्क्षणात्॥६८॥
यवने भस्मसाद्भूते मुचकुन्द वरप्रदः। अन्तर्द्धाय ययौ कृष्णौ द्वारिकां सुप्रियां पुरीम्॥६९॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे उत्तरखण्डे कंसादिनिधनं नाम सप्तदशोऽध्यायः।।



कृष्ण ने पहले कंस से पीड़ित अपने माता-पिता को कारागृह से मुक्त किया। नन्द आदि गोप ने समस्त वृत्तान्त जाना। वसुदेव ने सबका विधिवत् सत्कार किया। सभी जनगण अपने-अपने गृह लौट गये। सभी ने बलराम तथा कृष्ण की स्तुति भी किया। तदनन्तर राम-कृष्ण ने गुरुगृह जाकर अल्पकाल में सभी शास्त्रों का अध्ययन भी किया। कुछ दिनों के बाद कंस के श्वसुर महाबली जरासंध ने महाबली कृष्ण तथा बलराम से युद्धार्थ मथुरा पर चढ़ाई की। बलराम तथा कृष्ण ने स्वर्गस्थित अपना पूर्वतन रथ मंगाकर प्रचुर संख्यक जरासंध की सेना से युद्ध किया। उन्होंने कई बार जरासन्ध की सेना का नाश किया था। तदनन्तर अपने मित्र जरासन्ध की हित कामना से कालयवन कृष्ण से युद्ध करने आया। तब कृष्ण ने यदुवंशी क्षत्रियों के साथ सागर के बीच द्वारिकापुरी का निर्माण किया। उन्होंने वहां सबका रक्षक बलराम को बनाया तथा वापस मथुरा आकर कालयवन के सामने से क्षणमात्र में पलायित हो गये। तब कालयवन ने उनका पीछा किया। इस प्रकार कृष्ण कालयवन को एक पर्वत गुफा के अन्दर तक ले आये। वहां मुचुकुन्द नामक सूर्यवंशी राजा निद्रित थे। उन राजा को देवगण से यह वर मिला था कि जो उनकी निद्रा को भंग करेगा, वह उनकी दृष्टि पड़ते ही भस्म हो जायेगा। कालयवन ने कृष्ण समझ कर मुचुकुन्द की निद्रा को भंग किया। उनकी दृष्टि पड़ते ही कालयवन भस्म हो गया। उसके भस्मीभूत होने पर श्रीकृष्ण ने मुचुकुन्द को वर दिया तथा वहां से अन्तर्हित होकर प्रिय नगरी द्वारिका पहुंचे।।६१-६९।।

।।सप्तदश अध्याय समाप्त।।



अष्टादशोऽध्यायः

कृष्णलीला वर्णन

व्यास उवाच

द्वारकायां वसन् कृष्णो रुक्मिण्यास्तु स्वयम्वरम्। समाकर्ण्य तत्र गत्वा रुक्मिणी प्राप्तुमिच्छतीम्।
जहार भीष्मकसुतां शिशुपालादिदर्पहा॥१॥
तस्यां स जनयामास प्रद्युम्नं नाम सुन्दरम्। तस्य पुत्रो महाबाहुरनिरुद्ध उषापतिः॥२॥
ततः प्राय सत्यभामां तथा जाम्बवतीमपि। सत्राजिन्नाम सूर्यस्य सखा प्राप्य हरेर्मणिम्॥३॥
स्यमन्ताख्याञ्च सुगमं द्वारकायां समानयेत्। दिने दिने स्वर्णभारानष्टो यः सृजति द्विज॥४॥
तत्तु नीत्वा मणिं तस्य भ्राता नाम प्रसेनकः। वने भ्रमन् सिंह हतो समरे स च केशरी॥५॥
मणिहेतोर्हतो दैवाद् भल्लु जाम्बवता बलात्।
प्रसेन हतवान् कृष्णो मणिलोभादिति श्रुतिः॥६॥
जाता जनेषु तच्छ्रुत्वा कृष्णः सास्त्रो विकल्मषः। प्रसेन वर्त्मनागत्या प्रविवेश बिलं तदा।
शुश्राव वचनं दूरात् जाम्बवत् किङ्करीमुखात्॥७॥
सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवतो हतः। सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥८॥
श्रुत्वाभिद्रुत्य भगवान् मणिमाच्छिद्य तत्करात्।
प्रतिगच्छति दास्यान्तु रोदनाज्जाम्बवान् स्वयम्॥९॥
आगत्य युयुधे कृष्णं बाहुभिर्दिवसान् बहून्। पराजितो जाम्बवांश्च ज्ञात्वा तं जानकीपतिम्।
पूजयित्वा सुतां दत्त्वा प्रददौ यौतुकं मणिम्॥१०॥

व्यासजी कहते हैं—कृष्ण द्वारिका में थे, तभी उनको ज्ञात हो गया कि रुक्मिणी उनको पाने के लिए उत्सुक हैं। तब उन्होंने शिशुपाल आदि का घमण्ड चूर्ण किया तथा रुक्मिणी का हरण कर लिया। रुक्मिणी के गर्भ से श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न नामक पुत्र उत्पन्न किया, जो अतीव सुन्दर था। प्रद्युम्न का पुत्र था महाबाहु अनिरुद्ध, जिसकी पत्नी ऊषा थी। तदनन्तर कृष्ण ने सत्यभामा तथा जाम्बवती से विवाह किया। सूर्य के मित्र थे सत्राजित्। उन्होंने सूर्य से स्यमन्तक नामक सौभाग्यप्रदा उत्तम मणि प्राप्त किया तथा उसे द्वारिकापुरी लाये। हे द्विज! उस मणि से नित्यप्रति ८ भार स्वर्ण टपकता था। सत्राजित् का भाई प्रसेन उस मणि को पहन कर वन में भ्रमण करने गया था, जहां उसका वध सिंह ने किया। दैवात् मणि के लिए जाम्बवान् नामक भालू ने युद्ध में सिंह को बलात् मार कर मणि प्राप्त किया। लेकिन जनापवाद यह हुआ कि श्रीकृष्ण ने ही मणि की लालच में प्रसेन का वध किया है। यह जनापवाद सुनकर निष्पाप श्रीकृष्ण अस्त्रादि लेकर प्रसेन के पदचिह्न का पीछा करते एक विस्तृत गुफा में पहुंचे। वहां प्रभु कृष्ण ने दूर से आती एक आवाज सुनी, जो जाम्बवान् की परिचारिका की आवाज थी। वह कह रही थी "सिंह ने प्रसेन का वध किया। अब तुम्हारे पिता जाम्बवान ने सिंह का वध किया। हे सुकुमार! रुदन न करो। यह स्यमन्तक मणि तुम्हारी ही है।"

भगवान् यह सुनकर शीघ्रता से वहां पहुंचे तथा दासी के हाथ से मणि छीनकर वापस जा ही रहे थे कि दासी का क्रन्दन सुनकर स्वयं जाम्बवान वहां आये। उनका कृष्ण से कई दिन तक युद्ध चला। तदनन्तर जाम्बवान् ने जब जाना कि ये ही जानकीनाथ राम हैं, तब उनकी पूजा करके उन्होंने उनको अपनी कन्या प्रदान किया तथा विदाई में मणि प्रदान किया।।१-१०।।

कृष्णो जाम्बवतीं प्राप्य मणिञ्चापि स्यमन्तकम्। द्वारिका मेत्य प्रददौ मणिं सत्राजिते यशः॥११॥
सत्राजितो मणिं प्राप्य लज्जितो न गृहीतवान्। अग्ने प्रमाष्टुं स्वसुतां तस्मै सत्यवतीं ददौ॥१२॥
एवं भगवता तेन प्राप्तं पत्न्याद्वयं द्विज। कालिन्दीं सूर्यतनयां पश्यन्तीञ्चा न लब्धवान्॥१३॥
तथा नाग्नजितीं प्राप्तो जितां सप्तवृषापणाम्। इत्याद्या महिषीरष्ट सहस्त्राणि च षोडशः।
शतञ्चापि च पत्नीनां प्राप्त कृष्णो महागृही॥१४॥
तावन्मूर्त्तिं गृहैश्वर्यो रेमे योगबलेश्वरः। तासु पुत्रादि बहुलं परिवार सहस्त्रकम्।
जनयित्वा सुखं रेमे गृहधर्मान् निदर्शयन्॥१५॥
सर्वाणि स्वर्गद्रव्याणि समाहृत्य यदुद्वहः। स्वधर्मारण्यां सभां कृत्वा राजराज्येश्वरो वभौ॥१६॥

प्रभु श्रीकृष्ण स्यमन्तक मणि तथा जाम्बवती को प्राप्त करके द्वारिका आये। अपने अपवाद से छुटकारा पाने हेतु सत्राजित् ने मणि पाकर भी उसे लेना नहीं चाहा। कृष्ण के प्रति किये अपने अपराध के मोचनार्थ उसने अपनी पुत्री सत्यवती को श्रीकृष्ण को प्रदान किया। हे द्विज! भगवान् को इस प्रकार २ पत्नियां (और) प्राप्त हो गयीं। हे द्विज! अन्य पत्नियां कालिन्दी, शैव्या, लक्ष्मणा थीं। नाग्नजिता को भगवान् ने ७ बैलों को वश में करके प्राप्त किया। इस प्रकार ८ प्रधान पत्नियां थीं। इसके अतिरिक्त भगवान् की १६,१०० और पत्नियां थीं। योगावलम्बन द्वारा भगवान् उतने ही रूप बना लेते, जितनी उनकी पत्नियां थीं तथा प्रत्येक पत्नी के गृह में एक ही समय में पृथक्-पृथक् क्रीड़ारत रहते थे। ये सभी पत्नियां पुत्रवती हो गईं। इससे श्रीकृष्ण का परिवार अतीव विपुल हो गया। यदुपति श्रीकृष्ण ने स्वर्ग से विविध द्रव्य मंगवाकर स्वधर्मा सभा का निर्माण करके राजराजेश्वर के रूप में समय व्यतीत करने लगे।।११-१६।।

पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां सदा प्रीतिकरः प्रभुः। योधिष्ठिरे राजसूये शिशुपालं जघान ह॥१७॥
ततो जघ्ने सौभपतिं शाल्वं चैत्यसखं विभुम्। भूत्वार्जुनस्य यन्ता च हत्वा दुर्योधनादिकान्॥१८॥
पौण्ड्रकं काशिराजञ्च दन्तवक्त्रं निहत्य च। जहार धरणीभारं लीलया मानवाकृतिः॥१९॥
ततो यदुकुलं सर्वं महाभूभाररूपकम्। ब्रह्मशापच्छलेनैव संहृत्यात्मवंश प्रभुः।
स्वर्लोकं प्राविशद्धर्मान् स्थापयित्वा स्वयं कृतान्॥२०॥
एवं स पुण्यचरितो देवदेवो जनार्दनः। अवतीर्य कलौ काले धर्मसंस्थापको द्विज।
अनुस्मृतोऽतोऽनुचितो नृणां दहति कल्मषम्॥२१॥
तस्मिन् याते निजं लोकं कलिः प्रणयवानभूत्। लोकाश्च भूता अलसा अधर्मो अल्पजीविनः।
हिंसाशाण्यदम्भकोपमात्सर्यपापसंयुताः ॥२२॥

श्रृणु तेषां कलिभुवां चरितानि नृणां मुने॥२३॥

॥इति श्रीबृहद्धर्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीकृष्णलीलावर्णनं नामाष्टदशोऽध्यायः॥



प्रभु श्रीकृष्ण ने ५ पाण्डवों के साथ सदा प्रेम रखा था। उन्होंने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में शिशुपाल वध किया। तत्पश्चात् शिशुपाल के मित्र सौभपति शाल्व का वध किया। अर्जुन के सारथी बनकर प्रभु ने दुर्योधनादि का विनाश सम्पन्न कराया। पौण्ड्रक काशिराज तथा दन्तवक्त्रादि दुष्टों का वध किया। उन्होंने मानव देह में स्थित होकर लीला क्रमेण भूभार का हरण किया। तदनन्तर पृथिवी के महाभार हो गये समस्त यदुकुल को ब्राह्मण शाप के बहाने निर्मूल कर दिया। आत्मतन्त्र प्रभु श्रीकृष्ण ने स्वयं द्वारा प्रचारित धर्मस्थापना किया तथा अपने लोक चले गये। हे द्विज! इसी प्रकार पुण्यचरित देवदेव जनार्दन कलिकाल में जन्म लेकर धर्म की स्थापना कर गये। इन निष्पाप विष्णु का स्मरण करने से मानवगण के पाप नष्ट हो जाते हैं। वे जब अपने लोक चले गये तब कलिकाल प्रबल हो गया। लोग आलसी, अधर्मी तथा अल्पजीवी होने लगे। हे मुनिवर! कलिकाल में उत्पन्न मानवगण का चरित्र श्रवण करो॥१७-२३॥

॥अष्टादश अध्याय समाप्त॥



एकोनविंशोऽध्यायः

कलि धर्म कथन

व्यास उवाच

श्रृणुष्व तत्र ये धर्मो मुनिभिः कथिताः पुरा॥१॥

तपः परं सत्ययुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते। द्वापरे दानमेवैकं कलौ दानं तथा मतम्॥२॥
कलौ युगे महाघोरे कृष्णे कृष्णत्वमागते। सर्वे वर्णा आश्रमाश्च व्याजधर्मपरायणा॥३॥
सर्वे नरा भविष्यन्ति क्षुधाकामपरायणाः। वद्धवैरा भविष्यन्ति परस्पर वधेप्सवः॥५॥
भविष्यन्त्यत्तमा हीना हीना उत्तमतां गताः। भार्यामित्राश्च पुरुषा भविष्यन्ति कलो युगे॥६॥
भविष्यन्त्यल्पसलिला मेघा नद्यः सरांसि च। अल्पक्षीरास्तथा गावो वृक्षा अल्पफलास्तथा॥७॥
राजानो ह्यल्पदानश्च नरा अल्पायुधस्तथा। ब्राह्मणा अल्पवेदाश्च क्षत्रादिधर्मजीविनः॥८॥
व्यभिचाररतानार्यो दुर्मुखा गुरुदूषिताः। शूद्रा धर्मान् वदिष्यन्ति पुराणश्लोकपाठकाः॥९॥

व्याख्यासन्ति पुराणार्थान् शूद्राः श्रोष्यन्ति चापरे।
ब्राह्मणान् पाठयिष्यन्ति शास्त्रै व्याकरणादिकम्॥१०॥

एतैस्तु कर्मभिः शौद्रैर्ब्राह्मणा हतचेतसः। लप्सन्ते ह्यात्मघातित्वं शूद्रा नरकभक्षयम्॥११॥

व्यास कहते हैं— पूर्वकाल में मुनिगण ने जिस कलिधर्म का वर्णन किया है, उसे सुनो। सत्ययुग में तप ही परम धर्म होता है। त्रेता में ज्ञान परमधर्म है। द्वापर में यज्ञ परम धर्म है। कलिकाल में दान ही परम धर्म है। महाघोर कलियुग आने पर विष्णु कृष्णवर्ण हो जाते हैं। सभी वर्ण के लोग आश्रमावलम्बी व्याज धर्म (काल्पनिक धर्म) के अनुयायी होंगे। तब सत्य बहुत कम रहेगा। लोग अल्पायु, विद्याहीन, बुद्धिहीन, क्रोध-लोभ तत्पर होंगे। सभी मानव कामासक्त तथा पेट भरने में लगे रहेंगे। शत्रुता परस्परतः वर्द्धित होगी। परस्पर एक दूसरे के विनाश की इच्छा रहेगी। उच्च व्यक्ति अधम होंगे, अधम उच्चता प्राप्त करेंगे। कलिकाल में केवल व्यक्ति की स्त्री ही उसकी बन्धु होगी। जल-बावली, नद-नदी तथा सरोवर अल्प जल वाले होंगे। गौओं में अल्प दुग्ध होगा।

वृक्षों में अल्प फल फलित होंगे। राजागण अल्पदानी रहेंगे। मनुष्य अल्पायु होगा। ब्राह्मणों का वेदज्ञान अल्प होगा। ब्राह्मणगण क्षत्रिय धर्म से जीविका निर्वाह करेंगे। रमणीगण दुर्मुख, गुरुजन से निन्दित तथा व्यभिचारिणी होंगी। शूद्र ही श्लोक पढ़ कर धर्मोपदेश देगा। शूद्र पुराण व्याख्या करेगा। ब्राह्मणगण इस शूद्रकर्मों के कारण तेजरहित हो आत्महनन करेंगे। शूद्रगण अक्षय नरकों में जायेंगे।।१-११।।

पाषण्डधर्मैर्बहुभिर्वेदमार्गाः कलौ युगे। समाच्छन्ना भविष्यन्ति तपो वापीसरवा इव॥१२॥

कल्पयिष्यन्ति शास्त्राणि स्वबुध्या देवता अपि।
त्यक्ष्यन्ति धर्मशास्त्राणि निन्दयिष्यन्ति तान्यपि॥१३॥

शास्त्रं प्राकृतभाषाभिः कल्पयित्वा ह्यशास्त्रतः। धर्मभावान् वदिष्यन्ति शूद्रा मत्सरचेतसः॥१४॥

अशास्त्रकल्पितं देवं पूजयित्वा च निर्मिताम्।
त्यक्त्वा कृष्णादिनामानि तं ग्रासन्त्येव निश्चितम्॥१५॥

यवनैस्तैश्च पाषण्डैः स्वधर्मो नाशयिष्यते। कलौ नरा भविष्यन्ति भगलिङ्गोपजीविनः॥१६॥

अर्थलोभदसद्भ्यश्च मन्त्रान् दास्यन्ति वेशिनः। अन्तःशठा महक्रूरा परद्रव्याभिलिप्सवः॥१७॥

भ्रमन्ते वैष्णवैर्वेशधार्ययिष्यन्त्यसज्जनान्॥१८॥

पुराणार्थविदां साधुशीलानाञ्च द्विजन्मनाम्। देवताद्वेषकास्ते वै द्वेषयिष्यन्ति सर्वदा॥१९॥

कलिकाल में वेदोक्त धर्ममार्ग पाषण्ड से घिर जायेगा। अपने बुद्धिबल से लोग शास्त्र तथा देवता की कल्पना करेंगे। धर्मशास्त्र को छोड़कर उसकी निन्दा करेंगे। प्राकृत भाषा के अशास्त्र की कल्पना शास्त्ररूपेण करेंगे। मत्सरचित्त से शूद्र धर्म का उपदेश करेंगे। लोक अशास्त्रीय तथा कल्पित देवमूर्त्ति की पूजा करेंगे। कृष्ण आदि का नाम त्याग करके कल्पित देवमूर्त्ति के कल्पित देवता की अर्चना तथा नामजप करेंगे। यवनगण तथा पाषण्डी मिल कर स्वधर्म का नाश करेंगे। कलिकाल में मानव भग-लिङ्ग जीवी होंगे। गुरुवेशधारी लोग धनलोभ में असज्जन लोगों को भी मन्त्रदान करेंगे। भीतर से शठ, महाक्रूर तथा परद्रव्य की अभिलाषा रखने वाले लोग वैष्णव वेश में भ्रमण करते रहकर असद् जाति वालों का यज्ञ करेंगे। वे देवता द्वेषी होंगे। ऐसे वैष्णव वेशधारी सदापुराणवेत्ता-साधुशील ब्राह्मणों से द्वेष करेंगे।।१२-१९।।

त्यक्ते कृष्णेन भूखण्डे बौद्धाः केचिद्द्विदूषकाः। स्वमतं स्थापयिष्यन्ति सर्वधर्मबहिष्कृतम्॥२०॥

तदा पुराणे सर्वस्मिन् दर्शनेषु च सर्वशः। विभेदेषु तदा दुःखाद्रोदमाना सरस्वती॥२१॥
तस्या हि दुःखशान्त्यर्थं शिवो विष्णुश्च भूतले। आचार्योपाधि गोष्ठ्यान्तु कुत्राप्यवतरिष्यतः॥२२॥
विष्णोराचार्यरूपस्य सा च भार्या भविष्यति।
आचार्यः शङ्कराख्यो हि कृत्वा सन्यासमाश्रमम्॥२३॥
उभौ तौ बौद्धसङ्घस्य नैयायिक मतेन ह। निवारयिष्यन्ति बलात् ते मरिष्यंन्ति दाहिताः॥२४॥
तान् निवार्य ततो बौद्धानाचार्यः शङ्करः स्वयम्।
देवतानां स्तवान् दिव्यान् कवचानि करिष्यति॥२५॥
मृतसञ्जीवनी विद्यां समाश्रित्य पुनः-पुनः॥२६॥

कृष्ण के पृथिवी त्याग के उपरान्त कतिपय शास्त्रनिन्दक बौद्धों का प्रादुर्भाव हो गया। उन्होंने सर्वधर्म बहिर्भूत स्वमत की स्थापना की। तब समस्त पुराणों तथा दर्शनों में मतभेद देखकर सरस्वती दुःखाधिक्य के कारण रोने लगीं। उनके दुःख निवारणार्थ शिव तथा विष्णु भूतल पर आचार्य उपाधि वाले ब्राह्मण वंश में अवतरित हुए। सरस्वती ही आचार्य रूपी विष्णु की पत्नी हो गयीं। शिव शंकराचार्य के नाम से प्रसिद्ध होकर सन्यासी हो गये। इन दोनों ने नैयायिक मत से बौद्धों का निराकरण किया। बौद्धगण-बलपूर्वक दहन द्वारा मरने लगे। स्वयं शंकराचार्य ने बौद्धों का निवारण किया तथा दिव्य स्तव-कवचादि को रचा। उन्होंने मृत संजीवनी विद्या का आश्रय पुनः-पुनः लिया।।२०-२६।।

भिन्नभिन्नशरीरैस्तु काव्यव्याकरणादिकान्।
करिष्यति शुभान् ग्रन्थान् पुण्यांश्च पठतां नृणाम्॥२७॥
आचार्योभौ यदा पृथ्व्यां त्यक्ष्यतः किल वै ततः।
भविष्यति कलिर्बुद्धो लोकानां सत्वहारकः॥२८॥
तत आरभ्य धर्मस्य हानिरुक्तोत्तरोत्तरा। एतद्विज्ञाय यस्तावत् कलेश्चरितमद्भुतम्॥२९॥
हरौ नारायणे भक्तिं करिष्यति महामतिः। स एव कलिदोषेण त्यक्तो भारं परं व्रजेत्॥३०॥
कलौ लोका भविष्यन्ति सदा दुर्मतयो द्विज। गुरुं शिष्याः पति भार्याः पितरौ च सुतादया।
अवमंस्यन्ति सततं दुर्वचोभिविषोपमैः॥३१॥

शंकराचार्य ने इस विद्या से पुनः-पुनः नाना शरीर ग्रहण किया। उन्होंने अध्ययनशील मानवगण के लिए काव्य, व्याकरणादि नाना पवित्र उत्तम ग्रन्थ रचे। जब इन दोनों आचार्यों ने पृथिवी से परलोक गमन किया, तभी से धरती पर कलि-वृद्धि होने लगी तथा जनमानस से सत्वगुण का नाश होने लगा। तब से उत्तरोत्तर धर्महानि होने लगी। जो महामति इस अद्भुद कलिचरित्र को जानकर नारायण से भक्ति करेगा, वह कलिदोष रहित होकर परमभाव को प्राप्त होगा। हे द्विज! कलिकाल में लोग सदा दुर्मतियुक्त होंगे। शिष्य गुरु से, भार्या स्वामी से, पुत्रादि पिता-माता से दुर्वाक्य, विष जैसे वाक्य बोलेंगे तथा उनका अपमान करेंगे।।२७-३१।।

खलाश्च पिशुनाश्चैव दाम्भिका मत्सरा अपि।
साधूंश्चैवावमंस्यन्ति तन्महं कालकल्पितम्॥३२॥

दीर्घाकाराः स्त्रियः सर्वा दन्तुर वा विवर्णिकाः।
खर्वा वा क्रोधबहुला दुष्टाः स्त्रीलक्षणा कलौ॥३३॥
ब्राह्मणास्तु श्यामवर्णा दन्तुरा क्षीणदेहिनः। शठत्वलक्षणा विप्रा भविष्यन्ति कलौ युगे॥३४॥
शूद्रा अत्यन्त गौराङ्गा अल्पश्मश्रुधरास्तथा। दन्तुराश्च विशेषेण भवेयुः शठलक्षणाः॥३५॥
कुब्जा निम्नदृशश्चैव दीर्घजङ्घा महोदराः। बह्वाहाराः सदादम्भाः कलौ वर्णा द्विजोत्तम॥३६॥
दुर्भगा उच्चलाभाश्च स्त्रियो मृतधवा अपि। दुर्वाक्यवदनाः सर्वा भविष्यन्ति कलौ युगे॥३७॥
एवम्भूते कलौ विप्र देवास्त्यक्ष्यन्ति भूतलम्। ब्राह्मणा मादकद्रव्यं भोक्ष्यन्ति त्यक्तवेदकाः॥३८॥
पृथिवी स्वल्प शस्या च कुञ्चिता च दिने दिने।
भविष्यन्ति तदा गावः स्वल्पदोहाः पयोऽल्पिकाः॥३९॥

खल, चुगलखोर, मात्सर्य वाले, साधुओं की अवमानना करेंगे। यह सब कलि का महत् कार्य है। कलिकाली की स्त्रियां दीर्घाकृति, दन्तुर, विवर्ण, नितान्त खर्वाकृति, क्रोधसम्पन्न, दुष्टा तथा अलक्षणा—इनमें से किसी न किसी लक्षण वाली होंगी।

कलिकाल के ब्राह्मणगण कृष्णवर्ण, दन्तुर, क्षीणदेह, शठतापूर्ण होंगे। शूद्रगण अतीव गौर, अल्प दाढ़ीवाले, दन्तुर तथा विशेषतः शठ होंगे। हे द्विजोत्तम! कलि में चारों वर्ण में से कोई कुब्ज, निम्न दृष्टिवाला, दीर्घ जघन वाला, स्थूल पेट वाला, बहुत खाने वाला तथा दन्तपूर्ण होगा। स्त्रियां दुर्भगा, ऊंचे ललाट वाली, दुर्वाक्य बोलने वाली तथा विधवा होंगी। हे विप्र! इस प्रकार देवगण कलिकाल में पृथिवी का त्याग कर देंगे। ब्राह्मण वेद त्याग करके मादक द्रव्य सेवन करेंगे। दिनोंदिन पृथिवी पर उपज, खेती कम होती जायेगी। लोकक्षय तथा आयतन कम हो जाने से पृथिवी कम होती रहेगी। गौयें कम दुग्ध देंगी।।३२-३९।।

नराणां मृत्युकालस्य नियमो न भविष्यति। भ्रष्टाश्रमा आश्रमिणो भविष्यन्ति द्विजोत्तम॥४०॥
अन्यवर्णाश्रमेश्चिह्नरन्येऽधिष्यन्ति लोभिनः। त्यक्षन्त्यादौ ग्राम्यदेवास्ततो गङ्गा च त्यक्ष्यति॥४१॥
ततो विप्राश्च त्यक्ष्यन्ति तुलसी बिल्व संयुताः।
ततस्त्यक्ष्यन्ति शास्त्राणि पुराणादीनि सर्वशः॥४२॥
ततस्त्यक्ष्यन्ति वै वर्णा यवनस्य बलं सदा। देवास्त्यक्ष्यन्ति पृथिवीं म्लेच्छमात्र समाकृताम्॥४३॥
ततो भवेदनावृष्टिरतिवृष्टिः पुनः पुनः। परस्पर विरोधेन ते भविष्यन्ति सर्वशः॥४४॥
ततो हरिः स्वयं देवः कल्किनामा भविष्यति। सर्वान् म्लेच्छान् बलाद्धत्वा ह्यन्तर्ध्यानं करिष्यति॥४५॥

मानव की मृत्यु का कोई नियम नहीं रहेगा। हे द्विजोत्तम! आश्रमी आश्रमभ्रष्ट होंगे। लोग लोभ के कारण अन्य वर्ग का अथवा अन्य आश्रम का वेश अथवा चिह्न धारण करके भ्रमारत रहेंगे। कलिकाल में पहले ग्रामदेवतागण पृथिवी त्याग करेंगे। तदनन्तर गंगा पृथिवी त्याग करेंगी। तदनन्तर तुलसी तथा बिल्ववृक्ष के साथ ब्राह्मण भी पृथिवी त्याग कर देंगे। (यहां वाराहपुराण के मत पर ध्यान देना चाहिए। तदनुसार इस मन्वन्तर के अन्त में जो कलियुग होगा, उसमें गंगा, बिल्वपत्रादि पृथिवी त्याग करेंगे। इसमें ऐसा नहीं होगा। तदनन्तर पुराणादि शास्त्र पूर्णतः लुप्त होंगे। चातुर्वर्ण रहेगा ही नहीं, सतत् सर्वत्र यवन प्रधानता होगी। म्लेच्छपूर्ण पृथिवी का देवता त्याग कर देंगे। पुनः-पुनः कभी अति

वर्षा कभी अवर्षण का योग होगा। पारस्परिक विरोध पूर्णतः लोकक्षयकारी होंगा। तदनन्तर विष्णु कल्किरूपेण अवतीर्ण होकर निखिल म्लेच्छ जाति का नाश करके अन्तर्हित हो जायेंगे।।४०-४५।।

ततः पृथिवी पूर्व जीर्णा दग्धगोमयपिण्डवत्। झंझावायुक्षीणभूता जले मग्ना भविष्यति॥४६॥

ततः पुनः सत्ययुगं सृष्ट्यर्थन्तु भविष्यति॥४७॥

तदा सर्वं भवेद्विप्र पुनः पूर्ववदेह हि। इति ते कथितं विप्र कलिधमा भयावहाः॥४८॥

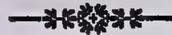
यत्र गोविन्द नामानि भयहारीणि सर्वदा॥४९॥

उस समय पृथिवी पूर्ण जीर्ण होकर दग्ध गोमय (गोबर) के पिण्डवत् होगी। वह वायु के झंझावात से क्षीण होकर जलमग्न होगी। तदनन्तर पुनः सृष्टि हेतु सत्ययुग का प्रारम्भ होगा। हे विप्र! तब पुनः सब सृष्टि पूर्ववत् होगी। हे विप्र! यह मैंने भयावह कलिधर्म का वर्णन कर दिया। वहां केवल भगवान् गोविन्द के नाम ही सर्वदा भयहारी होंगें।।४६-४९।।

कलिं दोषनिधिञ्चापि पूजयन्ति सतांगणाः। यत्र सङ्कीर्त्तननैव सर्वः स्वार्थोपलभ्यते॥५०॥

अश्वमेधादि तुल्यन्तु नाम यत्र हरेर्मतम्। सर्वं प्रायश्चित्तरूपं परमं कर्णरोचनम्॥५१॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे उत्तरखण्डे कलिधर्मकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः।।



कलियुग यद्यपि दोषों की खानरूप है, तथापि सत् लोग सदा उसकी प्रशंसा करते हैं। केवल हरिनाम कीर्त्तन से ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है। कलिकाल में हरिनाम अश्वमेध के तुल्य है। यह हरिनाम जप समस्त प्रायश्चित्तों के बराबर तथा अत्यन्त कर्णमधुर है।।५०-५१।।

।।एकोनविंश अध्याय समाप्त।।



विंशोऽध्यायः

महापातकादि कथन

जाबालिरुवाच

कलिधर्माणि लोकेषु ब्रह्महत्यादि पापवत्। तद्वदस्व महाभाग पापसम्बन्धवर्जितः॥१॥

जाबालि कहते हैं—लोक में ब्रह्महत्यादि पापों के साथ कलिधर्म का विशेष सम्बन्ध है। हे महाभाग! आप पापसम्बन्ध शून्य हैं। इन सब पापों का कृपया वर्णन कीजिए।।१।।

व्यास उवाच

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। महान्ति पातकान्याहु स्तत् संसर्गी च पञ्चमः॥२॥

एवञ्चेत् पातकादीनि स्त्रीगोहत्यादि कथ्यते। शूद्राणां ब्राह्मणीसङ्गो महापातक उच्यते॥३॥
न शूद्राणां सुरापानं महापातक उच्यते। ब्राह्मणे ह्यप्रणामन्तु ब्रह्महत्यैव गीयते॥४॥
सम्मान्या नामसम्मानं वध एव हि गीयते। पुराणश्लोकपाठस्तु शूद्राणां ब्रह्मघातनम्॥५॥
अदृष्टा शास्त्रकथनं ब्रह्महत्यैव गीयते। देवानां भेदनिन्दे च देवतावधू उच्यते।
आत्महत्या हिंसा प्रोक्ता जाबाले नात्र संशयः॥६॥

व्यासजी कहते हैं—ब्रह्महत्या, सुरापान, ८० रत्ती से अधिक तौल का ब्राह्मण का स्वर्ण चुराना तथा गुरुजन की पत्नी से गमन, ये महापातक हैं। इनका संसर्गी व्यक्ति भी महापातकी है। ये ५ महापातकी हैं। (अधिक प्रायश्चित्त ज्ञानार्थ स्मृतियों को देखें)। स्त्रीहत्या, गोहत्या प्रभृति भी पातक है। शूद्र जाति के पुरुष द्वारा ब्राह्मणीगमन महापातक है। शूद्र यदि सुरा पीता है, तब वह महापातक नहीं है। ब्राह्मण को प्रणाम न करना शूद्र हेतु महापातक है। सम्माननीय व्यक्ति का सम्मान न करना भी उस व्यक्ति का वध स्वरूप है। पुराण श्लोक पाठ करना शूद्र हेतु ब्रह्महत्या ही है।

बिना शास्त्र जाने उसका उपदेश देना भी ब्रह्महत्या है। देवगण के प्रति ऊंच-नीच रूपी भेददृष्टि तथा उनकी निन्दा करना भी देववध है। हे जाबालि! यही आत्महत्या है। इसमें सन्देह नहीं।।२-६।।

श्लोकं परकृतं यस्तु स्वकृतं हि वदेत् कुधीः। सुराप इति स प्रोक्तो वान्ताशी च स उच्यते॥७॥
परेण विहितं कर्म स्वकर्मेति वदेच्च यः। स उच्यते ब्रह्मघाती महानारकनारकी॥८॥
शास्त्रार्थमन्यथा यस्तु व्याख्यायति सुमन्दधीः। स चापि ब्रह्महत्यायाः पातकी परिगीयते॥९॥
यः पुराणेषु चार्थेषु स्वयं श्लोकादि कल्पयेत्। स चापि ब्रह्महत्यायाः पातकी परिगीयते।
परकीर्त्तिविलोपी यः स च स्याद् ब्रह्मघातकः॥१०॥
परोपकार कर्मादौ यो हन्ता स्यात् कुधी र्जनः। स एवाधर्मबहुलो मुखं तस्य न दृश्यते॥११॥
कर्त्तव्य पुण्यकार्ये तु परेण यो विरोधयेत्। ब्रह्मघाती स विज्ञेयो ब्रह्मद्वेषकरस्तथा॥१२॥

जो कुबुद्धि व्यक्ति परकृत श्लोक को स्वकृत कहता है, वह सुरापायी तथा वमन भोजी है। जो व्यक्ति दूसरे के कार्य को अपना कहता है, उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है। उसे महानरक भोग होगा। जो मन्दबुद्धि शास्त्र की अन्य रूप से व्याख्या करता है, वह भी ब्रह्महत्या का पातकी है। दूसरे की कीर्त्ति का लोप करने वाला भी ब्रह्मघाती है। जो कुबुद्धि व्यक्ति परोपकार आदि कार्य से किसी को रोकता अथवा बाधित करता है, उसका अधर्म इतना अधिक है कि उसका मुख भी न देखे। जो पुण्यकर्म में प्रवृत्त व्यक्ति का विरोध करके उसके पुण्यकर्म में बाधा उत्पन्न करता है, वह भी ब्रह्मघात के पाप से युक्त होता है तथा वह ब्रह्मद्वेषी भी है।।७-१२।।

भुञ्जानं यस्तु वैजन्तुं विरोधयति पापधीः। ए एवात्मविघातस्य फलमाप्नोति पापकृत्॥१३॥
आलापाद्गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात् सहभोजनात्। एकयानासनाभ्याञ्च पापं संक्रमते नृणाम्॥१४॥
संसर्गो यावनश्चैव भाषा च यावनी तथा। सुरातुल्यं द्वयं प्रोक्तं यवनान्नं ततोऽधिकम्॥१५॥
एवमेवावगन्तव्या धर्माधर्मा महामुने। यत् पृष्टं भवता सर्वं प्रोक्तं ते तन्मना मुने॥१६॥
यत् कृतन्तु मयापूर्वं वृहद्धर्मपुराणकम्। श्रेष्ठं ह्युपपुराणानां तत्र सर्वं प्रकाशितम्॥१७॥

इदं श्रोतव्यममलं गेयं पाठ्यञ्च सर्वदा। इदं पापहरं पुण्यमिदं मोक्षस्य साधनम्॥१८॥
ना तः परतरं गुह्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते॥१९॥
महापुराणे सर्वस्मिन् श्रीमद्भागवत यथा। तथा ह्युपपुराणेषु इदमेव कृतं मया॥२०॥

जो पापी भोजन परायण जीव को भोजन नहीं करने देता, वह पापी है। उसे आत्महत्या का भोग भोगना होगा। वार्त्तालाप, शरीर स्पर्श, श्वास-त्याग का (श्वास का) स्पर्श, भोजन, यान में साथ बैठना, एक पंक्ति में भोजन, इन सब कारण से मानव में पाप का संक्रमण होता है। यवन संसर्ग करना तथा यवन भाषा का प्रयोग सुरातुल्य पाप है। यवन का भोजन तो महान् पाप है। हे महामुनि! इस प्रकार से धर्म-अधर्म को जाने। तुमने जो पूछा था, उसका मैंने उत्तर प्रदान किया। मैंने पूर्व में बृहद्धर्म नामक जिस पुराण को रचा है, वह सर्वोत्तम उपपुराण है। यह सभी विषय उसमें कहे गये हैं। यह निर्मल पुराण सदा सुने! गाये! पढ़े! यह उपपुराण मोक्ष साधक तथा पाप नाशक है। त्रैलोक्य में इसकी अपेक्षा गुप्त कुछ नहीं है। सभी महापुराणों में से श्रीमद्भागवत जैसे प्रधान है, उसी प्रकार से मैंने बृहद्धर्मपुराण को (प्रधान रूपेण) उपपुराणों में प्रस्तुत किया है।।१३-२०।।

सूत उवाच

इदं वदन् स जाबालिं मां प्रत्यप्युक्तवानिदम्। व्यासः परमधर्मात्मा सर्वधर्मविदां वरः॥२१॥

सूतजी कहते हैं—परम धर्मात्मा, सर्वधर्मज्ञप्रधान वेदव्यासजी ने यह कहकर मुझसे कहा।।२१।।

व्यास उवाच

वत्स सूत महाभाग श्रुतमेतत् त्वयाखिलम्। नाशुश्रुषु जनायैतद् वक्तव्यं ते कदाचन्॥२२॥
गोपनीयमिदं शास्त्रं ब्रह्मज्ञानोपलब्धकम्। लोमहर्षणनामा च पिता तव महामते॥२३॥
स मे शिष्यः पुराणज्ञो यद्वेद पञ्चमो मतः। तस्य पुत्रो भवान् साधुः प्रायोऽपि मम सर्वथा।
बृहद्धर्मपुराणञ्च त्वयि न्यस्तं सुवक्तरि॥२४॥

(मुझसे) व्यासदेव कहते हैं, हे महाभाग! हे सूत! तुमने इस पुराण को सम्पूर्णतः सुना है। जो व्यक्ति शुश्रूषा न करें, उससे कदापि यह पुराण नहीं कहना। यह ब्रह्मज्ञान प्रदाता शास्त्र गोपनीय है। हे महामति! तुम्हारे पिता लोमहर्षण मेरे शिष्य तथा पुराणज्ञ थे। पञ्चम वेद महाभारत उनकी ही वस्तु है। तुम उनके पुत्र हो। तुम सर्वतोभावेन अपने पिता की तरह साधु कहे जाते हो। तुम सुवक्ता हो। मैं बृहद्धर्मपुराण तुमको ही प्रदान करता हूं।।२२-२४।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा मां तदा व्यासो जाबालिं प्रत्युवाच सः॥२५॥

सूतजी कहते हैं—महात्मा व्यासदेव ने मुझसे यह कहने के पश्चात् जाबालि से कहने लगे।।२५।।

व्यास उवाच

गच्छ वत्स महाभाग जाबाले शिष्यसंयुतः। अहं स्मरामि विश्वेशं भगवन्तं सनातनम्॥२६॥

व्यासदेव कहते हैं—हे महाभाग वत्स जाबालि! अपने शिष्यों के साथ जाओ। मैं अब भगवान् विश्वेश सनातन प्रभु का स्मरण करूंगा।।२६।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वो गुरुणा विप्रो जाबालिमुनिसत्तमः।
व्यासं प्रणम्य भक्त्या च ययौ शिष्येर्यथेच्छ य॥२७॥
मया यः कथितं सर्वं यदधीतं यथामति। भवद्‌भिर्गोप्यमेवैतद् व्यासस्य वचनं यथा॥२८॥

।।इति बृहद्धर्मपुराणे उत्तरखण्डे महापातकादि कथनं नाम विंशोऽध्यायः।।



सूतजी कहते हैं—गुरु व्यास के यह कहने पर मुनिश्रेष्ठ जाबालि भक्ति के साथ गुरु को प्रणाम करके शिष्यगण के साथ यथेच्छ स्थान चले गये। हे विप्रगण! मैंने जो अध्ययन किया था, बुद्धि के अनुरूप आप लोगों से वह कह दिया। व्यासदेव के आदेशानुरूप आप लोग भी इसे गुप्त रखें।।२७-२८।।

।।विंश अध्याय समाप्त।।



एकविंशोऽध्यायः

पुराण प्रशंसा

सूत उवाच

इदं वः कथितं विप्राः पुराणं धर्मनामकम्। बृहद्धर्मपुराणं यत् कथ्यते मुनिपुङ्गवैः॥१॥
इदं पापहरं पुण्यं यशस्यं धनवर्द्धनम्। पठेद्वा शृणुयाद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२॥
इदमष्टोत्तरशतं श्रुतं वा पठितं किल। अश्वमेधफलं दत्ते कलिकालेऽपि भूसुराः॥३॥
अवन्ध्यं दिवसं कुर्यात् श्लोकमेकं पठेन्नपि॥४॥
इदं हि वैष्णवं शास्त्रं शैवं शाक्तं तथैव च। सांख्ययोगं परञ्चैतं साध्वात्म ज्ञानदं द्विज॥५॥
वाचयेद् ब्राह्मणद्वारा व्याख्यातं शृणुयादपि। अयं ह्युपपुराणैकः श्रीमद्‌भागवतं यथा॥६॥
कालाकालविचारन्तु नास्त्यस्य श्रवणादिषु। अशुश्रूयमभक्तञ्च देवभेदकरं तथा।
न श्रावयेदिदं शास्त्रं परमज्ञानदायकम्॥७॥

सूतजी कहते हैं—हे विप्रगण! मुनिपुंगवगण जिसे बृहद्धर्मपुराण कहते हैं, उसे मैंने आपसे कहा। यह ग्रन्थ पापनाशक, पुण्यप्रद, यशवर्द्धक तथा धनवर्द्धक है। इसे पाठ करने अथवा सुनने से सभी पापों से मुक्ति मिलती है। हे भूदेवगण! इसका १०८ बार श्रवण किंवा पाठ करने से कलिकाल में भी अश्वमेध फल मिलता है। अन्ततः इसका एक भी श्लोक पाठ करने से दिन सार्थक होता है। हे द्विजगण! यह वैष्णव, शैव तथा शाक्त शास्त्र है। यह साधुशास्त्र सांख्ययोगात्मक तथा परम आत्मज्ञान प्रदायक है। इस पुराण का पाठ ब्राह्मण द्वारा कराये, व्याख्या कराये तथा श्रवण

करे। जैसे भागवत पुराणों में प्रधान है, वैसे ही यह उपपुराणों में प्रधान है। इस शास्त्र के श्रवणार्थ कालाकाल विचार नहीं है। जो सेवा न करे, भक्त न हो तथा देवता में मंदबुद्धि रखता हो, उसे यह परम ज्ञानप्रद शास्त्र सुनाना कर्त्तव्य नहीं है।।१-७।।

देव्या दत्तमिदं पूर्वं ब्रह्मादिभ्यस्ततः परम्। नारदः कथयामास व्यासायामिततेजसे।।८।।
व्यासश्चक्रे श्लोकवद्धं ततोऽहं श्रुतवानिदम्। मया तत् कथितेञ्चेदं युष्मभ्यं हियथामति।।९।।
इदं लेखाञ्च पूज्यञ्च रक्षणीयं गृहे तथा।।१०।।
दुर्गोत्सवे तथा पुण्ये दिवसेष्वितरेषु च। बृहद्धर्मपुराणाख्यं शृणुयाद्दक्षिणाप्रदः।।११।।
गंगातीरे पुण्यतीर्थे शिव विष्ण्वालये तथा। साधूनां सङ्गमे चैव पठेदेतच्छुचिर्द्विजः।।१२।।

इस शास्त्र का प्रकाशन देवी ने सबसे पहले ब्रह्मा आदि देवगण से किया था। ब्रह्मा ने इसे नारद से कहा। नारद ने अमित तेजस्वी व्यासदेव से इसे कहा। व्यासदेव ने इसे श्लोकबद्ध किया। मैंने इसे व्यासदेव से सुनकर अपनी बुद्धि के अनुरूप आप लोगों से कहा। यह पुराण पूज्य, लेख्य तथा गृह में भी रक्षणीय है। दुर्गोत्सव के समय अथवा अन्य पुण्यकाल में बृहद्धर्मपुराण श्रवण करे। तदनन्तर दक्षिणा प्रदान करे। द्विजगण गंगातट पर, पवित्र तीर्थ में, शिवालय किंवा विष्णुमंदिर में अथवा साधु समाज के समागम स्थल में पवित्र होकर यह पुराण पढ़े।।८-१२।।

एतत् पाठस्य समये यस्तु कुर्यात् कथान्तरम्। सकुर्याद् ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्त विशुद्धये।।१३।।
इति वः कथितं सर्वं यत् पृष्ठेऽहमिहास्मि वः। येन संसार दुष्पार समुद्रो गोष्पदी भवेत्।।१४।।
सुखं तिष्ठन्तु वै विप्राः काले वर्षन्तु वारिदाः। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य प्रतियामि यथागतम्।।१५।।

।।इति बृहद्धर्मपुराणे उत्तरखण्डे पुराणप्रशंसा नाम एकविंशोऽध्यायः।।

।।समाप्तमिदं उत्तरखण्डम्।।



।।बृहद्धर्मपुराणम् समाप्तम्।।

***

इस पुराण पाठकाल में जो अन्य बातें करता है, उसे अपनी विशुद्धि हेतु ब्रह्महत्या निवारण व्रत करना होगा। आप लोगों ने जो पूछा था, वह सब मैंने कह दिया। अब मैं यह कहता हूं कि इस शास्त्र के प्रभाव से अपार संसार सागर को गाय के खुर से बने गढ़े की तरह सरलता से पार किया जा सकता है। ब्राह्मण सुखपूर्वक रहें। मेघ समय पर जलवर्षा करें। अब मैं ब्राह्मणों को प्रणाम करके यथास्थान जाता हूं।।१३-१५।।

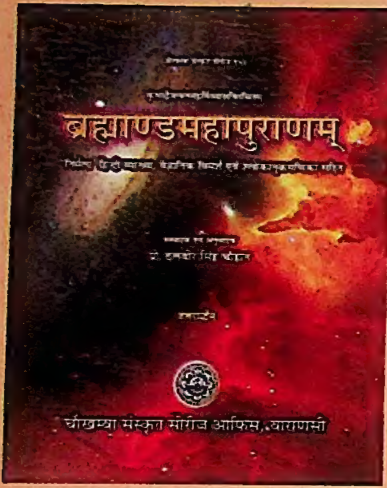
।।एकविंश अध्याय समाप्त।।

।।उत्तरखण्ड समाप्त।।



।।बृहद्धर्मपुराण समाप्त।।

***



₹ 1600.00 (Set in 2 Vols.)

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्माण्डमहापुराणम्

'निर्मला' हिन्दी व्याख्या, वैज्ञानिक विमर्श एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित

सम्पादक एवं अनुवादक - प्रो. दलवीर सिंह चौहान

ब्रह्माण्डपुराण भी अट्ठारह पुराणों में से एक महापुराण है; क्योंकि सभी पुराणों में जो पुराणों की संख्या दी गयी है, उसमें ब्रह्माण्डपुराण को अन्तिम पुराण माना गया है। पुराणों को जो तीन प्रकार के पुराण माना गया है—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। उनमें से यह पुराण राजसिक पुराण के रूप में स्वीकार किया गया है। पुराणों के वर्णन के अनुसार जो सब पुराण उस पुराण पुरुष (ब्रह्मा) के शारीरिक अंग के रूप में चित्रित किये गये हैं, वहाँ यह पुराण पुराण पुरुष (ब्रह्मा) की रीढ़ की हड्डी के रूप में ही माना गया है।

वैसे सभी पुराणों में प्रायः एक ही प्रकार की कथायें तथा चरित्र चित्रण हैं; पर[illegible] की विशेषता यह है कि इसमें ८०० श्लोकों में भविष्य में आने वाले युगों का विस्तृत वर्णन है 'ललितोपाख्यान' इसका [illegible] है। ब्रह्माण्डपुराण केवल उपनिषद् और ब्राह्मण साहित्य से ही सम्बन्ध नहीं रखता है; अपितु यह वैदिक संहिताओं के साहित्य [illegible] रखता है। वैसे यह पुराण साहित्य के क्षेत्र में वैदिक साहित्य से भाषा भिन्नता रखता है; परन्तु जहाँ तक विषय वर्णन का [illegible] साहित्य से सम्बन्धित है। इस पुराण की यह विशेषता है कि इसमें सृष्टि और प्रलय के रहस्यों पर अधिक जोर दिया गया है।

सब पुराणों की तरह यह पुराण भी अधिकांश पुराणों से कुछ स्थलों पर समानता रखता है; परन्तु वायुपुराण के [illegible] सन्निकट है, क्योंकि इस पुराण का उत्तर भाग ललितोपाख्यान अपने में एक अनूठा उपाख्यान है तथा वैज्ञानिकता से परिपूर्ण है।

ब्रह्माण्डपुराण में कथा की परम्परानुसार ब्रह्माण्ड पुराण को स्वयं ब्रह्मा ने वायु को कहा है तथा वायुदेव ने इसे दूसरों को सुनाया है, जिसका सम्पूर्ण वर्णन इस पुराण के प्रारम्भ में ही वर्णित है।

ब्रह्माण्ड पुराण स्तोत्र साहित्य का एक प्रचुर भण्डार है। इस पुराणों में देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये विभिन्न देवी देवताओं तथा मानवों द्वारा स्तुतियां की गयी हैं। ये स्तुतियां देवों, राक्षयों एवं मनुष्यों द्वारा ऐसे समयों पर की गयी हैं, जब कि वे किसी विशेष आपत्ति में फंस गये हैं तथा उन स्तुतियों द्वारा उनकी आपत्तियाँ का निवारण भी हुआ है। तदनुसार वे स्तुतियां अथवा स्तोत्र आज भी मानव कल्याण के साधन बने हुए हैं, जो व्यक्ति उन पर विश्वास करते हैं, उन्हें अवश्य इन स्तोत्रों से लाभ पहुंच रहा है।

इस पुराण में परशुराम द्वारा पार्वती के लिये स्तोत्र परशुराम द्वारा पठित भद्रकाली स्तोत्र, देवों द्वारा ललितेश्वरी के प्रति ललितास्तवराज स्तोत्र, भण्डासुर के विनाश के लिये ब्रह्मा सहित सभी देवों द्वारा की गयी स्तुति ललितास्तुति वर्णित है। इसके अलावा समस्त शरीर को अस्त्र शस्त्र एवं विविध दुर्घटना से बचाने के लिये कवच स्तोत्र भी वर्णित है। तथा तीनों लोकों को जीतने के लिये त्रैलोक्य कवच स्तोत्र वर्णित है तथा सहस्राक्षरीविद्या तथा ललितादेवी को प्रसन्न करने के लिये पुष्पांजलि स्तोत्र वर्णित है।

इस पुराण के प्रत्येक अध्याय को पढ़ने, सुनने, सुनाने की फलाप्ति का विवेचन भी पुराणकार सर्वत्र करता रहा है। इस पुराण की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इसने प्राचीन भौगोलिक स्थिति को पूरी तरह वर्णित किया है तथा ऐसा लगता है कि प्राचीन पुरुषों ने इन सबको अच्छी तरह परख लिया था। इस पुराण का ललितोपाख्यान अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण आख्यान है। इसमें श्रीयन्त्र का वर्णन आया है, जो श्रीयन्त्र घर में रखने से लक्ष्मी लाने का प्रतीक है।

यह पुराण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, ऐसे महत्त्वपूर्ण लोकोपकारी पुराण का हिन्दी अनुवाद अभी तक नहीं हुआ था। वैसे पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा इसके बहुत कम अंशों का अनुवाद उपलब्ध होता है; परन्तु वह पूर्ण न होने के कारण प्रामाणिक नहीं है।

उक्त पुराण की हिन्दी टीका करने के लिये कई विद्वानों को सम्पर्क किया गया, परन्तु उन सभी ने इसकी हिन्दी टीका करने में असमर्थता प्रकट की। अन्त में, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया के संस्कृत विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. (डॉ.) दलवीर सिंह चौहान ने इसकी हिन्दी टीका करना स्वीकार किया एवं अल्प अवधि में इसे पूरा कर दिया जिससे प्रथम बार यह पुराण हिन्दी टीका के साथ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत हो सका है।

ISBN : 978-81-7080-434-5 ₹ 675.00